ओ३म्

साप्ताहिक

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य सन्देश

वर्ष १० : अंक ८ | रविवार, १२ जनवरी, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ | मार्गशीर्ष २०४२ | दयानन्दाब्द—१६१

मूल्य : एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश में ५० डालर, ३० पौंड

राष्ट्र, धर्म और संस्कृति के महान् रक्षक—स्वामी श्रद्धानन्द

अमर हुतात्मा को आर्य जगत् की श्रद्धाञ्जलि

महामण्डलेश्वर स्वामी वेद व्यासानन्द जी

मंच पर बैठे हैं—बाये से श्री अर्जुन सिंह, श्री म० धर्मपाल, जैन मुनि सुशील कुमार।

अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान दिवस पर आयोजित एक विशाल शोभा यात्रा का इस बार मनोहारी दृश्य रहा। बालक बालिकाओं, युवक, युवतियों का उत्साह, गीतो भजनों और वीर रस के कौतुक दिखाने में चरमोत्कर्ष पर पहुंचा हुआ था। इस जलूस की कई किलोमीटर की लम्बाई से दिल्ली के नागरिक हैरान थे। दोपहर बाद को श्रद्धाञ्जलि सभा का भी अलग ही नजारा था। इस सभा को सम्बोधित करते हुए महामण्डलेश्वर स्वामी वेदव्यासानन्द हरिद्वार ने कहा—

भारत के अनोखे साधु जिसे भारत ही नहीं दुनिया के अनेक देशों में स्मरण किया जाता है, जिसने मिस्टर गांधी को महात्मा गांधी की उपाधि दी थी, जिसने भारत में गुरुकुल की पावन गंगा बहायी थी, उस स्वामी श्रद्धानन्द को मैं आज श्रद्धाञ्जलि भेंट करने आया हूं। उस महान् संन्यासी के आर्यसमाज ने हिन्दू जाति की रगों में वीरता का जोश फूंका है। सुधार के कार्यों से लेकर धर्म रक्षा और देश अखण्डता के कार्यों तक, विधर्मी बन रहे भाइयों को पुनः अपने घर में लाने से लेकर विधर्मियों को ही प्रभावित कर पण्डित प्रचारक बना कर अपना प्रचार कराने तक के कार्यों से मेरा माथा श्रद्धा से झुकता है। सुधार, जन कल्याण, देश धर्म रक्षा की सेवा को अपनानें से मैं भी आधा आर्यसमाजी हो गया हूं। मेरे पास दो लाख नागा साधु हैं जिनके अखाड़े का मैं महामण्डलेश्वर हूं। मेरा वायदा है देश धर्म जाति की रक्षा के लिए मैं प्रत्येक सहयोग आपको देने के लिए तत्पर हू। आप बढ़ चढ़ कर कार्य कीजिये। श्रोताओं ने बढ़ चढ़ कर तालियों से इनका स्वागत किया।

प्रसिद्ध जैन मुनि श्री सुशील कुमार ने कहा—

समस्त विश्व को श्रेष्ठ और श्रेष्ठ बनाने का स्वप्न और स्वप्न हो नही संकल्प है आर्यसमाज का सौभाग्य से मैं भी इस संकल्प से जुड़ गया हूँ। विश्व के जिन देशों में भी मैं गया हूँ

(शेष पृष्ठ ११ पर)

सम्पादक—यशपाल 'सुधांशु' एम० ए० | व्यवस्थापक—डा० [illegible] | प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल

आकर्षक, चुम्बकीय शक्ति का पुंज : श्रद्धानन्द

डा० महेश विद्यालंकार, शालीमार बाग

आर्यसमाज के इतिहास के फलक र स्वामी श्रद्धानन्द का चरित्र बड़ो ाजी से उभरा, चमका और सभी को ालोकित किया। आरम्भिक जीवन ुर्व्यवसनी तथा भोग विलासी रहा, कन्तु हृदय-भूमि इतनी अद्भुत एवं भावनापूर्ण रही कि ऋषि के एक प्रवचन ही ने जीवन का कायाकल्प कर दिया। ऐसी विलक्षण एव गहरी रकड़ शायद ही किस की रही हो। कितनी गहरी विसंगतियों से इतना ऊंचा मानव उठ सकता है यह सबक श्रद्धानन्द के चरित्र से आज भो मानव ले सकता है। कितना हृदय मे तूफान उठा होगा? कैसी भयकर आंधी चही होगी? कितना तीव्र वैराग्य जागा होगा? कितना प्रायश्चित्त किया होगा? तब कहीं जाकर श्रद्धानन्द बन सका होगा। यह पूर्ण सत्य है कि उसके अमर गुरु ऋषि दयानन्द में एक अद्भुत विचित्र आकर्षण व चुम्बकीय शक्ति थी। जो भी उनके निकट आता था उनके ही मार्ग में बह जाता था। गुरु तो चिन्गारी लगा देता है यदि शिष्य में निष्ठा, धैर्य, श्रद्धा, संकल्प और भावना हो तो उसे शोला बना सकता है। श्रद्धानन्द ने ऋषि के ज्ञान को शोला बनाकर सभी को नई चेतना-प्रेरणा और ऊपर उठने बढ़ने का आदर्श प्रस्तुत किया। उन को मान्यता थी—

राह का चलना ही न सीखो,
राह का निर्माण भी सीखो।

उन्होंने प्राचीन सत्य-सनातन आदर्शों, मान्यताओं, परम्पराओं और मर्यादाओं को लेकर 'नव-निर्माण की कल्पना में आदर्श गुरुकुल-प्रणाली की कल्पना को साकार रूप दिया जो कि तत्कालीन विदेशी शासन काल मे असम्भव ही नहीं अत्यन्त कठिन था। किन्तु वह धुन का धनी वीर पुरुष अकेला ही ऋषि के स्वप्नों को साकार करने के लिए चल पड़ा। अहं और मोह का प्रतीक जालन्धर की कोठी सब से पहले गुरुकुल की झोली में डाल दी। फिर क्या देर थी? लोगों ने देखते-देखते गुरुकुल निर्माण के लिए झोलियां भर दीं। उस आर्यसमाज के दीवाने ने सब से पहले अपने दोनों पुत्रों को गुरुकुल में प्रवेश किया। गुरुकुल बना, चला, आगे बढ़ा, यश-कीर्ति और निर्माण देश-विदेश पहुंचा। लोग अवाक् रह गए। उस निर्माण के पीछे आदर्श, सत्य, जीवन चरित्र, तप-त्याग और तपस्या थी। निर्माण की ललक थी। शिक्षा जगत् को नई दिशा, प्रेरणा तथा आदर्श देने की आकुल भावना थी। जो दिन रात उस तपस्वी को बेचैन किये रहती थी। वह रात-रात भर जाग कर विद्यार्थियों को माता जैसी ममता देता था। पिता जैसा मधुर स्नेह लुटाता था। यदि कभी कोई छात्र बीमार पड़ गया तो रात उसी के पास बैठकर गुजार देता था। छात्र को कै करने की शिकायत हुई तो सुधबुध खोकर हाथ की अंजलि में ही कै उठा लेता था। ऐसे किया था उस वीतरागी ने गुरुकुल और छात्रों का निर्माण। तभी उठी थीं आवाजें कि—

आयेंगे भक्त अरब से कि,
गुरुकुल का ब्रह्मचारी हलचल मचा।

वातावरण में उठती, घूमती, तैरती थीं भक्ति, चरित्र-निर्माण, तप त्याग सेवा और बलिदान की यौवन-पूर्ण तरंगें। उस शान्त-एकान्त, मधुर स्निग्ध, प्रकृति का सुरम्य पालना गुरुकुल, गुरुकुल में देशी-विदेशी कोई भी पहुंचता, अभिभूत होकर लौटता था। जहां "सर्वे भवन्तु सुखिनः, वसुधैव कुटुम्बकम्, यत्र विश्वं भवति एकनीडम्" के मंगलगान से दिशाएं गूंजती थीं। □

उजड़ी हुई बस्ती में

नन्द किशोर आचार्य

सुनहरी मुडेरो पर
बंद गोखो पर
दिशाओं से घूम-घूम कर
लिपटती है रोशनी
सर पटकती है हवा
और छन कर गुजरती
उन खूबसूरत जालियों में से
—जिन में जमी धूल निस्संग रहती
है—
अंधेरे, तंग जीनों के घुमावों पर
ठिठकती हुई फुसफुसाती है।
स्मृतियाँ, गच पर जमी सूखी
हुई बीटें
पत्थरों के जोड़ में से फूट आती
हरी पत्ती मुस्कुराती है।

२

मिट्टी झरती है कच्ची भीतों से
धूल जमी है गोबर से लीपे
आंगन पर
बुझे हुए उपलों वाले टूटे चूल्हे पर
पड़ी हुई खाली हांडी मे
तना हुआ मकड़ी का जाला
कभी धुएं से काले पड़े किवाडों को
खाती दीमक
चूलें उखड़ी हैं
ऊंघ रही यादों से बोझिल हवा
सन्नाटे पर सूनी आंख गड़ी है।

३

नहीं केवल सोने का किला नहीं है यह
धरती की आत्मा मे दबी प्रार्थनाएं
सहस्रदल स्वर्णकमल-सी
खिली हुई थीं खुली अंजुली में
अनन्त को अर्पित
धरती स्वयं प्रार्थना है जिसकी।
पर अब सब से उदासीन
अपने में गुम है
प्रार्थना पथरीली सिसकी में बदल गई
है
और यह उस की ही लय है
अनन्त को आकृति करती हुई।

४

जाने कब से उजडी बस्ती के
सूने खंडहर
(अभी भी लगते हैं घर!)
सूखी-फटी बावडी के
अंधियारे तलधर
के कोने के बिल वाला सांप
इस खडहर से उस खंडहर तक
रेंगता हुआ
अब किसे खोजता फिरता है।

नये वर्ष का यह नया प्रात आया

नये वर्ष का यह नया प्रात आया!

हवा बह रही है मधुर गन्ध वाली
सुख-स्पर्श पा झूमती वृक्ष-डाली
लिये आ रहा हेम-रथ अंशुमाली
विभा की, उठो, दिव्य सौगात लाया!

कमल खिल उठे सौरभीले सजीले
चमक पा गये कोक के नेत्र गीले
मधुप के मुखर हो गये स्वर सुरीले
खुशी की गमों पर विजय साथ लाया!

निशा ने उठा अब लिया है बसेरा
गगन से गया भाग खुद ही अंधेरा
उदासीनता का हुआ छिन्न घेरा
चमन में बहारों की बरसात लाया!

गया वक्त जो छोड़ लेखा गया है
चुनो, दे अगर हास्य-रेखा गया है
पतन-हेतु है द्वेष, देखा गया है
सुनो, वर्ष नूतन नई बात लाया!

उठो, त्याग आलस, बनो धर्म-ज्ञानी
स्वभाषा, स्वभूषा, स्वदेशाभिमानी
न क्या विश्व को वेद-वीणा सुनानी
समय कार्य का सत्र अवदात लाया!

धर्मवीर शास्त्री
बी I/५१ पश्चिम विहार, नई दिल्ली

युवा नेतृत्व का एक वर्ष एवं नई चुनौतियां

१९८५ का वर्ष बीत गया है। १९८६ प्रारम्भ हो चुका है। वस्तुत: ये अंग्रेजों का नया वर्ष कहला सकता है। भारतीय नववर्ष नहीं। नव एवं पुरातन वर्ष की उपलब्धियों तथा दुर्घटनाओं पर अखबारों में काफी लिखा गया है। बीते वर्ष जो भी कुछ हुआ है वह कम भयावह नहीं है। कहीं ट्रांजिस्टर बम कांड, पैन बम कांड हुए, कहीं कनिष्क जैसी दिल दहलाने वाली दर्दनाक दुर्घटना हुई और संत लोंगोवाल, युवा नेता ललित माकन दम्पती, अर्जुनदास आदि नेता एवं अनेक निरीह निर्दोष और निहत्थे लोगों की जान आतंकवाद ने ले ली। इसके अतिरिक्त बाढ़, तूफान एवं प्राकृतिक प्रकोपों के कारण जानमाल की जो क्षति हुई सो अलग। भारत के बाहर इथोपिया में लाखों लोगों को अकाल के गाल ने निगल लिया। मैक्सिको व कोलम्बिया में भूचाल और ज्वालामुखी के फटने से हजारों लोगों को मौत ने लील लिया। बांगलादेश में बाढ़ ने हजारों की जान ले ली। श्रीलंका के उपद्रवों में भारी संख्या में बेगुनाहों को गोलियों का सामना करना पड़ा। कितने ही निर्मम काण्ड और दिल दहलाने वाली घटनायें इस बीते वर्ष में घटीं।

१९८५ का वर्ष श्री राजीव गांधी के प्रधानमन्त्रित्व में बीता वर्ष है। इस काल के ३६५ दिनों का पुनरावलोकन करने पर युवा प्रधानमन्त्री के साहसिक कार्यों एवं क्षमताओं का अच्छा परिचय मिलता है। १९८४ में श्रीमती इन्दिरा गांधी की हत्या के बाद भड़के दंगों से देश की अखण्डता को खतरा पैदा हो गया था। उस उथल-पुथल में राजीव गांधी का प्रशासन की बागडोर सम्भालना और फिर निर्णय लेकर दिसम्बर में चुनाव कराना राजीव गांधी की साहसिक राजनीति के खुलते अध्याय थे। १९८५ की प्रथम तारीख के दिन राजीव गांधी का अपना दिन था। देश उस समय भय और आशंका की स्थिति से गुजर रहा था। उत्तर भारत को आतंकवाद ने अपनी जकड़ में जकड़ लिया था। बम विस्फोटों, दिन दहाड़े हत्याओं, बैंक डकैतियों आदि की वजह से उत्तर भारत की जनता अपने आपको असुरक्षित समझने लगी थी। राजधानी दिल्ली में ट्रांजिस्टर बम काण्ड से अनेकों मासूम बच्चे, बेगुनाह लोगों के चीथड़े उड़े। पंजाब के साथ ही साथ अब देश विरोधी और भारत की अखण्डता की दुश्मन शक्तियां पूरे उत्तर भारत में आतंकवाद की मदद से जोर पकड़ती जा रही थीं। उधर असम में विदेशी लोगों की घुसपैठ को लेकर लम्बे समय से चला आ रहा आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर जा पहुंचा था। यहां भी शायद कोई दिन ऐसा खाली न जाता हो जब बम विस्फोट या हत्या आदि की घटना घटती हो। दक्षिण में तमिल मूल के लोगों पर श्रीलंका की फौज के अत्याचारों से दु:खी तमिलनाडु की जनता भारत सरकार पर आँखें केन्द्रित किये बैठी थी। गुजरात में आरक्षण विरोधी आंदोलन जोरों पर था। रोजाना हिंसक घटनाओं की यहाँ भी वृद्धि हो रही थी। उधर पाकिस्तान हमारे देश की सीमाओं पर हमारे लिए युद्ध का खतरा लिये खड़ा था। पाक द्वारा परमाणु बम प्राप्त करने की खबरें फैल रही थीं। अमेरिका से धड़ाधड़ अत्याधुनिक हथियारों से पाकिस्तान को भारत का मुकाबला करने के लिए लैस किया जा रहा था। भारत की अखण्डता को नष्ट करने वाले तत्व पाकिस्तान की मदद से हमारे यहाँ सिर उठा रहे थे। एक तरह से जिस समय श्री गांधी ने भारत का नेतृत्व संभाला उस समय हमारी अखण्डता सचमुच खतरे में थी और लगता था कि देश अब टूटा कि अब टूटा। लेकिन श्री गांधी ने चुनाव प्रचार के समय ही देश की अखण्डता और एकता को कायम रखने की कसम खाई। श्री राजीव गांधी के इस प्रण पर देश की जनता न्यौछावर हो गई। उन्हें भारतीय लोकतन्त्र के इतिहास में सब से अधिक बहुमत प्रदान किया। हालांकि स्वयं उनको और उनके परिवार को उग्रवादियों से जान का खतरा अब भी बना हुआ है। लेकिन श्री गांधी ने धैर्य और साहस से काम लेते हुए सबसे पहले पंजाब समस्या को खत्म करने के लिए सन्त लोंगोवाल से समझौता करके अपनी तरफ से पंजाब के तीन साल से चले आ रहे खूनी दौर को समाप्त करने का एक अच्छा प्रयास किया। फिर पंजाब में लोकसभा और विधानसभा के चुनाव सम्पन्न कराये गये। बेशक पंजाब में अकाली दल की जीत हुई लेकिन वहां इतने लम्बे अर्से के बाद लोकतन्त्र की बहाली उग्रवाद के मुंह पर एक करारा तमाचा है। फिर असम समझौता करके श्री राजीव गांधी ने छ: वर्ष से चली आ रही असम समस्या के मसले को सुलझाया। गुजरात का आरक्षण विरोधी आन्दोलन भी अब लगभग समाप्त हो गया है। देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए भी श्री राजीव गांधी ने कई सराहनीय कदम उठाये हैं। सातवीं योजना को लागू किये जाने की तैयारियां हो चुकी हैं। भ्रष्टाचार विरोधी कार्रवाई में भी गति आई है। काले धन को निकालने का कार्य भी प्रगति पर है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी श्री गांधी ने सन्तोषजनक कार्य किया है। बहुत से देश भारत के मित्र बन गये हैं और अब भारत अधिक विश्वसनीय बन गया है। मास्को, वाशिंगटन, लन्दन, पेरिस और टोकियो में अपनी यात्राओं के द्वारा श्री राजीव गांधी ने विश्व के उच्च नेताओं के साथ सौहार्द स्थापित किया है। श्री राजीव की मास्को और वाशिंगटन यात्राओं के दौरान उनके द्वारा की गई समयोचित पहल के कारण अफगान मसले के हल हो जाने की सम्भावनायें नजर आने लगी हैं। मास्को ने अपनी सेनायें हटाने के संकेत दिए हैं। वाशिंगटन ने संयुक्त राष्ट्र में अफगानिस्तान को लेकर गारण्टी देने की इच्छा व्यक्त की है। भारत और भारत के भावी विकास के लिए विदेशी मामलों से सम्बन्धित सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है अफगान मसला और पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध। अफगानिस्तान में घटी घटनाओं से न केवल उपमहाद्वीप के लिए सुरक्षा खतरे उत्पन्न हो गये हैं बल्कि इस के फलस्वरूप भारत के प्रवेश द्वार तक शीत युद्ध आ खड़ा हुआ है। पाकिस्तान के कारण भारत को अस्त्रों की होड़ में भाग लेना पड़ रहा है। समस्याओं को सुलझाने के भरपूर प्रयास श्री गांधी ने किये हैं। इसके बाद भी असफलताओं का एक सिलसिला है जिनको सुलझाने के लिए श्री गांधी एवं उनकी सरकार को और अधिक सूझबूझ से चलना होगा। पंजाब में उग्रवाद फिर नये सिरे से उठ खड़ा हुआ है। पंजाब समझौते को क्रियात्मक योग देने को खुद मैथ्यू आयोग दुविधा ग्रस्त है। अब पंजाब के साथ हरियाणा की समस्या उठ खड़ी हुई है। श्री गांधी के लिए चण्डीगढ़, अबोहर, फाजिल्का और सतलुज यमुना लिंक नहर की खुदाई के शुरू कराने का मामला सचमुच कठिन है। असम गण परिषद की सरकार ने १५ लाख विदेशियों की जिम्मेवारी केन्द्र सरकार पर डाल दी है। अब देखना यह है कि श्री गांधी की सरकार विदेशियों के भविष्य का क्या फैसला करती है। गुजरात आन्दोलन पूरी तरह से दबा नहीं है। भारत सरकार को पूरे देश में लागू किये जाने वाली आरक्षण नीति का निर्माण करना होगा। मंहगाई के रोकने का प्रयास असफल सिद्ध हुआ है। क्षेत्रीयता, अलगाववाद, सांप्रदायिकता और आतंकवाद की भावनायें फिर जोर पकड़ रही हैं। जब तक इनका बीज नाश नहीं किया जाता तब तक खुशहाली हम से दूर है। राष्ट्रीय एकता की दीवारों को मजबूत करना अत्यावश्यक है। राजनीति का खेल सरल और सहज नहीं है। इसे श्वेत-श्याम की निश्चित वर्ण व्यवस्थाओं में भी नहीं बांटा जा सकता। सम्भावनाओं और आशंकाओं के इसी चक्रव्यूह में से घटनाओं और दुर्घटनाओं का वर्णाक्रम उभरता रहता है जिसे जांचने और भापने की कला और क्षमता पर ही राजनीतिज्ञों और उनके सलाहकारों की सफलता निर्भर करती है। अब देखना यह है कि राजनैतिक सलाहकार भावी योजनाओं का प्रारूप तैयार कर उसे लागू करा सकने में कितने सक्षम होते हैं और इस वर्ष की क्या नूतन उपलब्धियां दे सकने में समर्थ होते हैं।

—यशपाल सुधांशु

एक मधुर स्मृति

श्री सुरेन्द्र कुमार जी शास्त्री

य: जातो येन जातेन,
याति वंश समुन्नतिम्।
परिवर्तिनि ससारे,
मृत: को वा न जायते ॥

इस परिवर्तनशील समार में कोई भी सृष्टि के नियम से दूर नहीं। जो जन्म लेता है वह मरता भी है। लेकिन कुछ विभूतियां ऐसी होती हैं जो मरकर भी अमर रहती हैं। ऐसी ही एक विभूति हैं-श्री सुरेन्द्र कुमार जी शास्त्री।

आपका जन्म सन् १९१९ में जिला अलीगढ के रुखाला नामक ग्राम में हुआ। आपके पिता जी का नाम काशीनाथ जी था जो बाद में स्वामी सदानद जी के नाम से विख्यात हुये। तीन वर्ष की आयु मे ही आपकी माताजी स्वर्गवासी हो गयी। अत. दादा-दादी ने ही आपका लालन पालन किया। आपने गांव छर्रा के ही मिडिल विद्यालय से आठवी कक्षा उत्तीर्ण की। तदनन्तर आप दिल्ली आये तथा दिल्ली में यमुना तट के निकट स्थित 'दयानद वेद विद्यालय' (जो अब गौतम नगर में है) में चौदह वर्ष तक सस्कृत-अध्ययन किया। विद्यालय में अपने गुरु आचार्य राजेन्द्र नाथ जी (सच्चिदानद जी) से अपार स्नेह एवं शिक्षा प्राप्त की। यहीं से आपने व्याकरणाचार्य किया। गुरु जी ने आपको न केवल सस्कृत ज्ञान दिया अपितु आपके जीवन को ही सस्कृत-मय बना दिया, जिसके परिणाम स्वरूप आपके हर क्रिया कलाप में सुसंस्कृत होने की छाप परिलक्षित होने लगी। धारा प्रवाह सस्कृत संभाषण तो आपकी एक सामान्य विशेषता थी। 'सादा जीवन उच्च विचार', 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावनाये आपके रोम-रोम मे समाई हुई थी। बचपन से ही संस्कृत भाषा, आर्यसमाज, वेदादि के प्रति विशेष रुचि तो आपको अपने पिता जी एवं दादा जी से मानो विरासत में मिली थी क्योंकि आपकी माताजी की मृत्यु के उपरान्त पिता जी ने भी अपना जीवन आर्य समाज के लिये ही समर्पित कर दिया था।

सन १९४७ में आपने अपने गुरु जी द्वारा संस्थापित गुरुकुल 'छोटे खेड़े' में सर्व प्रथम आचार्य पद पर कार्य किया। यहीं रहते हुये आपका विवाह सुधाकुमारी से हुआ। विवाह उपरान्त आपने अपनी अल्पशिक्षित पत्नी को अत्यन्त मेहनत और लगन से उच्च शिक्षा प्रदान करायी तथा उन्हें आर्यसमाज एवं वैदिक धर्म की ओर उन्मुख किया। परिणामतः वह भी आर्यसमाज के नियमों के प्रति पूर्ण आस्थावान है तथा संप्रति स्त्री आर्य-समाज दीवान हाल के मंत्राणी पद को सुशोभित कर रही है। कालांतर में आपको दो पुत्र एवं चार पुत्रियों की प्राप्ति हुई जो सभी शिक्षित एवं वैदिक धर्मानुयायी हैं।

आपने समय-समय पर गुरुकुल टटेसर, गुरुकुल गदपुरी में अध्यापन कार्य किया। अपने अध्यापन काल में ही आपने शास्त्री व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य, साहित्यरत्नादि परीक्षाएं उत्तीर्ण की। गुरुकुल गदपुरी के उपरान्त आपने राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय नांगलोई, कुतुब रोड, सरोजिनी नगर, किदवई नगर आदि विद्यालयों में अध्यापन कार्य किया। अप्रेल १९८१ मे अध्यापन कार्य से सेवा निवृत्त होकर आपने अपना सम्पूर्ण जीवन आर्य-समाज के कार्यों, वेदादि अध्ययन-अध्यापन में लगाना प्रारंभ कर दिया। आपने आर्यसमाज के प्रचार के लिये विभिन्न स्थानों पर समय-२ व्याख्यान दिये।

आपने समय-२ पर अनेक प्रभाव शाली लेख, निबंध इत्यादि प्रकाशित करवाये। संस्कृत प्रचार के लिये भरसक प्रयत्न किये। अपनी पुत्री श्रीमति शशि बाला द्वारा लिखित लघु शोध प्रबन्ध—'अष्टाध्यायी में विकल्प' में आपका अपूर्व योगदान रहा। आप दिल्ली राज्य विश्व संस्कृत परिषद, आर्यसमाज दीवान हाल के सदस्य व अधिकारी रहे और साथ ही पुस्तकाध्यक्ष का भी कार्यभार सँभाला। सभी पदों पर आपने बड़ी ईमानदारी, लगन व तन्मयता से कार्य किया।

आपको आर्यसमाज की निंदा कदापि सह्य नहीं थी। वैदिक धर्म में उनकी पूर्ण आस्था थी। वैदिक यज्ञ के प्रति उनका प्रगाढ़ स्नेह था। वे हमेशा यज्ञ में तथा साप्ताहिक सत्संगों में बढ़चढ़ कर भाग लेते थे। यज्ञ की महिमा इनके शब्दों में 'यज्ञ-गीत' के रूप में इस प्रकार है—

यज्ञ जीवन का हमारा,
श्रेष्ठ सुन्दर कर्म है
यज्ञ करना कराना,
आर्यों का धर्म है।
यज्ञ से होवे सुगन्धित,
विश्व का वातारण
यज्ञ से सद्ज्ञान होवे,
हो यज्ञ से शुभ आचरण।
यज्ञ से हो स्वस्थ काया,
व्याधियां बहु नष्ट हों
यज्ञ से सुख सम्पदा हो,
दूर सारे कष्ट हों।
यज्ञ से दुष्काल मिटते,
यज्ञ से जल वृष्टि हो
यज्ञ से धनधान्य होवे,
बहु भांति सुख की सृष्टि हो।
यज्ञ है प्रिय मोक्षदाता,
यज्ञ शक्ति अनूप है
यज्ञमय सब विश्व है,
विश्वेश यज्ञ स्वरूप है।

स्वामी दयानद जी के वचन एवं सिद्धान्त आपके लिये सर्वमान्य थे। यही कारण है कि अस्वस्थ होते हुये भी आपने 'वेदार्थ कल्पद्रुम'— श्रीयुत स्वामी करपात्रीकृत दयानंदीयमत खंडन खंडक : का सपादन किया। अत्यन्त अस्वस्थ होने पर भी 'आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४५५ खारी बावली द्वारा प्रकाशित 'योगदर्शन' के द्वितीय संस्करण का संपादन कार्य संभाला।

आपके परोपकार, दृढ़ निश्चय, कर्मठता, नियमितता सादगी को तो कदापि बिसराया नहीं जा सकता। उनके विषय में जो लिखा जाये, स्वल्प ही है।

आर्यसमाज की दीप्ति को प्रदीप्त करने वाली यह ज्योति १८ दिसंबर १९८५ रात्रि १ बजकर ३० मिनट पर सदा-सदा के लिये उस महान ज्योति में विलीन हो गयी। अंत में उनके द्वारा लिखित उनकी "अंतिम अभिलाषा" हमारे लिये अविस्मरणीय है—

जगदीश है ये विनती,
जब प्राण निकलें मेरे
प्रिय ओं ओं जपते,
ये प्राण निकलें मेरे।
वैदिक ऋचाएं पढ़ते,
शुचि यज्ञ होम करते।
सर्वेश को सुमरते,
ये प्राण निकलें मेरे ॥
भाई हैं जो हमारे,
आपत्तियों के मारे।
उनके दु:खों को हरते,
ये प्राण निकलें मेरे ॥
भारत की शान रखते,
राष्ट्रीय गान करते।
जय-जय स्वदेश कहते,'
ये प्राण निकलें मेरे ॥
कोई न अंग मेरा,
जीवन में भग होवे।
स्वस्थांग कार्य करते,
ये प्राण निकलें मेरे ॥

वह चले गये तथा जाने से पूर्व उनकी लेखनी 'जाने वाले की पुकार' के रूप में उद्घोषित हुई...

मोह मेरा तज दीजिये,
माटी हुआ शरीर।
मैं बन्धन से मुक्त हूँ,
आप तो धरिये धीर ॥
नव शरीर मैं पाऊगा,
बाधों तुम अब धीर।

□

श्री स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती अस्वस्थ

आर्य सिद्धान्तों के सजग प्रहरी व अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकों के लेखक एवं प्रकाशक, निर्भीक स्पष्ट वक्ता, ऋषि दयानन्द के ईमानदार कर्मठ सिपाही जो २५ वर्षों तक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक रहे एवं अपने जीवन के लगभग ६५ वर्ष वैदिक धर्म के प्रचार में व्यतीत किये, वे श्री पूर्णचन्द्र शास्त्री (वर्तमान में श्री स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती) आर्य-समाज की नींव के पत्थर बन कर रहे हैं। निजाम के विरुद्ध हैदराबाद सत्याग्रह के सत्याग्रही व प्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी रहे हैं। ८६ वर्षीय वयोवृद्ध संन्यासी गत कुछ समय से अति रुग्णावस्था में चल रहे हैं।

प्रभु से हम उनके स्वास्थ्य की याचना करते हैं।

प० रामकुमार आर्य एवं साथी
आर्यसमाज बड़ा बाजार
पानीपत

क्या सत्यार्थप्रकाश को ताम्रपत्र पर अंकित करना दुर्घटना है ?

डा० भवानीलाल भारतीय

★

आचार्य विश्वश्रवा जी का एक लेख आर्यसन्देश के ८ दिसम्बर के अंक में प्रकाशित हुआ है जिसमें उन्होंने सत्यार्थप्रकाश के ताम्रपत्रों पर अकन को दुर्घटना कहा है। इस प्रसग में निम्न निवेदन है—

जहां तक मेरी जानकारी है डा० रघुवीर ने स्वामी जी के अष्टाध्यायी भाष्य के कुछ अंश का ही सम्पादन किया था। परोपकारिणी सभा के इतिहास पृ० ४६ पर स्पष्ट अंकित है कि महात्मा हसराज जी की प्रेरणा से अष्टाध्यायी भाष्य के शोधन का कार्य सभा ने डा० रघुवीर को सौंपा और उनके द्वारा सम्पादित अष्टाध्यायी भाष्य भाग-१ (अध्याय १/४/६० पर्यन्त) सम्पादक डा० रघुवीर के नाम से अंकित १९२७ ई० में प्रकाशित हुआ। यह लिखना भ्रामक है कि डा० रघुवीर को महर्षि के अन्य ग्रन्थों (अष्टाध्यायी भाष्य से भिन्न) के सम्पादनार्थ परोपकारिणी सभा ने नियुक्त किया था और जिस अष्टाध्यायी भाष्य का उन्होंने संशोधन-सम्पादन किया, उस पर सभा ने उन का नाम प्रकाशित किया है।

अब दूसरा प्रश्न यह है कि क्या सत्यार्थप्रकाश अथवा महर्षि की किसी अन्य कृति के आरम्भ में कोई भूमिका, परिचयात्मक टिप्पणी तथा ग्रथ से सम्बन्धित विवेचनात्मक प्राक्कथन या ग्रन्थान्त मे परिशिष्ट आदि देना पाप है? मेरे विचार से ऐसा नहीं है। स्वामी दयानन्द न ऐसा आदेश कहीं नहीं दिया। प्रत्येक कालजयी ग्रंथ का यदि वैज्ञानिक रीति से सम्पादन कर उसका कोई परिष्कृत सस्करण प्रकाशित किया जाता है तो उसके आरम्भ में सम्पादकीय वक्तव्य तथा ग्रथान्त में उपयोगी अनुक्रमणिकाएँ आदि देना कोई अपराध नहीं है। सत्यार्थप्रकाश के विभिन्न सस्करणों के सम्पादकों ने अपने-अपने सम्पादित संस्करणों के आरम्भ में अपनी भूमिकाएं लिखी हैं, उन से पाठकों के एतद् विषयक ज्ञान की वृद्धि ही हुई है। प० भगवद्दत्त, प० जयदेव शर्मा विद्यालंकार, प० जगदेवसिंह शास्त्री, पं० युधिष्ठिर मीमांसक तथा स्वामी वेदानन्द तीर्थ द्वारा सम्पादित संस्करणों की सम्पादकीय भूमिकाओं पर आज तक किसी ने आ त्ति नहीं की तो ताम्रपत्र में अंकित सत्यार्थप्रकाश की श्री विरजानन्द लिखित सम्पादकीय टिप्पणी पर आपत्ति करने का क्या औचित्य है। ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त नामांकित सत्यार्थप्रकाश के सम्पादक आर्यसमाज के मान्य विद्वान् हैं और उन्होंने अपने सम्पादकीय दायित्वों को निभा कर सत्यार्थप्रकाश के गौरव मे वृद्धि ही की है। यदि प्राक्कथन लिखने का अधिकार आप सम्पादक को नहीं देते तो ग्रन्थान्त मे उद्धृत वचनों की सूची तथा अन्यान्य परिशिष्ट देने का अधिकार आप भला सम्पादक को कब देंगे? किन्तु यह बात एक सामान्य पाठक भी जानता है कि सन्दर्भों को ढूँढने के लिए इन अनुक्रमणियों की कितना उपयोगिता है? स्वामी दयानन्द ने तो सत्यार्थप्रकाश में यथावश्यकता पाद टिप्पणियां देने का अधिकार अपने विश्वस्त यन्त्रालय प्रबन्धक मुन्शी समर्थदान को भी दे दिया था। क्या प० भगवद्दत्त, स्वामी वेदानन्द तीर्थ तथा पं० युधिष्ठिर का पाण्डित्य एवं उनकी शास्त्र-पारदर्शिता मुन्शी समर्थदान से भी न्यून है।

सत्यार्थप्रकाश के किसी भी संस्करण में त्रुटियाँ रह जाना असंभव नहीं है। कोई भी प्रकाशक, यहां तक कि परोपकारिणी सभा भी यह दावा नहीं करती कि उसके द्वारा प्रकाशित संस्करण सर्वाङ्गीण तथा सर्वशुद्ध है। अत: ताम्रपत्र अंकित संस्करण मे भी अनवधानतावश अशुद्धियां रही हो तो उन पर वितण्डा करना उचित नहीं है। आचार्य विश्वश्रवा जी के कथनानुसार महात्मा अमर स्वामी जी इन अशुद्धियों की सूची बना रहे हैं। हमें प्रतीक्षा रहेगी कि महात्मा जी इन अशुद्धियों को परोपकारिणी सभा को यथाशीघ्र भेजें। परन्तु सत्यार्थप्रकाश के शुद्ध सस्करण को लेकर हल्ला मचाने वालों से मैं एक बात पूछना चाहता हूँ। कि क्या इन सौ वर्षों की सुदीर्घ अवधि में वे किसी भी सभा या संस्था द्वारा प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश के संस्करण को सर्वांश में शुद्ध या मूल पाण्डुलिपियों के आधार पर प्रकाशित कह सकते हैं? इसका यह अर्थ नहीं कि ऐसा सर्वमान्य, सर्वशुद्ध सस्करण प्रकाशित किये जाने की आवश्यकता भी नहीं है। परन्तु यह कार्य तभी सम्भव है जब कि परोपकारिणी सभा (जिसे महर्षि ने अपने ग्रन्थों के प्रकाशित करने के अधिकार दिये थे) आर्यसमाज के एक सर्वोच्च विद्वन्मण्डल का गठन करे, उसे सत्यार्थप्रकाश के सभी विद्यमान हस्तलेख उपलब्ध कराये, ये सभी विद्वान् महीनों तक एक साथ बैठकर गम्भीर विचार विमर्श के पश्चात् इस का सर्वशुद्ध पाठ स्थिर करे, तत यही पाठ सत्यार्थप्रकाश के म (Standard) सस्करण के प रूप में सर्वत्र स्वीकृत एव प्रका हो। परन्तु यह तो भविष्य की है। जब तक ऐसा नहीं हो जाता तक सत्यार्थप्रकाश के किसी ए सस्करण पर अभिशाप वृष्टि व बुद्धिमत्ता नहीं कहा जा सकत ताम्रपत्रों पर अंकित सत्यार्थप्र की उपयोगिता पर कोई सहमत या न हो, इस योजना के पीछे दृष्टि है, उसे दोषपूर्ण नहीं ठह जा सकता। जब ताम्रपत्रों पर ि ग्रथ का अकन दोषपूर्ण नहीं है तो योजना की पूर्ति हेतु दान देने व के यदि नाम भी वहां लिखे जाद इसमे क्या अनुचित है? क्या सत प्रकाश के प्रथम सस्करण के प्रका राजा जयकृष्णदास का नाम तथा की मुद्रा इस संस्करण की प्रत्येक पर अंकित नहीं थी? ऐसा लगत कि स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों लेकर एक नये प्रकार के रूढिवाद सायास प्रचारित किया जा रहा है

ताम्रपत्र पर सत्यार्थप्रकाश एक ऐतिहासिक कार्य

हरियाणा के प्रसिद्ध सन्यासी स्वामी ओमानन्द जी महाराज अपने साहसिक कार्यों से सदा प्रसिद्ध रहे हैं। चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तकों के लेखन के साथ अनेक वैदिक विद्वानों की अनूठी पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य वे करते रहे हैं। कन्या गुरुकुल और ब्रह्मचारी गुरुकुल के सस्थापक एव सचालक के रूप में वे भारत भर में जाने जाते हैं। श्री स्वामी जी की इतिहास में बड़ी रुचि रही है। "हरियाणा के वीर यौधेय" आदि अनेक ऐतिहासिक पुस्तकें इतिहासकारों ने सराही ने सराही हैं। अपनी इसी रुचि के अनुसार उन्होंने एक संग्रहालय भी झज्जर में लाखों रुपयों की लागत से स्थापित किया है। जो आर्यसमाज के क्षेत्र में किया गया गौरवपूर्ण कार्य है।

इतिहासविज्ञ और पुरातत्व अन्वेषी होने के कारण ही उन्होंने ऋषि दयानन्द की अमर कृति सत्यार्थप्रकाश को ताम्रपत्रों पर अंकित कराने का जोखिम भरा, अत्यधिक खर्चीला कार्य किया है। लेकिन इस व्यय की अपेक्षा यह कार्य शताब्दियों तक स्मरण किया जा सकने वाला महानतम कार्य है। गुरुवर ऋषि दयानन्द के प्रति प्रिय शिष्य की यह सच्ची श्रद्धाञ्जलि है। हमे स्वामी ओमानन्द का ऋणी होना चाहिए जिन्होंने अवस्था मे भी यह दुस्तर कार्य कि है। सत्यार्थप्रकाश के अकन मे अ द्धियों का रह जाना स्वाभाविक फिर भी विद्वानों को चाहिए देखक त्रुटियां सुझायें। इसे विवाद विषय नहीं बनाना चाहिए।

निवेदक
बलजीत शास्त्री
आर्यसमाज कालकाजी नई दिल

आदर्श नगर में बृहद् यज्ञ एवं प्रवचन

आर्य आदर्श विद्यालय आद नगर की तीसरी वर्षगाठ के उपलक्ष में एक सात दिवसीय यज्ञ एवं प्रवच का कार्यक्रम आयोजित किया गया ५ जनवरी को एक विशाल उत्सव व आयोजन हुआ जिसमे श्री प्रमचन श्रीधर, श्री जैमिनी शास्त्री, डा धर्मपाल, श्री कुलानन्द भारती श्री महेन्द्र सिंह आदि महानुभावों अपने विचार व्यक्त किये। श्री सत देव जतोई वालों के मधुर भजनों व जनता ने खूब आनन्द लिया।

निजी सवाददाता

उपनिषत् कथा-माला–१९

यज्ञ-प्रसाद

लेखक—महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

एक समय की बात है। याज्ञ-य ऋषि महाराज जनक के पास हुए थे। राजा ने पूछा, 'भगवन्! का लौकिक लाभ साक्षात् नजर ाता है। इससे जलवायु वनस्पति ादि पवित्र और रोग रहित होते औषधि, अन्न तथा वृक्ष-लता-ों को शक्ति मिलती है, हानि-रक कीटाणुओं का नाश होता है, पारलौकिक लाभ क्या होता है, मेरी समझ मे नही आता है। श्वर! मेरी यह शंका कृपा कर ारण करें।'

मुनि याज्ञवल्क्य ने जनक महा-ज को उत्तर दिया–राजन्! हवन-: की पावन अग्नि में जो आहुतियां जाती हैं, अग्नि उनके दो रूप ा देती है। पहला—हवनकुंड मे त्त समूची सामग्री, घृत, समिधा ादि को सूक्ष्म रूप देकर समस्त युमण्डल मे फैला देती है। दूसरा–रूप है जो आहुति देने वालों और वेदी पर उपस्थित व्यक्तियों के दय पटल पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप प्रविष्ट कर जाता है। श्रद्धा, मेन और तन्मयता से दी गयी हुतियां सबके हृदय मन्दिर में, पचाप और स्वतः प्रवेश पाती जाती । इससे मन के कलुषित विचारों ा निष्कामता और पुनीत भावनाओं ा उद्भव होना प्रारम्भ हो जाता ।

इसीलिए शास्त्रकार ब्रह्मचारी, हस्थी और वानप्रस्थी के लिए दैनिक ज्ञ का आदेश देते हैं। सन्यासी से मुक्त कर दिया गया है क्योंकि ह तुरीय आश्रम मे प्रविष्ट हो वह र्वतोभावेन अपने को ब्रह्माग्नि मे र्पित कर देता है।

श्रद्धा, प्रेम और भक्ति से प्रदत्त हुतियां धर्म का रूप धारण कर ती है। अन्तकाल मे जब सूक्ष्म शरीर साथ आत्मा अपने कर्मानुसार इस ौतिक देह को छोड़ता है तो धार्मिक रूप बनी हुई ये आहुतियां सूक्ष्म रीर को अपने में आविष्ट कर लेती । सूक्ष्म शरीर के साथ जब आत्मा स संसार से प्रस्थान करता है, तब ौन है जो इसकी सहायता के लिए अग्रसर होता है। मनु भगवान् के शब्दों मे–

> नामुत्र सहायार्थं पिता
> माता च तिष्ठतः ॥
> न पुत्रदारा न ज्ञातिः
> धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥
> एकः प्रजायते जन्तुरेक
> एव प्रलीयते ।
> एकोऽनुभंक्ते सुकृतमेक
> एव च दुष्कृतम् ॥
> मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठ-
> लोष्ठसम क्षितौ ।
> विमुखा बान्धवा यान्ति
> धर्मस्तमनुगच्छति ॥
> (४/२३९-२४१)

अन्यत्र भी कहा है–

> द्रव्याणि भूमौ पशवश्च गोष्ठे
> नारी गृहद्वारि जनाः श्मशाने ।
> देहश्चितायां परलोकमार्गे
> धर्मानुगो गच्छति जीव एकः ॥

अर्थ–अन्तकाल आने पर धन भूमि पर, पशु इत्यादि अपने बाड़े मे, पत्नी घर के द्वार तक और अन्य लोग श्मशान भूमि तक और देह चिता पर–ये सब इस प्रकार रह जाते हैं। परलोक मे केवल धर्म ही साथ जाता है। वहां पर सहायता के लिये माता पिता, पुत्र, पत्नी कोई नहीं जाता, केवल धर्म ही साथ देता है। प्राणी अकेला ही संसार में आता और अकेला ही यहाँ से जाता है। अपने अच्छे और बुरे कर्मों का अकेला ही फल भोगता है। सूखी लकड़ी व मिट्टी के ढेले, के समान मृत शरीर को छोड़कर सब बन्धु-बान्धव चले जाते हैं, केवल धर्म ही साथ देता है।

यज्ञ हमें निरन्तर शिक्षा देता है कि इसमें डाली हुई प्रत्येक आहुति सामग्री, घी, समिधा, मिष्ठान्न इत्यादि के रूप में–अग्नि मे भस्म हो जाती है, केवल सुगन्धि और आकाश में उड़ता यज्ञ धूम ही शेष रह जाता है। इसी प्रकार, इस विश्वव्यापी महान् यज्ञशाला मे हम सबके ये स्थूल और भौतिक शरीर आहुति के सदृश हैं। काल की प्रचंड अग्नि इन्हें निरन्तर भस्म कर रही है। इससे कोई बच नहीं सकता। यदि हमने जीवन में श्रेष्ठ कर्म किये हैं, धर्म का पालन किया है, तब तो हमारी आत्मा अन्त काल मे अपने में आनन्द रूपी सुगन्धि लेता जाएगा, और यदि हमने सारा जीवन पाप और भोग-विलास में विनष्ट किया है, तो इसके भीतर क्लेश की दुर्गन्धि के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं रहेगा। इसलिए मानव को प्रतिक्षण अपना जीवन यज्ञ मय बनाना चाहिए और मृत्यु का सदा स्मरण रखना चाहिए पता नहीं किस क्षण, किस घड़ी और कहां मृत्यु हमारा गला दबोच ले। तनिक भी प्रमाद और अभिमान हमें शोक सागर में गिरा देगा। एक घटना याद आ गई।

रावलपिंडी से कश्मीर जाने के लिए उस समय मोटरें नहीं चली थी। तांगे ही जाते थे। एक सेठ ने तांगे वाले से कहा "क्यों भाई, कश्मीर जाना है, कितना किराया लोगे?"

तांगे वाले ने देखा धनी पुरुष है, इससे फायदा उठाना चाहिये। बोला—सेठ जी, किराया क्या देना है, तांगे और घोड़े का जो खर्च आयेगा, वह दे देना। घोड़े को चारा दिलवा देना और आवश्यकता पड़े तो तांगे की मरम्मत करा देना।

सेठ ने दिल में सोचा, यह सस्ता सौदा है। बोला "ठीक है, चलो।"

सेठ बैठ गया। तांगा चला, पहला पड़ाव आया, कोहमरी। तांगे वाले ने कहा—"सेठजी! आप रईस और प्रतिष्ठित पुरुष हैं। तांगे की गद्दियां पुरानी हो गयी है। आपकी शान के लायक नहीं है। यदि आप कहें तो इस पड़ाव पर दो दिन रुक कर गद्दियां बदला लें।"

सेठ ने कहा–अवश्य बदलवा लो, और रुपये दे दिये। फिर तांगे का रोगन खराब लगने लगा। तांगे वाले ने नया रोगन कराने के लिये कहा। सेठ ने रुपये दे दिये और नया रोगन होने लगा। दो दिन की जगह १०-१२ दिन लग गये क्योंकि आकाश में बादल आने के कारण रंग-रोगन सूखता नहीं था।

अन्य यात्री लोग सेठ की इस मन्द बुद्धि पर हँस रहे थे।

कुछ दिन बाद रंग-रोगन सूख गया। अगले दिन प्रातः यात्रा करना निश्चित हुआ। रात को तूफान आ गया। रंग-रोगन सब उड़ गया और तांगा एकदम खराब हो गया। अब फिर रंग-रोगन होने लगा। तांगे वाले ने कहा—सेठजी, यह पहाड़ी इलाका है। बार-बार तूफान वर्षा होती है। अगर तांगा और घोड़े के लिये कोई मकान हो तो रंग-रोगन खराब नहीं होगा और फिर श्रीनगर की यात्रा भली-भांति हो सकेगी।

सेठ ने कहा—"अवश्य, मकान बनवा लो। अब मकान बन गया। किसी ने सेठ से कहा—कि झगड़े में फंस गये? श्रीनगर अभी दूर है। ऊपर से सर्दी का मौसम आ रहा है। बर्फ पड़ने से सारे रास्ते रुक जायेंगे।"

सेठ ने कहा—आप ठीक कहते हैं पर पहले तांगा तो बन जाए।

मकान बनते कई दिन लग गये। अब बढ़िया रंग-रोगन से सजा तांगा श्रीनगर को चला। पर रास्ते में ही भयंकर हिमपात हो गया। सारे जंगल और पहाड़ हिम से भर गये। अब सेठजी न आगे जा सके और न पीछे मुड़ सके। माथा पकड़कर वहीं बैठ गये।

सेठ ने जो भूल की, वही हम कर रहे हैं। तुम्हारा यह शरीर किराये का तांगा है। पर तुम्हें यह यात्रा के लिए ही मिला है। अगर तुम सारी आयु इसके रंग-रोगन से सजाने में ही लगे रहोगे, तो, याद रखो, आयु का हिमपात किसी भी दिन हो जाएगा और तेरा मार्ग बन्द हो जाएगा। इसलिए सचेत हो जा, यज्ञ रूपी दिव्य-शक्ति का सहारा ले और सतत अपने यात्रा मार्ग पर बढ़ता चल! यज्ञ की पुनीत ज्वालाएँ तुझे शिक्षा दे रही हैं:—

> भरमते भरमते देह-रथ,
> हुआ है चकनाचूर।

यज्ञ-प्रसाद

प्रीतम नगरी जीव रे,
अभी बड़ी है दूर॥

यज्ञ ही वह साधन है जिससे इस [illegible]त्रा में उत्साह और शक्ति प्राप्त [illegible]ती है, कष्ट सहने की योग्यता [illegible]प्त होती है। यज्ञ की दीक्षा से [illegible]ही दक्षिणा रूपी आनन्द आत्म बल [illegible]रूप में हृदय में संगृहीत होता है।

(१) समन्वय

यज्ञ के सम्बन्ध में यदि हम [illegible]त्विक दृष्टि से विचार करें तो [illegible]ता चलेगा कि इस विश्व में तीन [illegible]यम मुख्यत: कार्य करते हैं, सम[illegible]य, सन्तुलन और सगठन। समन्वय [illegible] अभिप्राय है, सामजस्य, सहयोग, [illegible]ह प्रस्तित्व। विश्व का प्रत्येक पदार्थ [illegible]सरे के साथ यथोचित, सतत और [illegible]म्पूर्ण रूप से सम्बद्ध है। विश्व में [illेgible]से भी अनेक पदार्थ हैं, जड़ व [illegible]तन—जो स्वभावत: एक दूसरे के [illegible]तिकूल हैं, फिर भी वे परस्पर अटूट [illegible]प से ग्रथित है। जैसे, सूर्य और [illegible]न्द्रमा, स्वरूप और कार्य की दृष्टि [illegible], एकदम विपरीत प्रभाव पैदा करने [illegible]ले हैं। सूर्य प्रबल उष्णता और [illegible]काश का अजस्र स्रोत है। इसके [illegible]कदम प्रतिकूल चन्द्रमा शीतल और [illegible]ांशिक रूप मे इस भूतल पर अपनी [illegible]रणों से जो चांदनी छिटकाता है, [illegible]ह भी उष्णता रहित है। पर दोनो [illegible] समन्वय है, सामंजस्य है, सहयोग और निरवधि काल से दोनों में [illegible]ह-अस्तित्व है। प्रभु के इस विश्व[illegible]ापी समन्वय का जो हृदय मे दर्शन [illegible]रते हैं, साधक कबीर के निम्न [illegible]ब्दों में उनके हृदय में अन्य कोई [illegible]मिलाप नहीं रहती—

[illegible]बिरा कूप रेखहु,
[illegible]ब तो दई न जाय।
[illegible]न प्रियतम रमि रहा,
दूजा कहाँ समाय॥

(२) संतुलन

सृष्टि का दूसरा व्यापक नियम [illegible]न्तुलन का है। प्रकृति में कोई भी [illegible]स्तु जड़ व चेतन, अनाप-शनाप और [illegible]ढंग से बढ नही सकती है। मनुष्य [illegible]ब अपने मिथ्या अभिमान में आकर [illegible]स व्यवस्था को बिगाड़ता है तो [illegible]कृति, ईश्वरीय व्यवस्था के अधीन, [illegible]किसी न किसी संकट द्वारा, जैसे [illegible]काल, बाढ़, दावानल, रोग, युद्ध [illegible]त्यादि पुन: सन्तुलन स्थापित कर [illegible]ती है। मानव हाथ में बन्दूक पकड़ [illegible]र जब जंगल में सिहों को अन्धाधुन्ध मारने लगता है, तब परिणाम यह होता है कि हाथी और मृग सदृश कृषि नाशक पशुओं की वृद्धि हो जाती है। जब मृगों का शिकार बढ जाएगा, तब सिंह गौ-भैंसे आदि दूध देने वाले पशुओं व मनुष्यों को मारने लगेगा। इस प्रकार प्रकृति का सन्तुलन का नियम अपना काम निरन्तर करता रहता है। मनुष्य का यह अभिमान ही विश्व में सन्तुलन का नाशक है। संसार में अनेक दु:ख मानव के इस मिथ्या अभिमान के फलस्वरूप ही है। सन्त कबीर ठीक ही कहते हैं—

कबिरा गरब न कीजिए,
ऊँचा देख अवास।
काल्ह परो भुईं लेटना,
ऊपर जमसी घास॥

(३) सगठन

प्रकृति का तीसरा नियम सगठन का है। एक पौधे व वृक्ष को देखें। भूमि के नीचे छिपी जड से लेकर ऊपर की शाखा तक प्रत्येक पत्ता, डठल, तना, अर्ध-विकसित व पूर्ण-विकसित फूल, कच्चा व पक्का फल—प्रत्येक दूसरे के साथ संगठित रूप में आबद्ध है। मानव शरीर को ही लें। आकाश में ऊँचे खडे सिर और भूमि के साथ निरन्तर स्पर्श करने वाले पैर···दोनों के बीच प्रत्येक अंग का दूसरे के साथ अविभाज्य संगठन है। इसी संगठन पर शरीर की सब बाह्य व आभ्यन्तरिक चेष्टाएँ व क्रियाएँ चौबीसों घण्टे अपना-अपना कार्य करता है।

सूत्र और सूत्रधार

विश्व के ये तीन मूलभूत नियम एक महती शक्ति द्वारा आपस मे अटूट आबद्ध हैं और प्रतिक्षण एक साथ कार्य कर रहे हैं। वेद के निम्न मन्त्र में इन तीनों नियमों के लिए एक शब्द "सूत्र" कहा गया है और इनके संचालक को "सूत्र का सूत्र" (सूत्रधार) निर्दिष्ट किया गया है···

यो विद्यात् सूत्रं विततं,
यस्मिन्नोता: प्रजा इमा:।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात्,
स विद्याद् ब्राह्मण महत्॥

अथर्व १०।८।३७

यह सकल विश्व जिसमें ओत-प्रोत है, उस विस्तृत सूत्र को जो जानता है और जो इस सूत्र के सूत्र को जानता है, वही पुरुष उस महान् ब्रह्म को जानता है। इस सूत्र को जानने वाला और उस पर दृढ़ आस्था रखने वाला बड़ी से बड़ी विपदा में भी प्रसन्न और निश्चिन्त रहता है। महर्षि दयानन्द की मृत्यु का अन्तिम दृश्य इस का अनोखा और देदीप्यमान उदाहरण है।

महर्षि को १४ बार विष दिया गया था। अन्तिम बार का विष जोधपुर मे उनके रसोइये जगन्नाथ ब्राह्मण ने जोधपुर राजा की प्रिय वेश्या नन्हीजान और दरबार के एक मुसलमान डाक्टर के गुप्त षड्यन्त्र के फलस्वरूप दिया था। अपने रसोइये को तो इस दयावान् ऋषि ने अपने पास से १०० रु० देकर भाग जाने के लिए कहा ताकि उसकी जान बच सके।

जोधपुर से स्वामी जी को आबू पर्वत और वहा से अजमेर लाया गया। विष अत्यन्त घातक था। किसी भी इलाज से लाभ नही हो रहा था। इसके विपरीत रोग लगातार बढ रहा था। पेचिश, ज्वर के अतिरिक्त विष के कारण सारे शरीर में फफोले हो गये थे जो अत्यन्त पीडा दे रहे थे।

अन्त समय सास रुक-रुक कर चल रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि स्वामी जी प्राणायाम के द्वारा सांस को रोक कर और ईश्वर का ध्यान करके चला रहे थे। अपने पलग पर समाधिस्थ होकर बैठ गये। यद्यपि सारे शरीर में तीव्र पीड़ा थी, फिर भी मुख से एक बार भी आह नहीं निकली। चारो ओर भक्तजन उदास और आंखों में आंसू भरे खड़े थे। महर्षि ने मुस्कराते हुए पूछा कि "आज कौन-सी तिथि है, कौन-सा वार है और अब क्या समय है?" समीप खडे एक शिष्य ने सब कुछ बता दिया। स्वामी जी ने सब आर्यजनों को आदेश दिया कि पीछे खडे हो जाओ, सब खिड़कियां और द्वार खोल दो। पछी का मार्ग न रोको। गायत्री मन्त्र का जाप करो।"

(क्रमश:)

आर्यसमाज द्वारा कराये जाने वाले विवाह

रघुवीर वदालंकार

प्राय: कहा जाता है कि आर्यसमाज में युवक वर्ग नहीं आ रहा है। ऐसा कहने वाले भूल जाते हैं कि आजकल तो एक मात्र आर्यसमाज ही युवक युवतियों के आकर्षण का केन्द्र रह गया है। यही कारण है कि आर्यसमाज ने घर से भागे युवक युवतियों के विवाह कराने में वही प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है जो कि गुरुद्वारों ने लंगर चलाने के विषय में। कुछ प्रसिद्ध आर्यसमाजों ने इस पवित्र कार्य को अपने हाथ में लिया हुआ है कि जो भी घर से भाग आये हो, जिसे घर से भगा लिया गया हो तथा जिनका विवाह किसी अन्य स्थान पर अन्य विधि से नहीं हो पा रहा हो, आर्यसमाज ऐसे प्रेमियों की उदारता पूर्वक सहायता करके उनको पवित्र अग्नि के आगे उनके जीवन में दाम्पत्य की मोहर लगा देता है भले ही ऐसे मामलों में बाद में आर्यसमाज को अदालतों के चक्कर लगाने पड़ें। 'महाजनो येन गत. स पन्था' के अनुसार बड़े समाजों को देखकर छोटे समाज भी इस रोग के शिकार होते जा रहे हैं।

आप पूछेंगे क्या बुराई है इस प्रकार के विवाह कराने में? प० जी को दक्षिणा मिलती है, समाज को दान मिलता है। दो तड़पती आत्माओं को शांति मिल जाती है। आर्यसमाज का यश बढता है। इस विषय में सबसे प्रमुख एवं गम्भीर तर्क दिया जाता है कि यदि ऐसे भगोड़ों का विवाह कराने में आर्यसमाज सहयोग न दे तो वे हिन्दू धर्म छोड़कर अन्य धर्म स्वीकार कर लेंगे। ऊपर से देखने में तर्क वजनी प्रतीत होता है किन्तु मैं पूछता हूं कि जिनका धर्म केवल इसी बात पर टिका है कि उनकी शादी हो जाए तो वे हिन्दू रहेंगे अन्यथा विधर्मी बन जाएंगे ऐसे लोगों से शेष जीवन में हिन्दू धर्म पर जमे रहने की क्या गारंटी है? इनके लिए तो धर्म सूत के कच्चे धागे से भी कमजोर है जिसे वे जब चाहे तब तोड़ सकते हैं। दूसरे, ऐसे प्रेमियों को दाम्पत्य सूत्र में बांध कर आर्यसमाज उनको वैदिक धर्म में दीक्षित करने का भी यत्न करता है या नहीं? यदि नहीं तो उसका प्रयास निष्फल है। इसके अतिरिक्त इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कोर्ट के द्वारा की गई शादी पूर्णत: वैधानिक मानी जाती है। अत: ऐसे युगल प्रेमी कोर्ट में शादी करके अपने हिन्दू धर्म की रक्षा कर सकते हैं।

कबूतर की तरह तथ्यों से आंख मूंदने की जरूरत नहीं है। मैं बल पूर्वक इस बात को कहना चाहता हूं कि इस प्रकार के युवक युवतियां घर से अनैतिक तरीके से भागे हुए होते हैं। इसका एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। पिछले महीने अखबार में एक सच्ची घटना प्रकाशित हुयी कि जयपुर के एक आलीशान होटल मालिक की १६ वर्षीया लड़की तथा उसी होटल में केवल ८०० रु० महीने पाने वाले एक कर्मचारी, शादी शुदा, दो बच्चों के बाप, न भाग कर आर्यसमाज में शादी कर ली। घटना की सत्यता की जांच की जा सकती है। क्या उक्त घटना के कारण आर्यसमाज का यश बढ़ेगा? या मिट्टी में मिलेगा? मुझे एक अन्य घटना स्मरण है। मैं दिल्ली के एक सुविख्यात आर्यसमाज में बैठा था कि ३०-३० वर्ष के एक पुरुष तथा महिला वहां आये जो कि शादी करना चाहते थे। मेरे हस्तक्षेप करने पर पता चला कि वह लड़की उस व्यक्ति के जीवित साले की घरवाली अर्थात् उसकी सलज थी। क्या ऐसे विवाह करा कर आर्यसमाज पाप नहीं कर रहा? इसी आर्यसमाज के एक भू० पू० पुरोहित जी को मैं जानता हू जो कभी स्वयं दक्षिणा के लोभ में ऐसे विवाह कराते रहे हैं किन्तु अब ऐसे विवाहों के घोर विरोधी हैं क्योंकि उनको भी इस विषय में अदालतों में चक्कर लगाने पड़े। स्वामी दयानन्द ने गुणकर्मानुसार विवाह करने पर जोर दिया है किन्तु आर्यसमाजी अभी भी इस प्रकार के विवाह न करके अपनी-अपनी जातियों में विवाह करते हैं तथा जाति का दुमछल्ला भी अपने साथ गर्व पूर्वक लगाये रहते हैं।

उक्त प्रकार से भागे गये युवकों के विवाहों को आप गुणकर्मानुसार तो कह नहीं सकते, हां इस विषय में जो बुराइयां हैं उन पर दृष्टि पात करना जरूरी है। बहुत सीधा सा प्रश्न है कि इस प्रकार जिस परिवार की भागी अथवा भगाई गयी युवती का विवाह आर्यसमाज कराता है, उस परिवार की धारणा आर्यसमाज के विषय में क्या बनेगी? क्या जीवन भर के लिये वे आर्यसमाज के विरोधी नहीं बन जायेंगे? इसके अतिरिक्त उस परिवार को जो अपने मुहल्ले बस्ती में जो मर्मान्तिक वेदना, शर्म, ग्लानी सहन करनी पड़ेगी, इसे वही जान सकता है जिसके परिवार में ऐसी घटना घट जाए।

मेरा सुझाव है कि आर्यसमाज बिना जांच पड़ताल किये ऐसे विवाह कराना बन्द कर दे। आर्यसमाज केवल ऐसे विवाहों को ही स्वीकृति दे—

१. जो लड़का किसी ऐसी लड़की से शादी करना चाहता है जिसमें कि लड़की के परिवार के समस्त अथवा आधे सदस्य अथवा माता-पिता, भाई आदि अवश्य सहमत हों किन्तु लड़के के परिवार वाले दहेज आदि के लोभ से उक्त विवाह को न चाहते हों।

२. जिस लड़की ने मुसलमान अथवा ईसाई आदि अन्य धर्म छोड़कर हिन्दू अथवा वैदिक धर्म स्वीकार कर लिया हो या करने की इच्छुक हो।

३. जो स्त्री विधवा हो अथवा पुरुष विधुर हो तथा पुनर्विवाह के इच्छुक हों किन्तु घर वाले न चाहते हों।

आर्यसमाज शालीमार बाग का प्रधान होने के कारण मेरे पास भी एक ऐसे पड़ोसी आए जो कि अपने आपको तथा अपने बाप को कट्टर समाजी कहते हैं किन्तु सम्पन्न होने पर भी दान के रूप में ११ रु० देते हैं, सत्संग में कभी नहीं जाते किन्तु [illegible] तैष्टि एवं ऐसे विवाह के समय आर्यसमाज को याद करते हैं। उनका एक ड्राइवर कांगड़ा का रहने वाला उन की ही किसी लड़की से शादी करना चाहता था। मैंने कहा कि हम लड़की के घर जाकर पता लगाएं कि किस कारण से वह यहां दिल्ली में शादी करना चाहती है। मेरा इतना कहने से तो उसके तोते उड़ गये। स्पष्ट था कि वह लड़की प्रेम के चक्कर में स्वयं भागी या भगाई गयी थी। मैं कहना चाहता हूं, आप सहमत होंगे कि इस प्रकार के विवाह कराना पाप है, महापाप है और घोर पाप है।

अधिकांश प्रेम विवाह तो वैसे भी सफल नहीं होते। घर से पढ़ने के लिये कालेज में जाकर युवक युवतियां यदि प्रेम के चक्कर में पड़कर माता-पिता की भावनाओं को ठेस लगाकर यदि आर्यसमाज में आकर विवाह कर लेते हैं तो आर्यसमाज का यह कार्य श्लाघनीय नहीं है। हां गुणकर्मानुसार योग्य लड़के-लड़कियों का विवाह आर्यसमाज कराये किन्तु यह कार्य भी छिपकर करने की अपेक्षा लड़के-लड़की के परिवार वालों को विधिवत सूचना देकर साहस पूर्वक कराये। इसलिए युवक युवतियों के आकर्षण का केन्द्र आर्यसमाज को किसी अन्य प्रकार से बनाया जाए, बिना सोचे समझे अनैतिक विवाह करा कर नहीं।

आवश्यक सूचना

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यकर्ता, उपदेशक एवं भजनोपदेशक महोदय सभी से निवेदन है कि सप्ताह में बुधवार और शनिवार को सभा कार्यालय अवश्य आयें और वेद प्रचार विभाग से अपने आगामी कार्यक्रमों की जानकारी प्राप्त करें ताकि वेद प्रचार का कार्य सुचारु रूप से चलाया जा सके। आशा है कि अवश्य ध्यान रहेगा।

व्यवस्थापक
स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती
अधिष्ठाता वेद प्रचार विभाग

सम्पादक के नाम पत्र

उर्दू के ये नये हिमायती

बिहार के भूतपूर्व मुख्यमंत्री डा० जगन्नाथ मिश्रा ने उत्तर प्रदेश में कुछ समय से शान्त पड़े उर्दू भाषा के विवाद को फिर उकसाया है। उन्होंने पिछले सप्ताह उत्तर प्रदेश उर्दू एकता कमेटी एवं आल इंडिया मीर अकादमी के संयुक्त आयोजन में "मीर-ए-उर्दू" का अलंकरण ग्रहण करते हुए, प्रधान मंत्री से अपील की है कि वे उत्तर प्रदेश सरकार को निर्देश जारी करें कि वह उर्दू को द्वितीय राजभाषा का दर्जा देने के लिए कानून में परिवर्तन करें। डा० मिश्रा ने उक्त आयोजन में इस बात को बारम्बार दोहराया कि बिहार राज्य में उर्दू को द्वितीय राजभाषा का दर्जा देकर उसका मौलिक अधिकार दिलाया और श्रीमती इन्दिरा गांधी के निर्णय को लागू किया। यह दानों ही बातें आधारहीन हैं। उर्दू का द्वितीय राजभाषा बनने का मौलिक अधिकार किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं किया जा सकता और न ही इन्दिरा गांधी ने कोई ऐसा निर्देश दिया था। जनसंख्या, प्रशासनिक अथवा किसी भी अन्य दृष्टि से उत्तर प्रदेश में उर्दू को द्वितीय राजभाषा का स्थान नहीं दिया जा सकता हां उर्दू भाषा के विकास और उत्थान लिए सुविधाएँ उपलब्ध कराना, अलग बात है-जिससे हमारा कोई मतभेद नहीं है।

डा० मिश्रा ने उत्तर प्रदेश में उर्दू को द्वितीय राजभाषा बनाने की [illegible] की है, उससे शह पाकर उपरोक्त संस्थाओं तथा उत्तर प्रदेश उर्दू समन्वय समिति ने आन्दोलन चलाने की भी घोषणा कर दी है, जिसके अन्तर्गत १५ जनवरी को उत्तर प्रदेश के सभी जिलों में मौन जलूस निकाले जायेंगे और जिलाधिकारियों का ज्ञापन दिये जायेंगे। इस आन्दोलन के अगले चरण में लखनऊ में मुख्यमन्त्री के समक्ष एक लाख व्यक्तियों द्वारा प्रदर्शन की योजना बनी है, जिससे कानून व्यवस्था को खतरा उत्पन्न हो सकता है। पिछले कुछ मास से उत्तर भारत में मुस्लिम साम्प्रदायिकता की लहर पनप रही है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा शाहबानो के पक्ष में किये गये अत्यन्त मानवीय एवं उचित फैसले को आधार बनाकर और विदेशी घुसपैठियों की नागरिकता स्थगित करने तथा उनकी घुसपैठ रोकने जैसे राष्ट्रीय हितों को सर्वथा ताक में रख कर बेबुनियाद आन्दोलन चलाये जा रहे हैं। ऐसे विषाक्त वातावरण में "मुस्लिम साम्प्रदायिकता की एक और चिंगारी छोड़कर डा० जगन्नाथ मिश्रा जैसे प्रबुद्ध व्यक्ति ने साम्प्रदायिक अभिव्यक्ति को सम्मान प्रदान करने का घृणित कार्य किया है। ज्ञातव्य है कि बिहार को छोड़कर देश के किसी भी अन्य प्रान्त में उर्दू को द्वितीय भाषा का स्थान नहीं मिला है।

उर्दू के हिमायतियों से मे एक प्रश्न पूछना चाहता हूं। पंजाब में हिन्दुओं की जनसंख्या ४८ प्रतिशत है और उन्होंने हिन्दी को द्वितीय भाषा बनाने की मांग की है जो आज तक पूरी नहीं हुई, जबकि हिन्दी राष्ट्र-भाषा भी है। उत्तर प्रदेश में मुसलमानों की जनसंख्या लगभग १५ प्रतिशत है, पर उनके लिए सब ओर से आवाज उठ रही है। क्या पंजाब मे हिन्दी के पक्ष में भी डा० मिश्रा जैसे राजनेता अपनी आवाज उठा पायेंगे? इसी से सम्बन्धित पहलू यह है कि मुस्लिम धर्मान्धता के सामने राष्ट्रीय हितों का बलिदान किया जा रहा है और राजनैतिक दलों के जाने माने नेता भी मुस्लिम स्वार्थों की राजनीति कर रहे हैं। लोकसभा उपचुनाव में करीमगंज से सैयद शाहबुद्दीन की जीत को इसी परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए।

डा० आनन्द प्रकाश
उपमंत्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

पर्सनल ला के प्रश्न पर राजनैतिक दलों का मौन देशहित में नहीं

—श्री देवीदास आर्य

बांदा। आर्यसमाज बांदा के शताब्दी समारोह के अवसर पर बोलते हुए मुख्य अतिथि श्री देवीदास आर्य (प्रसिद्ध समाजसेवी) ने कहा कि पर्सनल लॉ के प्रश्न पर सभी राजनैतिक दलों का मौन देश हित में नहीं है तथा देश द्रोह का प्रश्रय देने वाला कार्य है। प्रत्येक दल स्वार्थवश सत्य बोलने से कतराता है, जबकि इस ज्वलंत समस्या के कारण देशद्रोह फैल रहा है, संविधान की धज्जियां उड़ाई जा रही हैं।

राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित एवं प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के वरिष्ठ उपाध्यक्ष श्री देवीदास आर्य ने प्रधान मन्त्री श्री राजीव गांधी द्वारा मोमिन कांग्रेस में कट्टरपंथी मुस्लिमों की मांग के आगे झुकने की कटु आलोचना करते हुए कहा कि कांग्रेस की तुष्टिकरण से ही पाकिस्तान का निर्माण हुआ था, अब कांग्रेस सरकार पुनः उसी मार्ग पर चल रही है। कांग्रेस की तुष्टिकरण की नीति से अलगाववादी ताकतों को प्रोत्साहन मिल रहा है। जो भारत के भविष्य के लिए हानिकारक सिद्ध होगा। आर्यसमाज देश हित के कार्यों में सदैव अग्रणी रहा है। अतः उसका दायित्व है कि वह सरकार को भविष्यगामी खतरों के प्रति सचेत करे। आर्यसमाज मूक दर्शक बन कर नहीं रह सकता।

बांदा के नागरिकों की ओर से मुख्य अतिथि श्री आर्य का भव्य स्वागत किया गया, शताब्दी समारोह की अध्यक्षता श्रीमती सा[illegible] देवी एडवोकेट ने की तथा संचालन स[illegible] के अध्यक्ष श्री बैजनाथ सिन्हा (प्रधानाचार्य) ने किया।

रामरतन सिंह
मन्त्री

केन्द्रीय सरकार का सराहनीय कदम

भारत की केन्द्रीय सरकार के गृह-मन्त्रालय ने आर्यसमाज द्वारा सन् १९३८-३९ में निजाम शाही के विरुद्ध चलाये गये सत्याग्रह आन्दोलन को, स्वाधीनता संग्राम का अंग मान कर अतीव ही सराहनीय कार्य किया है। अब हैदराबाद सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने वाले सत्याग्रहियों या उन की विधवाओं को वे सभी सुविधाएँ तथा पेंशन आदि दी जायेगी, जो सुविधाएं तथा पेंशन आदि स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों को मिलती हैं। ज्ञातव्य है कि सन् १९३८ में हैदराबाद राज्य के नवाब निजाम साहब ने हिन्दुओं को उनके समस्त धार्मिक अधिकारों से वंचित कर दिया था जिस के विरुद्ध महात्मा नारायण स्वामी–तत्कालीन प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली के नेतृत्व में आर्यसमाज ने एक ऐतिहासिक सत्याग्रह आन्दोलन चलाया था। इस आन्दोलन में आर्यसमाज के लगभग २२ हजार लोगों ने निर्भीकतापूर्वक भाग लिया था। इस आदोलन के परिणामस्वरूप निजाम को अपना जनविरोधी आदेश वापस लेना पड़ा था और समस्त राष्ट्र में एक नये वातावरण का निर्माण हुआ था। नौजवानों में त्याग बलिदान तथा अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने की भावना का प्रादुर्भाव हुआ था।

राधेश्याम आर्य एडवोकेट
मन्त्री
जिला आर्य उपप्रतिनिधि सभा
सुलतानपुर (उ०प्र०)

आर्यसमाज दीवान हाल दिल्ली शताब्दी स्मारिका

देश की स्वतन्त्रता, हैदराबाद धर्मयुद्ध, गोरक्षा, हिन्दी सत्याग्रह तथा अनेक समाजोत्थान के आन्दोलनों का सूत्रधार विश्वभर में प्रसिद्ध आर्यसमाज दीवानहाल दिल्ली को स्थापित हुए एक शताब्दी हो चुकी है। इस सदी में इस समाज ने जन कल्याण समाजोत्थान, देश धर्म और हिन्दू जाति की रक्षा के लिए, स्वभाषा और संस्कृति बचाने के लिए, राष्ट्र में व्याप्त पाप पाखण्ड मिटाने के लिए, विधर्मियों द्वारा बलात धर्म परिवर्तन के कुचक्र उखाड़ने के लिए, देश की एकता और अखण्डता की टूटती कड़ी को जोड़ने के लिए अनेक प्रभावशाली चमत्कारी कार्य किये हैं।

शताब्दी महोत्सव के अवसर पर एक आकर्षक भव्य स्मारिका प्रकाशित की जायेगी। लेखक, विद्वान, अनुभवी ऋषि भक्त अपने लेख, कविता, संस्मरण अवश्य भेजें। अन्तिम तिथि १० फरवरी है। प्रतियोगिता के लिए निबन्ध प्रथम फरवरी तक भेज सकते हैं।

निवेदक :
मूलचन्द गुप्त
मन्त्री आर्यसमाज दीवानहाल
दिल्ली-६

समाचार सन्देश

दक्षिण अफ्रीकी सरकार की रंगभेद नीति की कड़ी आलोचना

डरबन में आर्य महासम्मेलन

दिल्ली ४ जनवरी।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री रामगोपाल शालवाले ने गत दिसम्बर ८५ में डरबन में हुए आर्य सम्मेलन के सम्बन्ध में राज्य सभा मे उठाए गए श्री जसवन्त सिंह के ध्यानाकर्षण प्रस्ताव और स्वामी अग्निवेश आदि के वक्तव्यों पर कड़ी आपत्ति करते हुए कहा कि इन लोगों ने राजनीति से प्रेरित होकर आर्य-समाज को बदनाम और उसके बारे में भ्रान्तियां पैदा करने की कोशिश की है।

श्री शालवाले ने कहा–डरबन आर्य महासम्मेलन में अनेक प्रस्ताव पारित हुए थे जिसमें शारीरिक, बौद्धिक एवं आत्मिक उत्थान के लिए व्यक्ति तथा समाज की आवश्यकताओं पर विचार किये गये। सम्मेलन में जो १५ वां प्रस्ताव पारित किया वह निम्न प्रकार है:

आर्यसमाज सब काल में और सब स्थान पर न्याय, प्रेम और सत्य का समर्थक रहा है और आगे भी रहेगा। इस सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुये यह अन्तर्राष्ट्रीय वैदिक महासम्मेलन दक्षिण अफ्रीकी सरकार की रंगभेद नीति और नस्लवाद की नीति की भर्त्सना करते हुए इसका घोर विरोध करता है। इसका दृढ़ विश्वास है कि सबको बिना रंग एवं जाति-भेदभाव के समुचित न्याय मिलना चाहिये। यह सम्मेलन सभी विचारशील व्यक्तियों से अनुरोध करता है कि वे सबको न्यायोचित अधिकार दिलवाने के लिये समुचित प्रयत्न करें।

विदेशों में आर्यसमाज

दक्षिण अफ्रीका से प्राप्त सूचना के अनुसार चौथा अन्तर्राष्ट्रीय वैदिक (आर्य) महासम्मेलन डरबन में २२ दिसम्बर १९८५ को सकुशल सम्पन्न हो गया और अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल रहा। सम्मेलन की समाप्ति पर श्री ओमप्रकाश त्यागी, महामंत्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली की अध्यक्षता में अफ्रीका तथा मोरीशस से आए हुए प्रतिनिधियों की एक विशेष बैठक हुई जिसमे एक कमेटी का गठन किया गया। इसका उद्देश्य विदेशों में वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार एवं प्रसार के लिए उपयुक्त प्रचारक तैयार करना होगा। अफ्रीका महाद्वीप की राजनीतिक परिस्थितियों को देखते हुए इस कमेटी का मुख्यालय मोरीशस मे रहेगा। सुविधा और समय की अनुकूलता होने पर इसका एक उपकार्यालय नैरोबी (केन्या) मे भी खोल दिया जाएगा।

नव गठित कमेटी मे मोरिशस के तीन तथा अन्य दो प्रतिनिधि रखे गए हैं। इसकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मारीशस ने २॥ लाख रुपया तथा केनिया और दक्षिण अफ्रीका ने १-१ लाख रुपये की राशि सयुक्त कोष मे देना स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार ४॥ लाख रुपये को जमा राशि से कमेटी का कार्य आरम्भ होगा। यदि यह प्रयोग सफल रहा तो फिजी, गायना, डच गायना आदि देशो की सभी आर्य समाजो एवं संस्थाओं को इससे लाभ पहुंचेगा। आशा है कालान्तर में वहां की आर्य संस्थाएँ भी इस कमेटी के कार्य मे अपना योगदान देंगी।

प्रचार विभाग
सार्वदेशिक सभा, दिल्ली

आर्यसमाज जंगपुरा विस्तार नई दिल्ली का स्वर्ण जयन्ती महोत्सव

५ जनवरी, नई दिल्ली। इस आर्यसमाज की स्थापना के २५ वर्ष पूर्ण हो जाने के उपलक्ष्य में एक सात दिवसीय महोत्सव आयोजित किया गया। इस अवसर पर एक सप्ताह तक महात्मा दयानन्द जी द्वारा यज्ञ तथा उपदेश हुआ। महिला सम्मेलन एवं अध्यात्म सम्मेलन में वक्ताओं के मधुर सुललित प्रवचनों से धार्मिक जनता भाव विभोर होकर लाभ उठाया।

समारोह के समापन दिवस पर आर्य सम्मेलन में श्री सूर्यदेव, श्री के० नरेन्द्र, श्री रामगोपाल शालवाले, श्री वेदप्रकाश श्रोत्रिय, श्री यशपाल सुधांशु, डा० धर्मपाल, महात्मा दयानन्द जी ने सभा को सबोधित किया।

इस अवसर पर बोलते हुए श्री रामगोपाल शालवाले ने कहा, आर्य-समाज अपने आन्दोलनकारी स्वरूप से कभी पीछे नही हटा है! जहा कही भी मानवता पर राष्ट्र व धर्म पर हिन्दू जाति पर आक्रमण हुआ आर्य-समाज ने मुंह तोड़ जवाब दिया है। हम कभी किसी जोर दबाव में कभी प्रलोभन में न दबे हैं और न दबेंगे। आर्यसमाज जितना कार्य कर रहा है उसका प्रोपगण्डा नही हो पा रहा। दूसरे लोग फोटो खिचवाना और शोर मचाना खूब जानते हैं। हमारा छोटे से छोटा साधारण सीधा-साधा आर्य समाजी भी कार्य बड़े से बडा कर आयेगा पर उसका शोर नही मचायेगा। वह झूठी क्या सच्ची वाहवाही भी नहीं लेना चाहता। मैं अपने भाइयों से आह्वान करता हूँ कि तुम कमजोर नहीं हो, तुम्हारी शक्ति अत्यधिक है बस इसे पहचानो और अनुशासित होकर इसे सही दिशा में लगाओ। हमारे सामने एक नही अनेक चुनौतियां हैं जिनका हमे मुकाबला करना है। निराशावादी दृष्टिकोण से प्रचार मत करो। मैं यह भी निवेदन करूंगा कि सभी आर्यसमाज के सदस्यों को एक दूसरे के दुःख दर्द बांटने में और कुशलक्षेम जानने पूछने, एक दूसरे के सहयोग करने में भी अपना समय लगाना चाहिए।

श्री के० नरेन्द्र ने अपने भाषण में कहा—हिन्दुओं के खिलाफ सब खड़े हैं। सरकार भी दूसरों की चिन्ता करना अपना फर्ज मानती है। हिन्दू को यह पता ही नहीं कि तेरे खिलाफ क्या षड्यन्त्र चल रहे हैं। आंकड़े बता रहे हैं मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दू घट रहे हैं। अगर यही हाल रहा तो समन्दर में समा जाने के सिवा हमारे पास कोई चारा नहीं रहेगा। हमारे साधु संन्यासी महन्त मठधारी अपनी और अपने मठों की चिन्ता में डूबे हैं। उन्हें हिन्दू जाति की रक्षा की फिक्र क्यों हो? आयसमाज से आशायें हैं कि यह हिन्दू जाति की रक्षा के लिये सोचें और आगे आयें पर पता नही इन्हें भी क्यों खुल्लमखुल्ला राजनीति में आने से डर लगता है। अगर यही सही तो कम से कम अपने प्रतिनिधि तो संसद में भेजो, जो वहां खड़े होकर तुम्हारी बात कह सकें। आप लोग जानते हैं कि शाहबानो केस में सच्चाई होते हुए मुसलमान कितने भारी उग्र रूप में इसका विरोध कर रहे हैं। उनका एक एक व्यक्ति चाहे वह राजनेता हो या अभिनेता उसे इस्लाम खतरे में पड़ा दिखायी दे रहा है और सरकार हाथ लगाने से घबरा रही है।

इस अवसर पर श्री सूर्यदेव ने कहा–मैं उन तमाम आर्यसमाज के सेवकों, ऋषि दयानन्द के भक्तों को धन्यवाद देता हूं जो मिशन को आगे बढ़ाने के लिए दिन रात [illegible] रहे हैं। इस सभा का संचालन कर्मठ मन्त्री श्री आर्यमित्र बजाज ने किया।

प्रधान
गणपतराय ठक्कर

शोक सम्वेदना

आर्यसमाज सिलीगुड़ी के प्रधान श्री जवाहर लाल आर्य का निधन १४ दिसम्बर १९८५ को रात्रि १२-१५ बजे हो गया। उन की आयु ६२ वर्ष की थी। पार्थिव शरीर का अंतिम संस्कार वैदिक रीति से वैदिक विद्वान के पौरोहित में, शहर के सम्भ्रान्त व्यक्तियों की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ। उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री आनन्द देव आर्य ने अश्रुपूरित नेत्रों से चिता मे आग लगाई। वैदिक मन्त्रों की ध्वनि से वातावरण मुखरित हो उठा। संस्कार के पश्चात् उपस्थित जन-समूह ने एक सभा का रूप लेकर दिवगत आत्मा की शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना की। तीसरे दिन अस्थि-संचय के पश्चात् चौथे दिन १७-१२-८५ को प्रातः १० बजे निवास स्थान पर बृहद् हवन-यज्ञ के बाद शान्ति-प्रार्थना के रूप में उपस्थित व्यक्तियों ने भावभीनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की।

भवदीय
सर्वेश्वर झा
मन्त्री
आर्यसमाज सिलीगुड़ी

अमर हुतात्मा...

(पृष्ठ १ का शेष)

जिन पवित्र भावनाओं को लेकर मैं [illegible] वह पवित्र भावना थी कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।' समस्त विश्व को आर्य बनाने का मतलब है सत्य, अहिंसा और सेवा का अवलम्बन एवं अनुसरण। इन तीन शब्दों की परिभाषा में निबद्ध है आर्य शब्द। जो धर्म भी आर्यत्व को ही दुनिया के सामने प्रस्तुत करता है। हिन्दू भी वही है जो हिंसा से दूर है जो अहिंसक है। स्वामी श्रद्धानन्द ने "हम" शब्द का बड़ा अनोखा प्रयोग किया था। ह से हिन्दू और म से मुस्लिम। वे एकता प्रीति प्यार का सन्देश बांटते चले गये एक सच्चे सन्त की तरह। मुस्लिमों ने भी उन्हें बहुत आदर और प्यार दिया कि जामा मस्जिद की मिम्बर पर खड़े होकर उन्होंने देश की एकता और भाई चारे का संदेश दिया। भारत दुनिया का सदा से गुरु रहा है रहेगा भी। इसका कारण है यहां की पुनीत आध्यात्मिक ज्ञान गंगा। जो समस्त दुनियां के लिए शांति और चैन का स्रोत है। जैन मुनि सुशील कुमार के सम्बोधन से जनसमूह रोमाञ्चित हो उठा। भरपूर तालियों से उनका स्वागत किया गया।

श्री अर्जुनसिंह केन्द्रीय वाणिज्य मन्त्री ने कहा---

धर्म प्रेम, एकता और भाई चारे का संदेश देता है। धर्म से यदि फूट का बीज पनपे इन्सानियत का गला घोटा जाए तो मेरी दृष्टि में वह धर्म नहीं है। स्वामी श्रद्धानन्द ने स्वतन्त्र देश का स्वप्न देखा था। स्वतन्त्रता के लिए उन्होंने अपना पूर्ण जीवन लगा दिया, वे एक सच्चे धार्मिक, इन्सानियत के प्रचारक, अनाथों, दीनों, अछूतों को गले से लगाने वाले महान नेता थे।

सार्वदेशिक सभा के यशस्वी प्रधान श्री राम गोपाल वानप्रस्थ ने कहा---

स्वामी श्रद्धानन्द के अमर बलिदान को आर्यो भुला मत देना जिस शुद्धि के चक्र को उन्होंने चलाया, भारत की सस्कृति सभ्यता बचाने के लिए और अपने ऋषियों की पुनीत शिक्षा देने के लिए गुरुकुल की स्थापना की, धर्म और देश के लिए अपना सर्वस्व होम कर दिया उन धर्म, मानवता और उच्च मूल्यों को हमने गिरवी नहीं देना, उनकी रक्षा करनी है। और भी अधिक उत्साह से हमने आगे बढना है।

इस अवसर पर श्री वैद्य राम किशोर, श्री पृथ्वी राज शास्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान सूर्यदेव ने भी सभा को सम्बोधित किया। सभा संचालन केन्द्रीय सभा के महामन्त्री श्री अशोक सहगल ने किया।

आदर्श विवाह केन्द्र

सुयोग्य वर-वधू के मेल मिलाने हेतु जानकारी करने के लिए दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा कार्यालय १५ हनुमान रोड नई दिल्ली-१ में आकर सम्पर्क करें। आदर्श विवाह केन्द्र कार्यालय सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शनिवार को १२ बजे से ३ बजे तक खुला रहेगा। कृपया समय का विशेष ध्यान रखें।

संयोजक
आत्मदेव आर्य
आदर्श विवाह केन्द्र

फोन : ३१०१\ . निवास ६६३६८२

नवादा में ईसाई परिवार की शुद्धि

सार्वदेशिक सभा ने जब से मीनाक्षीपुरम में धर्मयुद्ध का बिगुल बजाया है, शुद्धि प्रचार का कार्य निरन्तर प्रगति पर है। हमारे कार्यालय को नित्य समाचार प्राप्त हो रहे हैं कि कालान्तर में मुसलमान और ईसाई बनाये गये अपने भाइयों को आर्य जाति की गोद में लाने का अनुकरणीय कार्य अनेक स्थानों पर आर्यसमाज के माध्यम से किया जा रहा है। श्री जयप्रकाश आर्य जी ने हमें यह उत्साह जनक समाचार भेजा है कि पिछले १३ नवम्बर को नवादा (बिहार) में १३ ईसाई परिवारों की शुद्धि हुई है। इसी प्रकार बलरामपुर, अतरौला तथा गोण्डा से भी शुद्धि के समाचार प्राप्त हुए हैं। जिन विद्वानों ने इस्लाम का परित्याग कर वैदिक धर्म ग्रहण किया और अब सार्वदेशिक सभा के तत्त्वावधान में धर्मनाद गुंजा रहे हैं, उनका प्रभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर हो

पिछले दिनों है। यहां तक कि अभी [illegible] चार्य निरंजनदेव [illegible] पुरी के शंकराचार्य ने स्वीकार किया है कि इस्लामी विद्वानों को अपने धर्म दिग्गज प्रचारक बना लेने का कार्य कर समाज के बहुत बडे साहस का परिचायक है। आर्यसमाज के पास साहसी कुशल नेतृत्व है जो अजेय सिद्धान्तों की दृढ चट्टान पर खडा है। यदि हिन्दू समाज इस तथ्य को स्वीकार कर इस धर्माभियान मे अपना सहयोग दे तो यह देश सच्चे अर्थ मे आर्यावर्त बन सकता है। सभा के प्रधान श्रद्धेय लाला रामगोपाल शालवाले की सकल्प शक्ति इन सारे क्रियाकलापो का प्रमुख सम्बल है।

डा० आनन्द प्रकाश
उपमन्त्री

रजि० न० डी० (सी०) ७५६
R N No 32387/77
साप्ताहिक 'आर्यसन्देश' १२ जनवरी, १९८६ Post in N.D.P.S.O. on 10-1-86
बिना टिकट भेजने का लाइसेंस न० यू १३९ Licenced to post without prepayment, Licence No. U 139

ओ३म्

आर्य सन्देश

केवल ५० रुपये में तीन वर्ष तक

हर सप्ताह पढ़ते रहिए

(साथ ही ६० रुपये का साहित्य मुफ्त ले जाइये)

- क्या आप ऋषि, मुनि, तपस्वी, योगियों की अमृत वाणी सुनना चाहते हैं ?
  क्या आप वेद के पवित्र ज्ञान को सरल एवं मधुर शब्दों में सुनना चाहते हैं ?
- क्या आप उपनिषद, गीता रामायण, ब्राह्मणग्रन्थ का आध्यात्मिक सन्देश स्वयं सुनना और अपने परिवार को सुनाना चाहते हैं ?
- क्या आप अपने शूरवीर एवं महापुरुषों की शौर्य गाथाएं जानना चाहेंगे ?
- क्या आप महर्षि दयानन्द की वैचारिक क्रान्ति से आत्मचेतना जागृत करना चाहते हैं।

यदि हां, तो आइये आर्यसन्देश परिवार मे शामिल हो जाइए।

केवल ५० रुपये मे तीन वर्ष तक हर सप्ताह पढते रहिए। साथ ही वर्ष मे चार अनुपम भव्य विशेषांक भी प्राप्त कीजिए।

एक वर्ष केवल २० रुपये, आजीवन २०० रुपये।

प्राप्ति स्थान

आर्यसन्देश साप्ताहिक

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

१५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-११०००१

उत्तम स्वास्थ्य के लिए गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार की औषधियां सेवन करें

शाखा कार्यालय—६३, गली राजा केदारनाथ, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६ फोन : २६१८३८

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन ३१०१५० के लिए ... द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा ... प्रेस, ... दिल्ली-३१ में मुद्रित। रजि० नं० डी० (सी०) ७५६

वर्ष १० : अंक ६ | रविवार, १९ जनवरी १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ | पौष २०४२ | दयानन्दाब्द—१६१
मूल्य : एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश में ५० डालर, ३० पौंड

पांच करोड़ की लागत से महर्षि दयानन्द गो-संवर्द्धन केन्द्र परियोजना

आर्य संस्थाओं, आर्य बन्धुओं से श्री शालवाले की अपील

समस्त हिन्दू समाज में गो जाति के लिए अत्यधिक श्रद्धा है। भारत में गो आदि प्राणियों की दशा अभी भी शोचनीय है। आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द से लेकर आर्यसमाज के प्रत्येक कार्यकर्ता तक सभी ने गो संरक्षण के लिए अपनी आवाज उठाई है। आर्यसमाज द्वारा किया गया गोरक्षा सत्याग्रह आंदोलनों के इतिहास में स्मरणीय अध्याय है। इतना कुछ करने के बाद भी बहुधा यह आवाज सुनाई पड़ती था नारे अधिक हैं काम कम है। आर्यसमाजों की शिरोमणि संस्था सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने महर्षि दयानन्द के गोसंरक्षण के स्वप्न को साकार करने के लिए दिल्ली गाजियाबाद मध्य राजमार्ग पर स्थित नोएडा के निकट गाजीपुर दिल्ली में महर्षि दयानन्द गो-संवर्धन दुग्ध केन्द्र की स्थापना की है। इस केन्द्र में एक हजार गउएँ रखने का प्रावधान है। इसके अन्तर्गत पंचगव्य अनुसंधान विभाग भी खोलने की योजना है इस अनुसंधान विभाग में गो-दुग्ध, गो-घृत, गो-मूत्र आदि पर अनुसंधान किया जायेगा।

देश-विदेश के आर्य सज्जनों के निवास के लिए एक आदर्श निवास-गृह, आदर्श भव्य यज्ञशाला एवं गुरुकुल आदि भी खोलने की भावी योजनाएं हैं। यह गो-संवर्द्धन केन्द्र ६५ हजार वर्ग गज भूखण्ड पर प्रारम्भ किया जा रहा है। सार्वदेशिक सभा ने अभी चारदीवारी कराई है जिस पर चार लाख की लागत आयी है। सार्वदेशिक सभा के अनुसार इस परियोजना में ५ करोड़ रुपये खर्च होने की संभावना है। गउओं के चारे के लिए भारत सरकार द्वारा ५२ एकड़ जमीन वजीराबाद यमुना पुल पास यमुना किनारे दिये जाने का आश्वासन मिला है जो शीघ्र ही आवंटित की जायेगी। शिरोमणि सभा के प्रधान श्री रामगोपाल शालवाले ने समस्त आर्य-बन्धुओं, समस्त आर्यसमाजों से अपील की है कि इस पुनीत संकल्प को पूर्ण करने के लिए अपनी ओर से एक गउ या ५ हजार रुपये अवश्य प्रदान करें। आर्यसमाज दीवान हाल ने इस कार्य हेतु चार गउवें देने का वचन दिया है।

महर्षि दयानन्द गो-संवर्धन दुग्ध केन्द्र के उद्घाटन के अवसर पर सार्वदेशिक सभा के प्रधान लाला रामगोपाल शालवाले, पं० राजगुरु शर्मा बछड़े को बांधते हुए, श्री इन्द्रराज जी, महाशय धर्मपाल जी, श्री वीरेन्द्र जी श्री प० बालदिवाकर जी हंस दिखाई दे रहे हैं।

डी०ए०वी० शताब्दी समारोह पर विशाल शोभा यात्रा

सभी आर्यसमाजों व आर्यजनों से इसमें भाग लेने की अपील

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री सूर्यदेव ने आगामी १५ फरवरी १९८६ को डी० ए० वी० शताब्दी समारोह पर निकलने वाली विशाल शोभा यात्रा में सम्मिलित होने के लिए सभी आर्यसमाजों व कार्यकर्त्ताओं से विशेषकर दिल्ली की समस्त आर्य जनता से अपील की है कि इस दिन सभी लोग अन्य कार्यक्रमों को छोड़कर इस शोभा यात्रा में अवश्य सम्मिलित होने की कृपा करें।

यह शोभा यात्रा प्रातः ११-०० बजे लाल किला मैदान से प्रारम्भ होगी और चांदनी चौक, घण्टाघर, नई सड़क, चावड़ी बाजार, हौज-काजी, अजमेरी गेट, मिण्टो रोड, कनाट प्लेस, रीगल बिल्डिंग, पार्लियामेण्ट स्ट्रीट, सरदार पटेल चौक, गोल डाकखाना, बिड़ला मन्दिर से होती हुई सायं ५ बजे आर्यसमाज मन्दिर मार्ग नई दिल्ली में समाप्त होगी।

इस अंक में

सम्पादक—[illegible] 'सुधांशु' एम० ए० | व्यवस्थापक—डा० [illegible] | प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल

पूर्वजों के मार्ग पर चल

संकलनकर्ता—वे० शा० श्री स्वामी वेदानन्दतीर्थ सरस्वती

जीवन का मार्ग बहुत बीहड़ और भयानक है। इसमें बड़े बड़े समझदार कहे और समझे जाने वाले महानुभाव भटक जाते हैं, मार्गभ्रष्ट हो जाते हैं, साधारण जनों का तो कहना ही क्या है? कः पन्थाः? मार्ग कौन सा है? यह सनातन प्रश्न है। सब कालों और सब देशों में यह प्रश्न विचारकों के सामने आया है। बहुत थोड़े ऐसे भाग्यवान् हैं, जो इस प्रश्न का पूरा समाधान कर सके हैं और तदनुसार जीवन यात्रा कर सके हैं।

मैतं पन्थामनुगाः—मत इस राह पर चल।

सभी मनुष्यों का यह अनुभव है कि कठोर कर्त्तव्य के समय उन्हें सांसारिक मोह घेर लेता है। न्यायाधीश का अपना पुत्र अपराधी के रूप में उसके सामने उपस्थित किया जाता है। अपराध प्रमाणित हो जाता है, किन्तु सुतमोह, पुत्र-प्रेम जब न्याय के मार्ग में आ खड़ा होता है, वह न्याय नहीं करने देता। क्या वह—

गुरुपदिष्टं रिपौ सुतेपि वा निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम्।

कानून भंग करने वाले को चाहे वह धर्मोल्लंघन करने वाला पुत्र हो या शत्रु हो—न्यायव्यवस्थानुसार अवश्य दण्ड देता है?

—न! न! वह फिसल जाता है। वह मार्ग छोड़ बैठता है। वह उस मार्ग पर चलता है, जिसके लिए वेद कहता है—

मैतं पन्थामनु गाः—मत इस राह पर चल।

—मनुष्य जीवन का लक्ष्य क्या है?

—क्या खाना, पीना, भोग करना और बस?

—बहुत पुराने काल में रावण ने भगवती सीता को कहा था—

"भुङ्क्ष्व भोगान् यथाकाम पिब भीरु रमस्व च।" (वा० रा०, सुन्दर काण्ड, २०।२४।)

सीते! यथेच्छ भोग भोग! खा, पी और मौज कर।

मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि।
तम एतत्पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक्॥

—अ० ८।१।१०

एतम् पन्थाम्—इस मार्ग पर
मा अनु+गाः—मत चल
एषः भीमः—(क्योंकि) यह भीम (है)
येन—जिस (मार्ग) से
पूर्वम्—पहले
नेयथ—ले जाया गया
तं ब्रवीमि—उसे बताता हूँ

पुरुष—हे पुरुष! नागरिक!
एतत् तमः—इस अन्धकार को
मा प्र+पत्थाः—मत प्राप्त हो अथवा इस अन्धकार में मत गिर
परस्तात् भयम्—पिछली ओर भय (है)
अर्वाक्—इस ओर
ते अभयम्—तुझे अभय (है)

✱

"पिब विहर रमस्व भुङ्क्ष्व भोगान्..." (वा० रा०, सुन्दर काण्ड, २०।३५।)

पी, विहार कर, रमण कर, भोगों को भोग।

किन्तु सीता माता ने वेद में पढ़ रखा था...मैतं पन्थामनुगाः।

सीता इस मार्ग पर न चली, राक्षस रावण के प्रणय-प्रलाप को उसने ठुकरा दिया।

भोग भोगना मनुष्य का धर्म नहीं। क्या मनुष्य भोग में, खान-पान आदि विषयों में, पशुओं की समता कर सकता है? क्या कोई हाथी के बराबर खा सकता है?

भोग तो राक्षसों का धर्म है। स्वयं रावण ने कहा—

स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वथैव न संशयः।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं सम्प्रमथ्य वा॥

(वा० रा०, सुन्दर काण्ड, २०।५।)

हे धर्मभीरु सीते! परस्त्रीगमन (व्यभिचार)=भोग परदारहरण यह तो राक्षसों का स्वधर्म है।

तो क्या हम राक्षस बनें? वेद कहता है...न भाई! भीम एष=यह मार्ग भयङ्कर है।

आज भी जो 'eat, drink and be merry' खाओ, पियो, आनन्द करो' का उपदेश करते हैं, वे रावण का समर्थन करते हैं, राक्षस धर्म का प्रचार करते हैं।

जब जीवन-यात्रा के लिए मनुष्य तैयार होता है, तब उसके सामने दोराहा आता है। एक मार्ग पर सब लुभावनी सामग्री नाच, गान, स्त्री, खान-पान आदि होता है, दूसरे पर ऐसा कुछ दीखता नहीं। मनुष्य—साधारण=मनुष्य—अपरिपक्व विवेक वाला मनुष्य—पहले मार्ग को चुनता है। कारण दो हैं—मन्दमति और सांसारिक लालसाओं की पूर्ति की सम्भावना।

यम ने नचिकेता को इस दोराहे की बात भली भाँति समझाई थी। उसने कहा था—

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतः। (कठो० १।२।२)

श्रेयोमार्ग और प्रेयोमार्ग दोनों ही मनुष्य को मिलते हैं किन्तु—

प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते। (कठो० १।२।२)

मन्दमति मूर्ख योगक्षेम के कारण सांसारिक भोग-भावना के कारण, प्रेयोमार्ग को पसन्द करता है।

मूर्ख दोनों का भेद नहीं जानता वह उनमें पहचान नहीं कर पाता। पहचान तो धैर्यवान्, विचारशाली ही कर सकता है—

तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः। (कठो० १।२।२)

धीर मनुष्य ही उन दोनों—श्रेय और प्रेय मार्गों की जाँच करके भेद कर सकता है, पहचान कर सकता है।

महान् अज्ञानी मूढ़ ही इस प्रेय मार्ग पर चलते हैं। यम कहता है—

अविद्यायामन्तरे वर्तमाना,
स्वयं धीराः पण्डितमन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥
(कठो० १।२।५)

जो अविद्या में फंसे हैं, किन्तु अपने आपको ध्यानी और पण्डित मान रहे हैं, ऐसे दुरवस्था में ग्रस्त महामूढ़ लोग ही इस मार्ग पर चलते हैं। वे स्वयं अन्धे हैं, अन्धों ही के पीछे चल रहे हैं।

वेद कहता है, मत चल इस मार्ग पर। तुझे मैं मार्ग बताता हूँ। पहले भी इसी मार्ग से तुझे और तेरे बड़ों को चलाया था—

येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि।

अरे! यह अन्धकार से ढका है। अन्धकार मृत्यु है। प्रकाश जीवन है। तू अन्धकार में मत फंस। भगवान् ने कहा—

तम एतत् पुरुष मा प्रपत्थाः।

नगर के रहने वाले! यह अन्धकार है, इसमें मत गिर। नगरवासी तो प्रकाश का अभ्यासी है। पुरुष की यह नगरी देह-ज्योति से आवृत्त है। प्रकाश से ओत-प्रोत का अन्धकार में गिरना लज्जास्पद है। यदि संसार-पथ=प्रेयो मार्ग=भोगपद्धति इतनी भयावह है, तो ऐसा हमें प्रतीत क्यों नहीं होता? इस पुराने प्रश्न की मीमांसा यम ने इस प्रकार की है—

न साम्परायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति
मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥
(कठो० १।२।६)

यह साम्पराय—आनी-जानी दुनिया=विनश्वर संसार बालक को=मूढ़ अज्ञानी को—नहीं दीखता, प्रमादी को भी नहीं सूझता। भर्तृहरि के शब्दों में उसने तो शराब पी रखी है—पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्। प्रमाद की

(शेष पृष्ठ ११ पर)

उपनिषत् कथा-माला—२०

यज्ञ-प्रसाद

लेखक—महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

(गतांक से आगे)

स्वयं स्वामी जी महाराज ने प्रार्थना के ८ मन्त्रों का सस्वर ऊंची ध्वनि से पाठ किया और—"तेरी इच्छा पूर्ण हो प्रभो तूने अद्भुत खेल रचा है, तेरी ही इच्छा पूर्ण हो"—इन शब्दों के साथ अन्तिम श्वास छोड़ दिया।

इस सूत्रधार पर विश्वास करने वाले का ऐसा ही जीवन होता है। ऐसा व्यक्ति कहता है—

राजी हैं हम उसी मे,
जिसमे तेरी रजा है।
या यूं भी वाह वा है,
और यूं भी वाह वा है॥

तीनों ग्रथित—यज्ञ में

वैदिक वाङ्मय में इस सूत्र और सूत्रधार को जिस एक शब्द म गूंथ दिया गया है, वह "यज्ञ" है। यह वह साधन है जिसके द्वारा दोनों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। जिस समय मानव का प्रत्यक्ष सम्बन्ध "सूत्र" के अन्तगत प्रकृति से होता है, उसे कर्म काण्ड कहा जाता है और जिस समय "सूत्रधार" से होता है उसे ज्ञान कांड और उपासना काड कहा जाता है। कम काड के अन्तर्गत विविध सकाम कर्म का भावनाएँ अनुस्यूत रहती हैं और ज्ञान काड व उपासना काड की ओर प्रगति करने के प्रमुख साधन निष्काम कर्म होते हैं। इन तीनो के बीच किसी प्रकार की भेद की दीवार नहीं है, अपितु तीनो एक दूसरे से आपाततः आबद्ध हैं और एक से दूसरे का ओर प्रगति करने को सहज सीढ़िया है। इस विशाल अर्थ को दृष्टि मे रखते हुए ही यज्ञ को शतपथ ब्राह्मण १।७।४।५ मे "यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म" सबसे अधिक श्रेष्ठ कर्म कहा गया है। कर्म काड के मुख्य आधार यजुर्वेद के इस प्रथम अध्याय के निम्नलिखित प्रथम मन्त्र द्वारा भी मनुष्य को इस श्रेष्ठतम कर्म के साधन से जीवन को सागोपांग उच्च बनाने की प्रेरणा दी गई है—

ओ३म्। इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ देवो व: सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्व मघ्न्या इन्द्राय भाग प्रजावती रनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात् बह्वी र्यजमानस्य पशून् पाहि॥

भावार्थ—हे मनुष्य! अन्न से बल और वायु से प्राणशक्ति प्राप्त करते हुए सर्वोत्पादक प्रभु के चरणों में श्रेष्ठतम कर्म यज्ञ द्वारा उसे समर्पित करो। इसके द्वारा अपने ऐश्वर्य को बढाते हुए नीरोग पशुओं के साथ सम्पर्क रखो। कोई पापी तुम्हारा शासक न हो। उत्तम गौ आदि पशुओं की रक्षा करता हुआ यजमान ईश्वर की रक्षा में रहे।

यज्ञ द्वारा प्रभु की स्तुति

ऋग्वेद का भी प्रारम्भ "यज्ञ" शब्द के साथ हुआ है। मन्त्र इस प्रकार है—

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥
१।१।१

यज्ञ कर्म के प्रकाशक, ऋतुओं के निर्माता, समस्त जगत् के प्रकाशक, योग और क्षेम द्वारा सबके कल्याणकारक, रमणीय पदार्थों को अपनी शक्ति मे बांधने वाले उस ज्ञान स्वरूप प्रभु की मैं स्तुति करता हूँ।

श्री पं० नन्दलाल जी वानप्रस्थी का निम्नलिखित भजन 'यज्ञ' की सुन्दर और भावपूर्ण व्याख्या करता है—

यज्ञ जीवन का हमारे
श्रेष्ठ सुन्दर कर्म है।
यज्ञ का करना कराना
आर्यों का धर्म है॥
यज्ञ से दिशाएं हों सुगन्धित
शान्त हो वातावरण।
यज्ञ से सदा ज्ञान हो और
यज्ञ से हो शुद्ध आचरण॥
यज्ञ से हो स्वस्थ काया
व्याधियां सब नष्ट हों।
यज्ञ से सुख सम्पदा हो
दूर सारे कष्ट हों॥
यज्ञ से दुष्काल मिटते
यज्ञ से जल वृष्टि हो।
यज्ञ से धन धान्य हो
बहु भांति सुखमय सृष्टि हो॥
यज्ञ है प्रिय मोक्षदाता
यज्ञ शक्ति अनूप है।
यज्ञमय यह विश्व है
यह विश्व बल स्वरूप है॥
यज्ञ पुण्य प्रकाश से
सब पाप ताप तिमिर हरें।
यज्ञ नौका से अगम
संसार सागर से तरें॥

महर्षि के शब्दों में—यज्ञ का स्वरूप

महर्षि दयानन्द ने "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" के 'वेद विषय विचार' प्रकरण में वेदों के मुख्य विषय परमेश्वर की प्राप्ति और उसके साधनों का प्रतिपादन करते हुए कर्म, ज्ञान और उपासना को इस ईश्वर प्राप्ति का प्रधान साधन बताया है। इस सम्बन्ध में लोक और परलोक की सिद्धि के लिए यज्ञ के महत्त्व की ओर संकेत करते हुए महर्षि ने इस के कर्म कांड और उपासना कांड—दो भागों का स्वरूप निम्न शब्दों में निर्दिष्ट किया है—

—उन में से दूसरा कर्म कांड विषय है, सो सब क्रियाप्रधान ही होता है। जिसके बिना विद्या अभ्यास और ज्ञान पूर्ण नहीं हो सकते, क्योंकि मन का योग बाहर की क्रिया और भीतर के व्यवहार में सदा रहता है। वह अनेक प्रकार का है परन्तु उसके दो भेद मुख्य हैं—एक परमार्थ, दूसरा लोक व्यवहार। अर्थात् पहले से परमार्थ और दूसरे से लोक व्यवहार की सिद्धि करनी होती है।" इसी धर्म का जो ज्ञान और अनुष्ठान का यथावत् करना है सो ही कर्म कांड का प्रथम भाग है और दूसरा यह है कि जिससे पूर्वोक्त अर्थ, काम और उन की सिद्धि करने वाले साधनों की प्राप्ति होती है।

"सो अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त जो कर्म कांड हैं, उन मे चार प्रकार के द्रव्यों का होम करना होता है, एक सुगन्ध गुणयुक्त, दूसरा मिष्ट गुण युक्त, तीसरा पुष्टि कारक गुण युक्त और चौथा रोग नाशक गुण युक्त। इन चारो का परस्पर शोधन, संस्कार और यथायोग्य मिला के अग्नि में युक्तिपूर्वक जो होम किया जाता है, वह वायु और वृष्टि जल की शुद्धि करने वाला होता है। इस से सब जगत् को सुख होता है और जिसको भोजन, छादन, विमानादि यान, कला कुशलता, यन्त्र और सामाजिक नियम होने के लिए करते हैं, वह अधिकांश से कर्त्ता को ही सुख देने वाला होता है।"

इसी प्रसंग में स्वामी दयानन्द जी पूर्व मीमांसा के दो सूत्रों का प्रमाण देते हुए कहते हैं—

"एक तो द्रव्य, दूसरा संस्कार और तीसरा उनका यथावत् उपयोग करना—ये तीनो बात यज्ञ के कर्त्ता को अवश्य करनी चाहिए। सो पूर्वोक्त सुगन्धादि युक्त चार प्रकार के द्रव्यों का अच्छी प्रकार संस्कार करके अग्नि मे होम करने से जगत् का अत्यन्त उपकार होता है।......यज्ञ से जो भाप उठता है वह भी वायु और वृष्टि के जल को निर्दोष और सुगंधित करके सब जगत् को सुख करता है। इससे वह यज्ञ परोपकार के लिए ही होना है।

यज्ञ—जनता के सुख के लिए

ऐतरेय ब्राह्मण मन्त्र १, अ० २ में यज्ञ का क्या उद्देश्य है, यह इस प्रकार भावपूर्ण शब्दों में बताया गया है—

यज्ञोऽपि तस्यै जनतायै कल्पते यत्रैवं विद्वान् होता भवति।

महर्षि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के इसी वेद विषय विचार' प्रकरण में इस आर्ष वाक्य को व्याख्या करते हुए कहते हैं—

"जनता नाम जो मनुष्यों का समूह है, उसी के सुख के लिए यज्ञ होता है और संस्कार किये द्रव्यों का होम करने वाला जो विद्वान् मनुष्य है, वह भी आनन्द को प्राप्त होता है, क्योंकि जो मनुष्य जगत् का जितना उपकार करेगा, उतना ही ईश्वर की व्यवस्था से सुख प्राप्त होगा। इसलिए यज्ञ अनर्थ, दोषों को हटा के जगत् में आनन्द को बढाता है। परन्तु होम के द्रव्यों का उत्तम संस्कार और होम करने वाले मनुष्यों को होम करने की श्रेष्ठ विद्या अवश्य होनी चाहिए। सो इसी प्रकार के यज्ञ करने से सब को उत्तम फल प्राप्त होता है, विशेष करके यज्ञकर्त्ता को, अन्यथा नहीं।

(क्रमशः)

साम्प्रदायिक दँगे क्यों होते हैं ?

—विशन स्वरूप गोयल

हमारे देश में प्राय. साम्प्रदायिक दंगों के नाम से जो मुस्लिम-हिन्दू दगे होते हैं उन्हे रोकने के लिए स्वतन्त्रता के बाद के ३८ सालो में हमारी सरकार तथा देश के राजनीतिक नेताओ ने बहुत प्रयास किए हैं मगर इन्हे आज तक रोका नही जा सका है। यदि हमारे सत्ताधारी नेता एव अन्य राजनीतिक दलों के नेताओ ने इन दगो की गहराई में जाने का प्रयत्न किया होता तो सभवत: उन्हे इन दगो के होने के कारणों को जानकारी मिल जाती कि इन दंगों के पीछे कौन-सी भावना काम करती हैं । जब किसी रोग या समस्या के कारणों का पता लग जाता है तब उसका समाधान ढूंढने में भी सरलता हो जाती है।

किन्तु यह हमारे देश का दुर्भाग्य ही रहा कि १९४७ के बटवारे की लानत के बाद जो हमें स्वतन्त्रता मिली उसकी सत्ता की बागडोर जिन लोगों ने सम्भाली उन्होंने आज तक इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उनका ध्यान तो मात्र किसी न किसी प्रकार चुनाव में जीत प्राप्त कर सत्ता की कुर्सी पर अपना कब्जा करने की ओर ही रहा है। सत्ताधारी लोगों की देखा-देखी अन्य राजनीतिक दल तथा नेता भी इसी कुर्सी की दौड मे शामिल हो गये और उन्होने भी यही व्यवहार अपना लिया जो शासक दल और उसके नेताओं ने अपना रखा था। इस प्रकार इन दगों की ओर देश के किसी भी उत्तरदायी व्यक्ति ने ध्यान नही दिया कि ये दगे हमारे देश मे क्यो होते हैं ? यदि कभी दगे हुए तो उन के लिए देश के हिन्दू समाज को दोषी ठहराकर उसे कोसने का काम अवश्य करते रहे हैं। १९४७ से पूर्व तो हम सभी विदेशी सत्ता जो हमारे देश मे शासन चला रही थी इन दगो के लिए उसे दोष देते थे कि अग्रेज सरकार अपना शासन चलाने के लिए मुस्लिम हिन्दू दंगे करवाती है। किन्तु अब तो हमारे अपने लोगों के ही हाथ मे सत्ता है तब ये दगे क्यों होते हैं क्या अब हमारी सरकार इन के लिए दोषी नही ?

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब इस्लाम का इस विश्व में अस्तित्व नही था उस समय कुछ दगे आपसी सम्पत्ति, राजसत्ता आदि हथियाने के मामले मे तो होते थे किन्तु मजहब के नाम पर दगे या मारकाट नहीं होती थी। किन्तु मजहब के नाम पर दगो की पहल इस्लाम के अस्तित्व के बाद हुई हैं। इस्लाम मजहब के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद ने जब इस इस्लाम मजहब की नीव डाली और कुरआन शरीफ जिसे मुसलमान अल्लाह की ओर से उतारी हुई मानते हैं वह लिखी गई और इस्लाम मानने वाले सभी लोगों को उस पर चलने के आदेश दिये गये तब से इन मुस्लिम-हिन्दू दंगे अथवा मुस्लिम और अन्य गैर-मुस्लिमों के बीच साम्प्रदायिक दंगों की शुरूआत हुई। इसी सन्दर्भ में मुस्लिम लीग के संस्थापक मुहम्मद अली जिन्नाह ने तो एक बार यहां तक कहा था कि जब तक विश्व में कुरआन का अस्तित्व रहेगा तब तक विश्व में शान्ति स्थापित नहीं की जा सकती। इसका अर्थ यह हुआ कि उन्होंने कुरआन पढी और उन्हें यह पूरा यकीन हो गया था कि कुरआन में जो कुछ लिखा है उसके अनुसार विश्व में शान्ती स्थापित नही हो सकती क्योकि कुरआन में इस तरह की बातें लिखी गयी है जो मुसलमानो को गैर मुसलमानों के साथ दगा करने के लिए उकसाती हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर कुरआन शरीफ लिखे जाने के बाद ही ये साम्प्रदायिक दगो की शुरूआत क्यों हुई ? ऐसी कुरआन शरीफ में क्या बातें लिखी गयी हैं जिससे कुरआन को मानने वाले मुसलमान इन दगों की ओर अग्रसर होते हैं। वास्तव में बात यह है कि कुरआन शरीफ का अध्ययन करने से यह पता लगता है कि कुरआन में ११४ सूरा, ३० पारे और ६०७१ आयते हैं। इन ६०७१ आयतों में से लगभग ८० प्रतिशत आयतें ऐसी हैं जिनमें मुसलमानों को शिक्षा दी गई है कि वे समस्त विश्व के गैर मुस्लिम जगत को या तो मुसलमान बनाकर अथवा उन्हें समाप्त कर समस्त विश्व को दारुल इस्लाम अर्थात समस्त विश्व पर इस्लामी हुकूमत स्थापित करें। कुरआन शरीफ में यह स्पष्ट लिखा गया है कि जो "अल्लाह कुरआन और अन्तिम दिन अर्थात कयामत के दिन पर ईमान नहीं लाता अर्थात मुसलमान बनने से इनकार की नीति अपनाता है उसे तब तक मारो जब तक वह ईमान न ले आये और यदि वह ऐसा न करे तो उसे कत्ल कर दो, मार दो, फांसी पर चढ़ा दो, हाथ पैर विपरीत दिशाओं से काट डालो, गरदनें मारो अथवा उसे देश निकाला दे दो।" यही नहीं कुरआन शरीफ में इससे भी आगे यह भी लिखा है कि जो उपरोक्त तीनों पर ईमान लाने में इनकार की नीति अपनाता है वह कुफ्र करता है कुफ्र का अर्थ है इनकार करना। जो कुफ्र करता है वह काफिर है और काफिर के लिए अल्लाह की फिटकार है और उसे जहन्नुम अर्थात नरक की भड़कती आग में झोंकने की सजा का प्रावधान है। यहां तक भी कुरआन में कहा गया है कि मुसलमानो तुम्हारे बाप और भाई भी अल्लाह, कुरआन और अन्तिम दिन पर ईमान नहीं लाते और कुफ्र की नीति अपनाते हैं तो तुम उन्हें भी अपना साथी या दोस्त मत बनाओ। यदि तुम उन्हे साथी या दोस्त बनाओगे तो तुम्हारी गिनती भी इन काफिरों में ही होगी।

मध्यप्रदेश के बेतिया शहर की मस्जिद के इमाम श्री खुरशीद आलम जो अब हिन्दू बन गये हैं उनके शब्दों मे इस प्रकार कहा गया है, "हजरत मुहम्मद ने कहा था कि हे मुसलमानों अगर तुम जन्नत अर्थात स्वर्ग प्राप्त कर जन्नत की हूरें हासिल करना चाहते हो तो तुम्हारा सबसे पहला काम यह है कि तुम हिन्दुस्थान को विजय करो और उसे दारुलइस्लाम बनाओ। तुम्हारे लिए सबसे अधिक पुण्य का काम यही है।"

ऊपर जो कुरआन शरीफ की आयतों के बारे में कहा गया है कि गैर मुस्लिम जगत को मुसलमान बनाने के लिए हर तरह का मार्ग अपनाओ उसकी पुष्टि करने के लिए नमूने के तौर पर कुरआन की कुछ आयतों का हवाला देना आवश्यक प्रतीत होता है। जिस कुरआन शरीफ से इन आयतों का हिन्दी अनुवाद लिया गया है उसका उर्दू अनुवाद जनाब सैयद अब्दुल आला मौदूदी है और हिन्दी अनुवादक जनाब फारुकुर्साका है। यह कुरआन शरीफ मर्कजी मक्तबा इस्लामी, १३५३, बाजार चितली कब्र द्वारा प्रकाशित की गई है। कुरआन शरीफ की कुछ आयतों का हिन्दी अनुवाद निम्न प्रकार है–

सूरा-२ अलबकरा पारा-१ की आयत संख्या-९८ में कहा गया है, जो लोग अल्लाह और उसके फरिश्तों उसके रसूलो, जिबरील और मीकाइल के दुश्मन हैं अल्लाह उन काफिरों का दुश्मन है।"

इसी सूरा और पारा की आयत संख्या १९०, १९१, १९२– "तुम अल्लाह के मार्ग में उनसे लड़ो जो तुम से लड़ते हैं। जहां भी तुम्हारी मुठभेड़ उनसे हो उनसे लड़ो। उन्हें निकालो जहां से उन्होंने तुम्हें निकाला है। यदि वे तुम से मस्जिद के पास भी लडने से बाज न आये तो तुम भी उनसे लडो और उन्हें नि:संकोच मारो। ऐसे काफिरो की यही सजा है। तुम इनसे लड़ते रहो यहां तक कि वे शेष न रहें या वे अल्लाह के आदेश को मानें अर्थात जब तक वे मुसलमान बनने को राजी न हो जायें।

इसी सुरा और पारा की आयत २२१ में कहा गया है–"तुम मुशरिक अर्थात मूर्ति पुजक औरतो से तब तक शादी न करना जब तक वे ईमान न ले आयें अर्थात मुसलमान न बन जायें। क्योकि ईमान लाने वाली दासी भी मुशरिक अर्थात मूर्तिपूजक कुलीन औरत से उत्तम है, यद्यपि वह तुम्हें बहुत प्रिय हो, और अपनी स्त्रियो का विवाह मुशरिको अर्थात मूर्तिपूजकों से कदापि न करना, जब तक वे ईमान न ले आयें अर्थात मुसलमान न बन जायें क्योकि एक आस्थावान अर्थात ईमान लाने वाला मुसलमान गुलाम मुशरिक भद्र पुरुष से उत्तम है। यद्यपि वह तुमको बहुत प्रिय हो। ये लोग तुम्हें आग को ओर बुलाते हैं।"

सूरा: आले-इमरान पारा ३ की आयत १०, ११, १२ : जिन लोगों ने कुफ्र की नीति अपनायी है, उन्हें अल्लाह के मुकाबले में न उनका धन कुछ काम देगा, न सन्तान। वे नरक का ईंधन बनकर रहेंगे। उनका परिणाम वैसा ही होता, जैसा फिरऔन के साथियों और उनसे पहले के अवज्ञाकारियों अर्थात इनकार करने वालों का हो चुका है कि उन्होंने अल्लाह की निशानियो को झुठलाया है, परिणाम यह हुआ कि अल्लाह ने उनके गुनाहों पर उन्हें पकड़ लिया, और सत्य यह है कि अल्लाह कठोर दण्ड देने वाला है। अत: हे नबी, जिन लोगो ने तुम्हारे आमन्त्रण अर्थात मुसलमान बनने के आमन्त्रण को स्वीकार करने से इनकार कर दिया है, उनसे कह दो कि निकट है वह समय जब तुम नीचा आ कर

साम्प्रदायिक दंगे

रहोगे और जहन्नुम अर्थात नरक की ओर हांके जाओगे जो बहुत ही बुरा ठिकाना है।

इसी सूरः और पारा की आयत संख्या १९ में कहा गया है–"अल्लाह के निकट धर्म केवल इस्लाम है। इस धर्म से हटकर जो विभिन्न मार्ग उन लोगों ने ग्रहण किये हैं जिन्हें किताब दी गयी थी, उनको इस कार्य-नीति का कोई कारण इसके सिवाय न था कि उन्होंने ज्ञान आ जाने के पश्चात आपस में एक दूसरे पर ज्यादती करने के लिए ऐसा किया और जो कोई अल्लाह के आदेश और मार्ग-दर्शन के अनुपालन से इनकार कर दे, अल्लाह को उससे हिसाब लेते कुछ देर नहीं लगती।"

सुरा-४ अन-निसा पारा-५ की आयत संख्या १५०, १५१, १५२— "जो लोग अल्लाह और उसके रसूलों के साथ इनकार की नीति अपनाते हैं, और चाहते हैं कि अल्लाह और उसके रसूलों के बीच अन्तर करते हैं और कहते हैं हम किसी को मानेंगे और किसी को न मानेंगे, और इन-कार और ईमान के बीच में राह निकालना चाहते हैं, वे सब पक्के काफिर हैं और ऐसे काफिरों के लिए हमने यह यातना तैयार कर रखी है जो उन्हें अपमानित कर देने वाली होगी। इसके विपरीत जो लोग अल्लाह और उसके सभी रसूलों को माने, और उनके बीच अन्तर न करें उनको हम अवश्य उनकी मजदूरियां दगे।"

सूरा-५ अल-माइदा पारा-६ आयत संख्या ३३-३४–"जो लोग अल्लाह और उसके रसूल से लड़ते हैं और धरती में, इसलिए दौड़धूप करते फिरते हैं कि बिगाड़ पैदा करें उनका दण्ड यह है कि उनका वध किया जाये, या सूली चढ़ाये जायें, या उनके हाथ पैर विपरीत दिशाओ से काट डाले जाये, या उन्हें देश निकाला दे दिया जाये। यह अपमान और तिरस्कार तो उनके लिए दुनिया में है और परलोक में उनके लिए इससे बड़ा दण्ड है।"

यहां हिन्दी अनुवादक ने अपने फुटनोट २७ में लिखा है–"धरती से अभिप्रेत यहा वह देश है या वह अधिक्षेत्र है जिसमें शान्ति और प्रबन्ध की व्यवस्था करने का दायित्व इस्लामी हुकूमत ने स्वीकार कर लिया हो अर्थात जहां इस्लामी हुकू-मत हो और अल्लाह और उसके रसूल से लड़ने का अर्थ उस स्वस्थ प्रणाली के विरुद्ध युद्ध करना है जो इस्लामी हुकूमत ने देश में स्थापित कर रखी है। इस्लाम धर्मविधिकों की दृष्टि में इससे अभिप्रेत वे लोग है जो हथि-यारबन्द होकर और जत्थाबन्दी करके डाका डाले और लूटपाट करे।

इसी सुरा और पारा की आयत संख्या ५१--"हे लोगो जो ईमान लाये हो अर्थात मुसलमान हो, यहूदियों, ईसाइयों को अपना साथी और मित्र न बनाओ, ये आपस में एक दूसरे के मित्र हैं अगर तुम में से कोई इनको अपना दोस्त बनाता है तो उसकी गिनती भी इन्हीं काफिरों में होगी। निस्सन्देह अल्लाह अत्याचारियों को सीधे रास्ते से वञ्चित कर देता है।"

सूरा-८ अल-अनफाल पारा ९ की आयत संख्या: ३८-३९--"हे लोगो जो ईमान लाये हो, इन काफिरों से युद्ध करो यहां तक कि फितना बाकी न रहे और धर्मपूरा का पूरा अल्लाह के लिए हो जाये अर्थात सभी मुसलमान बन जायें। फिर अगर वे फितना से रुक जायें तो उन के कर्मों को देखने वाला अल्लाह है, और अगर वे न मानें तो जान रखो कि अल्लाह तुम्हारा सरक्षक है और वह सबसे अच्छा संरक्षक और सहा-यक है।"

इसी सुरा की आयत संख्या ६५– "हे नबी, ईमान वालों अर्थात मुस-लमानों को लड़ाई के लिए उभारो अगर तुम में से २० आदमी धैर्यवान हों तो दो सौ पर विजयी होंगें और अगर सौ आदमी ऐसे हों तो सत्य का इनकार करने वालों में से हजार आदमी पर भारी रहेंगे क्योंकि वे ऐसे लोग हें जो समझ नही रखते।"

सूरा ४७ मुहम्मद पारा २६ आयत संख्या ३—"अत: जब इनकार करने वाले अर्थात अल्लाह और कुरआन पर ईमान लाने से इनकार करने वालों से तुम्हारी मुठभेड हो तो पहला काम गरदने मारना है, यहां तक कि जब तुम उनको अच्छी तरह कुचल दो तब कैदियों को मज-बूत बांधो, इसके बाद तुम्हें अधि-कार है एहतान करो या फिदया अर्थात अर्थदण्ड का मामला करो, यहां तक कि लड़ाई अपने हथियार डाल दे। यह है तुम्हारे करने का काम।"

इस प्रकार की कुरआन में अधि-कांश आयते हैं यहां तो केवल १९ आयतें नमूने के तौर पर प्रस्तुत की गयी हैं। इन्हें यहां प्रस्तुत करने से हमारा इरादा कुरआन अथवा इस्लाम का विरोध करना कदापि नहीं है। हमारा मतलब तो केवल लोगों को *कुरआन के सम्बन्ध में जानकारी देना* है क्योंकि वास्तव में कुरआन को न तो सभी मुसलमान पढते हैं और न ही कोई अन्य मजहब वाला। मुसल-मान भी जो कुरआन शरीफ को पढते हैं वे भी केवल इसे 'कलामे-पाक' मानकर अल्लाह की इबादत के रूप में ही पढ़ते हैं बहुत कम मुसलमान ऐसे है जो कुरआन की अरबी आयतों का अर्थ समझते हों और उन पर गहराई से विचार करते हो। इस्लाम मजहब के अनुयायियों की इस नाजा-नकारी का लाभ कट्टरपन्थी मुल्ला और मौलवी पूरी तरह उठाकर इस लाम, कुरआन और शरीयत के नाम पर कुछ लोगो को जो कि पेशेवर शरारती तत्व होते है उन्हें मजहबी जनूनी बना दंगा कराने के लिए भडका देते हैं जिसके परिणाम स्वरूप देश में मुस्लिम-हिन्दू दगे भड़क जाते हैं जिनमे लाखों की सम्पत्ति तो नष्ट होती ही है साथ ही हजारों बेगुनाह लोगो और मासूम बच्चों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है।

वास्तव में इस्लाम के अनुयाइयों को कुरआन की केवल उन्ही आयतों पर अमल करना चाहिए जो अल्लाह की इबादत में लिखी गयी है। शेष आयते जो गैर मुस्लिम जगत के लिए नफरत पैदा करने वाली है वे तो उस समय अब से १५०० साल पहले जब इस्लाम की स्थापना हुई उस समय के अरब के लोगो के लिए लिखी गयी। इसी कारण ये कुरआन शरीफ अरबी भाषा में ही लिखी गई अन्य किसी भाषा में नही। वास्तव में तो सारी कुरआन ही अरब के निवासियों के लिए उस समय के वातावरण के अनुकूल लिखी गयी थी उसका यहां हिन्दुस्थान के वाता-वरण से तो कोई मेल ही नही किन्तु इतने पर भी अल्लाह की इबादत की आयतों पर सभी मुसलमानो को अमल करना चाहिये किन्तु शेष उन आयतों पर जो इनसान को इनसान से अलग करने की बात करती है उन पर अमल नही करना चाहिए। क्योंकि कुरआन के अनुसार ही सारी दुनियां अल्लाह ने ही बनायी है और सब का पालन करने वाला भी अल्लाह ही है। फिर ऐसी स्थिति मे अल्लाह की पैदा की हुई चीज को अल्लाह के मानने वालो को नष्ट करने का कोई अधिकार नही है। यदि वह ऐसा करता है तो वह अल्लाह का विरोधी ही है।

अभी हाल में एक मुस्लिम खातून शाहबानो जिसे उसके पति ने *बुढ़ापे में तलाक देकर घर से निकाल दिया था जब उसने अपनी गुजर बसर के लिए अपने पति से* खर्चे की माग की तो उसने इनकार कर दिया। इस पर बेचारी जब कोई *रास्ता न मिला तो उसने सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाया तो* वह अपने गुजारे के लिए अपने पति से खर्चा लेने में कामयाब हो गयी क्योंकि सुप्रीम कोर्ट ने उसके हक में फंसला दिया। इस पर बहुत सारे कट्टरपन्थी मुल्लाओ ने बावेला खड़ा कर दिया कि यह तो मुस्लिम परसनल ला और शरीयत मे हस्त-क्षेप है। समझ मे नही आता कि शरायत और मुस्लिम परसनल ला जो कुरआन के अनुसार है वह अरब देशो के लिए ही तो है क्योंकि कुर-आन केवल अरबी भाषा में इसीलिए लिखी गयी थी कि वह अरब के लोगो के लिए ही थी न कि सारी दुनिया के लिए। हमारे इन मुसल-मान दोस्तों को इस बात पर विचार करना चाहिये कि जो कुरआन अरब के लोगों को समझाने के लिए लिखी गयी थी। यहा हिन्दुस्थान मे हिन्दु-स्थान की सभ्यता और सस्कृति के अनुसार कानून चलेगा या फिर अरब की सस्कृति और सभ्यता का कानून। दुनिया के किसी भी देश मे अपनी सस्कृति और सभ्यता के आधार पर कानून चलते हैं न कि किसी विदेशी सभ्यता के अनुसार। क्या मेरे मुस-लमान दोस्त पाकिस्तान मे रहने वाले हिन्दुओ के लिए वहा की सभ्यता के खिलाफ हिन्दू परसनल ला के अधि-कार दिलवाने के लिए कोई आन्दो-लन करने की स्थिति में है कदापि नही। मेरे यहां के मुसलमान दोस्तों ने तो कभी पाकिस्तान के हिन्दुओं को अधिकार दिलाये जाने के बारे में एक शब्द भी नही बोला है। इस लिए हमारे मुस्लिम मित्रों को अब यह सोच लेना चाहिए कि यहां हिन्दुस्थान के वातावरण, उसकी संस्कृति और सभ्यता के अन्तर्गत आने वाले कानून हा चलाये जायें उन्हें यहा अरब के कानूनो को चलाने के बारे मे कोई कदम उठाना अनु-चित ही है।

इसी सुप्रीमकोर्ट के फंसले को लेकर मैं यहा आजमगढ उत्तरप्रदेश के इमाम जनाब ओबेदुल्लाह खा के एक भाषण के बारे मे उल्लेख करना आवश्यक समझता हू। उन्होने राज-स्थान के पालीनगर मे एक मिल्लत में अपना भाषण देते हुए कहा है, "मुस्लिम सिटी कोर्ट के पाब्न्द नही

(शेष पृष्ठ ११ पर)

स्नेह मूर्ति स्वामी श्रद्धानन्द

संस्मरण एक वृद्ध स्नातक के

--आचार्य दीनानाथ सिद्धान्तालंकार

महर्षि दयानन्द महाभारत काल के बाद प्रथम महापुरुष थे जिन्होंने अपने समस्त ग्रन्थो, वेदभाष्यो मे आचाय शिष्य के पुनीत आध्यात्मिक सम्बन्धो को जागृत करने के लिए गुरुकुल शिक्षा पद्धति पर विस्तार से प्रकाश डाला है। महर्षि प्रदर्शित इसे ठोस रूप देने के लिए जिस महापुरुष ने अपना तन, मन, धन सर्वस्व अर्पित कर दिया वे स्वनामधन्य महात्मा मुन्शाराम (स्वामी श्रद्धानन्द) थे। भारत के प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध सन् १८५७ से एक वर्ष पूव १८५६ फरवरी मे पजाब के जिला जालन्धर के तलवन ग्राम मे एक समृद्ध खत्री परिवार मे जन्म लेकर, जावन में मात्र दो तीन बार स्वामी दयानन्द के बरेली में अल्पकालोन दर्शन ने जीवन मे एक क्रान्ति का प्रादुर्भाव किया। फलत: आकण्ठ विषम कर्दभ मे लिप्त मुंशाराम अपने आचाय के बताये माग पर चलते हुए गुरुकुल शिक्षा पद्धति का साक्षात् पुनरुद्धारक बन गया। सन् १९०२ मे स्वामो जी ने भागीरथो के तट पर अपने दोनों पुत्रो हरिश्चन्द्र और इन्द्र और ३० बालकों सहित हरिद्वार से ५६ मील दूर रेतीला मैदान पार करने के बाद मुंशी अमर्लसिह द्वारा दान में प्रदत्त कांगड़ी ग्राम सहित गगा तट पर साय ५ बजे पावन वैदिक यज्ञप्रार्थना के बाद गुरुकुल को आधारशिला रखी।

भोरवेला मे सारे आश्रम का चक्कर

कुलपिता के रूप मे स्वामी श्रद्धानन्द का गुरुकुल के लगभग ३०० छात्रो से असीम प्यार था। वेनिद्रग्रस्त छात्रो को व्यवस्थित करते थे। ऐसे भी उदाहरण हैं जब बालक निद्रा में बेहोश टाग ऊपर किये हुए बिस्तर पर पड़ा है, ग्रीष्मऋतु में उसके नोचे विषैला साप बैठा है किंचितमात्र भी खटपट घातक हो सकती है कुलपिता ने कक्षा के अधिष्ठाता की सहायता से बालक को गोद में उठाया और फिर साप को मारने की चेष्टा की। इसी प्रकार अस्पताल मे पड रोगी जब वहां कोई सेवक नही बिस्तर के पास चिलमची नही, रोगी को वमन होता है तो कुलपति अपने कन्धे पर रखे उत्तरोय मे सभाल बाहर फक देते और रोगी के होश म आने तक उसके सिरहाने बैठे रहते।

पिता की मृत्यु: आचार्यवर के स्नेह शब्द--

लगभग आठ वर्ष की आयु में जब मेरे चाचा मुझे गगा पार गुरुकल भूमि पर छोड गये, उस समय ४-५ अन्य बालक भी हम सबका रोना

चिल्लाना स्वाभाविक ही था। श्वेत दाढी भव्यमूर्ति तेजस्वी, कन्धे पर प्रान्त उत्तरीय सहित लगभग ६ फुट ऊचे वृद्ध महानुभाव तब वहा आये हममे से प्रत्येक को गोदो मे बैठा और दाढी के चुभते बालों सहित हमें गहरे प्रेम और आत्मीयता से पुचकारते हुए कहा---बच्चो ! मैं तुम्हारा माता पिता हू रोओ मत, तुम्हें अभी मिठाई देता हू···उस समय की सान्त्वना आज पौने सदी के बाद भी याद है। जब मैं गुरुकुल की ६-७ वी कक्षा में पढता था तब महात्मा मुशोराम का साप्ताहिक हिन्दी पत्र 'सद्धर्म प्रचारक' वहीं से निकलता था। अचानक कक्षा में "सद्धर्म प्रचारक' का वह अक मेरे हाथों में आया जिसमें मेरे पिताजो के स्वर्गवास के समाचार के साथ उनकी इस वसीयत का भी स्वामी जी के शब्दो में जिक्र था कि वृद्ध आर्य और मेरे परममित्र श्री होरानन्द जी (मेरे पिताजी) ने लिखा है कि उनका मृत्यु का समाचार गुरुकुल में पढ़ रहे उनके पुत्र दीनानाथ और कन्या महाविद्यालय जालन्धर मे पढ़ रही पुत्री परमेश्वरी देवी को न दिया जाय और नहीं उन्हें घर लाया जाय क्योंकि उन्हें माताजी दोनो बच्चो को वापस गुरुकुल नही भेजेंगी। पिताजी की मृत्यु के समाचार से मेरा रोना स्वाभाविक ही था। आचार्य महात्मा जी मुझे तत्काल अपने बगले ले गये, अत्यन्त आत्मीयता और स्नेह से बोले --तुम किसी प्रकार की भी चिन्ता मत करो, मैं तुम्हारा पिता हू, तुम्हारी पढ़ाई में किसी प्रकार का विघ्न नही पडगा, तुम निश्चिन्त हो मेहनत से पढ़ते जाओ ? आज मेरी वृद्ध आयु मे भी ये शब्द कानो मे गूंज रहे हैं। मेरे सदृश अन्य कई छात्र भी इसा प्रकार पढ रहे थे यह बाद मे पता चला।

अध्यापक छात्र के तनावपूर्ण सम्बन्ध

पाश्चात्य चिन्तन, सभ्यता और सिद्धान्तों से प्रभावित आज के शिक्षा क्षेत्र में एक बड़ी समस्या अध्यापक व छात्र के सम्बन्धों की है। शिक्षण संस्थाओं में 'अनुशासन' का सर्वथा अभाव है--वहाँ हत्या, अपहरण विभिन्न स्वरूपों के षडयन्त्र इत्यादि कौन सी ऐसी बुराई है जो आज अध्यापक छात्रो में नही है। इसके सर्वथा विपरीत गंगापार गुरुकुल और स्वामी श्रद्धानन्द जी के आचार्य काल में सर्वथा आज की तुलना मे अकल्पनीय और सतयुग सदृश स्थिति थी। कई उदाहरण हैं। केवल एक ही उपस्थित करता हू अध्यापक छात्र की दृष्टि से प्रसगवश यह बता दूं कि स्वामी जी के आचार्यकाल मे किसी छात्र को शारीरिक दण्ड नही दिया जाता था। उनका दृढ विश्वास था कि अपराधी छात्र की मानसिक स्थिति अध्यापक के स्नेह सद्व्यवहार सहानुभूति इत्यादि से ऐसी बन जाय कि वह प्रायश्चित एवं पश्चाताप द्वारा स्वय अपने को दण्डित करे। शारीरिक दण्ड से आज के शिष्य का आत्म संशोधन न होकर उसके मन में प्रतिशोध की भावना पनपने लगती है। गुरुकुल को कई घटनाओ मे से स्वामी जी के आचार्यकाल की एक घटना यहाँ उपस्थित करता हू।

स्वामो जी द्वारा अमोघ उपाय

महाविद्यालय विभाग का आश्रम विद्यालय विभाग से पृथक गगा तट पर था। मैं उस समय महाविद्यालय की ११ वी कक्षा मे था। आश्रम अध्यक्ष पद पर प्राध्यापक श्री सुधाकर जी थे जो बाद मे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली के मंत्री हुए हैदराबाद सत्याग्रह से सम्बद्ध रहे। वह रात को दस बजे सब कमरों में बत्ती बुझाने और छात्रों को सो जाने, प्रात: ४ बजे जागने पर बार बार जोर देते रहते। इससे कुछ छात्रों का असन्तुष्ट होना स्वाभाविक ही था। पौष मास की शोत ऋतु को एक रात १० बजे आश्रम का चक्कर लगा बत्ती बुझे अपनी कमरे मे बिस्तर पर ज्यों ही वह लेटे गगा के बर्फ सदृश जल से तर बतर हो गये। उन्हो गीले कपड़ों के साथ वह तत्काल आचार्य वर श्री स्वामी जी के बंगले जा पहुंचे। सब हाल सुन वह भी बड़े दुखी हुए। उन्ह नये वस्त्र दे वहीं अपने बंगले पर सोने की व्यवस्था कर दी। अगले दिन प्रात: लगभग ९ बजे आश्रम पहुंचे। आचाय जी के इस प्रकार अचानक आ जाने से छात्रगण भी घबरा गये। सबको सभा भवन में इकट्ठा होने का आदेश दिया गया। अधिकांश छात्र तो इस घटना से सर्वथा अपरिचित थे। स्वामी जी ने अध्यापक सुधाकर जी से गहरी सहानुभूति प्रकट करते हुए अपने अमोघ शस्त्र प्रायश्चित पर बल देते हुए कहा--छात्रो ! मैं शारीरिक दण्ड के पक्ष में नही है। जिस छात्र ने यह अनुचित कार्य किया है वह स्वयं मेरे पास दोपहर १२ बजे तक आकर प्रायश्चित के साथ अपराध स्वोकार कर ले। यदि इस अवधि मे अपराधी छात्र नहीं आया तो मैं स्वय आचार्य होने के नाते अपने को उत्तरदायी ठहरा प्रायश्चित करूगा। पूज्य आचार्य जी की आंखें अश्रु भरी और गला रुधा हुआ था। जब वह यह घोषणा कर रहे थे यह कहकर स्वामी जी वहां से अपने निवास स्थान पर चले गये।

आचार्य वचनों का चमत्कारी प्रभाव

आचार्य श्री की इस मर्मांतक वेदनामय अपील का चमत्कारी प्रभाव पड़ा। आध घण्टे के भीतर ही अपराधी छात्र ने आचार्य श्री के चरणों मे उपस्थित हो अपराध स्त्रीकार कर एक मास तक एक समय ही भोजन करने का दण्ड स्वय ग्रहण कर प्रायश्चित करने का दण्ड स्त्रीकार करने का निश्चय किया। प्रसग वश यही छात्र सस्कृत को उच्चतम परीक्षाए उत्तीर्ण कर पटना विश्व विद्यालय में संस्कृत का प्राध्यापक बना।

प्राचोन आर्य क्या चाहते थे

हे आर्य ! तेरी दुर्दशा पर किस को रोना नही आता कौन सा पत्थर दिल है जो तेरी घोर विपत्तियो और तेरे वैभवपूर्ण अनीत का ध्यान कर न पिघल जाता हो, तेरी सच्ची धार्मिकता तो विश्वप्रसिद्ध है।

जहां तुझे आर्य नाम का सम्मान मिला है वहां सच्ची यात्रा भो तू ही कर सकता है। जिन लोगों को ईश्वर का ज्ञान नही, जिनको आध्यात्मिक वस्तुओं का ज्ञान नही उनके जीवन का लक्ष्य इन्द्रियों को सुख देने वाली वस्तुओं की प्राप्ति के सिवाय और क्या हो सकता है ? यदि कभी आध्यात्मिक आनन्द अर्थात समाधि का ज्ञान हुआ तो तुझको। यदि वर्तमान काल में आयी अपनी दुर्बलताओं को तू दूर कर दे तो तू आज भी संसार का शिरोमणि बन सकता है।

देश की भाषा...

(पृष्ठ १० का शेष)

कारण है। और महात्मा जी के भाषण के अनुसार देश की कितनी बड़ी हानि हो रही है, उस होने वाली हानि की ओर अभी तक ध्यान नहीं देने से देश में अनैतिकता को बढ़ावा मिल रहा है। जिसके परिणामस्वरूप नित प्रति उपद्रव होते रहते हैं।

अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को आसीन करने के लिए विधान द्वारा अवधि नियत कर दी गई थी। उसके अनुसार हिन्दी अपनानी चाहिये थी, परन्तु कुछ अंग्रेजी के मोहजाल में फंसे जिनकी मातृ भाषा अंग्रेजी नहीं है को प्रसन्न करने के लिए शासन को कहना पड़ा कि बहुसंख्यकों की भाषा की अवहेलना करके अंग्रेजी थोपी जा रही है और विधान से सम्मत हिन्दी को उन अल्पसंख्यक जिनकी मातृ भाषा अंग्रेजी नहीं है परन्तु अंग्रेजी के प्रति उनके मोह को देखकर हम भी उनके साथ मोह में फंसकर महात्मा जी के मन्तव्य और विधान की अवहेलना करते हुए कहेंगे कि अंग्रेजी के पुजारियों पर हिन्दी थोपी नहीं जायेगी और हमारी इस नीति से देश को होने वाली हानि की हम परवाह नहीं करेंगे। उत्तर प्रदेश में जब आदरणीय गोविन्दवल्लभ पन्त जी मुख्यमन्त्री और राजर्षि पुरुषोत्तम दास जी टण्डन अध्यक्ष थे तब हिन्दी के लिए विधान पारित करके हिन्दी को राजभाषा का पद दिया जा चुका है। इस के विपरीत उर्दू को दूसरी राजभाषा बनाने का प्रश्न ही अवैधानिक ठहरता है और इस अवैधानिक प्रस्ताव को रखने वालों को इसकी अवैधता को सिद्ध करने वाले प्रो० वासुदेव सिंह जी को मंत्रिमण्डल में न लिया जाना यह सब देश का सदा अहित करने वालों को प्रोत्साहित करने की नीति को स्पष्ट प्रकट करता है और यह दब्बू नीति देश के लिए हानिकारक सिद्ध हो रही है। और इस दब्बू नीति के परिणामस्वरूप देशद्रोही तत्त्व कभी हैदराबाद में कभी अहमदाबाद में कभी बड़ोदा में रक्तपात कराते रहते हैं और ऐसे तत्वों का गढ़ मुख्यत: भोपाल और सारा उत्तर प्रदेश ही माना जाता रहा है और यही तत्त्व भारत को अपना देश नहीं मानते हुए होमलैण्ड की मांग करता चला आ रहा है और भारत को पाकिस्तानी राज्य बनाने के लिए प्रयत्न करता रहता है। फिर शासन इन बातों से अनभिज्ञ नहीं है। यह सब जानते हुए भी अपनी ढिलमिल नीति के कारण देश द्रोहियों के विरुद्ध कुछ भी कर नहीं पा रही है। जिस के कारण देशद्रोही प्रोत्साहित हो रहे हैं।

अब समय की मांग है कि होम लेण्ड की मांग करने वालों अथवा अराजकता फैलाने वालों के सुधार के लिए अक्लमन्द जो देशहित को सर्वोपरि मानते आ रहे हैं की समिति बनाई जाकर सुधार किया जाय और सुधार नहीं हो और फिसाद हों तो फिसादियों को देश से निकाला जाय, और इसके सिवाय महात्मा गांधी ने सौदेपुर के अपने भाषण में जो कहा था वही इस लेख के प्रारम्भ मे लिखा है का पालन किया जाकर देश की जो बड़ी हानि हो रही है उससे देश को बचाया जाय।

डा० कमलसिंह
एम.डी.एस एच. (वि०)
पो-२१ ग्रीन पार्क एक्सटेन्शन
नई दिल्ली-११००१६

साम्प्रदायिक दंगे

(पृष्ठ ७ का शेष)

हैं, वे किसी कोर्ट में सफाई देने नहीं जायेंगे, लेकिन कुरआन या परसनल ला के खिलाफ कोर्ट में जाने वालों का सफाया कर दिया जाएगा। यदि परसनल ला बदलने की कोशिश हुई तो रा० स्व० संघ के सरसंघ चालक बाला साहेब देवरस, भाजपा के अध्यक्ष अटलबिहारी वाजपेयी और प्रधानमन्त्री श्री राजीव गान्धी को भी "कलमा" पढ़ने के लिए मजबूर होना पड़ सकता है। इस प्रकार के कट्टरपन्थी मुल्ला या मौलवी ही एक इनसान को दूसरे इनसान के खिलाफ भड़काते हैं। जबकि अल्लाह के लिए सभी इनसान समान हैं। क्या जनाब ओबेदुल्लाह खां यह नहीं जानते कि वे हिन्दुस्थान में रह रहे हैं अरब में नहीं कुरआन तो जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है अब से १५०० साल पहले मदीना और मक्का में उतारी गयी थी जो अरब वालों के लिए थी न कि हिन्दुस्थान में रहने वालों के लिए। यहां की तो संस्कृति सभ्यता और वातावरण मानव को मानव से जोड़ने की बात कहते हैं तोड़ने की नहीं। यहां तो इसीलिए कहा गया है कि वसुधैव—कुटुम्बकम्" सारी दुनिया एक परिवार है। सभी सुखी रहें। यहां का हिन्दू समाज तो किसी अन्य समाज से द्वेष भाव रखता हो नहीं है उसका तो आधार ही मानव का मानव से प्रेम है न कि नफरत। तो फिर नफरत फैलाने का उद्देश्य तो यहां उचित और ठीक प्रतीत नहीं होता। इस लिए मेरे मुस्लिम दोस्तों को इन कट्टरपन्थी मुल्लाओं जो कि अपनी तूती बजाने के लिए हजारों बेगुनाह लोगों और मासूम बच्चों की जानों से खिलवाड़ कराते हैं उनके बहकावे मे न आकर राष्ट्र की मुख्य धारा में समरत होकर देश को अपनी मातृभूमि मानकर इसकी एकता और अखण्डता को बनाये रखने के लिए ही काम करना चाहिए न कि इसे तोड़ने और अन्य समाजों को मारने काटने की बात करनी चाहिए। बेशक कुरआन की उन आयतों जिन में अल्लाह की स्तुति की गयी है अमल करना चाहिये शेष पर नहीं। यहां अरब के कानून चलाना यदि देशद्रोह नहीं तो अव्यावहारिक तो अवश्य ही हैं, जो दुनिया के किसी भी देश में नहीं है। क्या इंगलैण्ड में जो मुसलमान रहते हैं उन्हें वहां कोई कुरआन या शरीयत के अनुसार कानून अलग से दिया गया है। कोई नहीं। इस लिए अब हमारे मुस्लिम मित्रों को समझ लेना चाहिए।

हमारी वर्तमान सरकार को भी अब कुरआन को ऐसी आयतों को समझना होगा जो इस देश में मानव को मानव के खिलाफ भड़काने की बात करती है जिनके कारण देश में मुस्लिम-हिन्दू दंगे होते हैं, तभी इन दंगों को रोका जा सकेगा। हमारी सरकार को अब अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक के भेदभाव को समाप्त कर सबके लिए समान सिविल कानून बनाना चाहिये और मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति छोड़कर सर्व-पन्थ समभाव की नीति अपनाकर इस देश के इन दगों को सदा के लिए समाप्त कर देना चाहिए। यहां एक बात और उल्लेखनीय है कि कश्मीर घाटी आज एक मिनी पाकिस्तान बन चुकी है। उसका कारण संविधान की धारा ३७० है जिसके कारण वहां राष्ट्रविरोधी तत्त्व सक्रिय हैं। इसलिए इस धारा को भी समाप्त कर कशमीर को देश की मुख्यधारा में शामिल किया जाये। तभी हमारी सरकार तथा राजनीतिक नेता इन मुस्लिम हिन्दू दंगों को समाप्त कर सकेंगे। यदि ऐसा न किया गया तो एक दिन ऐसा आयेगा जब मानव जाति परस्पर लड़कर स्वत: ही समाप्त हो जायेगी।

(पृष्ठ २ का शेष)

मोहक मदिरा=शराब पीकर संसार पागल हो रहा है। धन के मद में मस्त भी इसको नही दीखता। धन का नशा बड़ा तीव्र होता है। इन तीनों की दृष्टि इस संसार से परे नही जाती। वे इस लोक एव अपने देह को ही सब कुछ समझते हैं। अत जन्म-मरण के चक्कर में फंसे रहते हैं।

वेद कहता है—

'भय परस्तात्' अरे! पीछे तो भय है।

अत इस पर मत चल।

अभयं ते अर्वाक्—इस ओर अभय है।

आ, इधर चल।

रजि० नं० डी० (सी०) ७५६ साप्ताहिक 'आर्यसन्देश' १९ जनवरी, १९८६ बिना टिकट भेजने का लाइसेंस नं० यू १३९
R. N. No. 32387/77 Post in N.D.P.S.O. on 17-1-86 Licenced to post without prepayment, Licence No. U 139

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन : ३१०१५० के लिए डा० धर्मपाल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा वैदिक प्रेस, गली नं० १७, कैलाशनगर, दिल्ली-३१ में मुद्रित। रजि० नं० डी० (सी०) ७५६

ओ३म्

साप्ताहिक

आर्य सन्देश

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

वर्ष १० : अंक १० | रविवार, २६ जनवरी, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ | माघ २०४२ | दयानन्दाब्द—१६१

मूल्य : एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश में ५० डालर, ३० पौंड

ईसाइयत की भड़कती आग में

बरसों से झुलस रहा है उत्तर-पूर्व

-देवेन्द्र ठेनुआ

पांच अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं के बीच बसे उत्तर-पूर्व के सात राज्य बरसों से धर्मान्तरण की आग में झुलस रहे हैं। इन सात राज्यों को पश्चिम बंगाल का सिलीगुड़ी क्षेत्र बाकी भारत से जोड़ता है। ६० कि० मीटर चौड़ी भारतीय जमीन से इन राज्यों को जरूरी सामान पहुंचता है। सामाजिक दृष्टि से ये कितने महत्त्वपूर्ण प्रदेश हैं इसका अंदाज इसी भौगोलिक स्थिति से लगाया जा सकता है।

इन राज्यो को मैदानी और पर्वतीय दो हिस्सों में बांटा जा सकता है। धर्म परिवर्तन का काम पर्वतीय लोगों में ज्यादा है। जबकि चर्चों, पादरियों और धर्म प्रचारकों की संख्या असम में है। असम को उन इलाकों का सहायता केन्द्र बनाया गया है। इन क्षेत्रों के इलाके और आबादी जितनी मेल खाती हैं, समस्याएं भी उतनी ही। अरुणाचल को समस्या असम से भी जटिल है। वहां धर्मान्तरण विरोधी विधेयक पास हुआ तो तमाम विदेशी रेडियो एक सुर में बोल उठे, 'भारत में ईसाइयों पर अत्याचार हो रहा है। उन्हें धर्म-प्रचार की छूट नहीं है। वैसे बाकी राज्यों के अनुपात में अरुणाचल में बहुत कम ईसाई हैं। उस राज्य के लिए मिशनरियों ने व्यापक योजनाएं बनाई हैं।

जनजातियों के बीच मिशनरियों का प्रचार आमतौर पर होता है—तुम हिन्दू नहीं, प्रकृति पूजक हो। हिन्दुओं से एक अलग धर्म हो। हिन्दू तुम्हें बहका कर हावी होना चाहते हैं। उनसे तुम्हारो संस्कृति और परम्परा नष्ट हो जाएगी।' वे लोग जन-जातियों में घुलमिल जाते हैं, उन की बोलियों को रोमन लिपि देते हैं, रोमन लिपि से उनकी बोलियों में बाइबिल छापते हैं।

एक बार डा. चेस्टर मैन के पूछने पर महात्मा गांधी ने इन जनजातियो के बारे में कहा था—'ये जनजातियां औषधियों की तरह हैं। उनकी जड़ हिन्दुत्व के साथ गहराई तक जमी हैं।' देश की पहली जनगणना अंग्रेजों ने १८८१ में कराई। जनगणना आयुक्तों को सरकार ने निर्देश दिए—'जनजातीय लोगों को प्रकृति पूजक लिखें। बहुत से आयुक्तों ने उसे मानने से इनकार कर दिया। आयुक्त एमए बेस ने लिखा—'जनजातियों और हिन्दुओं के बीच अन्तर करना व्यर्थ है।' आयुक्त सर हरबर्ट रिसले ने कहा—'स्वय हिन्दू ही दर्शन से रूपांतरित हुए प्रकृति पूजक हैं। उन के बीच रेखा नहीं खींच सकते।

उन राज्यों के पर्वतीय लोगों को सभ्यता और सस्कृति को सरक्षण देने के नाम पर अंग्रेजों ने 'इनर लाइन' लगाया। बाहरी लोगों के वहां जाने पर पाबन्दी लगा दी। बिना 'इनर लाइन' के कोई भी बाहरी आदमी वहां नहीं जा सकता। अंग्रेजों ने 'इनर लाइन' की आड़ में खूब मनमर्जी की थी। अंग्रेजों ने ही चर्चों को उन राज्यों में भेजा। उस समय नगा पहाड़ी अमेरिकी बेप्टिस्टों, मेघालय-मिजोरम की पहाड़ी अंग्रेज बेप्टिस्टों और त्रिपुरा, असम, अरुणाचल कैथोलिक्सों के हिस्से में आया। अब बंटवारे की वह योजना बदल गई है और सभी चर्चों के काम एक-दूसरे के राज्य में चल रहे हैं। यह परिवर्तन फेडरल काउंसिल आफ चर्चेज की अमेरिका में हुई मीटिंग के बाद हुआ। काउन्सिल ने कहा—अब लड़ाई खत्म हो गई है। दुनिया के चर्च मिल कर काम करें।' इसी तरह का एक समझौता कैथोलिक और प्रोटेस्टों के बीच हुआ। इनमे मध्यस्थता ब्रिटेन की महारानी ने की थी।

असम, मेघालय और मिजोरम में १३५ प्रतिशत ईसाई हैं। नागालेंड में २५२, मणिपुर में ३०९ और त्रिपुरा में २०४ प्रतिशत ईसाइयों की आबादी है। 'पूर्वोत्तर भारत में ईसाइयत' नाम की एक किताब मे छपे विवरण के अनुसार अरुणाचल मे अन्दर ३६०० ईसाई हैं।

चर्चों के धर्मान्तरण वाले काम से इन राज्यों में अलगाववाद और हिंसा का माहौल पल रहा है। 'नगालेण्ड में बेप्टिस्ट चर्च की वृद्धि' मे अपना लक्ष्य स्पष्ट किया गया है कि—'नगा राष्ट्रवादियों का अन्तिम लक्ष्य स्वाधीन सर्वप्रभुता सम्पन्न नागालेंड है।' इन कथित राष्ट्रवादियों ने दर्जनों तोड फोड और हिंसा की वारदाते की हैं। उन्होंने दीमापुर का शिव मन्दिर तोड़ा, रामकृष्ण आश्रम के बच्चों को प्यासा तड़पाया, शिलांग में काली पूजा के समय पथराव किया, मिजोरम के उपराज्यपाल का अपहरण और हत्या करने का षड्यन्त्र रचा। इस तरह हिंसा की अनेकों घटनाएं हैं। जब भी हिंसा दबाने की गलत कोशिश सरकार ने की चर्च बीच-बचाव पर उतर आया। शान्ति-फार्मूले सुझाए जाने लगे।

पर दरअसल ये लोग शांति वार्ता से समाधान निकालना चाहते हों, ऐसा नही लगता। जब भी शान्ति वार्ता हुई उग्रवादी तत्व धन बटोरने और सगठित होने में लग गए।

चीन की सीमा से लगा अरुणाचल है। ब्रह्मपुत्र नदी इस प्रदेश को दो भागों मे बाटती है। ब्रह्मपुत्र के पूर्व में डिबांग वैली, लोहित और तीरप जिले हैं। इन जिलो में डिब्रूगढ, तिनसुखिया, नाहरकटिया और नगालेंड के बेप्टिस्ट चर्च काम करते हैं। नदी के पश्चिम मे सियांग, सुबानसिरी और कमिंग जिले हैं। इन जिलो का काम लखीमपुर, हरमती और तेजपुर के चर्च देखते हैं। तीरप बेप्टिस्ट क्रिश्चियन समिति का काम एलएम योगर (अरुणाचली) करते हैं। नाहर कटिया मे फादर जौब तीरप और लोहित जिलो मे सक्रिय हैं। डिबांग वैली जिले की जिम्मेदारी अरुणाचली बेप्टिस्ट क्रिश्चियन चर्च के अध्यक्ष थी थोन लेगू पर है। फादर जोज हरमती क्षत्र से लगे हिस्सो पर छाए हैं। चर्चों के हिसाब से राज्य को राजधानी इटानगर भी उन्ही के हिस्से मे है। बोआ तामा (विधायक) सुबानसिरी जिले मे चर्च को सेवा कर रहे है। उसी जिले का ऊपरी हिस्सा तादर तान यान (पूर्व

(शेष पृष्ठ ५ पर)

सम्पादक—[illegible] 'सुधांशु' एम० ए० | व्यवस्थापक—डा० गणेशीलाल | प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल

संस्कार महत्व

—डा० विश्वबन्धु 'व्यथित'

मानव सस्कारी जीव है, इसीलिए सुसम्कृत मानव ही श्रेष्ठ मानेव, महामानव या देव कहलाने का अधिकारी बनता है। यूं तो मानवीय उन्नति के अनेक भौतिक अभौतिक साधन हैं। हमारा सम्पूर्ण प्रयत्न उन्ही के ममायोजन द्वारा अपने सांसारिक जीवन को सुख-सुविधा-सम्पन्न करने मे लगा रहता है। लेकिन मानव का चरम लक्ष्य केवल खाना पीना और मौज उड़ाना नहीं है। इतना मात्र होता तो उसे सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी क्यों कहा जाता? बुद्धिजीवी होने के कारण उसमें चिन्तन, विवेक और अध्यात्म की अनुपम शक्तिया विराजमान हैं, इन्ही के बल पर वह सीमातीत प्रगति करता हुआ मानवीय क्षमता के उच्चतम शिखरो को छू सकता है। "संस्कार" एक ऐसा वलीय साधन है कि उपयुक्त साधना द्वारा उसे सिद्ध करके हम अपने लक्ष्य का अनुसधान करने मे सुनिश्चित सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

इस दृष्टि से सस्कार और संस्कृति परस्पर सम्बद्ध भी हैं और एक दूसरे के पूरक भी। दोनो शब्दो की स्वरूप-सरचना में भी, अद्भुत समता है। दोनो में सम् उपसर्ग के साथ डुकृ ञ् करणे (कृ) धातु का योग है। एक मे 'घञ्'' प्रत्यय है। दूसरे में "क्तिन्"। दोनो प्रत्यय भावार्थक हैं। लेकिन काफी समानताए होने पर भी दोनो शब्द पृथक् क्षेत्रों में व्यवहृत होने से कुछ असम्बद्ध से प्रतीत होने लगते हैं। सस्कृति बहुत व्यापक अर्थों मे प्रयुक्त होता है, तो सस्कार सीमित क्षेत्र से अनुसम्बद्ध रह गया है। इसोलिए 'सस्कृति'' के मुकाबले में "संस्कार" की चर्चा अत्यल्प हो होती है। यहाँ तक कि सस्कार शब्द का अधिकतम क्षेत्र तो शिक्षा पद ने समेट लिया है, और सस्कार पद का अथ संकोच होते-होते जातकर्म-नामकरण और चूडाकर्म आदि सोलह संस्कारों से सम्बन्धित कर्मकांड की ही सज्ञा संस्कार के रूप में प्रसिद्ध होने लगी। फिर समाज में सोलह सस्कारों की परिपाटी केवल विवाह और अन्त्येष्टि में सीमित रह जाने से हम केवल अंतिम संस्कार को ही संस्कार कहने लगे। 'सस्कार से पहले भोजन नहीं करना। सस्कार करने का अधिकार बड़े बेटे का होता है। संस्कार के बाद स्नान आवश्यक है" आदि वाक्य धड़ल्ले से बोले समझे जाते हैं। लेकिन इस कथित अर्थसकोच की उपस्थिति में भी "सस्कार" शब्द अपने अर्थ की गरिमा को सुरक्षित रखने में समर्थ है। प्राचीन काल से इस शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग होता आ रहा है।

स्मृति वचन है—

> जन्मना जायते शूद्रः
> सस्काराद् द्विज उच्यते।

हितोपदेश कहता है—

> यन्नवे भाजने लग्नः
> संस्कारो नान्यथा भवेत्।

दवल ऋषि ने लिखा—

> व्रतहीना न संस्कार्याः
> स्वतन्त्रास्वपि ये सुताः।

व्यास मुनि का कथन है—

> ये तु जाता समानासु
> सस्कार्याः स्युरतोऽन्यथा।

मनु महाराज कहते हैं—

> वैशिष्ट्यात् प्रकृतिश्रेष्ठ्यात्
> नियमस्य च पालनात्।
> सस्कारस्य विशेषाच्च
> वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः।

इस प्रकार प्राचीन काल से मुख्यत. तीन अर्थों मे सस्कार शब्द का प्रयोग होता रहा है—

१–सुधार, परिष्कार, दोषहरण, सशुद्धि मार्जन अथवा उदात्तीकरण आदि।
२– प्रभाव, चिह्नांकन, छाप अथवा इम्प्रैशन आदि।
३– कर्मकाण्ड से संबन्धित प्रसंग।

यहाँ प्रथम वाक्य में पहला अर्थ है द्वितीय में दूसरा और तृतीय, चतुर्थ में तोसरा और श्लोक सभी अर्थों को समेटने वाला है। यह कहना कि व्यक्ति जन्म से शूद्र और संस्कार से द्विज बनता है, स्पष्टतः सुधार परिष्कार और मार्जन की ओर संकेत है। इसी को शिक्षा भी कहा जा सकता है। 'नये पात्र पर पड़ा सस्कार स्थायी होता है।' इस वाक्य में सस्कार शब्द सीधा छाप या इम्प्रेशन का भाव प्रगट कर रहा है। देबल और व्यास ने संकार के संदर्भ में यह स्पष्ट किया है कि किस प्रकार की संतति को संस्कार का अधिकार है, स्पष्ट है कि यह सकेत कर्मकाण्ड की ओर है। लेकिन मनु ने ब्राह्मण को श्रेष्ठता सिद्ध करते हुए जन्म प्रकृति, शिक्षा और आचरण तीनों को समान स्थान दिया है। अर्थात गुण, कर्म और स्वभाव में श्रेष्ठ व्यक्ति ही ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी है। क्योंकि स्वभाव का सम्बन्ध जन्म से है, तो गुणों का शिक्षा अथवा संस्कार से तथा कर्म अथवा नियम पालन लगभग समानार्थक है। यद्यपि तीनों की ओर संकेत करते हुए यहाँ सस्कार पद का व्यवहार मुख्यतः शिक्षा अथवा सुधार के लिए हुआ है। लेकिन पूर्वप्रसग के अनुकूल छाप और कर्मकाण्ड वाले अर्थ भी यहाँ भासित हो रहे हैं। क्योंकि ब्राह्मण के विशेष कर्मकाण्ड का विशद वर्णन पहले हो चुका है। सस्कारो की छाप ही विशिष्टता प्रदान करती है इत्यादि। खोज करने पर इस शब्दका अन्य अर्थों में भी प्रयोग शायद खोजा जा सके लेकिन मुख्य तीन अर्थ यही हैं। और ध्यान पूर्वक देखा जाए तो ये तीनों अर्थ भी एक ही छाप या इम्प्रैश वाले अर्थ के अर्थविस्तार हैं।

चित्रकार के कैनवस, कैमरे की फिल्म और वोडियो की टेप से भी अधिक प्रभाव ग्रहण को क्षमता हमारे अन्तःकरण के अदृश्य पटल में विद्यमान है। एक कवि ने लिखा है–

"अन्तश्चेतन भी विचित्र सा चित्रकार है।

चित्रित कर सकता है जो अदृश्य पटल पर भूत भविष्यत् वर्तमान के सम्बन्धों को, दृश्य बिम्ब अदृश्य भाव दोनो ही जिसमें, एक साथ ही एक रूप ही अंकित होते। "व्यक्ति" संस्कारांकन की यह प्रक्रिया अनवरत रूप से आजीवन गतिमान् रहती है। यह एक अलग प्रश्न है कि यह प्रक्रिया जीवन से पूर्व भी सक्रिय होती है या नहीं, और जीवन के अनन्तर इसका क्या परिणाम होता है। लेकिन जीवनकाल की प्रक्रिया से तो हम सभी सुपरिचित हैं। अगला प्रश्न यह है कि यह एक स्वाभाविक और अनवरत प्रक्रिया तो ईश्वर की अनुकम्पा के फलस्वरूप चल रही है, मनुष्य इस हेतु क्या करे? यहीं से परिष्कार, सुधार और मार्जन वाले अर्थ का जन्म होता है, इसका सम्पूर्ण दायित्व मनुष्य का है। हम अपने सुधार के लिए परमेश्वर से प्रेरणा तो ले सकते हैं लेकिन यह कार्य करना हमें स्वय होगा। वेद में कहा गया है--'ओ३म् विश्वानि देव सवित दुरितानि परासुव। यद भद्र तन्न आसुव'। और 'असतो मा सद् गमय।' आदि अर्थात् वह प्रभु हमे बुराई से निकालकर अच्छाई को राह पर लगाए। लेकिन उस राह पर हमने चलना स्वयं है। इसी भावना ने इस आदर्श को जन्म दिया कि मन पर कोई भी प्रभाव पड़ते जाने देना हितकर नहीं, उस पर अच्छे अच्छे सस्कारों को छाप ही अंकित होनी चाहिए। बस इसी सत् और असत् भेद के साथ छाप का विश्लेषण कर के सत् का ग्रहण और असत् का त्याग करने की धारणा ने ही सस्कार के परिष्कार और मार्जन वाले अर्थ को जन्म दिया। और यही धारणा क्रमशः रूढ़ होती हुई कर्मकाण्डों के रूप में परिवर्तित हो गई।

अब यह बात बहुत स्पष्ट सी दीखती है कि तनिक से बदले हुए तेवर के साथ व्यापक फलक पर यही तीनों अर्थ 'संस्कृत' शब्द मे भी विद्यमान हैं। संस्कृति का उद्देश्य भी परम्परागत प्रभावों की सुरक्षा और जातीय परिष्कार माना जाता है। कर्मकाण्डों का स्थान वहां नृत्य, गीत व अन्यान्य कला रूपों को रूढ़ धारणाओं में मुखरित होता है। इतना अवश्य है कि संस्कृति किसी देश, जाति या कर्म तक व्याप्त होती है, तो संस्कार का क्षेत्र व्यक्ति माना जाता है, लेकिन छिटपुट रूप से "वैयक्तिक संस्कृति" और जातीय संस्कार जैसे शब्दों का प्रयोग इन

(शेष पृष्ठ ५ पर)

ईसाइयत की आंधी को तुरन्त रोकना होगा

भारत पर विदेशियों के आक्रमण सदियों से होते आये हैं। अनेक आततायो सेना लेकर यहां आये, हमारी फूट से वे विजयी भो हुए किन्तु धीरे धीरे उनकी छाप मिटती चली गयी। बस आज उनकी याद केवल इतिहास की कहानी है। सास्कृतिक दृष्टि से भारत पर ईसायत का जो सवेग आक्रमण किया गया था उसका प्रतिकार १८७५ ईस्वी से महर्षि दयानन्द के अनुयायी आर्यसमाज ने किया और परिणामस्वरूप ईसाइयो के वे स्वप्न महल ढह गये जिनकी कल्पना कर उन्होंने भारत में पदार्पण किया था।

परन्तु आयसमाज अपनो अत्यल्प क्षमताओं से अरबो डालर के पहाड़ से कहा तक टकराता। देश की सामाओं से लगे क्षेत्रो म ईसाई मिश-नरो अपनी धर्मपरिवर्तन को आधी बड़े वेग से चला रहे हैं। खतरे के बादल चारो तरफ मडरा रहे हैं। आयसमाज न समय समय पर भारत सरकार को नोद से जगाने को भरसक कोशिश को है। हमारे आर्य नेताओ न समय से पूर्व चेतावनी देने मे कसर नही छोड़ी। परन्तु खेद है सरकार का नाक के नीचे इतनो भारी मात्रा मे धर्मपरिवर्तन का साजिश चल रहो है। अमरिको खुफिया एजसो के पूर्व निदेशक फिलिफ केसा ने दो वष पूर्व अपनो पुस्तक 'इन साइड दि सा आई ए'' मे खुले रूप से लिखा था, कि मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार के आदिवासा इलाका मे कुछ ईसाई सगठन सा० आई० ए० के लिए काम कर रहे हैं। लेखक ने अपना दूसरी पुस्तक मे भो इसो प्रकार का वर्णन किया है। इसमें कहा गया है कि बिहार के मधुपपुर, राचो, सन्थाल परगना, मध्यप्रदश के बस्तर, रायगढ़, सरगुजा, रायपुर आदि क्षत्रों में ईसाई सगठनो के द्वारा अलगाव और तोड़-फाड़ का ट्रनिंग दो जा रही है। सीमावर्ती राज्यों में खुफिया एजेन्सी अलगाववादो और हिंसात्मक गतिविधियो मे सलग्न है। रायगढ़ वनवासो सेवामण्डल के २० हजार आदिवासियो ने मार्च १९८४ मे अपने हस्ताक्षरो से लिखकर एक ज्ञापन सरकार को दिया था जिसमे यह आग्रह किया गया था कि विदेशो मिशनरो और उनके एजेण्ट आदिवासियो और हरिजनों के बोच प्रचार कर रहे हैं। वे मौजूदा सरकार के लिए हितकारो नही है। आदिवासियों को भड़काया जा रहा है कि वे एक समानान्तर सरकार बनाये। इस ज्ञापन मे यह भो कहा गया था कि विदेशो मिशनरियो द्वारा जगह-२ सड़के, नहर, कुआं आदि का निर्माण किया जा रहा है जिसमे मजदूरो पर आदिवासो हरिजन आदि को रखा जाता है। विभिन्न प्रकार के लोभ लालच, आतक और दबाव से उनका धर्मपरिवर्तन किया जा रहा है। इन मिशनरियो द्वारा सचालित बालवाडियो प्रौढ़शिक्षा केन्द्रो और अनाज बांटने का एक मात्र मकसद है। भाले-भाले आदिवासियो का धर्म परिवर्तन। इस तरह योजनाबद्धतरीके से उनको संस्कृति, भाषा, परम्परा और रोति-रिवाज के जोवन चक्र को नष्ट किया जा रहा है।

सालभर पहले प्रदेश के पूर्व मुख्यमन्त्री राजा नरेशचन्द्रसिह ने भोपाल आकर चेतावनी दो थी कि इस समस्या से यदि जल्दी नही निपटा गया तो २१ वी सदो में रायगढ़ जिला देश का दूसरा नागालण्ड बन सकता है श्री नरेशचन्द्र सिंह (सारगगढ़ के पूर्व नरेश) राजनीति से १५ वर्ष हो सन्यास ले चुके हैं। उन्होंने कहा है---प्रदेश के पूर्वी हिस्से मे धर्मपरिवर्तन के कारण ६० फोसदो आबादी ईसाई हो चुकी हे। धर्म परिवर्तन को तेज रफ्तार का इशारा १९८१ को जनगणना से भो पता चलता है। १९५१ से ८१ तक तोस सालो में विस्फोटक तरीके से बढ़ा ईसाई आबादी इन दोनों जिलों में बेहिसाब किये गये धर्म परिवर्तनों का सबूत है। सरगुजा जिले में इन तोस सालों में ईसाई आबादो ७५ गुना बढ़ा है जबकि कुल आबादी मुश्किल से २ गुना बढी है। १९५१ में सरगुजा जिले में सिर्फ ५४५ ईसाई थे जो १९८१ में ३८,२१० हो गए जबकि कुल जनसख्या ८ लाख से १६ लाख हा पहुंचो। इसो तरह रायगढ जिले मे १९५१ में १४,३४५ ईसाई थे जो बढ़कर ८१ में १,४४,७४६ हो गये। जबकि इस जिले को कुल आबादी तीस सालों मे ९ लाख से बढ़कर साढे चौदह लाख ही हो पायी है। आजादी के बाद से इनका कुचक्र खूब तेजी से चला है। इन विदेशो ईसाई पादरियों ने भार-तीय नागरिकता भो प्राप्त करनी शुरू कर दो है। रायगढ़ जिले में १९५७ के बाद तो रोमन कैथोलिक चर्च अस्पतालों और स्कूलों का जाल ज्यादा तेजी से फैलना शुरू हो गया। बीजबैंक, चर्मकेन्द्र, प्रौढशिक्षा केन्द्र सिलाई केन्द्र आदि की स्थापना इन दिनों तेजी पर है। भारत सरकार ने सरगुजा मे सक्रिय छ विदेशी पादरियों को ३१ अक्तूबर ८५ तक भारत छोड़ने का आदेश जारी किया था। गोपनीय सोल ठप्पों के साथ दिये गये ये आदेश फादर जान बेनोन्ट, फादर लुइस दे राइट, (वंकुण्ठपुर मे) फादर लुक वेर्स ट्रेटस (सरगुजा में) फादर फ्रेक सामसं (झिगोगांव में) बीई गेटर और श्रीमती एसजे ग्रेटर के लिए थे। इनमें ग्रेटर दम्पती प्रोटेस्टेन्ट हैं, बाको रोमन कैथोलिक। नवम्बर मे भोपाल के पत्रकारो का पत्र लिखकर जान-कारी भेजी कि उनका देश निकाले का आदेश वापस ले लिया गया है।

जसपुर के पूर्व राजा श्री दिलसिह देव का कहना है कि इन विदेशी पादरियो और अंग्रेजों में कोई अन्तर नही है। अंग्रेज व्यापार के बहाने भारत में आये और उन्होंने यहां राज किया और ये दूसरे रास्ते से आये हैं लेकिन दोनों का मकसद एक ही हैं जो मिशनरी चुनाव जीतकर राजनीति मे आते हैं वे क्षेत्र के विकास के बजाए ईसायत के लिए ज्यादा काम करते हैं। प्रदेश विधानसभा में कई बार इस मामले पर विपक्ष और सत्तापक्ष के बीच गरमा गर्मी हुई। २१ दिसम्बर १९८२ को तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री अर्जुन-सिंह ने सदन को कहा कि सरकार धर्मपरिवर्तनों के मामले मे सतर्क है। इस सुझाव पर सरकार विचार करेगी कि लालच, और घूस से कराये धर्म परि-वर्तन करने वाले व्यक्तियों को राष्ट्रीय सुरक्षा कानून के तहत गिरफ्तार किया जाए। उसी विधानसभा में यह भी बताया गया कि एक जनवरी १९८० से ३१ अक्तूबर १९८२ तक जबरन और लालच से करवाये गये धर्म परिवर्तन की १७ शिकायते दर्ज हुई। लालच दबाव सेवा शिक्षा के अलावा विलासपुर संभाग में तरह-तरह के चमत्कारों से आदिवासियों को प्रभावित करने की कोशिशें होती रहती हैं। धर्मपरिवर्तन की दर यदि वही रही जो पिछले सालों में रहो है तो सभव है आदिवासी जातियो की पहचान ही खत्म हो जायेगी। रायगढ मे उराव सब से ज्यादा ईसाई बने। अब सरगुजा जिले मे दूसरी जातियां है जैसे बंगा, मुरिया, गोड, कवर, कनवर, कौर, चेखा, राठिया छत्री, खैरवार कोरवा नगेटिया है। इनको धर्मान्तिरण की आंधी मे ईसा की भेड़ों मे शामिल करने के षड्यन्त्र चल रहे हैं।

इसी प्रकार उत्तर पूर्व के ५, सात राज्य अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओ के बीच बसे धर्मान्तरण को आग मे बरसों से झुलस रहे हैं। असम, मेघालय और मिजोरम में १३५ प्रतिशत ईसाई हैं। नागालैण्ड मे २५२ प्रतिशत, मणिपुर ३०९ और त्रिपुरा मे २०४ प्रतिशत ईसाइयो की आबादी है। चर्चों के धर्मान्तरण वाले कार्यों से इन राज्यो मे हिंसा का माहौल पनप रहा है।

एक फरवरी को पोप जानपाल (द्वितीय) की राजकीय यात्रा पर भारत पधारने की पूरी तैयारियां हो चुको हैं। ४८ हेक्टेयर क्षेत्रफल वाले वेटिकन सिटी (जो किसी शहर के बड़े मौहल्ले जितना है) के राष्ट्राध्यक्ष जिन्हें ईसाइयों का एकमात्र अध्यक्ष माना जाता है, जिनका काम ईसायत को बढाना है उनका स्वागत धर्मनिरपेक्ष भारत सरकार द्वारा करना इस समय अनेक प्रश्नों को लिये खडा है। इस का एक कारण यह भी है इस समय जन चर्चा है—विदेशी पादरी पोप का स्वागत एक लाख आदिवासियो के धर्मपरिवर्तन कर अभूतपूर्व ढंग से करेंगे। यदि पोप का आगमन यहा ईसायत को बढावा देना और लोभ, लालच, जोर दबाव से या किसी प्रकार के अन्य षड्यन्त्र से धर्मान्तरण करने के लिए है तो यह राष्ट्रीयता के लिए अत्यन्त घातक है इसका विरोध होना ही चाहिये। यदि यह कहे कि मेह-मानो का स्वागत करना भारतीय संस्कृति है तो इसका उत्तर यही है। राष्ट्र के लिये धर्म के लिए जो भी घातक है वह आततायो है उसका स्वागत यथातथा होना चाहिए। इस समय जो ३०० करोड की विदेशी सहायता प्रतिवर्ष मिल रही है जिसके द्वारा किये जा रहे भारतीयता पर करारे हमले सरकार को समझने चाहिए। इन विदेशी षड्यन्त्रकारियो को तुरन्त देश से पृथक् कर देना चाहिए।

—यशपाल सुधांशु

विदेशी पादरियों का निष्कासन

मध्यप्रदेश सरकार ने छत्तीसगढ अंचल मे कार्यरत दस विदेशी ईसाई पादरियों को भारत छोडकर चले जाने का आदेश दिया था, लेकिन अनजाने कारणों से उसने चार पादरियों का निष्कासन आदेश फिलहाल एक साल के लिए रद्द कर दिया है, लेकिन अन्य छह पादरी भी भारत छोडकर जाने के लिए राजी नही है। क्या कारण है कि अधिवास की अवधि गुजर जाने के बाद भी ये पादरी यहा रहने की जिद्द कर रहे हैं?

लेखक : सुधीर सक्सेना

मध्यप्रदेश के पिछड़े और आदिवासीबहुल छत्तीसगढ अंचल में कार्यरत दस विदेशी पादरियों को भारत छोड़कर चले जाने के आदेश ने इन दिनों राज्य के ईसाई समाज, विशेषकर ईसाई मिशनरियो में हड़कंप मचा रखा है। सरकारी आदेश और अधिवास की वैधानिक अवधि गुजर जाने के बावजूद ये पादरी किसी भी कीमत पर भारत छोडकर जाने को तैयार नहीं हैं। इन दस विदेशी पादरियों के नाम, आयु और मूल देश का नाम इस प्रकार है, लुक वर्स्ट्रॉट (६२ वर्ष) बेल्जियम, लुई-देरात (७१ वर्ष) बेल्जियम, जैक सोमर्स (६६ वर्ष) हालैंड, जान वाइनांट (७६ वर्ष) बेल्जियम (सभी कैथोलिक) श्रीमती एव श्री ग्रेटर (प्रोटेस्टेंन्ट) अमरीका, विलियम मिसियन (६४ वर्ष) बेल्जियम, एस० मास (६६ वर्ष) बेल्जियम, चार्ल्स वान बेसाऊ (५६ वर्ष) बेल्जियम।

राज्य शासन ने इन सभी पादरियों को आदेश दिया था कि वे भारत छोडकर चले जायें। फादर सोमर्स, फादर वाइनाट और फादर वर्स्ट्राट आदि से कहा गया कि वे नोटिस मिलने के तोस दिनों के भीतर भारत छोडकर चले जाये, अन्यथा उन्हे विदेशी कानून के तहत भारत से बाहर भेजने की कार्रवाई की जायेगी। औरो के विपरीत लुई देरात को पलायन के लिए सिर्फ तीन हफ्ते की मोहलत दी गयी। दिलचस्प बात यह है कि जिन विदेशी पादरियो को निष्कासन आदेश सुनाया गया, उनकी औसत आयु ६५ से ७० वर्ष के बीच है। 'भारत छोडो' आदेश मिलते ही इन सभी पादरियो ने अपने बुढापे और सेवाओ का हवाला देते हुए सरकार से गुजारिश की कि उन्हे भारत मे रहने की मोहलत दी जाये। इस पर रायगढ के चार विदेशी पादरियो मिसियन, मास, बेसाऊ और क्लाइस को तो भारत मे एक साल और रहने की छूट मिल गयी, मगर सरगुजा के पुलिस अधीक्षक ने सरगुजा में अंबिकापुर, बैकुण्ठपुर, झिलो और सीतापुर में मिशनरी गतिविधियो में लिप्त छह विदेशी पादरियों को सूचित किया कि उन की आवास अवधि में वृद्धि सम्भव नही है।

हालांकि, सरगुजा के पुलिस अधीक्षक ने अपने पत्र में या सरकार ने अपने किसी वक्तव्य में यह स्पष्ट नही किया है कि विदेशी नागरिकों को क्यों निकाला जा रहा है, मगर यह समझा जाता है कि उन्हें बोरिया बिस्तर समेटने का आदेश अवांछनीय गतिविधियों में लिप्त होने के संदेह में दिया गया है। वैसे भी, मिशनरियों पर यह आरोप अकसर लगता रहता है कि वे भोले-भाले आदिवासियों को प्रलोभन और दबाव से धर्मान्तरण के लिए बाध्य करते हैं। विदेशी पैसे के कारण भी मिशनरीज को शका की दृष्टि से देखा जाता है।

ईसाई मिशनरियों की सक्रियता

मध्यप्रदेश में ईसाई मिशनरियों की सर्वाधिक सक्रियता छत्तीसगढ़ अंचल में है। यूं तो ईसाई मिशनरीज सरगुजा से लेकर बस्तर तक सक्रिय हैं, किन्तु रायगढ और आसपास के क्षेत्र में उन्हें उल्लेखनीय सफलता मिली है। दुर्गम क्षेत्रों में बने विशाल व भव्य गिरजाघर उनके वैभव व सफलता की कहानी कहते नजर आते हैं। जशपुर इस अंचल में ईसाई मिशनरियों का प्रमुख अड्डा है। मिशनरी तत्त्व यहीं से अपनी गतिविधियों का संचालन करते हैं। इस बात में शक नहीं कि स्कूल, कालेज, कुष्ठ आश्रम, अस्पताल, स्वास्थ्य केन्द्रों के जरिये मिशनरी आदिवासी समुदाय की शिक्षा एव सेवा में लगे हैं, किन्तु इस सेवा और शिक्षा के अन्तिम चरण का समापन धर्मान्तरण में ही होता है। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि रायगढ जिले में ईसाईयों की संख्या में पिछले बीस वर्षों में तीन गुनी वृद्धि हुई है। ईसाई मिशनरियों के बढ़ते पाँवों में बेड़ी डालने के लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने यहाँ कुछ वर्ष पूर्व कल्याण आश्रम खोला जो यहां आंशिक तौर पर ही सफल हो सका।

हालांकि, ईसाई धर्मगुरु राजनीति में सक्रियता से इनकार करते हैं, मगर यह सच है कि ईसाई हाल के वर्षों में एक राजनीतिक शक्ति बनकर उभरे हैं और उन्होंने कई नेताओं की जय-पराजय में अहम् भूमिका निभाई है। पूर्व मुख्यमन्त्री अर्जुनसिंह ने जब वनराज्यमन्त्री क्लासियस एक्का को मंत्रिपरिषद से निकाल बाहर किया था, तब क्षुब्ध ईसाइयों ने विरोध-स्वरूप ग्राम चंदा इकट्ठा कर भारी जलूस निकाला था। ईसाई प्रचारक जंगल के सफाये के मुद्दे को लेकर भी आदिवासियों को आंदोलित कर चुके हैं।

यीशु समाज, पत्थल गांव, रायगढ के अध्यक्ष फादर पास्कल टोपनो आदिवासी है। वह धर्मान्तरित ईसाई हैं और धर्मान्तरित ईसाइयों के मुखिया भी। फादर टोपनो का कहना है कि किसी को भी जबरन या लालच देकर ईसाई नही बनाया जाता। विदेशों से जो पैसा आता है, उसका उपयोग सेवा में होता है, धर्मान्तरण मे नही। विदेशी धन का आडिट होता है, हिसाब-किताब सरकार को भेजा जाता है और कड़ाई से जांच होती है। फादर टोपनो की यह बात कानों को भली लगती है, मगर छत्तीसगढ़ को गैरकानूनी धर्मान्तरण की चपेट में आये बरसों बीत चुके हैं। सन् १९८१ में फादर जोसेफ के विरुद्ध फरसा बहार क्षेत्र में बड़े पैमाने पर हुए धर्मान्तरण के सिलसिले में अपराध कायम किया गया था। फादर जोसेफ पर इमर्जेन्सी के दौरान भी आरोप लगे थे। पुलिस ने जोगबहेला कैथोलिक मिशन के पादरी जोसेफ व चार अन्य प्रचारकों को कुनकुरी तथा बागीचा थाने के अन्तर्गत गैरकानूनी धर्मान्तरण कराने के आरोप में धर्मस्वातंत्र्य अधिनियम १९६८ तथा भा०द०वि० की धारा ४२० के तहत गिरफ्तार भी किया था।

निष्कासन का आरंभ

ईसाई धर्मप्रचारक यद्यपि अभी किसी का नाम लेने से बच रहे हैं, किन्तु उनकी धारणा है कि विदेशी पादरियों को राजनीतिक कारणों से निष्कासित किया जा रहा है। फादर टोपनो और फादर देरात ने 'माया' से चर्चा में कहा कि निष्कासन राजनीतिक कारणों से किया जा रहा है। मिशनरीज को 'स्केपगोट' बनाया जा रहा है। चर्च की ओर से मिशनरीज को सक्रिय राजनीति में भाग लेने की मनाही है। निष्कासन से क्षुब्ध एक वृद्ध पादरी ने कहा, "हम अन्दाजा लगा सकता है कि हमें क्यों निकाला जा रहा है।" अनौपचारिक बातचीत में अपने 'अंदाज' का खुलासा करते हुए उसने कहा, "हम लोगों को वोट के कारण निकाला जा रहा है। महारानी साहिबा (सरगुजा की महारानी व पूर्वमन्त्री श्रीमती देवेन्द्र कुमारी सिहदेव) बैकुण्ठपुर से चुनाव हार गया, तो राजा-रानी (सिंहदेव दपती) हमसे नाराज हो गया।" अनेक ईसाई प्रचारकों की यह धारणा है कि सिंहदेव दंपती के क्षोभ व नाराजी के कारण विदेशी बूढ़े पादरियों को निष्कासन का 'वज्र प्रहार' झेलना पड रहा है। फादर देरात से जब इस बारे में सच्चाई पूछी गयी, तो उन्होने कहा, हमें राजीव (प्रधानमन्त्री राजीव गांधी) से सहानुभूति है, परन्तु हम किसी से यह कह नहीं सकता कि कांग्रेस को वोट दो। पब्लिक कांग्रेस को वोट नही दिया, तो हम क्या कर सकता है।"

इस आरोप में कितना सच है और कितना झूठ, कहा नही जा सकता। पर यह सच है कि रायगढ के विदेशी पादरियों का निष्कासन रद्द हो चुका है, मगर सरगुजा के छहों विदेशी पादरियों की कोई सुनवाई नहीं हुई है। ऐसा लगता है कि मिशनरीज इस मुद्दे को हथियार बनाकर लडाई लड़ने का इरादा रखते हैं। इसका संकेत इस बात से मिलता है कि ये पादरी भारत छोड़कर जाने के मूड में कतई नहीं हैं। इन पादरियों का एक स्वर से कहना है कि उन्होंने अपना सारा जीवन भारत में गरीबों व आदिवासियों की सेवा में होम कर दिया। अब जब उनका एक पांव कब्र में लटका है, उन्हें भारत, जिसे वे स्वदेश मानते हैं; छोड़कर जाने को कहा जा रहा है। नवम्बर, १९३७ में पहले-पहल

(शेष पृष्ठ ५ पर)

विदेशी पादरियों का निष्कासन

भारत आये और बिहार, मध्यप्रदेश में ४८ साल बिता चुके फादर लुई देरात ने तो भारत से निष्कासित अन्तिम मुगल सम्राट् बहादुरशाह जफर की तर्ज पर मार्मिक अपील तक कर डाली है, "हिन्दुस्तान उन्हें दो गज जमीन बख्श दे। बस, उन्हें और कुछ नहीं चाहिए।"

कानून की नजर

मानवीय आधार पर देखें, तो साफ लगता है कि सरकार बूढ़े विदेशी पादरियों के साथ गलत और अमानुषिक बर्ताव कर रही है, किन्तु कानून के आइने में झांके, तो निष्कासित पादरियों का पक्ष बहुत कमजोर लगता है। कारण यह कि ये सभी भारत के नागरिक नहीं हैं। लूक वर्स्ट्रीट भारत में सैंतीस, देशत अड़तालीस, सोमर्स पेंतीस, वाइनांट तिरेपन, श्रीमती एवं श्री गेटर ४०, मिसियन बत्तीस; मास उन्तालीस, बेक्षाऊ इकत्तीस और क्लाइस सैंतीस वर्ष बिता चुके हैं, मगर ये सब के सब गैर भारतीय नागरिक हैं। ये लोग साल दर साल भारत में अधिवास की अवधि का नवीनीकरण कराते आये हैं। फादर वाइनांट, जो १९३२ में भारत आये थे, का कहना है कि वह रायगढ़ में सुदूर दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र में होने के नाते आजादी के बाद समय पर कलेक्टर को आवेदन नहीं दे सके थे। इसी प्रकार, फादर देरात का कहना है कि वह १९५० में दूर देहात में होने के कारण खुद कलक्टर के पास नहीं जा सके और उनकी अर्जी रद्दी की टोकरी में फेंक दी गयी। लगभग इसी तरह का मामला अन्य विदेशी पादरियों का भी है।

यह सोचना गलत होगा कि इन छह पादरियों के चले जाने से छत्तीसगढ़ विदेशी पादरियों से सूना हो जायेगा। रायगढ़ के चारों पादरियों के अधिवास का पुनर्नवीनीकरण हो चुका है। इन दस पादरियों को छोड़ भी दें, तो रायगढ़ और सरगुजा में ही नौ और विदेशी पादरी बरसों से सक्रिय हैं। 'माया' को प्राप्त जानकारी के अनुसार सरगुजा में फादर वर्ज, फादर बिंज, फादर बर्किंस, फादर वान स्टाइन और फादर वान रोए तथा रायगढ़ में फादर दे जीगर, फादर मीब्ज, फादर नागाट और फादर वास सक्रिय हैं। इन लोगों को भारतीय नागरिकता प्राप्त बतायी जाती है।

लड़ाई की तैयारी

मध्य प्रदेश क्रिश्चियन एसोसिएशन की अध्यक्ष श्रीमती इन्दिरा आयंगर और अन्य ईसाई प्रमुख यह तो मानते हैं कि सरकार किसी भी नागरिकताविहीन व्यक्ति को निष्कासित कर सकती है, परंतु सेवा की दुहाई के साथ उनका तर्क है कि सेवा का ऐसा प्रतिदान क्यों? श्रीमती आयंगर अपने साथियों के साथ मध्य प्रदेश के राज्यपाल और मुख्यमन्त्री से मिल चुकी हैं। श्रीमती आयंगर फादर देरात के साथ पांच अक्तूबर को मुख्यमन्त्री मोतीलाल वोरा से मिलने गयीं। काफी इंतजार के बाद उन्हें आम मुलाकातियों के बीच खड़े होकर भेंट का अवसर मिला। श्रीमती आयंगर के अनुसार, 'वोराजी ने अगली सुबह आठ बजे तक कार्रवाई का आश्वासन दिया था, किन्तु कुछ नहीं हुआ। इसके बाद वह गृहसचिव कृपाशंकर शर्मा से मिलीं, तो उन्होंने कहा कि कार्रवाई दिल्ली के निर्देश पर हुई है। जो कुछ होगा, वहीं से होगा।' श्रीमती आयंगर को इस बात का भी मलाल है कि राज्यपाल के० एम० चांडी ने उनका जो पत्र अपनी अनुशंसा के साथ मुख्यमन्त्री को भेजा था, इस पर भी कोई कार्रवाई नहीं हुई। बहरहाल, वह ईसाई धर्मावलम्बी राज्यपाल श्री चांडी से दो बार मिल चुकी हैं।

सरगुजा के पुलिस अधीक्षक द्वारा भेजे गोपनीय पत्र का अवलोकन करें तो फादर देरात को १० अक्तूबर, १९८५ तक भारत छोड़ देना चाहिये था। इसी प्रकार झिगो, पोस्ट राजपुर, जिला सरगुजा में कार्यरत फादर सोमर्स को १९ जुलाई, १९८५ को पत्र भेजा गया था कि वह पत्र प्राप्ति से एक माह के भीतर यह देश छोड़ दें। पादरियों की गतिविधियों से स्पष्ट है कि वे भारत न छोड़ने का फैसला कर चुके हैं। विदेशी पादरियों ने सरकारी आदेश को मानने के बजाय आदेश की अवहेलना की मंशा व्यक्त कर दी है। मुख्यमन्त्री व राज्यपाल से निरर्थक अपील के बाद वे दिल्ली जाकर प्रधानमन्त्री राजीव गांधी से मिलना चाहते हैं। उनका सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाने का भी इरादा है। ईसाई मिशनरियों की एक और दलील यह है कि यदि सरकार सेवा परायण विदेशी पादरियों को निकालना ही चाहती है, तो मदर टेरेसा को क्यों नहीं निकालती, श्रीमती इन्दिरा आयंगर का तो यहां तक कहना है कि हम इन्हें बाहर नहीं जाने देंगे, चाहे कुछ भी क्यों न हो जाये। हम लोग नेताओं के हाथ जोड़ेंगे, सत्याग्रह करेंगे और फिर जरूरत पड़ी तो सम्पूर्ण ईसाई समाज सड़कों पर निकल आयेगा। फादर टोपनो का कहना है कि इन पादरियों ने विदेश से आकर हम आदिवासियों का उद्धार किया। हम भला इन्हें कैसे जाने देंगे। अभिप्राय यह कि मध्यप्रदेश में एक नए धार्मिक विवाद और सरकार व मिशनरियों के बीच संघर्ष का सूत्रपात हो चुका है। बहुत कुछ सरकार के रवैये पर निर्भर करता है। अकेले रायगढ़ और सरगुजा में ही दो लाख ईसाई हैं। इन लोगों के आंदोलन से यह समूचा क्षेत्र अशांति की चपेट में आ सकता है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि आंदोलन और अशांति का प्रभाव समीपवर्ती बिहार पर भी पड़े।

माया १६ नवम्बर से १५ दिसम्बर से साभार

बरसों से झुलस…

(पृष्ठ १ का शेष)

मन्त्री के भाई) के जिम्मे हैं। पशु उपमन्त्री तेची ताकार और प्रदेश कांग्रेस (इ) अध्यक्ष तादर तांग कभी ईसाइयों के घोर विरोधी थे। उन पर भी उंगली उठने लगी है। पूर्व मुख्यमन्त्री तोमो रीबा का नाम भी कई बार आया है।

चर्चों की नीयत कुछ लोग भांपने लगे हैं। मेघालय के लोगों ने रेल लाइन न लाने देने का फैसला यही सोच कर लिया। उनका कहना था– 'रेल लाइन आने से यहां लोग आएंगे, वे हमारी सभ्यता नष्ट करेंगे।' जहां से ये आवाजें उठीं वहीं शताब्दी पहले बाबू जीवन राय ने 'सेंग खासी' संगठन बनाया था। उनका उद्देश्य अपनी संस्कृति की रक्षा करना था। इसी उद्देश्य से संगठन ने एक पत्रिका भी भी निकाली है। इस पत्रिका से प्रभावित होकर बकंप्ले डिगजेप्यू (मुख्यमन्त्री के भाई) अपने धर्म में लौट आए। वे पादरी थे। नागालैंड और मेघालय में बड़े दिन के उत्सव का खर्च राज्य सरकारें उठाती थीं। अब वह बन्द हो गया है। रेडियो पर ईसाइयत का प्रचार भी बन्द हो गया है।

(२१ जनवरी जनसत्ता से साभार)

संस्कार महत्त्व

(पृष्ठ २ का शेष)

दोनों समान प्रकृति के शब्दों की मूलभूत एकता का निनाद करता प्रतीत होता है।

किसी कागज को हम कूड़े के ढेर पर फेंक दें तो कुछ दिन बाद उस पर कुछ आड़ी टेढ़ी रेखाएं या बदरंग धब्बे उभरे दिखाई पड़ सकते हैं, लेकिन वही कागज एक चित्रकार की तालिका का स्पर्श पाकर एक संग्रहणीय कलाकृति का आकार धारण कर लेता है। यही अन्तर हमारे मन पर अनायास पड़ने वाले संस्कारों और सायास अधिग्रहण किये जाने वाले संस्कार जगत् के परिणामस्वरूप सामने आता है। इसका एक विशिष्ट साधना है, जिसका एक रूप शिक्षा है। संस्कार साधन की महत्ता को जानकर ही इस की साधना की ओर सचेष्ट हुआ जा सकता।

--विश्वबन्धु "व्यथित"
डी०ए०वी० कालेज अबोहर

मेवात क्षेत्र में आर्यसमाज का व्यापक प्रचार

श्री आनन्द सुमन का सराहनीय प्रयास

श्री आनन्द सुमन ने सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि मजहब व धर्म एक दूसरे का पर्याय नहीं हो सकता। विद्वानों को यह निष्कर्ष निकालना होगा कि मजहब को धर्म नहीं कहा जाय। धर्म का अर्थ है धारण करना। मनुष्य मात्र को एक सूत्र में पिरोकर संसार का उपकार करना। मजहब का अर्थ है मानव समुदाय में वर्ग खड़े करना। धर्म गुरु के आधार पर वर्ग बांटना। धर्म जोड़ता है मजहब तोड़ता है। इसीलिए सभी मानवों को मजहब की दीवारों से थोड़ा ऊपर उठकर मनुष्य मात्र के कल्याणकारी विवेक पूर्ण मार्ग को अपनाना चाहिए। मेवात क्षेत्र में डा० सुमन के क्रान्तिकारी एवं विपत्ता पूर्ण विचारों को सप्ताह में सहस्रों मुस्लिम एवं हिन्दुओं ने सुना। लोगों के मन में आर्यसमाज के प्रति श्रद्धा तथा सद्भावना बनी है। नगीना की सभा में कुछ अराजक तत्त्वों ने डा० सुमन पर प्राणघातक हमला किया व उनकी कार को आग लगाने का प्रयास किया। किन्तु पुलिस एवं सभ्य समाज के हस्तक्षेप से इस दुर्भावना पूर्ण कार्यवाही को रोका गया।

मन्त्री आर्यसमाज नूह

उपनिषत् कथा-माला—२१

यज्ञ-प्रसाद

लेखक—महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

(गतांक से आगे)

यज्ञ न करने से मानव दोषी होता है

स्वामी जी मनुष्य के लिए यज्ञ को परम आवश्यक साधन बताते हैं। इसी प्रकरण में वे आगे कहते हैं—

"सब के उपकार करने वाले यज्ञ को नहीं करने से मनुष्यों को दोष लगता है।......जब वायु और वृष्टि जल को बिगाड़ने वाला सब दुर्गन्ध मनुष्यों के ही निमित्त से उत्पन्न होता है, तो उसका निवारण करना भी उनको ही योग्य है।......

"जितने प्राणी देहधारी जगत् में हैं, उनमें से मनुष्य ही उत्तम है, इससे वे ही उपकार और अनुपकार को जानने के योग्य हैं।......धर्म का अनुष्ठान और अधर्म का त्याग करने को भी वे ही योग्य होते हैं, अन्य नहीं। इससे सब के उपकारके लिए यज्ञ का अनुष्ठान भी उन्हीं को करना उचित है।"

प्रतिदिन यज्ञ न करने से मनुष्य किस प्रकार पथभ्रष्ट हो जाता है, यह एक छोटी गाथा से स्पष्ट हो जाता है—

एक थे सज्जन जीवनराम। वे सेठ ज्योतिस्वरूप के पड़ोस में रहते थे—एक झोंपड़े में। उन्हें पता कि सेठ के पास कई बढ़िया मकान। हैं उसके पास जाकर जीवनराम बोला—"अमुक मकान मुझे दे दीजिए। वहां निर्धन बच्चों के लिए एक पाठशाला आरम्भ करूंगा, एक निःशुल्क औषधालय चलाऊंगा और प्रतिदिन वहां सत्संग होगा। जिसमें आध्यात्मिक उपदेश-कथाएं होंगी और प्रतिदिन यज्ञ होगा। जो भी किराया आप कहेंगे, मैं दे दूंगा।"

ज्योतिस्वरूप बोले—"तुम तो बहुत अच्छे व्यक्ति हो। इतने श्रेष्ठ काम तुम मेरे मकान में करोगे, तो तुम्हें यह मकान बिना किराया दूंगा। बस, शर्त यही है कि तुम मकान स्वच्छ रखो। ये सब उत्तम कार्य करो। मुझे किराये की आवश्यकता नहीं है।"

जीवनराम पहुंचे उस मकान में। वहां रहने लगे। प्रारम्भ में उन्होंने मकान को स्वच्छ रखा, पर कुछ दिन बाद ही, जीवनराम के कुछ जुआरी मित्र आ गये। पहले ताश शुरू हुई फिर जुआ खेला जाने लगा। प्रतिदिन जुआ होता। अब शराब भी उड़ने लगी। धीरे-धीरे वह मकान डाकुओं का अड्डा बन गया। हर प्रकार के पाप वहां होने लगे। किसी ने ज्योतिस्वरूप से शिकायत की—"सेठ जी! आपने जो मकान यज्ञ और सत्संग के लिए दिया था, वह तो डाकुओं का अड्डा बन गया है।"

ज्योतिस्वरूप बोले—"क्या सचमुच ऐसी बात है?" शिकायत करने वाले ने कहा—"हां जी! मैं अपनी आंखों से देखकर आया हूं।"

ज्योतिस्वरूप ने अपने मुनीम को बुलाया, कहा—"जीवनराम से कहो कि मकान खाली कर दे। हमने ऐसे पाप कर्मों के लिए मकान नहीं दिया था।"

छोटे मुनीम जीवनराम के पास पहुंचे। जीवनराम कुछ-कुछ अनुनय-विनय किया। मुनीम साहब के हाथ कुछ गर्म कर दिये। उन्होंने मालिक के पास जाकर रिपोर्ट दे दी—"सब ठीक है। किसी ने मिथ्या शिकायत कर दी थी।'

कुछ दिन बाद सेठ के पास पुनः शिकायत पहुंची। इस बार उन्होंने बड़े मुनीम को भेजा। जीवनराम ने बड़े मुनीम को भी खुशामद-मिन्नत की। उसके पांव पड़ा। प्रतिज्ञा की कि वह अपना सुधार करेगा। बड़े मुनीम ने मालिक को सारी रिपोर्ट दे दी। ज्योतिस्वरूप बोले—"अपराध तो भारी है, पर यदि वह सुधरने को तैयार है, तो उसे कुछ समय देना चाहिए।"

समय बीत गया। फिर शिकायत आयी कि जीवनराम के लक्षण पहले से भी अधिक बुरे हो रहे हैं। अब सेठ ने अपने लड़के को भेजा। जीवनराम ने उसे भी धोखा देने का प्रयत्न किया पर वह धोखे में नहीं आया। मालिक ने वकील द्वारा नोटिस दिला दिया "मकान खाली करो।" जीवनराम ने नोटिस लिया ही नहीं। मुकदमा हुआ। वारन्ट जारी हुए। पुलिस पहुंची तो जीवनराम ने रिश्वत देकर पुलिस को टालना चाहा। पर इस बार उसकी कोई चाल नहीं चली। रोया-चिल्लाया। अन्त में मकान छोड़ना पड़ा।

यह जीवनराम है आत्मा, ज्योतिस्वरूप है ईश्वर और मकान है शरीर। इस मकान का कोई किराया नहीं। यह मकान मिला तो इसलिए था कि ज्ञान के द्वारा कर्म, कर्म के द्वारा उपासना और उपासना द्वारा प्रभु दर्शन करो। इसके विपरीत बना दिया इसे पापों का अड्डा। तब छोटा मुनीम अर्थात् छोटी बीमारी आयी, छोटी दुर्घटना, कोई छोटी हानि। बड़ा मुनीम है, तनिक बड़ा रोग। सेठ का बड़ा लड़का है—अधिक भयानक रोग। नोटिस है, हृदय की गति का कभी-कभी मन्द हो जाना, अंतड़ियों का काम न करना, आंखों की ज्योति कम हो जाना, कानों से कम सुनायी देना। स्नायु तंत्र का विकृत हो जाना (नर्वस ब्रेक डाउन) है अदालत में मुकदमा। अन्तिम रोग वारंट है। पुलिस मृत्यु है। वह आ जाए तो फिर औषधियों की रिश्वत नहीं चलती। डाक्टरों को दी जाने वाली फीस के रूप में खुशामद नहीं चलती। तब जीवनराम को यह यह मकान छोड़ना ही पड़ना है। किसी ने ठीक कहा है—

मैं फूल चुनने आया था
बागे हयात में।
दामन को खार-जार में
उलझा के रह गया॥

यज्ञ में मन्त्र-पाठ क्यों?

यह शंका प्रायः की जाती है कि यज्ञ में वेद मंत्र पढ़ने से क्या लाभ होता है? क्या इनके बिना काम नहीं चल सकता? महर्षि दयानन्द ने इसी प्रकरण में इस शंका का बड़ा सयुक्तिक और सतर्क समाधान किया है। महर्षि कहते हैं—

"जैसे हाथ से होम करते, आंख से देखते और त्वचा से स्पर्श करते हैं, वैसे ही वाणी से वेद मन्त्रों को भी पढते हैं। क्योंकि उनके पढ़ने से वेदों की रक्षा, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना होती है, तथा होम से जो जो फल होते हैं, उनका स्मरण भी होता है। वेद मन्त्रों का बारम्बार पाठ करने से वे कंठस्थ भी रहते हैं और ईश्वर का होना भी विदित होता है कि कोई नास्तिक न हो जाए, क्योंकि ईश्वर को प्रार्थना-पूर्वक ही सब कर्मों का प्रारम्भ करना होता है। सो वेद मन्त्रों के उच्चारण से यह यज्ञ में तो उसकी प्रार्थना सर्वत्र होती है। इसलिए सब उत्तम कर्म वेद मन्त्रों से ही करना उचित है।"

यज्ञ केवल कर्मकांड नहीं

भारतवर्ष में एक समय ऐसा आ गया था जब कर्मकांड को कुछ विशिष्ट क्रियाओं, रूढ़ियों, पद्धतियों, और परम्पराओं का ही मूर्त रूप मान लिया गया था। ईश्वर की पूजा और परोपकार की भावना का तो प्रायः लोप हो गया था, पर इन प्रक्रियाओं और पद्धतियों को ही यज्ञ का सर्वोत्तम रूप समझ लिया गया था। नवीन मीमांसकों ने बे-सिर-पैर की दांये बांये, ऊपर-नीचे इस दिशा उस दिशा से सम्बद्ध कुछ ऐसी ऊल-जलूल विधियां प्रचलित कर इनसे "अपूर्वफल' नाम से यजमान को लाभ होने का प्रलोभन देना प्रारंभ कर दिया था। यहां तक कि इन यज्ञों की आड़ में पशु-हिंसा और नरहिंसा तक का प्रचार इस देश में हो गया। वाममार्गियों के इस कुचक्र के कारण यज्ञशाला का वध-शाला और कसाईखाने के सदृश हो गया। एकेश्वर की पूजा, ध्यान, प्रार्थना और यज्ञ से सम्बद्ध ज्ञान और उपासना के अंगों का तो एकदम बहिष्कार हो गया था। कहां यज्ञ का इतना विशुद्ध वैदिक रूप और कहां वाममार्गियों तथा नवीन मीमांसकों के षडयन्त्र के फलस्वरूप यज्ञ का इतना बीभत्स, कुत्सित और घृणास्पद स्वरूप! ! मध्य युग में भारत में प्रचलित बौद्ध और जैनमत तथा शंकर स्वामी द्वारा कर्मकांड को हीनता और उपासना कांड पर अत्यधिक बल—यज्ञ संस्था के इस पतन की प्रतिक्रिया रूप ये सब आन्दोलन थे। मध्ययुग के बाद महर्षि दयानन्द प्रथम महापुरुष थे जिन्होंने यज्ञ का वैज्ञानिक और वेदशास्त्रानुमोदित सयुक्तिक स्वरूप

यज्ञ-प्रसाद

समुपस्थित किया। ऋषिवर ने यज्ञ अनुष्ठान को कर्मकांड का एक अंग बताते हुए उसमें ईश्वर की स्तुति और प्रार्थना का मुख्य कार्य दर्शाया तथा उसे ज्ञान व उपासना की ओर ले जाने का एक अनिवार्य साधन बताया। "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" में "वेद विषय विचार" में यज्ञ के प्रकरण का उपसंहार करते हुए, महर्षि के निम्न शब्द कितने गंभीर तत्त्वपूर्ण और शुद्ध मार्ग प्रदर्शक है—

यज्ञ परिधि में कर्म, ज्ञान, उपासना—तीनों

"केवल परमेश्वर ही कर्म, उपासना और ज्ञान कांड में सबका इष्ट देव स्तुति, प्रार्थना पूजा और उपासना करने के योग्य है, क्योंकि गुण वे कहाते हैं जिनसे कर्म काडादि में उपकार लेना होता है। परन्तु सर्वत्र कर्मकांड में भी इष्ट भोग की प्राप्ति के लिए परमेश्वर का त्याग नहीं होता, क्योंकि कार्य-कारण सम्बन्ध से ईश्वर ही सर्वत्र-स्तुति, प्रार्थना, उपासना से पूजा करने के योग्य होता है।"

सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में यज्ञ और दैनिक होम के लाभों को बताने के बाद यज्ञों के सुविस्तृत प्रचार के लिए ऋषिवर निम्न शब्द बलपूर्वक कहते है—

"इसलिए आर्यवर शिरोमणि महाशय ऋषि, महर्षि, राजे, महाराजे लोग बहुत-सा होम करते थे। जब तक इस होम करने का प्रचार रहा, तब तक आर्यावर्त्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाएगा।"

महर्षि दयानन्द ने स्वयं यज्ञ कराये

महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन में यज्ञों के प्रचार के लिए बहुत बल दिया। ऐसे भी कई अवसर आये जब उन्होंने स्वयं यज्ञ कराये। जिस समय स्वामी जी महाराज गंगा तट पर विचर रहे थे, तब अनूपशहर में कई मास तक रहे। यहां से महाराज कर्णवास पधारे। यहां एक महायज्ञ कराया। दस दिन तक गायत्री का जप होता रहा और फिर कई व्यक्तियों को यज्ञोपवीत दिये। अनूपशहर के पास चांदोक ग्राम निवासी ठाकुर गिरवरसिंह स्वामी जी के अनन्य भक्त थे। यज्ञ के पश्चात् ठाकुर महाशय के विशेष अनुरोध पर महाराज ने निम्नलिखित ईश्वर प्रार्थना प्रतिदिन करने के लिए उन्हें लिखवा दी।—

"हे परमेश्वर, हे सर्व सुहृद हे नित्य-शुद्ध, मुक्त स्वभाव, हे सर्व-जगतपिता, हे सर्वान्तर्यामिन, हे धर्मार्थ-काम-मोक्ष-प्रद, भवत्कृपया धर्मे मे सदा प्रीतिर्भवेत्, नाधर्मे कदाचित्। अधर्मे बुद्धीन्द्रियाणां च प्रवृत्तिर्न भवेत्।"

इन्हीं ठाकुर महाशय को यह जप भी लिखाया :—
ओ३म् नमः परमेश्वराय, सच्चिदानन्द स्वरूपाय सर्वगुरवे नमः।

मुसलमानों के तत्कालीन प्रमुख नेता सर सय्यद अहमद खाँ महर्षि दयानन्द के विशेष भक्त थे। जब स्वामी जी अलीगढ़ आये तो सय्यद साहब उनके दर्शन के लिए आये। उनके साथ कई प्रतिष्ठित मुसलमान और अंग्रेज सज्जन भी थे। वार्त्तालाप में सय्यद महोदय ने कहा—"आपकी अन्य बातें तो युक्ति-युक्त प्रतीत होती हैं पर यह बात कि थोड़े से हवन से वायु का सुधार हो जाता है, हमें युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होती।"

स्वामी जी ने हवन के अनेक लाभ बताने के बाद सय्यद महोदय से पूछा—"आपके यहां कितने मनुष्यों का भोजन बनता होगा?" उन्होंने उत्तर दिया—"लगभग ५०-६० व्यक्तियों का।"

स्वामी जी—'आपके यहां कितने सेर दाल प्रतिदिन पकती होगी?"

सर सय्यद—"कोई छः-सात सेर।"

स्वामी जी—'इतनी दाल में कितनी हींग का छोंका दिया जाता है?"

सर सय्यद—"माशा भर से कम तो नहीं होता होगा।"

स्वामी जी—"क्या इतनी थोड़ी हींग सारी दाल को सुगन्धित बना देती है?"

सर सय्यद—"हां अवश्य बना देती है।"

तब स्वामी जी ने कहा—"इतनी थोड़ी हींग की तरह थोड़ा-सा किया हुआ अग्नि होम भी वायु को सुगन्धित कर देता है।"

स्वामी जी के इस उत्तर से सर सय्यद बहुत सन्तुष्ट हुए।

दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ

वैदिक संस्कृति का केन्द्र बिन्दु यज्ञ पर ही है। व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय और वर्णाश्रम व्यवस्था के विभिन्न और विविध कर्म यज्ञ परिधि के अन्तर्गत ही समाविष्ट हैं। यज्ञ के बिना कोई शुभ कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता है। रामायण में हमें पढ़ते हैं कि जब दशरथ के सन्तान नहीं हुई तब ऋष्यश्रृंग के पौरोहित्य में राजा ने पुत्रेष्टि यज्ञ कराने का निश्चय किया। राजा के निमन्त्रण पर जब ऋषि आये और राजा ने अपनी कामना प्रकट की, तब उन्होंने कहा—

इष्टिं तेऽहं करिष्यामि
पुत्रीयां पुत्रकारणात्।
अथर्वशिरसि प्रोक्तैर्मन्त्रैः
सिद्धां विधानतः॥
—बालकांड १५।२

हे राजन्! पुत्रोत्पत्ति के लिए अथर्व वेद के मंत्रों द्वारा विधि-पूर्वक पुत्रेष्टि यज्ञ कराउंगा, मैं इसे अच्छी प्रकार जानता हूं।

यज्ञ की रक्षा राजा का परम कर्त्तव्य

राजा के कर्त्तव्यों में यज्ञ रक्षा को कितना विशिष्ट स्थान दिया जाता था, यह रामायण के उस प्रसंग से स्पष्ट होता है जिसमें मुनि विश्वामित्र राजा दशरथ के पास राम और लक्ष्मण को इसलिए लेने जाते हैं ताकि राक्षसों द्वारा यज्ञ की रक्षा की जा सके। जिस समय मोहवश दशरथ राम को भेजने में कुछ आनाकानी करते हैं तब मुनि कहते हैं—

नात्येति कालो यज्ञस्य
यथायं मम राघव।
तथा कुरुष्व भद्रं ते मा
च शोके मनः कृथा॥
बालकांड १९।१०७

राजन्! आप ऐसी व्यवस्था करें जिससे मेरे यज्ञ का शुभ समय बीत न जाए, आपका कल्याण हो, आप मन में किसी प्रकार का शोक न कीजिए। राक्षसों का वध करने के पश्चात् जिस समय यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया, तो विश्वामित्र बोले - हे महाबाहु राम! अब मैं कृतार्थ हो गया हूं। तुम ने अपने पिता के वचनों का पालन किया। तुमने वास्तव में इस आश्रम को "सिद्ध आश्रम" बना दिया है।

(बालकांड ३०,२२८, २२९)

अगस्त्य ऋषि की होमशाला

अपने वनवास काल में जब लक्ष्मण-सीता सहित राम अगस्त्य मुनि के आश्रम में पहुंचे उस समय मुनिवर अपनी होमशाला अर्थात् यज्ञ आसन पर विराजमान थे (अरण्य कांड १३।१५१)। इससे पता चलता है कि वन में रहने वाले मुनिगण भी प्रतिदिन यज्ञ करते थे। जिस समय लंका-विजय के बाद श्रीराम अयोध्या वापस आये और जनता ने धूमधाम से उनका स्वागत किया, उस समय अश्व-मेध यज्ञ द्वारा उन्हें राजगद्दी पर बिठाया गया।

महाभारत के पांच महान् यज्ञ

महाभारत के अध्ययन से पता चलता है कि उस काल में पांच महान् यज्ञ किये गये थे। पहला राजसूय तब किया गया पाण्डवों ने खाण्डव वन जला कर इन्द्रप्रस्थ नगर की स्थापना की थी। यह विशाल यज्ञ पांण्डवों के सार्वभौम राज्य की सुदृढ़ स्थापना का सूचक था। श्रीकृष्ण की प्रेरणा से इस यज्ञ का उपक्रम किया गया। जूए में हार जाने के बाद जब पाण्डव, शर्त के अनुसार ११ वर्ष के वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास के लिए राजपाट छोड़कर चले गये थे, तब कर्ण की प्रेरणा से दुर्योधन ने राजाओं को जीतकर "वैष्णव यज्ञ"—एक प्रकार का राजसूय यज्ञ ही किया था। (महाभारत वनपर्व अध्याय २५५।१९,२०,२१) तीसरा अश्वमेध महायज्ञ उस समय किया गया जब महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया और युधिष्ठिर को राजगद्दी पर बैठाया गया था। चौथा महायज्ञ युधिष्ठिर के पाण्डवों सहित महाप्रस्थान करने और अर्जुन के पौत्र परीक्षित के राज्य-सिंहासन ग्रहण करने के अवसर पर किया गया था। पांचवां महायज्ञ परीक्षित के पुत्र जनमेजय द्वारा आयोजित किया गया जिसे महाभारत में "सर्प यज्ञ" के नाम से कहा गया है। यद्यपि महाभारत के अनुसार इस यज्ञ में सर्पों का बड़े पैमाने पर हनन किया गया था क्योंकि जनमेजय के पिता परीक्षित की मृत्यु सर्पदंश से हुई थी, पर हमारा विचार है कि सर्प-सदृश किसी कुटिल विदेशी जाति का इस देश में प्रवेश हुआ होगा और उसके पूर्ण उन्मूलन के उपलक्ष्य में किये गये देश-व्यापक संगठित आयोजन का नामकरण उस जाति के नाम पर कर दिया होगा। इस अनुमान का मुख्य कारण यह है कि महाभारत के इस काल में तब तक यज्ञ में किसी प्रकार की प्राणि-हिंसा का प्रारम्भ नहीं हुआ था।

(क्रमशः)

ईसाइयों को आर्यसमाज की
चुनौती
अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती द्वारा
चुनौती भरे ३६ प्रश्न

१. क्या यह सत्य है कि उपदेश, जो ईसामसीह के शिष्यों द्वारा लिखित माने जाते हैं, कही भी उपलब्ध नही हैं क्या उनका कही अस्तित्व है ? यदि कही है तो सिर्फ उन्हें किसी पुस्तकालय अथवा कौतुकालय मे रखा जाना चाहिए। क्या यह पुस्तके कही खोजी जा सकती है ?

२. क्या यह सत्य है कि वर्तमान ईसाई उपदेश किसी यूनानी हस्त-लिपि के अनुवाद मात्र हैं ?

३. क्या इन उपदेशो मे आज इसका कोई साक्ष्य है कि ईसामसीह किसी धर्म को स्थापित करना चाहते थे ?

४. यह कथन कहा तक सही है, कि वर्तमान ईसाइयत पाल की ईसाइयत है अर्थात् सेण्ट पाल द्वारा सस्थापित मत है ?

५ क्या यह सत्य नही है कि सेण्ट पाल की ईसामसीह से भेंट नही हुई ? और न ही उसने ईसामसीह के कोई उपदेश श्रवण किये और न उनका भाषण श्रवण किया ?

६. क्या यह सत्य है कि मेरी, जो ईसा की मा थी, जोजफ नामक बढई की पत्नि थी ?

७ क्या यह सत्य नही है कि ईसा, उसके जोजफ के साथ विवाह के पश्चात् पैदा हुआ ?

८ क्या यह सत्य है कि ईसा के अतिरिक्त मेरी के कई बच्चे और भी थे ?

९. क्या यह सत्य है कि अपने गर्भ-धारण काल मे मेरी अपने माता के पास नही रह रही थी ?

१०. क्या यह सत्य है कि जब उसका प्रसव काल निकट था वह जोजफ ही था जो उसे सराय मे ले गया, जहा मेरी ने ईसा को जन्म दिया ?

११. क्या यह सत्य है कि ईसाइयत की पुस्तक में यह कहा गया है कि "एक कुमारी गर्भ धारण करेगी और पुत्र को जन्म देगी, और उसे उसे इम्मानुएल के नाम से पुकारेगी ?

१२. क्या यह सत्य है कि अमरीका मे प्रकाशित ओल्ड टस्टा-मेंट के अक मे 'वरजिन' शब्द के स्थान पर 'यग वोमैन' कर दिया गया है क्योकि मूल यूनानी शब्द का अर्थ 'वरजिन' नही 'यग वोमैन' है ?

१३ क्या यह सत्य है कि कुछ रूढिवादी ईसाइयो ने इस टीका के प्रति विरोध प्रकाशित किया है और अनुरोध किया है कि यदि 'वरजिन' शब्द बाईबल से गायब हो जाता है तो ईसा को 'वरजिन द्वारा जन्म होने की बात, जिस ईसाइयत की बनी खडी है, समाप्त हो जायगी और नबी हिल जाएगी ?

१४ क्या यह सत्य है कि ईसाईयाह मे अंकित कुमारी से उत्पन्न पुत्र का जो इम्मानुएल नाम था वह ईसा का नही था ? तब ईसाईयाह की भविष्य-वाणी का ईसा से कैसे सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है ?

१५ यदि मेरी विवाहिता थी और उसके अनेक सन्ताने थी तो यह विश्वास करना कहा तक उचित है कि ईसा जोजेफ का बेटा नही था ?

१६. यदि ईसामसीह की उत्पत्ति होली घोस्ट से है तो उसका वर्णन अभी भी ईश्वर के पुत्र के रूप में क्यों होता है ? और होली घोस्ट के पुत्र के रूप में क्यो नही होता ?

१७. क्या यह सत्य है कि ईसाइयों का एक सम्प्रदाय यह विश्वास करता है कि ईसामसीह को कभी सूली पर नहीं चढ़ाया गया, परन्तु उसके स्थान पर किसी और को दण्ड दिया गया और ईसा के प्राण इस तरह बचाए गए ?

१८. क्या यह सत्य है कि जब ईसा पर रोमन गवर्नर पौण्टियस पाइलेट के दरबार में मुकदमा चल रहा था, गवर्नर को उसकी पत्नी ने बताया कि ईसा निर्दोष है और उसे कुछ हानि न पहुंचाई जाए ?

१९ क्या यह भ सत्य है कि गवर्नर भी इस मत का नहीं था कि ईसा को सजा दी जाए और उसने केवल ईसा के दुश्मन यहूदियों द्वारा उठाये गए आन्दोलन के दबाव में आज्ञा प्रसारित की ?

२० क्या यह सोचना तर्क सगत नहीं है कि जब गवर्नर और उसकी पत्नी ईसा को सजा देने के पक्ष में नही थे और उसको कोई नुकसान पहुंचाना नही चाहते थे, तो वे अधिकारी जिन्हे ईसा को सूली पर चढाने के लिए ले जाने का कार्य सौंपा गया था, वे भी ईसा को बचाने का ही प्रयास करेंगे ?

२१. क्या यह सत्य है कि जब ईसा कलवरी को ले जाया जा रहा था और उसके कन्धे पर सूली थी उससे वह सूली ले ली गई और भीड़ में से किसी एक और मनुष्य को दे दी गई ?

२२ क्या यह सत्य है कि जब ईसा को सूली पर कीलो से गाड़ा गया तो वह चिल्लाया, या खुदा तूने मुझे इस घडी क्यो छोड दिया ?

२३. क्या इस विश्वास को, जो एक ईसाई सम्प्रदाय द्वारा माना जाता है कि ईसा कभी सूली पर नही चढाया गया और अधिक पुष्टि नही हो जाती, क्योंकि ईश्वर का पुत्र होने के कारण वह ईसा नही हो सकता है कि जिसने उन शब्दो को मुँह से निकाला और वह वही बेचारा व्यक्ति होगा जिसको खुशामदी अधिकारियों ने पकड़ लिया था; गवर्नर और उसकी पत्नी नहीं चाहते थे कि ईसा सूली पर चढ़े ?

२४ क्या इस विश्वास को इस बात से और सहारा नही मिलता कि तथा कथित सूली पर चढाये जाने के तीन दिन पश्चात ईसा को उसके शिष्यों ने देखा।

२५ इस मत से कि, 'ईसा सूली पर चढाये जाने के पश्चात् एक की गुफा में लेट रहा, तीन दिन बाद उठा, अपने शिष्यों से मिला और उनके ही सम्मुख सशरीर स्वर्ग को उड़ गया' क्या उपरोक्त बात अधिक तर्क पूर्ण और ठीक नहीं लगती ?

२६. क्या यह सत्य है कि जब पौन्टियस पाइलेट के मित्र एइलास लामिया ने नालरथ के जीसस के विषय मे पूछा तो उसने उत्तर दिया, 'जीसस नाजरथ ? नहीं मुझे यह याद नहीं। मेरे लिए उस नाम का कोई महत्व नही, पौन्टियस जब रोम का गवर्नर था उसने जीसस क्राइस्ट को सजा दी थी।

२७ क्या यह सत्य नही है कि ईसा के अधिकांश जीवन [illegible]र्णन इंजील मे नहीं है ?

२८. क्या यह सत्य नहीं है कि कुछ लोगों के कथन अनुसार उस काल में ईसा भारत अथवा तिब्बत में था, जहां ईसा द्वारा 'पर्वत पर उपदेश' में प्रसारित विचारों जैसे विचार साधारणतया माने जाते हैं। और व्यवहार में लाये जाते हैं ?

२९. क्या ईसाई यह विश्वास आदम और हव्वा से उत्पन्न सब व्यक्ति पापी हैं और ईश्वर मे विश्वास करने वालों को बचाने के लिए ईश्वर पुत्र ईसा को संसार में भेजा गया ?

३०. यह माना कि ईसाइयों के विश्वास के अनुसार आदम और हव्वा से उत्पन्न सब सन्तानें पापी हैं, क्या यह बात ईश्वर की बुद्धि पर प्रभाव नहीं डालती ? यदि कुम्हार द्वारा बनाये सब बर्तन चटखे हों तो क्या यह उसका दोष नहीं है ?

३१. यदि यह माना जाय कि ईश्वर ने मानव जाति पर दया की और उन्हे बचाने के लिए ईसा को भेजा, तो ईश्वर ने लाखो वर्ष इस निणय को लेने मे क्यो लिये कि रक्षक का भेजा जाए ? यदि लाखो स्त्री और पुरुष जो पापी थे इससे पहले सदा के लिए नरक को गये तो क्या दोष ईश्वर पर नहीं ?

३२. क्या रोमन तथा किसी भी इतिहास मे ईसा उसके उपदेश तथा सूली चढ़ाये जाने के विषय में कोई विवरण है ?

३३. क्या यह सत्य नही है कि जब ईसाई पादरी यूरोप से भारत आए तो उन्होने भारतीय परिधान पहना और कहा कि हम पण्डित हैं और अमरीका से आये है ?

३४ क्या यह सत्य नही है कि उन्होंने गिरजे बनाये और उनमे एक स्त्री की मूर्ति स्थापित की और कहा कि यह शिव की पत्नी गिरजा है ?

३५. क्या यह सत्य नही है कि ईसाई चर्च भारतीय भाषा में गिरजा कहलाता है ?

३६. क्या यह सत्य नही है कि कुछ ईसाई पादरियो ने गांवों के कुओं में चालाकी से डबल रोटी डाल दी और जब इन रोटियो के टुकड़े उन्होंने उसमे से निकाले तो उन्होंने घोषणा की कि वे सब हिन्दू, जो उस कुएं से पानी ले रहे थे, ईसाई हो गए और वे सब ग्रामवासी इस बात को कि वे ईसाई हो गए हैं अपने अज्ञान और निर्दोषता के कारण मान गए और ईसाई हो गए।

समाचार सन्देश

हिन्दू धर्म पर मिटने वालों को शत शत प्रणाम

जब २५ दिसम्बर १९८५ को विराट् जलूस चान्दनी चौक से गुजर रहा था, उसमें श्रद्धानन्द चौक (चान्दनी चौक) पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा प्रधान लाला रामगोपाल शालवाले जी ने अमर बलिदानी स्वामी श्रद्धानन्द को महान् योद्धा बताते हुए कहा था कि यह वह स्थान है, जहाँ पर इन्होंने अपने सीने पर गोलियाँ खाई थी। लाला जी ने आगे अपने भाषण में कहा कि चान्दनी चौक शहीदों का स्थान है। यहीं पर अंग्रेजों का बायकाट करने हेतु बम फेंका गया था। यहीं पर ही भाई मतिदास, सती दास को आरों से चीर कर शहीद कर दिया था। यह वह स्थान है, जहाँ पर गुरु तेगबहादुर को मुसलमान बादशाहों द्वारा जबरन मुसलमान बनाने का विरोध करते हुए शहीद कर दिया गया था। मैं इन सब बातों को मन में सोचता हुआ आ रहा था कि कुछ स्वार्थी तत्त्व क्यों एक दूसरे के खून के प्यासे हो गये हैं। जो धर्म के नाम पर बवंडर खड़ा कर रहे हैं। वे इन गुरुओं की वाणी को भूल गए। उस समय उन्होंने भी पाखण्डवाद का प्रविक्य होने पर इसका खण्डन किया था व हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए सर्वस्व न्योछावर किया था। गुरु नानक से लेकर गुरु गोविंद तक सभी गुरु हिन्दू थे, पर बाद मे मुसलमान बादशाहों द्वारा हिन्दू धर्म पर घोर अत्याचार के कारण इन्होंने इस कुचक्र से बचने के लिए गुरुओं की सीख पर सिख धर्म कायम किया व आह्वान किया प्रत्येक घर से एक सिपाही हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए बनाया जाए और गुरु गोविंद सिंह जी ने हमारी पुरानी संस्कृति के अनुसार ही इस धर्म का यह वेष बनाया जो प्राचीनकाल मे हमारे ऋषि मुनि धारण करते थे, जो कि एक अनोखी पहचान थी।

अब हम सब का फर्ज बनता है कि हिन्दू धर्म पर मिटने वाले शहीदों को सभी ने भाई चारे व प्रेम से परस्पर मिल कर श्रद्धांजलि देनी चाहिए।

आर्य कृष्ण राना
सदस्य आर्य युवक परिषद्

महती शोक सभा

दृढ़ता से आर्यजीवन का पालन, दैनिक सन्ध्या, हवन, स्वाध्याय, सत्संग आदि का नियमित अनुष्ठान करने वाले ऐसे आर्य परिवार आज आर्यसमाज मे निरन्तर कम हो रहे हैं। अशोक विहार फेज-२ निवासी श्री प्रकाशनाथ बवन और उनकी पत्नी श्रीमती शकुन्तला देवी उनके पुत्र, बहुए, बच्चे आज के युग में भी, इस प्रकार के अनुकरणीय आर्यजीवन का नमूना हैं। ईश्वर के नियम अटल और निरापक्ष हैं। गत वर्ष ट्रक दुर्घटना में श्री प्रकाशनाथ जी का देहान्त हो गया था। इस वर्ष २६-११-८५ को रात्रि को ११ बजे अकस्मात् उनकी धर्मपत्नी ६४ वर्षीय, बहन शकुन्तला जी का देहावसान हो गया। आपने अपने पति स्वर्गीय श्री प्रकाशनाथ जी की स्मृति में १०,०००।- आर्यसमाज मन्दिर में कमरे के लिए प्रदान किए थे उनकी इच्छानुसार उनकी मृत्यु से एक सप्ताह पूर्व कमरा बनना आरम्भ हो गया है। उनके तीनों सुपुत्रों ने कमरे के लिए और भी ८-१० हजार रुपये प्रदान करने को कहा है। ७-१-८६ को बहन जी की शोकसभा में ५००० रुपये यज्ञशाला के लिए भी प्रदान करने की घोषणा की। सभा में दिल्ली की अनेक आर्यसमाजों व स्त्री समाजों की ओर से शोक प्रस्ताव पढ़े गए। वक्ताओं में सर्वश्री आचार्य दीनानाथ जी सिद्धान्तालंकार, श्री सरदारी लाल वर्मा, सोमदत्त कोहली, पं० नानकचन्द, पं० रूपकिशोर, श्री खरबन्दा जी बहन पद्मावती, धर्मपाल शास्त्री आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। हार्दिक श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गईं और दिवगत आत्मा की सद्गति व उनके शोक सतप्त परिवार को सान्त्वना एवं धैर्य प्रदान करने की परम पिता परमात्मा से प्रार्थना की गई। शान्ति पाठ के पश्चात् सभा विसर्जित की गयी।

दुर्गाप्रसाद शर्मा
प्रचारमन्त्री समाज
आर्यसमाज फेस-२ अशोक विहार
दिल्ली-५२

शुद्धि एवं विवाह

दि० ५-१-८६ को प्रात. ९ बजे एक ईसाई युवती कु० मं० दलीना जैसलर को आर्यसमाज मन्दिर मेरठ शहर में श्री इन्द्रराज जी प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश ने शुद्ध करके वैदिक धर्म में दीक्षित कर उसका नाम कु० नीलम रखा।

तत्पश्चात् उसका विवाह संस्कार डाक्टर सुभाषचन्द्र जी के साथ वैदिक रीति से स्वयं सभा प्रधान जी ने सम्पन्न करवाया। श्री मास्टर सुन्दरलाल जी एव श्रीमती शकुन्तला जी गोयल प्रधान स्त्री आर्यसमाज मेरठ शहर ने नवयुगल को आशीर्वाद दिया।

मन्त्री
धर्मपाल

चुनाव सम्पन्न

आर्य प्रतिनिधि सभा हिमाचल प्रदेश का वार्षिक चुनाव दिनांक २४ नवम्बर १९८५ रविवार को स्वामी सुमेधानन्द जी की अध्यक्षता में निम्न प्रकार सर्वसम्मति से सम्पन्न हुआ:—

प्रधान : कृष्णलाल आर्य
महामन्त्री : भगवानदेव "चैतन्य"
वरिष्ठ उपप्रधान : ज्ञानप्रकाश आर्य
उपप्रधान : श्री शशी मित्तल व श्रीमती चांदरानी शर्मा
संयुक्त मन्त्री . रामकृष्ण गौतम
उपमन्त्री : रोशनलाल बहल व शान्ति कुमार
वित्तमन्त्री : शिवदत्त मेहरा
प्रचार मन्त्री : स्वामी सुबोधानन्द
वेदप्रचार अधिष्ठाता : स्वा० ब्रह्मानद
सचालक : आर्य वीर दल, कृष्णचन्द आर्य
उपसंचालक : सोहन सिंह व मुरारी लाल आर्य

भवदीय
भगवानदेव "चैतन्य"
महामन्त्री
आर्य प्रतिनिधि सभा, हिमाचल प्रदेश

वार्षिकोत्सव

आर्यसमाज शालीमार बाग बी०एन० पूर्वी का वार्षिकोत्सव ३१ जनवरी से २ फरवरी तक धूमधाम से आयोजित किया गया है।

इसमे श्री शिवकुमार शास्त्री, डा० वाचस्पति उपाध्याय, डा० महेश, डा० धर्मपाल, डा० रघुवीर आदि विद्वान् नेता पधार रहे हैं।

मन्त्री
देशराज कालरा

आर्यसमाज न्यू मोतीनगर

इस आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव १६ फरवरी से २३ फरवरी तक मनाया जायेगा। इस अवसर पर खेलकूद प्रतियोगिता, सामूहिक गान प्रतियोगिता भाषण एवं नाटक प्रतियोगिता भी आयोजित की गयी है। इस अवसर पर अनेक ज्ञानी विद्वान् पधार रहे हैं।

संयोजक—तीर्थराम आर्य

बोट क्लब पर वेदप्रचार

आजकल आर्यसमाज बोट क्लब का सत्सग बहुत प्रगति पर है। हर रोज सत्सग मे १५० व्यक्ति आ रहे हैं। पिछले सप्ताह ६-१-८६ से १०-१-८६ तक पं० चुन्नीलाल जी आए थे, सत्सग में बड़ी रौनक रही। इस सप्ताह मे १३-१-८६ से १७-१-८६ तक भी बड़ी भीड़ रही है, धर्मजिज्ञासुओं का उत्साह देखने लायक है।

भवदीय
रामस्वरूपदास आर्य मन्त्री

"युवा शक्ति ले फिर अंगड़ाई"

—राधेश्याम आर्य
मुसाफिर खाना सुल्तानपुर (उ०प्र०)

आए भू पर नवल विहान,
जागे त्याग तथा बलिदान,
ऐश्वर्यों से पूरित हों सब···
खेत, बाग, घर व खलिहान,
जगतीतल का कण कण हो···
फिर, सुखी-सौम्य सा, समृद्धि मय।

दानवता का सर्वनाश हो,
स्वार्थ वृत्ति का पूर्ण नाश हो,
तिमिर धरा का दूर भगे अब···
सत्य धर्म का फिर प्रकाश हो,
क्षत विक्षत हो पूर्ण रूप से··
धरती का अन्याय···अनय।

ओज, तेज, साहस हो जाग्रत,
शत्रु मनुजता का हो हत,
सम्मुख मानवता के सारा···
मानव भू का बने विनत,
जग के जन में निर्भय होकर···
जगे शुचितम भाव अभय।

फैले नयी उषा अरुणायी,
जगे जवानों को तरुणायी,
अत्याचारों के विरोध में···
युवा शक्ति ले फिर अंगड़ाई,
करे सुगन्धित दिङ्मण्डल को···
स्वच्छ सुशीतल वायु मलय।

॥ ओ३म् ॥

आर्य युवा महासम्मेलन

२ फरवरी ११८६ से ६ फरवरी ११८६

३-२-८६ सहदेव मल्होत्रा, आर्य पब्लिक स्कूल, पंजाबी बाग, नई दिल्ली
आर्य पुरुषार्थी पाठशाला, चूना मण्डी पहाड़गंज, नई दिल्ली
आर्य पुत्री पाठशाला, गांधीनगर, दिल्ली-३१
रतनचन्द सूद पब्लिक स्कूल, विनय नगर, नई दिल्ली २३
आर्य आदर्श विद्यालय, आदर्श नगर, दिल्ली-३३
४-२-८६ बिरला आर्य कन्या सीनियर सेकेण्डरी स्कूल, बिरला लाइन्स, कमला नगर, दिल्ली-७
५-२-८६ रतनदेवी आर्य गर्ल्स सीनियर सेकेण्डरी स्कूल, कृष्ण नगर, दिल्ली-५१
६-२-८६ दयानन्द माडल स्कूल, विवेक विहार, दिल्ली-५२
सद्भावा आर्य कन्या सीनियर सेकेण्डरी स्कूल, करोलबाग, दिल्ली-५
७-२-८६ रघुमल आर्य कन्या सीनियर सेकेण्डरी स्कूल, राजा बाजार, नई दिल्ली-१
८-२-८६ नेशनल स्टेडियम
९-२-८६ नेशनल स्टेडियम

आर्य वीर दल

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

१५, हनुमान् रोड, नई दिल्ली-१

॥ ओ३म् ॥

दिल्ली प्रान्तीय आर्य युवा महासम्मेलन

एवम्

खेल-कूद, भाषण, वाद-विवाद, निबन्ध-लेखन, चित्रकला, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का अभूतपूर्व बृहद् आयोजन

२ फरवरी से ९ फरवरी १९८६

युवा निर्माण से ही समाज तथा राष्ट्र का कल्याण है !

आज देश में चारों ओर अलगाववादी ताकतें, विदेशी विघटनकारी शक्तियों के इशारे पर भारतीय अखण्डता को ध्वस्त करने में प्रयत्नशील हैं। आर्यसमाज सदा से ही राष्ट्रोत्थान के लिए सजग प्रहरी रहा है। इन भीषण परिस्थितियों का सामना करने के लिए हमारा कर्तव्य है कि हम आने वाली पीढ़ी—आज के युवा जनों को सुसंगठित करें तथा उनमें कर्तव्य, सहभागिता और राष्ट्र रक्षा के लिए सजगता की भावना भरें। उनके चारित्रिक, आत्मिक एवं शारीरिक विकास के लिए कार्यक्रम आयोजित करें। युवा संसाधन से ही मानव कल्याण सम्भव है।

सभी धर्मप्रेमी भाई-बहनों से विनम्र निवेदन है कि इन सभी कार्यक्रमों में उपस्थित होकर युवा छात्र-छात्राओं का उत्साहवर्धन करें तथा अपने बालकों को इन कार्यक्रमों में भाग लेने की प्रेरणा दें।

आप सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

भाषण प्रतियोगिता

३ फरवरी १९८६—प्रातः ११.०० बजे

स्थान सहदेव मल्होत्रा आर्य पब्लिक स्कूल, पंजाबी बाग, नई दिल्ली

संयोजक—श्रीमती व्रजबाला भल्ला, प्रिंसिपल

कक्षा ६ से ८ तक के छात्र-छात्राओं के लिए

विषय—१. राष्ट्र निर्माण में युवा वर्ग का योगदान।
२. महर्षि दयानन्द—स्वराज्य के प्रथम मन्त्रदाता।
३. महात्मा हंसराज और डी०ए०वी० आंदोलन।

नियम—१. किसी एक विषय पर तीन मिनट का हिन्दी में भाषण।
२. एक विद्यालय से केवल दो छात्र भाग ले सकेंगे।
३. प्रथम, द्वितीय और तृतीय—तीन पुरस्कार दिये जायेंगे।
४. निर्णायकों का निर्णय ही अन्तिम रूप से मान्य होगा।
५. विजेता छात्रों को पुरस्कार और प्रशस्ति पत्र नेशनल स्टेडियम में ९-२-८६ को दिये जायेंगे।

कक्षा ९ से १२ तक के छात्र-छात्राओं के लिए

विषय १. भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति में आर्यसमाज का योगदान।
२. आर्यसमाज और शिक्षा
३. समाज सुधार।

नियम—१ किसी एक विषय पर तीन मिनट का हिन्दी में भाषण।
२. एक विद्यालय से केवल दो छात्र भाग ले सकेंगे।
३. प्रथम, द्वितीय और तृतीय—तीन पुरस्कार दिये जायेंगे।
४. निर्णायकों का निर्णय ही अन्तिम रूप से मान्य होगा।
५ विजेता छात्रों को पुरस्कार और प्रशस्ति पत्र नेशनल स्टेडियम में ९-२-८६ को दिये जायेंगे।

भाषण प्रतियोगिता

३ फरवरी १९८६—प्रातः ११.०० बजे

स्थान—१. आर्य पुरुषार्थी पाठशाला, चूना मंडी, पहाड़गंज, नई दिल्ली
संयोजक श्री शामदास सचदेव
२. आर्य पुत्री पाठशाला, गांधी नगर, दिल्ली-३१
संयोजक : श्री ब्रह्मदेव गुप्ता
३ श्री रतनचन्द सूद आर्य पब्लिक स्कूल, विनय नगर, नई दिल्ली-२३
संयोजक : श्री रोशनलाल गुप्त
४. आदर्श आर्य विद्यालय आर्यसमाज आदर्श नगर, दिल्ली-३३
संयोजक : श्री महावीर बत्रा

कक्षा १ से ५ तक के छात्र-छात्राओं के लिए

विषय—१. महर्षि दयानन्द,
२ श्रीमती इन्दिरा गांधी,
३ श्री लालबहादुर शास्त्री,
४. आर्यसमाज के कार्य।

नियम—१. किसी एक विषय पर तीन मिनट का हिन्दी में भाषण।
२. एक विद्यालय से केवल दो छात्र भाग ले सकेंगे।
३. प्रथम, द्वितीय और तृतीय—तीन पुरस्कार; चारों स्थानों पर कुल मिलाकर बारह पुरस्कार दिये जायेंगे।
४. निर्णायकों का निर्णय ही अन्तिम रूप से मान्य होगा।
५. विद्यालयों के आचार्यों/अध्यापकों से निवेदन है कि वे अपने निकटवर्ती स्थान पर अपने छात्र-छात्राओं को भेजें। प्राथमिक कक्षाओं के प्रतियोगियों के लिए प्रत्येक स्थान के लिए तीन तीन पुरस्कार अर्थात् कुल १२ पुरस्कार दिये जायेंगे।
६ विजेता छात्रों को पुरस्कार और प्रशस्ति पत्र नेशनल स्टेडियम में ९-२-८६ को दिये जायेंगे।

निबन्ध-लेखन प्रतियोगिता

४ फरवरी १९८६—प्रातः ११.०० बजे

स्थान—बिरला आर्य कन्या सीनियर सेकेण्डरी स्कूल, बिरला लाइन्स, कमला नगर, दिल्ली-७

संयोजक—श्रीमती सुशीला सेठी, प्रिंसिपल

प्रथम वर्ग—कक्षा १ से ५ तक
द्वितीय वर्ग—कक्षा ६ से ८ तक
तृतीय वर्ग—कक्षा ९ से १२ तक

नियम—१. विषय प्रतियोगिता-स्थल पर ही बताये जायेंगे। सभी विषय आर्यसमाज, समाज-सुधार तथा देश-प्रेम से सम्बन्धित होंगे। समय एक घण्टा होगा।
२. प्रत्येक वर्ग में प्रथम, द्वितीय तृतीय—तीन पुरस्कार; कुल नौ पुरस्कार दिये जायेंगे।

३. एक विद्यालय से प्रत्येक वर्ग में केवल दो छात्र/छात्रा भाग ले सकेंगे।
४ निर्णायकों का निर्णय ही अन्तिम एवं मान्य होगा।
५ विजेता छात्रों को पुरस्कार और प्रशस्ति पत्र नेशनल स्टेडियम में ६-२-८६ को दिये जायेंगे।

वाद-विवाद प्रतियोगिता

५ फरवरी १९८६—प्रात. ११.०० बजे
स्थान—रतन देवी आर्य गर्ल्स सीनियर सैकण्डरी स्कूल, कृष्ण नगर, दिल्ली-५१
संयोजक—श्रीमती सुशीला गोयल, प्रिंसिपल

कक्षा १ से ५ तक के छात्र-छात्राओं के लिए
विषय—विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा से ही छात्रों का सही विकास सम्भव है।

कक्षा ६ से ८ तक के छात्र-छात्राओं के लिए
विषय—भौतिक विज्ञान के साथ-साथ आध्यात्मिक ज्ञान समाज-कल्याण के लिए आवश्यक है।

कक्षा ९ से १२ तक के छात्र-छात्राओं के लिए
विषय—राष्ट्र रक्षा शारीरिक रूप से बलिष्ठ लोग ही कर सकते हैं।

नियम—१. एक विद्यालय से प्रत्येक वर्ग में एक पक्ष में, एक विपक्ष में-बोलने के लिए दो; इस प्रकार कुल छः बालक भाग ले सकेंगे।
२ एक छात्र को तीन मिनट का समय दिया जायेगा।
३. प्रत्येक वर्ग में प्रथम, द्वितीय और तृतीय—तीन पुरस्कार अर्थात् कुल नौ पुरस्कार दिये जायेंगे।
४. निर्णायकों का निर्णय ही अन्तिम रूप से मान्य होगा।
५. विजेता छात्रों को पुरस्कार और प्रशस्ति पत्र नेशनल स्टेडियम में ६-२-८६ को दिये जायेंगे।

सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रतियोगिता

६ फरवरी १९८६—प्रातः ११.०० बजे
स्थान—१. दयानन्द माडल स्कूल, विवेक विहार, दिल्ली-३२
संयोजक—श्री विश्वभर नाथ भाटिया
२. सत्यार्थी आर्य कन्या महाविद्यालय, करौलबाग, नई दिल्ली
सयोजक—श्रीमती (डा०) सुदर्शन नाहल, प्रिंसिपल

कक्षा १ से १२ तक के छात्र-छात्राओं के लिए
विषय—देश प्रेम, आर्यसमाज, राष्ट्रनेता सम्बन्धी भजन, कविता अथवा अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रम।

नियम—१. एक विद्यालय से केवल एक कार्यक्रम लिया जा सकेगा।
२. समूह गान अथवा अन्य कार्यक्रम में अधिकतम छः छात्र/छात्रा भाग ले सकेंगे।
३. कार्यक्रम का अधिकतम समय १५ मिनट होगा।
४. प्रथम, द्वितीय और तृतीय आने वाली टीमों को व्यक्तिगत पुरस्कार दिये जायेंगे।
५. निर्णायकों का निर्णय ही अन्तिम रूप से मान्य होगा।
६. विजेता छात्रों को पुरस्कार और प्रशस्ति पत्र नेशनल स्टेडियम में ६-२-८६ को दिये जायेंगे।

चित्रकला प्रतियोगिता

७ फरवरी १९८६—प्रातः ११.०० बजे
स्थान—रघुमल आर्य कन्या सीनियर सैकण्डरी स्कूल, राजा बाजार निकट मद्रास होटल, नई दिल्ली
संयोजक—श्रीमती चन्द्र इन्द्रा, प्रिंसिपल

प्रथम वर्ग—कक्षा १ से ५ तक
द्वितीय वर्ग—कक्षा ६ से ८ तक
तृतीय वर्ग—कक्षा ९ से १२ तक

विषय—किसी आर्य नेता का चित्र अथवा सामाजिक महत्त्व का पोस्टर जैसे दहेज विरोध, सड़क दुर्घटना, परिवार कल्याण आदि।

नियम—१. किसी एक विषय पर एक घण्टे मे चित्र बनाना।
२. एक विद्यालय से एक वर्ग में केवल दो छात्र—कुल छः छात्र भाग ले सकेंगे।
३. प्रत्येक वर्ग में प्रथम, द्वितीय, तृतीय—कुल नौ पुरस्कार दिये जायेंगे।
४. निर्णायकों का निर्णय ही अन्तिम रूप से मान्य होगा।
५. विजेता छात्रों को पुरस्कार और प्रशस्ति पत्र नेशनल स्टेडियम में ६-२-८६ को दिये जायेंगे।

खेलकूद प्रतियोगिता

८ फरवरी १९८६—प्रातः ११.०० बजे
स्थान—नेशनल स्टेडियम
संयोजक—श्री धर्मवीर वशिष्ठ

खेल का नाम	आयु वर्ग	कुल पारितोषिक
१. माला फेंकना (बालक)	१४ से १७ वर्ष	३
२. माला फेंकना (बालिका)	१४ से १७ वर्ष	३
३. चक्का फेंकना (बालक)	१४ से १७ वर्ष	३
४. चक्का फेंकना (बालिका)	१४ से १७ वर्ष	३
५. ऊँची कूद (बालक)	११ से १३ वर्ष	३
६. ऊँची कूद (बालिका)	११ से १३ वर्ष	३
७. ऊँची कूद (बालक)	१४ से १७ वर्ष	३
८. ऊँची कूद (बालिका)	१४ से १७ वर्ष	३
९. लम्बी कूद (बालक)	१४ से १७ वर्ष	३
१०. लम्बी कूद (बालिका)	१४ से १७ वर्ष	३
११. लंबी कूद (बालक)	११ से १३ वर्ष	३
१२. लम्बी कूद (बालिका)	११ से १३ वर्ष	३

नियम—१. एक विद्यालय से प्रत्येक वर्ग में केवल दो बालक/बालिकाएँ भाग ले सकेंगे।
२ प्रत्येक वर्ग में प्रथम, द्वितीय, तृतीय—कुल ३६ पुरस्कार; दिये जायेंगे।
३. निर्णायकों का निर्णय ही अन्तिम रूप से मान्य होगा।
४ विजेता छात्र-छात्राओं को पुरस्कार और प्रशस्ति पत्र नेशनल स्टेडियम में ६-२-८६ को दिये जायेंगे।

खेलकूद प्रतियोगिता

९ फरवरी १९८६—प्रातः ११.०० बजे
स्थान—नेशनल स्टेडियम
सयोजक—धर्मवीर वशिष्ठ

खेल का नाम	आयु वर्ग	कुल पारितोषिक
१. १०० मीटर दौड़ (बालक)	५ से १० वर्ष	३
२. १०० मीटर दौड़ (बालिकाएँ)	५ से १० वर्ष	३
३. २०० मीटर दौड़ (बालक)	११ से १३ वर्ष	३
४. २०० मीटर दौड़ (बालिकाएँ)	११ से १३ वर्ष	३
५ ४०० मीटर दौड़ (बालक)	१४ से १७ वर्ष	३
६. ४०० मीटर दौड़ (बालिकाएँ)	१४ से १७ वर्ष	३

नियम—१. एक विद्यालय से प्रत्येक वर्ग में केवल दो बालक/बालिकाएँ भाग ले सकेंगे।
२. प्रत्येक वर्ग मे प्रथम, द्वितीय, तृतीय—कुल १८ पुरस्कार दिये जायेंगे।
३. निर्णायकों का निर्णय ही अन्तिम रूप से मान्य होगा।
४. विजेता छात्र-छात्राओं को पुरस्कार और प्रशस्ति पत्र नेशनल स्टेडियम में ६-२-८६ को दिये जायेंगे।

समापन समारोह

९ फरवरी १९८६ अपराह्न १.०० बजे

स्थान :

नेशनल स्टेडियम

कार्यक्रम—१. वेद गायन
२. मार्च पास्ट
३. सभी विद्यालयों से शारीरिक कार्यक्रम प्रदर्शन
४. पुरस्कार वितरण
५. अध्यक्षीय भाषण तथा
६. धन्यवाद एवं शान्ति पाठ।

निवेदक :

सूर्यदेव (प्रधान) **डा० धर्मपाल** (महामन्त्री)
(दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा)

प्रियतम दास रसवन्त (अधिष्ठाता) **श्यामसुन्दर विरमानी** (मन्त्री)
(आर्य वीर दल)

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन : ३१०१५० के लिए डा० धर्मपाल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा
वैदिक प्रेस, गली नं० १७, कैलाशनगर, दिल्ली-३१ में मुद्रित। रजि० नं० डी० (सी०) ७५६

वष १० अक ११ | रविवार, २ फरवरी १९८६ | सृ ट सवत् १९७२९४९०८८ | माघ २०४२ | दयानन्दाब्द—१६१

मूल्य एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश मे ५० डालर २० पौंड

विराट नगर नेपाल में विशाल आर्य सम्मेलन

आयसमाज विराट नगर द्वारा वोरेन्द्र सभा गृह मे विशाल सम्मेलन का आयाजन किया गया। जिसमे भारत क आर्य नेता श्री रामगोपाल पधारे।

सावदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष ने नेपाल अधिराज्य के प्रथम आर्य महासम्मेलन मे मुख्य अतिथि पद से बोलते हुए विराट नगर के खचाखच भरे वीरेन्द्र सभा-गृह मे कहा कि ससार के एक मात्र हिन्दु राष्ट्र नेपाल पर हमे गर्व है। इस आय भूमि पर पग रखने के पश्चात् हम अपने आपको गौरवान्वित अनुभव कर रहे हैं। उन्होंने नेपाल सरकार से शिकायत करते हुए कहा कि जब यहा के सविधान मे हिन्दुओ के धम परिवर्तन पर प्रतिबन्ध है फिर भी यहा के गराब नागरिको को नेपाल का सीमा से बाहर ले जाकर मुसलमान और ईसाई बना कर नेपाल के नागरिको के रूप मे बसाया जा रहा है। उन्होंने विधर्मियो की इन गतिविधियो को नेपाल के लिए खतरे की घटी की सज्ञा देते हुए कहा कि नेपाल सरकार को इस पर गभीरता से विचार करना चाहिए। उन्होंने कहा कि हम वह दिन देखना चाहते हैं जब हिन्दू राष्ट्र नेपाल के महाराजाधिरा अश्वमेधयज्ञ करके विश्व मे वैदिक साम्राज्य की स्थापना हेतु विजय यात्रा की तयारी करेंगे।

उन्होने आगे कहा कि हर सकट के समय आर्य समाज हिन्दू जाति की रक्षा के लिए ढाल बनकर हर विपत्ति को अपने सीने पर झेलता रहा है। भाषण की समाप्ति करते हुए उन्होने

विराट नगर (नेपाल) की सभा को सम्बोधित करते हुए श्री लाला रामगोपाल शालवाले।

कहा कि आर्यसमाज कोई मजहब धर्म सम्प्रदाय मत या पथ नही बल्कि स्वामी दयानन्द ने सत्य सनातन वैदिक धर्म को पुनर्जीवित करने के लिए हा आर्यसमाज की स्थापना की थी। कोशी अचलाधोश श्री सूर्य बहादुर सैन ओला ने दीप प्रज्वलित कर समारोह का उदघाटन किया। समारोह की अध्यक्षता नेपाल के भू० पू० प्रधान मत्री श्री मातृका प्रसाद कोईराला ने की तथा भूतपूर्व प्रधान मत्री एव विश्व हिन्दू सघ नेपाल के अध्यक्ष श्री नागेन्द्र प्रसाद रिजाल सरक्षक सभापति थे।

अचलाधीश श्री सैन ओली ने अपने भाषण मे लाला जी की बातो पर सहमति व्यक्त करते हुए उनसे बार-बार नेपाल आकर नेपाल की जनता का मार्ग दर्शन करने का आग्रह किया और कहा—श्री शालवाले ने नेपाल राष्ट्र को अश्वमेध यज्ञ की चर्चा करके जो गौरव प्रदान किया है उसके हम आभारी हैं।

श्री नागेन्द्र प्रसाद रिजाल ने कहा कि हिन्दुओं की सहज स्वाभाविक आकाक्षा है कि नेपाल समृद्ध हिन्दू राष्ट्र बने।

नेपाल हिन्दू धर्म समन्वय एव सनातन धर्म सेवा समिति के अध्यक्ष प्रो० केशव शरण ने अधिराज्य मे फैलते हु इसलिश बोडिंग स्कूलो के जाल पर गहरी चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा कि शिक्षा के माध्यम से ईसाई मिशनरिया नेपाल की संस्कृति पर अघोषित आक्रमण कर रहे हैं। इसका सामना करने के लिए उन्होने सभी हिन्दू सगठनो के समन्वित प्रयास पर बल दिया।

इस अवसर पर प० जगन्नाथ शर्मा शास्त्री, स्वामी कैलाशानन्द, प० कमलकान्त अत्रे (असम) नेपाल के वैदिक प्रचारक प० प्रेम नारायण गौतम, प० पुण्य प्रसाद उपाध्याय, श्री विष्णु शिवाकोटी (काठमाडु) प० छवि लाल पोखरेल (धरान) एव मोरग के जिलाधिकारी ने भी अपने उदगार व्यक्त किये।

सम्मेलन की कार्यवाही का सचालन युवा महासचिव श्री प्रकाशचन्द सुवेद ने बड ही रोचक एव ओजस्वी ढग से किया। सुश्री पवित्रा उप्रती एव सुश्री राधिका उप्रती का युगल सस्कृत स्वागत गान एव सिलीगुडी का सुश्री नम्रता वर्मा के वदिक गीत ने सभागृह म धार्मिक समा बाध दिया।

आर्यसमाज विराट् नगर के अध्यक्ष श्री सीताराम अग्रवाल ने धन्यवाद ज्ञ पन किया।

नि यानन्द
आर्यसमाज विराट नगर नपाल
रानी मोरग कोशी अचल (नेपाल)

इस अक मे

सम्पादक—यशपाल 'सुधांशु' एम० ए०   व्यवस्थापक—डा० [illegible]लाल   प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल

अन्नत उलझनों का शिकार—आज का मानव
एकमात्र उपाय—योग मार्ग
ऋषि दयानन्द प्रदर्शित

आचार्य दोनानाथ सिद्धांतालंकार

★

करिष्ये वचनं तव

कुरुक्षेत्र के विशाल मैदान में पांडव-कौरवों के मध्य युद्ध के प्रारंभ में ही अर्जुन की मानसिक स्थिति का सकेत गीता के पहले अध्याय के अन्तिम श्लोक में इन शब्दों मे दिया गया है—"विसृज्य सशरं चापं शोक संविग्न मानस." अर्थात् बाण सहित धनुष छोड शोकातुर मन से बैठ गया। दूसरे अध्याय में अर्जुन के इस मानसिक विषाद के विविध रूपों व पक्षों को अर्जुन-कृष्ण संवाद द्वारा उजागर करते हुए अर्जुन ने समुचित मार्ग की जिज्ञासा की। श्री कृष्ण की शिक्षा का केन्द्र बिन्दु शोक मुक्त होना ही है। इस स्थिति को इस अध्याय के अन्त में "शान्ति" और "ब्राह्मी स्थिति" इन दो शब्दों से श्री कृष्ण ने अलकृत किया है। गीता के १८ अध्यायो का सार इस दूसरे अध्याय मे ही है। गाधी जी के सत्य-ग्रह आश्रम मे इस दूसरे अध्याय का ही पाठ प्रतिदिन होना था। महामना प० मदन मोहन मालवीय जी कहा करते थे कि प्रत्येक हिन्दू को गीता के दूसरे अध्याय का पाठ प्रतिदिन करना चाहिए। श्री कृष्ण द्वारा इस अध्याय के फलस्वरूप गीता के अन्तिम अध्याय १८ के अन्तिम श्लोक मे अर्जुन कहता है जिसका भावार्थ है—हे भगवन ! आपकी कृपा मे मेरा मोह नष्ट हो गया, स्मृति जागृत हो गई, अब मैं अपने मे स्थिर हूँ और आपके आदेश का पालन करूगा।

तीन शत्रु—शोक, मोह और चिन्ता

शोक और मोह----दोनो ही हृदय मे लुहार की धौंकनी के समान एक प्रबल लहर प्रतिक्षण पैदा करते रहते हैं जिसे मनोविज्ञान की भाषा मे "चिन्ता" कहा जाता है। भर्तृहरि के शब्दों में यह संसार आशा रूपी गहन नदी, जिसमें शोक-मोह दोनों सतत गतिशील चक्रवत् घूमनघेरी, और "चिन्ता" एक ऊंचे किनारो वाली नदी सदृश है। कवि के शब्दों मे—

विशुद्ध हृदय के योगी ही इस आशा रूपी महती नदी को पार कर प्रसन्न होते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में—"चिन्ता सांपिनी"। सस्कृत के एक कवि ने तो 'चिन्ता' को 'चिता' से भी अधिक दाहक बताया है। "चिन्ता और चिता—इन दोनों में चिन्ता ही बड़ी है क्योंकि चिता तो मृत प्राणी को जलाती है पर चिन्ता जीवित को ही जला देती है।" गीता के अध्याय १६/११ से १६ श्लोक तक श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए "अल्प बुद्धि" किस प्रकार काम, दम्भ, मोह इत्यादि में आसक्त अशुचिव्रत व्यक्ति चिन्ता के चक्रव्यूह मे सतत आसक्त रहते है। यह श्लोक ११ से १६ तक बड़े ही उत्तम शब्दों में बताया है। श्री कृष्ण कहते हैं—

"प्रलय तक भी समाप्त न होने वाली अपरिमित चिन्ता में मग्न, काम और भोग में फसे अनेक आशा पाशो से आबद्ध, काम-क्रोध के आधीन, सदा काम भोग के शिकार, अन्याय से अर्थ सग्रह में संलग्न, 'मैंने आज इसे मारा है, कल उसे मार दूंगा" यह है, यह होगा, इस शत्रु को मारा है, कल उसे मार दूगा, मैं स्वामी हूँ, सिद्ध हूं, भोगी सुखी, बलवान् हूँ, धनी हूं, कई मित्र-साथियों वाला हूँ। मेरे बराबर कोई नही है, यज्ञ करूगा, दान करूंगा, फिर मजा लूंगा—इस प्रकार अनेक प्रकार से चिन्ता और मोह के जाल मे फंसे दु खदायक भ्रष्ट नरक में पतित होते रहते हैं।" चिन्ता के बहुरूपी जंजाल और गोरख धन्धे का इससे अधिक प्रभावी विस्तृत और अनेक पक्ष और रूपो वाला वर्णन अन्यत्र किसी आध्यात्मिक ग्रन्थ मे मिलना सहज नही है।

चिन्ता का निराकरण—सन्ध्या के ६ मन्त्र

साधक के हृदय में यह प्रश्न अनायास ही उठेगा कि सर्पिणी रूप इस चिन्ता का प्रादुर्भाव कहाँ से होता है ? इसका उत्तर प्रातः साय नियमित रूप से की जाने वाली वेदिक सन्ध्या के उन छ. मन्त्रों मे मिलता है जो पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, ऊपर-नीचे-इन छः दिशाओं में पाप निवारण के लिये बार-बार प्रार्थना की गई है। इन्हें वैदिक भाषा में 'मनसा परिक्रमा" मन्त्र कहा जाता है। इन मन्त्रों के पहले अंश में उस दिशा के प्रति, प्रभु-गुणों के स्मरण के साथ उस दिशा दिशा के अधिष्ठाता और रक्षक के प्रति नमस्कार करते हुए प्रार्थना की गई है "योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्मे दध्मः।" ऋषि दयानन्द ने इस प्रातः साय दो बार किये जाने वाले ब्रह्म यज्ञ मे छः बार पढ़े गये इस मंत्र अश का अर्थ इस प्रकार किया है—"जो प्राणी (अज्ञान से) हम से द्वेष करता है (तथा) जिस प्राणी को हम (अज्ञान से) द्वेष करते हैं, उस प्राणी को (हम) आप (ईश्वर) के वश में (दध्म) दग्ध करते हैं (जिससे वह वैर को त्याग कर हमारा मित्र हो जाये वा हम भी उसके मित्र हो जाय अर्थात् हम सब परस्पर मित्र भाव से बर्तें) इस मन्त्र में 'दग्ध' का ऋषिकृत अर्थ जला देना नही है, किन्तु समूल नष्ट कर देना है।

अहिंसा के चमत्कार—दयानन्द के जीवन में

फलत चिन्ता के मूल ईर्ष्या द्वेष का त्याग-योगदर्शन के शब्दों मे "अहिंसा" की भावना-मन, वचन, कर्म···सब प्रकार से जीवन में प्राणी मात्र के प्रति दया, करुणा, सहानुभूति इत्यादि का दृढता से पालन··· यही अहिंसा का रूप है। योगदर्शन साधन पाद सूत्र ३५ के अनुसार "अहिंसा प्रतिष्ठायां तत् सन्निधौ वैरत्याग." अर्थात् अहिंसा के दृढ पालन से प्राणी के प्रति वैर त्याग, अपनत्व की भावना बद्धमूल हो जाती है। इस तथ्य की पुष्टि मे ऋषि दयानन्द के जीवन की दो घटनायें उपस्थित हैं।

हिमालय की अलखनन्दा नदी को पार कर जिस समय ऋषिवर घने जगल मे प्रविष्ट हुए, कुछ दूर जाते ही एक जंगली रीछ उनके सामने अपने विषैले नाखूनों वाले पजों को उनके सिर पर रख ऐसे खड़ा हो गया, मानो अभी उनके शरीर को चीर फाड़ें कर देगा। पर ऋषि के हृदय में तो प्राणी मात्र के प्रति मैत्री, करुणा, दया की भावना अविचल थी। इसी दृढ़ भावना के साथ ऋषि ने अपने कमचक्षुओं से ज्योंही उस घातक पशु की ओर निहारा, तत्क्षण वह रक्त-पिपासु पशु अपने पंजे नोचे कर चुपचाप वहां से चला गया। इससे कुछ समय पूर्व ही जब ऋषिवर एक गांव से प्रस्थान कर जंगल में प्रविष्ट होने लगे थे तब गांव वालों ने हिंस्र पशु आपूरित जंगल में अपनी रक्षा के लिये बड़ी लाठी उन्हें भेंट की थी ऋषि ने लाठी वही वापस करते हुए कहा था "दयालु प्रभु पर अविचल श्रद्धा विश्वास से बढ़कर अन्य कोई सहारा नही है। वही अटूट लाठी है।"

रावकर्णसिह की तलवार—ऋषि की दृढता

इस घटना का सम्बन्ध तो एक हिंस्र पशु से था जो केवल चेष्टा ही कर सकता है, पर किसी मनुष्य के साथ किसी प्रकार की बातचीत नहीं कर सकता महर्षि के जीवन की कई घटनाओं में से एक वह घटना उल्लेखनीय है जिसमें एक प्रभावशाली व्यक्ति ने उन पर तलवार से आक्रमण किया था। उत्तरप्रदेश के गंगातट स्थित नगरों और ग्रामों में ऋषिवर कई मास तक शीत ऋतु में तपस्या और निर्भयता से वैदिक सिद्धांतों का प्रचार-जनसमाज मे प्रचलित दोषों और बुराईयो के निर्भयता से खडन के साथ सत्य वैदिक सिद्धातो का पूर्ण निर्भयता से से प्रचार करते रहे। इसी प्रसग में स्वामी जी कर्णवास गये और वहां गगातट पर मेला भी था। वेद विरुद्ध मतों और सम्प्रदायों का खडन करते हुए उन्होंने वैष्णव मत का भी खण्डन किया। वहां के एक प्रमुख ज़मीदार राव कर्णसिह इस से अत्यन्त रुष्ट हो गये। एक दिन जब स्वामी जी हज़ारों की जनता के सम्मुख उपदेश दे रहे थे, राव कर्णसिह अत्यन्त क्रुद्ध हो, हाथ में तलवार ले उन पर आक्रमण के लिये अपने कुछ साथियों के साथ पहुँच गये। पहले गाली-गलौच करते रहे फिर तवार ले उन पर आक्रमण कर दिया। स्वामी जी तब भी शान्ति के साथ मुस्कराते हुए बोले राव साहब ! आपके हाथ में तलवार है और मेरा सिर भी आप काट सकते हैं पर मैं इससे भयभीत नहीं होता। मेरा सिर आपके सामने है। एक संन्यासी पर आप यह तलवार चला सकते हैं पर मैं तो फिर भी आपको

(शेष पृष्ठ ४ पर)

आर्यसमाज के स्वर्णिम अतीत और भविष्य का सिंहावलोकन आवश्यक है ?

आर्य समाज न कोई मत, मजहब, सम्प्रदाय है, न कोई वाद में लिपटा सिद्धान्त। यह तो एक सुसंगठित, सुनियोजित क्रान्तिकारी आन्दोलन है, जिसका लक्ष्य विश्व के सभी मतों वादों और मानव मानव के बीच खड़ी भेद भाव की दीवारों को समाप्त करना है। आर्यसमाज तो संसार में किसी भी प्रकार के पक्षपात, किसी के प्रति अन्याय, किसी भी प्रकार के पक्षपात के विरुद्ध एक वैचारिक क्रान्ति का मूल मन्त्र है। जिसका लक्ष्य तो मानवमात्र का विकास, समानता लाना है। जब तक मनुष्य को मनुष्य से अलग करने वाली, भेद भावों की प्रतीक मजहब की दीवारें रहेंगी, जब तक मनुष्य इस्लाम, ईसाइयत, यहूदी और बौद्ध आदि मतों में बंटा रहेगा तब तक संसार में झगड़े होते रहेंगे। इसलिए आर्यसमाज कहता है जिन विचारों, मन्तव्यों के जिन मजहबों और मतों की प्रेरणा से इन्सान इन्सान में भेद भाव उत्पन्न होता हो, मनुष्य एक दूसरे के खून का प्यासा हो जाता हो वह धर्म नहीं, उसे आज नहीं तो कल मिटना ही होगा। इसीलिए आर्यसमाज वह आस्था है जो वर्ग, देश, जाति और काल की समस्त दीवारों को गिराकर, संसार के सभी प्राणियों को एक ईश्वर के पुत्र होने के नाते भाई बताकर, मनुष्य मनुष्य के बीच समस्त भेद-भाव समाप्त कर, एक साथ सुख दुःख बांटकर प्यार से जीवन बिताने की प्रेरणा देती है। संसार के प्रत्येक मनुष्य के लिए आर्यसमाज ने एक रास्ता दिखाया है जिस पर चलकर मनुष्य दुःख और अशान्ति से छुटकारा पाकर प्रेम शान्ति और आनन्द से हंसता हुआ अपनी जीवन यात्रा पूरी कर सकता है। आर्यसमाज सुगठित सुनियोजित क्रान्तिकारी आन्दोलन है। इसकी क्रान्ति रचनात्मक है। अन्ध और भ्रम के कवच से बुद्धि का विकास करने वाला है। यह क्रान्ति न राज्य की है, न नाम की अपितु केवल विचारों की है। जिसका लक्ष्य है प्रत्येक मनुष्य का जीवन का ढंग बदलना चाहिये जिससे मानव जाति अपने को एक समाज और एक धर्म माने वह है मानव धर्म। आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति द्वारा समस्त संसार का उपकार करना। अपने स्थापना काल से ही आर्यसमाज अपने लक्ष्य में लगा है जिस समय आर्यसमाज की स्थापना की पवित्र ज्वाला जगी थी, उस समय उसकी लपटें हजारों मील दूर बैठे मनस्वी लोग देखकर कौतूहल से आनन्दित हो उठे थे अमेरिका के एक अध्यात्मवादी बाबा एण्ड्रू जैक्सन डेविस ने इसे प्रचण्ड ज्वाला के रूप में देखा जो अज्ञान, अन्ध विश्वास और साम्प्रदायिकता को भस्मीभूत करता हुआ भूमण्डल को आलोकित कर रहा है। सन्त रोम्यां रोलां से लेकर ब्रिटिश पत्रकार मैकेन्डा-इन लिखोल तक सभी दूर से दूर बैठे प्रबुद्ध लोगों के लिए भी आर्यसमाज की वैचारिक क्रान्ति कौतूहल और हर्षातिरेक का कारण बन गई। आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने वेद एवं आर्षग्रन्थों को ही सम्मान दिया। इन ग्रन्थों की अध्यात्म और विज्ञानपरक व्याख्या की जिसने समस्त विश्व की कुण्ठित चेतना को झिंझोड़ डाला। महर्षि के वेदभाष्य करने से तो विश्व के ज्ञानियों को एक नई दिशा मिली रूस के प्रख्यात महर्षि टालस्टाय, अमेरिका के प्रसिद्ध विचारक थारियो, आयर के जेम्स कजिन्स तथा पाश्चात्य मैक्समूलर एवं जगत् प्रसिद्ध योगी अरविन्द, ज्ञानयोगी श्री कृपालो शास्त्री पं० श्री माधव पुण्डलीक आदि अनेक भारतीय विद्वान्, पारसी विद्वान् श्री दादाभाई नौरोजी तथा मुस्लिम आलिम श्री सर सय्यद अहमद खां और सर यामिनी खान आदि बहुत सारे ज्ञानी, सन्त, नेता लेखक विचारक अत्यधिक प्रभावित हुए। धर्म में बुद्धिवाद को समाविष्ट करना आर्यसमाज की प्रमुख प्रवृत्ति रही है। मध्यकालीन धर्मचिन्तन से तर्क एवं बुद्धि का महत्त्व सर्वथा लुप्त हो चुका था जिसे पुनरुज्जीवित करने का श्रेय आर्यसमाज को है। आर्यसमाज इस बात पर गर्व कर सकता है कि उसने अपने विगत काल में धर्म को मानव के उत्कर्ष विधायक तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। आर्यसमाज के बुद्धि और तर्कवाद से अन्य मत-मतान्तर भी प्रभावित हुए जिससे पौराणिक, ईसाई मुसलमानों ने अपने धर्म ग्रन्थों में संशोधन, परिवर्तन तथा उनकी नवीन व्याख्या करने का प्रयास किया। विरोधी मतावलम्बियों के आर्यसमाजिक विद्वानों ने शास्त्रार्थ द्वारा छक्के छुड़ा दिये। वैदिक सत्य सनातन धर्म की विजय वैजयन्ती गौरव से फहराती रही है। समाज सुधार, मानव उत्थान, देश की स्वाधीनता के लिए कुर्बानी, गोहत्या निषेध(?), गोरक्षा से लेकर प्राणीमात्र की रक्षा का दायित्व, नारी शिक्षा, नारी उत्पीडन, विधवा विवाह, बाल-विवाह सतीप्रथा, अनमेल विवाह आदि समस्याओं के प्रति जन जागरण, जन-आन्दोलन प्राचीन वैदिक ऋषियों द्वारा प्रणीत शिक्षा की गुरुकुलों द्वारा स्थापना से लेकर मिलावट से भरे पुरातन पवित्र ग्रन्थों के शोधन तक, ईसाइयत और इस्लाम के हिन्दू धर्म पर किये प्रहारों के मुकाबले तक, शिक्षा के क्षेत्र में अनेक अनूठे करिश्मे किये हैं। एकभाषा, एक वेशभूषा, एक भोजन, एक भक्ति के माध्यम से आर्यसमाज ने समस्त भारतीयों को एक झण्डे के नीचे आने का पवित्र आमन्त्रण दिया। अनाथ दीन-हीन, दलित शोषित सर्वहारा की आवाज बनकर आर्यसमाज ने उनकी मूल समस्याओं के निदान का प्रयत्न किया। एक दो नहीं, हजारों नहीं असंख्य समस्याओं के विरोध और निदान के लिए आर्यसमाज ने बिगुल बजाया। आर्यसमाज के साथ जन्म लेने वाली देवसमाज, प्रार्थनासमाज, ब्रह्मसमाज आदि संस्थाओं ने दम तोड़ दिया। उनका नाम निशान भी नहीं रहा, परन्तु आर्यसमाज का जन आन्दोलन आज भी जारी है। यह भी कम गौरव की बात नहीं कि आर्यसमाज को हिन्दू समाज का जीवित जाग्रत अंग नहीं भाग समझा और माना जाता है।

आर्यसमाज अपनी स्थापना काल से संघर्षों की छाव में पलता और बढ़ता आया। परन्तु नदी जब ऊँचे-नीचे, ऊबड़, खाबड़ रास्तों से गुजरती है तो उसमें वेग और तीव्र प्रवाह बना रहता है। जैसे-जैसे वह मैदानी समतल भाग से गुजरती है उसमें मद्धिमा आती जाती है और उसकी निर्मल धारा पर काई जमा आ बैठता है। ठीक इसी प्रकार किसी भी संस्था में संघर्ष का काल उसके उत्थान का काल होता है। आर्यसमाज के संघर्ष का काल तो अब भी है और सदा बना रहेगा परन्तु वह नदी की मद्धिमा आज प्रतीत होने लगी है। पुरातन समस्याएँ तो खत्म हो गयी लेकिन नवीन समस्याएँ उनके स्थान पर आकर खड़ी हो गयी हैं पुरातन समस्या बाल विवाह, अनमेल विवाह, सती प्रथा, विधवा का विवाह न होना थीं, अब ये समस्याएँ नहीं हैं उनके स्थान पर दहेज, तलाक नारी शृंगार का विज्ञापन, अश्लीलता आदि की समस्या उपस्थित हो गई हैं। गुरुकुल व्यावहारिकता भूमि पर नहीं उतर पाये। उनकी दशा दयनीय है। उपदेशक संन्यासी भजनोपदेशक की कमी खलने लगी है। शुद्धि का चक्र अजस्र गतिमान नहीं है। ईश्वर भक्ति का सही स्वरूप जन जन तक पूर्ण रूप से नहीं पहुंचा बल्कि तथा कथित भगवानों की बाढ़, पाखण्डियों तान्त्रिकों की फौज बढ़ती आती जा रही है। आर्यसमाज को साम्प्रदायिक पाखण्ड और व्यक्तिपूजा के आडम्बर से मानव की रक्षा के लिए अपना अभियान तेज करने की आवश्यकता है। वक्ताओं की घिसी पिटी बातें, भजनोपदेशकों के वही पुरातन अप्रासंगिक चुटकले, आकर्षणहीन हो गये हैं। सेवा, स्वाध्याय, सत्संग, सन्ध्या आदि आर्यों के नित्य नियम में शामिल थे, उनका परित्याग हमारे पतन की निशानी है। हमारे पुराने वयोवृद्ध बलिदानी भावना वाले कार्यकर्ता नेता धीरे धीरे कम होते जा रहे हैं उनके स्थान पर नवीन कार्यकर्ता युवा पीढ़ी का अभाव सब ओर है। इस प्रकार अनेक समस्याएं हमारे सामने हैं लोग। पत्रों से जनचर्चा से या स्टेज से भी इस प्रकार की कमियों को बड़े भोंडे और निराशात्मक तरीके से कहने लगे हैं जो उचित नहीं है। आर्यसमाज न कभी मरा है न कभी मरेगा। इसके मूल में अमरशहीदों का खून है जो इसे सदा हरा भरा रखेगा। विचारणीय यह है इस विटप के पत्र त्याग के पश्चात् नवीन कोपलें पर्याप्त मात्रा में नहीं उग पा रही हैं। भावी योजनाओं सामयिक और भावी समस्याओं के निदान के लिए आर्यसमाज क्या पग उठाये इस पर चिन्तकों, मनीषियों, कार्यकर्ताओं महर्षि दयानन्द के सेवकों को आज विचार करना होगा। एक सौ वर्षों के स्वर्णिम अतीत से हम स्वर्णिम भविष्य की ओर किस प्रकार चल सकते हैं ? सार्वदेशिक प्रकाशन से एक निबन्ध पुस्तक १२ अप्रैल १९७५ को प्रकाशित हुई आर्यसमाज तब, अब और आगे। इस पुस्तक में सराहनीय प्रयास हुआ परन्तु लक्ष्य तक पहुंचने में वह सफलता नहीं मिली। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधिसभा के ही उपप्रधान श्री सेठ गजानन्द आर्य जो परोपकारिणी सभा अजमेर के भी ट्रस्टी हैं। ने इस आर्यजगत् का इस ओर ध्यान खींचने का सत्प्रयास किया है। जो प्रशंसनीय है।

—यशपाल सुधांशु

धर्म-परिवर्तन अहितकर

—महात्मा गांधी

धर्म-परिवर्तन के सम्बन्ध में राष्ट्रपिता के मननीय विचार

★

मेरी राय में मानव-दया के कार्यों की आड़ में धर्म-परिवर्तन करना ज्यादा नहीं तो कम से कम अहितकर तो है ही। यहां के लोग इसे नाराजी की दृष्टि से देखते हैं। आखिर तो धर्म एक गहरा व्यक्तिगत मामला है, उसका सम्बन्ध हृदय से है। कोई ईसाई डाक्टर मुझे किसी बीमारी से अच्छा कर दे तो मैं अपना धर्म क्यों बदल लूं या जिस समय मैं उसके असर में होऊं उस समय वह डाक्टर मुझ से इस तरह के परिवर्तन की आशा क्यों रखे या ऐसा सुझाव क्यों दे? क्या डाक्टरी सेवा अपने आप में ही एक पारितोषिक और सन्तोष नहीं है? या जब मैं किसी ईसाई शिक्षा संस्था में शिक्षा लेता होऊं तब मुझ पर ईसाई शिक्षा क्यों थोपी जाए? मेरी राय में ये सब बातें ऊपर उठाने वाली नहीं हैं, और अगर भीतर ही भीतर शत्रुता पैदा नहीं करतीं तो भी सन्देह तो उत्पन्न करती ही हैं। धर्म-परिवर्तन के तरीके ऐसे होने चाहिएं जिन पर सीजर की पत्नी की तरह किसी को कोई शक न हो सके। धर्म की शिक्षा लौकिक विषयों की तरह नहीं दी जाती। वह हृदय की भाषा में दी जाती है। अगर किसी आदमी में जीता जागता धर्म है, तो उसकी सुगन्ध गुलाब के फूल की तरह अपने आप फैलती है। सुगन्ध दिखाई नहीं देती, इसलिए गुलाब की पंखुड़ियों के रंग की प्रत्यक्ष सुन्दरता से उसकी सुगन्ध का प्रभाव कहीं अधिक व्यापक होता है।

मैं धर्म-परिवर्तन के विरुद्ध नहीं हूं, परन्तु मैं उसके आधुनिक उपायों के विरुद्ध हूं। आजकल और बातों की तरह धर्म-परिवर्तन ने भी एक व्यापार का रूप ले लिया है। मुझे ईसाई धर्म-प्रचारकों की एक रिपोर्ट पढ़ी हुई याद है, जिसमें बताया गया था कि प्रत्येक व्यक्ति का धर्म बदलने में कितना खर्च हुआ और फिर 'अगली फसल' के लिए बजट पेश किया गया था।

हां, मेरी यह राय जरूर है कि भारत के महान धर्म उसके लिए सब तरह से पर्याप्त हैं। ईसाई और यहूदी धर्म के अलावा हिन्दू धर्म और उसकी शाखाएं, इस्लाम और पारसी धर्म, सब सजीव धर्म हैं। दुनिया में कोई भी एक धर्म पूर्ण नहीं है। सभी धर्म अपने मानने वालों के लिए समान रूप से प्रिय हैं। इसलिए जरूरत संसार के महान धर्मों के अनुयायियों में सजीव और मित्रतापूर्ण सम्पर्क स्थापित करने की है, न कि हर सम्प्रदाय द्वारा दूसरे धर्मों की अपेक्षा अपने धर्म की श्रेष्ठता जताने की व्यर्थ कोशिश करके आपस में संघर्ष पैदा करने की। ऐसे मित्रतापूर्ण सम्बन्ध के द्वारा हमारे लिए अपने-अपने धर्मों की कमियां और बुराइयां दूर करना सम्भव होगा।

मैंने ऊपर जो कुछ कहा है उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जिस प्रकार का धर्म-परिवर्तन मेरी दृष्टि में है उसकी हिन्दुस्तान में जरूरत नहीं है। आज की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि आत्मशुद्धि, आत्म-साक्षात्कार के अर्थ में धर्म-परिवर्तन किया जावे। परन्तु धर्म-परिवर्तन करने वालों का यह हेतु कभी नहीं होता। जो भारत का धर्म-परिवर्तन करना चाहते हैं, उनसे क्या यह नहीं कहा जा सकता कि 'वैद्य जी, आप अपना ही इलाज कीजिये?'

(यंग इण्डिया २३-४-३१)

जब मैं जवान था उस समय की एक हिन्दू के ईसाई हो जाने की बात मुझे याद है। सारे नगर ने समझ लिया था कि एक अच्छे कुल के हिन्दू ने ईसा मसीह के नाम पर गो-मांस और मदिरा का सेवन शुरू कर दिया है और अपनी राष्ट्रीय पोशाक छोड़ दी है। बाद में मुझे मालूम हुआ और मेरे अनेक पादरी मित्रों ने भी बताया कि धर्म बदलने वाले लोग बन्धन के जीवन से निकलकर आजादी के जीवन में, गरीबी से निकल कर आराम के जीवन में प्रवेश करते हैं। जब मैं भारतवर्ष के एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूमता हूं, तो मुझे ऐसे बहुत से भारतीय ईसाई मिलते हैं, जिन्हें अपने जन्म से और अपने बाप-दादाओं के धर्म से शर्म आती है। एंग्लो-इण्डियन लोग यूरोपियनों की जो नकल करते हैं वह काफी बुरी है, परन्तु भारतीय ईसाई जिस तरह उनकी नकल करते हैं वह तो अपने देश के प्रति और मैं यहां तक कहूंगा कि अपने नये धर्म के प्रति भी द्रोह है। 'न्यू टेस्टामेंट' में एक वचन है जिसमें ईसाई को यह आदेश दिया गया है कि मांसाहार से तुम्हारे पड़ोसियों को बुरा लगे तो उसे छोड़ दिया जावे। मेरा ख्याल है कि यहां मांस में मदिरा-पान और पोशाक भी आ जाती है। पुराने रिवाजों में जितनी भी बुराइयां हैं उन सब का कठोर बन कर त्याग कर दिया जावे, तो मैं इसे समझ सकता हूं। परन्तु जहां किसी बुराई का प्रश्न हो न हो, बल्कि प्राचीन रिवाज इष्ट हो, वहां तो उसे छोड़ना पाप ही है; क्योंकि हमें निश्चित रूप से मालूम रहता है कि उसके त्याग से इष्ट मित्रों को गहरी चोट पहुंचेगी। धर्म-परिवर्तन का अर्थ राष्ट्रीयता का त्याग कभी नहीं होता। धर्म-परिवर्तन का अर्थ निश्चित रूप से यह होना चाहिए कि पुराने धर्म की बुराई छोड़ दी जावे, नये धर्म की सारी अच्छाई ले ली जावे और नये धर्म में जो भी बुराई हो उससे पूरी तरह बचा जावे। इसलिए धर्म-परिवर्तन का यह नतीजा होना चाहिए कि हम अपने देश के प्रति अधिक भक्ति का, ईश्वर के सामने अधिक समर्पण का और अधिक आत्मशुद्धि का जीवन व्यतीत करें······क्या यह सचमुच दुःखद बात नहीं है कि बहुत से भारतीय ईसाई अपनी मातृभाषा को छोड़ कर अपने बच्चों को अंग्रेजी में ही बोलने की शिक्षा देते हैं? क्या ऐसा करके वे अपने बच्चों को जिस प्रजा के बीच में उन्हें रहना है उससे पूरी तरह अलग नहीं कर लेते?

(यंग इण्डिया २०-८-२५)

जैसे मैं अपना धर्म बदलने की कल्पना नहीं कर सकता, वैसे ही किसी ईसाई या मुसलमान या पारसी या यहूदी को अपना धर्म बदलने के लिए कहने की कल्पना भी नहीं कर सकता। इसलिए मुझे जितना अपने धर्म के अनुयायियों की गम्भीर मर्यादाओं का ध्यान है, उतना ही दूसरे धर्मों के अनुयायियों की मर्यादाओं का भी ध्यान है; और जब मैं यह देखता हूं कि मुझे अपने आचरण को अपनी शर्त के अनुसार बनाने में और उसे अपने सहधर्मियों को समझाने में अपनी सारी शक्ति खर्च कर देनी पड़ती है, तब मुझे दूसरे धर्मों के अनुयायियों को उपदेश देने का तो ख्याल भी नहीं आता। मनुष्य के आचरण के लिए वह सुन्दर शिक्षा है—'दूसरों के काजी न बनो, नहीं तो दूसरे तुम्हारे काजी बनेंगे।' मेरे मन पर यह विश्वास दिनों दिन जमता जा रहा है कि महान और सम्पन्न ईसाई मिशन भारत की सच्ची सेवा तभी करेंगे, जब वे अपने को इस बात के लिए तैयार कर लेंगे कि वे दया के कार्यों तक ही अपने को सीमित रखेंगे और उसमें भारत को या कम से कम उस के भोले भाले ग्रामीणों को ईसाई बनाने की भावना न रखेंगे तथा इस तरह उनकी सामाजिक रचना को नष्ट न करेंगे। क्योंकि उसमें अनेक दोष होते हुए भी वह बाहरी और भीतरी हमलों के सामने अनन्त काल से टिकी हुई है। ईसाई धर्म-प्रचारक और हम चाहें या न चाहें, फिर भी हिन्दू धर्म में जो सत्य है वह टिका रहेगा और जो असत्य है वह नष्ट हो जाएगा। किसी भी सजीव धर्म को यदि जीवित रहना है, तो स्वयं उसके भीतर जीवन-शक्ति होनी चाहिए!

(हरिजन २८-९-३५)

अनन्त उलझनों···

(पृष्ठ २ का शेष)

आशीर्वाद ही दूंगा।" इन शब्दों को कहते हुए ऋषिवर ने राव कर्णसिंह के हाथ से तलवार ले, उसके दो टुकड़े कर वहीं कर्ण सिंह के सामने फेंक दिये और बोले "धर्म प्रचार के क्षेत्र में तलवार नहीं; शान्ति के साथ विचार विनिमय करना ही ठीक होता है।" ऋषिवर की इस अहिंसा की अटूट दृढ़ता का परिणाम यह हुआ कि मेले में आये हजारों भक्त ऋषि के सिद्धान्तों के अनुयायी बन गये। दूसरी ओर, रावकर्णसिंह कई प्रबल रोगों के शिकार हो गये पर ऋषि दयानन्द उसके निवास स्थान पर जा उसकी सेवा और कुशल क्षेम व्यवस्था करते रहे। योगदर्शन का यह वचन सर्वथा सत्य है कि अहिंसा ही एक मात्र ऐसा अकाट्य शस्त्र है जिससे शत्रु है जिससे वैर का अन्त हो सकता है।

आज का हिंसा-युग—उपाय—अहिंसा ही

आज के विश्व की सर्वाधिक भयंकर समस्या चारों ओर से उमड़ रही मानव जाति संहारक तीसरे विश्व युद्ध की है जिसका उपाय सभा-सम्मेलन, शान्ति-सन्धि वार्ताओं से नहीं किन्तु हृदय परिवर्तन ही है। पर आज के राष्ट्र नायक इस पर कभी विचार नहीं करते।

विश्व कल्याणकर्ता-यज्ञ

लेखक : पं० वीरसेन वेदश्रमी, वेदविज्ञानाचार्य
वेद सदन, महारानी पथ, इन्दौर ४५२००७ (म०प्र०)

★

यज्ञ विश्व का आधार तत्व—

विश्व के जीवन एवं विश्व के स्वास्थ्य के लिए यज्ञ, होम, हवन परम आवश्यक है। यज्ञ-हवन की क्रियाशीलता और उपयोगिता का आध्यात्मिक क्षेत्र में अर्थात् अपने शरीर, प्राण, मन आदि पर अद्भुत प्रभाव होता ही है तथा आधिभौतिक और आधिदैविक क्षेत्रों में भी स्वाभाविक रूप से महत्वपूर्ण होता है। यज्ञ समस्त जड़ तथा चेतन सृष्टि का प्राण पोषक तथा जीवन प्रदाता है। सृष्टि के जीवन का प्रमुख वैज्ञानिक आधारभूत तत्व यज्ञ ही है। मानव सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व भी इस सृष्टि में, प्राकृतिक तत्वों और पदार्थों में, प्रत्येक पिण्ड में यज्ञ चल रहा था और अब भी चलता रहता है तथा भविष्य में भी प्रलय पर्यन्त चलता ही रहेगा। अतः यह सनातन तत्व है, सनातन कर्म है और सनातन धर्म है। स्वभाव ही धर्म माना गया है। अतः यज्ञ सदाबहार, सर्व समृद्धिकारक एवं परमश्रेष्ठ विज्ञान है।

चराचर सृष्टि की उत्पत्ति यज्ञ से—

पुरुषसूक्त के मन्त्रों में बताया है कि परमात्मा के यज्ञ से विविध प्रकार के भोज्य पदार्थ और उनके भोक्ता-जीव सृष्टि की भी उत्पत्ति हुई। समस्त ज्ञान-विज्ञान एवं कर्तव्यों के प्रेरक सर्व ज्ञानमय वेद भी प्रकट हुए और इनके उपभोक्ता साध्य, देव, ऋषि, मनुष्यादि भी उत्पन्न हुए। इन उत्पन्न ऋषि मुनियों ने सृष्टि में यज्ञों के विविध कर्मों के वैज्ञानिक प्रवाहों तथा उनके प्रभावों को देखा और यज्ञ के विज्ञान को समझकर यज्ञ प्रारम्भ किये और उनका प्रचलन स्थापित किया। यज्ञ के प्रारम्भिक विज्ञान का सूत्ररूप में प्रतिपादक मन्त्र पुरुष सूक्त में यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।

वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः—यह है। इसमें यज्ञ के तीन आधारभूत तत्व बताये हैं—१. आज्य २. इध्म और हवि। आज भी यज्ञ के लिए यही तीन पदार्थ उपयोग में लिये जाते हैं।

यज्ञ के आधारभूत तीन पदार्थ

सृष्टि के प्रारम्भ के प्राकृतिक यज्ञ में वसन्त ऋतु ही आज्य थी, ग्रीष्म ऋतु ही इध्म थी और शरद हवि थी। आज भी घृत का संग्रह [illegible] होता है ईंधन का संग्रह [illegible] है और औषधि [illegible] के शरद में ही [illegible] अनुरूप देवों, [illegible] मनुष्यों ने यज्ञ को अपने जीवन में धारण कर नित्य एवं नैमित्तिक कर्मों में यज्ञों का अनुष्ठान धर्मरूप में प्रारम्भ किया तो आज्य के रूप में गोघृत को ग्रहण किया। इध्म अर्थात् ईन्धन के लिए कतिपय, यज्ञिय वृक्षों से समिधाएं ग्रहण की तथा हवि के रूप में औषधियों, वनस्पतियों को ग्रहण कर हवि की मान्यता स्थापित की। इन्हीं तीन आधारभूत पदार्थों का उपदेश यजुर्वेद अध्याय तृतीय के प्रथम मन्त्र में भी निम्न प्रकार है—

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।

आस्मिन्हव्या जुहोतन—अर्थात् समिधाओं से अग्नि प्रदीप्त करो—प्रदीप्त अग्नि की घृत से सेवा करो, और उस प्रबुद्ध अग्नि में, प्रदीप्त अग्नि में हव्य पदार्थों की आहुति प्रदान करनी चाहिये।

यज्ञ का आधार तत्व-अग्नि का गुण

यज्ञ के उपर्युक्त तीनों पदार्थ शोधक हैं। अग्नि परम शोधक है। घृत भी परम शोधक है तथा हव्य पदार्थ भी शोधक एवं पुष्टिकर्ता हैं परन्तु घृत और हव्य पदार्थ जब अग्नि में प्रयुक्त होंगे तभी उसे विविध प्रकार का लाभ होगा। इसलिये ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में ही सर्वप्रथम अग्नि की साधना करने के लिए उसके गुणों का प्रकाश किया गया है—अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।

होतारं रत्नधातमम्॥—अर्थात् अग्नि की आराधना करो, अग्नि के गुणों का निरन्तर अनुसन्धान करो, अग्नि से सम्भावित कार्यों को जानकर उसका प्रयोग करो यज्ञों में करके विविध सुख प्राप्त करो। वह अग्नि पुरोहित है, तुम्हारी कामनाओं पूर्ति के लिए विविध रूप में रचना कार्य साधक ऋत्विज रूप है। वह विविध गुणों का संचालक है। वह विविध ऋतुओं का निर्माता है। वह हव्य पदार्थों को ग्रहण कर उन का प्रसारण करता है और विविध प्रकार के रत्नों का निर्माता एवं दाता है। इसी प्रकार अग्नि के अद्भुत गुणों का प्रकाश वेद है।

यज्ञ की अग्नि का आधारभूत पदार्थ 'इध्म'

यज्ञ के लिए समिधा परम आवश्यक है। समिधा के बिना अग्नि की स्थापना एवं स्थिरता नहीं। समिधाओं में ही अग्नि प्रकट होगी और उसी में निवास करेगी। समिधाएँ ऐसे वृक्षों की यज्ञ में प्रयुक्त होती हैं जिनसे प्रदूषण कम और ऊर्जा तथा आरोग्यता विशेष होती हैं तथा अंगार होने पर उनसे कोयला न बन कर भस्म ही बन जाती है। ऐसी समिधायें पलाश, पीपल, आम, विकंकत गूलर आदि वृक्षों की होती है। कामना भेद से भी समिधाओं का प्रयोग होता है। सब कामनाओं के लिए पलाश अर्थात् ढाक की समिधा श्रेष्ठ है। रोगनाशनार्थ आक की समिधा उपयोगी है, विशेष रूप से वात एवं कफज रोगों में अतिलाभकारी है। खैर की समिधा धन लाभ के लिए, पीपल की समिधा प्रजा लाभ के लिए, शमी प्रवृष्ट दोषों के शमन के लिये उपयोगी हैं।

यज्ञ का दूसरा आधार भूत पदार्थ 'घृत'—

केवल समिधाओं तथा अग्नि से ही यज्ञ नहीं हो सकता। समिधाओं से प्रदीप्त, ज्योतिर्मय अग्नि में घृत की आहुतियां देने से वह इच्छित समय तक प्रदीप्त रह सकती है। दीपक में जैसे घृत का तेल डालने से दीपक की वर्ती की ज्योति दीर्घकाल तक ज्योतिर्मय बनी रहती है उसी प्रकार समिधाओं से प्रदीप्त अग्नि के लिए घृताहुतियां अति आवश्यक हैं। अग्नि एवं घृताहुतियों से [illegible] [illegible] ऊर्जा [illegible] अन्तरिक्ष में [illegible] होकर [illegible] में [illegible] शक्ति [illegible] करती [illegible] ऊर्जा, स्फूर्ति तथा जीवन का संचार करती है। [illegible] को भी दूर करती है। घृत में परम शोधक शक्ति है, शरीर में व्याप्त विष को दूर करने में अधिक है। इसके इसी गुण के कारण जब [illegible] [illegible] को [illegible] [illegible] के लिए [illegible]

यज्ञ का तीसरा पदार्थ हवि—

समिधा से प्रदीप्त अग्नि में घृताहुति देने से विश्व के वातावरण में शोधन एवं पुष्टि होती है। परन्तु और भी अधिक लाभ तथा इच्छित विशेष लाभ प्राप्ति के लिए हव्य द्रव्यों का भी प्रयोग करना चाहिये। हव्य द्रव्यों के लाभ और प्रभाव को घृताहुति सहस्र-गुणा बढ़ा देती है। हव्य पदार्थ जिस जिस विशेष प्रयोजन के लिये यज्ञ में प्रयुक्त होंगे वे उन कामनाओं की पूर्ति करेंगे। अतः यज्ञ द्वारा इच्छित पर्यावरण बनाया जा सकता है। वेद ने अग्नि को ऋत्विज् ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में बताकर इच्छित ऋतु निर्माता, पर्यावरण निर्माता का रहस्य प्रकट किया है। हव्य पदार्थों के गुणगान के आधार पर ही यज्ञ सब कामनाओं की पूर्ति करने में समर्थ बन जाता है। इसलिए यज्ञान्त में यजमान कहता है—सर्वान्नः कामान्त्समर्धय। अर्थात् यज्ञाग्नि इष्टफल प्रदाता है, अतः हमारी सब कामनाओं की पूर्ति करे।

हव्य पदार्थों के बारे में वेद का निर्देश—

हव्य पदार्थों के बारे में वेद में अनेक स्थानों पर वर्णन है। अथर्ववेद काण्ड ८ के सूक्त २ के छठे मन्त्र में हव्य पदार्थों का निम्न रूप में वर्णन है—जीवलां नघारिषां
जीवन्तीमोषधीमहम्।
त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवे ऽस्मा अरिष्टतातये।

अर्थात् जीवन देनेवाली, कभी हानि न करने वाली, स्फूर्ति प्रदाता, जीवन की रक्षा करने वाली, रोगों को दबाने वाली, बलवती औषधियां यज्ञ में जीवन की रक्षा और वृद्धि के लिए होम के द्रव्यों के रूप में प्रयुक्त करनी चाहिए। ऐसी औषधियों के हव्य रूप में प्रयोग करने से यज्ञ सब प्रकार से रक्षा करने वाला, सब रोगों का [illegible] प्रदूषणादि का विनाशक होकर संसार का [illegible], जीवनदाता तथा समृद्धि करने वाला हो जाता है।

उक्त तीन पदार्थों के अतिरिक्त यज्ञ के लिए मंत्र भी आवश्यक है—

उक्त तीनों पदार्थों के अतिरिक्त यज्ञ में मंत्रों की आवश्यकता का प्रतिपादन वेद ने किया है, जैसा कि निम्न मन्त्र से प्रकट है—

[illegible]

विश्व कल्याणकर्ता—यज्ञ

[illegible] । [illegible] ।
यजुर्वेद अध्याय ३, मन्त्र ॥

यज्ञ में पहुंचकर अग्नि के लिए मन्त्रों का उच्चारण इस प्रकार करें कि जिससे दूरस्थ एवं समीपस्थ सभी जन सुन सके। अतः यज्ञ में मन्त्र बोलना आवश्यक है। यज्ञकर्ताओं को मन्त्र तो बोलना ही चाहिये, और से बोलना चाहिये, परन्तु अन्य जो भी यज्ञ में भाग लें, उपस्थित हों उनको भी मन्त्र बोलना चाहिए। मन्त्र याद न हों तो स्वाहा की ध्वनि उच्च स्वर में करनी चाहिये। मन्त्र की ध्वनि यज्ञ में करने से यज्ञ से निर्मित आरोग्य प्रद प्राणों का प्रवेश एवं संचार शरीर की नस-नाड़ियों में होने लगता है तथा अशुद्धियां निकल जाती है। अतः यज्ञ के लिये उपर्युक्त तीन पदार्थों के अतिरिक्त मन्त्रोच्चारण भी आवश्यक है।

यज्ञ सृष्टि का स्वभाव है

यज्ञ कार्य सृष्टि स्वभाव एवं नियम के अनुकूल है। नित्य सूर्योदय होता है। दिन होता है। प्रकाश होता है और ताप व्याप्त होता है। ताप से वायुमण्डल में विभिन्न गतियां प्रारम्भ होने लगती है। सृष्टि का जीवन, चराचर जगत् का प्राण और आत्मा सूर्य ही है। सूर्य से ही प्राणों का प्रवाह चलता रहता है। वेद में सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च मन्त्र वाक्य सूर्य के महत्व को प्रकट कर रहा है। उसी प्रकार हमारे लिए यह अग्नि भी महत्वपूर्ण है। इससे भी यही सब कार्य सिद्ध होते हैं तथा सिद्ध किये जा सकते हैं। अग्नि तत्व ही यज्ञ का आधारभूत प्रधान तत्व है और प्रधान कार्यकर्ता है। अतः वेद ने इसको पुरोहित कहा है। यही प्रकाशक तत्व है। सर्वकार्य साधक है। [illegible] पदार्थों को [illegible] जाता है। [illegible] है [illegible] होने से व्यापक रूप से गतिकर्ता है। पावक है। [illegible] का शोधक है। सर्वार्थ साधक है। अग्नि में जब [illegible] किया जाता है तो उसकी शक्ति [illegible] असीमित होने लगता है। [illegible] सृष्टि प्रवाह के अनुकूल होने से [illegible] है तथा हमारी सब [illegible] की पूर्ति करने वाला हो [illegible] है।

[illegible] पर्यावरण में शोधन [illegible]—

[illegible] को शुद्ध एवं पुष्ट [illegible] है। [illegible] को जीवन देता है।

अग्नि में होमा हुआ पदार्थ वायुमंडल में शीघ्र व्याप्त हो जाता है। व्याप्त हो जाने से अन्तरिक्षस्थ ताप एवं विद्युदादि अग्नियों तथा सूर्य रश्मियों द्वारा ताप की तीव्रता, उग्रता एवं ताप की परिवर्तित स्थितियों से, होमा हुआ पदार्थ सूक्ष्मरूप से उत्तरोत्तर ऊपर गति करता है और ताप की न्यूनता से वह नीचे की ओर भी गति करता है। इस प्रकार होमे हुए पदार्थों की गति यज्ञ के द्वारा ऊपर नीचे की ओर क्रमशः होने लगती है और एक प्रकार की घर्षण क्रिया प्रारम्भ होने लगती है जिससे प्रदूषणों का निवारण कार्य शीघ्र होने लगता है। परिणामत: शन्नो वातः पवताम् सुखकारी वायु चलने लगती है। अतः प्रदूषणों के निवारण के लिये यज्ञ अत्यंत सुगम तथा श्रेष्ठ साधन है तथा इसको वैज्ञानिक कार्य समझ कर अंगीकार करना चाहिये।

पवित्रता—सृष्टि का स्वभाव है—

सृष्टि के पदार्थों का स्वभाव शुद्धता एवं पवित्रता का है। प्रदूषण स्वभाव नहीं है। अपितु यह तो विकार है, अस्वाभाविक है, अतः इसका निवारण कार्य भी सहज ही है। होम में होमे हुए पदार्थ सुगन्धित रोगनाशक और पुष्टि प्रदाता होने से उनका घर्षण वायुमण्डल में, यज्ञ में बारम्बार आहुति प्रदान करने से सहज में ही होने लगता है। यज्ञाग्नि में आहुति देते ही अन्तरिक्षस्थ वायुमण्डल में घर्षण क्रिया प्रारम्भ हो जाती है तथा बार बार आहुति देने से घर्षण अर्थात् मार्जन, शोधन क्रिया का क्षेत्र स्वतः ही विशाल होता जाता है। यज्ञ की समाप्ति पर ताप-क्रम क्रमशः घटने से पृथ्वी की ओर घर्षण क्रिया होने लगती है। रात्रि और दिवस के तापमानों से भी यज्ञ की इस क्रिया को स्वभावतः संरक्षण और बल प्राप्त होता है तथा प्रदूषणों का विशुद्धिकरण होता जाता है।

यज्ञ से विश्व में आरोग्यता एवं पुष्टि—

यज्ञ से वायुमण्डल शुद्ध एवं पुष्ट होता है, यह ध्रुव सत्य है। वायुमण्डल में ही मेघों का निर्माण होता है। यज्ञ की आहुति से उत्पन्न ऊष्मा, वाष्प एवं धूम्र का संयोग अन्तरिक्षस्थ वायुमण्डल में प्रविष्ट होकर मेघ मण्डल में स्थित हो जाता है और मेघ मण्डल के जलों को शुद्ध एवं [illegible] कर वृष्टि का हेतु बन जाता है। वायु एवं वृष्टि जल की शुद्धता से पृथ्वीस्थ वृक्ष, वनस्पति, अन्न फलादि शुद्ध, पुष्ट एवं आरोग्यता प्रदान करने वाले बन जाते हैं। इस प्रकार यज्ञ से विश्व का महोपकार होता है। आज के समय में प्रदूषण की समस्या उग्र तथा आक्रामक रूप में भी उपस्थित होती जाती है इसको शान्ति भी यज्ञ से ही होगी। प्रदूषणों की समस्या का निराकरण यज्ञ ही है। यज्ञ प्रतिदिन घरों में होने के साथ साथ औद्योगिक प्रतिष्ठानों में भी अनिवार्य रूप से यज्ञ होने चाहिये, तभी प्रदूषणों का व्यापक रूप से निराकरण होगा। अथर्ववेद काण्ड ८, सूक्त २ के मन्त्र २८ वे में बताया है कि—यज्ञाग्नि विविध कष्टों में पार लगाने वाली है, प्रदूषणों का नाश करने वाली है, घातक तत्वों को नष्ट करने वाली है। पीड़ाओं को हरने वाली, शुद्धिकर्ता तथा महौषध है। यजुर्वेद अध्याय १ के मन्त्र ८ वे में अग्नि को 'धूरसि' सब दोषों को नष्ट करने वाला, सत्नितमम् शुद्धि का हेतु कहा है। मन्त्र ९ में अपहतं रक्षः दुर्गन्धादि दोषों का नाश करने वाला है। उस को यज्ञ ऊपर चढ़ा देता है। इस प्रकार अन्तरिक्षस्थ वायुमण्डल शुद्ध हो जाता है।

यज्ञ जीवन है, प्रदूषण जीवन विनाशक है

प्रदूषणों से रोग होते हैं और मृत्यु भी हो जाती है—यह एक सर्व-जन विदित सत्य है। यह प्रदूषण वायु में फैलकर जन संहारक हो जाता है। वायु में प्रदूषण व्याप्त हो जाने से वह जल में, वृक्ष वनस्पतियों में तथा पृथ्वी के ऊपरी भाग एवं पृथ्वी के भीतर भी प्रविष्ट हो जाता है। इसी प्रकार स्थान स्थान पर यदि यज्ञ होंगे तो उनका अंश भूत के साथ शक्तिशाली बनकर वायुमण्डल में व्याप्त होगा जिससे प्रदूषणों का निवारण तत्काल होगा और रोगों का शमन भी होगा, प्राणिमात्र को ही नहीं अपितु वृक्ष, वनस्पति आदि तथा पृथ्वी, जल आदि का भी शोधक एवं पुष्टिकारक सिद्ध होगा। इस प्रकार यज्ञ विश्व के जीवन का निर्माता एवं विश्व का कल्याण करने वाला सिद्ध हो सकेगा।

□

महर्षि दयानन्द

ले०—श्री रामसिंह
उप महालेखाकार, चण्डीगढ़, पंजाब

सामाजिक कुरीतियों से सम्पूर्ण देश था परम विपन्न,
धर्माभासों के चंगुल में फंसे हुए थे जब सम्पन्न।

फूटी एक प्रकाश किरण गुजरात प्रान्त में तब सानन्द,
हरने अज्ञानान्धकार घन, बन कर महर्षि दयानन्द।

वैदिक वाङ्मय में शिक्षित हो गुरुवर से—श्री विरजानन्द,
तरुण तपस्वी ने सिरजाया आर्यसमाज, अतीव अनन्द।

रचकर सत्यार्थप्रकाश, सन्मार्ग दिखाया, अति निर्द्वन्द,
अस्पृश्यता अरु बालविवाह का खण्डन कर, मेंटी मति मन्द।

विधवा पुनर्विवाह करने का मार्ग प्रशस्त किया, निर्बन्ध,
वैदिक [illegible] जग में फहरा कर यज्ञ, हवन का किया प्रबन्ध।

नगर-नगर में गुरुकुल शिक्षा का सुविचार रखा स्वच्छन्द,
दयानन्द शिक्षण संस्थाओं का प्रसार भी हुआ अमन्द।

श्रेष्ठ आर्य जीवन से प्रेरित, तज भय-मत्सरता का द्वन्द,
स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर चढ़े देशभक्तों के वृन्द।

एक लहर सी सकल देश में उमड़ा कर अत्यन्त प्रचण्ड,
देश, जाति का अमर सुधारक, चला गया तज यह भूखण्ड

ऋषि दयानन्द...

(पृष्ठ ५ का शेष)

स्फुरण हुआ। परन्तु ऐसा कहने वाले इस तथ्य को भूल जाते हैं कि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में राष्ट्रवाद, लोकसत्ता तथा प्रजातंत्र पर आधारित राज्यशासन की जैसी परिकल्पना की है, उसे किसी पाश्चात्य चिन्तक अथवा दार्शनिक से कोई प्रेरणा नहीं मिली थी। इण्डियन नेशनल कांग्रेस के १९१२ के अधिवेशन का सभापतित्व करने वाले पं० बिशन नारायण दर ने ठीक ही कहा था कि स्वामी दयानन्द अपने युग के सर्वाधिक मौलिक हिन्दू हैं। वे ही प्रथम भारतीय सुधारक हैं जो पश्चिमी संस्कृति से कुछ भी ग्रहण नहीं करते। और यही बात दयानन्द के अंग्रेजी जीवनी लेखक शिवनन्दन प्रसाद कुल्यार ने लिखी है।

दयानन्द का आर्थिक चिन्तन—

दयानन्द की राष्ट्रीय एवं राजनैतिक विचारधारा से ही सम्बद्ध है उनका आर्थिक चिन्तन। देशवासियों की घोर दरिद्रता, कृषक वर्ग का भयंकर शोषण, मध्यम वर्गीय जीवन व्यतीत करने वाले आम भारतवासी के दुःखों एवं कष्टों से भरी जिन्दगी को देखकर उन्होंने अनेक बार व्याकुलता, व्यग्रता प्रकट की थी। उनके जीवन में ही ऐसे प्रसंग आये हैं, जब हमने देखा कि सांसारिक माया ममता से नितान्त पृथक् रह कर परिव्राजक का निस्संग जीवन व्यतीत करने वाला यह निरीह सन्यासी देश की आर्थिक दुर्दशा को देख कर रो पड़ता था। वस्तुतः दयानन्द ने यह अनुभव कर लिया था कि विदेशी शासक जिस नीति से शासन कर रहे हैं, उसके परिणाम स्वरूप यदि यह देश आर्थिक दृष्टि से पूर्ण दिवालिया भी हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं है।

देश को आर्थिक दृष्टि से समृद्ध बनाने के लिये दयानन्द ने अनेक योजनाएँ बनाई थीं तथा उन्हें क्रियान्वित करना चाहा था। प्रथम तो वे यह अनुभव कर रहे थे कि यूरोप में औद्योगीकरण की जो लहर उठी है, उससे संसार का कोई भी देश अप्रभावित नहीं रहेगा। भारत में भी कल-कारखानों की स्थापना हो रही थी और देश धीरे-धीरे भावी उद्योगों को अपना रहा था। परन्तु तब तक विज्ञान और तकनीक की जानकारी में भारत वासी पर्याप्त पिछड़े हुए थे। दयानन्द की यह हार्दिक भावना थी कि भारत वासी यूरोप जाकर औद्योगिक प्रशिक्षण प्राप्त करें तथा पुनः भारत लौटकर यहाँ की आर्थिक उन्नति में अपना योगदान दें। जर्मनी के प्रोफेसर वाइज से उनका एतद् विषयक पत्र व्यवहार इसी बात का द्योतक है।

जहाँ वे वाणिज्य, व्यवसाय तथा औद्योगीकरण के विकास के पक्षधर थे, वहाँ घरेलू उद्योग धन्धों तथा ग्रामीण आर्थिक परिस्थितियों से भी उनका अपरिचय नहीं था। उन्होंने गोवध निषेध का जो महाभियान चलाया, उसके पीछे किसी प्रकार का धार्मिक भावावेश या अन्य प्रकार का तर्क नहीं था। गो-रक्षा के प्रश्न को वे विशुद्ध आर्थिक दृष्टि से देखते थे। यदि वे गोवध से देश के आर्थिक विनाश की कल्पना करते थे तो साथ ही बैल, भैंस, बकरी आदि उन सभी पशुओं के संरक्षण को भी आवश्यक समझते थे। जो भारत के ग्रामीण अर्थशास्त्र की रीढ़ के तुल्य हैं। गो-रक्षा के पीछे दयानन्द का अर्थशास्त्र प्रवण मस्तिष्क ही चिन्तन रत था।

दयानन्द ने किसान वर्ग को अत्यन्त ऊँचा स्थान दिया है। उन्होंने लिखा है—'यह बात ठीक है कि राजाओं के राजा किसान आदि परिश्रम करने वाले हैं और राजा उनका रक्षक है।' वे कृषि को भारत की आर्थिक व्यवस्था का मुख्य आधार मानते थे। राजस्थान के उदयपुर, शाहपुरा तथा जोधपुर के शासकों को उपदेश देते हुए उन्होंने इसी बात पर अधिक बल दिया था कि क्षत्रिय का मुख्य कर्तव्य प्रजापालन ही है। यदि वे अपनी प्रजा की स्थिति को सुखद, सन्तोषप्रद तथा आमोद-प्रमोद से युक्त करने में असमर्थ रहते हैं, तो शासन की बागडोर को हाथ में रखने का भी कोई अधिकार नहीं है। कृषकों की अवस्था को सुधारने के लिये वे इन शासकों को सदा बड़ा सटीक व्यावहारिक उपदेश भी देते थे।

उपर्युक्त पंक्तियों में हमने दयानन्द के विचारों तथा उनकी चिन्तन प्रणाली का सिंहावलोकन करने का प्रयास किया है। यों तो सतत: कर्मठ जीवन व्यतीत करने वाले तथा समाज राष्ट्र एवं मानवता को अपने प्रखर व्यक्तित्व से प्रभावित करने वाले महापुरुषों के वैचारिक धरातल को नापना सहज नहीं होता, तथापि उनके विचारों का यहाँ किया गया संक्षिप्त विश्लेषण इस तथ्य की घोषणा करने के लिये पर्याप्त है कि स्वामी जी के समस्त कार्य तथा विचार जहाँ स्वराष्ट्र के सर्वांगीण उत्थान की दृष्टि से प्रासंगिक रहते हैं वहाँ वे उन्हें विश्वमानव (Universal Man) की भूमिका पर भी प्रतिष्ठित करते हैं। दयानन्द के विचार और उपदेश, उनकी आकांक्षाएँ और कल्पनायें समस्त मानव-समाज के अभ्युत्थान को दिशाबोध देती हैं। उनके सिद्धान्त और मन्तव्य सार्वभौम हैं, सार्वकालिक हैं तथा सार्वजनीन हैं। उनकी प्रखर राष्ट्रभक्ति ही सच्ची अन्तर्राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाती है क्योंकि उनकी दृष्टि में सारी मानव जाति एक है, भाषा, धर्म, [illegible] और रंग का विभेद [illegible] है, मानव निर्मित है। [illegible] पैदा हुए उनसे [illegible] सोचने के कारण ही वे [illegible] उनकी दूरदर्शिता, सूझ-बूझ [illegible] समय-[illegible] को पहचान [illegible] है। ऐसे ही ऋषियों को [illegible] के लिये [illegible] देता है—

इदं नमः ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः।

(ऋ० वे० १०।१४।१५)

श्रद्धया अग्नि समिद्धयते

(उत्तमचन्द शरर)

बात कुछ वर्ष पूर्व की है। श्रद्धेय स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी दिल्ली में ला० नारायण दत्त जी की कोठी पर रोग शय्या पर लेटे थे। वे कुछ काल से अस्वस्थ थे, अतः मन में आया कि श्री स्वामी जी से दिल्ली जाकर कुशल क्षेम पूछा जावे। मैं तब रोहतक में रहता था। संयोगवश पं० सिद्धान्ती जी का साथ मुझे प्राप्त हो गया। हम जब उक्त स्थान पर पहुँचे तो स्वामी जी का अत्यन्त दुर्बल शरीर पाकर हृदय पर चोट लगी। रोग उन्हें भीतर से खा सा गया था। उन की सेवा में एक संन्यासी महानुभाव सेवाकार्य में रत थे। स्वामी जी के चरण स्पर्श तथा नमस्ते के अभिवादन के पश्चात् बात चलते चलते आर्यसमाज की कार्यविधि पर आ गई। स्वामी जी ने उस समय जो हृदय के उद्गार कहे, वे आज तक भी मेरे कानों में गूंज रहे हैं। आर्यों की श्रद्धा तथा सेवा भाव की चर्चा करते हुए वे बोले, शरर जी! मुझे साधु लोग कहा करते थे कि आर्यसमाजी हमारी सेवा नहीं करते कई स्वामी पर तो भोजन को भी नहीं पूछते, फिर हम आर्यसमाज का कार्य कैसे करें? और मैं उन्हें कहा करता था कि देखो साधु लोगो! यदि आर्यसमाजी तुम्हारी सेवा नहीं करते तो भी तुम काम आर्यसमाज का ही करो, यह पवित्र कार्य है और यदि इस तप के जीवन में आप लोग अपनी आयु से ४-५ वर्ष पहले मर गये, तो भी कोई हानि नहीं परन्तु आर्यसमाज को छोड़ कर दूसरा कोई कार्य करना तुम्हारे लिए पाप है" मैं सुन कर चौंक पड़ा, अरे! इस सन्त का हृदय आर्यसमाज के प्रति श्रद्धा से इतना आप्लावित है!

और फिर वे [illegible] बोले कि [illegible] है, [illegible] में कोई [illegible] नहीं [illegible] जी के नेत्रों से कृतज्ञता के दो आंसू टपक पड़े।

श्रद्धा का एक और चित्र भी देखिये। कलकत्ता के प्रसिद्ध आर्य विद्वान नेता श्री पं० उमाकान्त जी उपाध्याय आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास के समर्पण में लिखते हैं :

"आचार्य पं० रमाकान्त जी शास्त्री को सादर समर्पित।

पूज्य भाई जी!

पूज्य पिताजी का देहान्त हो चुका था। [illegible] हम सब कलकत्ता में उदास दुःखी मन से उन के समीप बैठे थे। भाई विद्याकान्त बहुत अधीर हो उठे। अधीर मैं भी था। एक निःस्वार्थ तपस्वी के जीवन का अवसान हो गया था। अनेक स्मृतियां चमक चमक कर कलेजे से उठती, आंखों से चू पड़ती। आप धीर शान्त अन्तरतम की [illegible] बैठे थे।

[illegible] कहा था, [illegible] तो मुझे घर भेज दें, मैं [illegible] संभाल लूंगा।" तब आप की [illegible] हो गई। हृदय की भावनाएं आंखों से बह निकलीं। आप ने कहा था "[illegible]! तुम्हें घर के लिए नहीं तैयार किया है, आवश्यकता होगी तो घर मैं संभालूंगा, तुम तो आर्यसमाज का ही कार्य करो।"

[illegible] आचार्य [illegible] जी के [illegible] पं० [illegible] जी [illegible] हैं, परन्तु उनकी पवित्र [illegible] होगी कि [illegible] शान्ति जी और विद्याकान्त जी [illegible] समाज के समर्पित हो चुके हैं। परन्तु उनके पुत्र [illegible] [illegible] भी [illegible] है [illegible] आर्यसमाज ही है।

समाचार सन्देश

पोप के भारत आगमन पर चिन्ता

श्री शालवाले ने राष्ट्रपति को ज्ञापन दिया

महामहिम राष्ट्रपति जी,

समाचार पत्रों की सूचना के अनुसार आपके निमन्त्रण पर पोप पाल आगामी १ फरवरी १९८६ को अपनी दस दिवसीय भारत यात्रा पर नई दिल्ली पधार रहे हैं। सरकारी सूत्रों के अनुसार उनकी यह यात्रा एक राष्ट्राध्यक्ष के रूप में होगी। जैसा कि आप जानते ही हैं वेटिकन का क्षेत्रफल हमारे देश के राष्ट्रपति भवन क्षेत्र से भी कहीं अधिक कम है। उसे एक राष्ट्र की संज्ञा देना कहां तक उचित एवं तर्क संगत है यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है। वास्तविकता यह है कि पोप पाल की स्थिति ईसाई धर्म के प्रमुख मठाधीश से अधिक कुछ नहीं है। इस सम्बन्ध में यह भी सूचना मिली है कि पोप की इस यात्रा का सम्पूर्ण व्यय जो लगभग दस करोड़ रुपये होगा, भारत सरकार वहन करेगी। इस देश की गरीब जनता पर इतना बोझ डालना हमारी सरकार के लिए कहां तक उचित है? क्या सरकार इसका उत्तर देगी?

अब पोप भारत आ ही रहे हैं। अतिथि सत्कार भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। यहां विडम्बना की बात है कि गांधी जी जब स्वयं १९३२ में वेटिकन गये थे तो तत्कालीन पोप ने उन से यह कहकर मिलने से इन्कार कर दिया था कि गांधी जी की पोशाक भेंट के अनुकूल नहीं। पर भारत महान व उदार देश है। आज वही पोप का राजकीय स्वागत कर रहा है। किन्तु भारत की जनता आप से यह देखने की अपेक्षा रखती है कि पोप हमारी इस सद्भावना का अनुचित लाभ न उठायें। वे ऐसा कुछ न कहें और करें जो हमारी संस्कृति और संविधान के अनुकूल न हों। सन् १९६१ में ईसाइयों का एक सम्मेलन दिल्ली में हुआ था जिस में मांग की गई थी कि ईसाई मिशनरियों को भारत में धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक रूप से कार्य करने की अनुमति दी जाये। आज हमारे संविधान ने उन्हें धर्म-प्रचार की छूट दी है किन्तु सुप्रीम कोर्ट के अनुसार उन्हें आर्थिक एवं राजनैतिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है।

हमारी यह आशंका है कि पोप-पाल की यह यात्रा एकमात्र सद्भावना यात्रा नहीं है। इसके पीछे ईसाई धर्म-प्रचार की प्रच्छन्न योजना निहित है। इसके स्पष्ट संकेत तथा समाचार हमें मिल रहे हैं। दक्षिण बिहार के आदिवासी क्षेत्र और सुदूर दक्षिण के केरल राज्य में स्थानीय ईसाई मिशनरी पोप-पाल के आगमन के अवसर पर हिन्दुओं के सामूहिक धर्म परिवर्तन की योजना बना रहे हैं। और इसके लिए साम, दाम, दण्ड, भेद की सभी नीतियां अपनाई जा रही हैं। यह एक खतरनाक खेल है। हो सकता है भारत सरकार से एक बार फिर आर्थिक और राजनैतिक मामलों में हस्तक्षेप करने की अनुमति मांगी जाएगी। यदि ऐसा हुआ तो स्थिति और गम्भीर हो जाएगी।

यदि पोप-पाल की यात्रा के पीछे धर्म प्रचार की भावना नहीं है तो वे इसका प्रमाण दें और भारतीय (हिन्दू) संस्कृति के अनुरूप "सर्वधर्म समभाव" में अपनी आस्था व्यक्त करें यही हमारी धर्म निरपेक्ष नीति का आधार है। इसके अन्तर्गत हिन्दू धर्म भी उतना ही सत्य और सार्वभौम है जितना कि वे ईसाई मत को मानते हैं। इस तथ्य को स्वीकार करने में पोप-पाल को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए और उनको किसी भी प्रकार के धर्म परिवर्तन से सम्बन्धित समारोह में भाग नहीं लेना चाहिए। किसी भी विशिष्ट नस्ल अथवा जाति के सम्बन्धित धर्म में परिवर्तन एक प्रकार से राष्ट्रीयता के परिवर्तन का रूप धारण कर लेता है। सन् १९४७ में हमें इसका अनुभव हो चुका है। पोप की यात्रा से इस प्रकार के विघटन के बीज फिर न बोये जायें। हमारी यही चिंता है।

मैं आशा करता हूं कि आप हमारी इन भावनाओं को पोप-पाल तक उनके भारत आगमन से पूर्व ही पहुंचाने की कृपा करेंगे।

सआदर एवं शुभ कामनाओं सहित।

भवदीय
रामगोपाल शालवाले
सभा प्रधान

डी० ए० वी०, शताब्दी पर शोभा यात्रा

डी०ए०वी० शताब्दी के उपलक्ष्य में एक विशाल शोभा यात्रा शनिवार १५ फरवरी १९८६ को दिल्ली में निकाली जा रही है। जो कि प्रातः ११ बजे लाल किला मैदान से आरम्भ होगी और चांदनी चौक, घण्टा घर, नई सड़क, चावड़ी बाजार, हौजकाजी, अजमेरी गेट, मिण्टो रोड, कनाट प्लेस, रीगल बिल्डिंग, पार्लियामेंट स्ट्रीट, सरदार पटेल चौक, गोल डाकखाना, बिड़ला मन्दिर से होती हुई सायं ४ बजे आर्यसमाज (अनारकली), मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली में समाप्त होगी।

केन्द्रीय आर्य युवक परिषद की ओर से ५०० युवक इस में शामिल होंगे। परिषद के महामंत्री ने आर्य युवकों को अधिक से अधिक संख्या में भाग लेने का आह्वान किया है।

—चन्द्रमोहन आर्य

आर्य यात्रा टंकारा

स्वामी दयानन्द जी महाराज की जन्मभूमि टंकारा में ६, ७, ८ मार्च १९८६ को विशाल ऋषि मेला लग रहा है आर्य परिवारों को टंकारा ले जाने के लिए बसें २३-२-८६ सायं २ बजे आर्यसमाज १५ हनुमान रोड नई दिल्ली से चलेंगी और १३-३-८६ रात्रि देहली वापस आयेंगी। यात्री टंकारा के साथ साथ इन्दौर, अजन्ता, अलोरा, महाबलेश्वर, गोवा, बम्बई, दमन, बड़ोदा, जामनगर, द्वारका, ओखा, पोरबन्दर, सोमनाथ मन्दिर, उदयपुर, नाथद्वारा, अजमेर, जयपुर इत्यादि स्थान देखेंगे।

निवास और भोजन की व्यवस्था आर्यसमाजों में होगी यदि कहीं ऐसा न हो सका यात्री अपने तो व्यय से करेंगे मार्ग व्यय केवल ६४५।- प्रतियात्री है चलने वाले आर्य भाई सम्पर्क करें।

रामचन्द्र आर्य
यात्रा प्रबन्धक
४३६ भीमनगर, गुड़गांव

वर की आवश्यकता

२६ वर्षीया, १६५ से० मीटर, गौरवर्णा, दिल्ली में छात्राओं के कालेज में लेक्चरर, वेतन २७००)रु० मासिक, आहूजा गोत्रोत्पन्ना कन्या के लिए विशुद्ध शाकाहारी, धूम्रपानादि रहित योग्य वर चाहिए। परिवार मूलतः यू० पी० निवासी है। सभी/अरोड़े आर्यसमाजी परिवारों को वरीयता। कृपया पूर्ण विवरण लिखें।

श्री जोशी जी
७७७ बी, पटपड़गंज रोड,
झील कुरंजा, दिल्ली-११००५१

संगोष्ठी सम्पन्न

दिनांक १३-१-८६ को मध्याह्न १ बजे स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान के अन्तर्गत एक संगोष्ठी का आयोजन डा० निरूपण जी विद्यालंकार के निर्देशन में बड़ी सफलतापूर्वक किया गया। विषय था वेदों में सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रिया। इसमें गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के विद्वान् श्री डा० निगम शर्मा एवं डा० भारत भूषण आदि महानुभावों ने भाग लिया।

दिनांक १४-१-८६ को गुरुकुल की ओर से की गई बसों एवं अपने-अपने वाहनों से मेरठ शहर के बहन भाई एवं देहात के बन्धु बड़ी भारी संख्या में गुरुकुल पहुंचे। श्री हरस्वरूप जी, श्री मनबीर जी, श्रीमती राजबाला जी, महीपाल सिंह जी का भावित संगीत एवं जसवन्तसिंह का कवितापाठ हुआ। ब्रह्मचारियों द्वारा संस्कृत में स्वागत गीत के पश्चात् श्री ओमशरण जी गुप्त मेरठ कालेज, श्री ओमप्रकाश जी शास्त्री शास्त्रार्थ महारथी, श्री निगम शर्मा जी गुरुकुल कांगड़ी, श्री स्वामी वेद व्रतानन्द जी, श्री डा० भारत भूषण जी, गुरुकुल कांगड़ी श्री डा० निरूपण जी आचार्य गुरुकुल कांगड़ी, तथा श्री डा० हरि प्रकाश जी मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी के उद्बोधक प्रवचन तथा श्री जयनारायण जी अरुण उपमंत्री सार्वदेशिक सभा द्वारा कवितापाठ हुआ। स्वामी करपात्री जी के आराधना दिवस पर धर्मसंघ दिल्ली द्वारा आयोजित एक प्रतियोगिता में ब्र० शिवशंकर एवं ब्र० वाचस्पति द्वारा प्रथम आने और चल वैजयन्ती को जीतकर आने पर श्री मनोहर लाल जी प्रधान गुरुकुल ने शाल प्रदान द्वारा अपने इन दोनों ब्रह्मचारियों का स्वागत किया। साथ ही ब्र० गोपाल का त्रैमासिक अनन्त विजय पत्रिका में सर्वश्रेष्ठ लेख होने के कारण गुरुकुल की ओर से एक चादर प्रदान की तथा श्री जयनारायण जी अरुण उपमंत्री सभा ने आशीर्वाद दिया।

गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के वैदिक प्रश्नोत्तरी, श्लोक अन्ताक्षरी, वेद मंत्री अन्ताक्षरी, सूत्र अन्ताक्षरी, संस्कृत एवं हिन्दी के समस्त समारोह के संयोजक श्री इन्द्रराज जी प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उ०प्र० थे।

इन्द्रराज
मन्त्री

आर्यसमाज की भावी योजना और कार्यशैली पर निबन्ध प्रतियोगिता

आर्यसमाज ने अपनी स्थापना के प्रथम पचास वर्ष में सामाजिक, राजनैतिक आध्यात्मिक व शिक्षा के क्षेत्र में जो महत्वपूर्ण कार्य किया है वह स्तुत्य है परन्तु उसके मुकाबले दूसरे पचास वर्षों का कार्य बहुत अधिक प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता बल्कि ऐसा समझना भी अति श्योक्ति नहीं कि प्रथम पचास वर्षों के संचित कर्मों का लाभ दूसरे पचास वर्षों को मिला। वही लाभ आर्यसमाज को यशस्वी बनाये रही। आज आर्यसमाज की शताब्दी हो जाने पर वे सब गाथायें ऐतिहासिक सी लगने लग गयी जो कभी पूर्व पुरुष कर गये।

कुछ चिन्तकों पर्यवेक्षकों और पुरानी पीढ़ि के लोगों का कहना यह भी है कि वर्तमान में हमारी स्थित बहुत ही नाजुक और विचारणीय है, यदि हमने अपनी कार्यप्रणाली और भावी योजना सुदृढ़ नहीं की तथा नवपीढ़ि को समर्पित नहीं किया तो सम्भवतः हम भी भारत के बौद्ध धर्म की तरह जनमानस से कट जायेंगे अथवा समय की मांग में खो जायें। यह सच है हमें अपनी सम्पदा उच्च आदर्श पर कितना ही गर्व हो पर समय के साथ न चलने से सब आदर्श पुस्तकों में बन्द हो जाते हैं और सिद्धान्त हीन सम्प्रदाय समय को परख कर चलने से जनता पर हावी हो जाते हैं।

आर्यसमाज के महान आत्र उच्च विश्व को पल्लवित करने में जिन विद्वानों महर्षि के सेवकों भक्तों ने अपना जीवन लगाया और खपाये हैं कृतज्ञ भारतीय समाज उनका आभारी है। आज आर्यसमाज की भावी योजना और कार्यशैली पर विचार करना अत्यावश्यक हो गया है। इसी परिपेक्ष्य में हमने एक प्रश्न आर्यजगत् के समक्ष प्रस्तुत किया है। हमारा उद्देश्य नितान्त पवित्र बहुजनता से युक्त है।

सामयिक उभरते प्रश्न

(१) ईश्वर भक्ति के सच्चे स्वरूप को सर्वसाधारण ने अभी तक नहीं अपनाया, बल्कि मूर्तिपूजा, व्यक्तिपूजा और तथाकथित भगवानों का क्रम अधिक होने लगा है हमारा दायित्व कैसे पूर्ण हो?

(२) आर्यसमाजों में युवा वर्ग को आकर्षित करने का योजना क्या हो?

(३) आर्य गुरुकुल उपदेशक विद्यालय वर्तमान युग की व्यावहारिकता की भूमि पर कैसे प्रभावी हो।

(४) आर्यसमाज के स्कूल कालेजों में आर्यसमाज के सिद्धान्तों और विचारों का प्रसार प्रचार कैसे सम्भव हो सकता है?

आर्य सन्यासी वर्ग का अभाव, सन्यासियों के प्रति हमारा दायित्व तथा वर्तमान सन्दर्भ में साधु सन्यासियों के कर्तव्य एवं दायित्व।

(६) देश की राजनीति को प्रभावित करने वाला आर्यसमाज राजनीतिज्ञों से प्रभावित न होकर राजनीति को कैसे प्रभावित करे?

(७) विधर्मियों के कुचक्र से बचने के लिए आर्यसमाज शुद्धि के चक्र को चलाये परन्तु प्रोपगन्डे और दिखावे से बचकर ठोस कार्य योजना किस प्रकार होनी चाहिए?

(८) गरीबी, बेरोजगारी के उन्मूलन के लिए आर्यसमाज किस प्रकार की भूमिका निभायें।

(९) दहेज, तलाक और फिजूल खर्ची के विरुद्ध आर्यसमाज की भूमिका।

(१०) फिल्म टी०वी० और नृत्य नाटक की अश्लीलता से बिगड़ते समाज और वातावरण के प्रवाह को किस प्रकार रोका जावे।

इस प्रकार की और भी अनेक समस्याएं जिन्हें आप समझें, उनका निदान और भावी योजनाओं को ध्यान में रखकर अपना निबन्ध भेजें। यह निबन्ध और सुझाव आर्यसमाज के प्रभाव को ज्योति को प्रज्वलित करने में योगदान दे सके इस बात को ध्यान में रखकर लिखें। इनमें किसी व्यक्ति विशेष पर छींटाकशी नहीं होनी चाहिए। यह लेखन कार्य और भी अधिक सूझबूझ से हो सके इसलिए श्रेष्ठ सुझावों पर तीन क्रमठ आर्यों और विद्वानों की समिति के निर्णय पर क्रमशः १०००/- रु० ७००/- रु० और ५००/- रु० के तीन पुरस्कार रखे गये हैं। तीन के अलावा बाकी १० सुझावों को भी पुरस्कृत किया जायेगा।

निबन्ध भेजने की अन्तिम तिथि १५ मार्च है।

पत्र व्यवहार का पता
सत्यानन्द आर्य
६३।४१ पंजाबी बाग
नई दिल्ली-११००२६

निवेदक
सत्यानन्द आर्य
उपप्रधान सार्वदेशिक सभा
नई दिल्ली
ट्रस्टी परोपकारी सभा अजमेर

वार्षिक चतुर्वेद ब्रह्म पारायण महायज्ञ

श्रीमद्दयानन्द वेद विद्यालय, ११९ गौतम नगर, नई दिल्ली-११००४९ का वार्षिक चतुर्वेद ब्रह्म पारायण महायज्ञ १६ फरवरी रविवार से २ मार्च रविवार १९८६ तक सम्पन्न होगा। इस पुनीत यज्ञ के ब्रह्मा महोदय श्री स्वामी दीक्षानन्दजी सरस्वती होंगे।

वेद पाठ वेद विद्यालय के ब्रह्मचारी करेंगे। इसके साथ-साथ प्रसिद्ध आर्य विद्वान् तथा आर्य भजनोपदेशकों के प्रवचन एवं भजन भी जनता-जनार्दन को सुनने को मिलेंगे।

यह [illegible] तक प्रकाशित होती रहेंगी।

यज्ञ एवं उपदेश का समय:
प्रातः — ६ बजे से ९.३० बजे तक
सायं — ३ बजे से ६.३० बजे तक
रात्रि — कथा एवं भजनोपदेश ८ बजे से ९.३० बजे तक।

निवेदक
आचार्य हरिदेव

प्रयाग-निकेतन में ब्रह्म पारायण महायज्ञ

स्व० पू० स्वामी प्रभु आश्रित जी महाराज के निर्वाणके (२१) वर्षदिवस के उपलक्ष में यजुर्वेद ब्रह्मपारायण महायज्ञ सोमवार ३-२-८६ से रविवार ९-२-८६ तक पू० महात्मा दयानन्द जी महाराज की अध्यक्षता में सम्पन्न होगा।

जिसमें निम्नलिखित विद्वान् सादर आमन्त्रित हैं।

पू० स्वामी दीक्षानन्द जी, पू० महात्मा बलदेव जी, श्री नरेश ब्रह्मचारी जी, पू० प० सत्यपति जी शास्त्री, स्वामी जीवनानन्द जी, श्री प० रामदत्त जी शर्मा (गुरुकुल एटा), आचार्य सतीश जी (गुरुकुल एटा), श्री पृथ्वीराज शास्त्री, श्री पं० रामप्रसाद जी (उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार)।

समय—प्रातः ४.३० से ८.४५ बजे तक।

निवेदक
अग्निहोत्री परिवार
प्रयाग निकेतन
११ यू बी, जवाहर नगर,
दिल्ली-११०००७
फोन २११३५४७

झाझर, बुलन्दशहर में आर्यसमाज की स्थापना

म० मथासीराम आर्य की बारहवीं पुण्यतिथि पर सत्य सनातन वैदिक धर्म के प्रवक्ता युवा समाजसेवी प० उदय जी श्रेष्ठ 'धर्माचार्य' की कर्मठता तथा प्रेरणा से विधिवत् आर्यसमाज की स्थापना हुई। जनता ने प० श्रेष्ठ जी को ही स्थानीय आर्यसमाज का संस्थापक व संरक्षक सहर्ष घोषित किया। इस अवसर पर देवयज्ञ, ध्वजारोहण उद्घाटन समारोह तथा प्रीतिभोज का आयोजन भी किया गया।

रामसिंह प्रेमी
मन्त्री आर्यसमाज
झाझर, बुलन्दशहर (उ०प्र०)

निर्वाचन

साधारण सभा १-१२-८५ को १२ बजे दिन में आर्यसमाज, बाजपुरा की बैठक आर्यसमाज मन्दिर में हुई। बैठक की अध्यक्षता श्री गंगाप्रसाद ने की। सभी अधिकारी सर्वसम्मत निर्वाचित हुए।

प्रधान : श्री गंगाप्रसाद, मन्त्री श्री उपेन्द्र कुमार त्रिपाठी, कोषाध्यक्ष : श्री देवशरण पासवान।

(सभासदों) अन्तरंग सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार नव-निर्वाचित प्रधान को दिया गया।

उपेन्द्र कुमार त्रिपाठी
मन्त्री

वार्षिक निर्वाचन

प्रधान श्री देवसेन जी दुग्गल, मन्त्री श्री यशपाल आर्यबन्धु, कोषाध्यक्ष श्री वेदप्रकाश रस्तोगी, पुस्तकाध्यक्ष श्री अरविन्द सहगल।

यशपाल आर्यबन्धु
मन्त्री, आर्यसमाज
रेलवे हरथला कालोनी मुरादाबाद

डगमग डोली नैया के पतवार बनो

—वीरेन्द्रदत्त शुक्ल

अधिकारों की लहरों में है [illegible]
कुविचारों की दाढ़ें वाला मकर खरा,
द्वेष-दोष के सत्त्व बहुत [illegible]
पर्व-मत के [illegible]
[illegible] में [illegible] शूरों का [illegible]
[illegible] के [illegible] बनो!
डगमग डोली नैया के पतवार बनो!!
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] पुकार बनो।
डगमग डोली नैया के पतवार बनो
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
डगमग डोली नैया के पतवार बनो!!

नारी जाति पर महर्षि दयानन्द के महान् उपकार

इस युग में लड़कियों को पढ़ाना असभ्यता और पाप समझा जाता था। भारत में महर्षि दयानन्द प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने लड़कों की तरह लड़कियों को पढ़ाना भी आवश्यक बतलाया। और लड़के लड़कियों को समानाधिकार दिलाया। महर्षि दयानन्द का व्याख्यान सुनकर ही माता भगवती ने हरियाणा गांव जिला होशियारपुर पंजाब में पहली आर्य पुत्री पाठशाला बनायी थी। और लाला देवराज ने स्वामी श्रद्धानन्द की प्रेरणा से आर्य कन्या महाविद्यालय की स्थापना की थी। उन दिनों हमारे हिन्दु भाइयों ने विशेषकर सनातन धर्मी नेताओं और विद्वानों ने घोर विरोध किया था। और आर्यसमाज पर कई प्रकार के आरोप लगाए थे। परन्तु विरोध होते हुए भी अनेकों आर्य पुत्री पाठशालाएँ भारत में चलने लगीं। यहां तक की विरोधी सनातन धर्म के नेताओं और विद्वानों की लड़कियां भी आर्य पुत्री पाठशालाओं में पढ़ने लगीं।

अन्त मे हारकर सनातन धर्म के उन नेताओं को सनातन धर्म पुत्री पाठशालाएँ भी खोलनी पड़ी।

इस प्रकार नारी जाति का शिक्षित होने का श्रेय महर्षि दयानन्द और उनके आर्यसमाज को ही है। फलस्वरूप महिलाएँ शिक्षित होकर देश की प्रधानमंत्री बनी, संसद सदस्य बनीं, सचिव बनीं, डाक्टर बनीं, जज बनी, वकील बनी, प्रधानाचार्या बनी। इस तरह प्रत्येक क्षेत्र में नारी जाति ने अपूर्व उन्नति की।

ढोल, गंवार, पशु और नारी।
चारो ताडन के अधिकारी॥

यह सनातन धर्म के लोगों की कहावत रही है। नारी को पैरों की जूती और नौकरानी समझा जाता था। धन्य है महर्षि दयानन्द। आपके क्या-क्या गुणगान करें ! आपने अबला को सबला बना दिया, गंवार को वेदपाठी पण्डित बना दिया। आर्यसमाज तो कहता है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते,
रमन्ते तत्र देवताः।

लड़कियों का विवाह बहुत छोटी आयु में करने की प्रथा भारत मे प्रचलित थी, और जो लडकी विधवा हो जाती थी वे आयु पर्यन्त दुःख पाती थीं। विधवा की शक्ल देखनी भी अशुभ मानी जाती थी। विधवा लडकी का पुनः विवाह करने की प्रथा नहीं थी, बल्कि पाप समझा जाता था, और विधवा लड़की मजबूर होकर भ्रष्टाचारी बनती थी, वेश्याएँ बनती थी, मुसलमान और ईसाई बनकर चरित्रहीनता के गर्त्त में गिर जाती थी।

महर्षि दयानन्द ने विधवा विवाह के पक्ष में आवाज उठाई। समय की आवाज थी चरित्रहीन होने की बजाय विधवा विवाह करना अच्छा समझकर विधवा विवाह होने लगे।

वेद पढ़ने का अधिकार नारी जाति को नहीं था। सनातनी भाइयों ने घोर विरोध किया था। अब महर्षि दयानन्द और उसकी आर्यसमाज की कृपा से नारी जाति को वेद पढ़ने का पुरुषों की तरह समान अधिकार है। और अब महिलाएं वेद को पढ़िता हैं। इस प्रकार नारी जाति महर्षि दयानन्द और उसकी आर्यसमाज की ऋणी है। प्रत्येक शिक्षित लड़की अथवा महिला ऋषि ऋण से उऋण होने के लिए वैदिक सिद्धांतों पर चलें, और ऋषिवर की अनुगामी आर्यसमाज का काम करे। महिलाओं को आर्यसमाज का कार्य करने से उनका अपना भला होगा, समाज का भला होगा, और देश का भला होगा।

महर्षि के अनुसार परिवार को सभ्य एवं सुशिक्षित बनाने के लिए माताओं का शिक्षित होना परम आवश्यक है। मेरे विचार मे जिस परिवार के अन्दर महिलाएं आर्य विचारो की हैं वहा उनके पुत्र-पुत्रिया आदि परिवार के सभी सदस्य स्वतः ही आर्य विचारो के बन जाते हैं। शास्त्रकारो के अनुसार—"माता निर्माता भवति" मा परिवार का निर्माण करने वाली होती है।

यदि हम चाहते है कि हमारे बच्चो के अच्छे संस्कार बनें तो सर्वप्रथम पुत्रियो को आर्य संस्कारो से ओत प्रोत किया जाए। इस प्रकार की आर्य पुत्री जहां भी जाएगी वहा आर्यसमाज की अमिट छाप जन-मानस के अन्तःकरण में लगाएगी। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आर्यपरिवारो में यह त्रुटि आ गयी है कि हम अपनी पुत्रियों को यज्ञों तथा आर्यसमाज के सत्संग में लाने पर विशेष ध्यान नहीं देते।

मेरी धारणा है कि देश मे जो भ्रष्टाचार, अनैतिकता, चरित्रहीनता आदि बुराइयाँ पनप रही हैं। इसके विरोध में यदि नारी जाति दृढ संकल्प होकर आन्दोलन करें, प्रदर्शन करें, धरना दें, तो कोई कारण नहीं कि देश से उपरोक्त बुराइयां दूर न हो।

जगतराम आर्य
आर्यसमाज गांधीनगर,
दिल्ली—३१

आर्यसमाज मोगरगा पंचवर्षीय नव-निर्वाचन

बुधवार दि० २७-११-१९९५ वार्षिक शुक्ल १५ पाक्षिक सत्संगोपरांत : सरक्षक इन्द्रजीत लखपती गिरी (आर्य) की अध्यक्षता मे·····

आर्यसमाज मोगरगा (ता० औसत जि० लातूर) महाराष्ट्र के मंत्रीमंडल का नव-निर्वाचन सर्वसम्मत्ति से सम्पन्न हुआ।

निम्न पदाधिकारी मनोनीत किए गए।

प्रधान . श्री निवृतिराव एकनाथराव सोनवणे, मन्त्री : श्री व्यंकटराव शामराव मुरु बे, कोषाध्यक्ष . श्री अन्नप्पा मल सिद्प्पा महामुरे, पुस्तकाध्यक्ष श्री गंगाराम राव साहेब उतके (तावखाडोकर)।

निवेदक
इन्द्रजीत, सरक्षक

रजि० नं० डी० (सी०) ७५६ साप्ताहिक 'आर्यसन्देश' २ फरवरी, १९८६ बिना टिकट भेजने का लाइसेंस नं० यू १३९
R. N. No. 32387/77 Post in N.D.P.S.O. on 31-1-86 Licenced to post without prepayment. No. U 139

ओ३म्

आर्य सन्देश

केवल ५० रुपये में तीन वर्ष तक हर सप्ताह पढ़ते रहिए

- ☐ क्या आप ऋषि, मुनि, तपस्वी, योगियों की अमृत वाणी पढ़ना चाहते हैं ?
- ☐ क्या आप वेद के पवित्र ज्ञान को सरल एवं मधुर शब्दों में जानना चाहते हैं ?
- ☐ क्या आप उपनिषद्, गीता रामायण, ब्राह्मणग्रन्थ का आध्यात्मिक सन्देश स्वयं सुनना और अपने परिवार को सुनाना चाहते हैं ?
- ☐ क्या आप अपने शूरवीर एवं महापुरुषों की शौर्य गाथाएं जानना चाहेंगे ?
- ☐ क्या आप महर्षि दयानन्द की वैचारिक क्रान्ति से आत्मचेतना जागृत करना चाहते हैं।

यदि हां, तो आइये आर्यसन्देश परिवार में शामिल हो जाइए।

केवल ५० रुपये मे तीन वर्ष तक हर सप्ताह पढ़ते रहिए। साथ ही वर्ष में चार अनुपम भव्य विशेषांक भी प्राप्त कीजिए।

एक वर्ष केवल २० रुपये; आजीवन २०० रुपये।

प्राप्ति स्थान :

आर्यसन्देश साप्ताहिक

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

१५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-११०००१

उत्तम स्वास्थ्य के लिए गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार की औषधियां सेवन करें

शाखा कार्यालय—६३, गली राजा केदारनाथ, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६ फोन : २६१८३८

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन : ३१०१५० के लिए डा० धर्मपाल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा वैदिक प्रेस, गली नं० १७, कैलाशनगर, दिल्ली-३१ में मुद्रित। रजि० नं० डी० (सी०) ७५६

ओ३म्

साप्ताहिक

आर्य सन्देश

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

वर्ष १० : अंक १४ | रविवार, २३ फरवरी, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ | माघ २०४२ | दयानन्दाब्द—१६१

मूल्य . एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश में ५० डालर, ३० पौंड

२५०० ईसाई नर-नारी हिन्दू धर्म में प्रविष्ट

आर्यसमाज ने अपने बिछुड़े भाइयों का दिल खोल कर स्वागत किया।

कालाहाण्डी (उड़ीसा), २ फरवरी। उड़ीसा और मध्य प्रदेश के सीमावर्ती खरियाररोड के निकट कालाहाण्डी के आदिवासी क्षेत्र में आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं के प्रयास से पोपपाल के भारत आगमन के अगले दिन दो फरवरी को ईसाई बने ढाई हजार आदिवासियों ने स्वेच्छा से अपने पूर्वजों के धर्म में पुनः प्रवेश किया।

गुरुकुल आम सेना के प्रांगण में बीस यज्ञकुण्डों के चारों ओर बैठे इन आदिवासियों ने जब आर्य सन्यासियों द्वारा आम्र वृक्षों के पत्तों से जल प्रोक्षण के बाद गायत्री मन्त्र के उच्चारण के साथ यज्ञोपवीत धारण किया तो इस अभूतपूर्व दृश्य को देखकर आस पास के इलाकों से आये हजारों लोगों ने तुमुल हर्ष ध्वनि से गद्-गद होकर अपने इन वनवासी बन्धुओं का स्वागत किया। समारोह ने एक मेले का रूप धारण कर लिया था और प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक आने वाले लोगों का तांता लगा रहा।

अपने पूर्वजों के हिन्दू धर्म में पुनरावर्तन के पश्चात् सब आदिवासियों को कपड़े वितरित किए गये और बाद में सब उपस्थित जनों ने अपने इन बन्धुओं के साथ प्रीति भोज में भाग लिया।

इस अवसर पर अनेक आर्य संन्यासी, विद्वान्, पण्डित और उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश के आर्य नेता उपस्थित थे। कई वृद्ध जनों की आँखें इस अभूतपूर्व दृश्य को देख कर हर्ष के आंसुओं से आप्लावित हो उठीं। संन्यासियों ने सब पुनरागतों को आशीर्वाद दिया।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री रामगोपाल शाल वाले इस अवसर पर विशेष रूप से मुख्य अतिथि के रूप में निमन्त्रित थे। उन्होंने ईसाई मिशनरियों के धर्मान्तरण सम्बन्धी देशव्यापी षड्यन्त्र का पर्दाफाश करते हुए पोपपाल के आगमन पर एक लाख आदिवासियों के धर्मान्तरण के समाचार को समस्त हिन्दू जाति के लिए चुनौती बताते हुए कहा कि आर्यसमाज इस षड्यन्त्र को कभी सफल नहीं होने देगा। आदिवासियों के इस पुनरावर्तन को धर्म परिवर्तन की संज्ञा नहीं दी जा सकती। उन्होंने महात्मा गांधी के कथन को उद्धृत करते हुए कहा कि किसी भी लोभ और भय से जो हमारे भाई विधर्मियों के चंगुल में फंसकर धर्म परिवर्तन कर लेते हैं, उन्हें वापिस अपने पूर्वजों के धर्म में लाना धर्म परिवर्तन नहीं प्रत्युत एक अन्याय का परिमार्जन करना है।

आर्यसमाज के इस कार्य की सब ओर प्रशंसा की जा रही है और उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश के आदिवासियों में तथा हिन्दू जनता में नई चेतना जागृत हुई है।

श्रद्धेय लाला रामगोपाल शालवाले पूर्व सांसद, प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली विदर्भ, मध्यप्रदेश और उड़ीसा के तूफानी दौरे में धर्म रक्षा महाभियान का शंखनाद करते हुए दिनांक ३१ जनवरी को नई दिल्ली से प्रस्थान कर होशगाबाद, नागपुर, भण्डारा गोंदिया, दुर्ग, रायपुर, टाटीबन्ध और भिलाई खरियार रोड (कालाहांडी) होते हुए दुर्ग पधारे। आपके साथ सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि के उप मन्त्री श्री पृथ्वीराज शास्त्री भी थे। प्रत्येक स्थान पर धर्म प्रेमी जनता ने बड़े उत्साह एवं उल्लास से आपका भावभीना स्वागत किया। आपने स्थान-स्थान पर कार्यकर्ताओं से वहां की सामाजिक और धार्मिक समस्याओं पर चर्चा की और धर्मान्तरण की समस्या का अध्ययन किया। कार्यकर्ताओं की बैठकें लीं जिस में उन्हें आर्यसमाज के सार्वभौम भावी कार्यक्रम के सम्बन्ध मे दिशा निर्देश दिये।

आपके दौरे से तीनों प्रान्तों के आर्य सामाजिक कार्यकर्ताओं में विशेषतः युवा वर्ग मे नव स्फूर्ति और उत्साह का संचार हुआ। विभिन्न विचार गोष्ठियों मे आगामी कार्यक्रम निर्धारित किये गये। लाला जी की इस यात्रा मे आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य प्रदेश व विदर्भ की प्रधाना श्रीमती कौशल्या देवी और मन्त्री श्री रमेश चन्द्र तथा उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान स्वामी धर्मानन्द सरस्वती एवं आर्य जगत् के कार्यक्रम के साथ में रहे।

इस शृंखला मे आर्य समाज की सार्वभौम शिरोमणि संस्था सार्वदेशिक आर्य-

(शेष पृष्ठ १० पर)

आर्यसमाज दीवान हाल शताब्दी समारोह

२५ से २७ अप्रैल तक विभिन्न कार्यक्रम

समारोह के स्वागताध्यक्ष श्री सोमनाथ मरवाह होंगे

आर्यसमाज दीवान हाल दिल्ली की स्थापना के एक सौ वर्ष हो जाने के शुभ अवसर पर आगामी २५, २६, २७ अप्रैल १९८६ को भव्य विशाल समारोह किया जाएगा जिसमें देश के प्रसिद्ध विद्वान्, संन्यासी एव नेतागण उद्बोधन देंगे। इस अवसर पर अनेक प्रान्तों से आर्य नर-नारी समारोह मे भाग लेंगे। इस समारोह के स्वागताध्यक्ष श्री सोमनाथ जी मरवाह, कोषाध्यक्ष सार्वदेशिक सभा होंगे। शताब्दी समारोह की तैयारियां जोर शोर से प्रारंभ हो चुकी हैं। आर्यसमाज दीवान हाल के विशाल भवन को नई रूप सज्जा से अलकृत किया गया है।

इस अवसर पर एक आकर्षक स्मारिका भी प्रकाशित की जा रही है। शताब्दी पर आयोजित निबन्ध प्रतियोगिता के निबन्ध निर्णायक मण्डल को भेज दिये गये हैं। समारोह के अवसर पर विजेता विद्वानों को सम्मानित किया जाएगा।

—मूलचन्द गुप्त

सम्पादक—यशपाल 'सुधांशु' एम० ए० | व्यवस्थापक—डा० सच्चिदानन्द | प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल

ऋग्वेद दशम मण्डल का १००वां सूक्त दक्षिणा सूक्त है। ११७वां दान सूक्त है।

पाठको के लिए दोनो का अर्थ यहां दिया जा रहा है।

१—न वा उ देवा क्षुधमिद्वध ददुरुताशितं उपगच्छन्ति मृत्यव। उतो रयिः पृणतो नोपदस्यति उतापृणन्मर्डितार न विन्दते। ऋ० १०।११७।१

देवो ने भूखे गरीबों को ही मौत नही दी बल्कि देखा जाता है कि खाते पीते आदमी को भी मौत पंजे में दबोच लेती है। उत (निश्चय से) पृणत रयिः (दान देने वाले का धन) न उप दम्यति (नाश को प्राप्त नही होता) उत (परन्तु) (अपृणन् मर्डितार न विन्दते) दान न देने वाले को कोई सुख देने वाला मित्र नही प्राप्त होता।

मत्र का कविता मे अनुवाद--

भूख नही दी वध जीवो
का देवों ने कर डाला।
दाना वही अन्न देकर
जो बुझा सके यह ज्वाला।
क्षुधा क्षीण की अवहेला
कर जो खुद माल उड़ाता।
एक दिवस उसके प्राणो को
भी अन्तक ले जाता।
दाता का धन कभी न घटता
देता उसे विधता।
किन्तु कृपण को कही न
कोई सुख दाता मिल पाता॥

२—य आध्राय चकमनाय पित्वोऽन्नवान् सन रफितायोप जग्मुषे। स्थिर मन कृणुते सेवते पुरोतो चित्स मर्डितार न विन्दते। १०।११७।२

य अन्नवान् सन् (जो व्यक्ति अन्न वाला होता हुआ भी (पित्व चकमानाय) अन्न की इच्छा करने वाले (रफिताय) बुरी हालत मे पड़े हुए (उप जग्मुषे) पास आये हुए (आध्राय) गरीब के लिये अपना (मन स्थिर कृणुते) कठोर बना लेता है) (उत पुर सेवते) बल्कि उस के सामने ही बैठ कर मजे से स्वय अन्न खाता है (चित् स मर्डितार न विन्दते) निश्चय से उस को कोई सुख देने वाला मित्र नही मिलता।

मंत्र का कविता में अनुवाद--

दुर्बल और भूख से पीडित
स्वयं द्वार पर आये,
लिये अन्न की चाह
निकल हो सम्मुख कर फैलाये।
ऐसे याचक के प्रति भी
जो हृदय कठोर बनाता,
अन्नवान् है, किन्तु नहीं
देने को हाथ बढाता।
यही नहीं, तरसा कर
उस को स्वयं सामने खाता
सुख दाता उस महा क्रूर
को कही नही मिल पाता।

३—स इद् भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय। अरमस्मै भवति यामहूता, उतापरीषु कृणुते सखायम्। १०।११७।३

(य कृशाय अन्नकामाय चरते) जो दुबले पतले और अन्न की इच्छा से इधर उधर घूमने वाले, (गृहवे) घर घर जा कर भीख मांगने वाले याचक को (ददाति सः इद् भोज) अन्न देता है वही सच्चा भोजन करता है)। (अस्मै) इस दाता के पास (यामहूतौ) योग्य समय पर दान करने के लिए (अरं भवति) पर्याप्त अन्न होता है। (उत) और(अपरीषु) कठिन समय मे (सखाय कृणुते) अपने मित्र बनाता है।

मत्र का कविता मे अनुवाद--

कृश शरीर है मांग रहा
घर घर जा कर दाना पानी,
ऐसे प्रतिग्रही याचक को
जो देता वह ही दानी।
यज्ञो में पूरा पूरा फल
उसको ही मिल पाता
शत्रु मण्डली मे भी वह है,
सब को मित्र बनाता।

४—न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः। अपास्मात्प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत्। १०।११७।४

पित्व सचमानाय (अन्न की इच्छा करने वाले) सचाभुवे सख्ये (समान विचार वाले मित्र को भी।

य न ददाति (जो नहीं देता है) न स सखा (वह सच्चा मित्र नही है) अस्मात् अप प्रेयात् (ऐसे आदमी से तो दूर ही भागना चाहिये) न सत् ओकः अस्ति (उस का घर रहने लायक घर नही है) पृणन्तं अन्य अरणं चिदिच्छेत् (ऐसे घर से तो जंगल भी अच्छा)

मत्र का कविता मे अनुवाद—

संगी, अपना संग सखा
जो रखता स्नेह सही है,
उस को भी जो अन्न न देता
वह तो मित्र नहीं है।
उसे छोड़ हट जाय दूर नर
उस का गेह नहीं वह,
अन्य किसी दाता का
आश्रय कर ले ग्रहण कहीं वह॥

५—पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्, द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम्। ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्राः अन्यमन्यमुपतिष्ठन्त रायः।

तव्यान् नाधमानाय इत् पृणीयात् (बलवान् समर्थ आदमी, सहायता की इच्छा करने असहाय के लिए अवश्य सहायता देवे और) द्राघीयांस पन्थामनु पश्येत् लम्बे जीवन रूपी मार्ग का ख्याल करे धन तो) रथ्या चक्रा इव (रथ के चक्र के समान उ हि (निश्चय से) आ वर्तन्ते (घूमते हैं) राय. अन्य अन्यं उपतिष्ठन्ते (एक के पास से दूसरे के पास चले जाते हैं)

मत्र का कविता में अनुवाद—

धन का दान करे
याचक को निश्चय ही धनवान्
दिखलाई देता दाता को
शुभ का मार्ग महान्।
आवर्तित रथ के चक्रो सा
होता विभव विलास,
कभी एक के पास सम्पदा
कभी अन्य के पास॥

६—मोघमन्नं विन्दते अप्रचेता. सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य। नार्यमणं पुष्यति नो सखाय, केवलाघो भवति केवलादी।

जो धनवान् होता हुआ भी, अर्यमणं (साधु जनों की) न पुष्यति (सहायता नहीं करता तथा) न सखाय (न अपने मित्र की ही सहायता करता है) स. केवलादी केवलाघः भवति (वह अकेला स्वयं ही खाने वाला अकेला ही पाप का फल भोगता है) सत्यं ब्रवीमि अप्रचेता अन्नं मोघं विन्दते (मैं सच कहता हूं कि वह बेवकूफ अन्न को व्यर्थ ही प्राप्त करता है। उस के उस अन्न को अन्न न समझो) स इत् तस्य वध (वह तो उसकी मौत है)

मंत्र का कविता मे अनुवाद--

व्यर्थ अन्न पैदा करता
वह जिसका मन न उदार,
सच कहता हू वह संग्रह है
उसका नर संहार॥
देव तृप्ति के काम न आता
जो न मित्र के ...
जो केवल निज पेट पालता
वह केवल अघ धाम॥

७—कृषन्नित् फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानमप वृङ्क्ते चरित्रैः। वदन्ब्रह्माऽवदतो वनीयान् पृणन्नापिरपृणन्तमभिष्यात्।

कृषन् (खेती करता हुआ) फालः इत् (फार ही) आशित कृणोति (भोजन करता है) यत् (चलने वाला ही) चरित्रैः अध्वान अप वृङ्क्ते (पैरो से मार्ग को समाप्त करता है) वदन् ब्रह्मा (उपदेश करता हुआ ज्ञानी) अवदतो वनीयान् (मौन धारण करने वाले से श्रेष्ठ है उसी प्रकार) पृणन् आपिः (दाता मित्र) अपृणन्तं अभि स्यात् दान न देने वाले कंजूस से बढ़ कर श्रेष्ठ है)

मंत्र का कविता में अनुवाद--

खेत जोत कर फाल कृषक
को अन्न दे रहा उपकारी,
उपकृत करता आचरणों से
पथ को पांथ सदाचारी।
वक्ता ब्राह्मण सदा अवक्ता
से बढ कर आदर पाता,
दाता पुरुष कृपण से उत्तम
बन्धु सदृश माना जाता॥

८—एकपाद्भूयो द्विपदो विचक्रमे, द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चात्। चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे संपश्यन् पंक्तीरुपतिष्ठमानः।

एक गुणा धन रखने वाला विशेष कर दुगने धनवान के मार्ग पर आक्रमण करता है। दुगना धन रखने वाला तिगुने धन वाले के पीछे आता है। चौगुना धन रखने वाला (द्विपदा) दुगने धन वालों के (अभिस्वरे) स्तुति की ध्वनि में (उप तिष्ठमानः (आदर को प्राप्त होता हुआ छोटे धनियों की (पंक्तीः) पंक्तियों को (सपश्यन् एति) देखता हुआ चलता है।

मंत्र का कविता में अनुवाद—

एक अंश का धनी द्विगुण के
पीछे चलता है चिरकाल,
वह भी तीन अंश वाले का
अनुगम करता है सब काल।
चार अंश वाला चलता है
पीछे औरों का अवलोक,
अतः विभव-अभिमान छोड़
कर धन दान करे सयत सब लोक॥

(शेष पृष्ठ ११ पर)

ईश्वरीय ग्रन्थ कौन ?

मेरे विचार में ईश्वरीय ग्रन्थ कहलाने योग्य वह ग्रन्थ हो सकता है जो –

१ – वह ग्रन्थ मानव-सृष्टि के साथ ही दिया गया हो।

२ – जिस समय पृथिवी पर कोई विभिन्न भाषाएं उत्पन्न न हुई हों।

३—जिसमें ईश्वर के गुण, स्वभाव, सत्यता न्याय-परायणता तथा दयालुता आदि का परस्पर विरोध रहित विवरण हो।

४— जिसमे ईर्ष्या, द्वेष पक्षपात आदि का लेश भी न हो।

५—जिसमे मनुष्य की स्थिति अर्थात् आकृति, आयु, जन्म, कर्म और मुक्ति प्रभृति का अच्छे प्रकार का वर्णन हो।

६ —जिसमें सृष्टि के अनादित्व, अनन्तत्व और वास्तविक स्वरूप का उल्लेख हो।

७ —जिसमे जीव के पूर्व भाव, अविनश्वरता तथा कर्मानुसार निग्रहानुग्रह आदि का अनुशासन हो।

८ —जिसमें मिथ्या माहात्म्य न हो।

९— जो ग्रन्थ लौकिक विज्ञान के विरुद्ध न हो।

१० —जिसमे ईश्वरीय कार्योंके ही उपलक्ष्य में उत्सव, पर्व आदि का विधान हो।

उपर्युक्त लक्षणों की सार्थकता और तद्युक्त ग्रन्थ की समालोचना होने से विद्वानों को प्रतीत होगा कि वास्तविक ईश्वर प्रेरित ग्रन्थ वेद ही है।

साम्प्रदायिकता की चिनगारियां

अदालत के आदेश पर श्री राम जन्म भूमि मन्दिर अयोध्या के द्वार खोले जाने पर मुस्लिम साम्प्रदायिक तत्त्व एक साथ सम्पूर्ण देश मे योजनाबद्ध तरीके से हिंसक आंदोलन के रास्ते पर उतर आए। जिसके कारण दिल्ली, लखनऊ, मेरठ, बदायूं, बिजनौर और वाराणसी, सुलतानपुर, मध्य प्रदेश के सिहोर शहर में हिंसा की घटनाएं घटी तथा भारी तनाव फैला रहा। शाहबानो फैसले के बाद कट्टर पंथी मुल्लाओं और मुस्लिम नेताओं को एक और मुद्दा मिल गया। अदालत और कानून के खिलाफ प्रच्छन्न रूप से सरकार से जेहाद छेड़ना तथा शांत स्वच्छ वातावरण दूषित करना एक अनावश्यक टकराव का खतरा जानबूझ कर उत्पन्न किया गया है। पिछले शुक्रवार १४ फरवरी को पुरानी दिल्ली के कुछ क्षेत्रो में जो हिंसा की गई वह पूर्व नियोजित थी। जामा मस्जिद के शाही इमाम ने भारत सरकार पर मुसलमानों के खिलाफ षड्यन्त्र रचने का आरोप लगाया तथा भड़काने वाला या यूं कहिए साम्प्रदायिकता का कहर बरपा करने की प्रेरणा देने वाला भाषण दिया, दिल्ली में यह सब उसी का परिणाम है। इन आग लगाने और जेहाद का एलान करने वाले वक्तव्य देने वालें कट्टर मतान्ध लोगों पर ही इन हिंसक घटनाओं का पूर्ण दायित्व है। गनीमत है उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ सम्भल और मुरादाबाद जैसे नाजुक इलाको में स्थिति बिगड़ने नही दी गयी अन्यथा देश की छाती पर एक और चिताओ का दावानल जलता। तेरह फरवरी को उत्तर प्रदेश विधान सभा में छः मुस्लिम विधायको ने बाबरी मस्जिद के नाम पर कार्यस्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत किया था, जिसको प्रस्तुत करने मे शामिल थे लोकदल के विधायक, मुस्लिम मजलिसे मुशावरात तथा जगजीवन कांग्रेस के विधायक। जनता पार्टी के सैयद शहाबुद्दीन का कट्टरवादी रुख तो जगत्प्रसिद्ध है ही। अब सुना जाता है कि विभिन्न पार्टियो के ७० मुस्लिम सांसदों को एकत्र कर इस मामले को और भी अधिक तूल देने का कार्य किया जा रहा है। मुस्लिम राजनेताओं तक का समर्थन एवं सहयोग प्राप्त कर किया जाने वाला आंदोलन कट्टरवादी मुस्लिमों का ही आंदोलन नही है बल्कि इसके पीछे मुस्लिम राजनीति पर हावी कुछ दूसरे ही तत्त्व हैं। सम्भव है यह सब कराने वाले हाथों में विदेशी प्रेरणा हो जो यह चाहते ही नहीं कि यह देश अखण्ड और एक रहे। अखिल भारतीय मजलिस-ए-मुशावरात ने जो बंद का आह्वान किया है इसमें हिंसा, उपद्रव एक नहीं अनेक शहरों में एक साथ हुआ। यह पूर्व योजना के अनुसार ही हुआ लगता है।

रविवार १६ फरवरी को मध्य प्रदेश के सिहोर शहर में साम्प्रदायिक दंगे से कम से कम आठ आदमी मर गए और अनेक घायल हो गये। यह संघर्ष तब शुरू हुआ जब राम जन्म भूमि मन्दिर के कपाट खोलने की खुशी में विश्व हिन्दू परिषद द्वारा निकाले गये जलूस पर पथराव किया गया। अदालत चाहे छोटी हो या बड़ी हो उसके निर्णय को आंदोलनो और दंगों में नहीं बदला जा सकता। कानून के विरोध मे दंगे और उपद्रवी प्रदर्शन करना और शान्त वातावरण में आग लगाना असहनीय और अशोभनीय है क्या इतनी सी बात मौलाना बुखारी और सैयद शहाबुद्दीन को पता नहीं है। अदालत मे तीस वर्ष से जो मामला था उसका निर्णय हो जाने से कोई आसमान तो नहीं टूट गया कानून को कानून से ही लड़ा जाना चाहिए। फैजाबाद की अदालत देश की आखिरी अदालत नहीं है। ऊंची अदालतो में जाने के बजाय सड़क पर उतरकर नारेबाजी, पत्थरबाजी और मंदिर तक की अवमानना करने लग जाना अमाननीय है। शाहबानो और राम जन्म भूमि मन्दिर के मामलों को राजनैतिक लक्ष्यों को सामने रखकर उछाला जा रहा है। सैयद शहाबुद्दीन जैसे नेताओ का विश्वास है कि ऐसे धार्मिक सवालो पर मुसलमानों को संगठित करके उनका राजनैतिक समर्थन हासिल किया जा सकता है। भारत में लोकतन्त्री प्रणाली है, इसलिए किसी भी व्यक्ति या समुदाय को किसी भी राजनैतिक पार्टी को वोट देने की स्वतन्त्रता है। लेकिन अदालत के फैसलों के खिलाफ किसी मजहब को भड़काना और आंदोलन चलाना नैतिक और कानूनी, दोनो दृष्टिकोणों से गलत है। भारत सरकार को इन साम्प्रदायिक तत्त्वों के खिलाफ सख्त से सख्त कदम उठाने चाहिए। हर किसी को कानून की तथा देश की एकता और शांति के साथ खिलवाड़ करने की इजाजत नही मिलनी चाहिए। धार्मिक और साम्प्रदायिक मामले में सहिष्णु माने जाने वाले बहुमत हिन्दू समाज को कट्टरता और आक्रोश की तरफ ले जाने के नतीजे खतरनाक हो सकते हैं। वैसे भी हिन्दुओं पर पंजाब के उग्रवादी भी कम कसर नही छोड़ रहे और इसी के साथ यदि यह साम्प्रदायिक दंगे और मुस्लिम नेताओं के तीखे भाषण चलते रहे तो अनावश्यक भयंकर तूफान खडे होने में देर नही लगेगी। अत. सरकार को समय रहते सचेत हो जाना चाहिए।

—यशपाल सुधांशु

आर्य कुमार से—

उठ जाग, जाग मेरे कुमार !

ओ बाल सूर्य, ओ दिव्य ज्योति, टुक खोल आंख,
उठ जाग…… ।

ओ जननी के अभिमान जाग, निज देश जाति के प्राण जाग,
संस्कृति के गौरव गान जाग, ओ जीवन के अरमान जाग,
तेरे जगने से नव प्रभात का कण कण में फिर हो विहार,
उठ जाग………।

अपने वैभव से परिचित हो, जग को निज पौरुष दिखला दे,
अपनी गौरव गरिमा फैला, रश्मि समूह निज चमका दे,
तेरे चरणों में लोट-लोट जाए धरती का अन्धकार,
उठ जाग……… ।

ओ जल कण ! तू है महोदधि, तुझ को गर्जन करना होगा,
मेरे वामन ! तुझ विराट् का, जग को पूजन करना होगा,
तेरे भ्रू इङ्गित में बन्दी, जग का स्मित, क्रन्दन, चीत्कार,
उठ जाग………।

राणा प्रताप के साहस तुम, अभिमन्यु के पौरुष महान्,
तुम दयानन्द की दिव्य दृष्टि, तुम राम कृष्ण से गुण निधान,
तुम किसलय सम कोमल शरीर, तुम वज्रतुल्य भीषण प्रहार,
उठ जाग, जाग मेरे कुमार !

—उत्तमचन्द्र शरर एम०ए०

अरब शेखों का भारत विरोधी षड्यन्त्र

जोधपुर, 'तरुण' राजस्थान : ३१।१।८६ से

पश्चिमी एशिया मे स्थित अरब राष्ट्रो के खरबपति शेख अपने धन बल के माध्यम मे भारत की गरीब और अनपढ जनता को धर्म परिवर्तन कर जिस तरह इस देश की धरती के टुकडे करने के षड्यन्त्र मे रत हैं उमसे चिन्ता व्याप्त हो रही है। कहा जाता है कि अरब राष्ट्रो के इस दीर्घव्यापी षड्यन्त्र की सर्वप्रथम सूचना इजरायल के विगत सुरक्षा मन्त्री मोशे दयान द्वारा जनता प्रधानमन्त्री श्री मोरार जी देसाई को दी गई थी लेकिन देसाई ने दयान की आशका को सर्वथा निर्मूल घोषित करते हुए उस पर विचार करने से साफ इन्कार कर दिया था। श्री देसाई ने कहा था कि इजरायली विदेश मन्त्री को इस बात का किंचित् अधिकार नही है कि वह भारत और अरब राष्ट्रों के सम्बन्ध सम्पर्कों के मध्य इस तरह की कोई दखलंदाजी करे।

ज्ञातव्य है कि उपग्रह सचार के माध्यम से अरब राष्ट्रों के मध्य जो विचार विमर्श होता है। उसकी सूचना अमेरिकी सुरक्षा सस्थानों की पकड़ में सहज ही आ जाती है और उन सस्थाओं मे चूंकि यहूदी वैज्ञानिको का बाहुल्य है इससे इजरायल तक उसका पहुंचना भी किंचित् कठिन नही है। मोशे दयान ने तत्कालीन प्रधानमंत्री को जो सलाह दी थी वह उन्ही सूचनाओं पर आधारित थी जो उन्हें उपग्रह के इन माध्यमों से प्राप्त हुई थी। मोशे दयान ने श्री देसाई से कहा था कि अगर भारत चाहे तो इजरायल इस दिशा मे उनको अपनी पूरी सहायता दे सकता है लेकिन प्रधानमत्री ने इजरायली सुरक्षामत्री के इस प्रस्ताव को अपने पहले ही दौर मे अस्वीकृत कर दिया था।

उपग्रह सचार के माध्यमो से जिन सूचनाओ का सकलन किया गया है उनके अनुसार अरब राष्ट्रो का तेल भण्डार बहुत तेजी के साथ क्षीण होता जा रहा है। मात्र दस पन्द्रह बरस की अवधि में उसके पूरी तरह खत्म हो जाने की आशका है। भूगर्भ वैज्ञानिको का विश्वास है कि तेल का यह भण्डार अब तीव्र गति से हिन्द महासागर की ओर खिसक रहा है और इस शताब्दी के अन्त के पूर्व ही भारत और श्रीलंका तेल के क्षेत्र में पूरी तरह अपना स्थान बना लेंगे।

भारत के पश्चिमी समुद्र तट पर जिस तरह इन अरब शेखो ने सही गलत तरीके से भूमि का अधिग्रहण करना शुरू कर दिया है उससे सहज ही इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि सम्भावित तेल भण्डार के आसपास ही इस तरह वह अपना कब्जा जमाने की कोशिश में हैं। धर्म परिवर्तन का उनका अभियान भी उसी क्षेत्र के आसपास पूरी तरह चालू है जिसे वह एक नये इस्लामी राष्ट्र के रूप में परिवर्तन करने की दिशा मे सक्रिय हैं। उनका प्रयत्न है कि भारत के जिस क्षेत्र में तेल भण्डारों के खिसकने की सभावना है। वहा की सम्पूर्ण जनसख्या पूरी तरह मुसलमान बन जावे, जिससे कालान्तर में उस भाग को पूरी तरह हिन्दुस्तान से अलग करके वहां एक नया राष्ट्र बनाया जा सके।

केरल में समुद्र तटवर्ती भूमि के दाम मे पिछले एक साल की अवधि में एक हजार प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई है और उसमें से अधिकाश भूमि का क्रय बेनामी रूप से अरब राष्ट्रों के इन शेखों द्वारा ही किया गया है। त्रिवेन्द्रम को अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे के रूप में प्रस्थापित करने में भी इन तेल क्षेत्रों का ही पूरा हाथ है। अभी तक दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता और मद्रास से ही अन्तर्राष्ट्रीय हवाई उडानें चलती थीं लेकिन पिछले कुछ बरसो से त्रिवेन्द्रम को भी इन चार महानगरों की श्रेणी में प्रतिष्ठित कर दिया गया है।

मीनाक्षीपुरम मे जो धर्म परिवर्तन हुआ था वह सिर्फ भारत सरकार की प्रतिक्रिया देखने केलिए ही किया गया था। सरकार ने उस दिशा में चूंकि कोई कठोर कदम नहीं उठाये इससे धर्म परिवर्तन के इस अभियान को मनचाहा बल मिला और आज कोई दिन ऐसा नहीं बीतता होगा जब दक्षिण भारत के तटवर्ती क्षेत्रों मे कम से कम दस परिवार मुसलमान न बनते हों।

दक्षिण भारत में पिछले दिन कुछ दिनों से मुसलमानों की धर्मादा संस्थाओं में भी तेजी के साथ वृद्धि हो रही है। आन्ध्र प्रदेश मे कुरनूल और अनन्तपुर जिलों में विगत कुछ महीनों के अन्दर ही इस तरह के सैकडों न्यासों की स्थापना हुई है। और उनके सहायतार्थ अरब राष्ट्रों द्वारा अरबो रुपयों का दान किया गया है। पिछले चार महीनों में इस तरह के न्यासों को मात्र रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के माध्यम से तेरह अरब रु० की प्राप्ति हुई है। अनौपचारिक रूप से मिले धन की राशि तो खरबों में पहुंच सकती है। इसी अवधि में मात्र तमिलनाडु और केरल ही नहीं मध्य प्रदेश के जगदलपुर और दुर्ग जैसे क्षेत्रों में भी व्यापक रूप से धर्म परिवर्तन का कार्य किया गया और हजारों परिवार धनबल के माध्यम से मुसलमान बनाये गये।

भारत से जो मुसलमान काम-काज की तलाश में अरब राष्ट्र भेजे जाते हैं, उनकी रिक्रूटमेंट एजेन्सियों के माध्यम से बम्बई एवं अन्यान्य नगरों की मुसलमान धार्मिक सस्थाओं को लाखो रुपयों का अनुदान दिया जाता है। यह एजेंसियाँ यद्यपि भारत सरकार के श्रम मन्त्रालय द्वारा पंजीकृत और अधिकृत रहती हैं। तथापि उनका लाभ मुस्लिम धर्मादा संस्थाओं और उनसे सम्बन्धित न्यासों को ही मिलता है।

केवल बम्बई नगर में ही कई संस्थाएं हैं जिन्हें इन एजेंसियों द्वारा कई लाख रु० की वार्षिक सहायता दी जाती है। वर्तमान स्थिति के अनुसार इन संस्थाओं को प्रत्येक रिक्रूटिंग एजेंसी हर उस व्यक्ति के नाम पर दस रु० मासिक की सहायता करती है जो उनके माध्यम से अरब राष्ट्रों को भेजे गए हैं। मात्र बम्बई नगर में ही इस तरह की कम से कम एक हजार एजेंसियाँ कार्यरत हैं और उनकी अपनी आमदनी करोड़ों रु० में है।

इन एजेंसियों को अरब राष्ट्रों द्वारा जो कमीशन दिया जाता है उसे सामान्यत. वह लोग विदेशों में ही जमा रखते हैं। मात्र कुवैत के ही एक बैंक मे इसी तरह की एक एजेंसी का पच्चीस करोड़ रु० जमा है। भारत सरकार अरब राष्ट्रों की इन गतिविधियों से यद्यपि पूरी तरह अवगत है लेकिन अनेक कारणों से वह उनके विरुद्ध कोई कठोर कदम उठाने में अपने को सर्वथा असमर्थ पा रही है। गुप्तचर शाखा के अनेक वरिष्ठ सदस्यों का एक दल आजकल दुर्ग, कुरनूल, अनन्तपुर और मदुराई जैसे उन क्षेत्रों का दौरा कर रहा है जहां अरब राष्ट्रों की यह गतिविधियां तेजी से पनप रही हैं। केन्द्रीय महालेखाकार कार्यालय के कुछ अधिकारियों ने पिछले दिनों रिजर्व बैंक के विदेशी मुद्रा अनुभाग का भी निरीक्षण किया था और वहां से उन्हें पर्याप्त विस्फोटक सामग्री प्राप्त हुई है। अरब राष्ट्रो द्वारा विभिन्न तौर तरीकों से जिस तरह असीमित धन भारत भेजा जा रहा है उसके प्रति केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल की बैठको में भी पर्याप्त चिंता व्यक्त की गयी है परन्तु मामले की गम्भीरता को देखते हुए अभी तक तत्सम्बन्ध में कोई कदम नही उठाया जा सका। □

अन्तर्वेदना

अभी विजय की देवी का सच।
अभिनन्दन हम कर न सके हैं।।

अभी उषा की किरण जगी हैं, सूर्योदय में देर अभी है,
प्रजातन्त्र की पद-पद्धति में छाया अति अन्धेर अभी है।
शुचि प्रकाश के पुत्रों का प्रिय पद-वन्दन हम कर न सके हैं।।१।।

सहमी-सहमी मानवता है, दानवता का नृत्य हो रहा,
आतङ्की दल दल-बल छल से कृत्यों में कृत कृत्य हो रहा।
स्वत्व सुरक्षा कन्याओं का कम क्रन्दन हम कर न सके हैं।।२।।

मृग मारीच कुलांचे भरते खर दूषण को डर न कहीं है,
सुरतावृत्ति, ताडिका नटिनी जनता में ही नाच रही है।
अभी राम के चरितों का चिर अनुबन्दन हम कर न सके हैं।।३।।

भ्रष्टाचार भुजङ्ग भयानक नहीं किसी से नथ है, पाया,
मँहगाई का झण्डा देखो उच्च गगन में फहराया।
सत्व भक्ति के शक्ति शिखर का जय वन्दन हम कर न सके हैं।।४।।

राष्ट्रीय निष्ठा की नौका में कितने ही छेद हुए हैं,
मानी चाहे मत मानो भेदों से ही छेद हुए हैं।
ऐक्य वार से हरा-भरा यह निज नन्दन हम कर न सके हैं।।५।।

छोटा सा यह चाँद गगन में सूरज को है आँख दिखाता,
आश्चर्य है, पिटा पिटाया जीते को है, दाँव सिखाता।
निर्भय प्रगति-पन्थ में अपना गति-स्पन्दन हम कर न सके हैं।।६।।

कविवर "प्रणव" शास्त्री एम० ए० महोपदेशक,
शास्त्री सदन, राम नगर (कटरा) आगरा-६ (उ० प्र०)

प्रवासी भारतीयों के मसीहा

स्वामी भवानी दयाल संन्यासी

—ब्रह्मदत्त स्नातक

प्रवासी भारतीयों के कल्याण के लिए जिन लोगों ने उन्नीसवीं शताब्दी के पिछले चरण में एव बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में काम किया, उनमें लाला लाजपतराय, महात्मा गांधी, गोपाल कृष्ण गोखले, बनारसी दास चतुर्वेदी, सरोजिनी नायडू, राइट आनरेबल और श्रीनिवास शास्त्री आदि अनेक नाम हमारी स्मृति में आ जाते हैं । स्वामी भवानी दयाल सन्यासी के जीवन की विशिष्टता यह है कि इन लोगों की भांति वे भारत मे पैदा नहीं हुए थे । फिर भी उन्होंने जन्मभूमि के साथ-साथ मातृभूमि की सेवा की थी । इसका अर्थ यह है कि स्वामी जी को केवल अपनी जन्म भूमि जो वर्तमान दक्षिण अफ्रीका के ट्रांसवाल प्रदेश के जोहानीज़बर्ग नगर में है, उससे ही प्यार नहीं था जहाँ उनका जन्म १० दिसम्बर, १८-२ को हुआ था । यदि उनकी जन्मभूमि दक्षिण अफ्रीका मे थी, तो भारत उनकी पितृभूमि और मातृभूमि थी जहां से उनके बिहार निवासी पिता जयराम सिंह और माता मोहिनी देवी शर्तबन्द कुली-प्रथा के अन्तर्गत जाकर बस गये थे । अपनी इस मातृभूमि के प्रवासी भारतीयों तथा अन्य नागरिकों को भवानी दयाल सन्यासी ने बड़ी निष्ठा से यावज्जीवन सेवा की । वे एक प्रतिष्ठित सार्वजनिक कार्यकर्ता, राजनैतिक नेता, समाज सुधारक, हिन्दी के प्रख्यात लेखक और पाये के सम्पादक और पत्रकार थे, जिसका भरपूर लाभ न केवल उनकी जन्मभूमि के देश निवासियों को मिला अपितु विश्वभर में फैले समग्त प्रवासो भारतवासी उनकी सेवाओं से लाभान्वित हुए ।

स्वामी जी ने अपनी प्रवासी की कहानी में अपनी इन गतिविधियों का बड़े संकोच के साथ वर्णन किया है । अंग्रेजी में उनके जीवनी लेखक इण्डियन कोलोनियल एसोसियेशन के मंत्री प्रेमनारायण अग्रवाल ने सम्पूर्ण विस्तार से स्वामी जी के जीवन के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला है, यद्यपि अपनी पुस्तक "भवानी दयाल सन्यासी" में उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के सार्वजनिक कार्यकर्ता का शीर्षक उनके लिए दिया था । स्वामी जी ने अपनी जन्मभूमि के लिए दारुण कष्ट उठाए, कारावास भोगा और अनेक आंदोलन चलाये, और साथ ही अपनी मातृभूमि और पितृभूमि भारत के लिए भी उन्होंने सर्वस्व न्यौछावर कर दिया । भारत में भी उनको कारावास तथा अनेक प्रकार से सताया गया, परन्तु यहाँ भी उन्होने राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र में बढ़-चढ़कर भाग लिया

भारत मे रहकर भी उन्होंने भारत के स्वाधीनता संग्राम में और सभी प्रकार के रचनात्मक कामों में सराहनीय कार्य किया । उनका भारत तथा प्रवासियों के प्रति प्रेम इसी बात से स्पष्ट है कि अपने बहुआरा ग्राम मे रहकर द्वितीय शतक मे न केवल राष्ट्रीय पाठशाला खोली, प्रवासी भवन का निर्माण किया और वहाँ प्रवासियों से सम्बन्धित प्रामाणिक साहित्य का पुस्तकालय बनाया । इसका उद्घाटन देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद के हाथों हुआ था । अपने इसी गाँव मे और उसके बाद बिहार में दक्षिण अफ्रीका की भांति उस समय की प्रगतिशील जन-संस्था आर्यसमाज के कार्यों में बढ़-चढ़ कर भाग लिया । अपने जीवन के पिछले वर्षों मे भवानी दयाल संन्यासी ने अजमेर मे भी एक विशाल प्रवासी भवन स्थापित किया । जो आज भी मौजूद है । इन्होंने अपने पुत्र और भतीजे को पढने के लिए दक्षिण अफ्रीका से गुरुकुल वृन्दावन में भेजा था जिससे उनका भारतीय संस्कृति से गहरा प्रेम प्रकट होता है । इस प्रकार दो नावो पर सवार होकर भी उन्होंने सफलता पायी । उनका नाम वस्तुतः भवानी दयाल था और १९२३ में विधिवत् भारत आकर सन्यास लेने के बाद उनका नाम भवानी दयाल संन्यासी हो गया । इस सन्यास मे उन्होंने सन्यसेत् सर्वकर्माणि (संन्यासी कुछ काम न करे) की शास्त्रीय आज्ञा के विपरीत जीवन में सदैव कर्मयोगी को सर्वोपरि स्थान दिया ।

दक्षिण अफ्रीका से १९०४ मे भवानी दयाल के पिता सपरिवार अपने बहुआरा गांव लौट आये । यहां समुद्र यात्रा और उसके साथ ही साथ बाल विधवा से शादी करने पर बिरादरी ने उनके परिवार का घोर अपमान किया था, जिससे भवानी दयाल को जातपांत के झमेले और पौराणिक रूढिवादी हिन्दू धर्म से घृणा हो गयी । बग-भग और स्वदेशी आंदोलन शुरू होने पर १९०५ में भवानी दयाल गांव-गांव घूमकर स्वदेशी का प्रचार करने लगे और अगले वर्ष (१९०६) में कलकत्ता कांग्रेस के अधिवेशन के बाद उन्होंने स्वराज्य का संदेश जगह-जगह पहुंचाना शुरू किया । मुजफ्फरपुर मे बम फेंकने वाले नाबालिग नवयुवक खुदीराम बोस और उसके साथी प्रफुल्लचंद्र चाकी की आत्महत्या से उनके मन में क्रांतिकारी भावनाएं उमड़ने लगी । १९०७ में उनका जगरानी देवी से विवाह हुआ । साढ़े आठ वर्ष मातृभूमि में बिताकर भवानी दयाल अपनी जन्मभूमि को दक्षिण अफ्रीका लौट आए ।

गांधी जी के सान्निध्य में

जन्मभूमि में पहुंचने पर उसी दिन भवानी दयाल महात्मा गांधी जी के दर्शन करने फिनिक्स आश्रम में पहुँच गए । अपनी आत्मकथा मे उन्होंने उसके संस्मरण इस प्रकार लिए हैं—'रास्ते मे महात्मा गांधी जी की उसी मूर्ति की कल्पना कर रहा था, जिस रूप में उन्हें अपने बचपन मे जोहानीजबर्ग में देख चुका था, किन्तु वहाँ पहुँचते ही मेरी कल्पना भ्रांत सिद्ध हुई । आश्रम के निकट पहुँचा तो देखता क्या हूं कि महात्मा गांधी बहुत मोटे कपड़े का एक जांघिया और एक अधबही (आधी बांह की कुर्ती) पहने खेत में कुदाल चला रहे हैं, न पैरों में जूते थे, न सिर पर टोपा । वे कुदाल इस तेजी से चला रहे थे कि उनके सभी साथी पीछे छूट गए थे । मैंने मुखाकृति देखकर उन्हें पहचान लिया और उनके चरणों की धूलि माथे पर चढ़ाई ।' गांधी जी से उनका यह प्रथम परिचय दक्षिण अफ्रीका में हुआ था । और उसके बाद भारत में जीवन के अंतिम क्षणों तक घनिष्ठ रूप से बना रहा ।

भवानी दयाल दक्षिण अफ्रीका मे व्यापार द्वारा पैसा कमाने के उद्देश्य से लौटे थे, किन्तु गांधी जी को देखकर उनका मानचित्र ही बदल गया । उन्होने कालर और टाई दोनों को स्वाहा कर दिया । बाद में प्रवासियों पर लगने वाले ३ पौंड प्रति व्यक्ति कर के विरोध में जबर्दस्त हड़ताल और सत्याग्रह वहां चला । उसमें न केवल भवानी दयाल और उनकी पत्नी ही जेल गईं, अपितु गांधी जी और कस्तूरबा भी गिरफ्तार हुए । इसी सत्याग्रह का प्रयोग गांधी जी ने बाद मे भारत में भी स्वाधीनता प्राप्ति के लिए किया था ।

सम्पादन और पत्रकारिता के क्षेत्र में

भवानी दयाल के जेल से छूटते ही गांधी जी ने अपने इण्डियन ओपीनियन का सम्पादन करने और फिनिक्स आश्रम में रहने को उनसे अनुरोध किया । उनकी बीमार पत्नी जगरानी देवी को रेलवे स्टेशन से एक हाथ ठेला में जुतकर स्वयं गांधी जी ले भागे । कुछ दिनों के बाद पत्नी का देहान्त हो गया । इसी काल मे उनका दीनबन्धु सी० एफ० एण्ड्रूज से परिचय हुआ, जिनके द्वारा प्रवासियों की सेवा और भारतीय स्वाधीनता के कार्यों में बड़ा सहयोग मिला । इस काल में उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास लिखा और वहां से निकलने वाले एक अन्य पत्र "धर्मवीर" का सपादन उन्होंने किया और हिन्दी के प्रसार और साथ ही वैदिक धर्म के प्रचार के काम मे वे जुट गए ।

१९१९ में भवानी दयाल सपत्नीक भारत लौट आए और इस प्रकार यहां सार्वजनिक जीवन मे उनका प्रवेश हो गया । प्रवासियों के प्रश्न पर इसी काल में उनकी स्व० बनारसी दास चतुर्वेदी से भेंट हुई । अमृतसर की कांग्रेस मे वे न केवल शामिल हुए, और स्वागताध्यक्ष महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) के पास ठहरे, अपितु पहली बार प्रवासी भारतीयों के प्रश्न पर उन्होने राष्ट्रीय महासभा में अपना महत्त्वपूर्ण भाषण दिया और इस विषय में वहा प्रस्ताव भी पास कराया । बाद मे कानपुर कांग्रेस में बाकायदा एक प्रवासी विभाग की स्थापना हुई और भारतीय कांग्रेस के अंग के रूप मे दक्षिण अफ्रीकी कांग्रेस को भी अपने २० प्रतिनिधि भेजना स्वीकार हो गया ।

हिन्दी की सेवा

दक्षिण अफ्रीका मे १९२२ मे हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए अपनी बीमार (बाद मे दिवगत) पत्नी के अनुरोध पर भवानी दयाल ने अपनी सारी सम्पत्ति, जमीन और बंगला बेचकर उनके नाम पर एक प्रिंटिंग प्रेस खोलकर "हिन्दी" नामक पत्र को निकालना शुरू किया । मारीशस, फिजी, डेमरारा, ट्रिनीडाड, सूरीनाम, टागानिका, यूगांडा, कीनिया, रोडेशिया आदि देशो मे प्रवासी हिन्दुस्तानियो मे वह समाचार पत्र अत्यत लोकप्रिय हुआ । परन्तु बाद मे पारिवारिक कारणों से वह काम बन्द करके उन्हे भारत लौट आना पडा । भारत मे रहते हुए उन्होने आर्यावर्त (पटना) और हजारी बाग जेल मे सजा भुगतते हुए हस्तलिखित पत्र "कारागार" का भी सम्पादन किया था । उनकी हिन्दी की रचनाएं बहुत सी हैं, जिनमे प्रमुख (१) दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास (२) दक्षिण अफ्रीका के मेरे अनुभव (३) हमारी कारावास कहानी (४) महात्मा गांधी (५) ट्रांसवाल मे भारतवासी (६) नेटाली हिन्दू (७) वैदिक धर्म और आर्य सभ्यता (८) शिक्षित और किसान (९) वैदिक प्रार्थना (१०) वैदिक धर्म और आर्यसमाज (११) प्रवासी की कहानी है ।

दक्षिण अफ्रीका मे भारतीयो के एक ही परिवार के विभिन्न व्यक्तियों को अंग्रेजी मे बातचीत करते देखकर हिन्दी का व्यापक प्रचार करने का उन्होंने बीड़ा उठाया । भारत मे रहते हुए कलकत्ते के हिन्दी पत्रकार सम्मेलन, कानपुर में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की अध्यक्षता में हुए हिन्दी साहित्य सम्मेलन के

(शेष पृष्ठ ११ पर)

महात्मा गांधी और ईसाई मिशनरियां

—डा० कमल किशोर गोयनका
ए-९८, अशोक विहार, दिल्ली-५२

ईसाई मिशनरियों ने जिस प्रकार हिन्दुओं को ईसाई बनाने का प्रयत्न किया है और जो अब भी चल रहा है, वह निश्चय ही हम सभी के लिए घोर चिन्ता की बात है। महात्मा गांधी ने भी ईसाई मिशनरियों के धर्मान्तरण के प्रति घोर चिन्ता व्यक्त की है तथा उनके अमानवीय, अधार्मिक तथा असहिष्णुता पूर्ण क्रिया कलापों और दया सेवा के द्वारा हिन्दुओं के धर्म-परिवर्तन की कटु आलोचना की है। यहाँ महात्मा गांधी के कुछ विचारों को प्रस्तुत किया गया है जिससे राष्ट्रपिता के विचारों को सामने रखकर ईसाई मिशनरियां अपना आत्मालोचन करें और केवल मानव-सेवा तक को स्वयं सीमित रखें। महात्मा गांधी के इन विचारों से हम समझ सकते हैं कि उन्होंने ईसाई मिशनरियों द्वारा किये जाने वाले धर्मान्तरण को कितनी गम्भीरता से लिया था और उनसे दुष्प्रवृत्तियों को छोड़ने का आह्वान किया था।

हिन्दू धर्म

मेरा हिन्दू धर्म सर्वग्राही है वह मुसलमान विरोधी, ईसाई विरोधी या किसी अन्य धर्म का विरोधी नहीं है, बल्कि वह मुसलमान पक्षी, ईसाई पक्षी और संसार के हर अन्य जीवित धर्म के पक्ष में है। मेरे लिए हिन्दू धर्म उसी मूल के तने की एक शाखा है जिसकी जड़ों और जिसके गुण का अन्दाजा हमें केवल विभिन्न शाखाओं के एक साथ होने पर उनके सामूहिक बल और गुण से होता है यदि मैं हिन्दू शाखा की, जिस पर मैं टिका हूं और जो मेरा पोषण करती है, फिक्र करता हूं, तो मैं निश्चय ही उसकी बहुत अन्य शाखाओं की भी फिक्र करता हूं। यदि हिन्दू शाखा विषाक्त हो जाती है, तो दूसरी शाखाओं में भी विष फैल सकता है। यदि वह शाखा सूखने लगती है, तो उसके सूखने से मूल तना भी कमजोर होगा ही।

('बाम्बे क्रानिकल', २९ नवम्बर, १९३२)

यह (हिन्दू धर्म) न केवल पृथ्वी के चारों कोनों के पैगम्बरों की शिक्षाओं के प्रति सहिष्णु है, बल्कि उन्हें आत्मसात् भी करता है।

(४ नवम्बर, १९३२)

हिन्दुत्व के द्वारा मैं ईसाई, इस्लाम और कई दूसरे धर्मों से प्रेम करता हूं। यह छीन लिया जाय तो मेरे पास रह ही क्या जाता है?

जवाहर लाल नेहरू को लिखे पत्र से, २ मई १९३३)

ईसा मसीह ही जन्मना ईश्वर के पुत्र नहीं

इस वचन (सेंट जान ३ १६) को मैं अक्षरश सत्य नहीं मानता कि केवल ईसा मसीह ही जन्मना ईश्वर के पुत्र हैं। ईश्वर किसी एक का ही पिता नहीं हो सकता और न यह हो सकता है कि देवत्व का आरोप मैं केवल ईसा में ही करूं। उनमें भी वैसा ही देवत्व है जैसा कृष्ण या राम मुहम्मद या जरदुश्त में है। इसी प्रकार जैसे मैं 'वेदों' या 'कुरान' के प्रत्येक शब्द को दिव्य नहीं मानता, वैसे ही 'बाइबिल' के भी हर शब्द को दिव्य नहीं मानता। हाँ, इन ग्रन्थों का सार अवश्य ही दिव्य है लेकिन अगर इनके वचनों को अलग-अलग देखता हूं तो उनमें बहुत से वचन ऐसे निकल आते हैं जिनमें मुझे कुछ भी दिव्य दिखाई नहीं देता। 'बाइबिल' भी उसी तरह का एक धर्म ग्रन्थ है जिस तरह 'गीता' और 'रामायण'।

इसीलिए मेरे मन में ऐसा कोई ख्याल नहीं है कि मैं आपको ईसाई धर्म से विमुख कर के हिन्दू बना लूं, और अगर आप मुझे ईसाई बनाने को सोचें तो वह बात भी मुझे अच्छी नहीं लगेगी। मैं आप के इस दावे का भी विरोध करूंगा कि एक मात्र सच्चा धर्म ईसाई-धर्म ही है। यह बात जरूर है कि यह भी एक अच्छा और उदात्त धर्म है और मनुष्य को नैतिक रूप से ऊपर उठाने में अन्य धर्मों के साथ-साथ इसने भी योगदान किया है, लेकिन अभी इसे इससे भी बड़ा योगदान देना है। किसी धर्म के इतिहास में २००० वर्ष का काल तो कुछ होता ही नहीं है। आज तो व्याकुल मानवता के सामने ईसाई-धर्म दूषित रूप में ही पेश किया जा रहा है। जरा सोचिये तो कि बड़े-बड़े पादरी ईसाई धर्म के नाम पर हत्या और रक्तपात का समर्थन करें, यह कैसी बात है।

('हरिजन', ६ मार्च, १९३७)

ईसाई मिशनरियां

ईसाई मिशनरियों से झगड़ा इस बात पर है कि वे समझते हैं ईसाई धर्म के अलावा और कोई धर्म सच्चा नहीं है।

(२५ फरवरी १९३९

मनुष्यों के माध्यम से कराये जाने वाले धर्म परिवर्तन में मैं विश्वास नहीं करता। दूसरों को अपने धर्म में लाने का उनका (मिशनरियों का) प्रयास कोरा दम्भ ही है। ईश्वर के पास पहुँचने के ईश्वर के तई तो उतने ही मार्ग हैं जितने कि संसार में मानव प्राणी हैं।

(एक अमेरिकी मिशनरी से भेंट वार्ता में १८ अप्रैल, १९३४)

मिशनरियों ने 'जैसा देश, वैसा भेष' वाली कहावत नहीं, सीखी है। वे अपने दैनिक जीवन में हर बात में पश्चिम का ही अनुकरण करते हैं और यह भूल जाते हैं कि वस्त्र तथा भोजन और जीवन-चर्या जलवायु और आस पास के वातावरण के अनुरूप होनी चाहिए और इसलिए उनमें तदनुसार परिवर्तन करना जरूरी है। दिल जीतने के लिए झुकना होता है, जो उन्होंने नहीं किया है। फलत पारस्परिक अविश्वास की खाई बनी हुई है और चिकित्सा के क्षेत्र में काम करने वाले मिशनरियों और यही कार्य करने वाले भारतीयों में सहज सम्पर्क नहीं है।

(मिशनरी डा० चेस्टरमैन से,' हरिजन' २५ फरवरी, १९३९)

धर्मान्तरण-असहिष्णुता-जो एक प्रकार की हिंसा है

यह मानना कि आपका धर्म दूसरे धर्मों से श्रेष्ठ है, और दूसरों से अपना धर्म छोड़कर आपके धर्म में आ जाने के लिए कहना न्याय संगत है, यह असहिष्णुता की पराकाष्ठा है और असहिष्णुता एक प्रकार की हिंसा है।

('हिन्दुस्तान टाइम्स', ५ मई, १९३८)

विकृति तो चर्च में है—

विकृति तो चर्च में है, जिसका यह ख्याल है कि कुछ ऐसे लोग हैं जिनमें कुछ चीजों की कमी है और वे चीजें आप उन्हें जरूर देंगे, चाहे उन्हें उनकी जरूरत हो या न हो। अगर अपने मरीजों से यह कहें कि 'मैंने तुम्हें जो दवा दी उसका तुमने सेवन किया है। ईश्वर की कृपा है कि उसने तुम्हें चंगा कर दिया, अब यहाँ न आना' तो आपने अपना फर्ज अदा कर दिया, लेकिन इसके साथ अगर आप यह भी कहती हैं कि 'कितना अच्छा होता, अगर ईसाई धर्म में आपकी वैसी ही श्रद्धा होती जैसी कि मेरी है', तो आप अपनी औषधियां निष्काम भाव से नहीं देती।

(महिला ईसाई मिशनरियों से बातचीत में, 'हरिजन', १८ जुलाई, १९३६)

मन से दुराव निकाले

आप लोग (मिशनरी) यह भूल जायें कि हम धर्मशून्य नागरिकों के देश में आये हैं, और ऐसा विचार रखें कि ये लोग भी हमारी तरह ईश्वर की खोज में हैं, आप यह महसूस करें कि हम इन लोगों के देश में अपने धर्म का दान करने नहीं जा रहे हैं, पर आपके पास सांसारिक सुख सम्पत्ति का जो खजाना है, उसमें आप इन्हें भी हिस्सा देंगे। तब आप अपने मन में दुराव रखे बगैर अपना काम करेंगे, और इस तरह आपके पास जो आध्यात्मिक धन होगा, उसमें भी आप इन लोगों को हिस्सा देंगे। आपके मन में ऐसा दुराव है, इसी बात की जानकारी आपके और मेरे बीच भेद की दीवार खड़ी करती है।

(महिला ईसाई मिशनरियों से, 'हरिजन' १८ जुलाई, १९३६)

धर्मान्तरण ईसाई धर्म को नीचे गिराता है

सर्वथा अज्ञ और भोले-भाले लोगों के सामने उनका धर्म बदलने की बात करना मुझे बहुत बुरा लगता है अगर कोई मुझ से ऐसी बात करे और वास्तव में मुझ से ऐसी बात की भी जाती रही है—तो इसे शायद मैं किसी तरह ठीक भी मान लूं। कारण, वे अपनी बात मुझ से तर्क पूर्वक कह सकते हैं, लेकिन हरिजनों से ऐसी चर्चा चलाना मुझे निश्चय ही बहुत बुरा लगता है। अगर कोई ईसाई किसी हरिजन के पास जाकर कहे कि केवल ईसा मसीह ही जन्मना ईश्वर के पुत्र थे तो वह उसे विस्फारित नेत्रों से देखता ही रह जायेगा। और वह उससे इतना ही नहीं कहता, ऊपर से तरह-तरह के प्रलोभन भी देता है। यह बात ईसाई-धर्म को नीचे गिराती है।

(डा० क्रेन से बातचीत में, 'हरिजन' ६ मार्च, १९३७)

सामूहिक धर्म परिवर्तन—खोटे सिक्के

अगर कोई आदमी डर से, जोर जबरदस्ती से, भूख से या कुछ रुपये-पैसे के लालच में आकर दूसरे धर्म में चला जाता है तो उसे हृदय-परिवर्तन का नाम नहीं दिया जा सकता।

हम सामूहिक धर्म-परिवर्तन के जिस

(शेष पृष्ठ ११ पर)

यह मानवता से अन्याय कब तक सहन करोगे ?

—ब्र० आर्य नरेश, वैदिक प्रवक्ता
४६, ज्ञान सदन, माडल बस्ती, दिल्ली

तथाकथित जातिवाद एवम् छुआछूत ने भारत तथा भारतीय संस्कृति की अब तक जितनी हानि की है उतनी शायद किसी ने नही की जलता हुआ गुजरात इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। वैदिक दर्शन के अनुसार कोई भी व्यक्ति जन्मजाति से छोटा अथवा बडा न होकर कर्मों से ही होता है। जैसे कोई व्यक्ति जन्म से प्रिंसिपल, कैप्टन व कैशियर नही हो सकता वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य व शूद्र भी नहीं।

परन्तु आज भी भारत के अनेक ग्रामों मे शूद्र न तो मन्दिरों में जा सकते हैं और न ही कुओं पर पानी ही भर सकते हैं। शूद्र को हरिजन की संज्ञा देने से न तो समस्या कभी सुलझी है और न ही सुलझ सकती है। सरकार को विचारना चाहिए कि क्या श्री जगजीवन राम का परिवार अब भी हरिजन है। और आरक्षण का अधिकारी है? साथ-साथ सरकार को यह भी विचार करना चाहिए कि अब तक सरकारी सहयोग प्राप्त करने के ३७ वर्ष पश्चात् कितने हरिजन परिवार हरिजन पन को छोड कर ऊपर की की रेखा मे आये हैं। जिन्होंने अब अपने पैरों पर खड़ा होना सीख लिया है तथा वे सरकारी सहायता नही ले रहे।

शास्त्र में शूद्र को चतुर्थ वर्ण होने से 'आर्य' कहा गया है। शूद्र का अर्थ अछूत व अधर्मा किसी शास्त्र में नही लिखा। न ही शूद्रों को नशा, मांस, शराब, जुआ तथा गन्दे कार्यों में लगे रहकर अपने आर्य धर्म से गिरना चाहिए। उन्हे शीघ्र बौद्धिक व आर्थिक उन्नति करके व्यापारी, सेनानी व विद्वान् बन कर शूद्रता व आरक्षणता से मुक्ति लेनी चाहिए।

शूद्र का अर्थ ऐसे धार्मिक देश भक्त आर्य से है जो पढाने से भी ज्ञानी विशेष न हो सकने से सेवा कार्य करता है। अर्थात् आजकल की भाषा मे उसे फोर्थ क्लास भी कह सकते हैं। यजुर्वेद ३१।११ में वर्ण व्यवस्था गुण कर्म से मानी है।

क्या कभी फोर्थ क्लास वालों को अछूत समझना चाहिए? यदि नही तो फिर शूद्र को क्यों? शूद्र का वास्तविक अर्थ (शु-शीघ्र-द्र अनुसरण) शीघ्र अनुसरण करने वाला जो कि नम्रता एवम् सेवा भावना से राष्ट्र के विद्वानों, सेना-अध्यक्षों तथा राष्ट्र पालक व्यापारियों का सहयोगी होकर देश को उन्नत करें।

परन्तु खेद है कि इस वैज्ञानिक युग में भी कुछ लोग वेद एवं दर्शन से विरुद्ध पौराणिक अन्धविश्वासों को पकडे हुए हैं। गत दिनों एक पौराणिक सनातनी पण्डित स्व० श्री करपात्री जी द्वारा प्रकाशित 'वेद पारिजात" नाम के ग्रन्थ मे दूसरे भाग के पृष्ठ १९२४ से २१४१ तक निम्न बातें लिखी हैं—

(१) शूद्रों एवं स्त्रियों को वेद पढने का अधिकार नही।

(२) स्त्रियों का घोडों से विवाह

(३) विधवा होने पर स्त्री को सती होना चाहिए।

(४) यज्ञों में पशु बलि तथा बाल विवाह उचित है।

इसके साथ ही 'मीमासान्याय प्रकाश' के पूर्वार्द्ध में लिखा है कि स्त्री और शूद्र को वेद पढने का अधिकार नहीं है। गौतम धर्म सूत्र ११-४ में लिखा है कि यदि वे वेद को सुन लें अथवा बोल दें तो उनके कान मे गर्म रांगा भर दें तथा जिह्वा को काट दे ऐसी ही मानवता विरुद्ध बातें शंकर साहित्य व सायण तथा महिधर के वेद भाष्य में भी हैं। यह विद्वानो के लक्षण नहीं।

ध्यान रहे कि जब तक पौराणिक ग्रन्थों में 'यास्क' आदि प्राचीन ऋषियों से विरुद्ध यह बातें रहेंगी तब तक न तो हिन्दू जाति एक हो सकेगी और न ही विधर्मी होने से बच सकेगी। मनुस्मृति १० ६५ से शूद्र भी ब्राह्मण हो सकता है।

धर्म प्रेमी सज्जनों को यह जानना आवश्यक है कि यजुर्वेद २६-२ में स्त्री और शूद्रों को वेद पढने का अधिकार दिया गया है। छा० उपनिषद् ४-१ में 'जानश्रुति' नाम के शूद्र का 'रैक्यमुनि' से वेद पढने की चर्चा और बृहदा० उपनिषद् के तीसरे अध्याय में वेदज्ञा गार्गी द्वारा याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ करने की बात लिखी है। शास्त्र में स्त्री को भी जनेऊ का अधिकार है।

हिन्दुओ! विचारो कि तुम कैसे बचोगे! तुम्हारे घरों में साथ बैठ कर 'कुत्ता' तो भोजन वस्त्र व तुम्हारे हाथ से स्नानादि को प्राप्त कर सकता है। परन्तु एक इन्सान कहलाने वाला व 'शूद्र' नहीं!!!

अत हमारा सनातनी पौराणिक सभी पण्डितों से नम्र निवेदन है कि इन ग्रन्थों में शीघ्र संशोधन करके शूद्रों तथा स्त्रियों के प्रति उगले गये विष को निकाल कर शूद्रों को धर्म परिवर्तन से बचायें।

परस्पर को फूट को समाप्त करके एकता व शान्ति लाने के विषय में शीघ्र उन्नति चाहने के लिए यह परम आवश्यक है कि भारत सरकार अपने सभी प्रकार के कार्यों पदो व चुनावों के लिए जाति को 'आधार' न बनाकर आर्थिक स्थिति तथा योग्यता को ही आधार बनाये। और इसके साथ-साथ चुनावों व अन्य क्लास फोर से लेकर राष्ट्रपति तक के कार्यों में सलग्न लोगों का नियम पूर्वक उपजाति सूचक शब्दों के प्रयोग पर कठोर प्रतिबन्ध लगाये।

यदि ऐसा कदम शीघ्र न उठाया गया तो सारा राष्ट्र गुजरात बन कर जल उठेगा और एक भारतीय दूसरे भारतीय के खून का प्यासा हो जायेगा। हम यहां यह बता देना चाहते हैं कि एक ओर तो तथाकथित धर्मान्धता के कारण वेद विरुद्ध ग्रन्थों ने तथा धर्मध्वजी लोगों ने फूट को पैदा किया है और दूसरी ओर सरकार ने इसका गलत समाधान करके भी लोगों में कम फूट नही पैदा की है। बिना योग्यता के सरकार पदोन्नति व आरक्षण के अधिकार दिये जाने से जो व्यक्ति योग्य होते हुए भी ऊपर नही उठ पाते वे ऊपर उठे हुए उन अयोग्यों से कभी भी सद्भावना नही बना पाते। इस बात के जिंदा उदाहरण भारत के कई विद्यालय, महाविद्यालय चिकित्सालय व अन्य सस्थान हैं जहा कार्य करने वाले अधिकारी अथवा अनुचर आपस में झगडते रहते हैं और उनके परस्पर तालमेल न होने से सारे विभागों व सस्थान का भट्टा बैठ जाता है।

अत सरकार को चाहिए कि योग्यता के अनुसार न्यायोचित अधिकार दे, लोगों को चाहिए कि वे वेदानुसार चल कर सबसे अपने आत्मा के तुल्य आदर व प्यार दें और देश के पौराणिक विद्वानो को चाहिए कि वे भेद-भाव पैदा करने वाली उन वेद विरुद्ध बातो को ग्रन्थो से निकलवा कर सर्वत्र मानवता का प्रचार करें तथा सभी स्थानो पर योग्यतानुसार सब को परमात्मा का पुत्र समझ कर आने जाने का अधिकार दें।

यदि देश की युवा पीढी जाति-पाति प्रान्तवाद तथा छुआछूत एवं दहेज की कुप्रथा को छोडकर आर्यसमाज के सहयोग से वैदिक-विधि के अनुसार स्वयंवर विवाह करें तो राष्ट्र शीघ्र संगठित एव उन्नत होगा। ☐

वाणी का वरदान

हर प्राणी को वाणी का, मिला हुआ वरदान है।
पर पाकर वाणी सार्थक, मनुज ही रखता शान है॥
वाणी को ही समझो तुम, ज्ञान बढ़ाने वाली।
ज्ञान प्रसारण ईश्वर का 'वेद-वाणी' करने वाली॥
इस की मधुता से हिय में, जब रस प्रेम का बहता।
तभी जगत् मे हर कोई, सरस्वती इसे कहता॥
नई चेतना हर दिल में, भरता वाणी का ज्ञान है।
हर प्राणी को वाणी का मिला हुआ वरदान है॥
प्रसुप्त हृदय में यह वाणी, आलोक नया है भरती।
विराट् विश्व के अंधकार को, ये आलोकित करती॥
सरस्वती का यह प्रकाश, सब कार्यों मे दीखे।
बिन 'वाणी-ज्ञान' के यहाँ, व्यवहार लगे हैं फीके॥
व्यवहार श्रेष्ठता न होगी, तो 'रश्मि' ये अज्ञान है।
हर प्राणी को वाणी का, मिला हुआ वरदान है॥

मोहनलाल शर्मा 'रश्मि'
६०७/ए, फ्री लैण्ड गंज,
दाहोद (गुजरात)

समीक्षा—

आर्यसमाज के इतिहास की शृंखला में—

आर्यसमाज का इतिहास

(पंचम खण्ड)

भारत के पुनर्जागरण के आन्दोलनो में आर्यसमाज का स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। धर्म, समाज, राजनीति और सँस्कृति के क्षेत्र में उसके द्वारा भारत वर्ष को जो विशिष्ट सेवा हुई है, उसका विस्तृत मूल्यांकन इतिहासकारो ने किया है। एक बौद्धिक संस्था होने के कारण अपनी विचारधारा के प्रसार के लिये आर्यसमाज ने साहित्य लेखन के माध्यम को ही अपनाया। सस्कृत एव हिन्दी के अतिरिक्त भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओ तथा अग्रेजी जैसी सर्व मान्य विदेशी भाषा में आर्यसमाज ने विगत एक शताब्दी मे जिस महत्वपूर्ण साहित्य की रचना की है, वह कथ्य एव शिल्प दोनों ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत ग्रन्थ में आर्यसमाज के विचारों से अनुप्राणित आर्यसामाजी लेखकों एव साहित्यकारों द्वारा प्रणीत धार्मिक एव लौकिक साहित्य का व्यापक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है। दयानन्द सरस्वती ने स्वय ही अनेक महत्वपूर्ण ग्र थ लिख कर लेखन के क्षेत्र मे अपने अनुयायी जनों का मार्गदर्शन किया था। उनके पश्चात् सहस्रों लेखको ने स्व-प्रतिभा के बल पर आर्यसमाज द्वारा अनुमोदित वैदिक विचारधारा के प्रचार एव प्रसार के लिये किस प्रकार मसिजीवी बन कर सारस्वत सत्र की साधना की, इसकी विहगम झांकी दिखाना ही इस ग्रन्थ का प्रयोजन है।

इस ग्रन्थ की आधारभूत सामग्री का सकलन करने के लिये लेखक को जो अपार श्रम एवं साधना करनी पड़ी है उसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। उसने अपने दीर्घकालीन स्वाध्याय के द्वारा आर्य समाजिक वाङ्मय का जैसा तलस्पर्शी विवेचन किया है वह आलोच्य विषय में उसकी गहरी रुचि का परिचायक है। इसके अतिरिक्त आर्यसमाजो तथा अन्य आर्य सस्थाओं के पुस्तकालयों मे वर्षों में जमी धूल को झाड़ कर उसने उस ग्रन्थ सम्पदा को भी खोज निकाला है जिस पर समय को परतें जम गई थीं और जो साम्प्रतिक पाठकों की दृष्टि से ओझल हो चुका था। इस प्रकार आर्यसमाज के ज्ञान परक तथा रचनात्मक, शास्त्रीय एव लौकिक, कालजयी तथा प्रचारात्मक सभी प्रकार के साहित्य का विस्तृत लेखा जोखा उपस्थित करने वाला यह इतिहास इस आन्दोलन की सम्पूर्ण मनीषा का प्रतिफलन तो है ही, इस साहित्य के प्रणेता अनेक विख्यात, अल्पख्यात तथा सर्वथा अज्ञात साहित्यकारों की सारस्वत साधना का एक प्रामाणिक दस्तावेज भी है।

—भवानीलाल भारतीय
दयानन्द चेयर फार वैदिक स्टडीज
चण्डीगढ़

वेद रहस्य

लेखक एवं प्रकाशक श्री रामसिंह जी आर्य

१७ गांधीनगर, आगरा-३

जन साधारण वेद के प्रति श्रद्धा अवश्य रखता है। संस्कृत और वैदिक भाषा की अनभिज्ञता वेद के रहस्य को समझने में बाधक है इस लिए इस इस पवित्र ज्ञान से सम्पर्क टूट गया है। अपनी 'वेद रहस्य' पुस्तक में जो कि चार अध्यायों में विभक्त है, विद्वान लेखक ने अपने संपूर्ण स्वाध्याय मनन और चिन्तन के बल पर अत्यन्त सरल रूप मे वेद के जिज्ञासुओं के लिए प्रश्नोतर रूप में सम्पूर्ण विषय को और वैदिक सिद्धान्तों को तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। उत्तरार्ध में कुछ विशेष मन्त्रो की सुन्दर सरल व्याख्या भी इस ग्रन्थ का अगं है। यह ग्रन्थ प्रत्येक आर्य परिवार के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इससे वेद के प्रति श्रद्धा का भाव अवश्य जाग्रत होगा। भेंट के रूप में भी इस पुस्तक को अपने मित्रों और सम्बन्धियों को देने से वेद का प्रचार बढेगा, ऐसा हमारा विश्वास है। पुस्तक को उपरोक्त पते से प्राप्त किया जा सकता है।

लेखक को इस सुन्दर प्रयास के लिए बधाई।

प्रेमचन्द श्रीधर एम० ए०
३६/ई रणजीत सिंह मार्ग
आदर्श नगर, दिल्ली

जन्मपूर्व संस्कार और सन्तान

डा० धर्म देव शर्मा शास्त्री एम०ए०, पी-एच०डी०

प्राय: सभी माता पिता अपने परिवार में सुयोग्य उत्तम विचारों वाली सन्तान की इच्छा करते हैं किन्तु यह गुणवान् सन्तान जन्म पूर्व के संस्कारों पर विशेष ध्यान रखने पर तथा माता पिता के सुन्दर खान, पान, व्यवहार होने पर ही उत्पन्न हो सकती है।

वैदिक शास्त्रों में भी बालक के समुचित विकास को महत्ता देते हुए प्रसव पूर्व के संस्कारों को विशेष महत्त्व दिया है। अंग्रेजी भाषा में इन संस्कारों को प्रीनेटल (prenatal) नाम से पुकारा जाता है।

माता पिता द्वारा उत्तम संस्कारों से सुसंस्कृत होने पर उत्पन्न की गई सन्तान परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए लाभप्रद होती है। इन संस्कारों की छाप अमिट होती है जो आजीवन सुख और वैभव में भी सहायक है। शास्त्रों की भी यही मान्यता है कि सन्तान के बिना विशेषतया पुत्र के बिना गृहस्थाश्रम का उद्धार नही होता है। निरुक्त शास्त्र में भी पुत्र का अर्थ 'पु" नामक नरक से "त्र" त्राण करने वाला, किया है। अत: सभी गृहस्थी भगवान् से भी प्राय. पुत्र की याचना करते हैं और पुत्र सन्तान प्राप्त होने पर अपने आप का गृहस्थ-आश्रम का सौभाग्यशाली तथा स्वर्गगामी मानते हैं।

सन्तान अर्थात् पुत्र-पुत्री की उत्पत्ति माता पिता के पारस्परिक सयोग से होती है। उस समय दोनों को अपना खान, पान व्यवहार, मन तथा शरीर पवित्रता का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। मन, वचन और कर्म के भाव ही रज वीर्य द्वारा गर्भ में प्रवेश करते हैं।

अंग्रेजी विद्वान् गाल्टन लिखते हैं कि "माता पिता के रज, वीर्य में एक ऐसा तत्त्व होता है जो शरीर और मन के गुणों को लेकर सन्तान में पहुँचाता है जिससे सन्तान भी उन्हीं गुणों में रग जाती है। अनेक बार माता पिता को आकृति, रंग रूप सन्तान में न आकर अन्य परिवार जनों की अथवा समीप दूर के लोगों की आकृति व गुण आ जाते हैं। ये विचार अमिट होते हैं और समय-पर अपने अच्छे या बुरे प्रभाव दिखाते रहते हे। इस सम्बन्ध में स्पष्ट प्रमाण है कि 'जैसा बीज होगा वैसा ही पौधा उत्पन्न होगा'। इतिहास में भी इस प्रकार मिलता है कि अर्जुन और सुभद्रा द्वारा अभिमन्यु को गर्भ में पराक्रम और वीरता की शिक्षा दी गई। इसी प्रकार मदालसा द्वारा मन की इच्छानुसार ब्रह्मर्षि तथा क्षत्रिय पुत्र उत्पन्न करना, अष्टावक्र का गर्भ में ही वेदान्त पढ़ना, नैपोलियन का महान् योद्धा बनना भी जन्म पूर्व के संस्कारों का प्रभाव है।

आजकल वैज्ञानिकों ने जीन्स द्वारा सन्तान उत्पन्न करने का ढंग निकाला है किन्तु इसका प्रयोग विशेष उपकरणों के माध्यम से प्रयोगशालाओं (Laboratories) में ही हो सकता है। संस्कारों के माध्यम से डाला जाने वाला प्रभाव अपने हाथ का है। इसके लिए कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं। घर में ही माता-पिता अपना सुन्दर आचरण और मन बनाकर सस्कारों के माध्यम से प्रभाव डाल सकते हैं।

जन्म पूर्व संस्कारों के सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य स्मृति मे उल्लेख मिलता है

एवमेन: शम याति
बीजगर्भसमुद्भवम्।
तूष्णीमेता: क्रिया:
स्त्रीणां विवाहस्तु मन्त्रक: ॥

अर्थात् जन्म पूर्व के सस्कारों के सम्पादन से गर्भ में रज वीर्य द्वारा उत्पन्न होने वाले पाप की शान्ति होती है। ये क्रियाएं घर में स्त्री पुरुष द्वारा सम्पन्न होती हैं किन्तु विवाह सस्कार मन्त्रों द्वारा विधि से किया जा सकता है।

स्वामी दयानन्द जी ने भी जन्म पूर्व के संस्कारों को अत्यधिक महत्त्व देते हुए समस्त गृह्यसूत्रों व स्मृतियों का गूढ़ आलोडन करके अपनी कृति संस्कार विधि में जन्म से पूर्व गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयनम् संस्कारों का वर्णन प्रस्तुत किया है। वे भी इस बात को पूर्णरूपेण सिद्ध करते हैं कि "मानव के सर्वतोमुखी विकास में जन्म पूर्व के सस्कार एक सीढ़ी (ऊपर चढने का साधन) हैं।"

सुयोग्य सन्तान को दृष्टिगत रखते हुए पं० विष्णु शर्मा अपनी कृति पञ्चतन्त्र में लिखते हैं कि

(शेष पृष्ठ ११ पर)

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्त्वावधान में २ से ९ फरवरी १९८६ तक आयोजित

आर्य युवा महासम्मेलन अभूतपूर्व सफलता के साथ सम्पन्न

नई दिल्ली ९ फरवरी १९८६

आज की युवा पीढ़ी में राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता की भावना जागृत करने की महती आवश्यकता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि राष्ट्र के कल्याण के लिए विज्ञान की उन्नति के लिए, धर्म की रक्षा के लिए अथवा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए बलिवेदी पर बलिदान होने वाले वीरों में युवाओं की संख्या ही सर्वाधिक रही है। आर्यसमाज और आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इसी लक्ष्य को सामने रखकर राष्ट्र के कल्याण के लिए कार्य किया है। युवा शक्ति ही भविष्य को नया मोड़ देने में सक्षम है। श्री राजीव गांधी के प्रधानमन्त्री बनने पर असन्तुष्ट युवाओं में संतोष की लहर जगी है। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा ने एक सप्ताह का आर्य युवा महासम्मेलन आयोजित किया जिसमें खेलकूद, वाद-विवाद, भाषण, चित्रकला, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि के माध्यम से उनकी मौलिक प्रतिभाओं को विकसित किया। मुझे पूर्ण आशा है कि कल के नागरिक यह युवा बच्चे देश को प्रगति के सोपान पर अग्रसर करने में सक्षम हो सकेंगे। यह उद्‌गार केन्द्रीय इस्पात और खान मंत्री श्री कृष्ण चन्द्र पन्त ने, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान माननीय लाला रामगोपाल शालवाले की अध्यक्षता में नेशनल स्टेडियम, नई दिल्ली में आयोजित पुरस्कार वितरण समारोह में व्यक्त किए। अपने अध्यक्षीय भाषण में लाला रामगोपाल जी शालवाले ने कहा कि राष्ट्र की एकता व अखण्डता की रक्षा के लिए भटकी युवा शक्ति को सही मार्ग दिखाने के लिए यह आर्य युवा महासम्मेलन का आयोजन, मुझे आशा है कि अपने अभीष्ट को अवश्य प्राप्त करेगा। इस अवसर पर आर्यवीर दल के प्रधान संचालक श्री बाल दिवाकर जी हंस संसद सदस्य श्री रामचन्द्र विकल, प्रधानाध्यापिका श्रीमती वृजबाला भल्ला तथा प्रान्तीय महिला सभा की मंत्री श्रीमती प्रकाश आर्या, केन्द्रीय सभा के प्रधान श्री महाशय धर्मपाल जी, रतनचन्द जी सूद, श्री सत्यानन्द आर्य तथा श्री लाला इन्द्रनारायण जी ने भी बच्चो का उत्साहवर्धन किया। इस अवसर पर २८ स्कूलों के बच्चों ने विभिन्न प्रतियोगिताओं में भाग लिया और ७५ बच्चों को पुरस्कृत किया गया।

आर्य युवा महासम्मेलन के उपलक्ष्य में विभिन्न विद्यालयों में ३ से ९ फरवरी तक आयोजित विभिन्न कार्यक्रमों में विजयी आए छात्र/छात्राओं के नाम

१. ३।२।८६ भाषण प्रतियोगिता ६ से ८ प्रथम . मनोज टंडन, सहदेव मल्होत्रा स्कूल, पंजाबी बाग, द्वितीय विनय बिनव, केन्द्रीय विद्यालय, जनकपुरी, तृतीय शालू, बिरला आर्य कन्या सीनियर स्कूल, बिरला लाइन्स।

९ से १२ प्रथम जितेन्द्र, सहदेव मल्होत्रा स्कूल, पंजाबी बाग, द्वितीय : पूनम बिरला आर्य कन्या स्कूल, बिरला लाइन्स।

१ से ५ प्रथम · अजय, आर्य पुरुषार्थी बालक पाठशाला, चूनामण्डी पहाड़गंज द्वितीय : देवेन्द्र······वही·· ···तृतीय कु० रीमा,······वही······(बालिका)

प्रथम : कु० रीतू शर्मा, आर्य पुत्री पाठशाला, गांधीनगर, द्वितीय : कु० नीतू, ······वही······ तृतीय : श्री विजय कुमार,··· · वही······

प्रथम : श्री रोहित, रतनचन्द आर्य पब्लिक स्कूल, सरोजनी नगर, द्वितीय : श्री इन्द्रभूषण, डी ए वी माडल स्कूल, आर०के० पुरम सेक्टर–५, तृतीय · श्री राकेश ······वही······

प्रथम : कु० रवीन्द्र कौर, आर्य आदर्श विद्यालय, आदर्श नगर, द्वितीय : तरुण अर्जुन मेहदीरत्ता,···· वही······तृतीय : दीपक मुकेश बंसल,······वही······

(कक्षा १ से ३) स्पेशल प्रथम . दीपा आर्या,······वही······द्वितीय : कामिनी,······वही······ तृतीय : नीतू आहूजा ···· वही······

२. ४।२।८६ निबन्ध लेखन . १ से ५ प्रथम प्रीति महाजन, डी० ए० वी० माडल स्कूल, प्रीतमपुरा, द्वितीय : आशीष, कमल, डी०ए०वी० माडल स्कूल, प्रीतमपुरा।

६ से ८ प्रथम : शालू, बिरला आर्य कन्या स्कूल, बिरला लाइन्स, द्वितीय : कोकिला, डी०ए०वी० माडल स्कूल, प्रीतमपुरा, तृतीय : वन्दना, बिरला आर्य कन्या स्कूल, बिरला लाइन्स।

९ से १२ प्रथम : वीना, बिरला आर्य कन्या स्कूल, द्वितीय : पूनम,······ वही·····

१४ कक्षा स्पेशल प्रथम : संगीता, आर्यसमाज बिरला लाइन्स

५।२।१९८६ वाद-विवाद प्रतियोगिता : कक्षा १ से ५ प्रथम : कु० मोनिका शर्मा, रतनदेवी कृष्णनगर, द्वितीय . कु० अजनी शर्मा,······वही ····

६ से ८ प्रथम : कु० मोनिका, रतनदेवी आर्य कन्या स्कूल, कृष्णनगर, द्वितीय : कु० दीपा शर्मा,··· वही·· ···

९ से १२ प्रथम : कु० विभा ·····वही·· ···द्वितीय कु० मजू वही

६।२।८६ सांस्कृतिक कार्यक्रम १ से १२ प्रथम सुनीता वर्मा, सोनिया मल्होत्रा, सुधा विधा, बालप्रीत बधवा सरीता शर्मा रीकूमोण्टरी दयानन्द माडल स्कूल, विवेक विहार, द्वितीय बबीता शर्मा, रीमा मल्होत्रा, आशा खन्ना, कंचन छिब्बर, शर्मीला जैन, मोनिका कपूर, रतनदेवी आर्य कन्या सीनियर स्कूल, कृष्णनगर, तृतीय कु० मधुलिका, आरती, मधु बत्रा, अनुपमा, अंजुबाला, मोनिका आर्य पुत्री पाठशाला, गांधीनगर।

[सतभावां स्कूल] प्रथम सतभावां आर्य कन्या महाविद्यालय करौलबाग, द्वितीय : डी०ए०वी० माडल स्कूल, प्रीतमपुरा, तृतीय . डी० ए० वी० माडल बाल-विद्यालय, आर०के० पुरम सेक्टर-५

३. चित्रकला प्रतियोगिता . १ से ५ प्रथम · सोरभ, डी०ए०वी० माडल स्कूल, आर. के. पुरम सेक्टर-५, द्वितीय . इन्द्र भूषण·· ·· वही·· · तृतीय पूजापुंज, रघुमल आर्य कन्या स्कूल, राजा बाजार।

६ से ८ प्रथम : रेखा वर्मा, रघुमल स्कूल, राजा बाजार, द्वितीय . राजीव कुमार, दयानन्द माडल स्कूल, विवेक विहार, तृतीय : कु० नीलम अरोड़ा, दयानन्द माडल स्कूल, विवेक विहार।

९ से १२ प्रथम बलविन्द्रसिंह ए०एस०बी०जे०डी० नियर स्कूल, दरियागंज, द्वितीय मनोज कुमार, ·····वही···· तृतीय नवदित्या, जीता, रघुमल आर्य कन्या स्कूल, राजा बाजार।

आर्य युवा महासम्मेलन, ८ फरवरी १९८६ नेशनल स्टेडियम में आयोजित खेल प्रतियोगिताओं में विजयी आए बच्चों की सूची

१—भाला फेंकना (बालक) १४ से १७ वर्ष, प्रथम : श्री ज्ञानसिंह, आर्य बालगृह पटौदी हाउस, द्वितीय . श्री मुकेश, आर्यवीर दल, गुरुकुल गौतमनगर, तृतीय श्री राजेश, आर्यवीरदल, शाहबाद।

२—भाला फेंकना (बालिका) १४ से १७ वर्ष प्रथम . कु० दामा, चन्द्र आर्य विद्या मन्दिर, सूरज पर्वत, द्वितीय कु० निशा, रघुमल आर्य कन्या सीनियर स्कूल, राजा बाजार, तृतीय : कु० प्रीति, रतनदेवी आर्य कन्या सीनियर स्कूल, कृष्णनगर।

३—चक्का फेंकना (बालक) १४ से १७ वर्ष, प्रथम श्री ज्ञानसिंह, आर्य बालगृह पटौदी हाउस, द्वितीय : श्री राकेश चावला, आर्यवीरदल, चूनामण्डी, तृतीय . श्री वेदप्रकाश, आर्यवीरदल गौतमनगर।

४—चक्का फेंकना (बालिका) १४ से १७ वर्ष, प्रथम कु० प्रीति अरोड़ा, रतनदेवी आर्य कन्या स्कूल, कृष्णनगर, द्वितीय . कु० हेमा बग्गा, रघुमल आर्य कन्या सीनियर स्कूल, राजा बाजार, तृतीय कु० मजू शर्मा, बिरला आर्य कन्या सीनियर स्कूल, बिरला लाइन्स।

५—ऊंची कूद (बालक) ११ से १३ वर्ष, प्रथम श्री राजेन्द्र, आर्यवीर दल, गुरुकुल गौतमनगर, द्वितीय : श्री राजेश्वर गुरुकुल गौतमनगर, तृतीय श्री जगमोहन दयानन्द माडल स्कूल, विवेक विहार।

६—ऊंची कूद (बालिका) ११ से १३ वर्ष, प्रथम . कु० जितेन्द्र, रतनदेवी आर्य कन्या स्कूल, कृष्णनगर, द्वितीय कु० सरस्वती, रघुमल आर्य कन्या स्कूल, राजा बाजार तृतीय : कु० रसना, चन्द्र आर्य विद्या मंदिर, सूरज पर्वत।

७—ऊंची कूद (बालक) १४ से १७ वर्ष, प्रथम : श्री अमरजीत, सहदेव मल्होत्रा स्कूल, पंजाबी बाग, द्वितीय : श्री रमेशचन्द्र, गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ, तृतीय श्री विद्यानिधि, आर्यवीर दल गुरुकुल, गौतमनगर।

८—ऊंची कूद (बालिका) १४ से १७ वर्ष, प्रथम कु० शशी नेगी, रघुमल आर्य कन्या स्कूल, राजा बाजार, द्वितीय : कु० मीनाक्षी, रघुमल आर्य कन्या स्कूल, राजा बाजार, तृतीय : कु० कुसुम चन्द्र आर्य विद्यामंदिर, सूरज पर्वत।

९—लम्बी कूद (बालक) १४ से १७ वर्ष, प्रथम : श्री अमरजीत सहदेव मल्होत्रा स्कूल, पंजाबी बाग, द्वितीय : श्री हुसरुद्दीन आर्यवीर दल गीता कालोनी, तृतीय . श्री राजीव कोहली, आर्यकुमार सभा, शाहदरा।

(शेष पृष्ठ १० पर)

समाचार सन्देश

आर्यसमाज विनय नगर (सरोजनी नगर) नई दिल्ली में वसंत मेला धर्मवीर हकीकत राय बलिदान दिवस

गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी अखिल भारतीय हकीकत राय सेवा समिति और आर्यसमाज सरोजिनी नगर नई दिल्ली की ओर से धर्मवीर हकीकत राय बलिदान दिवस-वसन्त मेला, रविवार १६ फरवरी, १९८६ को प्रातः ८.३० से दोपहर बाद १.३० बजे तक आर्यसमाज मन्दिर सरोजनी नगर, नई दिल्ली में बड़े समारोह पूर्वक मनाया गया। प्रातः ८.३० से १० बजे तक बृहद् यज्ञ व भजन हुए। १० से १२ बजे तक स्कूलों के बच्चों ने धर्मवीर हकीकत राय के जीवन पर ड्रामा, कविता, भाषण आदि आकर्षक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। १२ से १.३० बजे तक श्रद्धांजलि सभा हुई जिसमें लाला राम गोपाल शालवाले, प्रधान सार्वदेशिक सभा, श्री सूर्यदेव जी प्रधान दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती व अन्य आर्य नेता व विद्वानों ने पधार कर वीर हकीकत राय को श्रद्धांजलि अर्पित की। कार्यक्रम के अन्त में प्रीति भोज का प्रबन्ध किया गया था।

रोशनलाल गुप्त
मन्त्री

आर्य वीर दल बम्बई का मासिक शिविर

दल का मासिक शिविर दि० ९।२।८६ रविवार को दल के संचालक श्री गुलजारीलाल आर्य की अध्यक्षता मे आर्यसमाज कमाठीपुरा मे लगाया गया। जिसमें आर्य वीरो को सैनिक शिक्षा, योगासन, व्यायाम और कराटे का शारीरिक शिक्षण दिया गया तथा बौद्धिक शिक्षण मे वैदिक धर्म की मान्यताओं के साथ देशभक्ति से आर्य वीरो को अवगत कराया।

इस शिविर की महत्त्वपूर्ण विशेषता शोभा यात्रा का सफल आयोजन था जिसमे आर्यसमाज कमाठीपुरा और आर्यसमाज बम्बई (काकड़वाडी) के समस्त पदाधिकारियो ने अपने प्रचार वाहन के साथ कमाठीपुरा की भीड़ भरी उपेक्षित बस्ती में घूम घूमकर सारे क्षेत्र को आर्यसमाज अमर रहे, वैदिक धर्म की जय के नारों से गुंजायमान बना दिया। डा० अजीत सिंह आर्य और डिट्ठी नारायण आर्य ने शोभा यात्रा को सफल बनाने का महत्त्व पूर्ण कार्य किया।

जिन शिक्षकों ने शिविर का कार्य संभाला उनमें प्रो० वेंकटराव जी, श्री ओ३म प्रकाश आर्य, त्रिभुवन सिंह आर्य और मास्टर रवि कुमार आर्य प्रमुख थे। पं० रामस्वरूप आर्य और पं० नरेन्द्र कुमार आर्य ने अपने मधुर भजनों से शिविर का वातावरण संगीत मय बनाये रखा। आर्य वीर दल महाराष्ट्र के मन्त्री अम्बालाल पटेल ने सभी का आभार व्यक्त किया।

भवदीय
ओ३म प्रकाश आर्य
मन्त्री, आर्य वीर दल, बम्बई

आवश्यक सूचना

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा साप्ताहिक (रविवार) सत्संगों के लिए उपदेशक भेजे जाते हैं। उनकी व्यवस्था आजकल प० ओमवीर शास्त्री जी कर रहे हैं व उनका मिलने का समय सायकाल ५ बजे से ७ बजे का है आप उनको फोन द्वारा सम्पर्क करना चाहें तो सायकाल ५ से ७ बजे तक ३१०१५० पर कर सकते हैं तथा पत्र व्यवहार करें। और रात ९ बजे से साढ़े पाँच बजे तक फोन २० ६६२६७७ पर सम्पर्क कर सकते हैं। आशा है सभी उपदेशक महोदय और आर्य बन्धु उपरोक्त लिखे अनुसार ध्यान रखेंगे।

नोट विशेष कार्यक्रमों, कथा, वार्षिकोत्सवों के लिए वेदप्रचार अधिष्ठाता को ही लिखें।

स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती

शोक प्रस्ताव

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के समस्त अधिकारियो, कार्यकर्ताओं की एक शोक सभा, सभा कार्यालय में हुई, जिसमें सुप्रसिद्ध दानवीर, समाजसेवी श्री गणेश दास अग्निहोत्री जी के आकस्मिक देहावसान पर शोक व्यक्त किया गया। सभी सदस्यों ने दो मिनट का मौन रखकर दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए प्रभु से प्रार्थना की गई। उनके वियोग में दुःखी पारिवारिकजनों तथा इष्टमित्रों को महान दुःख को सहन करने की प्रभु शक्ति प्रदान करे।

(डा० धर्मपाल)
महामन्त्री

ईसाई नर-नारी···

(पृष्ठ १ का शेष)

प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली के प्रधान श्री रामगोपाल शालवाले पूर्व ससद की अध्यक्षता में यहा एक विशाल वैदिक धर्म समारोह का आयोजन हुआ। जिसमें वैदिक धर्म समारोह का आयोजन हुआ। जिसमे वैदिक यति मण्डल के अध्यक्ष मूर्धन्य संन्यासी स्वामी सर्वानन्द जी महाराज स्वामी ओमानन्द सरस्वती महाराज तथा अन्य कर्मठ संन्यासी बड़ी संख्या में उपस्थित थे। भारत के अन्य प्रान्तों से पधारे हुए आर्यसमाज के प्रतिनिधियो और अधिकारियो ने इस समारोह में भाग लिया।

प्रचार वाहन द्वारा प्रचार कार्य

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा आजकल दोपहर १ बजे से २ बजे तक दफ्तर अवकाश के समय प्रचार वाहन द्वारा धूम धाम के साथ प्रचार हो रहा है जिसमें सभी उपदेशक महानुभाव संगीत कविताओं द्वारा श्रोता गणों का मनोरंजन करते हैं आर्यसमाज क्या है? स्वामी दयानन्द सरस्वती की महानता का परिचय देते हैं जिसमें हजारों की संख्या उपस्थित होती है। और दिल्ली से बाहर जाने के भी कार्यक्रम बनाये जा रहे हैं जहाँ सैकड़ों भूले भटके विधर्मियों को पुनः वैदिक धर्म में शुद्ध करके प्रवेश कराया जा रहा है सभी आर्य बन्धुओं से निवेदन है कि इस महान कार्य में दिल्ली सभा के लिए अपना पूर्ण सहयोग दें ताकि हम सभी संगठित होकर वैदिक धर्म प्रचार प्रसार में अग्रसर होते रहें।

स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती

आर्य युवा महासम्मेलन···

(पृष्ठ ९ का शेष)

१०—लम्बी कूद (बालिका) १४ से १७ वर्ष, प्रथम : कु० रेखा रघुमल आर्य कन्या स्कूल, राजा बाजार, द्वितीय : कु० यशोदा चन्द्र आर्य विद्या मंदिर, सूरजपर्वत तृतीय : कु० नानकी, बिरला आर्य कन्या स्कूल, बिरला लाइन्स।

११—लम्बी कूद (बालक) ११ से १३ वर्ष, प्रथम : श्री राजेश्वर, आर्यवीर दल, गौतम नगर, द्वितीय : श्री विकास ग्रोवर, सहदेव मल्होत्रा स्कूल, पंजाबी बाग, तृतीय : श्री विजयप्रताप, दयानन्द माडल स्कूल, विवेक विहार।

१२—लम्बी कूद (बालिका) ११ से १३ वर्ष, प्रथम : कु० अंशु गर्ग डी० ए० वी० माडल स्कूल, प्रीतमपुरा, द्वितीय : कु० मनीता रघुमल आर्य कन्या स्कूल, राजा बाजार, तृतीय : कु० अलका, रघुमल आर्य कन्या सीनियर स्कूल, राजा बाजार।

आर्य युवा महासम्मेलन, ९ फरवरी १९८६ नेशनल स्टेडियम में आयोजित कार्यक्रमों में विजयी हुए छात्र/छात्राओं के नाम

१—१०० मीटर दौड़ (बालक) ५ से १० वर्ष, प्रथम : श्री चक्रधर आर्यवीर दल, गौतमनगर, द्वितीय : श्री दमन, दयानन्द माडल स्कूल, विवेक विहार, तृतीय, श्री मनोज वत्स सहदेव मल्होत्रा पब्लिक स्कूल, पंजाबी बाग।

२—१०० मीटर दौड़ (बालिका) ५ से १० वर्ष, प्रथम : कु० सुलोचना रघुमल आर्य कन्या स्कूल, राजा बाजार, द्वितीय : कु० रीटा भारती·· ···वही······तृतीय : कु० संगीता दयानन्द आदर्श विद्यालय, तिलक नगर।

३ २०० मीटर दौड़ (बालक) ११ से १३ वर्ष, प्रथम : श्री नारायण, गुरुकुल गौतमनगर, द्वितीय : श्री इकबाल सिंह सहदेव मल्होत्रा स्कूल, पंजाबी बाग, तृतीय : श्री गजेश्वर आर्यवीर दल गौतम नगर।

४—२०० मीटर दौड़ (बालिका) ११ से १३ वर्ष, प्रथम : कु० अनिता, रघुमल आर्य कन्या स्कूल, राजा बाजार, द्वितीय . कु० अलका······वही······ तृतीय : कु० अलका शर्मा······वही······

५—४०० मीटर (बालक) १४ से १७ वर्षप्रथम : श्री सुशील, सहदेव मल्होत्रा स्कूल, पंजाबी बाग, द्वितीय . श्री बलवान सिंह, गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ, तृतीय श्री अरुण कुमार आर्यवीर दल, गौतमनगर।

६–४०० मीटर दौड़ (बालिका) १४ से १७वर्ष प्रथम : कु० राखी रघुमल आर्य कन्या स्कूल, राजा बाजार, द्वितीय : कु० सोनिया रतनदेवी आर्य कन्या स्कूल, कृष्ण नगर, तृतीय · श्री अनुपम डोगरा, आशा भारती, लाजपत नगर।

९ फरवरी को आयोजित पुरस्कार वितरण समारोह में निम्नलिखित महानुभावों/संस्थाओं की ओर से

प्रथम (शील्ड) द्वितीय (कप) तृतीय (मैडल) तीनों भव्य पुरस्कार एक-एक प्रतियोगिता के लिए दिए गये।

१. दक्षिण दिल्ली वेदप्रचार मण्डल, २. श्रीमती सत्यवती सूद, ३. श्री हरवंश सिंह खेर, ४. श्रीमती वीरांवाली भसीन, ५. श्री रतनलाल सहदेव, ६. श्री राकेश केला ७ लाला रामगोपाल शालवाले, ८. श्री चुन्नीलाल मेहता, ८. लाला इन्द्रनारायण, १० वैद्य प्रह्लाद दत्त, ११. महाशय चुन्नीलाल, ११. कुमारी विद्यावती, १३. श्री प्रियतम दास रसवन्त, १४. श्री मुंशी राम आर्य पुरस्कार, १५. माता चन्ननदेवी आर्य पुरस्कार, १६. श्री देवव्रत धर्मेन्दु पुरस्कार, १७. श्री देवीदयाल आर्य १८. श्री लालमन आर्य पुरस्कार, १८. श्री विशम्भर नाथ भाटिया पुरस्कार, २० ओमप्रकाश आर्य पुरस्कार।

धर्मपाल
प्रचार मन्त्री

महात्मा गांधी और…

(पृष्ठ ६ का शेष)

प्रसंगों के विषय में इधर दो वर्षों से सुनते आ रहे हैं उनमें से अधिकतर तो मेरे विचार में खोटे सिक्के हैं। सच्चा धर्म परिवर्तन हृदय से होता है, किसी अजनबी की प्रेरणा से नहीं, बल्कि ईश्वर की प्रेरणा से होता है।

('हरिजन' २६ सितम्बर, १९३७)

हरिजनों का धर्मान्तरण सन्देह और कटुता पैदा करेगा

मेरी समझ में नही आता कि हरिजन यदि उस धर्म (ईसाई धर्म) में चले जाते तो उससे उन मिशनों को क्या लाभ होता और उन हरिजनों को कहाँ तक धर्मान्तरित व्यक्ति कहा जा सकता था। मैं यह जानता हू कि धर्म-परिवर्तन की इस तरह की कोशिशें समाज को भ्रष्ट करती हैं, सन्देह और कटुता पैदा करती हैं और समाज की बहुमुखी प्रगति को रोकती हैं। यदि ईसाई मिशन बेहतर बरताव के बदले में तथाकथित धर्म-परिवर्तन की इच्छा न करके हरिजनों का बोझ हल्का करने मे हरिजन-सेवकों के साथ सहयोग करें, तो उनकी सहायता का स्वागत होगा और समाज के विकास की गति तेज होगी।

('हरिजन' १ मई, १९३७)

धर्म परिवर्तन कब और क्यों ?

धर्म-परिवर्तन के बारे में यह नहीं कहना चाहता कि यह कभी उचित हो ही नहीं सकता। हमें दूसरों को अपने धर्म बदलने के लिए निमन्त्रण नहीं देना चाहिए। मेरा धर्म सच्चा है और दूसरे सब झूठे हैं, इस तरह की जो मान्यता इन निमन्त्रणों के पीछे रहती है, उसे मैं दोषपूर्ण मानता हूँ, लेकिन जहाँ जबरदस्ती से या गलतफहमी से किसी ने अपना धर्म छोड दिया हो, वहा उस मनुष्य को अपनी गलती सुधारने मे यानी अपने असली धर्म में जाने में बाधा नहीं होनी चाहिए। इसे धर्म परिवर्तन नहीं कहा जा सकता। मुझे अपना धर्म झूठा लगे तो मुझे उसका त्याग करना चाहिए। दूसरे धर्म मे जो कुछ अच्छा लगे, उसे मैं अपने धर्म मे ले सकता हू—लेना चाहिए। मेरा धर्म अपूर्ण लगे तो उसे पूर्ण बनाना मेरा फर्ज है। उसमें दोष दिखाई दें तो उन्हें दूर करना भी मेरा फर्ज है।

(प्रेमा बहन कटक को लिखे पत्र से, २२ अप्रैल, १९३२)

मिशनरी लौट जाओ

यदि वे (मिशनरी) केवल शिक्षा, गरीबों की डाक्टरी सेवा और ऐसे ही मानव-दया के कामों तक सीमित रहने के बजाय, अपने कामो का उपयोग धर्म-परिवर्तन के लिए करेंगे, तो मैं अवश्य ही यह चाहूंगा कि वे यहां से चले जायें। भारतवासी जिस महान धर्म में आस्था रखते हैं, वे निश्चय ही उनके लिए पर्याप्त है। भारत को एक धर्म से दूसरे धर्म में परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं है।

('यग इडिया', २३ अप्रैल, १९३१)

हकीम जी, पहले अपना इलाज करो

जो भारतवर्ष का धर्म-परिवर्तन करना चाहते हैं, उनमे यही कहा जा सकता है कि हकीम जी पहले अपना इलाज कीजिए न ?

('यग इडिया', २३ अप्रैल १९३१)

जन्मपूर्व संस्कार…

(पृष्ठ ८ का शेष)

अजातमृतमूर्खेभ्यो
मृताजातो सुतो वरम्।
यतस्तौ स्वल्पदुःखाय
यावज्जीव जडो दहेत्॥

अर्थात् मूर्ख पुत्र के उत्पन्न होने की अपेक्षा जो उत्पन्न ही न हो, यदि उत्पन्न हो जाए तो उसी समय मरने वाला—ये दोनो प्रकार की सन्तान अच्छी होती हैं क्योंकि ये दोनों थोड़ी देर ही दुःख प्रदान करते हैं किन्तु मूर्ख पुत्र तो जब तक जिवित रहता है तब तक सभी को दुःख देता रहता है।

अतः सुयोग्य गुणवान् और स्वस्थ सन्तान ही आवश्यक है। इस प्रकार के गुणों से परिपूर्ण सन्तान के लिए जन्म पूर्व के संस्कारों पर ध्यान देना होगा। □

स्वामी भवानी दयाल…

(पृष्ठ ५ का शेष)

अवसरों पर स्वामी जी ने सक्रिय भाग लिया। इसी प्रकार १९३१ मे देवघर मे बिहार साहित्य सम्मेलन के वे सभापति बने वृन्दावन मे प्रवासियो के प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के अवसर पर जेल मे रहने के बावजूद स्वामी जी ने अपना अध्यक्षीय भाषण हिन्दी मे लिखकर भेजा था। सन् १९२४ में मथुरा की दयानन्द जन्म शताब्दी मे भाग लेने के बाद वे भारतीय पत्रकारों के बीच प्रवासी भारतीयों के सम्बन्ध में प्रचार लेखो द्वारा करते रहे। वे राष्ट्रीय महासभा की गतिविधियों मे बराबर भाग लेते रहे। स्वामी भवानी दयाल सन्यासी ने अपने सम्पूर्ण जीवन मे अपनी जन्मभूमि व मातृभूमि दोनों की समग्र निष्ठा से जिस प्रकार आजीवन सेवा की वह इतिहास का गौरवमय अध्याय है। उनके प्रयत्नों की सुखद परिणति में १९४७ मे भारत को स्वाधीनता और विदेशो में भारत वंशियों को कतिपय राजनैतिक अधिकारो की प्राप्ति से आंकी जा सकती है। १९५२ मे उनका स्वर्गवास अजमेर मे हो गया। दक्षिण अफ्रीका मे इस साल शर्तबन्द कुली प्रथा की १२५ वी सालगिरह मनाए जाने के अवसर पर बरबस उनका स्मरण हो आता है। □

(पत्र सूचना कार्यालय भारत सरकार)

आर्यसमाज प्रशांत विहार का प्रथम वार्षिकोत्सव धूमधाम से सम्पन्न

सभा से संबन्धित प्रशात विहार का प्रथम वार्षिकोत्सव तथा लोहड़ी यज्ञ का कार्यक्रम १२ जनवरी १९८६ को धूमधाम से सम्पन्न हुआ। प्रातःकाल यज्ञ के उपरान्त भजन, वेद प्रवचन हुए तथा बच्चों के सास्कृतिक कार्यक्रमों का अभूतपूर्व आयोजन हुआ और विजयी बच्चो को पुरस्कार देकर उनका उत्साह वर्धन किया गया। तत्पश्चात् १० बजे से १ बजे तक स्वामी जीवानद जी सरस्वती, डा० धर्मपाल आर्य महामत्री, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, डा० महेश विद्यालकार, श्रीमती एवं श्री विजय भूषण, श्री गुलाब सिह राघव, श्री राजु वैज्ञानिक ने अपने ओजस्वी प्रवचनो से आर्य जनता का मार्गदर्शन किया।

ऋषि लगर के सफल आयोजन के पश्चात् साय ४ बजे से ७ बजे तक लोहड़ी यज्ञ तथा वेद प्रवचन का कार्यक्रम स्वामी जीवानद जी महाराज ने सम्पन्न कराया। आयोजन पूर्ण रूप से सफल रहा, जिसके लिए आर्यसमाज प्रशात विहार के उत्साही, कार्यकर्ता बधाई के पात्र है।

सवाददाता, आर्यसन्देश

ऋग्वेद दशम मण्डल के सूक्त…

(पृष्ठ २ का शेष)

९—समौ चिद्धस्तौ न सम विविष्ट, सम्मातरा चिन्न समं दुहाते, यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित्सन्तौ न समं पृणीतः।

दोनो हाथ एक जैसे होने पर भी समान कर्म नही करते। एक माँ की बछिया होने पर भी दो गौए समान दूध नही देतीं। एक साथ पैदा होने वाले जुड़वे भाई भी एक जैसे पराक्रमी नहीं होते। एक कुल के होते हुए भी एक जैसा दान नहीं करते।

मत्र का कविता मे अनुवाद -

दोनो एक समान यदपि हैं
करते कार्य न किन्तु समान,
दो परछया बहिनें भी करती
एक सदृश नहि दुग्ध प्रदान।

जुड़वा सन्तानो मे होता
सदृश शक्ति का भाव नही,
पुरुष एक कुल के दो
होते दानी एक समान नही॥

रजि० नं० डी० (सी०) ७५६ साप्ताहिक 'आर्यसन्देश' २३ फरवरी, १९८६ बिना टिकट भेजने का लाइसेंस नं० यू १३९
R. N No. 32387/77 Post in N D.P.S.O. on 22-2-86 Licenced to post without prepayment, Licence No U 139

ओ३म्

आर्य सन्देश

केवल ५० रुपये में तीन वर्ष तक हर सप्ताह पढ़ते रहिए

- ☐ क्या आप ऋषि, मुनि, तपस्वी, योगियों की अमृत वाणी पढ़ना चाहते हैं ?
- ☐ क्या आप वेद के पवित्र ज्ञान को सरल एवं मधुर शब्दों में जानना चाहते हैं ?
- ☐ क्या आप उपनिषद्, गीता रामायण, ब्राह्मणग्रन्थों का आध्यात्मिक सन्देश स्वयं सुनना और अपने परिवार को सुनाना चाहते हैं ?
- ☐ क्या आप अपने शूरवीर एवं महापुरुषों की शौर्य गाथाएं जानना चाहेंगे ?
- ☐ क्या आप महर्षि दयानन्द की वैचारिक क्रान्ति से आत्मचेतना जागृत करना चाहते हैं।

यदि हां, तो आइये आर्यसन्देश परिवार में शामिल हो जाइए।

केवल ५० रुपये में तीन वर्ष तक हर सप्ताह पढ़ते रहिए। साथ ही वर्ष में चार अनुपम भव्य विशेषांक भी प्राप्त कीजिए।

एक वर्ष केवल २० रुपये; आजीवन २०० रुपये।

प्राप्ति स्थान :

आर्यसन्देश साप्ताहिक

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

१५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-११०००१

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन : ३१०१५० के लिए डा० धर्मपाल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा वैदिक प्रेस, गली नं० १७, कैलाशनगर, दिल्ली-३१ में मुद्रित। रजि० नं० डी० (सी०) ७५६

ओ३म्

साप्ताहिक

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य सन्देश

वर्ष १० : अंक १५ | रविवार, २ मार्च, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ | फाल्गुन २०४२ | दयानन्दाब्द—१६१

मूल्य : एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश में ५० डालर, ३० पौंड

यह दुर्दशा है हिन्दुओं की पाकिस्तान में

श्रीनगर, २४ फरवरी (वार्ता)। पाकिस्तान में बसे हिन्दुओं को जनरल जिया उल हक की तानाशाह सरकार ने रहने के लिए पक्के मकान तक बनाने की इजाजत नहीं दी है। उन्हें झोपड़ों मे रहने को मजबूर किया जाता है। वहां बसे हिन्दू इन्साफ पाने के लिए न तो कानून और न ही किसी अदालत का दरवाजा खटखटा सकते हैं।

यह बात पाकिस्तान मे घोर यन्त्रणाओं का शिकार होकर चोरी-छिपे भारत में शरण पाने के लिए आए एक हिन्दू दल ने कही है। पाकिस्तान के रहीम यार खां नामक स्थान के निवासी हिन्दुओं का यह दल सरहद पर अनूपगढ़ के रास्ते हाल ही मे भारत मे आया था और स्वयं को अनूपगढ थाना पुलिस के सुपुर्द कर दिया था।

इस दल में दस पुरुष तथा पांच महिलाएं हैं। इनके साथ कोई बच्चा नहीं है। एक प्रौढ़ व्यक्ति को छोड़कर बाकी सभी जवान हैं। ये सभी लोग पैदल चलकर भारतीय सीमा तक आए हैं और सीमा पार कर अनूपगढ पहुंचे थे।

दल के एक सदस्य गिरधारी लाल ने बताया कि पाकिस्तान में हिंदुओं को तरह-तरह से सताया जाता है। उन्हें वहां नागरिकों के सामान्य अधिकारों से वंचित रखा जाता है। हिन्दुओं को अपने इष्ट का नाम तक लेने नहीं दिया जाता। हिन्दू मंदिरों एवं अन्य इबादतगाहों पर भी पाक नागरिकों का कब्जा है।

एक अन्य ने बताया कि पाकिस्तान में हिन्दुओं को हिकारत की निगाह से देखा जाता है हिन्दुओं से वहां बेगार भी ली जाती है।

ऊदाराम का कहना था कि हिंदू पाकिस्तान में पक्का मकान नहीं बना सकते हैं। उन्हें कच्ची झोंपडियों में ही रहने पर मजबूर किया जाता है। कोई भी प्रभावशाली व्यक्ति जब चाहे गरीब हिन्दुओं को झोंपडियों को मिट्टी में मिला सकता है। वे लोग हिन्दुओं की खूबसूरत औरतों को उठा कर ले जाते हैं।

राहराम ने गद्गद होकर कहा कि भारत में आकर हमें ऐसा महसूस हुआ कि हम मातृभूमि में आ गए हैं और अपनी मंजिल पा ली है।

आर्यसमाज शेपस्टन, दक्षिण अफ्रीका का अविस्मरणीय साप्ताहिक सत्संग

—ब्रह्मदत्त स्नातक

डर्बन। अपने नब्बे दिन के दक्षिण अफ्रीका के प्रवास के दौरान मुझे अन्तर्राष्ट्रीय वैदिक सम्मेलन, वेस्टविल यूनिवर्सिटी के संस्कृत सम्मेलन, दक्षिण अफ्रीका आर्य प्रतिनिधि सभा की हीरक जयन्ती हिन्दी सम्मेलन तथा अनेक बैठकों में भाग लेने का अवसर मिला। साउथ कोस्ट के पोर्टश्येपन के आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग में एक दिन के लिए जाने पर सबसे अधिक प्रसन्नता व बहुत आनन्द आया। डरबन से एक सौ किलोमीटर की दूरी पर यहां का समुद्र तट सैलानियों के लिए स्वर्ग समान है। यहां पर मुख्यतः यूरोपियन लोगों के होटल और निवास हैं। हिन्दुओं की संख्या पांच हजार होगी।

इस क्षेत्र में पंजाब (लुधियाना) से गिरमिट में आये स्व० पण्डित ईश्वरसिंह का पुस्तकालय देखने और उनके पुत्र पण्डित आत्मदेवसिंह से मिलने का सुअवसर मिला। ईश्वर सिंह सिख बनकर यहां आये थे। सत्यार्थप्रकाश पढा तो सिख मत त्यागकर वे महर्षिकृत सारे ग्रन्थों के अतिरिक्त वेद, निरुक्त, अष्टाध्यायी आदि समस्त ग्रन्थों का गहराई से अध्ययन वे जीवन के अन्तिम १०५ सालों तक करते रहे। उन्होंने गिरमिट से छूटने के बाद डरबन के पास खेती की, और बाद में मकान और दुकान शेपस्टन में की। उस क्षेत्र से बाहर भी वे प्रचार, शास्त्रार्थ एवं यज्ञ संस्कारों में अपना समय लगाते। भारत से प्रकाशित होने वाली आर्यसामाजिक पत्र-पत्रिकाओं व पुस्तकों को मंगाने में अपनी सारी पेंशन को आय मुक्तहस्त से व्यय कर देते। वे

(शेष पृष्ठ १२ पर)

शिवरात्रि पर ऋषि मेला

८ मार्च को विशाल कार्यक्रम

स्थान : फिरोजशाह कोटला मैदान, नई दिल्ली।

प्रत्येक वर्ष की भांति इस वर्ष भी शिवरात्रि महर्षि बोधोत्सव के अवसर पर आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली द्वारा ऋषि मेले का आयोजन किया गया है। इस अवसर पर प्रातःकाल ८ बजे से यज्ञ, ध्वजारोहण, खेलकूद, भाषण प्रतियोगिता, भजन, संगीत तथा मानव पथ प्रदर्शक महर्षि दयानन्द बोध दिवस के उपलक्ष्य में विशाल जनसभा का आयोजन किया गया है। जिसमे देश प्रसिद्ध विद्वान् संन्यासी, आर्यनेताओं के विशेष प्रवचन होंगे।

दिल्ली की समस्त आर्यसमाजों से निवेदन है अपनी संस्थाओं की ओर से बस आदि के द्वारा अधिक से अधिक संख्या में उपस्थित होकर वैदिक धर्म और महर्षि दयानन्द के प्रति अपनी आस्था का परिचय दें तथा कार्यक्रम को सफल बनायें।

निवेदक .

म० धर्मपाल (प्रधान)	आर्य केन्द्रीय सभा, दिल्ली	अशोक सहगल (महामन्त्री)

सम्पादक—यशपाल 'सुधांशु' एम० ए० | व्यवस्थापक—डा० मणेशीलाल | प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल

सत्संग-वाटिका

राष्ट्र यज्ञ—राष्ट्र सेवक के गुण

—महात्मा दयानन्द वानप्रस्थी

ओ३म् धानाः करम्भः सक्तवः परीवापः पयोदधि।
सोमस्य रूपं हविषऽआमिक्षा वाजिनं मधु ॥ यजु० १९।२१

हविषः परीवापः धानाः सक्तवः पयोदधि करम्भः
आमिक्षा सोमस्य रूपं वाजिनं मधु ॥

★

१ **हविषः**—यज्ञ मे आहुति देने योग्य द्रव्य हवि कोटि मे वह सामग्री मानी जावेगी (i) जो निर्दोष हो, कीडा इत्यादि न लगा हो, दुर्गन्ध न आती हो (ii) सत्कमाई से लाई गई हो (iii) पूजा की भावना से अर्पित की जा रही हो।

(क) राष्ट्र सेवक का जीवन राष्ट्र यज्ञ की हवि बनेगा यदि निर्दोष हो।

(ख) उसका व्यवहार आहार शुद्ध हो।

(ग) राष्ट्र उत्थान संमान की तड़प हो, निज जीवन मे राष्ट्र समान अधिक अभीष्ट हो।

२ **परिवापः**—बीजने योग्य बीज की तरह हो, वही बीज बीजने योग्य होता है जिसे कीडा न लगा हो, जो टूटा हुआ न हो।

राष्ट्र सेवक जितेन्द्रिय हो वीर्यवान हो, एकनिष्ठ हो तभी उसकी वाणी-जीवन का प्रभाव साधारण व्यक्तियो पर पडता है। वही अनुयायी पैदा कर सकते है, वही कठिनाइयो को सुगमता से उल्लाघ जाना है, परिस्थितियां उसके मार्ग मे रुकावट नही डाल पाती, बल्कि विषम स्थिति प्रभु विश्वास और पुरुषार्थ मे वृद्धि करने वाली होती है।

३ **धाना.**—धाना भुने हुए चने को कहते है भुना चना हमारी भूख तो मिटाता है परन्तु नया अंकुर नही पैदा हो सकता है।

राष्ट्र सेवक का जीवन समाज के अभावो की पूर्ति मे जुटता है। परन्तु वह कर्मबन्धन मे नही पडता क्योकि कर्तृत्व को अभिमान पूर्णत: त्याग चुका होता है। उसे अपनी सेवा के बदले मे कोई कामना नही होती, न उसे धन सम्मान कुर्सी की लालसा होती है। न वह किसी से सेवा का तलबगार बनता है। वह तो परमेश्वर का राष्ट्र का कृतज्ञ होता है कि सेवा का अवसर प्रदान करके जीवन को सार्थक बनाने का अवसर प्रदान किया. वहा तो सेवक सेव्य का आभार मानता है बल्कि अपने उपकार को भूल जाता है तभी वह स्वय अहकार मुक्त बन पाता है।

४. **पयोदधि**—दूध-दही बडे सात्विक आहार हैं, स्वास्थ्य के लिए हितकर, बेदाग भी हैं।

राष्ट्र सेवक का जीवन राष्ट्र के लिए पुष्टिकारक तभी बनेगा जो बेदाग हो, यहा पहले दाग जीवन में क्या होता है उन्हें समझने की आवश्यकता प्रतीत होती है। वैद्य हमे पथ्य व परहेज दोनों चीजें समझाता है यही मंत्र भी बतला रहा है।

(i गीता में जो आसुरी संपदा बताई गई है वह मानवी जीवन में दाग होते हैं।

(ii) मनु महाराज ने धर्म के दस लक्षण बताए उनके विपरीत आचरण उनके दाग माने जाते हैं।

(iii) महर्षि पतञ्जलि के पांच यम पाँच नियम उनका पालन न करना जीवन को दाग लगाना होगा।

५ **सोमस्य रूपं**—शान्त स्वरूप, शान्त स्वभाव, शान्तिप्रद वचन बोलने वाला क्रिया मे सौम्यता, उपमा है जल की, चन्द्रमा की।

(i) जल स्वभाव से शीतल, उबलते पानी को अग्नि मे अलग करें फिर ठण्डा हो। राष्ट्र सेवक ने जल के गुण कर्म स्वभाव को अपनाने की साधना की होती है।

(क) ठण्डा दिमाग है तभी अपनी समस्याओ का समाधान सुगमता से अपने अन्दर से पा लेता है और दूसरों में भी सौम्यता भरता है।

(ख) स्वय नरम, जिसमें प्रविष्ट हो उसे भी नरम बना दे। अकडन मे संघर्ष और विनम्रता से मिलाप शान्ति मिलती है।

(ग) जल के रास्ते में गड्ढा आ जाते हैं तो पहले उसे भरता है फिर आगे बढता है। राष्ट्र सेवक में अपने अन्दर त्रुटि अवगुण प्रतीत हो तो पहले उसे निवृत्त करता है फिर आगे सेवा मे बढ़ता है।

(घ)-जल पर कोई अंगारे फेंके तो वह लोटाता नही, बुझाकर अपने नीचे रख लेता है।

राष्ट्र सेवक का कोई अपमान करे अपशब्द कहे वह उनको दोहराता नही बल्कि अशान्त क्रोधी पर तरस खाकर उसे भुलाता है और स्वयं अपनी राह पर चलता जाता है।

(ङ) जल पर कोई सोटी मारे तो लकीर नही पडती।

राष्ट्र सेवक अपकार का जवाब उपकार से देता है। यही उसकी विजय पाने का रहस्य है, इसी से वह शान्त सौम्य मूर्ति बनता है।

(च) जल का कर्म है ससार के प्राणियो की तृषा बुझाना, तृप्त करना राष्ट्र सेवक निःस्वार्थ सेवा से सब तृप्त सतुष्ट करने का अनथक प्रयास करता रहता है अन्तिम श्वास तक करता है।

(ii) चन्द्रमा आह्लादिक प्रकाश देना, वनस्पतियो मे रस भरना, सब से खूबसूरत लगता है। जब काली घटाओं से निकलता है। यही तीनो गुण राष्ट्र सेवक के जीवन के स्थाई अंग होते हैं।

६. **वाजिनं मधु**—मधुरता से शक्ति भरना, रक्त शोधन करना। राष्ट्र सेवक की वाणी मीठी पर उत्साह वर्धक होती है। वह तो रुके कदमों में गति उपजाता है। निराशों को आशावान् बनाता है मुर्दा दिलों में नई जिन्दगी का संचार करता है।

रक्त शोधन के रूप में राष्ट्र व समाज की कुरीतियो को दूर करना, एक महान् व कठिन कार्य है जो राष्ट्र सेवक अपने जीवन की बाजी लगाकर करता है।

निष्कर्ष—राष्ट्र सेवक की साधना होती है हवि बनकर बलिदान होना। उस की तैयारी मे जितेन्द्रियता, वीर्यवान् ब्रह्मचारी, अहकार, स्वार्थ रहित होकर सेवा करनी, जीवन में हर तरह से बेदाग सौम्य गम्भीर रहना।

कर्म है उसका प्यार संमान से राष्ट्र को दोष मुक्त व शक्तिशाली बनाना।

राष्ट्र सेवक महल की नींव का पत्थर बनता है जो नजर नही आता परन्तु भार सारा उठाता है। □

ईसाई भाइयों की वैदिक धर्म में वापिसी

दिनांक ९-२-८६ को उदयपुर से १०० किलोमीटर दूर डूंगरपुर मे आर्य समाज, उदयपुर द्वारा आयोजित एक सादा समारोह मे तीन ईसाई परिवारों के १९ व्यक्तियों को शुद्धि सस्कार कर पुन उनके वैदिक (हिन्दू) धर्म मे परिवर्तित किया गया। उक्त अवसर पर उन्हें यज्ञोपवीत धारण करा उनके हिन्दू नामकरण भी किये गये तथा यज्ञ का आयोजन भी किया गया।

उक्त आयोजन उनकी स्वयं की प्रार्थना पर किया गया। यह व्यक्ति पूर्व मे आदिवासी हिन्दू थे। समारोह के अवसर पर आर्यसमाज, उदयपुर की प्रधान श्रीमती मालती अग्रवाल, मत्री ज्ञानप्रकाश गुप्ता, पुरोहित श्री भवरलाल जी तथा विश्व हिन्दू परिषद् डूगरमल के अध्यक्ष नर्बदाशकर जोशी, एडवोकेट एव आर्य समाज के अन्य व्यक्ति उपस्थित थे।

(ज्ञानप्रकाश गुप्ता)
मन्त्री, आर्यसमाज उदयपुर

पुरोहित की आवश्यकता

आर्यसमाज अशोक विहार, फेज-I, दिल्ली-११००५२ के लिए एक सुशिक्षित, सुयोग्य एव अनुभवी पुरोहित की आवश्यकता है। वेतन, दक्षिणा तथा निःशुल्क निवास स्थान इत्यादि की सुविधाएँ उप-हैं। पूर्ण विवरण सहित आवेदन पत्र भेजें।

मन्त्री

फिर बारूद के ढेर पर आ गया पंजाब

मौसम ने करवट बदली है बसन्ती हवाएं इठलाने लगी हैं। यूं तो पंजाब में भी बसन्त अपने भरे पूरे यौवन पर है। मीलों दूर तक लम्बे हरियाले खेत सरसों के पीले फूलों से ढके हुए हैं। आम्र की मंजरियां महकने लगी हैं। सेम्बल के विटपों से लाल-लाल फूल धरती पर झरने लगे हैं, लेकिन यह उत्सव केवल प्रकृति पर खेत खलिहान नदी वन प्रान्तर मे है, नगरों, ग्रामों बस्ती चौपालों मे नही। वहा की आबादियों में [illegible] भी आग धधक रही है। चिनगारियां सुलगती हैं धधकते शोलो में बदल जाती हैं। चार साल से खून और आंसुओं से भीगे पंजाब के इतिहास के बाद के दौर ने अनेक संभावनाओ को जन्म दिया है। लेकिन भय और आतंक और अविश्वास के जरिये पंजाब की धरती की खुशियाँ छीनने वालों ने अभी हार नहीं मानी है। राजीव लौंगोवाल के बीच हुए २७ जौलाई १९८५ के समझौते की सद्भाव और शान्ति की ताजी फसल पर इनकी गिद्ध दृष्टि लगी हुई है। धीरे धीरे पंजाब के पूरे आसमान पर हिंसा, क्रूरता और साम्प्रदायिकता के काले बादल मडराने लगे हैं। पंजाब एक बार फिर ज्वालामुखी पर खड़ा है। आने वाला समय पंजाब और देश के लिए निर्णायक है। जरा सी असावधानी पंजाब की धरती को फिर स उसी अंधी गली मे धकेल सकती है।

फिर से आशंकाओं का परिणाम सम्मुख आने लगा है। आशंका थी कि पंजाब समझौता उग्रवादी वर्ग को स्वीकार नही होगा। आशंका थी बरनाला सरकार पंजाब के उग्रवादियों से निपट पाने मे असफल सिद्ध होगी। आशंका थी राजीव लौंगोवाल के बीच हुए सद्भाव भरे पंजाब समझौते को लागू करने में रोडे अटकाये जायेंगे। आशंका थी भिंडरावाले समर्थक फिर सिर उठायेंगे। आशंका थी अकाली दल के आपसी झगडे और बढ़ेंगे। ये सब आशंकाएं धीरे धीरे एक एक करके डरावने सायों की तरह सामने आने लगी हैं। चार सालो की उथल पुथल ऐसे निहित स्वार्थों को जन्म दे चुकी है जिनके अस्तित्व का प्रश्न ही पंजाब में अस्थिरता से जुड़ा है। अगर पंजाब शान्ति और सद्भाव के रास्ते पर आ जाए तो शायद इन्हें आत्महत्या करनी पडे। इसलिए पंजाब की खुशहाली के रास्ते पर बहेलियों की तरह टोह लगाये तीर बन्दूक ताने और बारूद की सुरंग बिछाये यह वर्ग अडा है और सम्भवत सर्वनाश की हद तक अडा रहेगा। आज स्वर्ण मन्दिर में जो कुछ हो रहा है करने वालों की दृष्टि मे यह सब उसी संघर्ष का हिस्सा है जो सन्त भिण्डरावाले के साथ मिलकर अकालियो ने शुरू किया था। आज स्वर्ण मन्दिर पर भिण्डरावाले की दमदमी टकसाल अखिल भारतीय छात्र संघ, और संयुक्त अकाली दल का अधिकार है। २७ जनवरी को स्वर्ण मन्दिर मे दमदमी टकसाल और सिक्ख स्टूडेण्ट फेडरेशन उग्रवादियो के कब्जे में आ जाने से हालात और भी अधिक बिगड गई है। स्वर्ण मन्दिर इस समय उग्रवादियो की गतिविधियों का अड्डा बना हुआ है। ठीक उसी तरह जिस प्रकार भिंडरावाले के समय में हुआ करता था। स्वर्णमन्दिर मे शिरोमणि अकाली दल के दफ्तर के ठीक सामने सिख फेडरेशन का दफ्तर है। जिसमें श्रीमती इन्दिरा गांधी के हत्यारे बेअन्तसिंह और सतवन्तसिंह और भिंडरावाले, शुबेगसिंह, विमान अपहर्ता मन्जीतसिंह, सिख रेजिमेण्ट के बागी सैनिक सतनाम सिंह, जिस पर अपनी रेजिमेण्ट के ब्रिगेडियर को मारने का आरोप है आदि के चित्र कार्यालय मे लगे हुए हैं। फेडरेशन टकसाल समर्थकों द्वारा स्वर्णमन्दिर मे किए कब्जे से आम लोगो मे भी रोष है प्रबन्धक कमेटी भंग किए जाने जैसी हरकतो से भी बडे पैमाने पर लोगो मे गुस्सा भरा हुआ है।

१६ फरवरी को आनन्दपुर साहिब मे आयोजित सरबत खालसा ने सभी ने एकमत से उग्रवादियो के कब्जे से स्वर्ण मन्दिर मुक्त कराने का फैसला किया परन्तु यह काम आसान नही और यदि यह हो भी गया तो भी उग्रवादी खाली बैठने वाले नहीं। उग्रवादी साम्प्रदायिक सद्भाव को विषाक्त करने का कोई भी मौका हाथ से नही जाने देंगे। नकोदर की घटनाओ को जिस तरह साम्प्रदायिक रंग देने की कोशिश की गयी उससे यह साफ जाहिर हो चुका है। पंजाब में खुशहाली और शान्ति लौटा लाने के लिए पंजाब समझौता लागू किया जाना चाहिए। नकोदर की घटना, २ फरवरी को नकोदर के गुरुद्वारे के एक कमरे में आग लग गयी जिससे कालीन का थोड़ा हिस्सा और गुरुग्रन्थ साहिब की बीढ़ मे भी थोडी आंच पहुच गयी चार धार्मिक ग्रन्थों के पन्ने धूयें और आंच से काले पड गये। धूएं को देखकर कुछ आसपास के लोग इकट्ठे हो गए उन्होंने तमाम चीजें बाहर निकालकर अहाते में रख दी आग फैली नही थी। सम्भवत: किसी अगरबत्ती या मोमबत्ती गिर जाने से लगी थी। यह इस बात से भी जाहिर था यह आग धीरे धीरे कालीन और उसके ऊपर पड़े गद्दे की रुई में फैली थी। घटना बहुत मामूली सी थी, इसलिए किसी ने इसको गम्भीरता से नही लिया। नही किसी को इसके पीछे किसी शरारत का शक ही था। मगर रात को ६ बजे उस समय नकोदर में तनाव अचानक पैदा हो गया, जब किसी स्थानीय नेता ने नकोदर बन्द का आह्वान कर दिया। स्थानीय नेताओ की जिद पर जलूस निकालने की प्रशासन से इजाजत दे दी गयी परन्तु इस शर्त पर कि जलूस शहर से बाहर ही निकाला जाये। अगले दिन सुबह सुबह सिख छात्र फेडरेशन के लड़कों ने नकोदर जालंधर सड़क पर रास्ता रोक लिया तथा मांग की कि स्थानीय शिव सेना के प्रधान को गिरफ्तार किया जाय। पुलिस अधिकारियो ने उनको मनाने की भरपूर कोशिश की। कुछ लोगो ने स्कूल कालिज के लड़कों को इकट्ठा कर लिया। जलूस के स्वरूप को छोडकर फेडरेशन के नेताओं ने पुलिस स्टेशन के सामने धरना शुरू कर दिया। इस धरने में स्थानीय अकाली विधायक श्री कुलदीप सेखवाला ने शामिल होकर आग मे घी का काम किया। बिना बात की मुसीबत के प्रतिरोध प्रकट करने के लिए शिव सेना की ओर से एक डेढ हजार लोगों ने भी एक सभा की। साम्प्रदायिक झगडे के आसार देखकर जिलाधिकारी ने कर्फ्यू लगा दिया। ४ फरवरी को संयुक्त अकाली दल और फेडरेशन के कार्यकर्ताओं ने आसपास के गाव मे जहर फैलाना शुरू कर दिया। आग की मामूली सी घटना को बढा चढ़ाकर पेश किया गया जिसकी जिम्मेदारी शिव सेना के नेता पर डाल दी गई। जान बूझकर ऐसी स्थिति पैदा कर दी गयी। दंगाइयों को भगाने के लिए पुलिस ने अश्रु गैस आदि के द्वारा बल प्रयोग करना पड़ा। पंजाब में नकोदर की घटना को तोड मोडकर पेश किया गया। अगले दिन जालन्धर मे पूरे पंजाब के वित्तमंत्री श्री बलवन्त सिंह ने घटनाओं की न्यायिक जांच का आदेश दे दिया।

राजीव लौंगोवाल समझौता जब हुआ तो सारे पंजाब मे खुशियाँ मनायी गयी थी परन्तु सिखों का उग्रवादी तबका खुश नही था लेकिन आशा की गई थी इस तबके को भी समझौते का औचित्य समझाया जा सकेगा। फिर जब चुनाव हुए और पंजाब की जनता ने समझौते के समर्थन मे वोट देकर अकालियो को सरकार बनाने का मौका दिया तो सोचा गया था कि सुरजीतसिंह बरनाला अकाली सरकार समझौते के विरोधियो को समझा बुझाकर पंजाब में शान्ति का वातावरण बना पायेगा पर ऐसा नहीं हुआ। पंजाब सरकार द्वारा उग्रवादियो को दी गयी रियायतो ने समझौता विरोधियों को यह अहसास दिया कि वे ताकतवर हो गये है। उन्होने अपनी ताकत का इजहार करने का निर्णय किया। जिसका प्रदर्शन उन्होने स्वर्णमन्दिर पर कब्जा करके किया। अखिल भारतीय सिख स्टुडेण्ट फेडरेशन कार्यकारी अध्यक्ष हरिन्दर सिंह कहलो का कहना है कि—"चुनाव जीतने के बाद बरनाला सरकार क्या कर पायी? इसीलिए हमने चुनाव का बहिष्कार किया था"। सुखविन्दर सिंह सन्धु जो फेडरेशन के कार्यालय सचिव हैं का कहना है–"बरनाला सरकार केन्द्र की पिट्ठू सरकार है क्योंकि हमारी कोई मांग पूरी नही। सिखो को विशेष दर्जा नहीं मिला। अनुच्छेद २५ को बदलकर सिखों को अलग कौम माना जाना चाहिए। सतलज-यमुना नहर खुदायी बन्द नही हुई।" ये भाषा जरनैलसिंह भिंडरावाले वाली भाषा है स्पष्ट है ये उग्रवादी सिख मनीषा को ललकार रहे हैं। यही भिंडरावाले ने किया था। भिंडरावाले कहता था–"सिखों के दुश्मनों को मारना धर्म है। यही बात स्वर्णमन्दिर के नये मालिक कर रहे हैं। उनका मानना है इन्दिरा गांधी की हत्या राजनीतिक हत्या थी। उनका कहना यह भी है ५० हजार सिखो को कत्ल करने वाला राजीव गांधी इन्दिरा से भी ज्यादा खतरनाक है। जो सिखो की धार्मिक भावनाओं की बेइज्जती करेगा छोड़ा नही जायेगा।'

इस प्रकार इन उग्रवादियो की नीयत का अनुमान लगाया जा सकता है। २४ फरवरी को रेलवे शस्त्रागार से राइफलें और कारतूस लूट लिये जाने की घटना साधारण नही है।

पंजाब आज फिर दोराहे पर खड़ा है। एक रास्ता सद्भाव के प्रतीक राजीव लौंगोवाल समझौते का है। दूसरा रास्ता खून के छींटो से भीगा इतिहास है, जो खुद को दोहराने के लिए तैयार है। बारूद की ढेर पर पंजाब आकर खड़ा हो गया है। बरनाला की कोशिशें हिन्दुओं के मन में सुरक्षा का अभयदान नही दे पायी। केन्द्रीय सरकार के हस्तक्षेप करने का समय आ गया है और खून बहते देखने का यह समय नही है।

यशपाल सुधांशु

हम हिन्दू नहीं काफिर नहीं

हम विश्वविजयी भारतीय आर्य जाति की भारतीय आर्य संतान हैं

—अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार

आर्यसमाज की स्थापना से पहले ऋषि कलकत्ता गए थे। यहा एक व्याख्यान में उन्होंने आह्वान किया था, अपने को हिन्दू मत कहो। हिन्दू का अर्थ काफिर है। यह ऋषि की कल्पना नही, १९ वीं सदी की नवल किशोर प्रेस लखनऊ की छपी उर्दू डिक्शनरी में हिन्दू का सही अर्थ दिया है - काफिर, चोर, डाकू, लुटेरा। पजाब का एक मुस्लिम सन्त कवि हुआ है—इसका नाम सम्भवत फरीद है। सरदार कुशवन्त सिंह इस को प्रेम का कवि कहता है। लेकिन यह वस्तुत नफरत व घृणा का कवि है। इसका एक पद है

उन्होने—मुस्लिमों ने तुम से कहा—काफिर हो, काफिर हो, काफिर हो।

तुमने --हिन्दुओ ने जवाब में कहा---हां, हा, हा।

ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश में 'हिन्दू,' शब्द और हिन्दी शब्द का व्यवहार कभी नही किया। भाषा के लिए आर्य भाषा का किया उनके सच्चे भक्त ला० मुंशीराम व महात्मा मुंशीराम ने भी १९१६ तक आर्य भाषा का व्यवहार किया। गुरुकुल की बनाई रीडरें आर्य भाषा पाठावली यही बता रही है। गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर हुए आर्य भाषा सम्मेलनो के सभापति श्रीधर पाठक व श्यामसुन्दर दास म० गांधी प्रभृति सभापति हुए।

विश्वविजयी आर्य जाति का नाम तक विस्मृति के गर्भ में डालने के लिये जन्म से, कर्म से नही अपनी आस्था स्थापित करने शेष समाज को दलित शोषित रखने के लिए ब्राह्मण वाद, ब्राह्मण धर्म, ब्राह्मण वर्ग ने यह जाल रचा है।

प्रसिद्ध रूसो नोबल पुरस्कार प्राप्त सालानोएव ने एक ध्रुव सत्य कहा है—जो जाति, जो देश एव राष्ट्र अपने पूर्वजो को भूल जाता है वह अपना इतिहास खो देता है, वह अपना इतिहास खो देता है, वह नष्ट हो जाता है। असीरिया और बेबीलान आकस्मिक भूकम्प या अन्य किसी प्राकृतिक कारणो से नही हुआ पूर्वजो को भूल जाने के कारण ही हुआ।

ब्राह्मण धर्म राजनीति का त्याग कर और नीति वाक्यामृत (१० वी सदी के इस कथन को भूल कर)

अथ धर्मार्थलाभाय राज्याय नमः ॥

इस का मूल है उशनश स्मृति का यह कथनः

नमोऽस्तु राज्यवृक्षाय
षाड्गुण्यप्रशाखिने ।
समादि चारु पुष्पाय
त्रिवर्गफलदायिने ॥

शान्ति पर्व में सम्राट् युधिष्ठिर का भीष्म पितामह से प्रश्न है—पितामह

कालो वा राजस्य कारणम्
राजा वा कालस्य कारणम्।

पितामह का उत्तर है :

इति ते संशयो मा भूत्
राजा कालस्य कारणम् ॥

८ वीं सदी में मुस्लिम आक्रान्ता कासिम आया। बौद्धों ने धोखा दिया। किले का फाटक खोल दिया। दाहर हार गया। वह मुलतान तक आगे बढ गया। सूर्य का मन्दिर गिरा दिया। अब उसने तलवार उठाई। मगर ब्राह्मण वर्ग ने खलीफा की सरक्षित सम्पत्ति होना और हाफिज बनना मंजूर किया। स्वीकार किया। गिरे मन्दिरों को फिर न बनाएगें मरम्मत कराएगे। घर कोई आएगा तो उसको अच्छे से अच्छा रखि लाएंगे। उसको पंलग पर सुलाएगे खुद नीचे सोएगे। यह अपने को हाफिज मानने वाला वर्ग अपने को हिन्दू कहने लगा। यह शासक था और आज भी है। भारत को विखण्डित करने करने वाला भारत राष्ट्र विनाशक है।

आर्य सन्तान भूमि मानता है और पुत्रोऽहं पृथिव्या को माता

भूमि माता से वह दूध मांगता है —

यामश्विनावमिमाता
विष्णुर्यस्या विचक्रमे ।
इन्द्रोऽनामित्रां शचीपति
सानो भूमि विसृजता
माता पुत्राय मे पय. ॥

आर्य सन्तान का जीवन व्रत लिखन है:

अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यठां
पृथिवीमहम् ॥ अथर्व १२।१।१०,११

आर्यसमाज ने ऋषि के बताए पथ का अनुसरण नहीं किया। उसने भारत भूमि के प्रति भक्ति, श्रद्धा और प्रेम की भावना जागृत नही की। उसने एंग्लो-मुस्लिम-रूसी दास ब्राह्मण वर्ग का अनुसरण किया। उसने मांउट बेटन के भारत विभाजन के विरोध मे एक शब्द भी नहीं कहा। जम अभिनिष्क्रमण का भी विरोध नहीं किया।

आर्यसमाज यदि जीवित रहना चाहता है, प्राणवान व शक्तिमान् होना चाहता है, और वस्तुत वैदिक सस्कृति का प्रचार करना चाहता है सर्वप्रथम विखण्डित भारत का अन्त करे। पाकिस्तान करने के लिए गवर्मेन्ट को विवश करे। हर सप्ताह एक पत्र तार में मेमोरेण्डम राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री एवं राज्य के गवंनर व मुख्यमंत्री को लिखे:

१ विखडित भारत का अन्त करो।

२ अग्रेजी की जगह हिन्दी में सारा का सारा कारोबार करे।

३, उच्च शिक्षा का माध्यम अविलंब हिन्दी करे।

४ सारे देश के लिए मुद्रा के समान नागरिक कानून एक करे।

५. कन्ट्रोलों एव राशन का अन्त करे।

कांग्रेस ब्राह्मण वर्ग की राजनीतिक संस्था है। रा० स्व० संघ के एक समान नाना जी देशमुख ने समस्त ब्राह्मणों को कांग्रेस के झंडेके नीचे जमा होने का आह्वान किया। सक्युलर स्टेट—ऐहिक राज्य लौकिक राज्य करे। सविधान मे सशोधन कराके। समस्त क्रांति करनी है। प्रत्येक पोलिंग स्टेशन पर आर्यसमाज स्थापित करे। आर्यसमाज मन्दिर कम से कम तीन एकड भूमि मे हो। समाज कम से कम तीन गायें पाले। इन को 'दीर्घ दोग्धा' बनावे।

अर्थात् कम से कम २०-२२ सेर दूध देने वाली हो। गौएं खरीदने की जरूरत नही। कसाइयों से बचाई जावें। इसी प्रकार लोगो ने छोड रखी हैं। दो आई. सी. एस. रिटायर्ड पटेलों ने यह सोचकर किसान इस देश मे मशीन से खेती करेगा नहीं। अत. उन्होंने लोगों की छोड़ी गई गाएं १६ पकड़ लीं। ये १८५८ मे १६ सेर देती थी। कुरोवन की को-आपरेटिव डैरी पालकों की है। फलत: अमूल मक्खन निर्यात नहीं करता। क्योंकि मक्खन मे इसके भैंस की हीक आती है। यह किसी उपाय से दूर नही हो सकती। भारत को छोडकर भैंस का दूध अन्यत्र नहीं। ब्राह्मण राज्य का यह अभिशाप है, प० जर्मनी ४ किलो के कनस्टरों में 'बटर आयल' मुफ्त देता है। किराया केवल लेता है। यह सुपर मार्केट में केवल बिकता है। भूमि और गौकी इस सीमा तक घोर उपेक्षा है। इस देश की गौ की नस्लें सर्वश्रेष्ठ हैं। हम को विदेशी साडों की जरूरत नहीं। केवल उसको खुराक दें। सूखा एक अकालग्रस्त ग्वाला काठियावाड से किसी की छोडी गाय मुफ्त ले गया था। वह बृहस्पति जाति की थी। उसने वही १ दिन मे ४०-४२ सेर दूध दिया। सब चकित रह गए। उससे पूछा, उसका जवाब था भारतीय मूखी घास पर छोड देते हैं मैंने इसको खुराक खिलाई है।

इस वास्ते समाज की पाली गौएं वेद की प्रार्थित दोग्धा होंगी। समाज दूध न बेचे। गांवों तक मे शुद्ध गाय का घी मिलना दुर्लभ है। लगभग तीन चार साल पहले सुलतानपुर यू. पी में ४५ रु० किलो था। आर्यसमाज की आय का यह मुख्य स्रोत होगा। उसको चदा न मांगना पड़ेगा। वैद्य प्रोफेसर राजाराम शास्त्री ने गाय घी का न मिलने से च्यवनप्राश बनाना छोड दिया। गुरुकुल कागडी तक जनता को धोखा दे रहे है। बाजार में बिक रहे च्यवन नकली हैं। इ.में वंश लोचन की जगह कैमीकल है। गाय के घी की जगह वनस्पति घी होता है। समाजों के गौ पालने से इनका मूल्य बढेगा। गो-वध रुक जाएगा। मृत गौ के चमडे का जूता बूट बन सकेगा। एक उद्योग का जन्म होगा युवकों की बेकारी दूर होगी।

दूसरे बीघे मे गुलाब का बाग लगायें। रोम मे आज भी बड़ा फूल "रखा रोज" कहकर बिकता है। पर्यटक बौद्ध भिक्षु चकित था। पटना के गुलजार बाग में स्टेशन है उसने खरीदे फूल से मुकाबला किया, वहां से बडे देखे। अत आर्यसमाजें गुलाब के फूल निर्यात कर युवको की बेकारी दूर कर सकेंगी। जो न बिकें उन का गुलकन्द बनावें। गुलाब गुलकद मैंपूर फार्मेसी बनाती है। वैद्यक के अनुसार यह रक्त शुद्ध करता है।

यदि जगह हो तो हरी मिरच बोयें। पटना काश्मीर और हिसार की मिर्च लगावें। हरी मिर्च की माग पश्चिम एशिया मे हैं। सब समाजें स्वावलम्बी होंगी। जिले की मण्डल की समाज दैनिक पत्र चलाये। आफसेट प्रेस खरीदें। प्रेस शक्ति है। आर्यसमाज आज शक्तिहीन है इसकी आज कोई आवाज नहीं है। मूक समाज में वाणी आयगी। जितने दैनिक होंगे

(शेष पृष्ठ ९ पर)

काकोरी काण्ड का अमर शहीद पं० रामप्रसाद बिस्मिल

आचार्य दीनानाथ सिद्धान्तालंकार

पिता कट्टर सनातन धर्मी ने अपने आर्यसमाजी पुत्र को घर से निकाल दिया

रामप्रसाद 'बिस्मिल' की शिक्षा शाहजहांपुर (उ०प्र०) में उर्दू से प्रारम्भ हुई। नटखट और शरारती स्वभाव के थे। पड़ोस में एक आर्यसमाजी सज्जन के सम्पर्क से उधर उनका झुकाव हो गया। सिगरेट बहुत पीता था एक दिन मे ६० तक। आर्यसमाज के सम्पर्क से जीवन मे परिवर्तन आ गया। उधर उसके पिता कट्टर सनातनधर्मी थे। शास्त्रार्थयुग था। पड़ोस में एक धार्मिक सज्जन रहते थे उनके सत्संग से इस किशोर का जीवन प्रभावित हुआ और नियमित रूप से व्यायाम, प्राणायाम, सन्ध्या, शुद्ध आहार इत्यादि के साथ वह आर्यसमाजी हो गया। नगर के सनातन धर्मियों ने आर्यसमाज के विरुद्ध एक पण्डित द्वारा प्रचार कराया आर्यसमाज ने पं० अखिलानन्द को बुलाया। शास्त्रार्थ हुआ संस्कृत मे। आर्यसमाज का जनता पर प्रभाव पड़ा। बिस्मिल की इस प्रकार की आर्यसामाजिक प्रवृत्तियों से चिढ़ मुहल्ले के कुछ लोगों ने उसके पिता से शिकायत कर दी। वह तो थे ही सनातनधर्मी। पिता पुत्र में इस बात पर कुछ देर तक विवाद हुआ कि इस शास्त्रार्थ मे किसका प्रभाव पड़ा। पिता क्रोधी स्वभाव थे। बिस्मिल द्वारा आर्यसमाज का प्रबल पक्ष लेने पर वह चिढ़ गये और पुत्र को पीटते हुए हुक्म दिया कि इस घर में रहना चाहते हो तो आर्यसमाज से त्याग पत्र दे दो बिस्मिल चुप रहा; वह मामला बढ़ते देख कपड़े पहले पिता के पैर स्पर्श कर घर से बाहर जाने लगा। पिता ने क्रोध में आ पुत्र के हाथ से पजामा छीन केवल लंगोट बांध किशोर को घर से बाहर निकाल दिया। शाम हो रही थी। शहर सर्वथा अपरिचित किशोर कहां जाता। कोई उपाय न देख जंगल में एक वृक्ष पर चढ़ एक रात और एक दिन बिता दिया। भूख लगी खेतों में से हरे चने उखाड़ खा लिये। दूसरे दिन आर्यसमाज में पं० अखिलानन्द का व्याख्यान सुनने अकेले एक पेड़ के नीचे बैठ गया।

पिता का पश्चात्ताप : पुत्र की वापसी

इसी समय उनके पिता दो आदमियों के साथ पुत्र को ढूंढते वहां आगये। पास में ही वह स्कूल था जहां बिस्मिल पढ़ता था। मुख्याध्यापक के पास ले गये उसने पिताजी को विशेष रूप से बच्चों के साथ स्नेह और अपनत्व की भावना के लिए समझाया और इस किशोर को भी शिक्षा दी। इस घटना के बाद फिर उसके पिता के दिल में काफी परिवर्तन आगया। पर इकलौते पुत्र बिस्मिल के घर से बाहर किए जाने के फलस्वरूप घर मे जो गहरे शोक का वातावरण रहा, उससे पिता प्रभावित हुए बिना भला कैसे रह सकते थे।

स्वामी सोमदेव जी की प्रेरणा : आजन्म ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा क्रान्तिकारी जीवन

आर्यसमाज के साथ बिस्मिल का सम्पर्क विभिन्न प्रकार से बढ़ता रहा। इसी अवधि में शाहजहांपुर आर्यसमाज मे स्वामी सोमदेव जी आये। बिस्मिल का इस महान् सन्यासी से अति निकट का सम्पर्क हो गया निर्बल और रोगी रहने के कारण बिस्मिल इनकी बहुत सेवा करता था। स्वामी जी दृढ आर्यसमाजी विद्वान् और उत्तम वक्ता थे। बिस्मिल इन्हें अपना गुरु मानता था। सचमुच देश भक्ति, विदेशी शासन के प्रति विद्रोह और भारत माता के चरणों मे प्राण तक समर्पित करने का संकल्प इत्यादि जीवन मार्ग के लक्ष्य बिस्मिल में दृढता से इन्ही स्वामी जी की शिक्षा और सतत प्रेरणा से बद्धमूल हुए बिस्मिल लाहौर के भाई परमानन्द पर बड़ी श्रद्धा रखता था। लाहौर षडयन्त्र केस में भाईजी को फांसी का दण्ड दिया गया। स्वामी सोमदेव जी भाई जी के निकटतम परिचितों में थे। इस कठोर समाचार से उनका और साथ ही बिस्मिल दोनों के हृदय में पाशविक विदेशी सरकार के प्रति तीव्र, क्रोध, घृणा और उसके पूर्ण विनाश के लिए कुछ प्रभावी कदम उठाने के सकल्प स्वाभाविक ही थे। बिस्मिल ने दैनिक सन्ध्या प्रार्थना के बाद इस अंग्रेजी राज्य के विध्वंस करने की प्रतिज्ञा की। स्वामी जी की सेवा में तत्काल पहुंच इसकी जब उन्हें जानकारी दी तब महाराज ने कहा—'प्रियवर प्रतिज्ञा करना तो बड़ा सहज है पर अमल करना कठिन है।'

बिस्मिल ने स्वामी जी महाराज के चरण स्पर्श कर निवेदन किया—"यदि श्री चरणों की कृपा बनी रही तो इस प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए जीवन के अन्तिम श्वास तक किसी प्रकार की त्रुटि नहीं आने दूंगा।" उस दिन से स्वामी जी का मानस पटल खुल गया और कई रहस्य जो अब तक इस शिष्य को नहीं बताये थे। सब निःसंकोच प्रकट कर दिये। बिस्मिल के क्रांतिकारी जीवन का सूत्रपात इस दिन ही हुआ। फलतः इस युवक के जीवन में धार्मिक और आत्मिक दृढता का बीजवपन इस शुभ घड़ी में पूज्य स्वामी सोम देव महाराज की छत्रछाया मे आज के दिन ही हुआ। इस व्रतपालन की दिशा मे बिस्मिल का पहला कदम स्वामी जी की प्रेरणा से आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने का था।

"लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में लोकमान्य की बग्घी युवकों ने खींची :—

लखनऊ कांग्रेस में बिस्मिल ने उत्साह से भाग लिया। उस समय कांग्रेस पर नरम दल का प्रभाव था। लोकमान्य तिलक इस अधिवेशन मे शामिल होने आ रहे थे। युवकदल ने धूमधाम से उनका स्वागत करने का निश्चय किया। यद्यपि तत्कालीन नरमदलीय नेता इस पक्ष में कम थे। लोकमान्य को गाड़ी से उतरते ही एक मोटर में बैठा ले जाने का प्रबन्ध स्वागत समिति ने किया था, पर युवक दल इसके विरोध मे था। बिस्मिल तथा दो और युवक मोटर के आगे लेट गये। जिस मोटर गाड़ी द्वारा लोकमान्य को चुपके से रेलवे स्टेशन से ले जाने का विचार कांग्रेस अधिकारियों का था। उसका टायर एक युवक द्वारा काट दिया गया। युवकों में बड़ा जोश था। कांग्रेस अधिकारी देखते रहे। युवकों ने चरण स्पर्श कर एक बग्घी के घोड़े खोल स्वयं बग्घी को उन्हें बिठाकर सारे शहर मे खींचा। बिस्मिल के नेतृत्व मे जनता में बड़ा जोश था। फूलों की वर्षा के साथ जनता चिल्ला रही थी, तिलक की बग्घी को एक बार हाथ लगाने दो जीवन सफल हो जाएगा।

क्रान्तिकारियो के सम्पर्क : काकोरी मे गाड़ी की लूट :

लखनऊ कांग्रेस के इस अवसर पर बिस्मिल को क्रान्तिकारियों से मिलने और विचार विमर्श के बाद कुछ कार्य करने का अच्छा अवसर मिला। एक तथ्य प्रबल रूप से उजागर हुआ कि बिना हथियारों के क्रान्ति आन्दोलन सफल नही हो सकता। इस सशस्त्र क्रान्ति के लिए पर्याप्त धन की आवश्यकता है। ताकि शस्त्र खरीदे जा सके। चाहे भारत मे चाहे विदेश मे। बिस्मिल के चिन्तन का केन्द्र अब शस्त्र प्राप्ति के लिए धन हो गया। इस कार्य के लिए किसी से दान, सहायता व उधार धन प्राप्ति की कोई सभावना नही है। बिस्मिल को एक ही उपाय सूझा। सरकारी धन की लूट, स्थिति का सब प्रकार से अध्ययन करने के बाद बिस्मिल किसी व्यक्ति के घर डाका डालना उचित नही समझता था। एक बार वह रेलयात्रा कर रहा था। और गार्ड के पास वाले डिब्बे में था। उसने देखा कि किस प्रकार स्टेशन मास्टर एक थैली लाया और गार्ड के डिब्बे मे डाल गया। बस इस घटना ने उसके दिमाग मे सरकारी धन लूटने का रास्ता खोल दिया।

काकोरी षड्यन्त्र केस बिस्मिल और दस युवक गिरफ्तार

इसी के आधार पर काकोरी रेल डकैती का कार्यक्रम ९ अगस्त १९२५ का बनाया गया। बिस्मिल की प्रेरणा से १० युवकों के साथ बिस्मिल सहारनपुर से लखनऊ जाने वाली पैसिंजर गाड़ी मे बैठ गये बीच के एक छोटे स्टेशन काकोरी से कुछ आगे चल कर गाड़ी जंगल के पास पहुची तो दूसरे दर्जे के डब्बों मे बैठे क्रांतिकारी युवकों ने जंजीर खीच ली। गाड़ी रुक गयी गाड़ी मे बैठे यात्रियों को सावधान कर दिया कि वे अपने डिब्बे से नीचे न उतरें। बाहर की ओर सिर न निकालें, केवल अपनी जगह बैठे रहें। उन्हें कोई खतरा नहीं होगा। ऐसा ही किया गया। क्रांतिकारी नीचे उतर गार्ड के डब्बे के पास पहुंच गए, लोहे का सदूक उतारकर छैनियों से जब न कट सका तब कुल्हाड़ो से तोड़ दिया गया। गार्ड को जमीन पर लिटा दिया गया ताकि बिना गार्ड की झंडी के गाड़ी न चल सके। एक यात्री जोश में रिवाल्वर चलाने को आ गए। दूसरे डिब्बे मे बैठी अपनी स्त्री के समीप जाने के लिए उन्हें रोका। नही माने सम्भवत. उनकी गोली से एक यात्री मर गया। संदूक तोड़ तीन गठरियों मे थैलियां बांध ली कुछ समय बाद ही लखनऊ पहुंच गये। अधिकतर यह युवक २०-३० वर्ष के थे। लगभग ५ हजार रुपया लूटा गया। समिति पर जो कर्ज था उसे उतारने और कुछ शाखाओं को भेजा गया। बिस्मिल ने एक पैसा भी इस राशि मे से नही लिया। फलत कार्यकर्त्ताओं की श्रद्धा बिस्मिल पर बढ गई।

(शेष पृष्ठ ११ पर)

आर्य और हिन्दू

मेरा सन्देश है—कि आर्य बनने का प्रयत्न करो, हिन्दुत्व को अपने भीतर से निकाल दो। स्वामी दयानन्द को हिन्दुओ से प्यार था, भारत की सस्कृति से प्यार था। वे हिन्दुओ को मुसलमान या ईसाई बनने से बचाना चाहते थे। वे तो अभारतीय मुसलमानो और ईसाइयों से भी प्यार स कहते थे कि आर्य बनो, और सम्प्रदायवादिता छोडो। स्वामी दयानन्द को विश्वास था, कि पौराणिक हिन्दू वेदों मे आस्था रखता है, इसलिए वह उन बातो को आसानी मे छोड देगा, जो वेद प्रतिपादित नही हैं। काशी के पण्डितो से महर्षि ने बार-बार कहा कि वेद मे मूर्ति-पूजा या पार्थिव पूजा दिखाओ मूर्ति पूजा यदि वेद प्रतिपादित नही है, तो मदिरो मे पत्थर की मूर्ति पूजा करना कराना छोड दो। शास्त्रार्थों में पण्डित पराजित हुए, पर उन्होने मूर्ति पूजा नही छोडी। मूर्ति पूजा करने कराने मे पण्डितो का स्वार्थ था। वेद मे मूर्ति पूजा नही है, तो इसमे क्या ! पुराण तो मूर्ति पूजा का प्रतिपादन करते हैं—फिर मूर्ति पूजा क्यों न की जाय ? आप याद रखिये-जब तक हिन्दू हिन्दू है, तब तक वह मूर्ति पूजा का विरोध नही कर सकता। स्वामी दयानन्द कहा करते थे कि मूर्तिपूजा ईश्वर तक पहुचने की प्रथम सीढी नही है, यह तो वह खाई है, जिसमे गिरकर फिर ऊपर उठना या बाहर निकलना अत्यन्त कठिन है।

इसमे सन्देह नही कि हिन्दू शब्द भारतीय साहित्य का शब्द नही है। हमारे देश के प्राचीन वासियों ने अपने को हिन्दू कभी नही कहा। सस्कृत भाषा का शब्द न होने के कारण इस शब्द का प्रयोग वेद, स्मृति, रामायण, महाभारत पुराण किसी भी ग्रथ मे नही हुआ। भारतीय संस्कृति और सस्कृत साहित्य का अटूट सम्बन्ध है, अत इस देश का न तो नाम हिन्द या हिन्दुस्तान हो सकता है और न यहा के रहने वाले हिन्दी या हिन्दू कहला सकते है। हिन्द या हिन्दू शब्द 'सिन्धु' का अपभ्रश अवश्य है। पश्चिमोत्तर से जो विदेशी भारत मे प्रविष्ट हुए, उन्हें भारत मे आने पर 'सिन्धु' नदी पार करनी पडी थी। सिन्धु के उस पार वे थे, इस पार हम थे। हम उन्हें 'सिन्धु पारी' कहते थे, वे हमें सिन्धु पारी कहते थे। प्रयाग मे गगा के इस पार उस पार रहने वाले एक दूसरे को गगापारी कहते है। इस प्रसग मे विदेशी लोग (यूनान और पारस अफगानिस्तान के लोग) हम अर्थात् भारतीयो को हिन्दी या हिन्दू कहने लगे। इण्डस (सिन्धु) से हमारे देश का नाम इण्डिया पडा। हम इण्डियन कहलाने लगे।

भारत के पूर्वोत्तर मे ब्रह्मपुत्र नदी है, जिसके नाम पर हमने अपने पूर्वी

आर्यसमाज और हिन्दू सम्प्रदाय

—स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

पडोसी देश को बर्मा या ब्रह्म देश कहा।

हमारे देश के कई पुराने नाम हैं—आर्यावर्त्त, भारत भारतवर्ष भरतखण्ड इत्यादि। आर्य इस देश के वासियो के गौरव का नाम है। धनी प्रतिष्ठित सुसस्कृत व्यक्ति को आर्य कहते हैं। आर्य का अर्थ ईश्वरपुत्र है, ऐसा निरुक्त के आचार्य यास्क ने कहा है। आर्य को वैश्य का पर्याय मानते हैं क्योकि वह द्रव्य या सम्पत्ति का मालिक है। ब्रह्म, राजन्य आर्य और शूद्र चार वर्ण माने जाते हैं (ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय–यजुर्वेद)। किसी भद्र पुरुष को हम प्यार और आदर से आर्य आर्यपुत्र (अज्ज, अज्ज पुत्त) सम्बोधित करते थे। आर्य शब्द के महत्व पर अलग एक लेख लिखा जा सकता है।

"हिन्दू" शब्द हमारे विघटन का प्रतीक है। राष्ट्र, जाति या समष्टि को संगठित करने के लिए एकाधिक अथवा एक समन्वय प्रतीक आवश्यक है। आर्य एक सुसंघटित सास्कृतिक जाति थी। आपस मे द्वेष और कलह उत्पन्न हुए—धर्म के नाम पर, सम्प्रदाय के नाम पर, स्वार्थ और सत्ता के नाम पर। बाहर से जो आक्रामक आये और यहीं बसे किन्तु वे जब आत्मसात् नही हुए, तो वे भी हमारे विघटन के कारण बने। समय समय मे जो समूह परस्पर विरुद्ध, एक दूसरे के द्वेषी थे, जिनके अलग अलग स्वार्थ थे, वे टुकडे ही इस समय 'हिन्दू' नाम से संबोधित किये जाते हैं भारत में रहने वाला वह विघटित समुदाय जो मुसलमान या ईसाई नही है या पारसी नहीं है, आज हिन्दू कहलाता है। अनेक अर्थों में ईसाई सगठित है—ईसा, ईश्वर और बाइबिल में आस्था रखने वाला। मुसलमान भी सगठित समुदाय है—खुदा, मुहम्मद और इस्लाम या कुरान मे आस्था रखने वाला किन्तु अपने देश में हिन्दू उस विघटित वर्ग का नाम है, जिसमे आस्तिक भी हैं, नास्तिक भी हैं, शाकाहारी भी हैं, मासाहारी भी हैं, सगुणोपासक हैं, निर्गुणोपासक हैं, और उपासना मे विश्वास न रखने वाले भी हैं, शैव भी हैं, तो उनसे लडने वाले वैष्णव भी हैं। नदियों, वृक्षों और चौरस्ते के पूजने वाले भी हैं, और मुसलमानों की कब्रों पर चादर चढाने वाले भी हैं। जितने प्रकार के विघटनों की कल्पना हो सकती है, वे सब इस देश में विद्यमान है। हनुमान् चालीसा, श्रीमद्–भगवद्गीता, तुलसी की रामायण या सत्यनारायण की कथा से प्रेरणा लेने वाले व्यक्तियों से लेकर सन्त और सूफी सम्प्रदाय तक के व्यक्ति आपको हिन्दू वर्ग मे मिलेंगे। भारत की सीमा के भीतर उनके विविध मन्दिर और तीर्थस्थान हैं। सभी प्रकार की गप्पों से भरे इनके पुराण हैं। अभिप्राय है, कि मुसलमानों और ईसाइयों या बौद्धों की तरह इनको एक सूत्र मे बाधने वाली कोई चीज नही है। किन्हीं दो मदिरो में एक सी पूजा-प्रार्थना स्तुति नही और अनपढ मूर्ख हिन्दू तो हर मूर्ति के सामने सिर नवाता चला जाता है। यह है हिन्दू का विघटन स्वरूप जिस का कतिपय विद्वानों ने 'उदारता' नाम दे रखा है। हिन्दू अपनी मूर्खता को सहनशीलता कहता है, पर इसका इतिहास तो कुछ और ही बताता है। जब महात्मा बुद्ध ने बौद्ध विचारों का उपदेश दिया, तो हिन्दुओं ने उनका विरोध किया। जब जैन मुनियो ने अपनी आचार पद्धति को जन्म दिया, तो हिन्दुओं ने उनका तिरस्कार करके जैनियों पर अत्याचार किए। कल्कि का अवतार जैनियों को परास्त करने के लिए ही हुआ था। नैव गच्छेत् जैन-मन्दिरम् की बात इस समय के हिन्दुओं ने की और उन्हें नास्तिक घोषित किया। बौद्धों को शकराचार्य ने भारत से उन्मूलित कर दिया। हिन्दुओं के अत्याचारो से पीडित होकर देश के पूर्वाञ्चल में बौद्ध सामूहिक रूप से मुसलमान बन गये। जब कभी भी कोई नयी विचारधारा प्रस्तुत हुई, हिन्दुओं ने प्रारम्भ मे उनका घोर विरोध किया। आर्यसमाज के प्रति भी प्रारम्भ में हिन्दुओं ने इस प्रकार की कटुता दिखाई। इस प्रकार कई शतियों से भारत का तथाकथित हिन्दू अत्यन्त अनुदार और अप्रगतिशील रहा है। जब विरोध करते करते थक जाता है तो वह अपनी निर्बलता और निर्ममता का नाम उदारता और सहनशीलता रख लेता है। परास्त होने पर आज का हिन्दू भारत में शकराचार्य के गीत इसलिए गाता है कि उन्होंने बौद्धों को देश से निकालकर छोड़ा, और फिर वही हिन्दू ब्रह्मदेश के बौद्धों के साथ आत्मीयता के सम्बन्ध जोड़ने को तैयार हो जाता है—इस तर्क पर कि तुम भी मूर्तिपूजक हो और हम भी मूर्तिपूजक हैं।

भारतीय हिन्दू कौन है ? जिसके समाज में निम्न पांच भयंकर कलक हों और जिसमें इन कलङ्कों का विरोध करने की क्षमता भी न हो—

(१) मूर्तिपूजा और अवतारवाद (परमात्मा और मनुष्य के बीच में किसी ऐतिहासिक या काल्पनिक व्यक्ति की कल्पना करना और उसकी मूर्ति को पूजने का नाटक रचना)।

(२) जन्म के आधार पर समाज में वर्ग भेद पैदा कर देना-जात पांत की प्रथा। जातियो में भी उपजातियां और उनमे कोई नीचा कोई जन्मना ऊंचा।

(३) अस्पृश्यतावाद अर्थात छुआछात शताब्दियों से चला आया अमानवीय अत्याचार।

(४) पण्डे, पुजारियो, महन्तों के हाथ में स्वर्ग-नरक की ठेकेदारी स्वर्ग मुक्ति की लालच और स्वर्ग के नाम पर श्रद्धालु भक्तों का शोषण। नित्य नये बाबा, नये भगवान्, नयी देवी, माताओं मे आस्था।

(५) मृतक श्राद्ध, तावीज जन्मपत्री फलित ज्योतिष आशीर्वाद और अभिशाप के प्रलोभन और आतंक, विविध प्रकार की रूढिया और अन्धविश्वास।

निस्सन्देह, भारत मे भारतीय हिन्दुओं का वही संस्था उद्धार कर सकती है, जो इन पाच कलंकों के विरुद्ध क्रांति करने का साहस रखती हो।

हिन्दुओ और वैदिक मान्यताओं में अन्तर

इसमे संदेह नही कि हिन्दू शब्द न प्राचीन है, न सनातन। साहित्य में इस का प्रयोग न किसी आर्ष ग्रन्थ में है, न सस्कृत वाङ्मय के आचार्य ग्रन्थ में। भारतीय वाङ्मय की युग युगान्तर से चली आयी आर्य, जैन और बौद्ध परम्परा में श्रेष्ठ व्यक्ति और श्रेष्ठ समष्टि के लिए आर्य शब्द का प्रयोग होता आ रहा है। आर्य संस्कृति, और आर्य साहित्य के रचयिता सस्कृत, पालि और प्राकृत के माध्यम से न केवल उत्तरी भारत में हुए, ये सुदूर दक्षिण भारत और पूर्वाञ्चल में भी हुए—तमिलनाडु, केरल आदि सभी प्राञ्चलों में। इनकी भाषा में आर्य शब्द बराबर स्वीकृत रहा, ऐसी स्थिति मे अब हिन्दू शब्द क्यों ? आर्य शब्द का बहिष्कार क्यों, हिन्दू शब्द का अंगीकार क्यों ? क्या, केवल इस कारण क्योंकि दयानन्द और आर्यसमाज ने इसे अपनाया है ? यदि आर्यसमाज के कारण आर्य शब्द का बहिष्कार होता हो तो ब्रह्मसमाज के कारण ब्रह्म शब्द का और देवसमाज के कारण देव शब्द का, एवं प्रार्थनासमाज के कारण प्रार्थना शब्द का बहिष्कार—इससे बढ़कर मूर्खता क्या होगी ? भारत

आर्यसमाज और हिन्दू सम्प्रदाय

के संविधान ने यदि हमारे देश का नाम भारत रख दिया, तो वह भी हमारी संस्कृति और हमारे अति प्राचीन वाङ्मय का शब्द है – तिस्रो देव्य.—इळा, सरस्वती और भारती ऋग्वेद की परम्परा की हैं। हम भारतीय, भारती हमारी राष्ट्रभाषा और संस्कृति तथा भारत हमारा देश या राष्ट्र। हम आर्य, आर्य भाषा हमारी भाषा, आर्यावर्त हमारा राष्ट्र।

वैदिक परम्पराओं को, वैदिक आचार धर्म को मानने वाला प्रत्येक मानव आर्य और वैदिक आस्थाओं के विपरीत व्यवहार बुद्धि रखने वाला व्यक्ति अनार्य या दस्यु, चाहे वह संसार के किसी स्थल पे क्यों न रहता हो। वैदिक आस्था या [illegible]ता से हमारा अभिप्राय आस्तिकता (प्रभु, प्रभु की सृष्टि, और प्रभु के ज्ञान में आस्था), नैतिकता के मूल्यों (सत्य, अहिंसा, श्रद्धा सौमनस्य, आदि) के प्रति आदर की भावना और प्रकृति की अमित सामर्थ्य, बल आदि को समझना और उसका मानव कल्याण के लिए दोहन करना और इसे ही यज्ञ मानना एवं व्यक्ति और समाज का हिताहित समझना है। स्वामी दयानन्द ने इन्हीं की ओर आर्यसमाज के नियमों में संकेत किया है।

वैदिक समय में मानव का धर्म इसी प्रकार की आस्तिक आस्थाओं से बना हुआ था। वैज्ञानिक युग के भावी मानव का धर्म यही होगा। पैगम्बरवाद पर आधारित मुस्लिम या ईसाई धर्म – इनका युग समाप्तप्राय है। हजरत मुहम्मद, महात्मा ईसा उसी प्रकार के महामानव माने जायेंगे, जैसे सुकरात, अफलातून, गौतम, न्यूटन या आइन्स्टाइन।

अवतारवाद के दिन समाप्त हो गये। भोली-भाली जनता को भुलावे मे डालने के लिए चाहे कुछ क्यों न कहा जाय। अवतारवाद का ढकोसला केवल भारत में ही चल सकता है। विष्णु का अवतार केवल भारत मे हो, ऐसा तो कोई सिद्धान्त नही बन सकता। विश्व मानव-समाज की दृष्टि से अवतारवाद का कोई स्थान नही।

मैं किसी की आलोचना नहीं करना चाहता। लोग कहते हैं कि साईं बाबा की तस्वीर से मधु की बूंदें टपकती हैं, भभूत गिरती है, साईं बाबा क्षणमात्र मे स्विटजरलैण्ड की घड़िया अपने भक्तो को भेंट कर देता है और न जाने कितने चमत्कार दिखाता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि इस प्रकार की गप्पों के प्रचार से न तो साईं बाबा का सम्मान बढ़ता है और न भक्तों का। जो व्यक्ति घास की एक दूब भी नही बना सकता, जो अपने सिर के बाल भी नहीं बना सकता, वह ऐसे अभूतपूर्व कार्य कैसे कर सकेगा। परमात्मा को आम तैयार करने मे कितना बीच का काम करना पड़ता है। आम के बीज से अंकुर निकलेगा, अंकुर से तना बड़ा होगा, पत्तिया निकलेंगी, बौर आवेगा और कितनी स्थितियों के बाद उस पेड़ पर आम फलेगा। आम तैयार करने का यह प्राकृतिक विश्वसनीय तरीका है। बिना बीज, अंकुर, तना, पत्तो, फूल कम।ये तुरन्त आम ऐसा फल तैयार कर देना, यह गप्प और बाबा-बाजी है। ऐसी बातो मे आर्य भद्र पुरुष कभी कोई आस्था नही रखेगा। जो व्यक्ति ऐसी गप्पों को माने वह हिन्दू है और जो इस प्रकार की गप्पो को प्रोत्साहन न दे वह आर्य है।

महाभारत के बाद देश की स्थिति

महाभारत के गृह-युद्ध के अनन्तर भारत के उत्तर-पूर्वीय कोनो से बार-बार इस देश पर हमले हुए। यूनानी आये, कुषाण आये, हूण आये। इनमें से कुछ विजेता भारत में बस गए और भारतीय आर्यों ने उन्हें अपना बना लिया, वे इस देश का अंग बन गए। देश के मुसलमानों ने आक्रमण किया तो ईरानी आर्य (जो पारसी कहे जाते थे), अपनी "अग्नि" को लेकर भारत आ बसे। उन्होंने मुसलमानी धर्म स्वीकार नही किया था। ये पारसी भी यों शान्तिपूर्वक भारत मे बस गए। ६०० ई० के लगभग से जो मुसलमानी काफिले इस देश पर आक्रमणकारी के रूप में आए; वे अपने साथ कुरान और हजरत मोहम्मद को रसूल के रूप में लाये। इन्होने नये धर्म और नई सभ्यता को भारत पर लादना चाहा। इन्होंने इस देश के रहने वालों को काफिर, बुतपरस्त और निन्द्य शब्दो से सम्बोधित किया—'हिन्दू' शब्द की इन्होंने अप-व्युत्पत्ति की—काफिर, चोर, गुलाम और बुतपरस्त। मुसलमान भारत में नये नारे लेकर आए थे। भारत छिन्न-भिन्न हो गया था, मूर्तिपूजा, अवतारवाद जन्मना जाति-पाँति-वाद ने इसे जीर्ण-शीर्ण कर डाला था। मुसलमान विजेता के रूप में आते रहे, उन्होंने भारत पर राज्य भी किया और यहां के लोगो को मुसलमान भी बना डाला। ६०० ई० से १६०० ई० तक लगभग एक तिहाई भारतीय मुसलमान हो गया। ७०० वर्षों में १० करोड़ के लगभग मुसलमान भारत की जनगणना में अंकित हुए। इनमें थोड़ी सी संख्या भारत के बाहर से आए हुए मुसलमानों की थी—शेष तो भारतीय हिन्दू ही थे, जो मुसलमान बन गए। कुछ हिन्दुओं को मुस्लिमशासन मे बलात् मुसलमान बनाया गया, कुछ प्रलोभनों से बने और काफी संख्या में ऐसे हिन्दू भी मुसलमान बने जो भारत मे हिन्दुओ के अत्याचार और गर्हित व्यवहार से तंग थे। बंगाल, असम, उड़ीसा के बौद्ध हिन्दुओ के अत्याचारो से दुःखी होकर पूरे के पूरे ही मुस्लिम बन गए। ये बौद्ध हिन्दू समाज मे घृणित और कुत्सित व्यवसाय के लिए बाध्य किये जाते थे।

स्वामी दयानन्द का आगमन

१८६०-१८८० ई० के लगभग महर्षि दयानन्द ने हिन्दुओ की इस भीषण स्थिति का परिचय प्राप्त किया और उन्होने इन हिन्दुओ के बीच मे अपना कार्य प्रारम्भ किया। स्वामी दयानन्द ने यह देखा कि मुसलमान १००० वर्ष से इस देश के लोगो को मुसलमान बना रहे हैं और साथ ही साथ लगभग २०० वर्ष से इस देश के लोग ईसाई भी हो रहे हैं। अंग्रेजी साम्राज्य ने भारत मे ईसाईमत को प्रोत्साहन दे रखा है। स्वामी दयानन्द के समय भारतवासियो में ईसाइयो की संख्या ०.१ प्रतिशत से अधिक तो न थी, पर देश परतन्त्र था और अंग्रेजी शासन ईसाई धर्म को स्वभावतः प्रोत्साहन दे रहा था। जिन कारणो से भारतीय हिन्दू मुसलमान बनता था, लगभग उन्हीं कारणों से ईसाई भी बनने लगा। स्वामी दयानन्द ने भारतीय हिन्दुओं की इन सब समस्याओ पर विचार किया।

स्वामी दयानन्द जिस परिणाम पर पहुँचे वह यह था —

१. भारत में रहने वाले हिन्दुओ की रक्षा करना—

(क) मुसलमानों से,
(ख) ईसाइयों से,
(ग) पश्चिमी सभ्यता के दुर्गुणों से।

२ हिन्दुओं की यह रक्षा तभी संभव है जब हिन्दू अपने समाज के निम्न पांच कलंको से छूट जायें। ये कलंक हैं—

(क) मूर्तिपूजा और अवतारवाद
(ख) जन्मना जाति-पाँतिवाद
(ग) छूतछातवाद या अस्पृश्यतावाद
(घ) सस्ती मुक्ति दिलाने वाले ठेकेदारो, पण्डे, पुजारी, महन्त मठाधीश आदि से विमुक्ति।
(ङ) अन्धविश्वास और रूढियाँ जैसे मृतक-श्राद्ध, फलितज्योतिष, भूत प्रेतवाद, हस्तरेखा और भविष्य, मन्दिर और तीर्थों से सम्बद्ध अन्धविश्वास आदि।

यदि दूसरे शब्दों में यह कहें, तो यह है कि स्वामी दयानन्द "हिन्दुत्व" का विरोध करके हिन्दुओ की रक्षा करना चाहते थे। यदि हिन्दू यह समझता है कि ऊपर दिये गये ५ कलङ्क ही हिन्दू धर्म की विशेषता हैं, तो इस प्रकार के हिन्दुत्व का भविष्य अन्धकारमय है। वे हिन्दुओं के बीच एक ऐसे आर्यसमाज का संघटन करना चाहते थे, जो हिन्दुत्व के दोषो से सर्वथा मुक्त हो और जिस संघटन मे अभारतीय विदेशी सम्प्रदायवाद भी विलीन हो सकें और विशुद्ध मानव समाज बन सके।

भारतीय इतिहास में आर्ष और अनार्षकाल

मैं बराबर कहा करता हूँ कि भारत वर्ष की सभ्यता, संस्कृति और सिद्धान्त के इतिहास मे गुरुवर विरजानन्द और उन के निष्ठावान् शिष्य ऋषि दयानन्द की सब से महत्त्वपूर्ण शोध आर्षकाल और अनार्षकाल का निर्धारण है। गुरु विरजानन्द ने यह विभाजक रेखा व्याकरण के प्रसंग मे खींची थी, जिसके अनुसार पाणिनि महर्षि की अष्टाध्यायी और पतंजलि मुनि का महाभाष्य आर्षकाल की रचनाएं हैं, इसलिए अधिक सुबोध और विश्वसनीय हैं। सिद्धान्तकौमुदी मनोरमा आदि ग्रन्थ अनार्षकाल के है, दुरूह और विश्वास के अयोग्य। ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि तक का काल आर्ष और उनके बाद का काल अनार्ष या आचार्य युग है। महाभारत के प्रसंग दोनो के बीच की विभाजक रेखा के पास के है।

आर्षकाल मे केवल वेद ही मनुष्य का स्वाभाविक सहज धर्म था। ईश्वर और मनुष्य के बीच मे न कोई अवतार था, न पैगम्बर, न आचार्य, न गुरु। न तो देवालय थे, न मूर्ति पूजा थी। महायज्ञो और अन्य विशिष्ट यज्ञो का प्रचलन था। वेद, ईश्वर और ईश्वर की सृष्टि मे आस्था थी। न वैष्णव थे न शैव। न जन्मना जातिपाँति थी, न महन्तो के अखाड़े। सब संघटन-सूत्र मे आबद्ध आर्य थे। अनार्षकाल से हमारा पतन आरम्भ हुआ। वेदों के नाम पर हिंसा प्रचलित की गई। मनुष्य स्वार्थी बन गया। मतमतान्तर आरम्भ हो गए। देश का विघटन हुआ और ह्रास। यह पतन और विघटन जब चरम सीमा के निकट पहुंचा, हमें लोगो ने 'हिन्दू' कहा। संस्कृत भाषा और संस्कृति से हम दूर हटते गए। यह विघटन और पतन हिन्दू और हिन्दुत्व नाम से हमारे सामने आया।

अनैतिकता और अन्धविश्वास के साथ समझौता

ऋषि दयानन्द इस युग के इस बात के एकमात्र प्रवर्तक थे, जिन्होंने कहा कि हम सब आपस के वैरभाव को त्यागकर सत्य वैदिक आस्थाओं को स्वीकार करें और सत्य का ग्रहण और असत्य का प्रतिवाद करें। अनैतिकता और अन्धविश्वासो को मत मतान्तरो से निकाल दें, तो सभी मनुष्य एक सार्वभौम मञ्च पर मानवमात्र की सेवा कर सकते हैं।

विवेकानन्द का हिन्दुत्व ईसा और ईसाइयत का पोषक है

हमारा देश आर्यावर्त्त, भारतवर्ष या भारत है। हम भारतीय हैं। भारत हमारा राष्ट्र है। हम न हिन्दू हैं, न मुसलमान, न ईसाई, न सिख, न जैनी। भारतीय संस्कृति और भारतीय परम्पराऐं विपरीत परिस्थितियों से बराबर संघर्ष करती रही हैं।

इस वर्तमान बीसवी सदी मे मनुष्य मात्र की एक गणित है, सबका एक रसायन शास्त्र है, एक प्राणि शास्त्र है, एक भौतिकी और एक शिल्प है। इसी प्रकार वेद और वेदांग के प्रति प्राचीन युग मे ज्ञान-विज्ञान, मानवमात्र एक था। हिन्दू गणित, अरब ज्योतिष, यूनानी तर्क शास्त्र और चीनी या मिश्री तत्त्वज्ञान -- ऐसे शब्द मध्य युग मे प्रचलित हुए। अब प्राचीन ऋषियो की परम्परा मे विश्व से सभी विद्वान् और तत्त्वज्ञानी सत्य और ज्ञान को समझने मे संकीर्णताओं को छोडकर एक हो गये हैं। इसी प्रकार स्वामी दयानन्द ने प्रयास किया सब व्यक्ति मत-मतान्तरवाद छोडकर सत्य धर्म के सिद्धान्तों में एक हो जायें।

भारत मे अन्धविश्वासो के पोषण और समर्थन का नाम हिन्दुत्व है। अन्य देशो मे ईसाई और मुसलमान भी इन्ही अन्धविश्वासों का पोषण और समर्थन कर रहे हैं। आर्यसमाज, महर्षि दयानन्द, और आर्षकालीन प्राचीन परम्पराऐं इन मान्यताओ का न तो पोषण करती थी, न समर्थन। हम तुम्हारे असत्यों, अन्धविश्वासो और अनैतिकताओं का प्रतिवाद न करें और तुम हमारे असत्यों, अन्धविश्वासों और अनैतिकताओं का विरोध न करो, इस प्रकार के समन्वय की बात करना पतनोन्मुख होना है। आर्यसमाज दृढसंकल्प है कि किसी भी स्थिति, देशकाल या अवस्था मे किसी के अन्धविश्वास, असत्य या अनैतिकता के साथ साझा या समझौता नही करेगा।

प्रभु की कला पर, ज्ञान-विज्ञान और सत्यशिल्प पर सब एक हो सकते हैं किन्तु मंदिर, मस्जिद, गिरजे, कबरें, अवतार, पैगम्बरवाद, मूर्ति और छल-कपट पूर्ण चमत्कारो पर एकता नही हो सकती। अपने देश मे हिन्दुओं को इस बात पर पूरी तरह विचार करने की आवश्यकता है।

आर्यसमाज भारतवर्ष मे अपने को किसी भी राष्ट्रीय अंग से पृथक् नही करना चाहता। वह सब का हितषी है, चाहे वह किसी प्रदेश का क्यों न हो। किन्तु बिना अन्धविश्वासों और रूढ़ियों को तोड, बिना परम्परा से चली आ रही रस्मरिवाजों और आस्थाओ को शुद्ध और पवित्र किए हम अपने राष्ट्र का संगठन नही कर सकते। अनैतिक और अन्धविश्वासी तत्त्वो के साथ समझौता करने से राष्ट्रीय एकता सम्भव नहीं है।

हमारे आधुनिक युग के चिन्तकों मे स्वामी विवेकानन्द का स्थान ऊंचा है। उन्होंने अमरीका जाकर भारत की मान मर्यादा की रक्षा में अच्छा योग दिया। वे रामकृष्ण परमहंस के अद्वितीय शिष्य थे। हमें यहाँ, उनकी फिलासफी की आलोचना नही करनी है। सबकी अपनी अपनी विचारधारा होती है। अमरीका और यूरोप से लौटकर आये तो रुढिवादी हिन्दुओ ने उनकी आलोचना भी की थी।

इधर कुछ दिनों से भारत मे एक नयी लहर का जागरण हुआ, यह लहर महाराष्ट्र के प्रतिभाशाली व्यक्ति श्री हेडगेवार जी की कल्पना का परिणाम था, जो मुसलमान, ईसाई, पारसी नही हैं, उन भारतीयो का 'हिन्दू' नाम पर संगठन। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापना हुई, राष्ट्रीय जागरण की दृष्टि से। गुरु गोलवलकर जी के समय में संघ का रूप निखरा और संघ गौरवान्वित हुआ, यह सांस्कृतिक संस्था धीरे-धीरे रूढिवादियों की पोषक बन गयी। देश के विभाजन की विपदा ने इस आन्दोलन को प्रश्रय दिया, जो स्वाभाविक था। हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य की पराकाष्ठा का परिचय १९४७ के आसपास हुआ। ऐसी परिस्थिति में गान्धीवादी कांग्रेस बदनाम हुई और साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों को पोषण मिला। आर्यसमाज ऐसा संगठन भी संयम खो बैठा और इसके अधिकाश सदस्य (जिसमे दिल्ली, हरियाणा पंजाब के विशेष रूप से थे) स्वभावतः हिन्दूवादी आर्यसमाजी बन गये। जनसंघ की स्थापना हुई जिसकी पृष्ठभूमि मे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ था। फिर विश्व हिन्दू परिषद बनी। पिछले दिनों का यह छोटा सा इतिवृत्त है।

हिन्दूवादियो ने विवेकानन्द का नाम खोज निकाला, और उन्हें अपनी गतिविधियो में ऊंचा स्थान दिया। पिछले १००० वर्ष से भारतीयो के बीच मुसलमानों का कार्य प्रारम्भ हुआ। सन् ९०० से लेकर १९०० के बीच में दस करोड़ भारतीय मुसलमान बन गये अर्थात् सौ वर्ष में एक करोड व्यक्ति मुसलमान बनता गया, अर्थात् प्रतिवर्ष १ लाख भारतीय मुसलमान बन रहा था। इस धर्म परिवर्तन का आभास न किसी हिन्दू राजा को हुआ, न हिन्दू नेता को। भारतीय जनता ने अपने समाज के संघटन की समस्या पर इस दृष्टि से कभी सूक्ष्मता से विचार नही किया था। पण्डितो, विद्वानों, मंदिरों पुजारियो के सामने यह समस्या राष्ट्रीय दृष्टि से प्रस्तुत ही नहीं हुई।

स्मरण रखिये कि पिछले १००० वर्ष के इतिहास में स्वामी दयानन्द अकेले ऐसे व्यक्ति हुए है, जिन्होंने इस समस्या पर विचार किया। उन्होंने दो समाधान बताये, भारतीय समाज सामाजिक कुरीतियों से आक्रान्त हो गया है, समाज का फिर से परिशोध आवश्यक है। भारतीय सम्प्रदायों के कतिपय कलङ्क हैं, जिन्हें दूर न किया गया, तो यहाँ की जनता मुसलमान तो बनती ही रही है, आगे तेजी से ईसाई भी बनेगी। हमारे समाज के कतिपय भयंकर कलंक ये थे।

१. मूर्ति पूजा और अवतारवाद।

२, जन्मना जाति पांतवाद।

३. अस्पृश्यता या छुआछूतवाद।

४. परम स्वार्थी और भोगी महन्तों, पुजारियों, शकराचार्यो की गद्दियों का जनता पर आतंक।

५. जन्मपत्रियों, फलित ज्योतिष, अन्धविश्वासों, तीर्थों और पाखण्डों की भोली भाली ही नहीं शिक्षित जनता पर भी कु-प्रभाव। राष्ट्र से इन कलङ्कों को दूर न किया जायेगा, तो विदेशी सम्प्रदायों का आतं इस देश पर रहेगा ही।

दूसरा समाधान स्वामी दयानन्द ने यह प्रस्तुत किया कि जो भारतीय जनता मुसलमान या ईसाई हो गयी है उसे शुद्ध करके वैदिक आर्य बनाओ। न केवल इतना ही, बल्कि मानवता की दृष्टि से अन्य देशों के ईसाई, मुसलमान, बौद्ध, जैनी सबसे कहो, कि असत्य और अज्ञान का परित्याग करके विद्या और सत्य को अपनाओ और विश्वबन्धुत्व की संस्थापना करो।

विवेकानन्द के अनेक विचार उदात्त और प्रशस्त थे, पर वह अवतारवाद से अपने को मुक्त न कर पाये और भारतीयों को मुसलमान या ईसाई बनने से कभी न रोक पाये। यह स्मरण रखिये कि यदि महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज न होता तो विषुवत् रेखा के दक्षिण भाग के द्वीप समूह में कोई भी भारतीय ईसाई होने से बचा न रहता। विवेकानन्द के सामने भारतीयों का ईसाई हो जाना कोई समस्या न थी।

आज देश के अनेक प्रान्तों में विवेकानन्द के प्रिय देश में अमरीका के षड्यन्त्र से भारतीयो को तेजी से ईसाई बनाया जा रहा है। स्मरण रखिये कि विवेकानन्द के विचार भारतीयों को ईसाई होने से रोक नही सकते। प्रत्युत मैं तो यह कहूंगा कि यदि विवेकानन्द की विचारधारा रही तो भारतीयो का ईसाई हो जाना बुरा नहीं माना जायगा, श्रेयस्कर ही होगा। विवेकानन्द के निम्न शब्दो पर विचार करें। (दशम खण्ड, पृ० ४०-४१)

मनुष्य और ईसा में अन्तर—अभिव्यक्त प्राणियों मे बहुत अन्तर होता है। अभिव्यक्त प्राणी के रूप में तुम ईसा कभी नही हो सकते।

"ब्रह्म ईश्वर और मनुष्य दोनों का उपादान है।..."ईश्वर अनन्त स्वामी है और हम शाश्वत सेवक हैं।" स्वामी विवेकानन्द के विचार से ईसा ईश्वर है और हम और आप साधारण व्यक्ति हैं, हम सेवक और वह स्वामी है।

इसके आगे स्वामी विवेकानन्द इस विषय को और भी स्पष्ट करते हैं—

"यह मेरी अपनी कल्पना है कि वही बुद्ध ईसा हुए। बुद्ध ने भविष्य वाणी की थी, 'मैं पाँच सौ वर्षों में पुनः आऊंगा, और पाँच सौ वर्ष बाद ईसा आये। समस्त मानव प्रकृति की यह दो ज्योतियां हैं। दो मनुष्य हुए हैं—बुद्ध और ईसा। यह दो विराट् थे। महान् दिग्गज व्यक्तित्व, दो ईश्वर। समस्त संसार को वे आपस में बांटे हुए हैं। संसार मे जहाँ कहीं भी किञ्चित् ज्ञान है, लोग या तो बुद्ध अथवा ईसा के सामने सिर झुकाते हैं। उनके सदृश और अधिक व्यक्तियों का उत्पन्न होना कठिन है। पर मुझे आशा है कि वे आयेंगे। पाँच सौ वर्ष बाद मुहम्मद आये पाँच सौ वर्ष बाद प्रोटेस्टेण्ट लहर लेकर लूथर आये और अब पाच सौ वर्ष फिर हो गए। कुछ हजार वर्षों में ईसा और बुद्ध जैसे व्यक्तियों का जन्म लेना एक बड़ी बात है। क्या ऐसे दो पर्याप्त नही हैं। ईसा और बुद्ध ईश्वर थे, दूसरे सब पैगम्बर थे।

कहा जाता है कि शंकराचार्य ने बौद्ध धर्म को भारत से बाहर निकाल दिया, और आस्तिक धर्म की पुनः स्थापना की। महात्मा बुद्ध (अर्थात् वह बुद्ध जो ईश्वर थे) को भी मानिये और उनके धर्म को देश से बाहर निकाल देने वाले शकराचार्य को भी मानिये, यह कैसे हो सकता है? विश्व हिन्दू परिषद वाले स्वामी शकराचार्य का भारत में गुणगान इस लिए करते हैं कि उन्होंने भारत को बुद्ध के प्रभाव से बचाया। बर्मा मे ये ही विश्व हिन्दू परिषद वाले सनातन धर्म स्वयं सेवक संघ की स्थापना करके बुद्ध की मूर्तियो के सामने नत मस्तक होते हैं। यह हिन्दुत्व की विडम्बना है।

यदि स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में बुद्ध और ईसा दोनों ईश्वर है तो भारत में ईसाई धर्म के प्रवेश में आप क्यों आपत्ति करते हैं। पूर्वोत्तर भारत में ईसाइयों का जो प्रवेश हो रहा है, उसका आप स्वागत कीजिए !! यदि विवेकानन्द को तुमने 'हिन्दुत्व" का प्रचारक माना है, तो तुम्हें धर्म परिवर्तन करके किसी का ईसाई बनना या किसी को ईसाई बनाना क्यों बुरा लगता है।

मैं स्पष्ट कहना चाहता हूं कि विवे-

(शेष पृष्ठ १२ पर)

विरोध का यह ढंग ठीक नहीं है

मान्यवर !

आर्यजगत् (२ फरवरी ८६) में छपे समाचार के अनुसार जयपुर में सरिता की होली जलाई गई है। प्रशंसनीय कदम है परन्तु क्या समूची सरिता जल गई। बड़े बड़े पढ़े लिखे लोग भी कभी कभी ऐसे बचकाने काम कर देते हैं कि जरूर हर आदमी उन पर आश्चर्य कर बैठता है। अब सरिता को ही देखिये पत्रकारिता में आने के बाद सरिता साहित्य है और साम न्यत. सभी सोच सकते हैं कि साहित्य जलाने से कभी नष्ट नहीं होता।

खलीफा उमर ने अलेक्जेण्डरिया के समूचे पुस्तकालय को जलवा डाला था। पूछा जा सकता है क्या अलेक्जैण्डरिया का अब कोई साहित्य बाकी नहीं है। मुस्लिम आक्रान्ताओं तथा अन्य विदेशी आक्रान्ताओं ने भारतीय वाङ्मय को नष्ट करने के लिए नालन्दा, तक्षशिला और कश्मीर जैसे विशालकाय पुस्तकालयों से वर्षों अपने हमाम के पानी को गर्म किया था। ऐसे ही क्या वे भी नष्ट हो गये? इसीलिये पुस्तकों का जलाना क्या कोई अच्छी बात है? यह हो सकता है इससे थोड़ा सा विरोध आभासित हो जायें। इससे विरोध भी पूरा प्रकट नहीं होता। सुनते हैं गुरुदेव विरजानन्द ने शिष्य दयानन्द से आर्ष साहित्य विरोधी साहित्य जमुना में फिकवा दिया था। मगर क्या वह साहित्य नष्ट हो गया? नहीं न, इसलिये पुस्तकें जलाने के स्टंट हमारे स्वाध्याय न करने के बहाने है जो कम से कम आर्यसमाज के दृष्टिकोण से कतई और किसी भी अर्थ में अच्छा नहीं है—मैं निश्चित रूप से ऐसा मानता हूं।

आज के युग में जलाने और अखबार में छपवाने से किसी भी चीज को कम करना सोचना, बालकपन ही कहा जा सकता है। अन्यथा तो हर आदमी सोच सकता है कि इससे तो और उल्टा उसका प्रचार ही होता है। अब सरिता की इस कहानी को जिसने सुना होगा वह यदि सरिता नहीं भी जानता होगा तो एक बार सरिता यदि जिज्ञासु हुआ जरूर खरीदने की कोशिश करेगा, और कोशिश करेगा तो ऐसे कोशिश कर्ता कितने ही उस सरिता प्रवाह की तीव्रता में बह जायेंगे।

आर्यसमाज भारतीय संस्कृति और विशेषकर आर्ष संस्कृति का पोषक है और बुद्धि गम्यताहीन संस्कृतियों और साहित्य का घोर विरोधी है। और आर्यसमाज ने सदैव इस अग्राह्यता का जमकर कड़ा विरोध किया है। परन्तु आर्यसमाज के विरोध की शैली जलाना, फूकना या गाढ़ देना नहीं है। आर्यसमाज के विरोध की शैली के पिटे साहित्यवाद में पानी मांगने लायक भी नहीं रहते, ऐसे मरते हैं। हमसे पिटे पुराण अब अपनी बकवासों में अलंकार खोजकर जान बचाना चाहते हैं पर फिर भी पुराने किलों की भांति भरभरा कर ढह रहे हैं। इसी प्रकार बाइबिल में कितने ही परिवर्तन हो गये और तो और बेचारी कुरआन की आन टूट गयी। पुराने संस्करणों और अब के हंस्करणों में उसमें जमीन आसमान का अन्तर आ गया है।

यदि सरिता को जलाना ही है तो मैं अपने आदरणीय बन्धु श्री सत्यव्रत जी सामवेदी तथा उनकी विचारधारा से मिलते-जुलते सभी आदरणीयों को परामर्श देना चाहूंगा, भारत ही नहीं विश्व की पत्रकारिता में हमारा बहुत ऊंचा स्थान है अब भी आर्यसमाज और आर्यसज्जनों के व्यक्तिगत रूप से भारत से बाहर और भारत में हजारों अखबार निकलते हैं, पत्र-पत्रिकाएं निकलती हैं।

लेकिन अपनी पत्रकारिता का आलीशान भूत और सक्षम वर्तमान होते हुए भी हमारे पास कोई पत्र-पत्रिका ऐसी नहीं जिसे आर्यजगत् से अलग जनसामान्य यह सोचकर पढ़ता हो कि यह पत्र आर्यसमाज का है इसमें भारी शक्ति है। यह तो आज हर कोई जानता है कि पत्रकारिता भी आम व्यवसाय की तरह एक व्यवसाय है। अब आर्यसमाज के लोग ही अपने व्यवसायों के विस्तार के लिए कई अजीबो गरीब साधन अपना लेते हैं, कइयों के व्यवसाय भी अजीबो गरीब होते हैं तो बेचारी सरिता तो साहित्य ठहरी उसका क्या दोष? उसका व्यापार जैसे चमकता है जैसे उसकी मार्किट बनती है, बनाने में लगी है।

विचार अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता वाले देश में हम कैसे किसी के मुह पर ताला लगा सकते हैं? फिर, वह भी सोचता है कि क्या हमारे ताले लगाने से वह मान जाएगा, कभी नहीं। बल्कि और भी जोर लगाकर चीखेगा, ढूंकेगा, बलबलायेगा।

इसीलिए इसका केवल एक ही चारा है कि यदि सम्भव हो सके तो आर्यसमाज अथवा श्री सामवेदी जैसे नेतावीरी वाले पहुंच वाले, धनवाले और लेखनी के धनी महानुभाव अच्छे कलेवर और विषय सामग्री वाले पत्र का सम्पादन करें उसके प्रचार और प्रसार को अत्यन्त उच्चकोटि के स्तर पर स्थापित करें। उसका भारत के प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में मानक बनायें अन्यथा जलाने वाले नाटकबाजियां छोड़े, सरिता को अपने भाग्य पर जीने दे।

इस पत्र में एक और भी बात कहनी है मुझे, जहां तक सम्भव है आर्य सार्वदेशिक सभा दिल्ली के प्रधान माननीय लाला रामगोपाल जी शालवाले इस काम को विशेष रुचि से अपने संरक्षण में लेकर प्रसारित करायें तो और भी अच्छा रहे। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली का सार्वदेशिक पत्र भी इस क्षेत्र में सुधार पाकर आगे बढ़ सकता है। लाला जी के पास इतनी शक्ति भी है और उस क्षमता के लोग भी यदि वे चाहें तो इकट्ठे कर सकते हैं। समूचे आर्यसमाजों का केवल एक ही पत्र रहे। शेष उसी के विभिन्न प्रान्तीय संस्करण रहे हैं। बड़े अच्छा चल सकता है लेखों के मानक और साज-सज्जा करने की बात अलग है। उसे विशिष्टतम होना चाहिए। □

भूदेव साहित्याचार्य
अधिष्ठाता
वेद प्रचार विभाग
म० चुन्नीलाल धर्मार्थट्रस्ट, दिल्ली-१५

आर्यसमाज व दूरदर्शन

दिनांक १२-११-८५ को ऋषि निर्वाणोत्सव देश विदेश में हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। इस अवसर पर दूरदर्शन के अधिकारियों से पत्र द्वारा प्रार्थना की गई थी कि इस समाचार को दूरदर्शन के राष्ट्रीय समाचारों में सम्मिलित किया जाए जिसका उन्होंने साय ७.३० बजे, ८.३० बजे, ९.३० बजे व ११.३० बजे के समाचारों में प्रसारण किया परन्तु फिल्म केवल रामलीला मैदान के आर्य केन्द्रीय सभा के कार्यक्रम की ही दी।

इसी प्रकार २५-१२-८५ को स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस के अवसर पर भी दूरदर्शन ने हमारी प्रार्थना पर इस समाचार को केवल ७.३० बजे व ८.३० बजे साय के समाचारों में प्रसारित किया परन्तु रात्रि ९.३० बजे के समाचारों में सम्मिलित नहीं किया एवं फिल्म भी केवल आर्यकेन्द्रीय सभा द्वारा आयोजित शोभायात्रा की दिखाई गई।

इस संबंध में जब हमने दूरदर्शन व दैनिक पत्रों के अधिकारियों को कहा कि उन्हें रात्रि ९.३० बजे के समाचारों में भी देना चाहिए था। जिस पर उनका उत्तर था कि यह केवल आप ही कहते हैं कि यह उत्सव सब नगरों में भी मनाया जाता है। यदि ऐसा होता तो हमें अन्य नगरों से समाचार व फिल्म आनी परन्तु ऐसा नहीं हुआ।

मान्यवर, अब आप मेरी बात समझ गए होंगे, विभिन्न राज्यों में हमारी सभाओं को संगठित रूप से ईद व क्रिसमस की भांति जोर-शोर से कार्यक्रम करने के अतिरिक्त योजनाबद्ध तरीके से अपने अपने नगरों के दूरदर्शन, आकाशवाणी व दैनिक पत्रों के प्रतिनिधियों से भी प्रार्थना करें तो हमारे समाचार भी राष्ट्रीय स्तर पर स्वयमेव प्रसारित होंगे व आर्यसमाज का इससे प्रचार भी बढ़ेगा। □

निवेदक
(राजेन्द्र दुर्गा)
प्रचार सचिव
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

विश्वविजयी भारतीय आर्य जाति

(पृष्ठ ४ का शेष)

उतनी शक्ति से चित्त होगी। फिल्म से परहेज न कर इसकी आलोचना करते हुए उसके रंगीन चित्र छापें।

तात्कालिक प्रोग्राम-आज का पहला काम है विश्व विजयी आर्यजाति का विजय गीत प्रचारित करें विजय गान से भारतभू का गगन मण्डल गूंज जावे। सामवेद का अन्तिम सूक्त आर्यजाति का भारत राष्ट्र का विजय गीत है। आर्यसन्तान का विश्वास है कि ईश्वर भक्त ही केवल विजयी हो सकता है। क्योंकि इसके अन्तिम मन्त्र ऋक् यजु के हैं। शेष इसके मौलिक हैं। यह विजय गीत सब वेदों में है। यह राष्ट्र गीत है। गली-गली में गूंजा दें। सरकार को बाध्य करें अविलम्ब विखण्डित भारत का अन्त करे।

इस समय स्थिति यह है—सेना की विज्ञप्ति के अनुसार २१ अगस्त से बराबर कच्छ के रण से लेकर काश्मीर के अखनूर तक, अखनूर के सबसे बड़े ग्लेशियर से सियाल तक और आगे सीमा तक बराबर चकमक हो रही है, झड़पे चल रही हैं, मुहीमें हो रही हैं और मुठभेड़ें हो रही है। सेनापति ने देश को तैयार रहने को कहा है, पर रणनीति कहती है शत्रु के हमले की प्रतीक्षा न कर हम ही शत्रु का अन्त कर दें। भारत राष्ट्र उसहमले से ऐंग्लो मुस्लिम इसी दास ब्राह्मण वर्ग की दासता से सदा के वास्ते मुक्त हो जाएगा। भारत विखण्डन मातृहत्या के घोर-पाप से मुक्त हो जाएगा। सच्चे अर्थों में सेक्युलर स्टेट होगा ऐहिक लौकिक राज्य होगा।

माता कुन्ती के शब्दों में भारत माता कह रही है—

यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य
कालो यम आगत:।
हम क्या भारत मां का सुनेंगे?

—अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार

समाचार सन्देश

दक्षिण अफ्रीका में अन्तर्राष्ट्रीय वैदिक सम्मेलन द्वारा एपार्थेट की निन्दा का सुपरिणाम

भारत सरकार से सांस्कृतिक सम्बन्ध बनाए रखने की मांग

बम्बई २० फरवरी। डरबन में पिछले दिनो हुए अन्तर्राष्ट्रीय वैदिक सम्मेलन में अनेक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुए। इनमें सबसे प्रमुख था कि दक्षिण अफ्रीकी सरकार अपने देश से एपार्थेट यानि अश्वेतो के प्रति भेदभाव तथा अन्य प्रकार के अन्यायो को तुरन्त हटाए। इसके अतिरिक्त भारत सरकार से मांग की गई है कि उसके द्वारा लगाए गये प्रतिबन्धो के कारण भारत देशियो की धार्मिक एव सास्कृतिक गतिविधिया रुक गयीं हैं, उनको तुरन्त जारी करने के लिए कदम उठाए जायें।

डरबन से यहा पहुचे हुए एक भारतीय प्रतिनिधि श्री ब्रह्मदत्त स्नातक ने इस बात की जानकारी दी। डरबन में हुआ यह विशाल सम्मेलन अत्यन्त अनूठा था और इसमे भारत सरकार की अनुमति स ५ प्रतिनिधि तथा मोरिशस तथा अन्य विदेशो से ४० के लगभग प्रतिनिधि वहां पहुचे हुए थे। इसके अतिरिक्त समूचे दक्षिण अफ्रीका से लगभग दो हजार प्रतिनिधियो ने उक्त सम्मेलन में भाग लिया। इसके अन्तिम दो दिनो का अधिवेशन पीटर मैरिट्ज बर्ग नगर मे हुआ। ये दोनो ही नगर महात्मा गांधी के कर्मक्षेत्र रहे है।

दक्षिण अफ्रीका मे सबसे प्रथम पहुचे भारतीय प्रतिनिधि प० ब्रह्मदत्त स्नातक को वहां के समाचार पत्रो मे एक एक भारतीय स्वाधीनता सेनानी का आगमन बताकर दक्षिण अफ्रीका की जनता को अपने अधिकारो के लिए सघर्ष में जुटने की प्रेरणा दी गई थी। इस सम्मेलन के सभापति प्रयाग के स्वामी सत्यप्रकाश जी थे। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री श्री ओमप्रकाश त्यागी ने सम्मेलन का उद्घाटन किया।

इस अवसर पर एक विशाल सूचना केन्द्र एव पुस्तकालय का उद्घाटन पत्रकार ब्रह्मदत्त स्नातक ने किया।

डरबन का यह सम्मेलन दिल्ली के सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दक्षिण अफ्रीका की आर्य प्रतिनिधि सभा के सयुक्त तत्त्वावधान में हुआ था। महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि इस अवसर पर दक्षिण अफ्रीका की आर्य प्रतिनिधि सभा की हीरक जयन्ती भी मनाई गई। इतिहास में पहली बार डरबन मे श्वेत मेयर लागे ने सम्मेलन के प्रतिनिधियो को सिटी हाल में बुलाकर सार्वजनिक स्वागत किया और प्रीतिभोज दिया। दक्षिण अफ्रीका की सरकार से एपार्थेट को हटाने का प्रस्ताव वहां के प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री शिशुपाल रामभरोस ने प्रस्तुत किया और अनुमोदन श्री त्यागी नेकिया। सम्मेलन के अवसर पर ओ३म् ध्वजा फहराने का कार्य मोरिशस के वृद्ध आर्य नेता श्री मोहनलाल मोहित के हाथो हुआ, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मेलन इससे पूर्व लण्डन, पोर्टलुई (मोरिशस) और नैरोबी (कैनिया) मे हो चुके हैं। इस अवसर पर डरबन की वेस्ट बिल यूनिवर्सिटी मे सस्कृत पर एक विचारपूर्ण गोष्ठी हुई जिसका शुभारम्भ प्रो० प्रेलिग वाइस चासलर ने किया। दर्शन एवं सस्कृत विभाग के अध्यक्ष जर्मन प्रो० जेनजन बर्ग तथा प्रो० रामबिलास के भाषणों के अतिरिक्त भारत के श्री ब्रह्मदत्त स्नातक ने संस्कृत की आज के सन्दर्भ मे उपयोगिता पर अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया। इस अवसर पर दो मील लम्बा मोटरों का का जुलूस और झांकिया भी निकाली गई।

दक्षिण अफ्रीका मे मुसलमान और ईसाइयों की सांस्कृतिक और धार्मिक आवश्यकताएं जैसे प्रचारकों और अरबी शिक्षकों को बुलाना और धार्मिक साहित्य को वहा भेजना हिन्दुस्तान के अतिरिक्त पाकिस्तान और खाडी देशों से और अमेरिका से पूरी हो जाती हैं। परन्तु भारत के अलावा और कोई देश दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुओं की सांस्कृतिक और धार्मिक आवश्यकताएं पूरी नही कर सकता। स्मरणीय है भारत से बाहर दक्षिण अफ्रीका में सबसे अधिक भारतवंशी दस लाख रहते हैं। वहा पर हिन्दी, तमिल, गुजराती भाषाओं के शिक्षकों और पाठ्य-पुस्तकों की बडी कमी महसूस की जा रही है। और भारत द्वारा लगाए गये प्रतिबन्ध उसमे बाधक बने हुए हैं। इन सभी वर्गों ने इस सम्मेलन मे एक स्वर से भारत सरकार से सहायता करने का अनुरोध किया है। मोरिशस के मोहनलाल मोहित ने एक प्रस्ताव द्वारा मोरिशस के नागरिको को बिना वीसा की औपचारिकता के उन्हें भारत में प्रवेश की सुविधा देने के लिए अनुरोध किया। इसे सयोग माना जाए अथवा सम्मेलन की आवाज की सफलता मानी जाए कि इन प्रस्तावो के स्वीकृत होने के अगले मास ही दक्षिण अफ्रीका के प्रेसिडेण्ट बोथा ने अपनी राष्ट्रीय पार्लियामेण्ट के ३१ जनवरी को दिए उद्घाटन भाषण में एपार्थेट की असगतता को पहली बार सार्वजनिक रूप में स्वीकार किया और भेदभाव के कानूनों को निरस्त करने की योजना की घोषणा की है। क्योंकि ३० जनवरी गाधी जी का बलिदान दिवस था और दक्षिण अफ्रीका गाधी जी की पहली कर्मस्थली रही है। (१८९३-१९१३), हमे ऐसा लगा कि उनकी आत्मा ने बोथा के मुंह से मानो रावण के मुंह से राम कहलवा दिया।

ओकारनाथ आर्य
प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा बम्बई,

वार्षिक खेलकूद प्रतियोगिता तथा पुरस्कार वितरण समारोह

एस० एम० आर्य पब्लिक स्कूल, पजाबी बाग, नई दिल्ली ने अपनी खेलकूद प्रतियोगिता तथा पुरस्कार वितरण समारोह १३।२।१९८६ को सम्पन्न किया। श्री प्रेमकुमार, उपाध्यक्ष, दिल्ली विकास प्राधिकरण ने मुख्य अतिथि का पदग्रहण किया। श्री आर०एस० एस० शिशोदिया उपशिक्षा निदेशक की अध्यक्षता मे कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर श्री प्रेमकुमार ने विद्यालय मे विद्यार्थियों द्वारा प्रदर्शित अनुशासन की प्रशसा की तथा अनुशासन को जीवन में अनिवार्य बताया। श्री शिशोदिया जी ने विद्यालयों की सर्वांगीण उन्नति को देखते हुए प्रोत्साहन प्रदान किया। इस अवसर पर विद्यार्थी जो कि चार सदनों में बांटे हुए थे, ने योगा, जमनास्टिक, ड्रिल, बैण्ड, लोकनृत्य, समूहगान तथा विभिन्न खेलकूद प्रतियोगिताओ का प्रदर्शन किया। एकता सदन ने प्रथम स्थान ग्रहण किया तथा श्रीमती भूषण, उपशिक्षा अधिकारी ने पारितोषिक वितरण किया। खेल कूद प्रतियोगिता मे प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय आने वाले विद्यार्थियों को प्रबन्धकर्त्री सभा के सदस्यो द्वारा पुरस्कार प्रदान किया गया। अन्तत. विद्यालय के प्रधान श्री जे०एस० गुलाटी तथा प्रधानाचार्या श्रीमती ब्रजबाला भल्ला ने विद्यालय में उपस्थित अतिथियों का धन्यवाद देकर विद्यार्थियों को आशीर्वाद दिया।

प्रचार विभाग

टंकारा में विशाल ऋषि बोधोत्सव

ऋषि बोधोत्सव (शिवरात्रि) के पुण्य पर्व पर महर्षि की पवित्र जन्मस्थली एवं बोध-भूमि टंकारा मे ७, ८ ९. मार्च १९८६, धूमधाम से उत्साहपूर्वक वातावरण मे मनाया जा रहा है।

इस उत्सव मे देश-विदेशों से असख्य ऋषिभक्त, महर्षि के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए सोत्साह उपस्थित हो रहे हैं।

इसके पूर्व यजुर्वेद पारायण महायज्ञ दिनांक २, मार्च १९८६ रविवार से महात्मा दयानन्द जी महाराज, तपोभूमि, देहरादून के ब्रह्मत्व में प्रारम्भ होगा। उसकी पूर्णाहुति ८ मार्च को प्रात. १० बजे होगी।

इस अवसर पर आर्यजगत् के अनेक धुरधर विद्वान् तपोपूत संन्यासी, कल्याणकारी, हितवर्धक, गम्भीर, सत्योपदेश करेंगे तथा सुमधुर गायक भजनोपदेशक अपने भजनों द्वारा सरस शैली मे जीवन की सफलता हेतु मार्गदर्शन करेंगे।

संवाददाता

अपने पुरातन घर में फिर आ गये

आज दिनांक १०-२-८६ को सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्त्वावधान में ग्राम गोटियारडिहा (रायपुर म०प्र०) मे यज्ञ हवन किया गया, जिसमे २९ ईसाई परिवारो ने स्वेच्छा से वैदिक धर्म ग्रहण किया और यज्ञ में आहुतियां देकर प्रतिज्ञा की। इन्हें समाज मे सम्मान व इज्जत दी गई। यह कार्यवाही श्री सेवानन्द सरस्वती महामन्त्री हि० शु० स० समिति हरियाणा द्वारा की गई तथा शुद्ध हुए व्यक्तियो में कपडा वितरण किया गया। इसके पश्चात् उनके हाथों द्वारा सभा मे सब को प्रसाद बटवाया गया।

सेवानन्द सरस्वती
महामन्त्री हि०शु०स० समिति
हरियाणा समालखा (करनाल)

कन्या गुरुकुल नरेला, देहली का वार्षिकोत्सव

अखिल भारतीय सस्था आर्य कन्या गुरुकुल नरेला दिल्ली का ३० वां वार्षिकोत्सव दिनांक १५, १६ मार्च सन् १९८६ शनि एव रविवार को गुरुकुल की पवित्र भूमि मे समारोहपूर्वक मनाया जायेगा। जिसमें अनेक सन्यासी, महात्मा, वेदोपदेशक तथा राष्ट्रीय नेता अपने पवित्र उपदेश एव सन्देश से जनता को कृतार्थ करेंगे।

इस अवसर पर ऋग्वेदीय यज्ञ का अनुष्ठान एव ब्रह्मचारिणियों के शारीरिक व्यायाम लाठी तलवार आदि के आश्चर्यजनक प्रदर्शन होंगे।

निवेदिका
ब्रह्म सुमित्रा आर्या

रामप्रसाद बिस्मिल...

(पृष्ठ ५ का शेष)

पुलिस द्वारा गिरफ्तारियां : बिस्मिल की दृढ़ता

अब पुलिस ने बड़ी जोर शोर से गिरफ्तारियां शुरू कर दी। क्रांतिकारी दल के कुछ साथियों ने ही अपने को निर्दोष बताने के लिए ही मुखबरी करनी शुरू कर दी। क्रांतिकारी बनने के लिए जिस मानसिक बल की आवश्यकता है वह बिस्मिल को छोड़ अन्य साथियों में बहुत कम था। बिस्मिल इस घटना के तीन दिन बाद प्रात अपने मकान में ही गिरफ्तार किया गया और तनहाई कोठरी में रखा गया। अब जासूसी विभाग ने बिस्मिल पर प्रलोभन के डोरे डालने शुरू किए। उससे कहा गया कि यदि वह इस मामले की सारी जानकारी दे दे तो १५ हजार रुपया इनाम और इंग्लैंड भेज दिया जाएगा। फिर अगले दिन गुप्तचर विभाग के अधिकारी आए। बिस्मिल किस धातु का बना हुआ है और ऋषि दयानन्द का कैसा शिष्य है। यह तत्व भला विदेशी सरकार के नौकर कैसे समझ सकते थे? बिस्मिल अपने दृढ़ हृदय के साथ तनिक भी न तो प्रलोभनों में फंसे और न किसी प्रकार की क्षमा के शिकार हुए। जेल अधिकारियों के दुर्व्यवहार के विरोध में बिस्मिल ने भूख हड़ताल कर दी। नाक से जबरन दूध पिलाने की व्यवस्था कर दी गयी। बिस्मिल ने दृढ़ता से यत्न न करने दिया फिर कुछ सामान्य सुविधाएँ दी गई।

काकोरी केस स्पेशल अदालत में : बिस्मिल की अपनी पैरवी

काकोरी केस की सुनवाई के लिए विशेष अदालत जज हैमिल्टन की अध्यक्षता में गठित की गयी। बिस्मिल ने अपनी पैरवी योग्यता और युक्तिसंगत की कि उपस्थित जज और वकील भी आश्चर्य में आ गए। बिस्मिल द्वारा की गयी अपनी पैरवी के बाद सरकारी वकील को जब कोई प्रबल जवाब न सूझा तब उसने एक ही दलील पेश की "सरकार के विरुद्ध कोई और किसी प्रकार का भी षड्यन्त्र कभी क्षमा नहीं किया जाएगा।

बिस्मिल और अशफाक को फांसी का आदेश

६ अप्रैल १९२६ को मुकदमे का फैसला सुनाया गया। श्री बिस्मिल और श्री अशफाक उल्ला दोनों को फांसी की सजा दी गई। ये दोनो अटूट और घने मित्र थे। आज की पीढ़ी को यह जानकर आश्चर्य होगा कि बिस्मिल कहाँ आर्यसमाजी अशफाक कहाँ मुसलमान, धार्मिक मान्यताओं के एक दूसरे के सर्वथा विरुद्ध पर मानवीय स्तर पर प्रगाढ़ मित्र काकोरी षड्यन्त्र काण्ड का यही अमृतफल है जो भारत के इतिहास में अविस्मरणीय रहेगा।

गोरखपुर जेल में फांसी

बिस्मिल को गोरखपुर जेल की फांसी की कोठरी में तीन महीने तक अपील की तारीख दी और साढ़े तीन महीने फांसी की कोठरी में अत्यन्त कठोर यातनाओं के बीच रखा गया।

मिट्टी के पात्रों में भोजन और सर्दी में भी फटे पुराने दो कम्बल यही मिलता था। बिस्मिल हिन्दी उर्दू के अच्छे कवि और शायर भी थे। उनकी लिखी कुछ शेर कविताएं

(१) सताये तुझको जो कोई
बेवफा "बिस्मिल",
तू मुँह से कुछ न कहना
आह ! कर देना ।
हम शहीदाने वफा का
दीनो ईमां और है,
सिजदे करते हैं हमेशा
पांव पर जल्लाद के ॥

(२) बहे बहरे फना में जल्द या
रब लाश 'बिस्मिल' की,
कि भूखी मछलियां हैं
जौहर शमशीर कातिल की।
समझकर फूंकना इसको
जरा ऐ दागे नाकामी,
बहुत से घर भी आबाद
इस उजड़े हुए दिल से ॥

(३) जिन्हें हम हार समझे थे
गला अपना सजाने को,
वही अब नाग बन बैठे
हमारे काट खाने को ॥

(४) सर फरोशी की तमन्ना
अब हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना
बाजुए कातिल में है ॥

१९ दिसम्बर १९२७ सोमवार (पौष-कृष्णा ११ सं० १९८४ वि०) प्रातः ६.३० बजे गोरखपुर जेल में इस दृढ़ आर्य और त्यागी आजन्म ब्रह्मचारी, जनसेवक, परोपकारी, देशभक्त, रामप्रसाद बिस्मिल, दैनिक नियम के अनुसार प्रातः सन्ध्या यज्ञ के बाद "वैदिक धर्म की जय" "भारत माता की जय" 'साम्राज्यवाद का नाश हो" इत्यादि नारों के साथ प्रसन्न हृदय रामप्रसाद बिस्मिल फांसी के तख्ते पर "ओ३म्" का जाप करते हुए झूल गये।

आर्यसमाज की कृतघ्नता

अत्यन्त खेद है आज का आर्यसमाज इस नरपुंगव को भूल रहा है। क्या हम कृतघ्नता के पापी बन रहे हैं? □

के. सी ३७ बी,
अशोक विहार दिल्ली-५२

आवश्यकता है

एक घर के काम काज में निपुण अंग्रेजी भाषा जानने वाली स्वस्थ कन्या की जो विदेश (अमरीका) में एक आर्य परिवार में रहकर उनके घरेलू कामकाज में सहायता कर सके।

सम्पर्क करें :
श्रीमती प्रकाशवती चन्डोक
२०४ जोरबाग
नई दिल्ली-११०००३
फोन : ६११२५६

शुद्धि संस्कार

नगर आर्यसमाज साहूगंज के तत्वावधान में लालडिग्गी उद्यान स्थित प० रामप्रसाद बिस्मिल स्मारक यज्ञशाला पर एक मुसलिम युवक जिसका नाम आसिफ अली उर्फ झिनक पुत्र श्री झुलन निवासी ग्राम व पोस्ट बाघनगर (बखिरा) जिला बस्ती था शुद्धि संस्कार (वैदिक धर्म) हिन्दू में दीक्षित कराकर युवक का नाम श्री किशनलाल आर्य रक्खा गया।

शुद्धि संस्कार जिला आर्योपप्रतिनिधि सभा गोरखपुर के अध्यक्ष जी प० द्विजराज शर्मा पुरोहित द्वारा सम्पन्न हुआ।

कार्यक्रम का संचालन रमेशप्रसाद गुप्त (मंत्री) नगर आर्यसमाज साहूगंज ने किया।

भवदीय
रमेशप्रसाद गुप्त
मन्त्री
नगर आर्यसमाज साहूगंज, गोरखपुर

श्री शांति प्रकाश नारंग का देहावसान

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के समस्त अधिकारियों एवं कार्यकर्ताओं की एक बैठक सभा कार्यालय में हुई, जिसमें आर्यसमाज आगा शर्क, जेल रोड नई दिल्ली के यशस्वी प्रधान, सुप्रसिद्ध समाजसेवी, सक्रिय कार्यकर्ता श्री शान्ति प्रकाश जी नारंग के आकस्मिक देहावसान पर गहरा दुःख एवं शोक प्रकट किया गया तथा सभी सदस्यों ने दो मिनट का मौन रखकर परमपिता परमात्मा से उन की दिवंगत आत्मा को सद्गति के लिए प्रार्थना की। श्री शान्तिप्रकाश जी का जीवन आर्यसमाज के लिए सेवा करते हुए बीता। वे एक कर्मठ कार्यकर्ता थे।

यशपाल शर्मा
मंत्री

आर्यसमाज सिकन्दराबाद का शताब्दी समारोह

आर्यसमाज सिकन्दराबाद उ०प्र० का स्थापना शताब्दी समारोह १७ से २० अप्रैल तक मनाया जा रहा है। आर्य विद्वान् स्मारिका हेतु अपने लेख एवं कविता आर्यसमाज अथवा ऋषि दयानन्द से सम्बन्धित सामग्री प्रेषित करने का कष्ट करें।

भवदीय
जगदीशप्रसाद कौशल
मंत्री, आर्यसमाज सिकन्दराबाद उ०प्र०

आर्य वीर दल शिविर

आर्यसमाज ग्राम हरिपुर जि० सहारनपुर (उ०प्र०) में आर्य वीर दल का एक भव्य मासिक शिविर ८ फरवरी १९८६ से चल रहा है जिसमें प्रथम दिन से ही ७० युवक भाग ले रहे हैं। इसके संचालक श्री सेवाराम वानप्रस्थी जी एवं शिक्षक श्री राजेश कुमार जी है।

संयोजक, स्वराजसिंह
आर्य वीर दल
आर्यसमाज हरिपुर, सहारनपुर (उ०प्र०)

दक्षिण अफ्रीका का सत्संग

(पृष्ठ १ का शेष)

भारत में दो बार आये, उनकी एक विद्वत्तापूर्ण पुस्तिका भारत में प्रकाशित हुई। उनके विद्वत्तापूर्ण अप्रकाशित हस्तलेखों को देखकर मैंने उस दिवगत आत्मा को प्रणाम किया। १९७३ में विशाल परिवार छोड़कर वे परलोक सिधारे।

उनकी पत्नी जीवित व स्वस्थ हैं। पुत्र प० आत्मदेव और पुत्रवधू आर्यसमाज व स्त्रीसमाज के प्रधान हैं। आत्मदेव जी (६८ वर्ष) मे भी पुरोहित प्रचारक का काम अपने परिवार के साथ बराबर करते हैं। समाज का विशाल भवन लगभग पूरा हो चुका है। वहां बच्चों और युवा स्त्री-पुरुषों ने बड़ी सख्या में यज्ञ, भजन आदि मे जिस श्रद्धा से भाग लिया, उसे देखकर बडी प्रसन्नता हुई। मैंने अपने भाषण मे माता पिता को स्वसन्तान, स्वभाषा, धर्म, सस्कृति के प्रति, कर्तव्य के प्रति प्रेरणा दी। स्थानीय विद्वान् प्रचारक पुरोहित पं० के० एस० नायडू ने भी अपना भाषण दिया। इस देश में बच्चे भी घर मे व परस्पर गोराशाही अंग्रेजी बोलते हैं, इसलिए उनको हमने अंग्रेजी में ही भाषण देकर पूर्वजों की भाषा अपनाने की प्रेरणा दी। क्या यह उचित था? परन्तु व्यावहारिक यही मार्ग था। □

आर्यसमाज और हिन्दू...

(पृष्ठ ८ का शेष)

कानम्वी हिन्दू (जिन्हें बुद्ध और ईसा दोनों को ईश्वर मानना चाहिए) देश को ईसाई बनने से नहीं बचा सकते। भारतवासी ईसाई हो जायें, बौद्ध हो जायें या मुसलमान भी हो जायें तो उन्हें आपत्ति क्यों? ईसा और बुद्ध साक्षात् ईश्वर हैं और हजरत मुहम्मद भी पैगम्बर।

स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज की स्थिति स्पष्ट है। हजरत मुहम्मद भी मनुष्य थे, ईसा भी मनुष्य थे, राम कृष्ण भी मनुष्य थे। परमात्मा न अवतार लेता है, न वह ऐसा पैगम्बर भेजता है जिसका नाम ईश्वर के साथ जोड़ा जाय और जिस पर ईमान लाये बिना स्वर्ग प्राप्त न हो।

भारत को ईसाइयों से भी बचाइये और मुसलमानो से भी बचाइये, जब तक कि यह ईसा को मसीह और मुहम्मद साहब को चमत्कार दिखाने वाले पैगम्बर मानते हैं। □

उपदेशक ध्यान दे

आर्यसमाज बोट क्लब दोपहर १ बजे से २ बजे तक दैनिक सत्संग मार्च मास १९८६ के लिए निम्न उपदेशक महानुभावों का कार्यक्रम रहेगा। सभी उपदेशक महानुभाव नीचे दिये कार्यक्रम के अनुसार समय पर पहुंचने का ध्यान रखें—

३ मार्च से ७ मार्च : पं० प्रकाशवीर व्याकुल कवि, १० से १४ मार्च : आ० हरिदेव सिद्धांतभूषण, १७ से २१ मार्च : पं० चुन्नीलाल आर्य, २४ से ३१ मार्च पं० वेदव्यास आर्य।

– स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन : ३१०१५० के लिए डा० धर्मपाल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा वैदिक प्रेस, गली नं० १७, कैलाशनगर, दिल्ली-३१ में मुद्रित। रजि० नं० डी० (सी०) ७५६

वर्ष १० अंक १५   रविवार ९ मार्च, १९८६   सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६   फाल्गुन २०४२   दयानन्दाब्द—१६१
मूल्य एक प्रति ५० पैसे   वार्षिक २० रुपये   आजीवन २०० रुपये   विदेश में ५० डालर ३० पौंड

जम्मू कश्मीर और पंजाब को सेना के हवाले करो

प्रधानमन्त्री राजीव गांधी से सार्वदेशिक सभा की अपील

नई दिल्ली २ मार्च। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने प्रधान मंत्री श्री राजीव गांधी से अपील की है कि पंजाब और जम्मू कश्मीर की सरकारों को निलम्बित करके दोनों प्रान्तों को सेना के हवाले कर दें।

सभा के प्रधान श्री रामगोपाल शालवाले ने एक विशेष पत्र और तार भेजकर सूचित किया है कि दोनों प्रदेशों की सरकारें अपने अपने क्षेत्रों में सुरक्षा और प्रबन्ध करने में बुरी तरह नाकामयाब हुई हैं, जिसके परिणाम स्वरूप उग्रवादियों और साम्प्रदायिक शक्तियों द्वारा हिन्दुओं का नर संहार हो रहा है और उन्हें कोई पूछने वाला नहीं है। इस पर दोनों प्रदेशों के हिन्दुओं में भारी आतंक और भय फैल जाना स्वाभाविक है। भारत सरकार की उदासीनता से देश के दूसरे प्रान्तों में रहने वाले हिन्दुओं में क्रोध और क्षोभ की भावना फैल रही है।

श्री शालवाले ने पंजाब और जम्मू कश्मीर के मुख्यमन्त्रियों को तार भेजे हैं जिनमें उनसे कहा गया है कि यदि वे हिन्दुओं की सुरक्षा नहीं कर सकते तो अपने पद से त्यागपत्र दे दें। देश का बहुमत किसी भी अवस्था में अपने भाइयों पर होने वाले अत्याचारों को मूक दर्शक बनकर नहीं देख सकता है।

उन्होंने कहा कि पंजाब और कश्मीर की स्थिति पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के १५-१६ मार्च १९८७ के अधिवेशन में देश भर के आर्य नेता इस विषय पर विचार करेंगे।

प्रचार विभाग
सार्वदेशिक सभा दिल्ली

केन्द्र काशमीर के हिन्दुओं को सुरक्षा प्रदान करे

—सूर्यदेव

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री सूर्यदेव ने अपने वक्तव्य में कहा—जम्मू कश्मीर के श्रीनगर बारामूला अनन्तनाग और अनेक गावों में २० फरवरी से हिंसा और लूटपाट की भयावह घटनाएं हुई हैं। उससे जम्मू कश्मीर के हिन्दूसमाज में तीव्र क्षोभ और भय व्याप्त हो गया है। वहां का हिन्दू समाज सामूहिक रूप से काश्मीर त्यागने की स्थिति में आ गया है। एक सप्ताह तक की हिंसा आगजनी दर्जनों मन्दिरों की तोड़ फोड़ की घटनाओं से साफ जाहिर है, यह समस्त वारदातें योजना बद्ध तरीके से की गयी हैं। इस तरह की भयावह स्थिति राज्य में कभी नहीं देखी गयी। इस तरह की व्यापक हिंसा आज तक नहीं हुई है। वहां के अल्पसंख्यक हिन्दू समाज के घरों, दुकानों, मन्दिरों की खुले आम लूट और तोड़ फोड़ से सारा देश स्तब्ध है। श्री सूर्यदेव ने आरोप लगाते हुए कहा—श्री जी० एम० शाह सरकार पूर्णत निष्फल हुई है। इस समस्त काण्ड की शाह प्रशासन प्रत्यक्ष दोषी है।

केन्द्र सरकार को चाहिए तुरन्त हस्तक्षेप कर वहां के अल्पसंख्यक हिन्दुओं की सुरक्षा व्यवस्था करें। तथा अल्पसंख्यकों के संभावित पलायन को रुकवायें।

ऋणी धरा है तथा गगन

वैदिक संस्कृति का जिसने फिर वसुधा पर उद्धार किया
कष्ट अनेकानेक सहे पर जगती का उपकार किया
नव्य चेतना नव जागृति का कण कण में भर स्पन्दन
मध्य चक्र में फंसी तरणि मानवता की फिर पार किया
काल जयी! ऋषि दयानन्द की ऋणी धरा है तथा गगन।
व्रती-तपस्वी के चरणों में, अर्पित युग का कोटि नमन ॥

मानवता का मंत्र दिया, वेदों का अलख जगायी
अमा निशा की गहन तमिस्रा तुम ने यती भगायी
जीवन की ले शक्ति अपरिमित जगे यहां पर जन जन
जागो! जागो! आर्य जनो हे! रट है सतत लगायी
ज्योतिष्मान हुआ जग सारा जाग उठा भू कन कन।
काल जयी! ऋषि दयानन्द की ऋणी धरा है तथा गगन।

दिया तुम्हीं ने भारत को ऋषि स्वतंत्रता संदेश
सद्यत्नों से दिव्य तुम्हारे गौरव अन्वित हुआ स्वदेश
त्याग तथा बलिदानों का पथ तुमने सहज दिखाया—
हुआ अग्रसर, अन्ध जाल को तोड़ मधु मय देश
दया धर्म के सत्य अहिंसा के खिल उठे सुमन।
काल जयी! ऋषि दयानन्द की ऋणी धरा है तथा गगन ॥

प्राची से फूटी जागृति की, नयी उषा अरुणाई
तिमिर ज्योति की सत्य असत्य की भीषण हुई लड़ाई
हुआ जयी आलोक सत्य, शुचि धर्म दिव्य वेदों का—
हंसने लगी अभय हो भारत पुत्रों की तरुणाई
देती नव संदेश सत्य का निकली स्वर्णिम सूर्य किरन।
काल जयी! ऋषि दयानन्द की ऋणी धरा है तथा गगन।

पावन पथ वेदों का भू पर, हुआ प्रकाम्य प्रशस्त
तिमिराच्छादित परम्पराएं हुईं अनय की अस्त
नव आशा अभिलाषाओं की लहरा नयी तरंग—
सत्य शिवम् सुन्दरतम पूरित बही वायु अलमस्त
परहित में अर्पित कर डाला जिसने तन मन धन।
काल जयी! ऋषि दयानन्द की ऋणी धरा है तथा गगन।
व्रती तपस्वी के चरणों में अर्पित युग का कोटि नमन ॥

—राधेश्याम 'आर्य' विद्यावाचस्पति
मुसाफिरखाना सुलतानपुर (उ०प्र०)

सम्पादक—यशपाल 'सुधांशु' एम० ए०   व्यवस्थापक—डा० सच्चिदानन्द शास्त्री   प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल

शिवरात्रि का सन्देश

—शान्तिप्रकाश, जयपुर

ओ३म् वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधा असि। परमेण धाम्ना दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्। यजु० १।२

महर्षि दयानंद सरस्वती के तप पूत योग साध्य परिश्रम से ईश्वर का अखण्ड वैदिक ज्ञान हमे पुन प्राप्त हुआ है जिसे हम शताब्दियो से भुला ही नही चुके थे-साथ ही वेदो को भी अपने हाथ से खो चुके थे कि शखासुर नामी राक्षस चारो वेदो को मुख मे डाल समुद्र मे कूद पाताल मे पृथ्वी की तहो मे ले गता है। यही हम सुनते चले आ रहे थे कि आर्य जाति और ससार ईश्वीय ज्ञान वेदो से वचित हो चुका था।

गुरु जी महाराज महर्षि विरजानद जी तथा योगियोगेश्वर महर्षि दयानन्द सरस्वती के अपूर्व पुरुपार्थ तथा भगवान की महती कृपा मे हमे वेदो के दर्शनो व पठन पाठन का पुन शुभावसर प्राप्त हुआ है।

अभी ससार मात्र मे वेदो की शिक्षा व दीक्षा के प्रचलनार्थ आर्यों को परम पुरुषार्थ की आवश्यकता है।

महर्षि दयानन्द जी का जन्म नाम मूल जी है। सचमुच मूल जी ने मूल को ही जा पकडा दर्शन शास्त्र का एक सूत्र है कि—

मूले मूलाभावादमूलं मूलम्।

मूल = कारज मे कारण का अभाव होने से मूल भी अमूल है किन्तु महर्षि दयानन्द जी मे यह शंका समुपस्थित नही होती क्योकि न्याय दर्शन तो इस शंका को पहले उखाड चुका है। बीज में बीज का अभाव मानना केवल वितडावाद है। जब बीज पृथ्वी मे पडकर अपने जलादि सहयोग को प्राप्त करके उत्तम खेत लहलहा देता है तो अर्थ का वितडावाद भी नास्तिकता की पराकाष्ठा है।

मूलशकर मे पूर्व जन्म के शुभ कर्मो के उत्कर्ष रूप मे सस्कार आत्मा मे प्रसुप्तावस्था मे विद्यमान थे। मूर्ति पर चूहो के चढकर नैवेद्य खाने के निमित्त ने मूल की आत्मा को जगा दिया कि यह वास्तविक शिव नहीं है। उसकी तलाश करनी चाहिए।

पता चला कि सच्चे योगियो और गुरुजनों की कृपा से ही अन्त ज्ञान के प्रकट होन पर ईश्वरीय दर्शन संभव है, अन्यथा नही। बस, बेडा पार हो गया। मोह-निद्रा का प्रणाश हुआ। परम पुरुष की प्राप्ति का साधन ही परम पुरुषार्थ शास्त्रों मे वर्णित है।

आंखें खुल गईं और जीवन की बाजी लगा दी। केवल एक ही जय घोष था कि—

कार्यं वा साधयेयं देह वा पातयेयम्।

या तो कार्य सिद्ध करूंगा अन्यथा शरीर का परित्याग करूगा।

एक बार तो सचमुच निराशा पिशाचिनी ने अपना जादू चला ही दिया था किन्तु साधक सावधान था। सभल गया और अन्तत सिद्धि प्राप्त कर ही ली।

वाह भगवान्! तेरी माया अद्भुत है। कोई पुरुषार्थ का सबल हाथ में ले तो सही, ईश्वर पूर्व जन्म के संस्कार जगा देता है। हे भगवान्! तेरा धन्यवाद! तूने मरती आर्य जाति को बचा लिया। ऐसा नाविक (मल्लाह) भेजा जो आर्य जाति की डोलती, भंवर में फंसती, डूबती और कभी डगमगाती नैय्या को बचाने के लिए सच्चा नाविक सिद्ध हुआ जिसने वेद के चप्पू लगाकर तरणी को तार ही दिया। ईश्वर तेरा धन्यवाद। इस सच्चे नाविक का भी धन्यवाद। नाविक के गुरुओं और सद्-गुरुओं का धन्यवाद। ऋषि के माता-पिता का धन्यवाद कि जिन के द्वारा एक संस्कारी आत्मा ने संसार का बेडा पार कर दिया। भूली बिसरी आर्य जाति को सच्चे वैदिक ज्ञान के चप्पू दे दिए।

मेरे जैसे सहस्रो ज्ञानपिपासु जनो की की पिपासा शात हुई।

ऋषि के द्वारा अकस्मात् ज्ञान-ज्योति चमकी। घनघोर घनघनाते बादलों को चीरते हुए वह ज्ञानज्योति वेद रूपी सूर्य के रूप मे प्रकट हुई। ऐसी कि संसार चकित रह गया।

पादरी यहा आर्यों की खेती को उजाड़ कर तहस नहस कर देना चाह रहे थे। पराधीनता वश आर्य जाति मूक थी या निद्रा तन्द्रा वश अचेत थी। विदेशी आंग्ल शत्रु ने हमारा साम्राज्य सुहाग लूट लिया था और वह यहां के विद्या, बुद्धि, तेज बल, शास्त्र, धर्म सूत्र और दौलत के खजानों को लूट लूटकर अपने छोटे देश को मालामाल और भारत महान् को कंगाल तथा दीवालिया बना रहा था।

दयानन्द! आप धन्य हो कि आप ने ही पूर्ण स्वतंत्रता तथा संसारभर में आर्यों के महाचक्रवर्ती राज्य का हमें जयघोष दिया। आर्यों की निद्रा टूटी, व्यामोह छूटा तो लगा कि हमारा सर्वस्व लुट चुका है। उसे वापस लेने के लिए भगवान के सबल और आर्यों के महापराक्रम की आवश्यकता है।

पहले हल्ले में ही भारत स्वतंत्र होकर पुनः टैलीविजन की नाच, ठाप और रंगीली तड़क भडक का शिकार होता जा रहा है। जिन अप्यासियों और मांस शराब की बदमस्तियों से ठोकर खाकर पराधीनता के महान्धकार में डूबे थे। हमारे नायक उन्ही भवर जालों में पूर्ण प्रबल वेग और सारी राज शक्ति के साथ हमे पुन. घोर अधकार मे धकेले जा रहे हैं।

महर्षि के पर तप को नष्ट कर ही देना चाहते हैं। अतः आर्यो! होश करो, जागो और मोह निद्रा को त्यागो। महर्षि के अभूतपूर्व तप को नष्ट न होने दो और अनाडी, वेद रहित, मांस शराब को बढ़ावा देने वालों से देश की पतवार अपने हाथ मे लो और वेद के संबल से अपना, अपने देश और ससार का बेडा पार करो।

किमधिकम्।

यही शिवरात्रि का सदेश है।

शिवरात्रि का महत्त्व

रचयिता :

स्व० श्री लालमन आर्य

कोई समझो या मत समझो शिवरात्रि महत्ता और कही।
पर आर्यजनों के लिए नहीं ऐसा सुपर्व सिरमौर कहो॥

अठारह सौ चौरासी का शिवरात्रि पर्व यदि आता ना।
पाकर सद्ज्ञान मूलशंकर श्री दयानन्द बन जाता ना।
होते न दयानन्दर्षि, न था फिर आर्य जाति को ठौर कहीं॥

फिर दयानन्द यति को मिलते कैसे गुरु विरजानन्द दण्डी।
कब होता वेदों का प्रचार लहराती कहा ओ३म् झण्डी।
क्या मिटता छुआछूत जैसी भद्दी रस्मों का तौर कही॥

शिवरात्रि पर्व पर ढोंग रचा कोरा भक्तों ने शिवव्रत का।
पर वह शिवरात्रि टंकारा की उद्धार कर गई भारत का।
गर वह नही आती तो होता क्या नव जागृति का भोर कही॥

शिवरात्रि पर बाल मूल ने शिव का सच्चा अर्थ किया।
कल्याण उन्हीं का हुआ जिन्होंने सत्य अर्थ वह समझ लिया।
समझाये से ना समझ सके क्या उस पर चलता जोर कही॥

व्रत रातजगा करते-करते निज जीवन सारा बिता दिया।
शिवरात्रि पर्व से बतलाओ तुमने क्या-क्या उपदेश लिया।
मच रहा अनर्गल शोर कहीं है भंग चरस का दौर कही॥

हे आर्य बन्धुओ सुनो विनय ऋषिबोध रात्रि उत्सव मानो।
मन बचन कर्म से वैदिक पथ पर चलने का दृढ़ व्रत ठानो।
सुख शांति मिले ऋषि शिक्षा पर यदि करो लालमन गौर कहीं॥

(सौजन्य से—लालमन आर्य जनसेवा संस्थान)

वायु का रुख बदलने वाले दयानन्द गरजे खूब गरजे

चमनलाल, अशोक विहार

प्राथदश्वो न यवसेऽविष्यन्
यदा मह: संवरणाद्व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनुवाति शोचिरध
स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥
सामवेद मं० १२२०

भावार्थ—शक्तिशाली ज्ञानी पुरुष संसार को पाप, भ्रष्टाचार से पृथक् व पुण्य-सदाचार से संयुक्त करने के लिए सब विरोधी, अराष्ट्रीय तत्वो का मुकाबला करता हुआ और समस्त विघ्न-बाधाओं को जीतता हुआ जब आचार्य कुल रूपी महनीय वाडे से बाहर संसार मे आता है तो निश्चित जानिए कि शीघ्र ही लोग जनता इसको ज्ञानदीप्ति के अनुसार ही परिवर्तित हो जाते हैं या यूं कहिये कि लोग स्वत ही उसके अनुयायी बनने लगते हैं। और लोगो मे अपनी ज्ञानदीप्ति के कारण वह इतना लोकप्रिय एव आकर्षक हो जाता है कि वह लोगों को जिधर चाहता है उधर ही ले जाने की क्षमता वाला हो जाता है। ऐसे कोई कोई ही संस्कारी जीव ससार में कभी कभी आते हैं और कुछ समय निष्पक्ष, देशोद्धार करके विद्युत की मानिन्द चौंध कर लुप्त हो जाते हैं व कुछ विरोधी लोग जो ऐसे युग पुरुषों के तेज को न सहकर उनकी जानलेवा हो जाते हैं और येन केन प्रकारेण छल-कपट से घोर षड्यन्त्र रचकर उनको समाप्त कर देते हैं, उनके भौतिक शरीर को हमारी आंखो से ओझल कर देते हैं परन्तु उनकी अद्भुत, ज्ञानदीप्ति और अलौकिक क्रियाशीलता और ईश्वर विश्वास हमारे हृदयों पर अमिट छाप छोड़ जाता है और जो रूढ़ियो मे ग्रसित जनता को और सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक कुरीतियो की बेड़ियों में जकड़ी मानव जाति के लिये वर्षों तक प्रकाश स्तम्भ का काम करती रहती है। प्रस्तुत वेदमन्त्र को सार्थक रूप मे देखने हेतु जब हम ऐसे किसी महापुरुष की खोज करने के लिए विश्व के महापुरुषों के कतिपय विश्व के कतिपय महापुरुषों के जीवनों पर दृष्टि पात करते हैं तो अनायास ही हमारी दृष्टि तुरन्त देव दयानन्द पर जा पड़ती है जिसके जीवन मे यह वेदमन्त्र मानो मूर्तिमान होकर आ खड़ा हुआ है जिसका एक-एक शब्द उस महान युग प्रवर्तक देव दयानन्द के दिव्य जीवन में प्रदर्शित हो रहा है। आओ पाठकगण ! थोड़ी देर के लिए उस प्रात: स्मरणीय युग प्रवर्तक महान् दयानन्द के दिव्य जीवन की ज्ञानदीप्ति से अपने मनों के अन्धकार-अज्ञानान्धकार को मिटाकर कृत-कृत्य, धन्य-धन्य हो जावें।

दिव्यता के धनी देव दयानन्द जब प्रज्ञाचक्षु गुरु विरजानन्द की कुटि (मथुरा से) रूपी "मह: संवरण" से तीन वर्ष तक ज्ञान दीप्ति से दीप्त होकर ३९ वर्ष की आयु में सन् १८६३ मे गुरुवर की आज्ञा शिरोधार (दक्षिणा के रूप मे जीवनदान देने की प्रतिज्ञा करके) संसार के कार्य क्षेत्र मे बाहर निकले, तो देश और समाज की दयनीय दशा को देखकर व्याकुल हो उठे। देश रूपी रोगी की नब्ज हालत को देखकर दयानन्द रूपी डाक्टर दहल गये, उन्होंने देखा कि ऐसा कौन सा छोटा बड़ा रोग है जिस से यह रोगी पीड़ित नही। उस दूरदर्शी दयानन्द रूपी महान् चिकित्सक ने मानव समाज को भयकर रोगो से ग्रसित पाया छूआ-छूत, जाति-पांत का भयंकर रोग, छोटे छोटे वर्गों मे विभक्त देश को, अनेक ईश्वरों की पूजा के जाल मे फंसे समाज को नाना प्रकार की सामाजिक तथा धार्मिक रूढ़ियो की जंजीरों से जकड़े राष्ट्र को, बाल-विवाह की कुप्रथा, स्त्री जाति का निरादर, विधवाओं और अनाथो का अतिवाद, राष्ट्रीय और मानवता विरोधी तत्त्वो का बाहुल्य, भ्रष्टाचारी, अत्याचारी, दुराचारी देशद्रोही लोगों के प्रभाव, अपनी प्राचीन वैदिक सस्कृति सभ्यता से विमुख हुए पाश्चात्य भौतिक सभ्यता की चकाचौंध से प्रभावित युवा पीढ़ी, अपने पूर्वजो और अपने प्राचीन उज्ज्वल इतिहास को भूले हुए लोग, गत सहस्रो वर्षो से वासना की बेड़ियो मे जकड और सन् १८५७ के सैनिक विद्रोह (प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध) के विफल होने के कारण श्वेत विदेशी शासको के दानव व्यवहार के आतंक के कारण निर्जीव सी पूजा की दुर्दशा को देखकर देव दयानन्द विह्वल से हो गये, यही नही, विधर्मियों द्वारा यहा भोले-भाले हिन्दू जाति के लालों का लोभ-लालच, डरा धमकाकर तथा तत्कालीन राज्य सत्ता के प्रभाव से धर्म-परिवर्तन रूपी रोग ने दयानन्द को असमजस में डाल दिया और वे बड़ी गहराई से इसका निदान सोचने पर विवश हो गये। दूसरे शब्दों मे यदि हम उस शक्तिशाली महान् देव दयानन्द को एक कुशल दर्जी के रूप में देखें, तो उस चमत्कारी दर्जी ने देश, राष्ट्र समाजरूपी सुन्दर चादर को स्थान स्थान पर फटे चीथड़े के रूप मे पाया और सोचने लगा कि ऐसी फटी पुरानी चादर को भला कहां कहां पैबन्द लगाकर ठीक किया जावे। और यदि उस युगपुरुष को एक कुशल धोबी के रूप में देखें तो उस ने इस मानवसमाज और राष्ट्ररूपी सुन्दर श्वेत चादर का अत्यन्त मैली और स्थान स्थान पर घोर काले धब्बों के लगने के कारण बहुत ही गन्दी, मैली पाया। अत: वह महान् चिकित्सक, विचित्र सुधारक देश, राष्ट्र, समाज और मानव जाति की ऐसी दुर्दशा देखकर ऐसा द्रवित हुआ कि वह इस दयनीय दशा का चिन्तन करके रात्रि को नींद मे सोते-सोते ऐसे चीख उठता, मानो जैसे कोई छाती, पेट दर्द से पीड़ित होकर चिल्लाता हो। और वह सेवको के पूछने पर किसी डाक्टर से कोई औषधि लाने के लिए कहता तो दयानन्द दर्द भरी आवाज में कहते, हाये ! इस शूल की कोई दवाई किसी डाक्टर के पास नहीं मिलेगी। सचमुच दयानन्द की ऐसी घोर पीड़ा सता रही थी जैसे रघुकुल दीप धर्म धुरन्धर महात्मा भरत को राम-लक्ष्मण तथा माता सीता को वन मे मुनियों के वेश मे मारे मारे फिरते हुओं की हालत का चिन्तन करके दु:ख होता था सन्त तुलसीदास ने महात्मा भरत के दिल की व्यथा को इन मार्मिक शब्दो मे वर्णन किया है—

> अजिन वसन फल असन
> महि सयन डासि कुसपात।
> बीस तरुतर नित सहत
> हिम आतप बरषा बात॥
> एहि दुखदाहं दहइ दिन छाती।
> भूख न बासर नीद न राती॥
> एहि कुरोग कर औषधु नाही।
> सोधेऊं सकल विश्व मनमाहीं॥

अर्थात् राम, लक्ष्मण, सीता बिना जूतों के मुनियो के भेष मे वन वन मारे मारे फिर रहे हैं। मृग चर्म धारण कर, वन के कन्द मूल खाते हैं और किसी वृक्ष के नीचे समतल भूमि पर कुशपात बिछा कर सोते हैं। सर्दी, गर्मी, आंधी, बरसात का दु:ख सहन करते है। भरत जी कहते हैं कि उनके इस दु:ख का स्मरण होने पर मेरी छाती जलने लगती है, रात को नीद नही आती, दिन में भूख नही लगती। इस कुरोग की कोई औषधि भी तो नही है जिससे मेरे इस रोग का शमन हो। ऐसी विकट स्थिति और घोर अन्धकार के वातावरण मे वह दु:खी हृदय, युगपुरुष ज्ञानदीप्ति से दीप्त हुआ इन सब विघ्न बाधाओं की दीवारो को फांदता हुआ, सिंहनाद करता हुआ मसीहा—महान कुशल चिकित्सक के रूप मे, सिर पर कफन बांध, जान हथेली पर रख उस धधकती अग्नि मे कूद पड़ा—"प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् यदा मह: संवरणाद् व्यस्थात्"

आर्षज्ञान के अद्वितीय प्रचारक, सर्वगुण सम्पन्न, आदर्श सुधारक, सुवक्ता, सुविचारक, जगद्गुरु, आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द इस युग के प्रवर्तक थे। वे अविद्यान्धकार, रागद्वेष और लोलुपता की धूल भरी भारत भूमि का हरी-भरी सरस और मनोरम बनाने के निमित्त और अन्धविश्वासो एव रूढ़ियो के दावानल मे झुलसी जा रही मानवता के त्राण-कल्याण के हेतु विद्युत वेग मे उठे, समस्त देश मे उपदेश यात्रा करते हुए गरज गरजकर बरसे, आज यहाँ कल वहाँ। उन्होने अल्पसमय मे ही, अत्यन्त व्यस्त जीवन और यातायात के साधनो के अभाव मे भी सैंकड़ो बड़े बड़े शास्त्रार्थ किये, सहस्रों व्याख्यान दिये, सहस्रो प्राचीन आर्ष-अनार्ष ग्रंथो का अध्ययन करके लाखो पृष्ठो का क्रांतिकारी वेदभाष्य तथा सत्यार्थप्रकाश जैसे सत्साहित्य का निर्माण किया। और नगर नगर में आर्यसमाजें स्थापित कीं।

महर्षि ने धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एव बौद्धिक सभी क्षेत्रों मे महान क्रांति प्रस्तुत कर दिखाई और भारत के सभी सम्प्रदायो को सीधा मार्ग दिखाया, जिससे प्रभावित होकर अनेकों विधर्मियो ने अपने अपने धर्म ग्रथो मे भी परिवर्तन करना पड़ा। उस दया के सागर तथा आनन्द के भण्डार योगसिद्ध कर्मयोगी सच्चे तपस्वी, वीतराग संन्यासी देव दयानन्द ने निराशा के घनीभूत, मेघ मण्डल को छिन्न-भिन्न करके जीवन ज्योति और जागृति का उपदेश देकर देशवासियो को उत्साहपूर्ण नवजीवन से भर दिया। यही नही उस युगपुरुष ने देशवासियो के हृदयों मे स्वाभिमान एवं स्वदेशाभिमान की उज्ज्वल भावना को जगाकर स्वतन्त्रता एव स्वाधीनता के लिए प्रकृष्ट उत्कण्ठा पैदा की।

महर्षि दयानन्द के हृदय मे प्रबल इच्छा और उत्साह था कि सारे देश मे एक ईश्वर की पूजा प्रचलित हो, ईश्वरीय ज्ञान परमपुनीत वेद का ही प्रचार हो, एक ही सुसगठित जाति आर्य जाति हो और एक राष्ट्र भाषा हिन्दी ही सम्पूर्ण देश की भाषा हो।

नाना प्रकार की विघ्न-बाधाओ और घोरतम प्रतिकूलताओ के होने, और मनोवांछित प्रलोभनो के दिये जाने एव समय समय पर विरोधियो के हाथों अपने प्राणनाश के प्रयास किये जाने पर भी वे बड़ी निर्भीकता और आत्मविश्वास से राष्ट्र जागरण और मृतप्राय हिन्दू जाति को पुनर्जीवित करने के लिए निरन्तर जुटे रहे।

उनके प्रचार की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उस वैदिक धर्म के मर्मज्ञ महर्षि दयानन्द ने किसी नये मत-मतान्तर की स्थापना नही की और न ही

कोई अपना मठ बनाया। प्रत्युत उसी प्राचीन वैदिक सार्वभौम एवं सार्वदेशिक धर्म के पुनरुद्धार में आत्मोत्सर्ग करके नये युग का प्रवर्तन कर गये।

इस कार्य मे उस युग पुरुष ने सर्व-प्रथम पाश्चात्योन्मुखी देश की धारा के प्रवाह को बदलकर उसको अपने विचारो के अनुकूल किया और अपनी ज्ञान दीप्ति मे स्वय ऐसे चमके और जनता पर ऐसे छाये कि वह जिधर जाते और जिस भी सुधार की बात को जनता के सम्मुख रखते, उसमे उनको अत्याधिक सफलता होती चली गई। लोग उनके पीछे चलने लगे और किसी भी दिशा मे मानो सफलता देवी पहने से ही जेसे उनके स्वागत के लिए आरता लिए खड़ी हो। और इस सफलता से वह आकर्षण और प्रभावशाली बन गए कि विरोधी भी उनकी विद्वत्ता और कार्यकुशलता का लोहा मान गये और इस प्रकार प्रस्तुत मत्र का निम्न अश उनपर शत प्रतिशत लागू होता है।

"आदस्य वातो अनु वाति शोचिरघ स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति।"

निःसन्देह गत कुछ वर्षों में हमने

वायु का रुख

कितनी ही शताब्दियाँ, कितनी ही अर्धशताब्दिया, कितनी ही अभूतपूर्व विशाल शोभा यात्राएँ और कितनी विराट सभाएँ और आश्चर्यजनक समारोह सफलता पूर्वक सम्पन्न किए, तो भी दुर्भाग्य है कि देश मे आज भी प्राय' बहुत से शहरों के शिक्षित पढे लिखे स्त्री-पुरुष भी महर्षि दयानंद को नाम मात्र से ही जानते हैं, दूरदराज के देश के अतर्भाग के ग्रामीण लोगों तक तो वह देव दयानद की रोशनी छू तक नही पाई। वास्तव मे हमने इस महान योगी को सही तौर पर नही जाना, और यही कारण है कि देश के नव जागरण के अग्र दूत देव दयानद को राष्ट्रपिता-पद का जो सर्वोच्च स्थान मिलना चाहिए था न मिल पाया, और कुछ बेसमझ स्वार्थी लोगों ने उनको एक साधारण समाज सुधारक कहकर ही इति श्री कर दी।

यदि सही तौर पर जाना होता तो देश का नक्शा ही कुछ और होता। आज देश जातिवाद, भाषावाद, प्रदेशवाद आदि जैसे अनेक दूषित वादों की जजीरों से जकडा अलगाव और विघटन की ओर अग्रसर होता जा रहा है। आतंकवाद, भ्रष्टाचार, दुराचार, सारहीन, गुटबदी, राजनीति ने देश के वातावरण को अत्यंत दूषित कर दिया है। कञ्चन कामिनी के पीछे भागने वाले और देश के बहुमूल्य रहस्यों को विदेशियो के हाथ चन्द नोटों के बदले बेचने वालों देश द्रोहियों की कुछ कमी नही है। मानवता के स्थान पर दानवता का बोलबाला है। अराष्ट्रीय तत्त्व बार-बार उभर कर विकट रूप में अपना कुप्रभाव डाल रहे हैं। ऐसी विकट स्थिति मे आवश्यकता है कि भारतीय एकता के प्रतिपादक महर्षि को पढकर और उनकी जनकल्याणकारी पवित्र प्रवृत्तियो को समझ कर हम सब तदनुरूप ही देश एवं आत्मोन्नति के मार्ग पर अनुसरण करते हुए देशवासियों को उन्नत करने मे प्रगतिशील होवें। इस सम्बंध में सरकार का एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व यह है कि वह समय-समय पर अपने प्रचार-प्रसार के साधनों के माध्यम से उस देश के हितैषी महापुरुष के जीवन के कुछ प्रसंग जनता के सामने रखना न भूलें और स्कूल की पुस्तकों में विशेष रूप से उन को स्थान देकर ऋषि ऋण से उऋण होने का पवित्र प्रयास करें, तो शीघ्र ही इस के सुपरिणाम दीख पड़ेंगे।

अन्त मे केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि महर्षि सच्चे अर्थों में अमृत वर्षी थे, जिन्होंने अपने भाषणों, लेखों तथा ग्रंथों द्वारा एक से एक बढ कर प्रेरणा तथा स्फूर्ति दायक विचार प्रकट किए। जिन्हें पढ़ने से धर्म, समाज, राष्ट्र व देश के प्रति श्रद्धा, प्रेम और उत्साह की स्फूर्ति पैदा हो सकती है। ये सब उस महापुरुष ने पहले गुरुचरणों में बैठकर प्राप्त किए और फिर जनता के कल्याणार्थ बडी उदारता से दिए।

वेद का पुनीत मत्रांश,
अध त्विषि विदधमावदासि।

पूर्ण रूप से ऋषि के जीवन से लागू होता है। अत. ऋषि को समझो और देश को उन्नत करो। □

तलाकशुदा मुस्लिम औरतों के गुजारे वाले बिल की सभी मेम्बरान पार्लियामेंट डट कर मुखालफत करें

एक मुस्लिम औरत की दर्द भरी दरख्वास्त

जहान आरा बेगम

मैं लगभग दो साल मे अखबारों के जरिए मुस्लिम औरतों की दोजखी जिदगी के बारे मे कुरआन शरीफ का हवाला देकर लिखती रही हूँ। मैंने इसी विषय पर अपने महबूब रहनुमा वजीर-ए-आजम जनाब राजीव गांधी जी से भी खत लिख-यह इल्तजा की थी कि मुस्लिम परसनलला को खत्म करके सभी के लिए एक जैसा सिविल कानून बन या जाये जिस से मुस्लिम औरतों को भी राहत मिल जाये। मगर कोशिश बेकार गई उन्होंने उस तरफ कोई ध्यान ही नही दिया। शायद सरकार और कांग्रेस दल मुस्लिम लोगों के वोट हासिल करने के लिए शायद मुस्लिम परसनल ला को खत्म नही करना चाहते। मगर वो ये भूल गए हैं कि मुस्लिम औरतों का भी वोट है कहीं उन्होंने अगर कांग्रेस के खिलाफ जिहाद का नारा दे दिया तो मुश्किल हो जाएगी।

मुझे उस वक्त बड़ी खुशी हुई थी जब सुप्रीमकोर्ट ने शाहबानो के गुजारे के लिये उसके हक में उसके शौहर को ५०० रुपये माहवार देने का हुक्म दिया था। मगर उससे भी ज्यादा दुख हुआ है जब हमारी सरकार एक बिल पार्लियामेन्ट में पेश कर हिन्दुस्तान की सब से ऊंची अदालत के फैसले को रद्द करने जा रही है। यह एक मजलूमाना कदम है और मुस्लिम तलाक शुदा औरतो के साथ नाइन्साफी भी है। समझ मे नहीं आता कि हमारी सरकार मुट्ठी भी मुल्ला मौलवियों जैसे कट्टरपन्थी लोगो के दबाव में क्यों आ गई है। ऐसा लगता है कि शायद हमारी सरकार उनसे डरती है या फिर नाअहल सरकार है और उसे हुकूमत करनी ही नही आती।

मैं मुल्क के उन सभी पार्लियामेन्ट के मेम्बरों से और खास तौर से वजीर-ए आजम और वजीर कानन से दरख्वास्त करती हूँ कि वे उत्तर प्रदेश के कानपुर नगर के चार मुहल्लों नीम वाला हाता, फहीनुद्दीन का हाता, हीरामन का पुरवा गम्मूखां के अहाते में रहने वाली हजारो तलाकशुदा मुस्लिम औरतों के हालात का वहा जाकर जायजा लें और पता लगायें कि उन्हें क्या तकलीफ उठानी पड रही हैं; रोजाना ये हजारो औरतें अपने गुजारे के लिए काम की तलाश मे दिनभर दर-दर की ठोकरें खाने पर मजबूर कर दी गई हैं। क्या हमारी जम्हूरी सरकार का यही फर्ज है।

ये कहां का इन्साफ है कि जो आदमी एक औरत को ४० साल तक अपनी बीवी और अपने बच्चों की मां की शक्ल मे अपने पास रख कर बुढापे में उसे उसकी किस्मत पर खाली हाथ घर से निकाल दे और अब जो बिल पेश किया गया है उसके जरिए वह अपने गुजारे के लिए अपने रिश्तेदारो के दरवाजे खटखटाये या फिर वक्फ बोर्ड के अफसरो के तलुवे चाटे। क्या यही यहाँ की जम्हूरी सरकार का इन्साफ है। जम्हूरी सरकार मे तो हर इन्सान को बराबर का दर्जा दिया जाता है। मुस्लिम परसनल ला और शरीयत तो मुस्लिम औरत को औरत का दर्जा देती ही नहीं है क्या हमारी यह सरकार भी मुस्लिम औरतो को इन्सान नहीं समझती। यह एक गैर इन्साफी बिल है।

आखिर मे मैं सभी पार्लियामेन्ट के मेम्बरों से दरख्वास्त करती हू कि वो सब लोग अपने जमीर की आवाज को देखते हुए इस बिल की इतनी मुखालफत करें कि सरकार इसे वापस लेने पर मजबूर हो जाए। सुप्रीम कोर्ट के फैसले मे तलाक पर रोक लगाई थी मगर अब इस बिल की वजह से तलाक और ज्यादा होंगे। ●

वेद प्रचार व्यवस्था

दिल्ली की आर्यसमाजों के साप्ताहिक सत्संगों के लिए उपदेशक महानुभाव भेजने की व्यवस्था पं० ओमवीर शास्त्री जी कर रहे हैं। श्री शास्त्री जी सायंकाल ५ से ७ बजे तक सभा कार्यालय रहते हैं और वेद प्रचार विभाग के लिए सेवा का समय देते हैं। आप उपदेशक आर्य बन्धुओं से निवेदन है कि श्री शास्त्री जी से सम्पर्क करें। उनसे प्रातः ९ बजे से ५ बजे तक फोन न० ६९२६७७ पर सम्पर्क कर सकते हैं एवं साय ५ बजे से ७ बजे तक सभा कार्यालय आकर मिलें या फोन न० ३१०१५० पर कार्यक्रम हेतु बात करें।

—स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती

प्रलय के बाद

परमाणु युद्ध के बाद विश्व को स्थिति कैसी होगी ?

५०,००० परमाणु अस्त्रों के वर्तमान भंडार के रहते इस प्रश्न का उत्तर खोजना कठिन नहीं है।

दो वर्ष पूर्व दोनों ही महाशक्तियो के तथा अन्य अणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों के वैज्ञानिकों ने इस बात का अध्ययन किया कि परमाणु युद्ध के क्या परिणाम निकलेंगे। उनका निष्कर्ष है कि युद्ध के बाद की स्थिति अत्यंत दु:खद होगी, किन्तु प्राणी कीट-पतंगों की तरह नहीं मरेंगे। अब कुछ वैज्ञानिक यह कहते हैं कि ऐसे आशावादितापूर्ण विचारो के पीछे कोई औचित्य नही है।

इन लोगों के अनुसार महायुद्ध के बाद जब दिन निकलेगा तो माहौल कुछ दूसरा ही होगा। कम्प्यूटरो ने परमाणु युद्ध का विभिन्न परिस्थितियो का अध्ययन किया है। युद्ध में फोडे गये बमों की क्षमता १०० से ५००० मेगाटन के बीच कही होगी। इसके परिणाम तत्कालिक प्रभावों जैसे झटको, भयकर गर्मी तथा विकिरण आदि से कही अधिक भयकर तथा जानलेवा होंगे।

वातावरण (मौसम) के माडल अमरीकी तथा रूसी वैज्ञानिकों द्वारा स्वतत्र रूप से तैयार किये गये। कार्नेल यूनीवर्सिटी तथा यूनाइटेड स्टेट्स नेशनल सेंटर फार एटानिक रिसर्च ने संयुक्त राज्य अमरीका मे तथा सोवियत मैथेमेटिकल सेंटर तथा इंस्टीट्यूट आफ एटमसफियरिक फिजिक्स ने सोवियत सघ मे इन अध्ययनो का आयोजन किया। दोनों जगह जो परिणाम निकले, वे आश्चर्यजनक रूप से एक समान थे।

असहनीय शीत

परमाणु युद्ध का प्रमुख परिणाम होगा--तापमान मे एकाएक, तीव्र तथा स्थायी गिरावट। कम से कम एक वर्ष के लिए समूची धरती उत्तरी ध्रुव जैसी सर्दी की चपेट मे आ जाएगी।

इस भीषण तबाही के एक सप्ताह बाद भयानक "आणविक शीत" का आगमन होगा। जिसके साथ ही सर्वत्र अन्धकार छा जाएगा और भयानक सर्दी पड़ेगी। (बिजली आदि का उत्पादन तथा सप्लाई बद हो जाएगी)। महाद्वीपों पर दौड़ती हुई आग की लपटों से निकलने वाली लाखो टन राख तथा धुंआ एक छाते की तरह हमारी धरती को ढक लेंगे। ऊपर अत्यधिक गर्मी तथा निचले हिस्सों मे अत्यधिक शीत के कारण धरती की जलवायु एकदम बदल जाएगी। १०,००० से १५,००० मीटर की ऊंचाई तक तापमान १००० डिग्री सेल्शियस को पार कर जाएगा, जबकि धरातल पर यह ५० डिग्री सेल्शियस होगा। इसके परिणामस्वरूप पर्यावरण में विश्वव्यापी महाविनाश होगा।

सोवियत भविष्यवाणिया दिल दहला देने वाली हैं। महासागरों तथा महाद्वीपों के बीच तापमान में व्यापक अन्तर (जमीन के मुकाबले समुद्रो पर हवा देरी से सूखती है) के कारण तटों पर विकराल उफान तथा तूफान आयेंगे, जिसके परिणामस्वरूप धरती पर व्यापक हिमपात होगा जो इसके जलविज्ञान-चक्र को मिटा देगा। सूर्य की रोशनी से विहीन जमे पडे महाद्वीपों पर निरन्तर चलने वाला रेगिस्तान उत्पन्न होगा। आग से जो कुछ भी बच पाएगा वह हवाओं, शीत तथा सूखे की चपेट मे आकर खत्म हो जाएगा। एकाएक उत्पन्न शीत मध्य अक्षाशों के वनो का खात्मा कर देगा। उष्ण कटिबंधीय तथा उपोष्ण कटिबंधीय वन एकाएक समाप्त हो जायेंगे क्योंकि ऐसे वन तापमान अथवा रोशनी मे व्यापक अंतरों का सामना करने मे समर्थ नही होते।

एक वर्ष का अंधेरा और हिम युग

सूर्य की रोशनी को धरती पर पुन: पदार्पण करने मे कम से कम एक वर्ष का समय लगेगा। तब तक देखने योग्य यदि कोई बचा तो वह पाएगा कि धरती लगभग पूर्ण रूप से एक रेगिस्तान मे परिवर्तित हो चुकी है। धरती को प्रकाश को परिवर्तित (रिफ्लेक्ट) करने की शक्ति कई गुना बढ जायेगी। धरती कम से कम रोशनी को सोखेगी, जिसके परिणामस्वरूप समूची वातावरण प्रणालियो मे भीषण परिवर्तन होंगे। धरती पर एक और हिमयुग शुरू होगा। तो भी, जहां कहीं भी बर्फ और हिमखण्ड होंगे, पिघलने लगेंगे, क्योंकि वे ऊंचे क्षेत्रों में होंगे जहां तापमान अधिक होगा। उबलते पानी के स्रोतों के फूट पड़ने की संभावना होगी।

अदृश्य भूमध्य रेखा द्वारा अलग किये गये उत्तरी तथा दक्षिणी गोलार्धों की वायु प्रणालियां पूर्णरूप से अस्त-व्यस्त हो जाएगी अत किसी के लिए भी दक्षिण से उत्तर की ओर बच भागने की कोई भी सभावना नही रहेगी क्योंकि उस गोलार्ध में भी हालात वही होंगे। धरती का कोई भी भाग बच नही पाएगा। बचाव का कोई रास्ता नही होगा।

इन परिणामो पर पहुचते समय अमरीका तथा रूस दोनों ही देशों के वैज्ञानिको ने मगल ग्रह पर विद्यमान परिस्थितियों का अध्ययन किया है। मगल पर ग्रीष्म के आगमन के साथ ही धूल उठनी शुरू हो जाती है और इतनी शीघ्रता से सम्पूर्ण ग्रह को ढक लेती है कि तापमान की समूची पद्धति ही बदल जाती है। इसका तापमान गर्म हो जाता है। जबकि सतह ठडी हो जाती है। परमाणु युद्ध के बाद धरती की हालत भी बिल्कुल वैसी ही होगी।

अमरीकी तथा रूसी अध्ययनो ने यह सिद्ध किया है कि १०० मेगाटन बमो [हिरोशिमा पर गिराये गये बम से ८ हजार गुना अधिक के विस्फोट के बाद भूमि और जल दोनो ही किसी भी जीवित जीव, मानव, पशु अथवा पौधे के लिए उपयुक्त नही रहेंगे।

स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के पाल हेरलिक के अनुसार इस प्रलय से जो भी प्राणी जीवित बच जाएगा उसकी हालत और भी बदतर होगी क्योंकि पादप जीवन का आधार-फोटोसियेसिस नही रहेगा। इसके बिना पौधो तथा पशुओ के जीवित रहने की कोई सम्भावना नही।

विकिरण (रेडिएशन)

इसी महाविनाश का एक और भयावह पहलू है--पराबैंगनी विकिरण (अल्ट्रा वायोलेट रेडिएशन) बम मे विस्फोट नाइट्रोजन आक्साइडो को आकर्षित करता है और ये धरती के वातावरण की ओजोन परत को नष्ट कर देंगे, जो कि पराबैंगनी विकिरण से जीवन की रक्षा करता है। सोवियत संघ के विद्वान यूरी इजरायल के अनुसार धरती पर जीवन की शुरूआत पराबैंगनी विकिरण से हुई और यही इसका खात्मा भी कर सकता है। संयुक्त राज्य अमरीका के वैज्ञानिक कार्ल सैगान भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। पराबैंगनी विकिरण अधिकाश एककोशिकीय जीवो को काल का ग्रास बना देगा, जो कि समुद्री जन्तु जगत की खाद्य शृंखला की मुख्य कड़ी है। अत: यह शृंखला स्वयं ही नष्ट हो जाएगी। डी० एन०एस० अणु जो कि आनुवंशिक विशिष्टताओं को एक पीढी से दूसरी पीढी मे ले जाते हैं, नष्ट हो जायेंगे। आदमी और पशु अपनी आंखो की रक्षा नही कर पाएंगे और अंधे हो जाएंगे। लाखों करोड़ों अंधे पशु-पक्षी (यदि बचे तो) धरती की छाती पर बेतहाशा इधर-उधर गिरते पड़ते दौड़ेंगे पानी की खोज मे। आनुवंशिकता विद्वान निकोलाई बोकोव कहते हैं कि यह सोचना मूर्खता होगी कि आनुवंशिक तौर पर मानव जाति बच पाएगी और आगे चलती रहेगी। आयोनाइजिंग विकिरण तथा रेडियोधर्मी वर्षा के कारण जीवित बचे प्राणियों मे भयानक परिवर्तन होंगे। जो जीवाणु आज बिल्कुल हानि रहित माने जाते हैं वे अत्यन्त प्राणघाती बन जाएंगे और संबंधित प्राणियो के लिए गम्भीर खतरे उत्पन्न करेंगे।

बची-खुची जनसंख्या की सतानोत्पत्ति की क्षमता लगभग समाप्त हो चुकी होगी क्योकि सख्या के हिसाब से वे काफी निम्न स्तर पर आ जाएगे। आनुवंशिक विभिन्नता न्यूनतम हो जाएगी। निकट संबधो के द्वारा सतानोत्पत्ति से बच पाना सम्भव नहीं होगा। अपने विकास के दौरान मानवजाति मे जो आनुवंशिक रोग आ गये हैं वे नई कारणों के द्वारा कई गुना बढ जाएगे और जीवित बचे गिने चुने मानव भी समाप्त हो जाएगे।

संक्षेप मे मुस्कराते फूलो, स्वर्णिम पर्वतमालाओ और जीवन की चहल-पहल से सजी सवरी हमारी पृथ्वी एक ऐसे निर्जीव ग्रह में बदल जाएगी जहां बर्फ, नीरवता और बरबादी के सिवा कुछ भी नही होगा और धरती पर छाया सन्नाटा शायद उस दिन का इतजार करेगा जब समुद्रो के जल से जीवन की नये सिरे से शुरूआत होगी। □

(पत्र सूचना कार्यालय भारत सरकार)

आर्यसमाज सगम विहार नई दिल्ली के लिए

श्री रामशरण दास आर्य का सत्प्रयास

आर्यसमाज के भवन निर्माण के लिए श्री रामशरण दास आर्य ने अपने सत्प्रयास से २० हजार मूल्य का एक प्लाट नि:शुल्क प्राप्त किया है जिसमे आर्यसमाज की गतिविधिया शीघ्र ही प्रारम्भ की जा रही हैं। दक्षिण दिल्ली वेद प्रचार मण्डल सेवा की तत्परता और कुशलता से उत्तरोत्तर यश प्राप्त कर रहा है।

निवेदक
ओमप्रकाश भाटल
मन्त्री, दक्षिण दिल्ली, वेद प्रचार मण्डल

भारतीय जन-जागरण को

आर्यसमाज व ऋषि दयानन्द की देन

ले०—प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' अबोहर

बौद्धिक देन——

"महर्षि दयानन्द वा आर्यसमाज का भारतीय जन जागरण को योगदान' एक व्यापक विषय है। जन जागरण के लिए वैचारिक क्रान्ति की आवश्यकता है। फ्रांस की क्रान्ति का एक कारण वहां के दार्शनिकों का दार्शनिक साहित्य था परन्तु उन दार्शनिकों ने स्वयं क्रान्ति के लिए कुछ नहीं किया। ऋषि दयानन्द ने भारत वासियों को सर्वांगीण उन्नति के लिए जहां एक तेजस्वी विचारधारा दी, वहां देश के नगर-नगर, ग्राम-ग्राम, गिरि पर्वतों पर जाकर जन-जागरण का मंत्र फूंका। वह भारत के प्रथम विचारक और सुधारक थे जिन्होंने देश के उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम मे भ्रमण करके नवचेतना का सञ्चार किया। उनकी शिष्य परम्परा ने भी आगे चलकर धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक वा इतर क्षेत्रों में अद्वितीय कार्य करके एक इतिहास बनाया है। उनके शिष्य जन जागरण के कार्य मे सब से पहले वो सब से आगे रहे। इसका कारण ऋषि का वीरोचित दर्शन है श्री प० गगाप्रसाद उपाध्याय ने लिखा है – He has given us a bold philosophy of life, a philosophy of the reality of God, reality of man and the realities of the universe in which man has to live in His is a philosophy of actions and not of idle musings".

ऋषि दयानन्द ने वीरोचित दर्शन को अपने जीवन मे अनूदित करके देश वासियो के सामने एक उदाहरण रखा। वह भारत म प्रथम विचारक थे जिन्होने अपने कालजयी ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश मे अंग्रेजी न्यायालय की पक्षपात के कारण घोर निन्दा करते हुए लिखा था—

'इसी से ईसाई लोग ईसाइयों का बहुत पक्षपात कर किसी गोरे ने काले को मार दिया हो, तो भी बहुधा पक्षपात से निरपराधी कर छोड़ देते हैं।"

ऋषि ने इसी त्रयोदश समुल्लास मे सिंह गर्जना करते हुए योरूपीय साम्राज्यवाद पर तीखा प्रहार करते हुए लिखा था—

"वाह! तभी तो ईसाई लोग परदेशियों के माल पर ऐसे झुकते हैं कि जानो प्यासा जल पर, भूखा अन्न पर।"

प्रथम विश्व युद्ध तक गांधी जी सरीखे महान नेता भी अंग्रेज जाति के न्याय पर अडिग विश्वास रखते थे। लाल बाल पाल सरीखे राष्ट्रीय नेताओं का विश्वास अंग्रेज न्यायपालिका से उठ चुका था परन्तु ऋषि दयानन्द ने तो कांग्रेस की स्थापना से पूर्व ही अपनी लेखनी वाणी से ब्रिटिश न्यायालयो के बहिष्कार की भारतीयो को प्रबल प्रेरणा देते हुए ग्राम पचायतों, राष्ट्रीय पचायतों द्वारा परस्पर के विवाद निपटाने का सन्देश दिया। उन्नीसवी शताब्दी मे ही कई क्रान्तिवीरों ने इसे अपने क्षेत्र में क्रियान्वित करने का सत्प्रयास किया।

ऋषि के जीवन काल मे ही उनके राष्ट्रीय सगठन का विचार बनाया। महाराष्ट्र के पूना नगरी के श्री गणेश वासुदेव जोशी १८७६ ई० मे काशी गये। वहा उन्होंने उत्तर भारत की इस प्राचीन नगरी के प्रमुख जनो को निम्न चार बातें कही—

१ सर्वत्र एक सार्वजनिक संगठन का निर्माण किया जावे।

२ स्थान-स्थान पर पंचायती न्यायालय स्थापित हो।

३. स्वदेशी वस्तुओ का ही प्रयोग किया जावे।

४. शिल्प, कला कौशल की उन्नति की ओर ध्यान दिया जावे।

इस आन्दोलन को ऋषि दयानन्द का समर्थन प्राप्त हुआ। 'भारत सुदशा प्रवर्तक' ने तत्काल इसकी पुष्टि की।

इससे पूर्व कि यह आन्दोलन व्यापक रूप धारण करता, अनिष्टकारियों की कुटिल कुचाल से ऋषि का बलिदान हो गया और चतुर अंग्रेज ने कांग्रेस की स्थापना करके अपने प्रयोजन की सिद्धि का नया मार्ग निकाला। ऋषि के जीवन काल में ही एक अन्य आर्य पत्र "आर्य दर्पण" इन सब बातो का प्रचार करते हुए अंग्रेजी शासन को भारत द्वेषी नीतियो की कड़ी भाषा में जैसी भर्त्सना करता था उसका दूसरा उदाहरण मिलना अति कठिन है यथा "आर्यदर्पण" में प्रकाशित एक उर्दू कविता के तीन चार पद यहा प्रमाण स्वरूप देते हैं—

भला यह तो बोलो है क्या बात तुम में,
जो हम से ज्यादा फजीलत तुम्हारी।
यह माना कि हम लोग हैं काले काले,
यह माना कि गोरी है रंगत तुम्हारी ॥
यह माना हैं मुफलिस नहीं हम हैं काहिल,
मगर किस तरह सब बदौलत तुम्हारी ॥
गजब है यह उल्टी हमीं को मलामत,
हमारी कमाई है दौलत तुम्हारी ॥
मगर खैर वक्त वह आ गया है,
चलेगी न कुछ भी शरारत तुम्हारी ॥

इस पत्रिका के प्रायः सभी अंकों में अंग्रेज जाति को पक्षपाती, भारतीयों के धन का अपहरण करने वाला वा भारतीयों पर अन्याय करने वाला सिद्ध किया जाता रहा। "आर्यदर्पण" में "हिन्दुस्तानी क्यों तबाह हुए?" टिप्पणी इसका प्रमाण है।

"बाशिन्दगाने हिन्द गरीब क्यों हैं?" "आजकल किन की ज्यादती है?" लेख भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण।

जब श्री सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी जी को न्यायालय ने दण्डित करके जेल भेजा तो ब्रिटिश High court को ललकारने का दुस्साहस करने वाला यही "आर्य दर्पण" था।

पहले मुगलो, अफगानों, तुर्कों ने और फिर अंग्रेजों ने भारतीयो में हीनता के भाव भरने के सब उपाय किए। साम्राज्यवादी ऐसा किया ही करते हैं। ऋषि दयानन्द के उपरोक्त विचारों वा आर्यसमाज के प्रयत्नों से देशवासियों का स्वाभिमान जागा। राष्ट्र निर्माता सरदार पटेल ने इतिहास का एक सूक्ष्म सत्य प्रकाशित करते हुए अपने अन्तिम भाषण में कहा था—

"The greatest contribution of Swami Day anand was that he saved the country from falling deeper into merass of helplessness. He actually laid the foundation of India's freedom."

स्वदेशी के लिए दृढ प्रतिज्ञा——

ऋषि दयानन्द ने स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर इतना बल दिया कि प्रायः सब आर्यनेता स्वदेशी आन्दोलन से पूर्व ही स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करते थे। १८८७ ई० में महारानी विक्टोरिया की ५० वर्षीय जयन्ती पर लण्डन में भारतीय पारसियों वा बम्बई प्रान्त की ओर से दादा भाई नारोजी, बंगाल वा समस्त मुसलमानों की ओर से अब्दुल लतीफ पजाब वा सब हिन्दुओं की ओर से लक्ष्मी नारायण ने सम्राज्ञी को मान पत्र वा उपहार भेंट किये। लक्ष्मी नारायण नेता की यह मौलिकता थी कि उसने भारत से विशेष रूप से भारतीय कला का नमूना एक बाक्स मंगवाकर सम्राज्ञी को भेंट किया।

इसी लक्ष्मी नारायण ने राजा पन्चोक एक सेवक चन्दन सिंह के शव को लण्डन में लावारिस घोषित करके दबाये का विरोध कर उसके शव की शोभा यात्रा निकाल उसका दाह कर्म करके, शव को जलाने की रीति चलाई। एक अकिंचन भारतीय के लिए इतना प्रेम दिखाकर आर्यसमाजियों ने इंग्लैण्ड को चकित कर दिया। तब वहां के प्रेस में इसकी बड़ी चर्चा चली।।

स्वदेशी आंदोलन से पूर्व कई प्रमुख आर्य समाजों में स्वदेशी वस्तुओं के बिक्री केन्द्र थे। महात्मा मुंशी राम के घर जालधर में भी ऐसा प्रचार व बिक्री केन्द्र था। सब आर्य पत्रों में स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर लेख व विज्ञापन होते थे। १९०५-६ ई० के आर्य गजट व सद्धर्म प्रचारक के अंकों में स्वदेशी प्रचार के समाचार व लेख मिलते हैं। इन्हीं दिनों लाहौर में अनारकली समाज के उत्सव पर यशवन्तसिंह वर्मा का गीत "उनकी इज्जत भी क्या खाक जिनको पगड़ी दें परदेशी।"

सुनकर बाजारों में अनेको ने अंग्रेजी टोप व पगड़ियां उतार कर नालियो में फैंकीं। इस घटना का मूल्यांकन इतिहासकारों को करना होगा। ऋषि दयानन्द ने अपने शिष्यों में कैसी प्रखर राष्ट्रवादी भावनायें भरीं इसका एक उदाहरण यशस्वी इतिहासकार क्रांतिवीर सावरकर ने दिया है। ऋषि के बलिदान के शीघ्र पश्चात् लार्ड रिपन भारत से स्वदेश लौटा। उसको काशी मे विदाई देते हुए उसका बैल गाड़ी में जलूस निकाला गया। काशी के पण्डितों ने राज भक्ति के जोश मे बैल गाड़ी के बैलो को खोल दिया और जुए में स्वयं जुत कर वायसराय को खींचा। जब लाहौर मे आर्यसमाज के नेता लाला साईंदास जी को इस घटना का पता चला तो उन्हे इससे बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने कहा कि काशी के पण्डितो ने देश के माथे पर कलक लगा दिया है।

लाला साईं दास जी की ये कड़क भावनायें आर्यसमाजियो के हृदय में स्वाभिमान जोश का प्रतिनिधित्व करती हैं।

राजनीति के क्षेत्र मे आर्यसमाज के सेवकों ने जो बलिदान दिये हैं उसकी चर्चा इस छोटे से शोध लेख मे असम्भव है। श्याम जी कृष्ण वर्मा से लेकर हैदराबाद राज्य के गेराबाल्डी श्री प० नरेन्द्र तक मातृभूमि पर सर्वस्व आहुत करने वाले आर्य वीरों की तिल तिल जलने की गौरव गाथा पर कृतज्ञ देशवासी सदा गर्व करेंगे।

भारतीय जन-आगरण को आर्यसमाज व ऋषि दयानन्द की देन

संक्षेप से एक झांकी प्रस्तुत की जाती है—

(१) विदेशों में ४० वर्ष तक भारतीय म्ब;धीवता के लिए संघर्षरत रहने वाला तपोपूत श्याम जी कृष्ण वर्मा ऋषि का ही शिष्य था।

(२) विदेशों में निर्वासन के कारण ४० वर्ष बिताकर स्वदेश लौटने वाला क्रान्तिवीर अजीतसिंह भी आर्यसमाज की देन था।

(३) १८५७ ई० के विप्लव के पश्चात् सर्वप्रथम फांसी पाने वाले उ०प्र० के क्रान्तिकारी दल के प्रमुख वीर आर्यसमाजी ही थे, रामप्रसाद बिस्मिल, रोशनसिंह आदि।

(४) १८५७ ई० के पश्चात् सेना में विद्रोह का प्रचार करके फांसी पाने वाला प्रथम क्रान्तिवीर सोहनलाल आर्यसमाजी ही था।

(५) विदेश में प्रथम फांसी पाने वाला वीर मदनलाल भी आर्यसमाजी ही था।

(६) देशी राज्यों (Indian States) में भी आर्यों का राष्ट्रवादी विचारों के कारण दमन होता रहा। देशभक्ति के अपराध में पटियाला राज्य ने सर्वप्रथम देशभक्तों को निष्कासित किया, बन्दी बनाया व उन पर अभियोग चलाया। यह सन १९०९ की घटना है यह सब लोग आर्य थे। इनमें से कुछ प्रमुख सज्जन थे, राजा ज्वालाप्रसाद, ला० नारायणदत्त, महाशय रौनकराम शाद, रौनकसिंह जी, शंकरलाल जी, पृथ्वी चन्द्र जी, ला० पतराम व उनके सुपुत्र श्री दिलीपचन्द नरवाना।

(७) भारत के वायसराय हार्डिंग पर बम्ब फैंकने के अपराध मे बलिवेदी पर चढ़ने वाले व बन्दी होने वाले अधिक वीर भी आर्यसमाजी ही थे। यथा भाई बालमुकन्द, प्रतापसिंह बारहट या लाला हंसराज आदि।

(८) १९३१ ई० में एक आर्य हरिकृष्ण ने पंजाब के गवर्नर पर गोली चला कर शासन को कम्पा दिया। इसी के भाई श्री भक्तराम ने मुसलमान पठान के वेश में नेताजी सुभाष को जर्मनी पहुंचाया था।

(९) एक आर्य सेना अधिकारी चन्द्रनसिंह गढ़वाली ने पेशावर में सत्याग्रहियों पर गोली चलाने से इन्कार करके वर्षों जेल में काटे।

(१०) केवल आर्यसमाज के ही एक संन्यासी को वायसराय के आदेश से स्वाधीनता संग्राम में बन्दी बनाया गया। केवल एक आर्य साधु पर ही एक प्रान्त के गवर्नर की हत्या के षड्यन्त्र का दोष लगाया गया। वह संन्यासी थे स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी। इन पर सेना में विद्रोह फैलाने का भी अभियोग चला।

(११) सारे भारत में केवल एक ही उपदेशक विद्यालय की स्वाधीनता संग्राम में तलाशी ली गई और वह आर्यसमाज का उपदेशक विद्यालय लाहौर था।

(१२) प्रथम सत्याग्रही जिस को न्यायालय के अपमान के लिए दण्डित किया गया, वह पं० मनसाराम वैदिक तोप सुप्रसिद्ध आर्य विद्वान् थे।

१३ केवल एक ही भारतीय वैज्ञानिक स्वाधीनता संग्राम में बन्दी बनाया गया। वह थे श्री डा० सत्यप्रकाश जी।

१४. देश की स्वाधीनता के लिए केवल चार देशभक्त जीवित जलाए गए और वे चारों ही हैदराबाद के आर्यसमाजी थे—

कृष्णाराव ईटेकर, उनकी पत्नी माता गोदावरी देवी, काशीनाथ धाकर तथा गोविन्द राव जिला बीदर।

डी० ए० वी० कालेज कानपुर के छात्रावास में घुसकर अंग्रेजी शासन ने शालिगराम छात्र को गोलियां मारकर शहीद कर दिया। लाहौर डी० ए० वी० कालेज ने आर्ययुवक समाज के यशस्वी प्रधान प्रो० भगवानदास (जो इस संस्था के यशस्वी प्राचार्य रहे) को पीटने के लिए गई पुलिस ने उन्हीं के Classroom में उन्हीं की आकृति के एक और प्राध्यापक को लहूलुहान कर दिया। आर्यसमाज के गुरुकुलों व स्कूलों, कालेजों ने स्वाधीनता के लिए अद्भुत बलिदान देकर राष्ट्र की ठन्डी रगों में गर्म खून का संचार किया।

आर्यसमाज ने राष्ट्रीय जागृति का जो विलक्षण कार्य किया है। उसके फलस्वरूप देश के केवल एक ही राष्ट्रीय नेता को जामा मस्जिद के मिम्बर से ईदगाह वा सिखों के अकालतख्त से जन समूह को सम्बोधित करने का गर्व प्राप्त हुआ और वह थे आर्य सन्यासी श्रद्धानन्द जी।

सामाजिक जागृति—

रूढ़ियों कुरीतियों से जर्जर भारतीय समाज को झंझोड़ने व जगाने का मुख्य श्रेय भी आर्यसमाज को ही जाता है। मराठी लेखक डा० सहस्रबुद्धे ने यथार्थ ही लिखा है कि उन्नीसवीं शताब्दी में शीर्षस्थ नेताओं मे अधिकाश ब्राह्मणेतर वर्गों से आए इसका कारण आर्यसमाज द्वारा उत्पन्न जागृति है।

आर्यसमाज में भी आज विरले ही जन हैं जिनको यह पता हो कि आर्यसमाज में ऋषि दयानन्द के पश्चात् सबसे बड़े विद्वान् मनीषी पं० गुरुदत्त विद्यार्थी ब्राह्मण कुल में नहीं जन्मे थे। अपने तपो बल से विद्या बल से आर्यसमाज में वह सर्वमान्य ब्राह्मण बने और पण्डित की संज्ञा प्राप्त की। श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा भी उसी युग में पण्डित की पदवी से विभूषित हुए परन्तु उन्हें पंडित की उपाधि जर्मनी से प्राप्त हुई। आर्यसमाज में वह भी एक शिरोमणि विद्वान् माने जाते हैं। यह सामाजिक क्रांति केवल पंजाब तक ही सीमित नही रही। उ० प्र०, राजस्थान, मध्यप्रदेश बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र, केरल व तमिलनाडू तक आर्यसमाजियो ने जातपात के यह बंधन तोड़कर दिखाये। जहाँ ब्राह्मण घरों मे जन्मे पं० लेखराम, पं० गणपति शर्मा, स्वामी दर्शनानन्द आदि दिग्गज विद्वानो का आर्यसमाज को नेतृत्व प्राप्त रहा वहाँ स्वामी श्रद्धानन्द जी, महात्मा हंसराज जी, महात्मा नारायण स्वामी, पं० गंगाप्रसाद चीफ जज, कुंवर हुकमसिंह, चौधरी, पीरू सिंह, स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी, आचार्य भद्रसेन जी, भक्त फूलसिंह जी, पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, पं० नरेन्द्र जी हैदराबाद से लेकर आचार्य प्रियव्रत जी व आचार्य नरेन्द्र भूषण केरलीय तक आर्यसमाज ने एक से एक बढ़कर ऐसे नेता व विद्वान् पैदा किए हैं जो ब्राह्मणेतर वर्गों में जन्मे।

इस समय भी आर्यसमाज के लिए ब्राह्मण मिशनरी निर्माण करने वाले आर्यसमाज के सबसे बड़े महाविद्यालय दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय के प्राचार्य श्री सत्यप्रिय आचार्य जन्म से ब्राह्मण नहीं। दो अन्य विद्वान् प्राध्यापक श्री पं० कर्मवीर जी व पं० विश्वामित्र जी मराठे हैं।

ऋषि ने स्वयं सर्वप्रथम एक मुसलमान मुहम्मद उमर को अलखधारी बनाया फिर एक पादरी खड़कसिंह को शुद्ध आर्य बनाया। जाति पाँति के उसी दूषित युग में खड़कसिंह की पुत्रियाँ आर्य घरानो में ब्याही गईं। ऋषि के कुछ समय पश्चात् अब्दुल अजीज अजमेर मे शुद्ध होकर ला० हरजसराय बने। अमृतसर के किसी आर्यकुल में उनका विवाह हुआ। वह बड़े ऊंचे विद्वान् और पंजाब के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे।

आर्यसमाज के प्रयत्नों से ऐसी जागृति आई कि जन्म के मुसलमान व दलित वर्ग मे (तथाकथित अस्पृश्य वर्ग) जन्मे व्यक्तियों ने आर्यसमाज में ऊंचे से ऊंचा स्थान पाया। दलित वर्ग मे जन्मा सबसे पहला कालेज प्रिंसिपल आर्यसमाज के मान्य श्री रामदास जी पूर्व लोकसभा सदस्य हैं।

आर्यसमाज शताब्दी समारोह दिल्ली में देश विदेश के जिन ३० ३१ विद्वानों का अभिनन्दन किया गया उनमें से दो थे आर्यसमाज के ९५ वर्षीय महान् संन्यासी विज्ञानानन्द जी तथा तपोधन आचार्य देवप्रकाश जी। ये दोनों जन्म से मुसलमान थे। सारे हिन्दुसमाज में ये दोनों विभूतियाँ पूज्य मानी जाती थी। दलित वर्ग में जन्मे अनेक व्यक्ति आर्यसमाज के प्रतिष्ठित व पूज्य सन्यासी व विद्वान् बने। केवल एक श्री स्वामी वेधड़क जी का नाम लेना ही पर्याप्त है। वह भारतीय स्वाधीनता संग्राम में दस बार जेल गये। वह हैदराबाद सत्याग्रह मे भी १९३९ ई० मे जेल गये थे।

समाज सुधार के क्षेत्र मे नारी उत्थान के लिए आर्यसमाज ने क्रांतिकारी कार्य किया। ऋषि दयानन्द ने दो देवियों को विशेष रूप से नारियो में सेवा कार्य व धर्म प्रचार की प्रेरणा दी। एक तो थी पंडिता रमा बाई जो ईसाई बन गईं। उसने सन् १८८२ ई० मे स्त्रियों के लिए बम्बई 'आर्य महिला सभा" नाम की एक संस्था का निर्माण किया।

दूसरी थी पंजाब की एक देवी माता भगवती जिसने उत्तर भारत में अपने जन्म स्थान हरियाणा ग्राम मे नारी शिक्षा आंदोलन को जन्म दिया। अपने धर्म, भाव, प्रचार सेवा व नारी शिक्षा के लिए वह अत्यन्त पूज्या देवी समझी जाती थी। महात्मा हंसराज ने जब डी० ए० वी० आंदोलन के लिए जीवनदान की घोषणा की तो उस दिन उनकी घोषणा से पूर्व उन्ही माता भगवती का डी० ए० वी० स्कूल की स्थापना के लिए एक बड़ा प्रेरणाप्रद व ओजस्वी व्याख्यान हुआ था। धार्मिक क्षेत्र में शीघ्र ही उन्होंने बड़ी प्रसिद्धि पाई।

रेवाडी की पत्नी राव युधिष्ठिरसिंह प्रथम भारतीय महिला थी जिनको किसी धार्मिक संगठन ने अपना पद अधिकारी बनाया। वह आर्यसमाज की प्रधाना चुनी गईं।

बालविवाह अनमेल विवाह, बहुविवाह उन्मूलन के लिए आर्यसमाजियों ने हड्डियाँ तुड़वाई व सिर फुड़वाए है। हैदराबाद मे विधवा विवाह के लिए कानून बनवाने के प्रयत्नो के लिए न्यायमूर्ति केशवराव जैसे लोकमान्य आर्य नेता को धक्के मारे गये।

जब कन्या महाविद्यालय जालन्धर उत्तर भारत का प्रथम महिला कालेज स्थापित हुआ। तब पौराणिक व देव समाजी तो इसके विरोधी थे हा आर्यसमाज मे भी कुछ लोग नारी शिक्षा के तो पक्ष मे थे परन्तु नारियो को उच्च शिक्षा देने के पक्ष मे न थे।

सामाजिक क्षेत्र मे जागृति का सब से बड़ा कार्य गुण, कर्म, स्वभाव से विवाह की रीति को चलाना व जन्म की जाति पाँति को मिटाना है। इस दिशा मे मराठवाड़ा का आर्यसमाज सबसे आगे रहा है। लातूर के डा० डी० आर दास (अब रवतम मुनि) आर्यसमाज मे इस दृष्टि से आदर्श माने जाते है। स्वाधीनता सेनानी स्वर्गीय आर्यनेता शेषराव जी वाघमारे, श्री भाई बंशीलाल जी के नाम से महाराष्ट्र व निजाम राज्य के

(शेष पृष्ठ ११ पर)

राष्ट्रीय एकता के प्रथम सूत्रधार
दिव्यद्रष्टा दयानन्द

प्रि० ओमप्रकाश, नई दिल्ली

आज जब हमारे प्यारे देश भारत मे विघटन की लहरें चारो ओर से उठ रही हैं और विदेशी शक्तियाँ भारत राष्ट्र को कमजोर करने के लिए राष्ट्रघाती तत्वों सहायता दे रही हैं, राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता पर ठीक ही बहुत बल दिया जा रहा है। १९४७ ईस्वी में भारत का तीन भागों मे विभाजन मानकर तत्कालीन नेताओं ने कहा था कि अब देश सुख-चैन की नीद सोएगा। पर ३९ वर्षों की आजादी मे साम्प्रदायिक एव अराष्ट्रीय तत्वो ने भयावह बरबादी की ओर अब देश के और टुकडे करने की साजिश रची जा रही है। उत्तर में कश्मीर में राजद्रोह का नगा नाच हो रहा है और पंजाब में "खालिस्तान" के नारे लग रहे हैं, पूर्व मे आसाम मे ज्वाला भड़क रही है और बाग्लादेश की उस पर वक्रदृष्टि है, दक्षिण मे अमरीका व अरब के डालरों के जोर पर राम-कृष्ण के नामलेवाओं को ईसा-मुहम्मद के अनुयायी बनाकर उन्हें राष्ट्र-विरोधी बनाने का षड्यन्त्र रचा जा रहा है और अमरीका उसे आधुनिक हथियार सप्लाई कर रहा है।

सभी ओर मे राष्ट्रीय एकता पर जोर

स्पष्टत राष्ट्र के सामने भीतरी और बाहरी चुनौतियाँ मुह खोले खडी हैं। उस की प्रभुसत्ता एव स्वतन्त्रता को रक्षा का प्रश्न आज प्रत्येक देशभक्त की जबान पर है। भारत के प्रधानमन्त्री बार-बार कह रहे हैं कि राष्ट्रीय एकता की जितनी आवश्यकता आज है, पहले कभी नही थी और हमे एक जुट होकर अलगाववादी शक्तियों का दृढता मे मुकाबला करना चाहिए। भारत के राष्ट्रपति सभी देशवासियो से अपील कर रहे हैं कि देश की अखण्डता की रक्षा के लिए सभी को छोटे मोटे भेदभाव दूर कर देने चाहिए। सिक्को तक पर 'राष्ट्रीय एकता' शब्द भारत के वर्तमान मानचित्र के साथ अंकित है। राजनैतिक पार्टिया "राष्ट्रीय एकता रैलियाँ कर रही हैं और धार्मिक संगठन "एकता यज्ञ"। कही पदयात्राए हो रही हैं, तो कही जलूस निकाले जा रहे हैं। अभिप्राय यह कि सभी तरफ से राष्ट्रीय एकता पर जोर दिया जा रहा है।

शुद्ध भावना का अभाव

पर दुःख का विषय है कि "मरज बढता गया, ज्यो-ज्यो दवा की" का मामला ही पनप रहा है। राष्ट्रीय एकता की शुद्ध भावना उजागर नहीं हो रही। कारण स्पष्ट है। राष्ट्रीय एकता के मूल तत्त्वो पर ध्यान नही दिया गया। जिस महर्षि का बोध दिवस आज हम मना रहे हैं, उसने अपनी दिव्य दृष्टि से आज से १०५–१० वर्ष पूर्व राष्ट्रीय एकता की अलख जगाई थी, पर देश का दुर्भाग्य कि भारतीय स्वतन्त्रता-सग्राम के मूल प्रणेता उस महान् राष्ट्र-निर्माता की बात पर देश की बागडोर सभालने वाले नेताओं तथा भारतीय जनता ने सम्यक् ध्यान नहीं दिया और परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय एकता की यथोवाछित भावना के अभाव के कारण राष्ट्र संकट में फसता रहा और पुनः विकट सकट में बुरी तरह ग्रस्त है।

महर्षि दयानन्द द्वारा राष्ट्रीय एकता का बीजारोपण

दिव्यद्रष्टा दयानन्द वस्तुत. राष्ट्रीय एकता के प्रथम सूत्रधार थे। १८५७ के प्रथम स्वतन्त्रता सग्राम की विफलता को उन्होने अपनी भरी जवानी में देखा था। उसके पश्चात् देश में ब्रिटिश साम्राज्यशाही के बडे आतंक और उससे उत्पन्न राष्ट्रीय उदासीनता पर उन्होने गम्भीर चिन्तन किया था। वैदिक धर्म एव आर्यावर्त के निमित्त अपना सर्वस्व न्योछावर करने वाले उस बाल ब्रह्मचारी ने सतत प्रयत्न करने की ठान ली और "इण्डियन नेशनल काग्रेस" के जन्म से ९ वर्ष पूर्व १९७६ मे भारत की राजधानी दिल्ली में महारानी विक्टोरिया के दरबार के समय सर सैयद अहमद खा और बाबू केशवचन्द्र सेन आदि सभी सम्प्रदायो के नेताओं को आमन्त्रित करके इस भावना को दृढीभूत करने का घोर प्रयास किया था। १८७७ के चादपुर के सुविख्यात मेले के अवसर पर दयानन्द ने बाईबल, कुरआन, कबीर पन्थ आदि के मानने वाले पादरी स्काट, मौलवी मुहम्मद कासिम जैसे विद्वानो को सत्यधर्म विचार के लिए बुलाया था। दूसरों की स्वार्थपरता एवं दुराग्रह के कारण उन्हें अपने सत्प्रयास मे सफलता न मिली। पर राष्ट्रीय वातावरण मे इसकी आवश्यकता का आभास होने लग गया, राष्ट्रीय एकता के बीज का आरोपण हो गया, जो बाद में स्वतन्त्रता संग्राम मे खूब पल्लवित हुआ। "राष्ट्रीय एकता" के दिग्गज महारथी स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपत राय, अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल, वीर भगत सिंह आदि महर्षि दयानन्द के ही परम भक्त थे।

राष्ट्रीय एकता की अनोखी भावना :

युग-प्रवर्तक दयानन्द अपने अमर ग्रथ 'सत्यार्थप्रकाश' में राष्ट्रीय एकता का कार्यक्रम उस समय बना रहे थे जब महात्मा गांधी अभी चार-पांच वर्ष के बच्चे थे और पं०नेहरू तथा नेताजी सुभाष जैसे महान् राष्ट्रीय नेताओं का जन्म नही हुआ था। १८७५ मे अपने 'आर्यसमाज' की स्थापना करके जहां उन्होंने ईश्वर व वेद पर श्रद्धा करनी सिखाई, वहा आर्यों के चक्रवर्ती राज्य की याद दिलाकर 'इण्डिया' को पुन. 'आर्यावर्त' बनाने का संकल्प लेना भी सिखाया। उनकी दृष्टि में इसकी नींव थी 'आर्य राष्ट्र के प्रत्येक घटक को एकता के सूत्र मे पिरोना।'

और दयानन्द की राष्ट्रीय एकता की भावना भी अनोखी थी। वे व्यक्ति और समाज के जीवन में उदात्त भावनाओं का संचार करके उसमे सर्वतोमुखी क्रांति लाकर राष्ट्र के जीवन मे स्वतः प्रेम-भावना का संचार करना चाहते थे। वे केवल नारों में, केवल आदोलनों में, गुटबन्दियों में, कूटनीतियो मे विश्वास न रखकर राष्ट्र को ठोस आधार पर संगठित करना चाहते थे और वह ठोस आधार था—'भारत का स्वधर्म, स्व सस्कृति, स्वभाषा, स्व इतिहास।'

राष्ट्रीय एकता के मार्ग की बाधाएँ :

क्रान्तदर्शी दयानन्द ने ११० वर्ष पहले हिमालय की चोटी से ललकार कर कहा था कि राष्ट्रीय एकता के मार्ग में मुख्य रूप से चार प्रकार की बाधाएँ आ खडी हुई हैं सम्प्रदायवाद या मतमतान्तरवाद, भाषावाद, प्रान्तवाद एव जातिवाद। इन चारों के मूल में है 'स्वार्थवाद।' महर्षि ने आर्यसमाज के नियम 'प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में संतुष्ट नहीं रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए' इत्यादि बनाकर व्यक्ति को स्वार्थगर्त से ऊपर उठा, देश-जाति और धर्म की तन-मन-धन से सेवा करने का उपदेश दिया था। 'सगच्छध्व सवदध्व सं वो मनांसि जानताम्' आदि संगठन-सूक्त के वेद-मत्रों का पाठ बार-बार करने का निर्देश देकर उस दिव्य पुरुष ने आर्यजाति को एकता के सूत्र में बांधने का भरसक प्रयास किया था।

ऋषिवर ने अपनी दिव्य दृष्टि से एक शताब्दी पहले ही इन राष्ट्रघातक वादों को देख लिया था। आज हृदय की गहराइयों से हमारे नेता उनकी बातों को मान रहे हैं, पर उस पर आचरण अपने ढंग से ही कर रहे हैं। वोट लेने का उनका स्वार्थ, उनके दिल की बात जबान पर नहीं आने देता। अतः क्या सत्ताधारी कांग्रेस और क्या विपक्षी राजनीतिक दल राष्ट्रीय एकता की भावना उजागर करने में बुरी तरह फेल हुए हैं।

सम्प्रदायवाद और भाषावाद :

सम्प्रदायवाद ने भारत को भीतर से खोखला कर दिया है। देव दयानन्द की आत्मा इसे देखकर कराह उठी थी, आर्य राष्ट्र का विनाश होता देखकर वह रो पडे थे। अत उन्होंने तुमुल ध्वनि से घोषणा की थी कि आर्यों की भूमि भारत का मूलधर्म वेद है। उसे राष्ट्रधर्म माने बिना भारत का कल्याण न होगा। देश में विदेशी शासन के साथ फैले इस्लाम और ईसाई मत पर उन्होंने कुठाराघात किया और भारतवासियों को चेतावनी देते हुए कहा कि वेद धर्म के सूर्य के सामने वे मत दीपक समान हैं। अन्य मतों व पंथों की विवेचना करते हुए उन्होंने उच्च स्वर से कहा कि सम्प्रदायवाद को बढ़ावा देने से न जाति संगठित होगी और न राष्ट्र में एकता की भावना दृढ होगी। वेद की दुन्दुभी आज भी मद्रासियों, बंगालियों महाराष्ट्रियों, उत्तर-प्रदेशियों, राजस्थानियो, आन्ध्रप्रदेशियों, आसामियो, पंजाबियों आदि को एकता के सूत्र में बांध सकती है, इसका प्रमाण भारत की राजधानी दिल्ली में हुआ "अखिल भारतीय वैदिक विद्यार्थी सम्मेलन" था। हमारे नेताओं ने इस प्रकाट्य सत्य को न माना और धर्म निरपेक्षता के जाल में भारतीय जनता को फंसाकर सम्प्रदायवाद को ही हवा दी, जिसके विध्वंसकारी एव राष्ट्रघाती परिणाम आज भयावह चुनौती दे रहे है।

भाषा एकता राष्ट्र के लिए संजीवनी बूटी है, यह सिंहनाद भी उस राष्ट्र रक्षक ने हिमालय की चोटी से ललकार कर किया था। सस्कृत के विद्वान और गुजराती मातृभाषा वाले उस राष्ट्र-भक्त ने अपने जीवन के अन्तिम काल में आर्यभाषा (हिन्दी) सीखी, अपने भाषण उसमें किए, अपने ग्रथ उसमे लिखे, क्योंकि जब वह प्रचार-कार्य करते करते देश के विशाल प्रांगण में घूमे, तो उन्हें विश्वास हो गया कि भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी है और यही राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांध सकती है। उन्होंने यह घोषणा ब्रिटिश साम्राज्यशाही के आतंक काल में की थी। स्वतन्त्र भारत का विधान बनाने वालों ने महर्षि की घोषणा स्वीकार कर भारत की राजभाषा हिन्दी बना तो दी, पर जिन लोगों के हाथों में शासन की बागडोर आई,

(शेष पृष्ठ १० पर)

वह गुजारा जमाना याद आता है जब कि भारत राष्ट्र को दो टुकड़ों मे विभाजित करने को साम्राज्यवादी चाल सफल हो गई थी। भारत का मर्स हा, लगोटीधारी महान राष्ट्रभक्त, राष्ट्रसंत राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जिन्हें जितनी भी उपमाएं दी जाएं कम हैं, जिनका नारा था कि पकिस्तान मेरी लाश के टुकडो पर बन सकता है जीते जी नही। कुंवर जोरावर सिंह माते थे श्मसान भले ही बन जाये बन सकता पाकिस्तान नही। किन्तु भारत के मुसलमानों ने मुसलमानो के तत्कालीन नेता मिस्टर जिन्ना ने जिस एकता के बल बूते पर हंसते हुए पाकिस्तान ले लिया। यद्यपि करोडो माताओं बहिनो की अस्मत सरे आम लूटी गई, सैकडों निर्दोष बच्चों को संगीनों की नोक पर भेला गया। फिर भी १४ अगस्त सन् १९४७ को कराची में मिस्टर जिन्ना के हाथों इस्लामी परचम लहराया गया। पं० जवाहरलाल नेहरू ने लाल किले पर। यह जातीय आधार पर हिन्दू व मुसलमानों के बीच भारत का बटवारा था। विशुद्ध जातीय बटवारा था - कथित दो भाइयो के बीच जो भारत को अपना कहते थे। चाहिए तो यह था कि उसी समय जातीय आधार पर आबादी अदला बदली कर लेते। ना खूनखराबा होता ना ही अनहोनी घटना होती। किन्तु दुर्भाग्य से उस समय के राष्ट्रीय नेता जिन्हें मिस्टर जिन्ना व मुसलमान हिन्दू नेता ही मानते थे, नही माने और भारत मे करोडों मुसलमान रह गए। तब से लेकर आज तक यद्यपि मुसलमान भारत मे सुख से रहता है। भारतीय संविधान के राष्ट्रीय अधिकार न्याय व्यवस्था के कारण भारत राष्ट्र का शिक्षा मंत्री बना, राष्ट्रपति बना; केन्द्रीय मन्त्री बना, राज्यपाल बना, मुख्य न्यायाधीश बनें। संसद से लेकर हर विभाग में अधिकारी बना, हर तरह की आजादी है, सुख है, सुरक्षा है। हिन्दुओं से ज्यादा सरकारी सहायता व अनुदान है। हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को हर दिन ठेस पहुंचाता है। गायों को काटा जाता है। जरा सी बात पर दंगे व फसाद कराये जाते हैं। भारत के महापुरुषों का अनादर होता है। अपनी अलग पहचान बताता है, जिहाद की बात करता है। अपनी सभ्यता व संस्कृति अलग बताता है। जिहाद की बात करता है, जहाँ अच्छा हो वहीं पर दरगाह बनाकर जमीन पर कब्जा कर लेता है। भय व लालच देकर धर्म-परिवर्तन भी करता है। अरब देशों में यदि मुसलमान मुसलमान से लडता है तो भारत में अपना आक्रोश हैदराबाद जैसी जगहों पर हिन्दुओं की दूकानें लूटकर व आग लगा कर बताता है। न्याय अन्याय कुछ नहीं देखता, बस एक ही बात देखता है कि वह मुसलमान है कि सिर्फ मुसलमान। उसका देश है अरब उसकी सभ्यता है अरबी, उसका कानून है शरियत

मध्य भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा तात्या टोपे नगर भोपाल

क्या यह सन् १९४७ का पूर्वाभ्यास है

—प० राजगुरु शर्मा
(प्रधान म०भा०आ०प्र०स०)

दुनिया की कोई हुकूमत कोई कानून कोई हस्ती नही जो शरियत के खिलाफ कोई फैसला करे शरियत खुदाई कानून है इन्सानी नहीं, इस्लाम जिन्दा है व जिन्दा रहेगा। खुदा एक है, खुदा का नबी एक है। खुदा का ज्ञान अथवा इलहाम याने कुरान एक है। मुसलमान एक है जब तक इस धरती पर एक भी गैर मुस्लिम रहेगा मुसलमान चैन से नही बैठेगा। वह जिहाद करेगा यदि ये वो मान्यताए जिनका परिणाम सन् १९४७ मे हमने देखा व उसी का पूर्वाभ्यास दिनांक ३१ जनवरी १९८६ को शाहबानों देवी के प्रकरण पर भोपाल मे आयोजित नगर बद व विशाल जूलूस के दौरान साथ लेकर चलते हुए बैनरो, बैजों से महिलाओं पर पढ प्रश्न उठता है कि दुनिया के किसी मुल्क में किसी (इस्लामी मुल्क में) किसी गैर मुस्लिम को इस प्रकार अधिकार लेना तो दूर रहा क्या मुंह से कहने की भी इजाजत है? यदि इन सभी को छोड दिया जावे तो एक सीधा सवाल उठता है कि मुसलमान खुदा के इल्हाम याने कुरान को पूरा मानता है? क्या हदीसों व शरियत में वर्णित सभी बातों को स्वीकार करता है? या कुछ को मानता है और कुछ को नजर अन्दाज करता है या सभी बातों को देश काल या परिस्थिति के अनुसार स्वीकार करता है?

लेखक ने जहाँ तक कुरान व हदीसों को ज्ञानप्राप्ति की दृष्टि से पढा है यह लिखने को मजबूर करता है कि बहुत सी बात ऐसी हैं कि वेद के अनुसार हैं इन्सानी फर्ज हैं जिसे अवश्य स्वीकार करना चाहिए, किन्तु बहुत सी सजाए इस प्रकार की हैं जो देश काल व परिस्थिति के अनुसार दी गयी हैं शाश्वत नहीं हैं, उन्हें विचार कर करना चाहिए। क्या इस्लाम किसी मुस्लिम को स्मगलिंग करने की इजाजत देता है। क्या मुसलमान व्याज ले दे सकता है? क्या मुसलमान किसी कुवारी लडकी के साथ बलात्कार कर सकता है? क्या मुसलमान किसी से बेइमानी कर सकता है? क्या मुसलमान झूठ बोल सकता है? क्या मुसलमान मूर्तिपूजा के स्थान पर नमाज पढ सकता है? क्या मुसलमान को इजाजत है कि वह जिस राष्ट्र में रहता है उसके कानून न्याय-व्यवस्था को नहीं माने? क्या मुसलमान को यह इजाजत है कि किसी मजहब के पीर पैगम्बर औलिया या महा पुरुष का अपमान करें?

ऐसे हजारों सवाल हैं जिन पर हदीसो मे स्पष्ट आदेश दिए गए हैं जिन्हें एक पढा लिखा मुसलमान भलीभांति जानता है तो फिर विवाद क्यों? जो सत्य है उसे स्वीकार करना ही इस्लामी फर्ज है। न गुमराह होना चाहिए न ही मजहबी जुनून पैदा करना चाहिए। सीधा सादा सवाल है। यदि मुसलमान केवल खुदाई कानून मानता है तो फिर अदालत में क्यों जाता है? अपने गुनाहों को तालीम कर खुद शरियत के अनुसार अपनी सजा तजबीज क्यों नही करता। इस्लाम का अर्थ तो यह नही कि उनके कानून केवल अरब देशों में मान्य हों।

लेखक को इस्लाम के दीनदार व ईमानदार दोस्तों से निहायत हमदर्दी है हमारी मान्यता है कि देश के विभाजन के साथ ही यह बात भी चाहे सही हुई हो या गलत स्पष्ट ही मानने योग्य है। कि जो मुसलमान इस देश को अपना देश नहीं मानते थे वे पाकिस्तान चले गए तथा जो इस देश को अपना देश मानते थे वे यहीं रह गए। वे विशुद्ध भारतीय राष्ट्र के राष्ट्रीय मुसलमान थे। उन्हो ने इस देश संविधान, न्याय व्यवस्था व राष्ट्रीय धर्म निरपेक्षता अर्थात् सम्प्रदाय विहीन भारत राष्ट्र की विचार धारा को स्वीकार किया था। आज वे ही इस देश मे रहते हैं या अब उनकी सन्तानें इस देश मे हैं।

अत उन्हें राष्ट्रीय संविधान न्याय व्यवस्था व इस देश के बहुसख्यक हिन्दू समुदाय की मान्यताओं को आदर सहित स्वीकार कर राष्ट्र धर्म को स्वीकार करना चाहिए। ऐसा कोई कार्य नही करना चाहिए जिससे राष्ट्र न्याय व व्यवस्था का राष्ट्रीय स्वरूप ही नष्ट हो जाये। कल्पना करना चाहिए कि आज जिस प्रकार मुसलमान शरियत की बात करता है तो ईसाई बाइबिल की, सिक्ख सिक्खो की, जैन जैनी की, बौद्ध बौद्धी की, पौराणिक पुराण की वैदिक वेद की बात करने लगें व आन्दोलन करने लगे तो फिर भारत-भारत नही रहेगा। हर समुदाय अपने अनुसार कानून बनाने हेतु जिहाद करेगा, यह सर्वथा असम्भव है। हम भारतीय हैं, भारत प्राणों से प्यारा है. भारत का संविधान न्याय व व्यवस्था सब के लिए है। हम सब जो इस देश में पैदा हुए हैं इसी राष्ट्र की महान् राष्ट्रीय सन्तान हैं। जैसे कि एक पिता सारे परिवार के लिए समान व्यवस्था देता है। उसी प्रकार राष्ट्र में समान व्यवस्था न्याय व कानून होना चाहिए, इसलिए आन्दोलन भी करना पडे तो इसे राष्ट्र धर्म कहा जायेगा। आओ हम सब मिलकर इसे महान् राष्ट्र का गौरव प्रदान करें। □

दिल्ली में हिंसात्मक उपद्रव पूर्व नियोजित षड्यन्त्र पंजाब के उग्रवादियों के हाथ मजबूत करने की चाल

राम जन्मभूमि-मुक्ति एक बहाना

दिल्ली १७ फरवरी। दिल्ली मे मुसलमानों द्वारा किए गए हिंसात्मक उपद्रव पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री रामगोपाल शालवाले ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि पंजाब के उग्रवादियों और देशद्रोही शक्तियों के हाथ मजबूत करने के लिए यह हिंसात्मक उपद्रव एक सुनियोजित षड्यन्त्र था। दिल्ली तथा दिल्ली के बाहर के कई स्थानों पर एक साथ इस प्रकार की घटनाएं होना, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

श्री शालवाले ने कहा, अयोध्या मे राम जन्मभूमि की मुक्ति एक बहानामात्र है। दरअसल इस उपद्रव का उद्देश्य देश में साम्प्रदायिक दंगे भड़काकर, अस्थिरता पैदा करके पंजाब के उग्रवादियो की सहायता करना था। इन उपद्रवों पर आम जनता की भी यह राय है कि दिल्ली की जामा मस्जिद के इमाम सैयद अब्दुल्ला बुखारी और शाहबुद्दीन का इस षड्यन्त्र मे गहरा हाथ है और पाकिस्तान की शह पर यह उपद्रव किया गया है।

श्री शालवाले ने भारत सरकार से अनुरोध किया है कि ऐसे देशद्रोही तत्वों और इस काण्ड मे सम्बन्धित दोषी व्यक्तियों को कड़ी से कडी सजा दी जावे, अन्यथा राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के लिए देश के सामने और भी गम्भीर चुनौतियां पैदा हो जायेंगी।

सच्चिदानन्द शास्त्री
प्रचार विभाग
सार्वदेशिक सभा, दिल्ली

समाचार सन्देश

स्वतंत्रता संग्राम में हिन्दी साहित्यकारों का योगदान

दिल्ली द्वारा त्रिवेणी कला संगम में ३० जनवरी को आयोजित स्वतन्त्रता संग्राम मे हिन्दी साहित्यकारों का योगदान परिचर्चा मे स्वाधीनता प्राप्ति मे महर्षि दयानन्द सरस्वती की महत्वपूर्ण भूमिका का विशेष उल्लेख किया गया। समारोह के विशिष्ट अतिथि दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी के पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो० विजयेन्द्र स्नातक ने कहा कि स्वामी दयानन्द ने पुनर्जागरण काल में समाज सुधार के साथ स्वाधीनता प्राप्ति का भी आह्वान किया। उन्होने कहा कि एक बार भेंट के दौरान वायसराय नार्थ ब्रुक ने स्वामी जी से कहा कि मैं स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह प्रचलन, बाल विवाह पर रोक जैसे समाज सुधार के आपके कार्यों की हृदय से प्रशंसा तो करता हू परन्तु आपसे अनुरोध है कि आप अपने उपदेश के अंत मे प्रभु से अंग्रेजी राज्य को सुदृढ व स्थायी बनाने की भी प्रार्थना किया करें। उत्तर में स्वामी जी ने अत्यन्त निर्भीकता से कहा कि मैं तो सन्ध्योपासना के बाद प्रतिदिन ईश्वर से यथाशीघ्र अंग्रेजी राज्य की समाप्ति व भारत के स्वतन्त्र होने की प्रार्थना किया करता हू। 'आजकल' के सम्पादक श्री नरेन्द्र सिन्हा ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि स्वामी दयानन्द ने सर्वप्रथम राष्ट्रीय व जागरण व स्वाधीनता संग्राम का बिगुल बजाया था तथा कांग्रेस की स्थापना से भी दस वर्ष पूर्व 'आर्यसमाज' की स्थापना की थी। गैर हिन्दी भाषी गुजराती होने के बावजूद भी उन्होंने हिंदी को ही अपने प्रचार का माध्यम बनाया और भावी भारत के लिए हिन्दी को ही शिक्षा का माध्यम बनाने पर बल दिया।

समारोह के मुख्य अतिथि सुप्रसिद्ध शिक्षाविद व कार्यकारी पार्षद (शिक्षा) श्री कुलानन्द भारतीय ने कहा कि साहित्यकार की कलम में जादू होता है तथा वह गुरुओ का भी गुरु होता है मैं उनका हृदय से सम्मान करता हूं। समारोह के अध्यक्ष सुविख्यात पत्रकार श्री अजय कुमार जैन ने साहित्यकारों के योगदान की भी चर्चा करते हुए 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा' के रचयिता श्र श्यामलाल पाराशर का भी स्मरण किया। लब्ध-प्रतिष्ठित साहित्यकार सवश्री यशपाल जैन, जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी, अजित कुमार, विष्णु प्रभाकर व अन्य सभी वक्ताओ ने देश की आजादी के लिए साहित्यकारो की सेवाओं व बलिदान की विस्तार से चर्चा का तथा हिन्दी अकादमी द्वारा वर्तमान परिस्थितियो के संदर्भ में देश की एकता व अखंडता को सुदृढ बनाने के लिए आयोजनो की सराहना की।

समारोह का शुभारम्भ वाग्देवी सरस्वती के मंगलाचरण से हुआ। हिन्दी अधिकारी श्रीमती स्नेह लता व नरेन्द्र कुमार गुप्ता ने पुष्प गुच्छो द्वारा अतिथियो व वक्ताओं का स्वागत किया। हिन्दी के प्रति एक समर्पित व्यक्तित्व-अकादमी के सचिव डा० नारायण दत्त पालीवल्ल ने साहित्यकारों के योगदान का उल्लेख करते हुए सभा उपस्थित महानुभावो का आभार व्यक्त किया।

—विमलकान्त शर्मा

धर्मवीर हकीकतराय स्मृति साप्ताहिक कार्यक्रम सम्पन्न

धर्मवीर हकीकतराय बलिदान समिति एव आर्यसमाज न्यू मोतीनगर के सयुक्त तत्वाधान मे खो-खो, कबड्डी, कुश्ती व दौड सम्बन्धी खेलकूद व भाषण-कविता प्रतियोगिताओ के विभिन्न आयोजन स्थानीय आर्यसमाज मे सम्पन्न हुए।

विजयी पुरस्कार विजेताओं को इनाम देते हुए आर्य केन्द्रीय सभा के प्रधान महाशय धर्मपाल ने उन्हें वैदिक धर्म की शिक्षाओं पर चलने की प्रेरणा दी। खेलों के आयोजक श्री मायासिंह आर्य व सूरज प्रकाश (शिक्षक केन्द्रीय आर्य युवक परिषद्) थे।

इस अवसर पर राष्ट्र रक्षा सम्मेलन, आर्य युवक सम्मेलन, महिला सम्मेलन, वेद पारायण यज्ञ, ऋषि नगर, शुद्धि समारोह के अतिरिक्त आर्यसमाज के कर्मठ कार्यकर्ता श्री तीर्थराम आर्य का भी सार्वजनिक अभिनन्दन किया व उन्हें वीरता का प्रतीक एक तलवार सभा प्रधान ने भेंट की। इन सभी कार्यक्रमों का कुशलता पूर्वक संचालन आर्यसमाज के प्रधान श्री तीर्थराम आर्य ने किया।

—चन्द्रमोहन आर्य प्रचारमंत्री

शोक समाचार

आर्यसमाज लक्ष्मी नगर विस्तार के प्रधान प्रभुदयाल बुट्टन का हृदय गति अवरुद्ध हो जाने से २६ जनवरी को निधन हो गया वे ६५ वर्ष के थे। २ फरवरी को आर्यसमाज निर्माण विहार और लक्ष्मी नगर विस्तार की ओर से शोक सभा हुई जिसमें श्री प्रभुदयाल जी के कर्मठ दानी, सेवक स्वभाव की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी तथा श्रद्धाञ्जलि अर्पित की गयी।

रामपाल आर्य

श्री सत्यपाल मधुर दिल्ली में आ गये हैं

प० सत्यपाल जी मधुर भजनोपदेशक जो कि कई वर्षों तक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब तथा दिल्ली में प्रचार कार्य करते रहे हैं। ७ वर्ष तक पूर्वी अफ्रीका केनिया में संगीत के माध्यम से वेद प्रचार की धूम मचाकर अब दिल्ली आ गये हैं। जो सज्जन उत्सव आदि मे प्रचार हेतु उन्हें बुलाना चाहें कृपया इस पते पर पत्र व्यवहार करें।

पं० सत्यपाल मधुर भजनोपदेशक
ए-६४५ अवन्तिका (रोहिणी)
सैक्टर २ दिल्ली।११००८३

प्रियतम दास रसवन्त को मातृ शोक

श्री प्रियतम दास रसवन्त, अधिष्ठाता दिल्ली आर्य वीर दल की पूज्या माता का २८ फरवरी को देहावसान हो गया। प्रधान दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा ने शोक प्रस्ताव में हार्दिक शोक तथा श्रद्धाञ्जलि प्रस्तुत की है। ८ मार्च को श्रीमती मिरावा बाई की शोक सभा का आयोजन उनके निवास स्थान २-ई-/२३ झण्डे वालान एक्सटेंशन नई दिल्ली-५५ में किया गया। जिसमें वक्ताओं ने पूज्या माता के धार्मिकता तथा सद्गुणों पर प्रकाश डाला।

संवाददाता आर्यसन्देश

राष्ट्रीय एकता...

(पृष्ठ ८ का शेष)

वे या तो स्वय अंग्रेजों के भक्त थे या वे सत्ता पर अधिकार बनाए रखने की खातिर भाषावाद के बवन्डरों के आगे झुकते रहे हैं। भयावह परिणाम सामने है। पंजाब, नागालैण्ड, केरल जैसे छोटे छोटे सीमाप्रान्त बन गए, जहा भाषावाद और साम्प्रदायवाद के संयुक्त मोर्चे ने राष्ट्र को चुनौतियां देनी आरम्भ कर दीं और उसकी एकतावृत्ति को भीतर और बाहर से खोखला कर दिया।

बात सीधी थी। राष्ट्र की भाषा के रूप मे हिन्दी का बोलबाला हो और प्रांत मे अपनी भाषा पनपे। पर स्वार्थी राजनीतिक नेताओं ने गुलामी के दिनों की भाषा अंग्रेजी को सहराजभाषा बनाकर हिन्दी के ऊपर लादे रखा और प्रान्तीय भाषाओ की हिन्दी से लडाइ करवा दी। राष्ट्रीय एकता को जितना आघात इस भावना से पहुचा, सम्भवत और किसी बात स नही।

प्रान्तवाद और जातिवाद :

प्रान्तवाद और जातिवाद की भावना ने भी राष्ट्रीय एकता की भावना को भारी आघात पहुचाया है। प्रान्तवाद के कारण देश में छोटे-छोटे प्रात बन गये। दिल्ली से पिशावर तक पंजाब कभी एक था। १९४७ मे वह भारतीय (पूर्वी) पंजाब और पाकिस्तानी (पश्चिमी) पंजाब में बंट गया। आजादी के बाद भारतीय पंजाब के तीन टुकडे हो गए, हरियाणा, हिमाचल-प्रदेश अलग हो गये। पाकिस्तान से मिलता हमारा पंजाब आज उपद्रवग्रस्त है। पूर्वी सीमा पर स्थित 'एक आसाम', नागालैण्ड, त्रिपुरा, मेघालय, मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश आदि छः भागों में बट गया और षड्यन्त्र का अड्डा बनता रहता है।

जातिवाद ने देश की एकता भंग करने में कम अनर्थ नहीं किया। और उसको मिटाने में भी दयानद सब से आगे थे। तथाकथित अछूतों के उद्धार में उस आदर्श मानव ने जो कार्य किया, उसमें महात्मा गांधी तक ने उन्हें अपना गुरु माना। पर गाधी भटक गए। दयानद ने 'अछूत' को 'आर्य' बनाकर एकता की माला में पिरोया था, गाधी ने उसे हरिजन' बनाकर अलगाव की वृत्ति कायम रखी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र शरीर रूपी एक समाज के चार अंग—सिर, भुजा, पेट, पैर हैं, हर एक का अपना-अपना महत्त्व है। 'वे जन्म से नहीं, कर्म से बनते हैं', सिद्धांत की घोषणा करके तो दयानद ने जातिवाद को जड़ से काटने का प्रयास किया था। दयानन्द का ही प्रताप है कि तथाकथित अछूतो के घर पैदा हुए श्री जगजीवन राम पंडित कहलाए और भारत के उप प्रधानमंत्री बने एव डा० अम्बेदकर विधि मन्त्री, जाट और बनिया, कायस्थ और चमार आदि भेदों को वोट की प्राप्ति एवं सत्ता हथियाने की खातिर उभारना दयानन्द के उद्देश्यों के सर्वथा विपरीत था।

दिव्यद्रष्टा दयानन्द के शिष्यों का महान् दायित्व :

राष्ट्रीय एकता के प्रथम सूत्रधार दिव्यद्रष्टा दयानन्द का बोधदिवस मनाते समय उस महान् गुरु के शिष्यो का दायित्व बहुत बढ जाता है। भारत की सुप्तात्मा को जगाने वाले के आदर्शों के अनुसार भारत में राष्ट्रीय एकता की भावना को जगाने का उन्हें भरसक प्रयास करना होगा। हमें उनकी पुण्य स्मृति करते हुए दृढ सकल्प लेना होगा कि सम्प्रदायवाद, भाषावाद, प्रान्तवाद एव जातिवाद की जडे खोखली करने के लिए जी जान से काम करेंगे। 'एक देश, एक भाषा, एक धर्म, एक जाति अर्थात् एक राष्ट्र' की भावना जागृत करके ही भावनात्मक एकता की जड मजबूत होगी। जिसके लिए भगीरथ यत्न करने की महती आवश्यकता है। राष्ट्रीय एकता को घनीभूत करने का महर्षि दयानन्द का यही मार्ग है। बिना इसके कुछ हाथ न लगेगा और हमारी मातृभूमि पर जो संकट आए दिन आते रहते हैं, उनसे छुटकारा न मिल पाएगा।

भारतीय जन-जागरण…

(पृष्ठ ७ का शेष)

लोग परिचित हैं। इन लोगों ने इस क्षेत्र में असह्य कष्ट सहे। गुजरात में मास्टर आत्माराम अमृतसरी ने अस्पृश्यता निवारण व जाति-भेद निवारण के लिए जीवन लगा दिया। आपको स्मरण करवाना चाहता हूं कि विख्यात इतिहासकार और शिक्षा शास्त्री डा० बालकृष्ण कोल्हापुर भी इन बधनों को तोड़कर आगे बढ़े। मराठावाड़ा में तो गुंजोटी जैसे कस्बे में ही कई आर्य परिवारों ने अन्तर्जातीय व अन्तः प्रान्तीय विवाह किए हैं।

अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए ऋषि दयानन्द व आर्यसमाज के योगदान की चर्चा का यहां सविस्तार वर्णन नहीं कर सकता। आर्यवीर रामचन्द्र दलितोद्धार के लिए भीषण लाठी प्रहार से वीरगति पा गए। अस्पृश्यता निवारण के लिए वृद्ध अवस्था में शूरता की शान श्रद्धानन्द केरल के कार्यक्रम सत्याग्रह का नेतृत्व करने केरल मे पहुंचे। केरल के स्वर्गीय श्री मन्नम ने स्वयं हमें सगर्व बताया था कि वह स्वामी जी के उस सत्याग्रह के एक सैनिक हैं।

स्वाभिमान जगाया:

ऋषि ने भारत का गौरव गाते हुए लिखा है कि यही वह पारसमणि पत्थर है जिसे छूकर विदेशी लोहा स्वर्ण बन गया। ऋषि दयानन्द के इन शब्दो ने आर्यों में देश का स्वाभिमान जगाया। दीवान हर विलास शारडा का सुप्रसिद्ध ग्रंथ Hindu superiority राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त का भारत भारती, प० नानक चन्द बैरिस्टर का Wisdom of India श्री प्रफुल्लचन्द्र राय का Hindu Chemistry आदि ग्रन्थ इसी का सुखद फल थे। आर्यसमाजी गज-गर्जकर गाया करते थे—

"कभी हम बुलन्द इकबाल थे
तुम्हें याद हो कि न याद हो।"

आर्यसमाज ने भद्दे नामो के रखने की कुरीति मिटाई। सार्थक नाम रखे जाने लगे और सारे भारत मे अब आर्यों के एक जैसे नाम हैं। आर्यसमाज मे जमनादास जैमिनि बने, चमनलाल विश्वबन्धु, मल्लू वेदव्रत, राधाकृष्ण महाशय कृष्ण और कलम के दगड़ू देवदत्त बने।

प्रान्तीयता के विरुद्ध जन जागरण

सब प्रान्त उन्नत हों जैसे शरीर के सब अंग स्वस्थ व निरोग हों तभी शरीर पुष्ट माना जाता है। ऐसे ही देश के सब भागों के निवासी आगे बढ़ें परन्तु प्रान्त-भाव न हो। हैदराबाद का आर्य सत्याग्रह आर्यों के कट्टर राष्ट्रीय भाव का एक उदाहरण है। यही एक सत्याग्रह है जिसमे देश के एक भाग के पीड़ित लोगो के लिए देश के सब भागो के सत्याग्रही आए और तीस ने ऊपर ने वीर गति पाई। इससे पूर्व किसी भी प्रान्तीय सत्याग्रह यथा बारदोली या चम्पारन आदि मे यह विराट रूप न देखा गया।

लोकहित कार्यों के लिए दान की प्रणाली आर्यसमाज ने ही चलाई। भूकम्प, अकाल, बाढ पीड़ितों के लिए दान, गुरुकुलों कालेजों के लिए अनाथालयों के लिए दान की प्रथा आर्यसमाज ने चालू की। पीड़ितों की पीड़ा निवारण का भी आर्यसमाज का एक इतिहास है। ऋषि दयानन्द के पश्चात् श्री मथुरादास, ला० लाजपत राय, महात्मा हसराज, स्वामी श्रद्धानन्द, दीनबंधु रलाराम, प्रि० मेहरचन्द, प्रि० दीवानचन्द, स्वामी स्वतन्त्रतानन्द, महाशय खुशहाल चन्द, प्रि० ज्ञानचद, हैदराबाद के हुतात्मा श्याम भाई, श्री लाला बया प्रसाद, ताऊ चन्दूलाल, डा० ललिता प्रसाद जी, स्वामी सर्वानद जी, श्री ओमप्रकाश त्यागी, श्री देवव्रत बम्बई की सेवाओं पर आर्यसमाज ही नहीं मानव समाज गौरव कर सकता है। "Where there is a work to do there one does not miss the Arya Samaj."

निर्भय बनाया :

ऋषि दयानद ने जिस निर्भीकता से सत्य का प्रचार व अन्धविश्वास का खंडन किया उसका आर्यसमाजियो पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। आर्यों का एक जयघोष है 'जो बोले सो अभय' वैदिक धर्म की जय १८९३ ई० मे चिरजीव लाल आर्योपदेशक ने वीर गति पाई। अंग्रेजी शासन काल में वह प्रथम सुधारक कार्यकर्ता था जो अपनी मान्यताओं के लिए जेल गया और कठोर कष्ट सहे। हैदराबाद में प० बालकृष्ण बंदी बने। समाज सुधार धर्म प्रचार राष्ट्र सेवा के लिए आर्य ऐसे निर्भीक बने कि विश्व के किसी भी धार्मिक व सुधारवादी आंदोलन ने अपने जीवन के प्रथम सौ वर्षों में इतने बलिदान नहीं दिये जितने कि आर्यसमाज ने। जन जागरण की घुट्टी पिलाते हुए पुराने आर्य गाया करते थे—

खिदमते खल्क मे जो कि मर जायेंगे।
नाम दुनिया में अपना वो कर जायेंगे।
स्वाधीनता के मन्त्र का जप हम सदा करें।
सेवा मे मातृभूमि के तन मन निसार हो।
कर्म करते कदम को बढ़ाते चलो।
तेज खंजर से सीना अड़ाते चलो।

ऐसे सस्कारों व विचारों में पले आर्यों ने देश को अनेक दिलजले दीवाने सपूत दिए।

धार्मिक क्षेत्र में

आर्यसमाज के प्रवर्तक विश्व के प्रथम विचारक हैं जिन्होने विज्ञान का स्वागत अभिनदन किया। आर्यसमाज ने जादू-टोने, भूत प्रेत, तावीज-गण्डे, जड़-पूजा, फलित ज्योतिष आदि का अंधविश्वास मिटाने का प्रयास किया है। आर्यसमाज सृष्टि नियम विरुद्ध चमत्कारो को नहीं मानता। इसके प्रचार का बहुत प्रभाव पड़ा है। यह है भारतीय जन जागरण के लिए आर्यसमाज की संक्षिप्त झांकी।

फार्म ४ नियम ८ के अन्तर्गत

आर्यसन्देश साप्ताहिक की घोषणा

प्रकाशन का स्थान	—	नयी दिल्ली
प्रकाशन अवधि	—	साप्ताहिक
मुद्रक का नाम	--	डा० धर्मपाल
क्या भारत का नागरिक है	—	भारतीय
यदि विदेशी है तो मूल देश	—	×
पता :	—	दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१
सम्पादक का नाम	—	यशपाल सुधांशु
क्या भारत का नागरिक है	—	भारतीय
यदि विदेशी है तो मूल देश	-	×
पता	—	दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१
उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हो तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार हैं या हिस्सेदार हों।		

मैं, डा० धर्मपाल एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक
९-३-१९८६

डा० धर्मपाल
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

रजि० नं० डी० (सी०) ७५१ साप्ताहिक 'आर्यसन्देश' ९ मार्च, १९८६ बिना टिकट भेजने का लाइसेंस नं० यू १३९
R. N. No. 32387/77 Post in N.D.P.S.O. on 7-3-86 Licenced to post without prepayment, Licence No. U 139

ओ३म्

आर्य सन्देश

केवल ५० रुपये में तीन वर्ष तक हर सप्ताह पढ़ते रहिए

- क्या आप ऋषि, मुनि, तपस्वी, योगियों की अमृत वाणी पढ़ना चाहते हैं ?
- क्या आप वेद के पवित्र ज्ञान को सरल एवं मधुर शब्दों में जानना चाहते हैं ?
- क्या आप उपनिषद्, गीता रामायण, ब्राह्मणग्रन्थों का आध्यात्मिक सन्देश स्वयं सुनना और अपने परिवार को सुनाना चाहते हैं ?
- क्या आप अपने शूरवीर एवं महापुरुषों की शौर्य गाथाएं जानना चाहेंगे ?
- क्या आप महर्षि दयानन्द की वैचारिक क्रान्ति से आत्मचेतना जागृत करना चाहते हैं।

यदि हां, तो आइये आर्यसन्देश परिवार में शामिल हो जाइए।

केवल ५० रुपये में तीन वर्ष तक हर सप्ताह पढ़ते रहिए। साथ ही वर्ष में चार अनुपम भव्य विशेषांक भी प्राप्त कीजिए।

एक वर्ष केवल २० रुपये; आजीवन २०० रुपये।

प्राप्ति स्थान :
आर्यसन्देश साप्ताहिक
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
१५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-११०००१

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन : ३१०१५० के लिए डा० धर्मपाल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा वैदिक प्रेस, गली नं० १७, कैलाशनगर, दिल्ली-३१ में मुद्रित। रजि० नं० डी० (सी०) ७५१

वर्ष १० · अंक १६ | रविवार, १६ मार्च, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ | फाल्गुन २०४२ | दयानन्दाब्द—१६१
मूल्य : एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश में ५० डालर ३० पौंड

वैदिक धर्म विश्व का कल्याणकारी आंदोलन

ऋषि-बोधोत्सव धूमधाम से सम्पन्न

—सीताराम केसरी

दिल्ली की आर्यसमाजों एवं शिक्षण संस्थाओं की ओर से फिरोजशाह कोटला के विशाल मैदान में शिवरात्रि के पावन पर्व पर ऋषि मेला के रूप में प्रातः ८ बजे से सायं ४ बजे तक ऋषि बोधोत्सव धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

ऋषि बोधोत्सव प्रातः श्री यशपाल जी सुधांशु एवं श्री प्रकाशचन्द्र जी शास्त्री के ब्रह्मत्व में यज्ञ के साथ प्रारम्भ हुआ। आर्य केन्द्रीय सभा के प्रधान महाशय धर्मपाल जी तथा उपप्रधान श्री सत्यानन्द जी आर्य मुख्य यजमान थे। महाशय धर्मपाल जी की ओर से उपस्थित आर्यजनों को शुद्ध देसी घी के हलवे का यज्ञशेष वितरित किया गया।

प्रातः ९-३० बजे ध्वजारोहण स्वामी दीक्षानन्द जी महाराज के करकमलों से सम्पन्न हुआ। श्री रणजीत सिंह जी राणा और श्री वेदव्यास जी ने ध्वजगीत गाया। स्वामी दीक्षानन्द जी महाराज ने ध्वजारोहण करते समय कहा कि प्रत्येक राष्ट्र की प्रत्येक महान व्यक्ति की एक पताका होती है। आकाश लोक की पताका सूर्य है, उसी से प्रकाश लेकर वैदिक धर्म की पताका के रूप में इस ध्वज को स्वीकृत किया गया है। यह ध्वज किसी जाति, किसी सम्प्रदाय, किसी देश अथवा किसी अन्य संकीर्ण विचारधारा का द्योतक नहीं है, अपितु मानव मात्र के कल्याण के लिए सार्वभौम प्रासंगिकता का परिचायक है। इसीलिए किसी भी ध्वज से यह ध्वज ऊंचा है। हमारा प्रयास इस ध्वज को ऊंचा करने के लिए, सर्वत्र फैलाने के लिए, इसके डंडे को ऊंचा और मजबूत करने के लिए सदा जारी रहना चाहिए।

केन्द्रीय युवक परिषद् की ओर से इस अवसर पर एक भाषण प्रतियोगिता आयोजित की गयी, जिस की अध्यक्षता स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती ने की तथा संस्था के मन्त्री श्री ओमप्रकाश ने इसका आयोजन किया। इस अवसर पर सभा की ओर से चल विजयोपहार तथा व्यक्तिगत पुरस्कार दिये गये।

इस अवसर पर सांस्कृतिक आयोजन भी किया गया। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री नवनीत लाल जी एडवोकेट, महामन्त्री श्रद्धानन्द सेवा संघ, दीवानचन्द ट्रस्ट, आर्य एजूकेशन ट्रस्ट ने की। इसका संयोजन दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के महामन्त्री श्री डा० धर्मपाल ने किया। इस कार्यक्रम में भगीरथ आर्य बाल गृह, ऋषि वीर आर्य, प्रेम सिंह आर्य, ऋतु मल्होत्रा, सुनीत सेठी, अश्विनी कुमार पाठक, आर्य कन्या गुरुकुल राजेन्द्र नगर की छात्राएँ, विरजानन्द अन्ध कन्या महाविद्यालय की छात्राएँ तथा रतनचन्द आर्य पब्लिक स्कूल, विनय नगर की छात्र/छात्राओं ने भाग लिया। महाशय धर्मपाल जी ने तथा उपस्थित आर्य जनता ने दिल खोलकर इन बच्चों को पुरस्कृत किया। अन्ध कन्या विद्यालय की छात्राओं को हजारों रुपये की नकद सहायता राशि पुरस्कार स्वरूप प्राप्त हुई।

इस अवसर पर श्री वेदव्यास, श्री गुलाब सिंह राघव, श्री सत्यदेव स्नातक, श्री आशानन्द, श्री जबर सिंह तथा श्री ज्योति प्रसाद ने अपने मधुर संगीत और वाद्य यन्त्रों से जनता को मन्त्रमुग्ध कर दिया।

अपराह्न २ बजे प्रातः कालीन खेल-कूद में भाग लेने वाली श्रेष्ठ टीमों तथा विजयी छात्र/छात्राओं को तथा स्त्री-पुरुषों को महाशय धर्मपाल, प्रधान, आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली के करकमलों से पुरस्कृत किया गया। कबड्डी सीनियर में प्रथम आने वाली टीम केन्द्रीय आर्य युवक परिषद् को आर्यसमाज अशोक विहार की ओर से एक शील्ड प्रदान की गई तथा जूनियर कबड्डी में आर्य वीर दल बाकनेर को आर्यसमाज पंजाबी बाग की ओर से एक शील्ड प्रदान की गई। आर्य बाल गृह पटौदी हाउस दोनों प्रतियोगिताओं में द्वितीय रहा। साधारण दौड़ों में पुरस्कार इस प्रकार है। प्रथम आयु वर्ग—हर्ष जोशी, आर्य बाल गृह पटौदी हाउस—प्रथम, विशाल आनन्द, गांधी मैमोरियल स्कूल द्वितीय, नरेन्द्र शर्मा, तिमारपुर स्कूल, तृतीय। द्वितीय आयु वर्ग—रजनी आर्या, सुभाष नगर, प्रथम, अर्जुन बहादुर, पटौदी हाउस, द्वितीय, माधो आर्य, पटौदी हाउस, तृतीय। तृतीय आयु वर्ग—रामचन्द्र पटौदी हाउस, प्रथम, नीरज और अरुण, तिलक नगर, द्वितीय, राकेश, पटौदी हाउस, तृतीय और कान्ति तनेजा, राजा गार्डन, तृतीय। मन्त्र दौड़—ललिता हाउसिंग बोर्ड, शिवानी, प्रथम, राजीव कोहली, नगर शाहदरा द्वितीय; चन्द्र मोहन, केन्द्रीय आर्य युवक परिषद् तृतीय। सन्ध्या मन्त्र दौड़—योगेश्वर चन्द्र, जनक पुरी बी० ब्लाक, प्रथम, के० वी० राय, अशोक विहार, द्वितीय, चित्रलेखा, तिलक नगर, तृतीय। मन्त्र दौड़—मीनाक्षी गुप्ता, अशोक विहार, प्रथम भगवान देवी पोपली, पंजाबी बाग, द्वितीय, सन्तोष तनेजा, सुभाष नगर, तृतीय। नियम दौड़—सोमावती आर्या, कन्या गुरुकुल राजेन्द्र नगर, प्रथम, विभा, आशा पार्क, जनक पुरी, द्वितीय, श्रद्धा, कन्या गुरुकुल राजेन्द्र नगर, तृतीय। नियम दौड़—महेन्द्र पाल, गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ, प्रथम, भानसिंह, आर्यसमाज नारायणा विहार, द्वितीय, चन्द्र मोहन, केन्द्रीय आर्य युवक परिषद्, तृतीय। नियम दौड़—रजनी आर्या, बेरी वाला बाग, तिहाड़, प्रथम इन्द्र सिंह, पटौदी हाउस, द्वितीय, मुकेश, गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ, तृतीय। नियम दौड़—राजीव कोहली, नगर शाहदरा, प्रथम, हरिकिशन पटौदी हाउस द्वितीय।

सार्वजनिक सभा

देश कल्याण के लिए अपने आरम्भिक काल से ही संघर्षरत आर्यसमाज के लिए आज भी आत्मनिरीक्षण की आवश्यकता है। यह उद्गार श्री सीताराम केसरी, केन्द्रीय संसदीय राज्य मन्त्री भारत सरकार ने फिरोजशाह कोटला मैदान में शिवरात्रि के पावन पर्व पर आयोजित ऋषि बोधोत्सव की विशाल सभा में प्रकट किए। श्री केसरी ने कहा कि हमारा वैदिक धर्म सनातन है प्रौढ़ है, यह ईसाई मुसलमानों की भांति अप्रौढ़ नहीं है। जिस प्रकार बड़े व्यक्ति को घूंसा मारें तो वह एकदम प्रत्याक्रमण नहीं करता पर २५ वर्ष का युवा आपकी दाढ़ निकालने को तैयार रहता है। वही स्थिति मुस्लिम, ईसाई, सिख अथवा अन्य कम आयु के धर्मों की है। हम सदा से ही देश के, राष्ट्र के, विश्व के तथा मानवमात्र के कल्याण के

(शेष पृष्ठ ७ पर)

इस अंक में

सम्पादक—यशपाल 'सुधांशु' एम० ए० | व्यवस्थापक—डा० सच्चिदानन्द | प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल

महिमामयी दैवी सम्पत्तियां

—मनोहर विद्यालंकार

स नो नेदिष्ठं दद्दशान आभराग्ने देवेभि,
सचनाः सुचेतुना महो रायः सुचेतुना ।
महि शविष्ठ नस्कृधि सचक्षे भुजे अस्यै,
महि स्तोतृभ्यो मघवन्त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा ॥

ऋषिः—परुच्छेपो दैवोदासिः । देवताः—अग्निः । छन्दः—अत्यष्टिः ।

—ऋक् १।१२७।११

शं नो भव चक्षसा शं नो अह्ना शं भानुना शं हिमा शं घृणेन ।
यथा शमध्वञ्छमसद् दुरोणे तत् सूर्य द्रविणं धेहि चित्रम् ॥

ऋषिः—सौर्योऽभितपाः । देवता—सूर्यः । छन्दः—त्रिष्टुप् ।

—ऋक् १०।३७।१०

शब्दार्थ—हे (अग्ने) मार्गदर्शक प्रभो ! (न नेदिष्टम्) हमारे निकटतम हृदय मे (दद्दशान) दीखने वाले (सुचेतुना) उत्तम चेतना के कारण (देवेभि. सचना) देवो तथा देव सदृश जनों से संपृक्त (महः राय) महत्त्वपूर्ण ऐश्वर्यों से (न आभर) हमें भरपूर कर। (अस्यै) इस रयि को (सचक्षे) अच्छी प्रकार देखने जानने और (भुजे) भोगने के लिए, हे (शविष्ठ) सर्वशक्तिमन् (न महि कृधि) हमें महान् बना, हे (मघवन) ऐश्वर्यमय (स्तोतृभ्य) अपने प्रशसको को (महि सुवीर्यम्) महान् उत्तम प्रेरणा और बल प्रदान कर तथा हमारे और स्तोताओ के दोषों तथा रोगो को (मथी) मथ डाल, (न) जैसे (उग्र.) कठोर शासक (शवसा) अपने बलप्रयोग से दुष्टो को मथ डालता है, दबा देता है।

निष्कर्ष - यहा अग्नि का अर्थ परमात्मा प्रतीत होता है, क्योकि उसे 'नेनिष्ठ दद्दशान' कहा है। परमात्मा का दर्शन बाहर या दूर नही होता। उसका दर्शन अपने अन्दर निकटतम हृदय में होता है।

वे ही सम्पत्तियां महिमामयी मानी जाती है जो देवो से अथवा दिव्य भावना से प्राप्त की जाती है और उनमे संपृक्त रहती है मनुष्य को प्रत्येक वस्तु ज्ञान के के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए और उसके उचित भोग के लिए समर्थ बनना चाहिए। वस्तुओं के उचित भोग से घबराना या भागना नही चाहिए।

विशेष—इस मन्त्र के ऋषि, देवता और छन्द शब्दों के अर्थ निम्न संकेत करते हैं—

दूसरों के पालन पूरण (परुत्) द्वारा उनके हृदय को स्पर्श करने वाला (शेपः) तथा स्वय दिव्य वस्तुओ और भावनाओं का संग्रह करने वाला (दैव) और फिर इन का दूसरों के लिए दान करने वाला (दासि) ही, सामान्य जन का मार्गदर्शक व नेता (अग्नि) बनता है और सदा बना रह सकता है यदि वह जिज्ञासु भाव से, अपने अनुयायियो मे भी, प्रगति और दीप्ति के लिए सदा उद्यत रहता है।

अर्थपोषक प्रमाण—

परुच्छेप—परुत् पृ पालनपूरणयो. से (मरुत् मृङ् प्राणत्यागे, म्रियते मारयतीति वा) की तरह पालन पूरण करने वाला।

शेप - शपते स्पृशतिकर्मणः निरुक्त ३।२१, स्पर्श करने वाला।

दैवोदासि — दिव. (दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु + दास (दासृ दाने) दिवोदास + अपत्य प्रत्यय।

अष्टिः—अश् गतिदीप्त्यादानेषु-प्रगति व दीप्ति के लिए सदा ग्रहण करने या सीखने को उद्यत।

शविष्ठ—शव + इष्ठन् (प्रशस्यार्थे) शव. बलनाम। नि० २।६

मथी—मथ् विलोडने, श्रथि हिंसा सक्लेशनयो।

उग्र—उच्यति समवैति, महेश्वर उत्कट क्षत्र वा। उणादिकोष २।२८

मघवन्—मघमस्यास्तीति सवुद्धौ, मघम् धननामसु। नि० २।१०

ब्रह्म की उपमा केवल सूर्य से दी जा सकती है। आधिदैविक जगत् में सूर्य का जितना महत्त्व और प्रभाव है, आध्यात्मिक जगत् में परमात्मा का उससे सहस्रगुणित महत्त्व और प्रभाव है।

सूर्य के दर्शन और सेवन से मनुष्य के रोग दूर होते हैं, तो ब्रह्म के ध्यान और धारणा से मनुष्य के दोष और पाप भस्म होते हैं। सूर्य शरीर को पवित्र और समर्थ बनाता है, तो परमात्मा मन और आत्मा को सबल, पवित्र और शान्त करता है। सूर्य की प्रभातकालीन दृष्टि और परमात्मा की वेदवाणी मन को शान्ति प्रदान करती है।

रात्रि मे सूर्य की किरणें चन्द्रमा में प्रतिबिम्बित होकर शीतलता प्रदान करती हैं और दिन में अपने प्रखर ताप से गंदगी और बीमारी का नाश करती हैं। इसी प्रकार रात्रि मे किया हुआ भगवान् का ध्यान शान्ति और स्थिरता प्रदान करता है, चन्द्रवत् आह्लादक होता है और उन का प्रखर रुद्र रूप दुष्टों और पापियों का विनाश करने वाला है। जैसे उदित होता हुआ सूर्य हृदय और मस्तिष्क के विकारों को शान्त करता है, वैसे ही भगवान् की अनुभूति को साधक हृदय को समता और मस्तिष्क को शीतलता प्रदान करती है।

जब मनुष्य सूर्य के समान संयमी और नियम में अटल होकर सूर्यपुत्रवत् आचरण करता है, और अपने जीवन को तपोमय बना कर 'अभितपा सौर्य' बन जाता है, तब वह इस सृष्टि के उत्पादक, मार्गदर्शक और स्वामी ब्रह्मसूर्य से प्रार्थना करता है कि हे उत्पादन व ऐश्वर्य के स्वामिन् प्रभो आप हमें अपना चेतना तथा संवेदना प्रदान करने वाला अद्भुत धन और सामर्थ्य प्रदान कीजिये, जिसे पाकर हम घर में और बाहर शांति अनुभव करें। हम जीवन के जिस किसी मार्ग को अपनायें, वहीं हमारा कल्याण हो और हमें शांति मिले।

त्रिष्टुप् मन्त्र के ध्यान और धारणा से साधक के त्रिविध ताप व शोक दूर होते हैं। काम, क्रोध और लोभ शांत होते हैं। मन, वचन और कर्म मे एकरूपता और प्रगतिशीलता आती है।

राष्ट्र निर्माण और युवा शक्ति

—डा० धर्मपाल आर्य
महामन्त्री, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली

पिछले कई वर्षों के दौरान राजनीतिक अस्थिरता, उखाड़-पछाड़ और आपाधापी के कारण सम्पूर्ण देश में कुण्ठा और निराशा का जो वातावरण बना उस में हमारी युवाशक्ति सर्वाधिक प्रभावित हुई। उसमें एक विशेष प्रकार की निराशा जनित कुण्ठा उभर आई। यही कारण था कि स्वतन्त्रता के लिए बलिदान होने वाले युवा, खुदीराम बोस के उस कर्तव्य पथ को छोड़कर, हमारी सामर्थ्यवान् युवा-शक्ति पराजित मनोवृत्ति का शिकार होने लगी। यह आश्चर्यजनक सत्य उस बात से भी उद्घाटित होता है कि पिछले बरसों में जितने भी दंगे-फसाद, लूटमार, अपराध और आतंकवादी घटनाएं हुई, उनमें युवा और किशोर आयु के लोग ही या तो पकड़े गए या मारे गए। विश्वविद्यालयों अथवा अन्य स्थानों पर उच्छृंखलता के जो दृश्य देखने मे आये, उनमें युवाओं ने ही बढ़-चढ़कर भाग लिया।

अब परिस्थितियों मे कुछ परिवर्तन हुआ है। युवा प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में आशा की जा सकती है कि देश का युवा मानस सक्रिय होगा। उसे अपनी सम्पूर्ण आकांक्षाओं, अपेक्षाओं और भावनाओं को पूरा करने का अवसर मिलेगा। आज सभी क्षेत्रों के युवा वर्ग की आशाएं उन्हीं पर टिकी हैं। यह वर्ग चाहे श्रमिक वर्ग हो, शिक्षित वर्ग हो या अधुनातन विज्ञान से जुड़ा वर्ग हो। गत वर्ष सामाजिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक और कलात्मक स्तर पर जो निर्णय लिए गए हैं, उन से भी युवा जन को विश्वास मिला है। त्रासदी यह रही कि युवाजनों की उच्छृंखलता जनित घटनाओं को कभी तो युवा भटकाव कह कर टाल दिया गया और कभी उसका कारण बेरोजगारी, बढ़ती आबादी अथवा शिक्षा पद्धति में दोष बताया गया। कभी यह कहा गया कि युवा पीढ़ी को सही सामाजिक धरातल मिल सके, ऐसा अवसर ही नहीं आया। कभी यह बताया गया कि उसी विनाश-पूर्ण स्थिति का परिणाम है जिस ने सारे संसार को अपनी लपेट में ले रखा है।

अब युवा वर्ग के सामने नये आयाम खुल रहे हैं। वर्तमान शिक्षा पद्धति में बदलाव, आर्थिक और व्यावसायिक क्षेत्रों में नई दृष्टि, विज्ञान की गति के साथ कदम बढ़ाकर चलने की योजनाएं आदि सभी एक खुली दृष्टि की देन हैं। यह ठीक है कि देश की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक ढांचे की गड़बड़ी को ठीक करना सहज नहीं है। पर यह कार्य युवा मानस अपने दृष्टिकोण को साफ रखकर कर सकता है। युवा शक्ति का सर्वाधिक योगदान गरीबी हटाने मे हो सकता है। घर-घर तथा गांव-गांव के कोने-कोने तक जाकर सरकार की उन अनेक योजनाओं को जनसाधारण तक पहुंचाने का काम इसी युवा शक्ति का है। यह तभी सम्भव है जब उस की दिशा निर्दिष्ट हो। मार्च २३, १९८५ को लखनऊ विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में बोलते हुए प्रधान-मन्त्री श्री राजीव गांधी ने कहा था कि अगर शिक्षा को और मजबूत करना है और बढ़िया करना है तो सबसे जरूरी है कि हम अध्यापकों से शुरू करें क्योंकि वहां से ही 'एक्सीलेंसी' आ सकती है, वहीं से कौशल आ सकता है। पुन: प्रश्न उठता है कि क्या हम अध्यापकों को आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध करा सके हैं। आज अध्यापक हड़ताल पर हैं। वे ट्रेड यूनियन के मार्ग पर हैं। वे आज की आपा-धापी में शायद अपना ही रास्ता भूल गये हैं। उन्हें सही मार्ग अपनाना होगा तभी तो अध्यापक युवाओं को सही दिशा-निर्देश कर सकेंगे।

युवा शक्ति केवल पुरुष जाति की शक्ति नहीं है। युवतियां भी इसका अभिन्न अंग हैं। वे खेलकूद, शिक्षा टैक्नोलोजी और कम्प्यूटर तक की विद्याओं में प्रवीणता प्राप्त कर रही है। राष्ट्र निर्माण मे उनकी भूमिका निस्सन्देह सराहनीय हो सकती है। यह आवश्यक है कि वे अपनी योग्यता के अनुरूप कार्य करें जिससे भारत की गरीब, पिछड़ी जनता को ऊपर उठाया जा सके। कल्याण की योजनाओं के प्रति जन-जन को सचेत करने में उनकी भूमिका के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में युवतियों के माध्यम से यह कार्य सरल हो सकता है।

आज का सबसे विकट प्रश्न राष्ट्रीय एकता है। हमारे युवकों का वर्ग आतंक के बल राष्ट्रीय एकता को विघटित करने में लगा है। निस्सन्देह धर्मान्धता उनकी भावनाओं को ईंधन देती है और वह बिना आगा-पीछा सोचे अपने स्वार्थी, धर्माधि-कारियों के आदेश पर कुछ भी करने के लिए टूट पड़ता है। यह उम्र ही ऐसी होती है कि व्यक्ति कुछ करना चाहता है, फिर चाहे वह मानव कल्याण के लिए हो अथवा मानव विनाश के लिए। लेकिन आवश्यकता है उनका मार्ग-निर्देश करने की। राजनेता, अध्यापक, धर्माध्यक्ष कोई उनको सही रास्ता नहीं दिखा पा रहा है। हमने धर्मनिरपेक्षता के आदर्शों को अपनाया है। कुछ दिग्भ्रमी नेता अलग-अलग मजहबों के नाम लेकर हमें बताना चाहते हैं कि हम अलग-अलग हैं। पर ऐसा है नहीं : हम सभी भारतीय हैं। भारत हमारा राष्ट्र है। मानव अधिकारों के लिए संघर्ष करना और सभी को समान अधिकार दिलाना हमारा धर्म है। युवा-शक्ति इन संकीर्ण दायरों से निकल कर मुक्त भाव से सबको समान बनाने का कार्य कर सकती है।

भारत का गुटनिरपेक्ष देशों में महत्त्व-पूर्ण स्थान है। भारत उन राष्ट्रों का मार्गदर्शन कर सकता है जो किसी महा-शक्ति से बंधे नहीं हैं। भारत को सबल बनाने, उसकी आवाज को सशक्त करने मे युवा शक्ति की भूमिका निर्विवाद है। हमारा नारा तो यही है कि सब समान समान हैं। विश्व कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि निरस्त्रीकरण को पूर्णत लागू किया जाये। इतिहास इस बात का साक्षी है कि आंतरिक और बाहरी संकटों से निर्माणकारी शक्तियां उभरती हैं और गणतन्त्रात्मक राष्ट्र और अधिक सगठित और मजबूत बनता है। पर इसमे हमारी उस शक्ति का अपव्यय होता है जो राष्ट्र और मानव कल्याण में लगाई जा सकती है।

युवा शक्ति एक और काम तेजी से कर सकती है और वह है शांति, स्वतंत्रता और समानता के लिए जेहाद। जिस क्षेत्र में भी अशांति, आतंक और घृणा व्याप्त है, वहां विश्व-सुरक्षा तथा शांति के लिए युवा शक्ति कार्य कर सकती है। यह अराजकता इस बात से भी आती है कि आज विश्व को आर्थिक सुरक्षा का भय है। इसका सर्वाधिक असर विकासशील देशों पर पड़ता है। अत यह आवश्यक है कि हमारे युवा अकर्मण्य न बनें। वे अपना रोजगार स्वयं खोजें, वे किसी अन्य पर निर्भर न रहें। वे आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए प्रयत्नशील रहें।

युवा शक्ति का योगदान विकलांगों और वृद्धों की सेवा में भी हो सकता है। यदि विकलांगों को सहायता करके उन्हें अपने जीवन-यापन के योग्य बनाया जा सके तो यह हमारी बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। विकलांगों को गरीबी का शिकार होना ही पड़ता है, उनके प्रति समाज की उदासीनता उन्हें और अधिक दुखी कर देती है। वृद्ध घरों मे रहते हुए भी अपने आपको घर की वर्तमान धारा मे कटा हुआ महसूस करते हैं। उनकी शारीरिक क्षमताएं भले ही कम हो गई हों, पर उन के पास अपने जीवन का अनुभव होता है। उनके पास विषम परिस्थितियों पर काबू पाने के दांव की विजयी मानसिकता होती है। युवा वर्ग को उनसे निर्देशन प्राप्त करके जीवन-युद्ध मे विजय प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। इस से जहां उस का अपना कल्याण होगा, बूढ़े लोगों को भी यह अहसास होगा कि वे पूर्णत: अनुपयोगी नहीं हो गये हैं। समाज को उनकी जरूरत है।

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने बीस सूत्री कार्यक्रम प्रारम्भ किया था। इससे अनु-सूचित जातियों, जनजातियों, पिछड़े वर्गों, कारीगरों, खेतिहर मजदूरों, महिलाओं और शहरी ग्रामीण गरीब तबके की दशा को सुधारा जा सकता है। परिवार नियो-जन, पौष्टिक आहार, महिलाओं और बच्चों का कल्याण आदि इस कार्यक्रम के अंग हैं। हमारी युवा शक्ति इस कार्यक्रम को ईमानदारी से पूरा करने मे बेहतर योगदान कर सकती है।

जहां बड़ों की मानसिकता, उदासी उदासीनता के घेरे में घिर जाती है, वहां युवा वर्ग की मानसिकता परिवर्तन के लिए परिवर्तनशील होती है। आज युवा वर्ग को उस प्रेरणा की तलाश है, जो उन में समाज के प्रति अपने कर्तव्यों के निर्वाह में पूरी आस्था और ईमानदारी पैदा कर सके। युवा वर्ग को देश की दृढ़ता, विकास और उसकी एकता-अखण्डता के लिए कमर कस कर सर्वस्व समर्पित करना होगा। इस कार्य को पूरा करने के लिए युवाओं को अपने भीतर छिपी शक्ति को रचना-त्मक दिशा देनी होगी। इसी छिपी शक्ति का ज्ञान कराने के लिए दिल्ली आर्य प्रति-निधि सभा ने २ से ६ फरवरी १९८६ तक आर्य युवा महासम्मेलन का आयोजन किया था जिसमे केन्द्रीय खान और इस्पात मन्त्री श्री कृष्णचन्द्र पन्त ने युवा वर्ग को अपना सही मार्ग चुनकर राष्ट्र-निर्माण में संलग्न होने की प्रेरणा दी।

□

[आकाशवाणी, सामयिकी ६-२-८६ से साभार]

शांकर अद्वैतदर्शन और दयानन्द-दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन

लेखक—डा० कपिलदेव द्विवेदी
कुलपति, गुरुकुल महाविद्यालय,
ज्वालापुर (हरिद्वार)

महर्षि दयानंद ने श्री शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धांत की सप्तम और एकादश समुल्लास में समीक्षा प्रस्तुत की है। श्री शंकराचार्य अद्वैत तत्त्व के समर्थक हैं और महर्षि दयानंद त्रैतवाद के। श्री शंकराचार्य ने अपने सिद्धांत के समर्थन में उपनिषदों को आधार बनाया है और वेदान्तदर्शन की तदनुकूल व्याख्या की है। महर्षि दयानन्द ने वेदों को आधार बनाया है और वेदों के मन्त्रों से त्रैतवाद की स्थापना की है। साथ ही उपनिषदों और वेदांत दर्शन के जो सन्दर्भ अद्वैतवाद के समर्थन में दिए गए हैं, उनका अद्वैतवाद के खण्डन में अर्थ प्रस्तुत किया है।

शांकर अद्वैतवाद का अभिमत है कि ब्रह्म एक अनिर्वचनीय सत्ता है। वह निर्विकल्पक निरुपाधि और निर्विकार है। ब्रह्म के स्वरूप के निर्णय के लिए दो लक्षणों को स्वीकार किया है—(१) स्वरूप लक्षण, (२) तटस्थ लक्षण। स्वरूप लक्षण उसके तात्त्विक रूप का परिचय देता है और तटस्थ लक्षण उसके आगन्तुक गुणों का समावेश बताता है। इस प्रकार ब्रह्म को सत्य, ज्ञानरूप और आनंदमय बताना 'स्वरूप लक्षण' है।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म
(तैत्ति० उप० २. १. १)

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म।
(बृहदा० उप० ३ ९ २८।

ब्रह्म जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण है, यह आगन्तुक गुणों के समावेश के कारण 'तटस्थ लक्षण' है। इस प्रकार ब्रह्मस्वरूप के से तटस्थ, निर्लेप, निर्विकार और अकारण होते हुए भी सृष्टि की उत्पत्ति आदि का कारण होता है।

सृष्टि के कर्त्तव्य के लिए माया की कल्पना की गई है। माया न सत् है, न असत्, न उभयरूप। वह सर्वथा अनिर्वचनीय और अत्यन्त अद्भुत रूप है।

सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो।
महाद्भुताऽनिर्वचनीयरूपा ॥
विवेकचूडामणि श्लोक १११

इस माया को ही अध्यास, अध्यारोप, अविद्या आदि नाम दिए गए हैं। इस माया की दो शक्तियां हैं—आवरण और विक्षेप। इनकी सहायता से ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। आवरण शक्ति ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप को ढक लेती है और विक्षेप शक्ति में ब्रह्म में आकाशादि पंच-तत्त्वों को उत्पन्न करती है।

शक्तिद्वयं हि,
मायाया विक्षेपावृतिरूपकम्।
विक्षेपशक्तिलिङ्गादि,
ब्रह्माण्डान्तं जगत् सृजेत् ॥
अन्तर्दृग्दृश्ययोर्भेदं,
बहिश्च ब्रह्मसर्गयो.।
आवृणोत्यपरा शक्ति',
सा संसारस्य कारणम् ॥
दृग्दृश्यविवेक श्लोक १३, १५।

निर्विकल्प ब्रह्म जब मायारूपी उपाधि से युक्त होकर सगुण रूप धारण करता है तो वह ईश्वर कहा जाता है। यह ईश्वर सृष्टि का कर्ता-धर्ता और संहर्ता है। यह कारण शरीर है। कारण शरीर की समष्टि ईश्वर है और कारण शरीर की व्यष्टि 'जीव' है। यह जीव शरीर और इन्द्रियों का अध्यक्ष है तथा कर्मफल का भोक्ता है।

जीव और ब्रह्म की एकता के समर्थन के लिए चार उपनिषद् वाक्य प्रस्तुत किए गए हैं। इन्हें महावाक्य कहा जाता है। इन चार महावाक्यों का स्वरूप है—

तत्त्वमसि (चैतन्यरूप से जीव ब्रह्म है)। (छान्दो० उप० ६. ८. ७)

प्रज्ञानं ब्रह्म (ब्रह्म ज्ञानरूप है)
(ऐत० उप० ५. ३)

अहं ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हूं)
(बृहदा० उप० १. ४. १०)

अयमात्मा ब्रह्म (यह आत्मा ब्रह्म है)। (माण्डूक्य० २)

श्री शंकराचार्य ने अद्वैत मत के समर्थन के लिए उपनिषदों और वेदान्त-दर्शन को मुख्यतया अपना आधार बनाया है। उन्होंने इसके लिए वेदों का आश्रय नहीं लिया है। इसके विपरीत महर्षि दयानन्द ने त्रैतवाद के समर्थन में वेदों को आधार माना है। साथ ही उन्होंने उपनिषदों और वेदान्त दर्शन के सभी सम्बद्ध स्थलों की सप्तम और एकादश समुल्लास में व्याख्या कर सिद्ध किया है कि उपनिषदों और वेदान्त दर्शन के द्वारा अद्वैतवाद सिद्ध नहीं किया जा सकता है।

यहां पर संक्षेप में आवश्यक प्रसंग उपस्थित किए जा रहे हैं। ऋग्वेद और अथर्ववेद में स्पष्ट रूप से त्रैतवाद का सिद्धांत स्वीकार किया गया है। एक मन्त्र में कहा गया है कि एक वृक्ष है, उस पर दो पक्षी बैठे हैं। उन दोनों पक्षियों में से एक मधुर फल का स्वाद लेता है और दूसरा पक्षी कुछ न कुछ खाता हुआ केवल साक्षी के रूप में रहता है। इस मंत्र में वृक्ष के द्वारा प्रकृति का वर्णन है, फल-भोक्ता पक्षी के द्वारा जीवात्मा का ग्रहण है और साक्षी के द्वारा परमात्मा का ग्रहण है। इस प्रकार मन्त्र तीन तत्त्वों की सत्ता मानता है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया,
समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति,
अनश्नन् अन्यो अभि चाकशीति ॥
(ऋग्वेद १।१६४।२०,
अथर्व० ९।९।२० निरुक्त १४।३०)

इसी प्रकार अस्य वामस्य० मन्त्र में तीन नित्य तत्त्वों का ३ भाई के रूप में उल्लेख है—ईश्वर, जीव, प्रकृति। ईश्वर पालक है जीवात्मा भोक्ता है और प्रकृति रसादि से युक्त है।

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्य० ॥
(ऋग्वेद १।१६४।१, अथर्व ९।९।१)

यजुर्वेद में ईश्वर जीव और प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता मानी गई है। परमात्मा व्यापक है और प्रकृति व्याप्य। दोनों पृथक् हैं।

ईशावास्यमिद सर्वं यत् किं च जगत्यां जगत् ॥ यजु० ४० १

परमात्मा सबके अन्दर है और सबके बाहर है। यह परमात्मा और जीव की पृथक्ता सिद्ध करता है।

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यत.। यजु ४०।५

सारे प्राणी परमात्मा में हैं और सब प्राणियों में परमात्मा है। यह जीव और परमात्मा की पृथक् सत्ता बताता है।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं०।
यजु० ४०।६

श्वेताश्वतर उपनिषद् में अनेक श्लोकों में तीन तत्त्वों की स्वतंत्र सत्ता मानी गई है। एक प्रकृति है। यह नित्य है और सत्त्व, रजस् तथा तमस् गुणों वाली है तथा सृष्टि-निर्मात्री है। दूसरा नित्य तत्त्व जीवात्मा है। यह कर्म-फल-भोक्ता है। तीसरा नित्य तत्त्व परमात्मा है। वह फल-भोगरहित है, केवल साक्षी है।

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां
बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनु शेते,
जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥
श्वेताश्वतर० ४।५

इसी प्रकार त्रैतवाद का समर्थन करते हुए कहा गया है कि तीन नित्य तत्त्व हैं—एक सर्वज्ञ है, दूसरा अल्पज्ञ है और तीसरा भोग्य है। अन्यत्र कहा गया है कि जीव भोक्ता है, प्रकृति भोग्य है और परमात्मा प्रेरक है। इस प्रकार तीन नित्य तत्त्व (ब्रह्म) हैं।

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ।
अजा ह्येका भोक्तृभोगार्थयुक्ता।
श्वेताश्वतर० १।९

भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा,
सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्मेतत् ॥
श्वेताश्वतर० १।१२

इस प्रकार वेदों और उपनिषदों में अनेक स्थलों पर त्रैतवाद का समर्थन किया गया है।

आचार्य शंकर ने अद्वैत मत के समर्थन के लिए अध्यास, माया या अविद्या का आश्रय लिया है। 'अध्यास का अर्थ किया है—अतद् में तद्बुद्धि अर्थात जो जैसा नहीं है, उसमें उसका बोध। जैसे—शुक्ता या सीपी में रजत बुद्धि, रस्सी में सर्प का बोध आदि।

अध्यासो नाम अतस्मिन् तद्बुद्धि.।
(उपोद्घात पृष्ठ-२)

अध्यास के द्वारा अद्वैत मत की सिद्धि नहीं की जा सकती है। अध्यास के लिए द्वैत मानना आवश्यक है। एक सत्य वस्तु और दूसरी असत्य वस्तु। सीपी और रजत (चांदी), सर्प और रस्सी दो भिन्न वस्तुएं हैं। एक में दूसरे का भ्रम अध्यास है। अद्वैतमत में ब्रह्म एक ही है, अतः उस में दूसरे के भ्रम का प्रश्न ही नहीं उठता है। यदि दूसरी कोई वस्तु है, जिसका उस में भ्रम होता है तो द्वैत की सिद्धि होती है। इस प्रकार अध्यास अद्वैत मत के लिए घातक है।

आचार्य शंकर के मतानुसार ब्रह्म से जीवात्मा नहीं माना जाता है। जीव को ब्रह्म का प्रतिबिम्ब स्वीकार किया जाता है। परन्तु वेदान्त दर्शन के अनुसार यह मत अमान्य है। वेदान्त दर्शन में एक भी सूत्र इस मत का पोषक नहीं है। इसके विपरीत वेदान्त दर्शन के सूत्रों में जीवात्मा को अमर नित्य, कर्ता और भोक्ता होना सिद्ध किया गया है। एक सूत्र में जीवात्मा में परमात्मा के प्रतिबिम्ब होने का खंडन किया गया है। इसका ही संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

जीवात्मा का न जन्म होता है और न मृत्यु। यह अजर और अमर है।

नात्मा श्रुतेर्नित्यत्वाच्च ताभ्यः।
वेदान्तदर्शन २।३।१७

शांकर अद्वैतदर्शन और दयानन्द-दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन

यही भाव कठोपनिषद् में भी दिया गया है। "न जायते म्रियते वा विपश्चिद्०" (कठो० १।२।१८। ऋग्वेद में भी जीवात्मा को अमर्त्य या अमर कहा गया है।

जीवोऽमृतस्य चरति स्वधाभिः अमर्त्यो मर्त्येन सयोनिः।

ऋग्० १।१६४।३०

जीवात्मा नित्य है, अजन्मा है, अतएव उसे चेतन और ज्ञाता कहा गया है।

ज्ञोऽत एव।

वेदान्त० २।३।१८

अन्यत्र भी वेदान्तदर्शन में जीवात्मा को नित्य कहा गया है।

तस्य च नित्यत्वात्।

वेदान्त० २।८।१६

जीवात्मा कर्ता है। अतएव उसके लिए विधि और निषेध वाक्य प्रयुक्त हुए हैं कि ऐसा करे और ऐसा न करे।

कर्ता शास्त्रार्थवत्वात्।

वेदान्त० २।३।३२

एक सूत्र में जीवात्मा में परमात्मा के प्रतिबिम्ब का निषेध किया गया है।

अम्बुवद् अग्रहणात् तु न तथात्वम्। वेदान्त० ३।२।१६

परमात्मा और जीवात्मा का भेद बताते हुए कहा गया है कि परमात्मा द्युलोक और भूलोक आदि का आधार है, परन्तु जीवात्मा नहीं। इससे ज्ञात होता है कि परमात्मा और जीवात्मा की सत्ता पृथक् है।

द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात्।

वेदान्त० १।३।१

प्राणभृच्च।

वेदान्त० १।३।४

भेदव्यपदेशात्।

वेदान्त० १।३।५

आचार्य शंकर के अनुसार प्रकृति जगत् का उपादान कारण नहीं है, अपितु ब्रह्म ही अभिन्न-निमित्तोपादान कारण माना जाता है। परन्तु वेदान्तदर्शन में प्रकृति को जगत् का उपादान कारण बताया गया है। प्रकृति जगत् का उपादान कारण है, न कि स्वतन्त्र कारण।

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्। वेदान्त० १।४।२३

सृष्टि की उत्पत्ति में परमात्मा और प्रकृति दोनों कारण हैं। परमात्मा निमित्त कारण है और प्रकृति उपादान कारण।

साक्षाच्चोभयाम्नानात्।

वेदान्त० १।४।२५

यद्यपि परमात्मा और प्रकृति दोनों ही सृष्टि की उत्पत्ति के कारण हैं, परन्तु परमात्मा निमित्त कारण और निर्देशक है तथा प्रकृति उसके अधीनस्थ रहते हुए उपादान कारण है। अतएव कहा गया है कि प्रकृति परमात्मा के अधीन होने से सार्थक है।

तदधीनत्वाद् अर्थवत्।

एक सूत्र में अजा अर्थात् प्रकृति शब्द से सत्त्व, रजस् और तमस् गुणों से युक्त प्रकृति का वर्णन है। प्रकृति त्रिगुणात्मक है।

ज्योतिरुपक्रमा तु तथा ह्यधीयत एके।

वेदान्त० १।४।९

आचार्य शंकर के अनुसार जगत् मिथ्या है और वह स्वप्न के तुल्य अयथार्थ है। इस विचार का खंडन वेदान्त दर्शन में प्राप्त होता है। इसमें जगत् को स्वप्न के तुल्य मिथ्या या अयथार्थ मानने का निषेध है। शंकराचार्य ने भी इस सूत्र के भाष्य में लिखा है कि जगत् स्वप्न आदि के तुल्य मिथ्या नहीं है।

वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत्।

वेदान्त० २।२।२९

इसके पश्चात् महावाक्य के रूप में प्रतिष्ठापित 'तत् त्वमसि' और 'अहं ब्रह्मास्मि' वाक्यों पर विचार आवश्यक है। 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ) वाक्य किसी वैदिक संहिता का नहीं है, अपितु शतपथ ब्राह्मण का वाक्य है और इसे बृहदारण्यक उपनिषद् में उद्धृत किया गया है। यह वाक्य है—

ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्, तदात्मानमेवावेद—अहं ब्रह्मास्मि इति। ऋषिर्वामदेवः प्रतिपेदे—अहं मनुः अभवम्, अहं सूर्यश्चेति। यो वेद अहं ब्रह्मास्मीति, स इदं सर्वं भवति।

शतपथ० १४।४।२।२१-२२,
बृहदा० १।४।१०

'अहं ब्रह्मास्मि' का भाव है कि मैं ब्रह्म रूप हो गया हूं। उपर्युक्त उद्धरण में ऋषि वामदेव का कथन है कि मैं मनु हो गया हूँ, मैं सूर्य हो गया हूं। इसी प्रकार जो अपने आपको ब्रह्मरूप समझता है, वह सब कुछ हो जाता है। यह 'अहं ब्रह्म' वाक्य लाक्षणिक है। इसका अभिप्राय है कि मैं तत्तुल्य अर्थात् उसके समान हो गया हूँ। जैसे—'अहं राजा' 'अहं सिंहः' आदि वाक्यों में ऐश्वर्य युक्त होने पर अपने आपको राजा कहना या अत्यन्त शूरत्व के आधार पर अपने आपको सिंह (शेर) कहा जाता है, उसी प्रकार तत्त्वज्ञानी ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति अपने आपको ब्रह्मत्वभावापन्न कहता है। ब्रह्म और ब्रह्मरूप में अन्तर है। एक वास्तविक है और दूसरा आरोपित या लाक्षणिक। 'मैं सिंह हूं' में साक्षात् शेर रूपी पशु होना अभीष्ट नहीं है, अपितु उसके पराक्रम गुण का समन्वय अभीष्ट है। तपा हुआ लोहा अग्नि रूप हो जाता है, परन्तु साक्षात् अग्नि नहीं। वह मूल रूप में लोहा ही है। इसी प्रकार तत्त्वज्ञानी तपोनिष्ठ साधक साधना के द्वारा ब्रह्मत्व-भाव युक्त हो जाता है। आत्म परिष्कार के द्वारा वह निर्दोष, निर्लेप, निरहंकार आदि गुणों से युक्त हो जाता है। तद्रूपापत्ति की एकात्मता नहीं कही जा सकती है। दोनो वस्तुएं भिन्न हैं, परन्तु गुणसाम्य के आधार पर उन्हें एकरूप कहा जाता है। इसी प्रकार 'तत्त्वमसि' इस वाक्य का भी अर्थ का अनर्थ किया गया है। मूल वाक्य इस प्रकार है—

'स य एषोऽणिमा, ऐतदात्म्यम् इदं सर्वम्, तत् सत्यम्, स आत्मा, तत् त्वमसि श्वेतकेतो इति।'

छांदोग्य उप० ६।८।७

छान्दोग्य उपनिषद् में यह सारा प्रसंग आत्मा या जीवात्मा के लिए है। इस प्रसंग में ९ उदाहरण देकर बताया गया है कि जीवात्मा अणुतत्त्व है। यह सूक्ष्मरूप में सर्वत्र व्याप्त रहता है। जिस अंश को जीवात्मा छोड़ देता है, वह अंश निष्प्राण या निर्जीव हो जाता है। एक सत् तत्त्व से सभी जीवों का विकास हुआ है, वही आत्मा है। वही आत्मा मनुष्य मात्र में व्याप्त है। उस आत्मा को जानना ही मनुष्य मात्र का लक्ष्य है।

इस महावाक्य में तत् शब्द से ब्रह्म का अर्थ लेना सर्वथा अप्रासंगिक है, यहाँ तत् शब्द आत्मा के लिए है। तत् शब्द नपुंसक लिंग है, आत्मा पुल्लिंग है, अतः यहाँ पर 'सः' (वह) कहना चाहिए, परन्तु 'तत्' शब्द का प्रयोग है अतः यह वाक्य में प्रयुक्त 'सत्यम्' के लिए है। वह जो अणुरूप में सर्वत्र व्याप्त सत् या सत्यरूप सत्ता है, वह तुम हो। इसमें आत्मा की एकता की अनुभूति का वर्णन किया गया है। यहाँ पर तत् शब्द ब्रह्म का वाचक न होकर 'आत्मा' के लिए है। उस आत्मा के लिए ही दूसरा शब्द वाक्य में 'सत्यम्' दिया गया है। वह सत्यरूप या सत् तत्त्व आत्मा है, जो सर्वत्र व्याप्त है। वह सत् आत्मा मानव शरीर में है। उसको ही जानना मानव का लक्ष्य है।

'तत् त्वमसि' महावाक्य मे अद्वैत वेदान्त के अनुसार भागलक्षणा या जहद्-अजहत्-स्वार्था लक्षणा मानी जाती है। इसका अभिप्राय यह है कि दोनों वस्तुओं में कुछ अंश छोड़ दिया जाता है और कुछ अंश ले लिया जाता है। जितने अंश मे विषमता या असमानता है, उतना अंश छोड़ दिया जाता है और जितने अंश मे समानता है, उतना अंश ले लिया जाता है। ब्रह्म परमात्मा और जीवात्मा में आत्मा की समानता है। एक परम आत्मा है, दूसरा जीव-आत्मा है। दोनों चेतन हैं। दोनों में भेदक अंश है—परम और जीव। अतः परम और जीव को छोड़कर केवल आत्मा या चेतन तत्त्व लेकर दोनों की एकरूपता सिद्ध की जाती है।

यहां यह समझना आवश्यक है कि भागलक्षणा में भेद निरन्तर बना रहता है। दोनों को एकतत्त्व या एकरूप नही कहा जा सकता है। गुणसाम्य के आधार पर दोनों में एकत्व की स्थापना की जा सकती है, परन्तु दोनों को एक नही कहा जा सकता है। दोनो का स्वतन्त्र अस्तित्व बना रहता है। धनी-निर्धन, गुणी-अगुणी, विद्वान्-मूर्ख का भेद होने पर भी हम मानवमात्र में मानवता के आधार पर एकत्व की अनुभूति कर सकते हैं। इसी आधार पर विश्वबन्धुत्व आदि की स्थापना की जाती है। परन्तु यह सब कुछ होने पर भी गुणमूलक भेदों को भुलाया नही जा सकता है। इसी प्रकार साधना आदि के द्वारा मानवीय दोषो को दूर करके ब्रह्म या परमात्मा से एकत्व की अनुभूति की जा सकती है। कतिपय गुणों के साम्य के आधार पर दोनों का एकत्व कहा जा सकता है, परन्तु मूलरूप में दोनों की स्वतन्त्र सत्ता विद्यमान रहेगी।

इस प्रकार विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन की अपेक्षा महर्षि दयानन्द का त्रैतवाद अधिक युक्तिसंगत और प्रमाणसंगत है। वेद, उपनिषद् और स्वयं वेदान्तदर्शन त्रैतवाद का समर्थन करते हैं। □

कविता

आवेश मे नही हूं अवशेष को बचाओ
उद्देश्य को बदल दो इस देश को बचाओ
वीरों की धरोहर है,
पीरों का सरोवर है,
वीरों का यह घर है उस भेष को बचाओ
जो भेष भारती का
भवभूति भारती का
गारत हुई मनुजता सब लेश को बचाओ
कितने डरे हुए हैं
जन क्या करे हुए हैं
जीते मरे हुए हैं अखिलेश को बचाओ
कड़वे से फल बने हैं
छल बल के दल बने हैं
पागल बने हैं कैसे वो केश को बचाओ
शिकवा है मालियो से
पूछो तो डालियों से
प्रजा की गालियों से
प्रजेश को बचाओ।
दामन भरे हैं गम से
बतलाओ न कसम से
व्याकुल कवि कलम से कमलेश को
बचाओ!

—प्रकाशवीर 'व्याकुल'

प्राचीन भारतीय संस्कृति का प्रमुख केन्द्र–

गुरुकुल गौतम नगर

एक विहंगम दृष्टि में–

—जगन्नाथ शास्त्री

गुरुकुल की परम्परा भारतवर्ष मे अति प्राचीन है। प्राचीन काल मे तो गुरुकुल ही विद्या के केन्द्र होते थे। जहा देश के विभिन्न भागों से आकर विद्यार्थी गुरु के परिवार के साथ निवास करते थे, और विद्याध्ययन के शेष काल तक गुरुकुलों मे ही रहा करते थे। गुरुकुलो का वातावरण निर्जन वनों में होता था, और वहां का जीवन प्राचीन मर्यादाओं एव अनुशासनों से पूर्ण होता था।

२० वी शताब्दी मे जब देश मे राष्ट्रियता व प्राचीन संस्कृति के पुनरुत्थान की भावनायें जागृत हुईं तो जहाँ अनेक मतमतान्तरो का जन्म हुआ, वहाँ विशेपकर आर्यसमाज के आन्दोलनो के परिणामस्वरूप देश में फिर से प्राचीन भारतीय सस्कृति के विकास के लिये गुरुकुलों की स्थापना हुई। इनमे स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा सस्थापित गुरुकुल कागड़ी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। क्यों कि स्वामी जी ने वेद के अनुकूल ही गुरुकुल की स्थापना की। जिसका मूल मन्त्र प्रमुख ध्येय—"उपह्वरे गिरीणा सङ्गमे च नदोनाम्। धिया विप्रो अजायत।" था अर्थात् (जहाँ नगर के कोलाहल से दूर सघन वनो पहाडो कन्दराओं और नदियो के किनारो पर विद्वान्, बलवान् और चरित्रवान छात्रो का निर्माण किया जाता है)। गुरुकुलों द्वारा प्राचीन वैदिक आर्य सभ्यता, सस्कृत एव सस्कृति का पुनरुत्थान करने का सफल प्रयास किया गया। विद्यार्थी जीवन एक वैज्ञानिक कला के आधार पर विकसित हुआ। प्राचीन काल में विद्यार्थी शब्द के लिये उपयुक्त शब्द "ब्रह्मचारी" था। "ब्रह्मचर्य" आर्यों के विशाल भवन की वह आधार शिला है, जिसका निर्माण युगों ने अपने स्थायी करों द्वारा गुरुकुलो के माध्यम से किया।

समय के बढते चरण में अनेक गुरुकुलों की स्थापना हुई, जिसकी शृंखला मे गुरुकुल गौतम नगर का स्थान अन्यतम है।

भारत की राजधानी दिल्ली यमुना नदी के तट पर सन् १९३४ में प्राचीन भारतीय संस्कृति का प्रमुख केन्द्र दयानन्द वेद विद्यालय की स्थापना हुई। यमुना नदी के किनारे वेद विद्यालय मे प्रात: सायं वेद मन्त्रों की ध्वनि गुञ्जायमान होती रही जो त्रिवेणी सङ्गम का एक अङ्ग स्वय यमुना को भी अपनी पुरानी भारतीय सस्कृति तथा गौरव का आभास होता है। जिस गरिमा का ऋषि मुनियों ने निर्माण किया था, परिवर्तन के सक्रमणकाल में वह गौरव शनैः शनैः बदलता गया और आज उसका केन्द्र दक्षिण दिल्ली में (गौतम नगर, युसुफ सराय) बन गया है। किन्तु आज भी यह अपनी प्राचीन सस्कृति लेकर चल रहा है।

इसके संस्थापक श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी सरस्वती तथा वर्तमान मे श्री आचार्य हरिदेव जी के आचार्यत्व मे लगभग १२० ब्रह्मचारी ऋषि का अमर सन्देश वेद विद्या के अतीत के गौरव को जीवन्त रूप देने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं। इन ब्रह्मचारियों के कार्य कलापों को देखकर पुरानी सस्कृति की याद आती है। जिस संस्कृति तथा आश्रमों मे जिज्ञासु शिष्य शिक्षा प्राप्ति की इच्छा से शिक्षाव्रती तथा समित्पाणि छात्र होकर आया करते थे। ठीक वैसा ही वातावरण दिल्ली जैसी नगरी के विद्यालयीय परिसर मे दृष्टिगोचर होता है। यहाँ का परिवेश ऋषि महर्षियों की सस्कृति की पुन: याद दिलाता है। प्राचीन संस्कृति के संपोषक श्री आचार्य हरिदेव जी तथा योग्य अध्यापकों की छत्रछाया मे अध्ययन कर ब्रह्मचारी पाश्चात्य शिक्षा पद्धति में भटकना नही चाहते। इसलिए ब्रह्मचारी सस्कृति की जड को सजग करने में रत हैं। वे जानते हैं कि सास्कृतिक भवन की नींव प्राचीन संस्कृति ही है। जिस भवन का सशक्त रूप से निर्माण किया जा सकता है। इस विद्यालय में प्रचीन गुरुकुलों की पद्धति पर प्रात. ४ बजे सभी ब्रह्मचारी गुरुकुल के प्रांगण मे वेद मन्त्रों का उच्चारण प्रारम्भ कर देते हैं। यह क्रम सर्दी, गर्मी, वर्षा सभी ऋतुओ मे एक सा चलता है। यहाँ वैदिक पद्धति के अनुसार नित्य प्रति प्रातः सायं तपस्यात्मक दैनिक कार्य सरल एव सहज भाव से सम्पादित होते हैं। यहाँ समय-समय पर विविध विश्वविद्यालयों शिक्षण संस्थाओं तथा क्रीड़ा क्षेत्रों में भी ब्रह्मचारियों को प्रतियोगितार्थ भेजा जाता है। जिसमें छात्र पुरस्कार पाकर विद्यालय के गौरव को बढाते हैं। वेद विद्या को स्थानीय रूप देने के लिए यहां के छात्रों ने सम्पूर्ण यजुर्वेद तथा सामवेद कण्ठस्थ कर लिया है। गत वर्ष १९८१ में अन्तारा़ष्ट्रिय महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी समारोह अजमेर में ४ चार ब्रह्मचारियों ने नरदेव (उडीसा) ओ३म् प्रकाश (दिल्ली) धर्मेन्द्र कुमार (महाराष्ट्र) ओ३म् प्रकाश (म० प्र०) श्रुतिशास्त्र वेद को कण्ठाग्र सुनाकर ४४००)०० चवालीस सौ रुपये का पुरस्कार पाया, और गत सप्ताह ८-९ फरवरी १९८६ को हुए दिल्ली आर्य प्रतिनिधि–सभा की ओर से राष्ट्रिय स्टैडियम में आयोजित आर्य युवा महासम्मेलन में खेल की विभिन्न प्रतियोगिताओं में ६–१०वर्ष की आयु वालों में १०० मी० दौड़ में ह० चक्रधर (उड़ीसा) प्रथम, ११–१२ वर्ष ऊंची कूद राजेन्द्र कुमार (बरमन्दपुर, उ०प्र०) प्रथम, राजेश्वर (उ०प्र०) द्वितीय, लम्बी कूद राजेश्वर प्रथम, दौड़ २०० मी० नारायण (उड़ीसा) प्रथम व राजेश्वर तृतीय, १४–१७ वर्ष वालों मे भाला फेंक मुकेशकुमार (उड़ीसा) ने द्वितीय स्थान, चक्का फेंक वेदप्रकाश (बिहार) तृतीय, ऊंची कूद–विद्यानिधि (बिहार) तृतीय ४०० मी० दौड़ मार्कण्ड कुमार (उड़ीसा) ने तृतीय स्थान पाकर ४ शील्ड और ६ कप पाकर विद्यालय को गौरव का सम्मान दिलाया है।

यहाँ के प्रमुख आकर्षण एव शारीरिक शिक्षण के साथ–साथ चतुर्वेद ब्रह्म–पारायण महायज्ञ भी है। जो निरन्तर ५ वर्षों से होता आ रहा है। पूर्व वर्षों की भांति इस वर्ष भी चतुर्वेद ब्रह्मपारायण महायज्ञ का आयोजन १६ फरवरी ८६ से २ मार्च तक स्वामी दीक्षानन्द जी के ब्रह्मत्व में किया गया था। इसमें एकश्रुति वेद मन्त्रों का सस्वर पाठ विद्यालय के प्रबुद्ध वेदपाठी विद्वान् स्नातकों ने किया। इसकी पूर्णाहुति २ मार्च को हुई। इस अवसर पर देश के विभिन्न क्षेत्रों से प्रमुख गण्य मान्य विद्वान्, महात्मा, उपदेशकों को आमन्त्रित किया गया। सभी ने अधिक से अधिक सख्या मे पधार कर आयोजन को सफल बनाया। □

देश के नौनिहालो ! कहां सो रहे ? पूर्ण उद्धार करना अभी शेष है !

देख ली पूर्ण स्वच्छन्दता की छटा,
मात 'चमेज' की शक्ति होने लगी
भ्रष्ट पाश्चात्य पथ का सहारा लिये,
नीति मे भेद के बीज बोने लगी,
पगु शिक्षा मिली, व्यक्ति निर्बल बने,
लक्ष्य बेकार का एक बस नौकरी,
शस्य-पशु-ह्रास लखकर निरंतर भ्रमित,
भूति-लक्ष्मी सिसक-क्षुब्ध रोने लगी,

किन्तु बन मूक तुम व्यर्थ बैठे हुए
जब कि हुंकार करना अभी शेष है !!
देश के नौनिहालो ! कहा सो रहे ?
पूर्ण उद्धार करना अभी शेष है !!

शिशु-विवाह। मे अतर न कुछ भी पड़ा,
वृद्ध भौंरे कली को अभी छेड़ते,
अर्थ-आधार लेकर, मिटा प्रेम-बल
चंद सिक्के कुमारी–कटक घेरते
जनानया बिक रही बकरियो की तरह
बेटिया प्राप्ति-उत्थान-साधन बनी,
वे नयी पीढ़िया राह पर मर रही,
भ्रूण दम तोड़ते न्याय को टेरते,

रीतियों की अपावन-युगो की जमी—
मूल बेकार करना अभा शेष है !!
देश के नौनिहालो ! कहां सो रहे ?
पूर्ण उद्धार करना अभी शेष है !!

रूप-तन नैन के सामने बिक रहा,
ले रहे सभ्य सज्जन सिहाये हुए,
लोटते राज पथ पर सुजन होश खो,
पी सुरा-सुन्दरी, धन लुटाये हुए,
होटलों मे लिये मोट विश्राम की,
बेच कौमार्य-मातृत्व हम पल रहे,
घोर नैतिक पतन बढ़ अकारण रहा,
घूमते लाज-वैभव लुटाये हुए,

कटु भयकर अनाचार व्यभिचार का—
पूर्ण सहार करना अभी शेष है !!
देश के नौनिहालो ! कहां सो रहे ?
पूर्ण उद्धार करना अभी शेष है !!

हैं त्रिवेदी मगर वेद जाने नही,
शुक्ल भी श्यामता से भरे दिख रहे,
मूल दीक्षित गये ज्ञान-दीक्षा सभी,
दीन पाठक, दुबे दुबकना सिख रहे,
'जन्मना वर्ण' की रूढ़ि पाले हुए,
'कर्मणा वर्ण' की त्याग व्याख्या सरल,
बीसवी कल-सदी में युगो से घिसी,
हानि से पूर्ण अस्पष्ट लिपि लिख रहे,

त्याग कर्त्तव्य, सघर्ष मे रत सभी,
शुद्ध आचार करना अभी शेष !
देश के नौनिहालो ! कहा सो रहे ?
पूर्ण उद्धार करना अभी शेष है !!

खेद है ! बंधु से बंधु मिलता नहीं,
ऐक्य-सहयोग का नाम ही दूर है,
राग सब के अलग, तान सब की अलग,
शांति-उत्थान का काम ही दूर हैं,
दो गुटो मे सभी विश्व सिमटा हुआ,
किन्तु परवाह अपनी न हम को तनिक,
रूसियों और अमरीकियों मे लगी—
होड़ विज्ञान की, शक्ति भरपूर है,

कर्णधारो ! न दायित्व भूलो जरा,
विश्व-चीत्कार हरना अभी शेष है !
देश के नौनिहालो ! कहा सो रहे ?
पूर्ण उद्धार करना अभी शेष है !!

'आइटम' का न बम फूट पाया अभी,
हायड्रोजन-अहकार बढने लगा,
एशिया लाल लोचन न पाया तनिक,
साज रण का घुआधार दिखने लगा,
मत-मतान्तर बढ़ा 'वाद' पलने लगे,
एक ही रक्त के हो विपक्षी बने
मौन भारत ना मुख खोल कुछ कह सका,
पाक-स्वर क्रूर विकराल बनने लगा,

कूट नीतिक छलो में न फंस-भूल कर,
पुष्ट आकार करना अभी शेष !
देश के नौनिहालो ! कहां सो रहे ?
पूर्ण उद्धार करना अभी शेष है !

दो विषमता मिटा द्वन्द्व सारे हटा,
हो पराधीनता दूर सब अर्थ की,
तीसरा गुट समन्वित सजाकर चलो,
दूर कर बढ़ कलह विश्व की व्यर्थ की
जाति, मत, रंग के भेद सब भूल कर,
विश्व-कल्याण के राग गाते बढो,
मन्त्र जग-एकता का जगाये हुए,
शुद्ध व्याख्या करो वेद के अर्थ की,

विश्व भर के कला-युद्ध-विप्लव का,
शांत प्रसार करना अभी शेष है !
देश के नौनिहालो ! कहा सो रहे ?
पूर्ण उद्धार करना अभी शेष है !

—भैरवदत्त शुक्ल

ऋषि बोधोत्सव...

(पृष्ठ १ का शेष)

लिए प्रयत्नशील रहे हैं और आगे भी रहना है। आर्यसमाज का कार्य खत्म नहीं हो जाता है, यह तो बुराइयों के विरुद्ध एक तरह का धर्मयुद्ध है, जेहाद है, एक आन्दोलन है। आर्यसमाज की मान्यता सभी के लिए समान अधिकार तथा समान कर्तव्यों की है।

अध्यक्षीय भाषण देते हुए सार्वदेशिक सभा के प्रधान माननीय लाला रामगोपाल शालवाले ने कहा कि आर्यसमाज हिन्दू जाति का सजग प्रहरी है। पोप पाल के आगमन के समय चारों तरफ शोर मच रहा था कि न जाने क्या होगा, न जाने कितनी बड़ी संख्या में धर्मान्तरण होगा। परन्तु हम राष्ट्रीय नेताओं से मिले, आर्यसमाजों के प्रतिनिधि मण्डल श्री राजीव गांधी, श्री अरुण नेहरू तथा अन्य केन्द्रीय मन्त्रियों से राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री को दिये गये ज्ञापनों में हम ने सशक्त स्वर में अनुरोध किया था कि धर्म निरपेक्षता का यह तात्पर्य नहीं है कि हम धर्मान्तरण के समय कोई कार्यवाही न कर सकें। श्री अरुण नेहरू ने हमें कहा था कि ऐसा कोई तमाशा नहीं होने दिया जायेगा। इस प्रतिनिधि मण्डल में मेरे साथ हरियाणा के प्रधान प्रो० शेर सिंह तथा दिल्ली के मन्त्री डा० धर्मपाल भी थे। लाला रामगोपाल शालवाले ने सरकार से मांग की कि सभी के लिए समान सिविल कोड होना चाहिए और किसी मत विशेष के लोगों के लिए विशेष रियायतें नहीं होनी चाहिएं। सरकार को कठमुल्ला लोगों तथा कट्टरपन्थियों के दबाव में नहीं आना चाहिए। उन्होंने सरकार से यह भी मांग की कि बहुत समय से लटके हुए गोहत्या के मामले में विशेष ध्यान की आवश्यकता है। आर्यसमाज सदा से ही हिन्दी का समर्थक रहा है। जब हम हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर चुके हैं, तो हम क्यों इसे क्रियान्वित करने से कतराते हैं। हमें राष्ट्र की एकता के लिए, अखण्डता के लिए तथा उत्थान के लिए मुस्तैदी से कार्य करना ही होगा। आर्यसमाज हर तरह के संघर्ष के लिए तैयार है। लाला जी ने जम्मू कश्मीर में राष्ट्रपति शासन लागू किए जाने पर प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी को हार्दिक बधाई दी।

इस अवसर पर स्वामी दीक्षानन्द जी महाराज, संसद सदस्य श्री रामचन्द्र जी विकल, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री सूर्यदेव, आर्य जगत् के यशस्वी सम्पादक श्री क्षितीश जी वेदालंकार ने अपने विचार आर्य जनता के सामने रखे। सभा का संयोजन दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के महामंत्री डा० धर्मपाल ने किया।

केन्द्रीय सभा के मन्त्री श्री राजेन्द्र दुर्गा ने सभी आगत महानुभावों, विद्वानों, सभा के कार्यकर्ताओं तथा विभिन्न विद्यालयों के प्रबन्धकों, अध्यापिकाओं एवम् छात्र-छात्राओं का हृदय से सभा की ओर से ऋषि बोधोत्सव को सफल बनाने पर सहयोग के लिए धन्यवाद किया।

राजेन्द्र दुर्गा
(प्रचार मन्त्री)

आर्यसमाज की भावी योजना और कार्यशैली पर

निबन्ध प्रतियोगिता

पुरस्कार—प्रथम १००० रुपये, द्वितीय ७०० रुपये तृतीय ५०० रुपये तथा दस अन्य आकर्षक पुरस्कार

निबन्ध भेजने की अन्तिम तिथि . ३१ मार्च १९८६

आर्यसमाज ने अपनी स्थापना के प्रथम पचास वर्ष में सामाजिक, राजनीतिक आध्यात्मिक व शिक्षा के क्षेत्र में जो अभूतपूर्व कार्य किया है वह स्तुत्य है, परन्तु उस के मुकाबले दूसरे पचास वर्षों का कार्य बहुत अधिक प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता, बल्कि ऐसा समझना भी अतिशयोक्ति नहीं कि प्रथम पचास वर्षों के संचित कर्मों का लाभ दूसरे पचास वर्षों को मिला। वही साख आर्यसमाज को यशस्वी बनाये रही। आज आर्यसमाज की शताब्दी हो जाने पर वे सब गाथाएँ ऐतिहासिक सी लगने लग गयी जो कभी पूर्व पुरुष कर गये।

अनेक समस्याएँ जिन्हें आप समझें, उनका निदान और भावी योजनाओं को ध्यान में रखकर अपना निबन्ध भेजें। यह निबन्ध और सुझाव आर्यसमाज के प्रभाव की ज्योति को प्रचण्ड कर सकने में योगदान दे सकें, इस बात को ध्यान में रखकर लिखें। इनमें किसी व्यक्ति विशेष पर छींटाकशी नहीं होनी चाहिए।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें—

सत्यानन्द आर्य	गजानन्द आर्य
६३/४५ पंजाबी बाग	उपप्रधान सार्वदेशिक सभा, नई दिल्ली
नई दिल्ली-११००२६	ट्रस्टी परोपकारी सभा, अजमेर

रजि० नं० डी० (सी०) ७५६ साप्ताहिक 'आर्यसन्देश' १६ मार्च, १९८६ बिना टिकट भेजने का लाइसेंस नं० यू १३९
R. N No. 32387/77 Post in N D P S O on 13 3 86 Licenced to post without prepayment, Licence No. U 139

गुमशुदा

इनाम–REWARD Rs. 2000

ज्ञान प्रकाश मोहिन्द्रा 50 वर्ष
Telephone 656711, 668243 P.P.
पता द .एल 5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली

दिल्ली के उपराज्यपाल दीवानचंद स्मारक हस्पताल औचंदी पधारे

दिनांक २५।२।८६ को दिल्ली के उपराज्यपाल महोदय देहाती क्षेत्र के निरीक्षण के अवसर पर दीवानचन्द स्मारक हस्पताल औचन्दी में पधारे। हस्पताल की स्वच्छता तथा सेवा के लम्बे कार्य से बड़े ही प्रभावित हुए। हस्पताल को तीस हजार (३०,०००/-) रुपये का अनुदान दिया।

डा० धर्मपाल
मन्त्री
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन : ३१०१५० के लिए डा० धर्मपाल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा
वैदिक प्रेस, गली नं० १७, कैलाशनगर, दिल्ली-३१ में मुद्रित। रजि० न० डी० (सी०) ७५६

वर्ष १० · अंक १८ | रविवार, ३० मार्च, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ | चैत्र २०४२ | दयानन्दाब्द—१६१

मूल्य : एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश में ५० डालर, ३० पौंड

आर्यसमाज मोती बाग में ऋषि बोधोत्सव

सत्यपथ के पथिक ऋषि दयानन्द से सत्य अपनाएं

—सूर्यदेव

दक्षिण दिल्ली वेद प्रचार मंडल के तत्त्वावधान में २३ मार्च को आर्य समाज मोती बाग साउथ का वार्षिकोत्सव धूमधाम से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर सभा को सम्बोधित करते हुए दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री सूर्यदेव ने कहा—बालक मूलशंकर (ऋषि दयानन्द) को शिवरात्रि पर बोध हुआ, वे सत्य शिव की खोज में घर से निकले, सत्य शिव परम ब्रह्म प्रभु की समाधि में आनन्द मग्न हुए। सत्यमय जीवन को जीते हुए तीव्र छुरे की धार समान सत्य पथ से वे कभी विचलित नहीं हुए। जोधपुर के राजा के समक्ष भी उन्होंने सत्य ही कहा। चाहे उस सत्य से उन्हें प्राणों की हानि ही क्यों न उठानी पडी। जरा सोचिये आज का व्यक्ति तुच्छ पद को प्राप्त करके भी सत्य कहने की हिम्मत खो बैठता है। उसे पद का मोह सत्य कहने से रोकने लगता है। ऋषि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना भी सत्य प्रचार करने और असत्य का खण्डन करने की थी। आर्यसमाज अपने कर्तव्य का पालन कर रहा है और सदा करता भी रहेगा। ऋषि को यह सत्य शब्द कितना प्रिय था, आप देखिये अपने प्रिय ग्रन्थ का नाम भी सत्यार्थप्रकाश रखा। जिसमें उन्होंने सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन जी भर के किया। इस समय समाज और देश के पतन का कारण भी यही है कि हमारा अग्रणी कहा जाने वाला प्रबुद्ध व्यक्ति और राजनेता भी सच्चाई को जानते हुए भी उससे मुंह फेर लेता है। दुर्भाग्य से आज पंजाब और काश्मीर की समस्या देश की एकता को तोड़ने के लिए मुंह बाये खडी है। आज के परिप्रेक्ष्य में आवश्यक है कि सरकार जम्मू काश्मीर को हिमाचल के साथ मिलाकर और पंजाब को हरियाणा के साथ मिलाकर एक बृहद् राज्य बनाये जिससे क्षेत्रवाद और सम्प्रदायवाद की आवाज उठनी बद हो।

श्री सूर्यदेव ने भारत सरकार का ध्यान नई शिक्षा नीति की ओर आकृष्ट करते हुए कहा—नई शिक्षा नीति में किशोर किशोरियों को यौन शिक्षा दिये जाने की भारत सरकार की घोषणा दुर्भाग्यपूर्ण है। यह नैतिकता के लिए घातक है। नैतिक और चारित्रिक पतन की ओर ले जाने वाली है। इसके स्थान पर रोजगार सम्बन्धी समस्या से निपटने के लिए उचित शिक्षा और प्रशिक्षण का शिक्षा में समावेश किया जाना चाहिए।

इस अवसर पर सभा अध्यक्ष श्री रामगोपाल शालवाले, श्री महेश विद्यालंकार, श्री वेदप्रकाश श्रोत्रिय आदि नेता तथा विद्वानों ने भी सभा को सम्बोधित किया। सभा का संचालन श्री रामशरण दास आर्य ने किया।

आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली

के तत्त्वावधान में

आर्यसमाज स्थापना दिवस समारोह

६ अप्रैल १९८६ मध्याह्न २.३० बजे से ५ बजे तक

स्थान—आर्यसमाज पंजाबी बाग, नई दिल्ली

(रोड नं० ४२ सहदेव मल्होत्रा आर्य स्कूल का प्रांगण)

अध्यक्षता—लाला रामगोपाल शालवाले

प्रमुख वक्ता—स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती
श्री पं० शिवकुमार शास्त्री
श्री पं० सच्चिदानन्द सरस्वती

समस्त आर्यबन्धुओं से निवेदन है कि आर्यसमाज स्थापना दिवस के मुख्य समारोह को सफल बनाने के लिए अधिक से अधिक संख्या में बस आदि के द्वारा पधारें एवं अपनी आस्था का परिचय दें।

—: निवेदक :—

महाशय धर्मपाल (प्रधान) | अशोक सहगल (महामन्त्री)

सम्पादक—यशपाल 'सुधांशु' एम० ए० | व्यवस्थापक—डा० गणेशीलाल | प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल

यज्ञ और संस्कार

लेखक—आचार्य दिनेशचन्द्र शर्मा पाराशर

वेद और वैदिक धर्मग्रथो में 'यज्ञ और संस्कारो का महान् वर्णन मिलता है। प्राचीन काल मे यज्ञों का बडा ही प्रचार-प्रसार था। यदि अब भी वैसा ही यज्ञों और सस्कारों का पूर्ववत् श्रेष्ठ प्रचार-प्रसार घर घर में होवे और करें तो हमारा जीवन एव परिवार सब शाति और आनद का धाम बन जाए। राष्ट्र पितामह महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज अद्वितीय महान् वैज्ञानिक, वेदो के महान् व्याख्याता एव श्रेष्ठ भाष्यकार यजुर्वेद के चतुर्थ अध्याय में मंत्रों का भाष्य करते हुए लिखते हैं—

इयं ते यज्ञिया तनू ।

इयम्—यह

ते—तेरा जो

यज्ञिया—या यज्ञ मर्हति सा अर्थात् यज्ञ के योग्य

तनू —शरीर (है)।

अर्थात् हे मनुष्य! तेरा जो यह शरीर है यज्ञ करने योग्य है। यह शरीर मनुष्य का प्रभु प्राप्ति के लिए ही मिला है। पुण्य कर्मों से यह मनुष्य जीवन प्राप्त होता है। अग्नि के गुणों का उपदेश करते हुए ऋषि-वर मन्त्र भाष्य में लिखते हैं—

अग्ने त्वम् सुजागृहि वयम् सुमन्दिषीमहि।
रक्षाणो अप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि ॥
यजु० ४, म० १४

भावार्थ—मनुष्यों को जो अग्नि सोने जागने, जीने तथा मरने का हेतु है, उस का युक्ति से सेवन करना चाहिए।

सामवेद मे यज्ञानुष्ठान के सम्बन्ध मे कितना सुन्दर कहा है—

आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं
निहोतार गृहपति दधिध्वम्।
इळस्पदे नमसा रातहव्य
सपर्यता यजत पस्त्यानाम् ॥

परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! तुम घरो में पृथ्वी के ऊपर (कुण्ड में) घर के रक्षक (अग्नि) का नितरा आह्वान करो घृतादि से सब ओर से होम करो, वेदी के इधर उधर मार्जन करो, जिस को हव्य दिया उस होता नामक ऋत्विज् को (नमसा) नमस्कार आदि से सत्कृत करते हुए यजतम् (यज्ञ) करो।

इस मे मनुष्य को यह उपदेश है कि तुम घरो मे पृथ्वी पर अग्नि कुण्ड में अग्न्याधान करो। घृतादि की आहुति से यज्ञ-कार्य कराओ। उसका नमस्कार आदि से व अन्न आदि हव्यों से सत्कार करो। इस प्रकार स्त्री-पुरुष मिलकर यज्ञ किया करो॥ भाष्य तुलसी राम स्वामी॥

हे मनुष्य! इस जीवन को व्यर्थ मत गवाओ! संसार में मनुष्यत्व, मुक्त होने की इच्छा तथा महापुरुषों का संग, ये तीनों बड ही दुर्लभ होते हैं। किसी सस्कृत कवि ने बडा ही सुन्दर कहा है—

मानवस्य तु देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते।
स तु कृच्छ्राय तपसे प्रेत्यानन्तसुखाय च॥

अर्थात् मनुष्य का यह शरीर विलासिता में फसे रहने और केवल धन ही बटोरते रहने जैसे छोटे कार्यों के लिए नहीं मिला, अपितु जीते जी सत्य, अहिंसा आदि कठिन से कठिनतपों का अनुष्ठान करने के लिए और मरने के पश्चात् मोक्ष प्राप्त करने के लिए मिला है। अपने इस मनुष्य शरीर के गौरव और महत्त्व को समझ कर इस का सदुपयोग करो। सावधान! आलस्य और प्रमाद में आपका जीवन व्यर्थ न चला जाए। अतः यज्ञ करो, शुभ कर्म करो, धर्म संग्रह करो इस जीवन में। महाभारत में भीष्म पितामह यज्ञादि के सम्बन्ध में युधिष्ठिर से कहते हैं—

नास्ति यज्ञसम दानं
नास्ति यज्ञसमो निधि.।
सर्वधर्म समुद्देशो
देवि! यज्ञे समाहितः॥
अ० १४५, पृ० ६००१

अर्थात् यज्ञ के समान कोई दान नही है और यज्ञ के समान कोई निधि नही है। श्री महेश्वर जी उमा से कहते हैं हे देवि! सम्पूर्ण धर्मों का उद्देश्य यज्ञ मे प्रतिष्ठित है।

गीता में श्रीकृष्ण जी यज्ञ के सम्बन्ध मे उपदेश देते हैं—

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र
लोकोऽयं कर्मबन्धन.।
तदर्थं कर्म कौन्तेय
मुक्तसङ्ग समाचार॥
सह यज्ञा प्रजा:
सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष
वोऽस्त्विष्ट कामधुक्॥
गीता अ० ३ श्लोक ९-१०

अर्थात् हे कुन्ती के पुत्र! यज्ञ निमित्तक कर्म से अन्य (कर्मों) मे यह लोक कर्म बन्धन वाला है। इसलिए तू आसक्ति से मुक्त रहता हुआ उस (यज्ञ) के लिए अच्छे प्रकार कर्म कर अर्थात् धर्मानुकूल युद्ध क्षत्रिय का यज्ञ कर्म है॥९॥

प्रजापति ने पूर्व सृष्टयुत्पत्ति काल में 'यज्ञों' सहित प्रजाओं को उत्पन्न करके वेद द्वारा कहा कि इस (यज्ञ) से (तुम) सब कुछ उत्पन्न कर लो। यह (यज्ञ) तुम्हारी मनोवाञ्छित कामनाओं को पूर्ण करने वाला होवेगा॥१०॥

आगे कहा—

इष्टान् भोगान् हि वो देवा
दास्यन्ते यज्ञभाविता।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो
भुङ्क्ते स्तेन एव स.॥१२

अर्थात् यज्ञ से प्रसन्न हुए देवता तुम को मनोवांछित भोग देवेंगे। उनके दिए भोगों को जो पुरुष उन देवताओं को न देकर भोगता है, वह अवश्य चोर है अर्थात् मनुष्यो! सब भोग्य पदार्थ यज्ञ तुष्ट देवताओं की सहायता से उत्पन्न होते हैं। इसलिए जो मनुष्य देव निमित्तक वैश्वदेवादि यज्ञ किये बिना भोजन करता है, वह चोर हुआ।

आगे कहा है—

यज्ञशिष्टाशिन· सन्तो
मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषै·।
भुञ्जते ते त्वघं पापा
ये पचन्त्यात्मकारणात्॥१३
अन्नाद् भवन्ति भूतानि
पर्जन्यादन्नसम्भव.।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो
यज्ञ. कर्मसमुद्भवः॥१४

अर्थात् यज्ञ शेष का भोजन करते हुए सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। परन्तु वे पापी जो केवल अपने लिये ही पाक (भोजन) करते हैं पाप को खाते हैं॥१३॥

अन्न मे प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति मेघ से होती है। मेघ यज्ञ से होता है और यज्ञ कर्म से उत्पन्न होता है॥१४॥

भगवान् श्री कृष्ण जी आगे कहते हैं—

कर्म ब्रह्मोद्भवं
विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म
नित्य यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥१५॥

अर्थात् कर्म को वेद से उत्पन्न हुआ जान, वेद अविनाशी ईश्वर से उत्पन्न हुआ है इसलिए नित्य सर्वगत ब्रह्म यज्ञ में प्रतिष्ठित है॥१५॥

कितना सुन्दर सारगर्भित उपदेश श्री कृष्ण जी ने यज्ञ के सम्बन्ध में अर्जुन को किया है।

यज्ञमय हमारा जीवन होना चाहिए। यज्ञ से हमको दीर्घायु प्राप्त होती है। यज्ञ से तेज, ओज, बल, यश, ऐश्वर्य, उत्तम शांति, उत्तम सुख, उत्तम आरोग्यता, मानसिक, आत्मिक, सामाजिक, शारीरिक शक्ति घर-घर में यज्ञ होने से राष्ट्र में आनन्द, प्रसन्नता की पवित्रता, शुद्धता की उत्तम ज्ञान की विचारों की लहरें मन-मस्तिष्कमें दौडने लगती हैं। सर्वतः धर्मयज्ञ का प्रचार प्रसार होने से प्रभु मे विश्वास की दृढता से, अविद्या, अज्ञान, अन्धकार, आलस्यादि दुख, जो मनुष्य जीवन के महान् शत्रु हैं, जीवन से दूर जाने पर निर्भयता, श्रेष्ठता आदि गुण आ विराजते हैं। हिंसक भाव समाप्त हो जाते हैं। सब शुभ कार्य करना यज्ञ और धर्म है। नित्य कर्म प्रतिदिन करना चाहिए। न किसी दिन छोडना, क्योंकि अनध्याय में भी अग्निहोत्रादि उत्तम कर्म किया हुआ पुण्य रूप होता है। जैसे झूठ बोलने से सदा पाप और सत्य बोलने से सदा पुण्य होता है। वैसे ही बुरे कर्म करने मे सदा अनध्याय और अच्छे कर्म करने में सदा स्वाध्याय ही यज्ञ ही होता है। यह यज्ञ कर्म काण्ड का विषय है। यज्ञ में अग्निहोत्र हवन से लेकर अश्वमेध पर्यन्त का समावेश होता है। यज धातु है जो कि तीन अर्थों में प्रयुक्त है।

'देवपूजा-सङ्गतिकरण-दानेषु।

यज्ञ का अर्थ बड़ा ही विस्तृत है। देव पूजा का अर्थ है विद्या, ज्ञान और धर्म के अनुष्ठान से वृद्ध देव (विद्वानों) का ऐहिक और पारलौकिक सुख के सम्पादनार्थ सत्कार करना। दूसरा सङ्गतिकरण अच्छे प्रकार पदार्थों के गुणों के मेल-विरोध ज्ञान की संगति से शिल्पादि विद्या का प्रत्यक्षीकरण तथा नित्य विद्वानों के समागम-सगति का अनुष्ठान। तीसरा दान विद्या-सुख धर्मादि शुभ गुणों का नित्य दान करना।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा.।
यजु० ३१

विद्वान् लोग यज्ञ के द्वारा यजनीय परमेश्वर की उपासना करते हैं। यज्ञ शब्द का रूढार्थ अग्निहोत्र है। यज्ञ तथा संस्कारों मे चोली दामन का साथ है। □

जन्मदिवस पर हार्दिक बधाई—

दानवीर महाशय धर्मपाल—एक भक्त, एक सेवक

सरल सहज स्वभाव, हंसता मुस्कराता चेहरा, साधारण परिधान, बनावट आडम्बर से दूर, नम्रता, सज्जनता, उदारता से सजा व्यवहार, सन्त, विद्वान्, सन्यासियों, वृद्धों के चरणों में झुका विनत मस्तक, प्रभु भक्ति के रस में सजल नेत्रों से गाता, पुकारता जन्म जन्मांतर की टेर सुनाता हृदय, कर्मठ धुन का धनी अथक परिश्रमी जीवन, अनाथ, दीन, हीन जनों के कल्याण में लगा निष्कामी सेवक, द्वार पर आये याचक की अञ्जलि को भरता दाता इन सभी गुणों को संयुक्त कर जो व्यक्तित्व उभरता है। वह है महाशय धर्मपाल। महाशय धर्मपाल का जन्म ६२ वर्ष पूर्व स्यालकोट (पाकिस्तान) में २७ मार्च को हुआ था। बचपन में ही पूज्यवर पिता जी की उंगली पकड़ कर वे आर्यसमाज मन्दिर जाते थे। आर्यसमाज के संस्कार उन्हें घुट्टी में मिले, इसलिए वे महर्षि दयानन्द को ही अपना प्रेरक और गुरु मानते हैं। अपने माता पिता को वे अत्यधिक श्रद्धा, सम्मान से याद करते हैं। इनके पूज्य पिता श्री महाशय चुन्नीलाल स्यालकोट मे हल्दी के व्यापारी थे। महाशय धर्मपाल के शब्दों में 'पिताजी को स्वदेशी वेष पहने देख लोग उन्हें महाशय जी कहकर पुकारते थे। अपने जीवन में अमीर बनने की तीव्र इच्छा से उन्होंने दूसरे व्यापारियो को देख हल्दी में २५ प्रतिशत मिलावट प्रारम्भ कर दी। दूसरे व्यापारी ५० प्रतिशत मिलावट कर रहे थे। हमारी बिक्री दूसरो की अपेक्षा अधिक थी। एक दिन पिताजी को किसी ने महाशय जी कह कर नमस्ते की। वे पूछने लगे भाई, हम खत्री अरोडे हैं हमे महाशय (पंजाब में आर्यसमाज ने हरिजनों को सम्मान देकर महाशय कहना प्रारम्भ किया था) क्यों कहते हो। आर्यसमाज मे जाकर उन्होने महाशय का अर्थ पूछा तो उनको बताया गया। जिसके विचार और कार्य महान् हैं वह महाशय है। बस यह सुनते ही वे दुकान पर आये और मिलावट वाली हल्दी की बोरियो को नाली मे बिखेरने लगे। लोगो ने पूछा नाली मे क्यों गिरा रहे हो। बोले अब झूठ का व्यापार नही करना। उनकी सच्चाई का व्यापार पर बुरा असर नहीं पड़ा बल्कि उससे हमारा कारोबार और भी अधिक चलने लगा। पिता जी आर्यसमाज के सत्संगों में जाने लगे और हमे भी आर्य विचार बचपन में ही मिलने लगे।' स्यालकोट मे महाशय जी का परिवार मध्यम समृद्ध परिवार था, परन्तु जैसे ही पाकिस्तान का बंटवारा हुआ उनके परिवार को भी काफी क्षति पहुंची। अमृतसर होते हुए दिल्ली पहुंचकर उन्होंने पुनः व्यवसाय प्रारंभ की। अजमल खां रोड करोलबाग मे महाशय धर्मपाल ने अपने पिता जी के साथ एक खोखा लेकर कार्य प्रारम्भ किया। म० धर्मपाल जी स्वय चक्की चलाकर हल्दी पीसते और बेचते। उनके परिश्रम और भाग्य ने ऐसा पलटा खाया कि वे निरन्तर समृद्धि की ऊचाइयां छूते चले गये। प्रभु कृपा से आज उनके पास जो है उसमे मे वे अब तक डेढ करोड़ रुपया दान कर चुके हैं। उनका एक नेत्र अस्पताल जो साढे तीन करोड रुपये की लागत से जनकपुरी नई दिल्ली में बन रहा है उन की उदारता एवं दानी स्वभाव का ज्वलन्त उदाहरण है। इस समय माता चन्नन देवी नेत्र चिकित्सालय जनकपुरी और सुभाषनगर आर्यसमाज में कार्यरत है। एक चलता फिरता अस्पताल स्कूल के छात्रों और ग्रामीण जनों की सेवा के लिए कार्य कर रहा है। उनके द्वारा इस समय पांच स्कूल दिल्ली के विभिन्न स्थानो पर चल रहे हैं। जो उनके तथा उनकी माता चन्नन देवी एवं पिता श्री महाशय चुन्नीलाल जी के नाम और महाशय धर्मपाल जी की धर्मपत्नी श्रीमती लीलावती के नाम पर चल रहे हैं। उन का कारोबार देश विदेश में फैला हुआ है।

महाशय धर्मपाल एम० डी० एच० के स्वत्वाधिकारी एवं आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली के प्रधान।

महाशय धर्मपाल अपने नाम के अनुसार धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं। वे शाकाहारी, नित्यप्रति यज्ञ हवन करने वाले, नित्यप्रति सत्संग का आनन्द लेने वाले, नित्यप्रति दान और सेवा, नित्य ईश्वर भक्ति करने वाले ईश्वर भक्त हैं। उनके जीवन की एक विशेषता है प्रभु भक्ति में मस्त होकर भजन गाने की। सन्ध्या, यज्ञ के पश्चात् वे सुध बुध बिसार कर प्रभु गीत गा गा कर आनन्द मगन हो जाते हैं। अपनी कम्पनी के कर्मचारियों को नित्य प्रति सुबह शाम सत्सग में बैठने के पैसे भी देते हैं। एक दिवस जब वे हवन सामग्री निर्माणशाला में प्रविष्ट हुए तो उन्होंने निर्मित हवन सामग्री में बीड़ी का टुकड़ा देखा। देखते ही उन्होंने सब कर्मचारी इकट्ठे किये और बोले जिस किसी ने भी यह टुकड़ा डाला है वह स्वय आकर अपना दोष स्वीकार करे। मैं सत्य कहने का दण्ड नहीं दूगा। दोषी व्यक्ति हाथ जोड़कर बाहर आकर बोला—महाशय जी मुझसे यह पाप हुआ है, महाशय बोले—भाई तू घबरा मत तूने सच कहा है, मैं तुम्हारे वेतन में वृद्धि करूंगा। यदि तू बीड़ी पीना छोड दे तो मुझे और भी ज्यादा खुशी होगी। उस व्यक्ति ने बीड़ी पीनी छोड़ दी। महाशय जी ने उसके वेतन मे और भी वृद्धि कर दी।

वैदिक धर्म के प्रचार के लिए उन्होंने एक वेद प्रचार मण्डल की भी स्थापना की है। जिसमें २० उपदेशक प्रचार कार्य कर रहे हैं महाशय जी का पूर्ण परिवार धार्मिक एवं याज्ञिक है यह और भी हर्ष की बात है। आर्यसन्देश परिवार की ओर से हम उन्हें हार्दिक बधाई देते हैं। प्रभु से उनके शतायु होने की मगल कामना करते हैं।

—यशपाल सुधांशु

याद फिर उसकी सँजोये रात यह...।

प्रेरणा जब सत्य शिव के शोध की—
थी, जगी वह रात आई बोध की,
मूलशंकर जागरण में रत हुआ—
कर न चिन्ता जननि के अनुरोध की।
रात गहराई कि सारे सो गये,
नींद मे वृद्ध युवा सब खो गये,
था चकित यह देख बालक और तब—
गूढ़ संशय-बीज मूषक बो गये।
कर रहे चूहे मलिन जिसको भला!
यह नही शिव और ही कोई बला;
चेतना से शून्य प्रस्तर खण्ड यह—
विश्व को किस भांति सकता है चला?
बाल-मन में अंकुरण सन्देह का—
ज्यो हुआ, कर त्याग वह निज गेह का—
बन परिव्राजक गया धुन का धनी—
लक्ष्य पाने के लिए नर-देह का।
और तब स्वामी दया आनन्द का—
पान कर सम्पूर्ण श्रुति-मकरन्द का—
बांटने आलोक वेदो का लगा,
तोड़ बन्धन अध्ययन-प्रतिबन्ध का।
उस समय परतन्त्र यद्यपि देश था,
व्याप्त था अविवेक, भ्रम था, क्लेश था,
सोच उसने दी प्रथम स्वातन्त्र्य की—
था मनुज या मूर्त्त शोचिष्केश था।
याद फिर उसकी सँजोये रात यह,
कह रही संकेत से फिर बात यह,
दे गया निज प्राण वह जिसके लिए—
वेद का विकसित रहे जल-जात यह।

× × ×

वेद-वारिधि-मन्थनाल्लब्धाऽमृतः,
वाग्मिता-विद्वत्तयो पार गतः—
अद्य सर्वैरेव देशस्योन्नते—
र्नायकः प्रथमो दयानन्दो मतः।

—धर्मवीर शास्त्री
B I/३१, पश्चिम विहार
नई दिल्ली-६३

टंकारा में दो दिन

गजानन्द आर्य

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

महाराज मनु के इस श्लोक कोमहर्षि दयानन्द ने अपने ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश में पवित्र भूमि भारत की स्तुति में उद्धृत किया है। मेरे पास इतनी विद्वत्ता नहीं कि महर्षि दयानद जैसे अद्भुत महापुरुष को जन्म देने वाले गुजरात के उस छोटे से नगर टंकारा की स्तुति में ऐसा कुछ प्रस्तुत कर सकूं। पांच हजार वर्ष पूर्व जन्मे योगिराज कृष्ण की जन्मस्थली मथुरा वृन्दावन में आज भी भगवान कृष्ण की बाल लीलाओं को ताजा रखा जा रहा है। भले ही उन लीलाओं में अतिशयोक्ति है। अतिशयोक्ति का दोष इतिहासकारों ग्रंथकारों का है, मथुरा वृन्दावन भूमि का नहीं। संवेदनशील भक्त के लिए अपने प्रिय देवता का जन्म स्थान आकर्षण केन्द्र बन ही जाता है। भले ही वह अयोध्या की राम-भूमि हो, अथवा पाकिस्तान में बसा गया ननकाना साहब। आर्यसमाज जड़ पूजा का विरोधी है, इस आधार पर कुछ आर्यसमाजी किसी के जन्मस्थान को महत्त्व देने को भी जड़ पूजा को संज्ञा दे देते हैं। बाकी बचे आर्यसमाजियों को जिन्हें अपने को दयानन्दी कहलाने में आनंद की अनुभूति होती है, उनके लिए ऋषि का यह टंकारा नगर प्रेरणाप्रद स्थान है। इस प्रकार की भावना व संवेदनशीलता किसी के बनाये से बनती नहीं और मिटाये से मिटती नहीं। परिवार का एक सदस्य ऐसा होता है जिसको अपने बाप दादाओं के अर्थात् अपने पूर्वजों के निवास स्थान और उनके प्रयोग की वस्तुएं संग्रहणीय और रक्षणीय लगती हैं और दूसरा सदस्य ऐसा भी होता है जिनको व पुरानी चीज कबाड़खाने से अधिक नहीं लगती। कुछ दिन पहले की बात है कलकत्ता आर्यसमाज की शताब्दी समारोह पर एक प्रदर्शनी की व्यवस्था की गई थी, जिसमें ऋषि दयानन्द के वस्त्र, पादुकाएं एवम् उनके हस्तलिखित पत्र व पाण्डुलिपि आदि प्रदर्शित की गई थीं। प्रदर्शनी को कल्पद्रुम के यशस्वी लेखक पं० विशुद्धानन्द जी देख रहे थे तब लेखक भी उनके साथ था। अपने प्रिय ऋषि की उन वस्तुओं को देखकर सचमुच में उस विद्वान् पंडित की आंखों से अश्रुधारा बह निकली। मैं भी उस समय विह्वल हो गया। मेरा यह विह्वल हो जाना कोई नई बात नहीं है। ऋषि के जीवन की घटनाओं और ऋषि के पत्र विज्ञापन आदि पढ़ते हुए बहुधा विह्वल हो जाता हूं। ऋषि द्वारा लिखित ग्रंथ और पूना में किए गए प्रवचनों में इतनी तन्मयता हो जाती है। मैंने लम्बी यात्राएं इन्हीं ग्रंथों में खोकर पूरी की हैं।

इस प्रकार की भावना से ऋषि का स्मारक टंकारा देख आने की उत्सुकता बहुत वर्षों से थी। इस वर्ष वि० सं० २०४२ की शिवरात्रि को जो कि हम आर्यों के लिए बोधरात्रि बन गई है, के अवसर पर पत्नी सहित टंकारा पहुंचने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। राजकोट से हम लोग कार द्वारा टंकारा के लिए चले। लगभग ० किलोमीटर लम्बे रास्ते के मील पत्थरों पर केवल टंकारा की दूरी अंकित मिलती जा रही थी, इससे ऐसा प्रतीत होता था कि गुजरात सरकार ने टंकारा को एक प्रमुख स्थान मान लिया है। टंकारा की प्रमुखता सरकारी क्षेत्र में सब से अधिक बढ़ गई, जब भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को स्व० श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री टंकारा लाये थे और श्रीमती इन्दिरा गांधी बड़ी श्रद्धा से वहां के अग्निहोत्र में सम्मिलित हुई थीं। चौधरी चरणसिंह अपने मन्त्रीत्वकाल में विशेष रूप से टंकारा आए थे। टंकारा ग्राम में जब हम पहुंचे तब जगह-जगह ओ३म् की झंडियों से और दूर-दूर प्रदेशों से आई हुई बसों के ठहराव से वहां के वातावरण में चहल-पहल लगी। मोरवी राज्य के भूतपूर्व राजा का महल टंकारा में बरसाती नदी के किनारे पर अवस्थित देखकर यह समझ पाना बड़ा सरल था कि यह नगर एक सौ वर्ष पूर्व अवश्य ही सम्पन्न नगर रहा होगा। इसी राजप्रासाद को लगभग २० वर्ष पूर्व गुजरात के सेठ श्री नानजी कालीदास ने राजघराने से खरीदकर दयानन्द प्रासाद के रूप में आर्य जगत् को समर्पित करके टंकारा के महत्त्व को उजागर कर दिया। तत्कालीन बनाया गया महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट अब उसका विधिवत् स्वामी है और यही ट्रस्ट टंकारा के प्रबन्ध और विकास के लिए प्रयत्नशील है। ट्रस्ट के प्रथम ट्रस्टियों में मेहता गण्डाराम जी की सेवाएं अपूर्व हैं। उनके दिवंगत हो जाने पर उनकी धर्मपत्नी अपना कर्तव्य मानकर ट्रस्ट के कामों में लगी हैं। बहिन स्नेहलता हांडा का उत्साह प्रशंसनीय है। वैसे श्री ओंकारनाथ जी बम्बई, श्री रामनाथ जी सहगल, दिल्ली और आर्यभिक्षु जी का पुरुषार्थ सर्वत्र देखने को मिलता है। पानीपत के उत्साही कार्यकर्ताओं ने टंकारा को विकसित करने का संकल्प ले लिया हो ऐसा लगता था। ट्रस्ट के संयोजन में ७ मार्च से ६ मार्च को लगने वाले ऋषि मेले के अवसर पर हम भी दयानन्द प्रासाद में पहुंच गये। गुजरात के गुरुकुलों के ब्रह्मचारियों द्वारा व्यायाम व आसन प्रदर्शन लोग बड़े चाव से देख रहे थे। श्री रामनाथ जी सहगल हमें देखकर बीच में उठकर आये और हमें ठहराने की व्यवस्था बताने लगे। हमें राजकोट के होटल ई० टी० ओ० की व्यवस्था में ठहरा जानकर उन्होंने सन्तोष व्यक्त किया। थोड़ी देर बाद यज्ञशाला में एक सप्ताह से चले आ रहे यजुर्वेदपारायण के पंच कुंडीय यज्ञ में हम को यजमान के रूप में बैठा दिया गया। यज्ञ के ब्रह्मा देहरादून आश्रम के महात्मा दयानन्द जी थे। सायकालीन इस यज्ञ की समाप्ति तक यजुर्वेद के ३९ अध्याय समाप्त हो चुके थे। समाप्ति पर महात्मा जी ने कल बोधदिवस पर पूर्णाहुति के अवसर पर यज्ञ में बने हुए समस्त यजमानों को विशेष रूप से उपस्थित होने का आदेश दिया। इसी बीच हम लोग ऋषि लंगर का स्थान जहां पर आर्यसमाज भुज के कार्यकर्ताओं द्वारा दिन-रात जुटकर संचालित किया जा रहा था, देख आये थे। दयानन्द प्रासाद के दो कमरों में लगी दयानन्द चित्रावली भी हम देख चुके थे। यज्ञ समाप्ति पर ऋषि के जन्म गृह का एक हिस्सा और गांव के बाहर वाला दयानन्द बोधरात्रि का वह शिव-मन्दिर भी हम देख आए। प्रासाद में लगे विभिन्न स्टालों की चहल-पहल अच्छी लग रही थी। देश के कोने-कोने से विशेषकर गुजरात से आए स्त्री-पुरुषों व युवकों की टोलियां अपनी-अपनी मस्ती से ऋषि गुणगान करते बहुत अच्छी लग रही थीं। श्रद्धालु आर्यों को जमीन पर अपने बिस्तर लगाए देखकर बड़ी आत्मीयता की तो अनुभूति होती थी। बड़े मेलों का यह एक छोटा संस्करण था, इस मेले की विशेषता थी कि कहीं कोई धूम्रपान-सुरापान और अश्लील हरकतों का नाम नहीं था। नमस्ते और ओ३म् झंडियों का बोलबाला था। बाहर से आ रही स्पेशल बसें ऋषि के जयकारों के साथ महल में प्रवेश कर रही थीं। तारीख ९ मार्च ऋषि के प्रति श्रद्धांजलि का एक विशेष दिवस था। प्रभात फेरी से कार्यक्रम आरम्भ हुआ, यद्यपि हम तब तक राजकोट में पहुंच नहीं सके थे। यज्ञ की पूर्णाहुति का कार्य समाप्त होते ही ध्वजारोहण का कार्यक्रम था जिसकी औपचारिकता श्री सहगल जी ने मेरे ऊपर डाल दी थी। महल के प्रांगण में ध्वज दण्ड पक्का बनाकर रखा हुआ है। समस्त उपस्थित जनों के बीच श्री सहगल जी और आर्यभिक्षु जी ने मेरा परिचय बहुत कुछ अतिशयोक्ति के साथ दिया। फूलमालाओं से मुझे लाद दिया गया। झंडोत्तोलन के पश्चात् मैंने कुछ इस प्रकार के वाक्य कहे :—

'आज का ध्वजारोहण कोई विजययात्रा अभियान के विशेष समारोह आरम्भ का संकेत नहीं है, बल्कि १४० वर्ष पूर्व २२ वर्षीय वह युवक जिस उद्देश्य के लिए इस गांव से भागा था और जिसने अपने पवित्र उद्देश्य के लिए पूरे जीवन संघर्ष किया था उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ईमानदारी और सच्चाई से लगे रहने की यह दयानन्द की पताका के नीचे उन्हीं के जन्म स्थान में इकट्ठे होकर एक संकल्प का निर्वाह है। खेलों में जिस प्रकार एक खिलाड़ी से खेल भावना का संकल्प दुहराया जाता है, कुछ इसी प्रकार की परिपाटी का अनुभव मैं आज इस ध्वज के नीचे कर रहा हूं। महाभारत युद्ध में कृष्ण की समस्त सेना कौरवों के साथ होने पर भी पाण्डवों के पक्ष के कृष्ण को परास्त नहीं कर सकी। कुछ इसी प्रकार की स्थिति हम दयानन्द के सैनिकों की है। ईश्वर करे फिर से दयानन्द हमें मिल जायें।

ध्वजारोहण के पश्चात् नगर कीर्तन अथवा शोभायात्रा आरम्भ हुई। स्थान-स्थान से आये आर्य नर-नारी व गुरुकुल व स्कूलों के बच्चे पंक्तिबद्ध होकर गांव की कच्ची व ऊबड़ खाबड़ गलियों से गुजर रहे थे, तब ऋषि के बचपन की कल्पना अनायास ही मस्तिष्क में घूमती थी। माताओं बहिनों के भोले भाले चेहरे मूलशंकर के परिवार की याद दिला रहे थे। लोग कहते है कि टंकारा में ऋषि के परिवार का नाम लेवा और पानी देवा कोई नहीं रहा, पर मुझे लग रहा था कि पूरा गांव ऋषि के नाम से गौरवान्वित है। टंकारा वासियों का जलूस के साथ नारे लगाना, प्रत्येक घर की महिलाओं द्वारा जुलूस की भीड़ को ठंडा-ठंडा पानी पिलाना एवं अपने घरों में दयानन्द का चित्र अथवा ओ३म् की झंडी लगाना बह जता रहा था कि टंकारा ने मूलशंकर को पूरे हृदय से अपना लिया है। सैकड़ों लोगों का वह जुलूस बड़ी मस्ती से ऋषि का गुणगान करता हुआ गांव की परिक्रमा कर रहा था। यह परिक्रमा दयानन्द प्रासाद से आरम्भ होकर आर्यसमाज टंकारा और ऋषि जन्म गृह से गुजरती हुई उसी शिव मन्दिर के पास से होकर वापस प्रासाद में लौटी, जो शिवमन्दिर ऐतिहासिक शिवमन्दिर अर्थात् कल्याणकारी बन गया था। उस दिन के जुलूस की प्रसन्नता देखते ही बनती थी। सबसे सुखद दृश्य यह था कि अधिकांश नारेबाजी और ऋषि गुणगान गुजरात निवासियों की ओर से हो रहा था। जुलूस के बाद एक कार्यक्रम डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी की ओर से था, जिसके लिए प्रो० वेदव्यास जी, श्री दरबारी लाल जी और प्रि० टी० आर० गुप्ता विशेष रूप से दिल्ली से पधारे थे। मैं इस में उपस्थित नहीं रह सका किन्तु महत्त्वपूर्ण निर्णय जो था वो टंकारा में डी० ए० वी० माडल स्कूल की स्थापना का निश्चय करना था। रात को श्रद्धांजलि सभा का आयोजन व्यवस्थित न होते हुए भी भावनाओं से

टंकारा में दो दिन

ओतप्रोत था।

टंकारा की व्यवस्था का भार महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट ने संभाला हुआ है, जिसके अन्तर्गत उपदेशक विद्यालय और गोशाला है। इस बार इन दोनों संस्थाओं को देखने का सुयोग नहीं मिला। टंकारा में पानी का बहुत अभाव देखा। दो वर्षों की अनावृष्टि से सब कुछ सूख गया है। बरसाती नदी सूखी पड़ी है। पानी बहुत गहराई में मिलने के बाद भी मीठा निकल आएगा, यह सन्देह ही बना रहता है। इस ओर भी ट्रस्ट के अधिकारियों और विशेष कर पानीपत आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं का ध्यान है। इनकी योजना कुछ दूरी से मिल सकने वाले पानी को पाइपों से पहुंचा कर ऋषि प्रासाद और फिर पूरे गांव को जल सुविधा प्रदान करना है। टंकारा में दो स्थान सुरक्षित रखने आवश्यक हैं। जिनके आधार पर आर्यों को टंकारा प्रेरित करता है। यह स्थान शिवालय है, जहाँ शिवरात्रि की रात्रि को बालक मूलशंकर ने रातजगा में शिवलिंग पर चूहों का उत्पात देखकर शिव के अस्तित्व पर बहुत बड़ा प्रश्न चिह्न लगाकर वह बीच में घर वापस लौट आया था। गांव से बाहर अवस्थित वह मन्दिर उपेक्षित अवस्था में है। स्मारक के रूप में आर्यसमाज को उस मन्दिर की देखभाल करनी चाहिए। यदि पौराणिक वर्ग उसको सभालता है तो उन को आर्यसमाज की ओर से आर्थिक सहायता दी जा सकती है। हिन्दुत्व की रक्षा के लिए आर्यसमाज मन्दिर शिवालयों की रक्षार्थ यदि बलिदान हो सकता है, तब ऋषि के जीवन को नया मोड़ देने वाली उस घटना को जीवित रखना भी मूर्ति-पूजा के खण्डन की एक जीती जागती निशानी है। वह निशानी उस मन्दिर के रख रखाव में निहित है।

दूसरा स्थान महर्षि का जन्म गृह है। महर्षि के बलिदान के पश्चात् इतिहासकारों ने टकारा को ढूंढा और टंकारा में ऋषि के उस घर को भी ढूंढ लिया था। वह घर अब दो भागों में बंटा हुआ है। अंग्रेजी के अक्षर एल की आकृति में उस मकान के नीचे वाला स्थान आर्यसमाज ने खरीदकर उसे एक अच्छा रूप दे दिया है। इसमें पुराने समय के दो कमरों की दीवार और छत अपना इतिहास बनाये हुए हैं। नीचे का फर्श और बाहर का आंगन बदल दिया गया है। आंगन में एक छोटी-सी यज्ञशाला बनाई गई है। इस हिस्से का प्रवेश संकरी गली से गुजरने से होता है, सकरी गली को पक्का बना दिया गया है। उस गली का नाम दयानन्द शेरी प्रसिद्ध किया जा रहा है। मकान का बड़ा भाग जिसका प्रवेश गांव की चौड़ी गली पर है, वह एक लोहाणा परिवार (जो कि वैष्णव हैं) के अधिकार में है। लोहाणा परिवार ने उस मकान को अच्छा बनाया हुआ है, पक्के मकान में एक कोठरी पुरानी अवस्था में रख छोड़ी है, जिसके लिए कहा जाता है कि इस कोठरी में बालक मूलशंकर का जन्म हुआ था। वह कोठरी दर्शकों के लिए खोल दी जाती है। स्वामी जी का चित्र और हवन कुण्ड वहाँ रखा हुआ है। जो परिवार उसमें निवास करता है वह उस मकान का मालिक नहीं है। मकान मालिक ने उस परिवार को रखरखाव के लिए बसाया हुआ है। मकान मालिक का परिवार राजकोट और बंबई में रहता है। इसी परिवार के श्री नटवर लाल भामर से मेरी भेंट हुई। मैंने उनसे निवेदन किया कि आप इतने सम्पन्न हैं, टंकारा में आप लोग रहते भी नहीं, अतः अपने मकान को आर्यसमाज को दे दीजिए। आर्यसमाजियों की भावनाएं इस मकान से जुड़ी हुई हैं। आर्यसमाज के कारण टकारा ग्राम का विकास और प्रसिद्धि बहुत बढ़ने की सम्भावना है। मेरे निवेदन के उत्तर में श्री नटवर लाल ने कहा कि आप जो कह रहे हैं यही बात स्व० श्री प्रकाशवीर शास्त्री ने, जो श्रीमती इंदिरा गांधी (भूतपूर्व प्रधानमन्त्री) को लेकर टंकारा आए थे, उस समय मेरे से कही थीं। मेरा एक ही उत्तर है कि जिस प्रकार आर्यों की भावना इस मकान से जुड़ी हैं उसी प्रकार हमारे परिवार की भावना इस कोठरी के साथ बंधी हुई हैं। हमने जब से इस मकान को खरीदा है, हमारी बहुत उन्नति हुई है। यह मकान हमारे बापदादाओं की अमानत और समृद्धि का द्योतक है। इसके रखरखाव में हमें खर्च ही करना पड़ता है किन्तु इसको छोड़ने की बात सोच नहीं सकते। आर्यसमाजी जब भी मकान में आयें, अपना अग्निहोत्र करें उनका सदैव स्वागत है। समाज को सहयोग देने की हमारी इच्छा है पर पूर्वजों की इस सम्पत्ति को छोड़ने की बात मत कीजिए। श्री नटवर लाल के इस स्पष्टीकरण के पश्चात् भी मेरा आग्रह समाप्त नहीं हुआ। नटवर लाल ने अपने राजकोट का पता व फोन नम्बर लिखकर दिया है।

अन्त में आर्यसमाज को उनके पुरुषार्थ पर धन्यवाद देना चाहता हूं कि जिन के कारण टकारा में ऋषि मेले की परंपरा आरम्भ हो गई। यह आर्यों को बिना बुलावे इकट्ठे होने का निश्चित स्थान और निश्चित तिथि बन गया है। पूरे भारत की आर्य सामाजिक छवि का दिग्दर्शन वहां होने की सम्भावना है। मेलों और सम्मेलनों में यह बड़ा अन्तर है कि सम्मेलनों में बड़े लोग बिना बुलाए नहीं जाते और मेलों में विशेष निमन्त्रित कोई होते नहीं। ईश्वर करे हमारा टकारा मेला और अजमेर मेला एक अच्छी परम्परा का द्योतक बन जाए।

ओ जाग आर्य गौरव-निधान !

जगती की गति-विधि देख नयी,
कवि करने आया सावधान!
क्यों गहरी निद्रा में सोया ?
ओ जाग, आर्य गौरव-निधान!

तू ही श्रम-बल से सर्वप्रथम,
संसृति में लाया नव प्रभात,
तू ने ही सदा प्रभावित की,
मंजुल मंगल मय मलय वात,
जो थे असभ्य कान्तार-व्यक्ति,
उनको तूने कर दिया सभ्य,
जो दलित पतित था भ्रांति भरा,
जग वही ज्ञान दे किया भव्य;

पर स्वयं बना क्यों दलित पतित?
इस पर देना फिर तुझे ध्यान!
क्यों गहरी निद्रा में सोया?
ओ जाग, आर्य गौरव निधान?

'वसुधा कुटुम्ब है' कहकर के,
तू ने की जग पर सुधा-वृष्टि,
नीचों का छल-बल नष्ट हुआ,
तेरी लख किंचित् कुटिल दृष्टि,
रह द्वेष दोष से सदा दूर,
कर दिया विश्व अभिमान-हीन
तेरे द्वारा सम्मान-प्राप्त
हो गये प्राप्त, निष्प्राण-दीन

पर, स्वयं कलह का केन्द्र बना,
किसलिए खो रहा स्वाभिमान?
क्यों गहरी निद्रा में सोया?
ओ जाग, आर्य गौरव-निधान?

शक, हूण प्रभृति परकीय वर्ग,
कर लिये कभी सब आत्मसात्
सारे जग-तल के मानस की
नफरत कर डाली भस्मसात्
पर, आज बंधुओं से अपने
तू हाथ मिलाते क्यों डरता?
उन्नति भाई की ही लख कर
घर में जल-जलकर क्यों मरता?

बन कर ढोंगी, आदर्श भूल,
क्यों भुला रहा सम्मान-ज्ञान
क्यों गहरी निद्रा में सोया?
ओ जाग, आर्य गौरव-निधान!!

बहिनों का भाल-सिंदूर पोंछ
सुत-हीन बना कर माताएँ,
सज्जनों को कर सिद्ध रहा,
हैं कौन आज फिर अबलाएँ?
करता है अत्याचार कौन?
करता है दुर्व्यवहार कौन?
क्या शत्रु नहीं—कुछ सोच, समझ,
कर रहा घृणित व्यापार कौन?

तू ही इन सब का हो दोषी,
करता मुख-मंडल स्वयं म्लान!
क्यों गहरी निद्रा में सोया?
ओ जाग, आर्य गौरव-निधान!!

तू ने भारत को बंटा दिया,
तू ने अपने को लुटा दिया,
कश्मीर छांटने का साधन
तू ने ही तो है जुटा दिया
तू ने दीनों-विधवाओं के
रोके न प्रवाहित रक्त-बूंद,
है स्वयं चाहता मिट जाना,
अपने पांवों को खाद-खूंद,

'हिन्दू धर्म साम्प्रदायिक है!'
तेरा ही नारा जड़ महान्!
क्यों गहरी निद्रा में सोया?
ओ जाग आर्य गौरव-निधान!!

अपनी भाषा पर लड़ जाना
अपना हित अनहित कर जाना,
तुझको है विघटन-पतन भला,
भाता श्वानों सा बन जाना,
तू ही अपने सहयोगी हित
जय चंद चाहता हो जाना,

तू ही अपने को दे धोखा,
क्यों स्वयं चाहता खो जाना?

निज नयन खोल, कुछ सोच-परख
कर स्वत्वों का तो तनिक ध्यान!
क्यों गहरी निद्रा में सोया?
ओ जाग, आर्य गौरव-निधान!!

है बालि द्वीप की यह पुकार
चंपा-जावा कर बार-बार,
बोर्नियो-सुमात्रा आज लखें,
सहमे-से लोचन फाड़-फाड़,
कह रहा श्याम-कंबोज आज
करता पुकार फिर ब्रह्म देश,
कहता श्री लंका-अफरीका
'सुन ले, सुन ले, ओ आर्य-वेश!'

कर पुनः संघटित हम सब को
हम सभी चाहते पूर्व शान!
क्यों गहरी निद्रा में सोया?
ओ जाग, आर्य गौरव-निधान!!

इसलिए भुलाकर भेद-भाव,
हो पुन शक्तिमय एक बार,
शिक्षित-उन्नत बन विश्व-मध्य,
गिरती संसृति को फिर उभार,
खल जयचन्दों को रौंद-कुचल,
कर शांति-धर्म कर महोच्चार,

बस 'रक्तावत!' भीषण निनाद
कर आज निनादित एक बार,

कर ले अतीत का समय याद,
गा नया अमर चिर क्रांति-गान!
क्यों गहरी निद्रा में सोया?
ओ जाग, आर्य गौरव-निधान!!

—भैरवदत्त शुक्ल

आर्यसमाज गांधीनगर में वेदकथा

आर्यसमाज मन्दिर में २४ मार्च से २९ मार्च तक रात्रि ८ बजे से १० बजे श्री पं० यशपाल सुधांशु एम० ए० द्वारा वेदकथा प्रारम्भ है जिसमें क्षेत्र के धार्मिक नर-नारी श्रद्धा से भाग ले रहे हैं।

मन्त्री
श्यामसुन्दर विरमानी

समाचार सन्देश

आर्यसमाज हनुमान रोड, नई दिल्ली के विशेष आयोजन

इस आर्यसमाज द्वारा निम्न आयोजन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुए।

(क) गत २७-२८ फरवरी १९८६ को आर्यसमाज हनुमान रोड से सम्बद्ध रघुमल आर्य कन्या वरिष्ठ माध्यमिक स्कूल राजा बाजार में दो दिन "वैदिक सिद्धांत प्रशिक्षण शिविर" का आयोजन श्री विद्यारतन जी अवकाश प्राप्त प्रिंसिपल के सहयोग से किया गया। शिविर का उद्घाटन पूज्य स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती द्वारा २७-२-८६ को किया गया एव २८-२-८६ को समापन दिल्ली शिक्षा विभाग के कार्यकारी पार्षद श्री कुलानन्द जी भारती द्वारा सम्पन्न हुआ। प्रशिक्षणार्थ सर्वश्री शिवकुमार जी शास्त्री, विद्यारतन जी, शिवराज सिंह शास्त्री, डा० रूप किशोर शास्त्री, आचार्य भगवान देव योगाचार्य, क्षितीश कुमार वेदालंकार इत्यादि आर्य जगत के प्रसिद्ध विद्वान पधारे। मान्य भारती जी ने कार्यक्रम की बहुत सराहना की और इस कार्यक्रम को अन्य स्कूलों में भी करवाने की प्रेरणा दी। इस शिविर में ८५ अध्यापिकाओं एवं १०० ग्यारहवीं कक्षा की छात्राओं ने प्रशिक्षण प्राप्त किया।

गत मास में आर्यसमाज मन्दिर में २८ विवाह संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से साधारण रस्म के अनुसार किए गए। इन में १२ विवाह अन्तर्जातीय एवं अन्तर्राज्यीय थे। दो जर्मन परिवारों, दो मुस्लिम एव ४ ईसाइयो की शुद्धि की गई।

भवदीय
के० एस० भाटिया
मन्त्री

दर्शनशास्त्र की शिक्षा हेतु शुभ संकल्प

आर्यसमाज पंखा रोड सी ब्लाक जनकपुरी में स्वामी सत्यपति जी द्वारा चुने गए १० ब्रह्मचारियों ने दर्शन ग्रंथों की शिक्षा हेतु दो वर्ष के लिए पवित्र सकल्प लिया है। इन विद्यार्थियों के स्वागत के लिए तथा विद्वानों द्वारा आशीर्वाद के लिए ३० मार्च को प्रातः ८ बजे से इस आर्यसमाज में समारोह का आयोजन किया गया है। इसमें महात्मा दयानंद, स्वामी विद्यानंद, स्वामी सत्यपति आदि सन्यासी एवं विद्वान अपना प्रवचन एवं आशीर्वाद प्रदान करेंगे। यह विद्यार्थी मण्डल १० अप्रैल आर्यसमाज स्थापना दिवस से गुजरात में अपना शिक्षा एव अध्ययन कार्य प्रारम्भ करेगा।

महेन्द्रपाल सिंह आर्य
मन्त्री

आर्यसमाज मोती बाग साउथ में बोधोत्सव

दक्षिण दिल्ली वेद प्रचार मण्डल के तत्त्वावधान मे आर्यसमाज मोती बाग साउथ मे २३ मार्च को स्वामी दीक्षानंद की अध्यक्षता मे ऋषि-बोधोत्सव का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर श्री स्वामी दीक्षानन्द, श्री सूर्यदेव, श्री डा० धर्मपाल, डा० महेश, श्री वेदप्रकाश श्रोत्रिय आदि महानुभावों ने अपने ओजस्वी विचारों से जनता का मार्गदर्शन किया।

रामसरनदास आर्य

आर्यसमाज तिजारा का निर्वाचन

दिनांक ७-३-८६ को आर्यसमाज तिजारा की नव कार्यकारिणी का चुनाव निम्नानुसार हुआ—

प्रधान : मामराज आर्य
मन्त्री : बिशनदास आर्य
प्रचारमंत्री : डा० मन्नालाल
कोषाध्यक्ष : मंगतूराम

मंत्री
आर्यसमाज तिजारा, अलवर

वार्षिक निर्वाचन

नगर आर्यसमाज, साहबगंज की साधारण सभा की बैठक श्री चन्द्रजीत तरनवाल सर्राफ के निवास स्थान मुहल्ला बसन्तपुर पर श्री देवीलाल आर्य प्रधान की अध्यक्षता में अपराह्न ४ बजे दिनांक ४ मार्च मंगलवार को हुई। जिसमें निम्नलिखित व्यक्ति निम्न पदों पर निर्वाचित हुए—

श्री देवीलाल आर्य : प्रधान
रमेश प्रसाद गुप्त : महामन्त्री
यशोदानन्द केशरवानी : कोषाध्यक्ष
ठाकुर देवी जी : प्रचार मन्त्री
प० द्विजराज शर्मा : धर्माधिकारी एवं पुरोहित

इसके अतिरिक्त ग्यारह व्यक्तियों की कार्यकारिणी समिति का गठन किया गया।

भवदीय
रमेशप्रसाद गुप्त
महामंत्री

महर्षि दयानन्द बोधदिवस एवं शिवरात्रि पर्व

आर्यसमाज मन्दिर शिवाजी चौक में दयानन्द बोध दिवस एवं शिवरात्रि पर्व समारोह मनाया गया। पर्व पद्धति अनुसार बृहद यज्ञ, सन्ध्या प्रार्थना के पश्चात् पर्व पद्धति का लेख सेठ नारायण सहायजी ने पढ़कर सुनाया। तत्पश्चात् महर्षि दयानन्द के जीवन चरित्र पर, दयानन्द से पूर्व भारत की अवनति एवं वेदोद्धारक दयानंद, धर्मोद्धारक दयानन्द राष्ट्रवादी दयानन्द आदि विषयों पर श्री बाबूलाल जी आर्य आनंद विदिशा, श्री रामचन्द्र जी आर्य प्रधान आर्यसमाज खण्डवा, श्री कैलाशचन्द्र जी पालीवाल, मंत्री श्री लक्ष्मी नारायण जी भार्गव, श्री राजेन्द्र आर्य उज्जैन एवं श्री अनिल कुमार सभा के प्रचारक आर्य वीर दल आदि के सारगर्भित ओजस्वी भाषण हुए। अन्त में श्री भार्गव जी ने सब का आभार प्रदर्शन किया।

मंत्री
आर्यसमाज खण्डवा

सूचना

जिला आर्योपप्रतिनिधि सभा गोरखपुर की अन्तरंग सभा की बैठक दिनांक १६ मार्च १९८६ को अपराह्न २ बजे प्रधान कार्यालय गिरधारी लाल स्मारक भवन, चौरीचौरा में सभा के अध्यक्ष प० द्विजराज शर्मा जी की अध्यक्षता में हुई। जिस में जिले की अनेक आर्यसमाजों के अधिकारियों एवं प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

सर्वसम्मति से जिला का वार्षिक अधिवेशन पिपराइच आर्यसमाज में उसके वार्षिकोत्सव पर दिनांक ३० मार्च १९८६ को १ बजे दिन को करने का निश्चय किया गया।

अन्त में डा० विनयप्रकाश पुत्र श्री सूर्य देव प्राणाचार्य द्वारा आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं को धमकी दिए जाने एव आर्यसमाज की छवि धूमिल किए जाने की घोर निंदा की गई।

भवदीय
रमेश प्रसाद गुप्त
कोषाध्यक्ष

उपदेशक ध्यान दें

आर्यसमाज बोट क्लब दोपहर १ बजे से २ बजे तक दैनिक सत्सग में ३१ मार्च से २ मई १९८६ के लिए निम्न उपदेशक महानुभावों का कार्यक्रम बनाया गया है। निवेदन है कि नीचे दिए गए कार्यक्रम के अनुसार ठीक समय पर पहुंचने का ध्यान रखा जाए।

३१ मार्च से ४ अप्रैल : महात्मा राम किशोर वैद्य; ७ अप्रैल से ११ अप्रैल : पं० वेदव्यास जी आर्य; १४ अप्रैल से १८ अप्रैल पं० सत्यदेव जी स्नातक, २१ अप्रैल से २५ अप्रैल : प० चुन्नीलाल आर्य २८ अप्रैल से २ मई : आचार्य हरिदेव सि० भू०।

डा० धर्मपाल (महामन्त्री) स्वा. स्वरूपानन्द सरस्वती (अधिष्ठाता वेदप्रचार)

व्यास आश्रम हरिद्वार में सामवेद पारायण यज्ञ

इस आश्रम के ३१वें वार्षिकोत्सव पर १ अप्रैल से ५ अप्रैल तक श्री म० दयानन्द जी की अध्यक्षता में योग साधना शिविर का आयोजन किया गया। इस अवसर पर सामवेद यज्ञ के ब्रह्मा श्री रामप्रसाद वेदालंकार होंगे। डा० जयदेव, स्वामी ओमानन्द, स्वामी सर्वानन्द, स्वामी सुमेधानन्द आदि सन्यासी विद्वानों के प्रवचन होंगे।

मन्त्री
विजय कुमार
योगी फार्मेसी, कनखल

आर्यसमाज नया बांस का वार्षिकोत्सव

इस आर्यसमाज का ६५वां वार्षिकोत्सव ४ अप्रैल से ६ अप्रैल १९८६ तक समारोहपूर्वक मनाया जा रहा है। जिसमें श्री राजेन्द्र जिज्ञासु, प्रो० रतनसिंह, आचार्य विशुद्धानंद, प्रो० विश्वबंधु आदि पधार रहे हैं। उत्सव से पूर्व २८ मार्च से ३ अप्रैल तक प० शिवकुमार शास्त्री द्वारा रात्रि ८.४५ से ९.४५ तक वेदकथा होगी।

शिवकुमार
मंत्री

स्मृतियों में उतरता आदर्श पुरुष—

गणेशदास अग्निहोत्री

जियो तो ऐसे जियो—

- यज्ञ जीवित तो मैं भी जीवित, यज्ञ मृत तो मैं भी मृत।
- यज्ञ मेरे आगे-आगे और मैं उसके पीछे-पीछे।
- यदि वक्त की कदर नहीं कर सकते तो अपनी-अपनी घड़ियाँ उतार कर रख दो।
- जो एक पैसे की कदर करना नहीं जानता वह रुपये की कदर भी नहीं कर सकता।
- जितना बीजोगे उतना काटोगे। और ज्यादा से ज्यादा बीजो।
- मुझे आलसी व्यक्ति बिल्कुल पसंद नहीं।

ये उद्गार स्वर्गीय गणेशदास अग्निहोत्री द्वारा अभिव्यक्त किए जाते रहे हैं।

८३ वर्ष की आयु में उन्होंने देह परित्याग किया। उनकी अंतिम यात्रा में अपार जन-समूह था। साधु-संत, महात्मा-पंडित, ज्ञानी-ध्यानी और न जाने कौन-कौन ! परिचित-अपरिचित, बच्चे-बूढ़े सभी हाथ जोड़े खड़े थे। कोई भी आंख ऐसी नहीं थी जो गीली न हो। और मेरे सामने···।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय···।
ऐसी करनी कर मना,
तू हसे जग रोय।

चौथी जमात तक स्कूली शिक्षा ग्रहण करने वाले इस हृदय में ऐसी कौन-सी बात होगी कि हजारों हाथ अंतिम विदा देने के लिए इनके पाँवों की ओर बढ़ जाते हैं। शायद इनकी प्रज्ञादृष्टि, जिह्वा पर प्रतिष्ठित होती सरस्वती जो जीवन की पोथियों को पढ़ना जानती है। बुद्धि की तीव्रता इतनी कि आप पचास वस्तुओं की कीमतें बताते चले जाइए केलकूलेटर का जोड़ भी पीछे छूट जाएगा। क्या मजाल कि एक पैसे का हिसाब इधर-उधर हो जाए।

अन्तिम घड़ी

सादा जीवन, उच्च विचार में विश्वास रखने वाला वह व्यक्ति अपनी अंतिम यात्रा के लिए जाने वाला है। घर में वार्षिक यज्ञ, साधु-महात्माओं की वाणी का उल्लास। शय्या पर लेटा रुग्ण गृहपति, वाणी में बेचैनी चेहरे पर उल्लास, कुछ कहने को जल्दी इतनी जल्दी कि कहीं गाड़ी न छूट जाए।

'मेरे पेट में दर्द है।'

'बेचैनी भी है।'

'जल्दी करो, मेरा वक्त बर्बाद मत करो। पांच सात मिनट में मुझे खाली कर दो। मुझे देर हो रही है।'

'कहीं जाना है क्या ?'

'हां बहुत दूर···जल्दी करो।'

और पुत्री बेचैन सी।

'अच्छा ! महात्मा जी को मेरा नमस्कार ! बलदेव जी को चरण वंदना। सबको नमस्कार कह देना। तुम भी मेरे लिए प्रार्थना करना।' पत्नी, पुत्री, पुत्र, पुत्र-वधू, नाती-नातिन, बहनोई, महात्मा, संत, पंडित, आचार्य, डाक्टर। सभी के गले रुंधे हैं आंखें भरी हैं। सब को मेरा नमस्कार सबको सद्बुद्धि दो। ओ३म् ओ३म्··· मुझे जाना है···कोई अन्तिम इच्छा, दान-पुण्य···यज्ञ ही मेरा इष्ट है···अच्छा सबको नमस्कार···ओ३म्···ओ३म्···। एक आर्तनाद ! आत्मा का परम आत्मा से मिलन ! एक ऐसे जीवन का अन्त जिसके प्रारम्भ में भी ओ३म् और अन्त में भी ओ३म्।

ये भी होली कोई होली है

प्यार की मिठास नहीं आस की सुवास नहीं,
दूर-दूर पास नहीं रोती रंगरोली है।
रंग का भी नाम नहीं चंग का भी काम नहीं,
ढंग है कुढंग आज आग बीच झोली है।
रंग में है कांच और कांच में तो सांच नहीं,
आग लग जाए ऐसी-ऐसी हाट खोली है।
होली में ठिठोली नहीं दुलहिनों को डोली नहीं,
सांच सांच बोलो ये भी होली कोई होली है ॥१॥

होली का मजा है तभी पाप जो किए वे कभी,
भूल जायें आज सभी राग और द्वेष को।
याद रहे होली सिर्फ रंग भरी झोली सिर्फ,
भूल जायें आज बस जोड़ भाग शेष को।
तन को भी भूल जायें मन को भी भूल जायें,
भूल जायें गांव प्रान्त देश परदेश को।
सांस के शिवालय में देह के देवालय में,
बसता जो कंस उसे मार दें हमेशा को ॥२॥

होली का वो रूप नहीं आज वो स्वरूप नहीं,
छांव है तो धूप नहीं दिल में न प्यार है।
फूल की जगह शूल डूब गये मस्तूल,
ढूंढती फिरे है फूल घायल बहार है।
रंग में मिला है खून प्यार को दिया है भून,
चढ़ा है जनून आज आत्मा बीमार है।
आदमी को आदमी न देखके है खुश आज,
प्रेम के तो नाम से ही चढ़ता बुखार है ॥३॥

साप का भरा है विष भारती को मारती जो,
ऐसी-वैसी गगरी को चौराहे पे फोड़ दो।
शूल हैं घृणा के उगे बगिया में आज खूब,
चुभने से पहले ही तेज नोक तोड़ दो।
छोड़ दो नशीले छन्द तोड़ दो घृणा के बन्द,
जिन्दगी में सुधा-सार आम सा निचोड़ दो।
भेद की जो खाइयाँ हैं पाट दो सभी ही आज,
टूट जो गया है तार आज फिर जोड़ दो ॥४॥

—सारस्वत मोहन 'मनीषी'

प्राध्यापक, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
डी०ए०वी० कालेज, अबोहर (पंजाब)

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन : ३१०१५० के लिए डा० धर्मपाल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा
वैदिक प्रेस, गली नं० १७; ... नगर, दिल्ली-३१ में मुद्रित। रजि० नं० डी० (सी०) ७५६

वर्ष १० : अंक २१ | रविवार, २० अप्रैल, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ | चैत्र २०४३ | दयानन्दाब्द—१६२

मूल्य एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश में ५० डालर, ३० पौंड

अतीत के झरोखे से

आर्यसमाज दीवान हाल की एक शती

देश के नैतिक पुनरुत्थान एवं राष्ट्रीय नवजागरण में युगप्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज की गौरवपूर्ण भूमिका रही है। देश की स्वतन्त्रता एवं हिन्दी रक्षा सत्याग्रह तथा अनेक समाजोत्थान के आंदोलनों का सूत्रधार, विश्वभर की आर्य संस्थाओं में प्रमुख आर्यसमाज दीवानहाल दिल्ली को स्थापित हुए एक शताब्दी हो चुकी है। इस सदी मे आर्यसमाज दीवानहाल दिल्ली ने स्वाधीनता संग्राम, सांस्कृतिक पुनरुत्थान, शैक्षणिक जागरण एवं समाज सुधार के अनेक प्रभावशाली चमत्कारिक कार्य किये है।

सन् १९१९ में जब जलियांवाला बाग अमृतसर में वीभत्स नरसंहार की शर्मनाक घटना से भारत भर मे अंग्रेज सरकार के प्रति क्षोभ व्याप्त हो गया था, तब क्षुब्ध जनमानस में व्याप्त भय के निवारण के लिए तथा रोलेट एक्ट के विरोध के लिए एवं महात्मा गांधी की गिरफ्तारी के विरोध में जननायक नरपुंगव आर्यसमाज के प्रहरी स्वामी श्रद्धानन्द के आह्वान पर एक जनसभा आर्यसमाज दीवान हाल की भूमि पर प्रारम्भ हुई जो बाद में एक जलूस की शक्ल में बदल गयी। यह ऐतिहासिक जलूस वीरता और रोमाञ्चकारी शब्दों में इतिहास के पृष्ठों पर अंकित है।

महर्षि दयानन्द ने महारानी विक्टोरिया के दिल्ली दरबार के समय दिल्ली प्रवास में आर्यसमाज देहली की स्थापना की थी। जो उनके द्वारा लिखित क्रान्तिकारी गुरु श्याम जी कृष्ण वर्मा को नाम पत्र से वर्णित है। प्रारम्भ में आर्यसमाज देहली अलीपुर रोड में एक कोठी में कार्यरत थी कुछ वर्ष पश्चात् यह आर्यसमाज चावड़ी बाजार में चलने लगी। १९३८ में प्रसिद्ध दानवीर श्री लाला दीवानचन्द द्वारा निर्मित भवन दीवान हाल में यह आर्यसमाज कार्य करने लगी।

अपने स्थापना काल से ही यह संस्था दिग्गज नेता एवं प्रबुद्ध व्यक्तियों के सदस्यता तथा सहयोग के कारण व जनसेवा के कारण ख्याति प्राप्त करती रही है। इससे सम्बद्ध व्यक्ति एवं सदस्य थे श्री स्वामी श्रद्धानन्द, प० इन्द्र विद्यावाचस्पति, श्री ला० देशबन्धु गुप्ता, ला० दीवान चन्द, श्री नारायण दत्त ठेकेदार, डा० युद्धवीर सिंह, ला० घनश्याम सिंह गुप्त, चौधरी देशराज आदि नेता जो देश के स्वाधीनता संग्राम एवं समाज सुधार के कार्यों मे अग्रणी रहे। यह भी उल्लेखनीय है कि स्वतन्त्रता संग्राम के संघर्षकाल में प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता समय समय पर इस आर्यसमाज में शरण लेते रहे और प्रेरणा प्राप्त करते रहे हैं।

स्वर्णिम अतीत और वर्तमान

आर्यसमाज देश की आजादी से पूर्व से लेकर अब तक अनेक राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याओं एवं चुनौतियों का मुकाबला करता रहा है। १९३९ में जब निजाम हैदराबाद स्टेट मे भारतीय संस्कृति पर कुठाराघात हो रहा था, तथा देश की एकता आजादी के उगते अंकुर पर आग डाली जा रही थी। बेकसूर लोगों पर अत्याचारों की भरमार हो रही थी। भय और आतंक के उस कराल दैत्य को ललकारने और झिंझोडने का संकल्प तब आर्यसमाज ने किया। ३० हजार सत्याग्रहियो के जेल भरने से और संघर्ष से निजाम हैदराबाद का ग्रह टूटा। भारत राष्ट्र में इस रियासत के विलय हो जाने पर लोह पुरुष सरदार पटेल ने कहा था—"अगर आर्यसमाज अपने आन्दोलन से भूमिका तैयार न करता तो हमारे लिए यह विलय करना अत्यधिक कठिन होता।

इस हैदराबाद सत्याग्रह का संचालक सूत्रधारक बनने का श्रेय आर्यसमाज दीवानहाल दिल्ली को है। देश आजाद होने तक आर्यसमाज दीवान हाल हर समय सहयोग स्वाधीनता के रण बांकुरो को देता रहा।

१९५६-५७ मे पंजाब हिन्दी रक्षा आन्दोलन चला। मातृभाषा की रक्षा के लिए इस आन्दोलन में ६० हजार सत्याग्रहियों ने भाग लिया। इसका सफल संचालन भी इस संस्था से ही हुआ। इसी प्रकार सिन्ध सत्याग्रह, गोरक्षा आंदोलन आदि अनेक आंदोलन इस संस्थान के द्वारा हुए या इसका भरपूर सहयोग रहा। भारत चीन युद्ध, भारत पाक युद्ध, भारत बंगला देश मुक्ति युद्ध आदि राष्ट्रीय समस्याओं के समय राष्ट्रीय सुरक्षा कोष मे प्रचुर धन से सहयोग दिया। बाढ पीडितो की मदद के लिए आर्यसमाज दीवान हाल लंगर, दवाई, शरण, वस्त्र आदि के द्वारा भरपूर सहयोग करता रहा है। सामाजिक कुरीतियो पर इस संस्थान की नजर पडे बिना

(शेष पृष्ठ ७ पर)

दिल्ली की समस्त आर्य संस्थायें बढ़-चढ़ कर भाग लें

विशाल शोभा यात्रा

२६ अप्रैल, शनिवार प्रातः १० बजे

स्थान—लाल किला मैदान पुरानी दिल्ली

आर्यसमाज दीवान हाल दिल्ली की शताब्दी के उपलक्ष्य में एक विशाल शोभा यात्रा २६ अप्रैल को प्रातः १० बजे से लाल किला मैदान से चांदनी चौक, नई सड़क, चावड़ी बाजार, हौज काजी होती हुई रामलीला मैदान में सम्पन्न होगी।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा की आवश्यक बैठक में प्रमुख निर्णय लिया गया है कि दिल्ली की समस्त आर्य समाजें एवं आर्य संस्थाये तथा आर्य नर नारी बढ-चढ कर इस शोभा यात्रा में भाग लें। सभा के महामन्त्री श्री डा० धर्मपाल ने आर्य जनता से अपील की है इस पुनीत अवसर पर तन मन धन से पूर्ण सहयोग करें। उन्होंने कहा है हमें इस शक्ति प्रदर्शन में आर्य समाज के अनुशासित, बलिष्ठ संगठन का परिचय देना चाहिए। अतः शोभा यात्रा में तथा अन्य समस्त कार्यक्रम में पूर्ण सहयोग करें।

सम्पादक—यशपाल 'सुधांशु' एम० ए०   व्यवस्थापक—डा० सच्चिदानंद

जीवन को मोड़ देने वाले

प्रेरक प्रसंग

प्रस्तोता—सत्यानन्द आर्य

: १ :

जाह्नवी का सुरम्य तट। ब्राह्म मुहूर्त की वेला मे एक दिन सरिता के रेतीले भूभाग पर ऋषि दयानन्द बैठे थे। वे प्राणायाम करते, समाधिस्थ होते और अलिप्त भावो मे खो जाने का अभ्यास करते थे।

थोड़ दूर, एक दीन-हीन मा अपने शिशु के शव को भागीरथी के जल मे बहाने को झुकी। मारे शीत के स्त्री स्वय जल प्रवाह में लुढकते-लुढकते बचा। उस की एकमात्र ओढनी ही कफन का वस्त्र था और वह अब भीग चुका था। दुख विलाप और विवशता की त्रिवेणी में डूबती हुई वह अबला गीले नेत्रों से लाश को निहार कर लौट चली।

वीतराग दयानन्द सरस्वती यह सब देखकर चिन्तित हो उठे। उन की ज्ञान वीणा के तार विशृंखलित होने लगे, लेकिन उन का विचारमंथन अकथनीय था। अन्तत. उस नीरवता में, उन की वाणी यों प्रस्फुटित हुई—"हे सर्वेश्वर ! यह क्या देख रहा हूं ? मेरी माताओं की यह दशा ! मुझे सर्वाङ्गीण शक्ति दो। मैं उन दीन-हीन गरीब लोगो को उठाकर ही दम लूगा।"

: २ :

पूर्वी बंगाल के कुछ जिलों में दुर्भिक्ष पडा था। स्वामी विवेकानन्द पीड़ितों के लिए अन्न-धन एकत्र कर रहे थे। जब वे ढाका मे थे, तब उन से कुछ वेदांती पंडित शास्त्रार्थ करने आये। स्वामी जी ने उन्हें बडे आदर से बैठाया और अकाल की चर्चा करते हुए कहा—"जब मैं अकाल से लोगो को मरते हुए सुनता हू, तो मेरी आखों में आंसू आ जाते हैं। क्या इच्छा है प्रभु की।"

यह सुन सभी पडित मौन रहे और एक दूसरे से नजर मिला मन्द-मन्द मुस्कराने लगे। उन की इस विचित्र प्रतिक्रिया को देखकर स्वामी जी स्तब्ध रह गये। कुछ देर मौन रहने के पश्चात् वे पूछ बैठे—"आप लोग मुझ पर हस क्यों रहे हैं ?" एक पण्डित ने और अधिक मुस्कराते हुए कहा—'स्वामी जी, हम तो समझते थे कि आप वीतराग संन्यासी हैं। सासारिक सुख-दुख से ऊपर हैं। लेकिन आप तो इस नाशवान शरीर के लिए आंसू बहाते हैं, जो आत्मा के निकल जाने पर मिट्टी से भी गया बीता है।"

स्वामी जी उन के तर्क को सुन कर अवाक् रह गये। आवेश में आकर डण्डा उठा पण्डित की ओर बढ़े और बोले—'लो आज तुम्हारी परीक्षा है। यह डण्डा तुम्हारी आत्मा को नही मारेगा, केवल नश्वर देह को ही मारेगा। अगर यथार्थ में पण्डित हो तो अपनी जगह से मत हिलना।"

फिर क्या था, पण्डित वहां से ऐसे भागे कि घर पहुंचकर ही सास ली और डण्डे के भय से अपना सारा शास्त्रज्ञान भूल गये।

: ३ :

जाडे के दिन थे। गांधी जी सेवाग्राम स्थित अपने आश्रम की गोशाला में पहुचे। गायों की पीठ पर हाथ फेरा, बछड़ों को प्यार से सहलाया और तभी उनकी नजर वहीं खडे एक गरीब लड़के पर पडी। बापू उस के पास आए—"तू रात में यहीं सोता है ?"

लड़के ने सिर हिलाया—"हां, बापू !"

"रात को ओढता क्या है तू ?"

लड़के ने अपनी फटी सूती चादर दिखला दी। गांधी जी तत्काल अपनी झोंपडी में लौट आए। बाँकी दो पुरानी साडियाँ ली, पुराने अखबार तथा थोड़ी सी रुई मंगवाई। स्वय अपने हाथ से रुई धुनी, बाँकी सहायता से साडियों का खोल सी डाला और अखबार के मोटे कागज व रुई भरकर कुछेक घण्टों में ही गुदड़ी तैयार कर दी गई। गोशाला के उस गरीब लड़के को बुलाकर गांधी जी ने गुदडी दे दी।

दूसरे दिन सुबह गांधी जी फिर गोशाला गए। लड़का दौडा हुआ आया—"बापू ! रात मुझे बहुत मीठी नींद आई।"

बापू मुस्कराए—"सच ? तब तो मैं भी इसी तरह की गुदडी बनवा कर ओढूगा।" और वे महादेव भाई की ओर मुड़े—"देखो, तुम अपनी सारी पुरानी धोतियां मुझे दे डालो।"

॥ ओ३म् ॥

आर्यसमाज दीवान हाल दिल्ली

शताब्दी समारोह

के विविध कार्यक्रम

राष्ट्र एकता यज्ञ

आर्यसमाज दीवान हाल, दिल्लो के शताब्दी समारोह का विस्तृत कार्यक्रम १८ अप्रैल से आर्यसमाज दीवान हाल में राष्ट्रमेध यज्ञ (राष्ट्र एकता यज्ञ) से प्रारम्भ होगा। इस का नेतृत्व स्वामो दीक्षानन्द जी, श्री प० राजगुरु शर्मा तथा ऋत्विज् प० यशपाल सुधांशु करेंगे। यज्ञ का समय प्रात: ७३० से ९ ३० बजे तक रहेगा। यज्ञ के उपरान्त प्रसिद्ध वैदिक विद्वानों के प्रवचन का आयोजन रहेगा। यह यज्ञ २७ अप्रैल तक चलेगा।

उद्‌घाटन समारोह

२५ अप्रैल शुक्रवार, मध्याह्न २ बजे से ५ बजे तक

स्थान—मावलंकर हाल, रफी मार्ग, नई दिल्ली

अध्यक्षता : श्री रामगोपाल शालवाले

मुख्य अतिथि : श्री के० सी० पन्त

(इस्पात एवं खान मन्त्री)

वक्तागण—सर्वश्री डा० स्वामी सत्यप्रकाश जी
स्वामी दीक्षानन्द जी महाराज
श्री पं० शिवकुमार शास्त्री
श्री पं० राजगुरु शर्मा

... गण सम्बोधन देंगे।

विशाल भव्य शोभा यात्रा

२६ अप्रैल, प्रात: १० बजे से

लालकिला से प्रारम्भ

मुख्य समारोह

तालकटोरा इण्डोर स्टेडियम, नई दिल्ली

सम्बोधन—स्वामी दीक्षानन्द जी
डा० स्वामी सत्यप्रकाश जी
श्री ला० रामगोपाल शालवाले
श्री सीताराम केसरी (केन्द्रीय संसदीय मन्त्री)
श्री पं० शिवकुमार शास्त्री
श्री पं० राजगुरु शर्मा
श्री डा० वाचस्पति उपाध्याय

समस्त कार्यक्रम में बढ-चढ़कर भाग लें तथा तन-मन-धन से सहयोग करे। इस पुनीत यज्ञीय अवसर पर अपनो हव्य आहुति भी अवश्य डालें।

निवेदक :

म० धर्मपाल (प्रधान) — अशोक सहगल (महामन्त्री)

आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली राज्य

सूर्यदेव (प्रधान) — डा० धर्मपाल (महामन्त्री)

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

तपोनिधि महात्मा हंसराज

लेखक—प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

आर्य वीरों के नाम महात्मा जी का एक सन्देश

"सूर्य प्रकाश फैलाकर यज्ञ कर रहा है। चाद औषधियों में अमृत डालकर यज्ञ कर रहा है। वायु भी अपनी शक्ति से सृष्टि का उपकार कर रही है। हम को भी यज्ञ रूप बनकर कार्य करना चाहिए।

यज्ञ की सामग्री पहले कूटी जाती है, फिर अग्नि कुण्ड में हवन के लिए डाली जाती है तब उस की सुगन्धि उड़कर जीवो को आनन्दित करती है। इस प्रकार हम जब तक कष्ट सहकर उपकार नही करेंगे तब तक यश और कीर्ति नही फैलेगी। आर्यसमाज का कार्य सोई हुई जाति को जगाना व बचाना है। इस जाति को लोग चहुं दिशाओं से नोंच रहे हैं। इस को बचाना चाहिए।

आओ, हम सब लोग मिलकर परमात्मा से प्रार्थना करें!"

आर्य जाति के सोये लाल क्या यह उपदेश सन्देश सुनेंगे? आओ, एक-एक नगर से, एक-एक ग्राम से पांच-पांच, दस-दस युवक, वृद्ध निकलें। तभी धर्म रक्षा, जाति रक्षा तथा देश रक्षा होगी। मिलकर, दल बनाकर जाति रक्षा का कार्य करें।

—राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

महात्मा हंसराज जी पर मैं क्या लिखूं? जब तक मेरा यह लेख पाठकों के हाथों में पहुंचेगा तब तक मेरा लिखा ग्रंथ 'तपोनिधि महात्मा हंसराज तथा उन का युग' छपकर आर्य जनता के हाथों में पहुंच चुका होगा। उस में मैंने महात्मा जी के जीवन पर पर्याप्त खोज करके बिल्कुल नया प्रकाश डाला है। इस ग्रंथ में महात्मा जी के जीवन पर और आर्यसमाज के इतिहास विषयक सप्रमाण अनेक नई घटनाएँ दी हैं जो किसी विरले आर्य बुजुर्ग ने ही पहले सुनी व पढी होंगी।

जब जीवन चरित्र छप रहा था तब एक और नई बात का पता लगा कि जब अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किए तो वह बहुत से लोगों को बंदी बनाकर ले गया। इन बंदियों का दोष क्या था? उन्हें अपने धर्म व देश से प्यार था। इन लोगों में दो व्यक्ति सगे भाई थे। इन में से एक हमारे तपोनिधि महात्मा हंसराज जी के परदादा थे और दूसरे हमारे एक अन्य तपस्वी नेता आचार्य रामदेव जी के परदादा थे। वैसे आचार्य जी की माता व महात्मा जी की माता दोनों सगी बहनें भी थी। महात्मा जी की रगों मे ऐसे वीरों का रक्त बहता था।

महात्मा जी मे कितनी ऋषिभक्ति थी, इस का पता इस बात से लगता है कि एक बार वह एक शास्त्रार्थ के प्रधान बनाये गये। आर्यसमाज के विरोधी ने अपने भाषण में ऋषि जी पर अश्लील घटिया प्रहार किया तो महात्मा जी के नयनों से टप-टप अश्रु गिरने लगे। क्यों? वह समझते थे कि यह कितनी बड़ी कृतघ्नता है कि एक हिन्दू ऋषि दयानन्द जी महाराज जैसे बलिदानी, जातिरक्षक, धर्मोद्धारक पर निराधार दोष लगाता है।

महात्मा जी ने एक बार कृतज्ञ हृदय से कहा, ऋषि ने ब्रह्मचर्य का सुकठोर तप तपा तो मेरे लिए, ईंटें खाई तो मेरे लिए, नंगे फर्श पर मथुरा में रातें काटी तो मेरे लिए, विष के प्याले पिये तो मेरे लिए। जिस व्यक्ति ने इक इक श्वास ऋषि मिशन के लिए दिया, उसके हृदय में ऋषि के प्रति कितना कृतज्ञता का भाव है।

एक बार कहा—जो वेद की निन्दा करे हम उस की निन्दा करें, जो वेद का आदर करे हम उस का आदर करें। वेद तथा वैदिक सिद्धांतों पर हिन्दू जाति पर किया गया वार उनके लिए असह्य था।

वह भारतीय खेलों को विश्वविद्यालयों में लाने वाले प्रथम शिक्षा शास्त्री थे। उन्होंने प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क व अनिवार्य करने का आंदोलन चलाया। वह बहुत स्वाध्यायशील थे। ईश्वरभक्ति के बिना मानव जीवन को बोझा मानते थे। सदैव तप तथा व्यायाम का आर्य जाति को सन्देश दिया। जीवन के अंतिम दिनों तक स्वयं व्यायाम करते थे।

उन के तप त्याग से मालवीय जी प्रभावित थे। सर फीरोजशाह मेहता पारसी देशभक्त ने कांगड़ा में पीड़ितों की सहायता के लिए आर्यसमाज को सहस्रों रुपये भिजवाये। यह सब हंसराज जी के तप का प्रभाव था।

वह केवल एक कालेज के प्रिंसिपल व शिक्षाशास्त्री ही न थे, बल्कि एक ऊंचे मुनि भी थे। प्रभु के प्यारे महान् योगी थे। शास्त्रों का, वेद का, ऋषि के ग्रन्थो का उन को गहरा अध्ययन था।

यू० ए० स्मिथ इतिहासकार ने उनसे भेंट करते हुए कहा था कि वेदों में मास खाना लिखा है। मेरे मुनिवर हंसराज ने कहा, किस वेद मे लिखा है? यू० ए० स्मिथ ने कहा, ऋग्वेद मे। महात्मा जी के पास प० भगवद्दत्त जी बैठे थे। अलमारी से वेदसंहिता निकाल कर दी। दिखाओ कहां लिखा है? उस ने भूल सुधार करने का आश्वासन दिया।

एक अन्य संस्कृतज्ञ ह्यूम ने महात्मा जी के पाण्डित्य को सिर झुकाया। मुसलमानों ने उन के पावन चरित्र के गीत गाये।

आर्यो! आओ, उस परम तपस्वी धर्म धुन के धनी के चरित्र को पढ़ें, सुनें, सुनावें और आगे बढ़ें।

हंसराज सा हमारे पास राजहंस हैं

जहां देखो वहीं तने तम्बू खूनी कातिलों के
ऐसे लगता है जैसे आया फिर कंस है।
कव्वों की की कव्वाली नित्य सुनने में आ रही है
बढ़ता ही जाता रोज-रोज काक वंश है।
होगा कोई गैर के भी पास इक्का-दुक्का हंस
वैसे तो अधिकतर सांप का ही दंश है।
क्यो न हम डी० ए० वी० पे गर्व करें
दम भरें हंसराज सा हमारे पास राजहंस है ॥१॥

अपने रिवाज भूल और पे रहे थे झूल
वेद वृक्ष बोने चले भारत के बाग मे।
मन मे जो ठानते थे करके ही मानते थे
तभी लोग जानते थे गाते गीत राग मे।
पड़ी हुई सूनी मांग देते थे विदेशी बांग
धूल थी उड़ाती टांग शिक्षा के सुहाग मे।
जीवन को तप त्याग साधना का पुंज मान
हंसराज कूद गये धधकती आग में ॥२॥

भारत की आत्मा बदलने की साजिश की
विकृति का विष डाला तख्त और ताज ने।
पूरब के घोंसले पे पश्चिम की चोंच तान
पक्षियों को मारने की योजना की बाज ने।
राम कृष्ण भूल जायें ईसा के ही गीत गायें
रचा ऐसा षड्यन्त्र गोरों के समाज ने।
डी०ए०वी० का बीज बोके बिचरे निडर होके
मैकाले को धूल में मिलाया हंसराज ने ॥३॥

क्रूर आततायियों के दिलों में दया का दान
मेरे भगवान् करो शुद्ध दुष्ट आत्मा।
माटी का मजाक जो उड़ाते हैं वे पगले हैं
बुद्धिहीन को दो बुद्धिदान परमात्मा।
एक बीज पेड़ बने बड़े वट वृक्ष बने
कर दे अविद्या के अंधेरों का जो खात्मा।
कागज के फूल नहीं शूल व त्रिशूल नहीं
हंसराज सा दे हमें दूसरा महात्मा ॥४॥

रचयिता : सारस्वत मोहन 'मनीषी'
प्राध्यापक, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
डी० ए० वी० कालेज, अबोहर

मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जन्मदिवस कैसे मनायें ?

—चमनलाल

हमारे प्राचीन साहित्य मे वेद उपनिषद्, दर्शनशास्त्र, ब्राह्मण ग्रंथ तथा स्मृतियों को छोडकर जिन दो ऐतिहासिक ग्रंथों को ऊचा स्थान प्राप्त है, वे हैं दो महाकाव्य—एक वाल्मीकि रामायण और दूसरा महर्षि वेदव्यास कृत महाभारत। ये दोनों ही महाकाव्य हमारे प्राचीन सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एव राजनीतिक विचारधाराओ तथा जनजीवन यापन की शैली के द्योतक हैं। आर्य वैदिक संस्कृति और प्राचीन सभ्यता का प्रतिनिधित्व करने वाले इस उज्ज्वल साहित्य मे वाल्मीकि रामायण का एक विशेष स्थान है। किसी भी जाति के इतिहास में रामायण से पुराना मानव जीवन का प्रेरणादायक चित्रण नही मिलता। इस कथन मे भी कोई अतिशयोक्ति नही है कि यदि रामायण और महाभारत को हमारे साहित्य मे से निकाल दिया जाये, तो निःसंदेह यह साहित्य का विशाल भवन चकनाचूर होकर धमड़-धमड हो धराशाई हो जाएगा और साहित्य वास्तव में साहित्य न रहेगा। गत पाच-सात सहस्र वर्षों में बैबीलोन, मिस्र, चीन, रोम, भारत आदि की प्रसिद्ध सभ्यताएं चली, परन्तु आज वर्तमान में भारतीय सभ्यता को छोडकर सभी लोपप्राय. हो गई हैं। संभवत इन दो महान ग्रंथो को दृष्टि मे रख कर ही महाआलम शायर इकबाल ने एक प्रसग में कहा था—

कुछ बात है कि हस्ती
मिटी नही हमारी।
जबकि मिस्रो, चीन रोम
मिट गये जहा से ॥

इस पवित्र रामायण महाकाव्य में प्रात स्मरणीय जनता के हृदय सम्राट मर्यादा पुरुषोत्तम राम की जीवनगाथा दी गई है। नौ लाख वर्ष हुए चैत्र मास शुक्ला नवमी को राम का जन्म अयोध्या नरेश महाराज दशरथ के घर माता कौशल्या के गर्भ से हुआ था। गोसाई तुलसीदास ने रामचरित मानस में इस प्रकार लिखा है—

नवमी तिथि मधुमासपुनीता
शुक्ल पक्ष अभिजित हरिप्रीता।
जन निवास प्रभु प्रगटे,
अखिल लोक विश्रामा ॥

उस समय से निरतर श्रीराम का पावन यशोगाथा हमारी राष्ट्रीय चेतना और संस्कृति निष्ठा की प्रेरणा का केन्द्र बनी हुई है। इस को हमारे व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय जीवन पर एक प्रकार की अमिट छाप लगी है।

महर्षि वाल्मीकि जी के ब्रह्म ऋषि नारद जी से पूछने पर कि इस वर्तमान संसार में कौन पराक्रमी, गुणवान् और प्रशसा के योग्य है ? कौन कर्तव्यपरायण और कृतज्ञता की भावना वाला है ? कौन सत्यवादी, सत्यपरायण तथा अपने कहे वचनों का पालन करने वाला है ? कौन चरित्रवान्, दयावान्, बुद्धिमान् तथा क्रियाशील है ? कौन धर्मात्मा, ज्ञानी, अति रूपवान् और गम्भीर तथा शक्तिशाली है ? सामर्थ्यवान् होते हुए जिस को क्रोध न आवे, ऐसा कौन धैर्यवान् है ? परन्तु युद्ध में क्रोध आने पर जिस से देवता भी भयभीत होते हुए कापने लगते हैं, जो सर्वथा प्रसन्नचित्त, हानि-लाभ में सम और ईर्ष्या द्वेष आदि से रहित हो इत्यादि। इस के उत्तर में वेदज्ञ, शास्त्रज्ञ देव ऋषि नारद जी ने राम के गुणों का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है—

राम जो स्वरूप से चन्द्रमा के समान मोहक हैं, बलवीर्य सम्पन्न, महा तेजस्वी, सर्व शुभलक्षण युक्त हैं, स्वभाव से सौम्य, सुसंस्कृत तथा महात्मा हैं। वह बडे ही उदार, सहनशील तथा क्षमावान् हैं। लोक रञ्जन के लिए वह बडे से बडा त्याग करने को भी सदा उद्यत रहते हैं। सर्व समर्थ सत्ताधारी होकर भी राम जी प्रमादी, अहकारी तथा स्वेच्छाचारी नहीं हैं। किसी भी परिस्थिति में लोक धर्म की मर्यादा का उल्लंघन नही करते, अत्यंत मर्यादावान् हैं। विद्या बुद्धि मे चतुर, अत्यन्त प्रतिभाशाली, मेधावी, देशकाल विज्ञाता तथा सर्वशास्त्र विशारद हैं। जिस दृष्टि से भी परखा जाये, राम जी एक आदर्श नेता, आदर्श पुरुष और उच्चकोटि के महात्मा दिखाई देते हैं। वर्तमान में यही एक ऐसे महान् पुरुष हैं जिन में सभी गुण एक साथ पाए जाते हैं।

परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि महाभारत काल के पश्चात् गत पांच सहस्र वर्षों के पतन और एक सहस्र वर्षों की दासता ने इस अति उज्ज्वल, सुन्दर व्यक्तित्व को धूमिल कर दिया है। अनार्ष ग्रंथों तथा स्वार्थी पण्डितों की अति उक्तियों की भारी मिट्टी और धूल की परतों के नीचे महात्मा, राष्ट्र नेता, मर्यादा पुरुषोत्तम राम का सही तथा शुद्ध स्वरूप दबा दिया गया है। स्वार्थी तथा शठ, दुराचारी, चालाक लोगों ने भोली भाली जनता की निरक्षरता का अनुचित लाभ उठाकर उनके सामने राम का वास्तविक चित्र न रखकर अपना उल्लू सिद्ध करना जीवन का एकमात्र लक्ष्य बना लिया है। परिणामस्वरूप हमारे दूसरे आदर्श पुरुषों की भांति राम को भी काल्पनिक तथा गैरऐतिहासिक कह कर हम को गुमराह कर दिया है और भ्रम में डाल दिया है। ऐसे लोगो से हमें सावधान रहने की भारी आवश्यकता है।

राम नवमी प्रतिवर्ष आती है और चली जाती है। ऐसा गत सहस्रों वर्षों से चला आ रहा है। रामभक्त जनता इस अवसर पर राम के जीवन की कुछ एक विशेष घटनाओं का पाठ करके, रामायण के अखण्ड पाठ रखकर, मीठे-मीठे मधुर स्वरों में रामायण की चौपाइयां गाकर, मन्दिरों में राम की प्रतिमाओं को सुन्दर रेशमी वस्त्रों से अलंकृत करके और अच्छे-अच्छे स्वादिष्ट मिष्ठान खाकर और ऊंचे स्वरों में राम के जयघोष लगाकर हम ने राम नवमी का पवित्र त्योहार बडे उत्साह पूर्वक मना लिया। मानो इसी में राम-भक्ति की इति श्री समझ ली। परन्तु बन्धुओ ! अब समय बदल गया है। अब सोने का समय नहीं है। सचेत होकर काम करने का युग है। राम का जीवन शिक्षाओं और मानवीय मूल्यों का भण्डार है। आज लाखों वर्षों के व्यतीत होने के बाद भी राम के जीवन मे प्रेरणा लेकर हम अपने राष्ट्र, समाज और जाति के प्राचीन गौरव को पुनः स्थापित कर सकते हैं। अनेकों ऐसी सामाजिक और राजनीतिक त्रुटियां और कमजोरियां हैं जो समाज और राष्ट्र की नाव को खोखला कर रही हैं। हम राम के जीवन को आदर्श मान कर इन में सुधार ला सकते हैं और देश को और पतन के गड्ढे में गिरने से बचा सकते हैं। इन में कुछ निम्न प्रकार हैं—

छुआछूत का प्रश्न—राम के समय में इस प्रकार की कोई समस्या नहीं थी। राम ने सती की खोज मे वन-वन घूमते हुए निम्न जाति की शबरी नाम की भीलिनी के आश्रम मे जाकर उसके हाथ का जल और कन्दमूल खाये। कहावत तो यह है कि शबरी चख-चखकर मीठे बेर राम को खाने को देती थी। परन्तु सरकार द्वारा छुआछूत के रोग को दूर करने के लिए विधेयक बनाने पर भी यह प्रश्न जाति-राष्ट्र की नींव को खोखली कर रहा है। अत रामभक्त हिन्दुओं को चाहिए कि राम के जीवन से प्रेरणा लेकर इस जाति-पाति, छुआछूत के भूत को दूर भगा कर राष्ट्र की जड़ों को मजबूत बना सकते हैं। अछूतों के अधिकारों को मान्यता दे उन्हें मंदिरों में जाने और कुओं पर चढ़ने की सुविधा देकर उन की सहानुभूति प्राप्त करें। इस प्रकार उनको अपनी जाति का अभिन्न अंग समझें।

भाई-भाई का आपसी प्रेम, राम-भरत-लक्ष्मण आदि भाइयों का आपसी प्रेम अद्भुत था। राम और भरत के भ्रातृ प्रेम की उपमा संसार के इतिहास में कहीं भी नहीं मिलता। अनायास इतना बडा अयोध्या का चक्रवर्ती राज्य प्राप्त करके भी भरत ने बिना राम के इसे तुच्छ समझकर गेंद की तरह ठोकर मार कर फेंक दिया। स्वयं राम ने एक प्रसंग में भरत के सम्बन्ध में कहा था—

भरत जैसा उज्ज्वल चरित्र नहीं सुना। अयोध्या का राज्य तो बहुत छोटा है, यदि भरत को और कोई बडे से बडा राज्य भी प्राप्त हो जाये तो भी उस को राजमद छू तक नहीं सकता। भरत सागर के समान गम्भीर है। अतः अवध के राज्य की थोड़ी सी कांजी उस क्षीर सागर को विकृत नहीं कर सकता। इसी प्रकार जब युद्ध में लक्ष्मण मूर्छित होकर भूमि पर गिर पडे तो रामचन्द्र जी ने विलाप करते हुए कहा था कि संसार में ऐसा कोई स्थान नही जहां भाई मिल सके। होश में आने पर लक्ष्मण से श्री राम जी ने कहा था कि यदि तुम मर जाते तो मुझे इस विजय से भी क्या लाभ, मैं जीवित रहकर सती को लेकर भी क्या करूंगा। परन्तु आज एक-एक पैसे के लिए भी भाई भाई के खून का प्यासा दीख पडता है। ऐ रामभक्तो ! राम की इस भावना को जीवन में धारण करके लोभ लालच का परित्याग कर राष्ट्र में फैले भ्रष्टाचार को दूर करके एक आदर्श राष्ट्र की स्थापना करे।

राम सच्चे आर्य थे—रामचन्द्र जी सन्ध्या-उपासना आदि नित्य कर्म बड़ी श्रद्धा से किया करते थे और नित्यप्रति प्रात. गुरुजनों को प्रणाम भी किया करते थे। क्या ही अच्छा हो राम के भक्त कहलाने वाले लोग राम के गुणो को जीवन में धारण करें और देश मे बढती हुई नास्तिकता को दूर करें।

माता-पिता के आज्ञाकारी—रामचन्द्र जी जैसे माता-पिता के वचनो को पालन करने वाले विश्व के इतिहास में कहीं भी न मिलेंगे। जिन्होंने सौतेली माता कैकेयी के कहने पर चक्रवर्ती राज्य को छोड़कर वन जाने को तैयार हो गये। माता कैकेयी से उन्होंने यह भी कहा था कि मैं पिता की आज्ञा से आपके कहने पर आग में भी कूद सकता हूं।

रामो द्विर्नाभिभाषते ।

हमें भी चाहिए कि हम अपने बच्चों को सच्चा माता-पिता के आज्ञाकारी बनावें और इस प्रकार अच्छे नागरिक बनें जिस की आज अत्यन्त आवश्यकता है।

अभयदान—जब रामचन्द्र जी वनवास में थे तो वह सीता, लक्ष्मण सहित ऋषियों के आश्रमों में जाकर उनके दर्शन किया करते थे तो वहां आश्रमों के आस-पास हड्डियों के ढेर पड़े देखकर बड़े दुःखी होते थे और आश्रमवासियों से पूछने पर उन को बताया जाता था कि निशाचर

मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जन्मदिवस कैसे मनायें ?

और क्रूर कर्म करने वाले राक्षस वनवासी ऋषि-मुनियों को मारकर उनका मांस-भक्षण करते थे और यज्ञों में मांस-हड्डियों फेंककर यज्ञ भंग करते थे। अत राम ने क्षात्रिय धर्म का पालन करते हुए उन की रक्षा का वचन दिया और अपने बाहुबल से वन को राक्षसों के आतंक से मुक्त कर दिया और इस प्रकार उन्होंने वनवासियों के जान-माल की रक्षा की और उनके यज्ञ में होने वाले विघ्नों को दूर किया। अत हमें भी चाहिए कि निम्न वर्ग के लोगो की जान-माल की अत्याचारियों से रक्षा करें और वर्तमान में स्थान-स्थान पर उग्रवादियों और आतंकवादियों की घृणित कार्रवाई से दुःखित-पीड़ित जनता की रक्षा के लिए व्रत धारण करें और इस प्रकार सब छोटे-बड़े मिलकर निर्भीकता से देशोन्नति में सहयोग दें।

पक्षोभिरपि कक्षेभि: सरभामहे ।

राम जीवन भर भाई-बन्धु आदि के सम्बन्धों का ध्यान न करके जो श्रेष्ठाचारी और पुण्यकर्मा थे, उनका ही साथ देते रहे। कदाचारी और विपथगामी बलवान को भी उन्होंने सहयोग नहीं दिया। उदाहरण के तौर पर बाली के मुकाबले दुःखग्रसित सुग्रीव का ही साथ दिया था और बाली का वध कर सुग्रीव की पत्नी को बाली के अधिकार से मुक्त कराया। इसी प्रकार विभीषण की भी सहायता की और उस को लंका का राजा बनाया। इन दोनो सदाचारी लोगों को कितना प्यार करते थे रामचन्द जी। इन श्लोकों में देखिये—

त्वयि चानागते पूर्वमिति
मे निश्चिता मति.।
आनतलक्षपि ते कार्यं
महेन्द्रवरुणोपमम् ॥

हत्वाह रावण संख्ये सपुत्रबन्धवाहनम् ।
अभिषिच्य च लंकाया विभीषणमथापि च ॥
भरते राज्य मावेश्य त्यक्ष्ये देहं महाबल ॥

युद्ध में लक्ष्मण के आहत और मूर्छित होने पर राम ने जहाँ और अधूरे कामों को देखकर खिन्नता प्रकट की, वहाँ विभीषण को दिये वचन का पूर्ण न होना भी उन्हें सबसे अधिक खटक रहा था। विभीषण का ध्यान आने पर उन्होंने कहा—
युन्मया न कृतो राजा लंकायां विभीषण.।

रामचन्द्र जी विषम परिस्थितियों को अपनी दूरदर्शिता और सूझबूझ से चुटकियों में सुलझा लिया करते थे। अपनी विलक्षण नीति के आधार पर ही उन्होंने विभीषण को शरण दी थी जबकि सारा मंत्रीमंडल इसके विरुद्ध था। इसी तरह युद्ध में रावण के मरने पर जब विजय के बाजे बजने लगे तो अचानक राम के विश्वस्त और अनुशासित योद्धा अंगद ने राम को कहा कि यह विजय मेरी है न कि तुम्हारी। आप मेरे पिता के प्राणलेवा हैं और इस प्रकार मेरे शत्रु हैं। अत: मेरा और आप का युद्ध विजय का निर्णय करेगा। राम ने बड़ी बुद्धिमत्ता से इस विषम स्थिति को संभालने मे जरा भी देर नहीं लगाई। राम ने कहा कि निश्चय ही यह विजय तुम्हारी विजय तो है परन्तु मैं भी इसका भागीदार इसलिए हू कि बाली ने मरते समय तुम को मेरे सुपुर्द करते हुए था कि मैं पुत्र की न्याईं तुम्हें पालूं। इस प्रकार मेरे पुत्र हो और शास्त्रो का कहना है कि मनुष्य सब से अपनी जीत चाहे परन्तु अपने पुत्र से अपनी पराजय ही पसन्द करे। अत: तुम जीते और मैं हारा। तुम्हारी इस विजय में मैं भी सम्मिलित होता हूँ। मुझे दुहरी प्रसन्नता है कि मैं तुम्हारे पिता को दिये वचन का पालन कर सका।

अत राम के जीवन को जिस दृष्टि से भी देखें, उन का जीवन मानव जाति के लिए एक प्रकाश स्तम्भ का सा काम करता है। उन्होंने पति-पत्नी के व्यवहार, प्रजा प्रेम तथा उनके हितो की रक्षा, लोक कल्याण का ध्यान छोटे-बड़ों से यथायोग्य बर्ताव, भाई-भाई से आपसी प्रेम, माता-पिता की आज्ञापालन, शरणागतो की रक्षा और निम्न वर्ग के लोगो की जान-माल की रक्षा, विषम परिस्थितियो मे भी विचलित न होना, हर्ष और विषाद मे एक सम रहना आदि अनेकों प्रसगो मे मर्यादा कायम करके अपनी बुद्धिमत्ता तथा कार्यकुशलता का परिचय दिया। इसीलिए मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाए। ऐसे और न जाने कितने कार्य हैं जहां रामचन्द्र जी ने आदर्श उपस्थित किए। जो लाखों वर्ष बीतने पर भी आज हमे मार्गदर्शन करा रहे हैं।

अत बन्धुओ! राम जन्मदिवस केवल मात्र उन की जयघोष करने का नही है। यह एक आत्मचिन्तन और व्रत लेने का दिवस होना चाहिए। आज देश की बड़ी गम्भीर स्थिति है और देश बड़ी भयकर परिस्थितियों में से गुजर रहा है। अराष्ट्रीय तत्त्वों का बोलबाला है। भ्रष्टाचार चहुँ ओर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त हो रहा है। विघटन की दुष्प्रवृत्ति ने अपना जाल फैलाया हुआ है। राष्ट्रीय भावना का अभाव एक महान समस्या बनी हुई है। भाषावाद, जातिवाद, प्रांतवाद जैसे अनेको अराष्ट्रीय वादो ने हलचल पैदा कर रखी है। देश के कोने-कोने से से बेगुनाह लोगों की हत्या के समाचार सुनकर और पढ़कर आदमी रो देता है। आतंकवादी, उग्रवादी लोगों ने देश की सत्ता को नष्ट करने का मानो व्रत लिया हुआ है। किसी का भी जीवन घर मे, बस मे, गाड़ी मे, बाजार में अथवा वायुयान में, कहीं भी सुरक्षित नहीं है। इन का मुकाबला करने मे शासन भी असमर्थ दीख पड़ता है। युवा वर्ग ठीक, सही मार्गदर्शन के अभाव में, वह देश को सुरक्षित करने के स्थान पर इस के नाश का कारण बनता जा रहा है। मादक पदार्थों के सेवन ने सब घरो को नरक बना दिया है। देश को इन परिस्थितियो में से सुरक्षित निकालने का काम अब तो भगवान पर ही छोड़ा जा सकता है। परन्तु हमारे राम जैसे महापुरुषों के जीवन हमे इन भयकर विघ्नबाधाओं का सामना करने मे बहुत सहायता कर सकते हैं। अत हमे राम के जीवन से प्रेरणा लेकर इन समस्याओं को हल करना चाहिए। आओ इस पावन पर्व पर हम देश की समस्याओं का न्यायपूर्वक हल करने का व्रत लें और राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के स्वप्नों का रामराज्य जैसा स्वराज्य बनाकर अपने कर्तव्य का पालन करें। यही सच्ची श्रद्धांजलि रामचन्द्र जी के प्रति इस अवसर पर होगी। राम के भक्तो! समय की यही मांग है—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत।

विश्व को आर्य बनाना है तुम्हें

आर्यों जग को जगाना है तुम्हे।
नाद वेदों का, बजाना है तुम्हें॥

महर्षि दयानन्द को भूलो नहीं।
विद्वता पाकर कभी फूलो नहीं॥
विश्व को आर्य बनाना है तुम्हें।
नाद वेदों का बजाना है तुम्हें॥

पाखण्डियों का अब धरा पर जोर है।
पापियों ने है मचाया शोर है॥
शुद्धि को फिर से चलाना है तुम्हें।
नाद वेदों का बजाना है तुम्हें॥

स्वामी श्रद्धानन्द, बन आगे बढ़ो।
नास्तिकों की छातियों पर जा चढ़ो।
भक्तसिंह बन कर दिखाना है तुम्हें।
नाद वेदों का बजाना है तुम्हें॥

बढ़ता भ्रष्टाचार, दिन पर दिन यहां।
है तुम्हारी तार्किक शक्ति कहां॥
अविद्या का दुर्ग, ढाना है तुम्हें।
नाद वेदों का बजाना है तुम्हें॥

कट रही गऊ जुल्म भारी हो रहे।
राम के वंशज, हैं 'निर्भय' सो रहे॥
लेश दुष्टों का मिटाना है तुम्हें।
नाद वेदों का, बजाना है तुम्हें॥

लेखक : पं० नन्दलाल 'निर्भय' सिद्धांत शास्त्री
भजनोपदेशक, ग्राम बहीन, (फरीदाबाद)

शोक प्रस्ताव

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के समस्त अधिकारी एवं कर्मचारी दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के यशस्वी मन्त्री, दक्षिण दिल्ली वेद प्रचार मण्डल के महामन्त्री, सुप्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता श्री रामशरण दास जी आर्य के पूज्य चाचा जी श्री निहाल चन्द जी आर्य के अकस्मात देहावसान पर गहरा दुःख एवं शोक व्यक्त करते हैं तथा परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वे दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करे तथा उनके वियोग में संतप्त दुःखी परिवार तथा इष्टमित्रो को इस महान दुःख को सहने की शक्ति तथा सामर्थ्य दे।

—डा० धर्मपाल
महामन्त्री

रामचरित्र

राम! तुम्हारा चरित्र है महान्
जिससे प्रेरणा लेता है सारा जहान
कोई बताता है तुम्हें भगवान्
कोई ठहराता है श्रेष्ठ इन्सान
पर गाते सभी तुम्हारा गुणगान
तुम्हारी जीवनकथा है नैतिकता की खान
वाल्मीकि ने तुम्हें सर्वश्रेष्ठ महापुरुष बतलाया था
केशव ने रामचन्द्रिका मे तुम्हारा गुण गाया था
तुलसीदास ने तुम्हें साक्षात् परमात्मा बताया था
ऋषि दयानन्द ने आप्त पुरुष बताया था
सचमुच तुम्हारा चरित्र है अत्यधिक पावन
मुक्तिदाता सुमार्गदाता कलुष नसावन।

रचयिता .
डा० शकुनचन्द गुप्त विद्यावाचस्पति
लालगंज, रायबरेली (उत्तर प्रदेश)

मानवोचित आदर्शों के पूर्ण प्रतीक
भगवान् राम

डा० भवानीलाल भारतीय

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के आदर्श चरित को किसी भी काव्य का सर्वोत्तम विषय बनाया जा सकता है। इस प्रसंग मे राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की साकेत में लिखित वे पंक्तियां स्मरणीय हैं जिन में कवि कहता है—

राम तुम्हारा वृत्त स्वय ही काव्य है।
कोई कवि बन जाए सहज सभाव्य है॥

वस्तुत संस्कृत के आदि कवि महाकवि वाल्मीकि रामचरित के पारायण की प्रेरणा महामुनि नारद से उस समय मिली जब वे तमसा नदी के किनारे भ्रमण कर रहे थे। नारद से यह पूछने पर कि इस समय मनुष्य लोक में सर्वगुणान्वित, आदर्श आर्य चरित का प्रतीक कौन महापुरुष है? नारद ने भगवान् राम की ओर ही संकेत करते हुए उन्हें संयतात्मा, धैर्यवान्, बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, वाग्मी, शत्रुनाशक, धर्मज्ञ, सत्य प्रतिज्ञ, सर्वलोकप्रिय आदि विशेषणों से विभूषित किया था। नारद ने राम के धैर्य की उपमा हिमाचल से तथा उन के पराक्रम की उपमा विष्णु से दी थी।

कालान्तर मे रामायण की कथा को जो लोकप्रियता प्राप्त हुई वह इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि राम जैसे आदर्श गुणयुक्त महापुरुष की कीर्ति का गायन कर विभिन्न कवियो, लेखकों तथा साहित्यकारों ने अपनी लेखनी को कृतार्थ माना है। सत्य तो यह है कि वाल्मीकि रामायण के आदर्शों पर ही साहित्य-शास्त्रियों ने महाकाव्य के लक्षणों का निर्धारण किया तथा ऐसे काव्य के नायक के रूप मे धीरोदात्त प्रकृति युक्त महापुरुष को स्वीकार करना आवश्यक समझा। भारत की प्रत्येक प्रांतीय भाषा में रामायण कथा का लेखन हुआ है। बंगाल मे कृत्तिवास की रामायण, हिन्दीभाषी प्रांतों में गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित मानस तथा दक्षिण में कम्ब रामायण का प्रचार यह सिद्ध करता है कि भारत के जनमानस मे राम की दिव्य कथा ने अभूतपूर्व स्थान बना लिया है। रामायण की कथा एक समय भारत की सीमा को पार कर पूर्वी देशों तक प्रसारित हो गई थी। इण्डोनेशिया के जावा द्वीप में पाई जाने वाली पाषाणचित्र लिपि रामायण इस बात का प्रमाण है। आज भी इण्डोनेशिया वासी मुसलमान होते हुए भी रामायण के पात्रों से प्रेरणा लेते हैं। सस्कृत में अध्यात्म रामायण, भुशुण्डि रामायण आदि ग्रंथ भी राम कथा को ही भिन्न-भिन्न दृष्टियों से प्रस्तुत करते हैं। अत. रामायण कथा के स्थायित्व के सम्बन्ध मे निम्न उक्ति की सत्यता को स्वीकार करना पड़ता है—

यावत् स्थास्यन्ति गिरय.
सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा
लोकेषु प्रचरिष्यति॥

★

जब तक इस पृथ्वी पर नदियां तथा पर्वत रहेंगे तब तक रामायण की लोकपावनी कथा भी मनुष्यों में प्रचलित रहेगी।

राम के चरित्र की विशेषता

राम के चरित्र की सर्वोपरि विशेषता उन का आदर्शवाद और मर्यादापालन है। माता-पिता के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा, पिता के वचनो की रक्षा के लिए राज्य त्याग और वनवास स्वीकार करना राम के चरित्र को सर्वोच्च उत्कर्ष पर प्रतिष्ठित कर देता है। उन का भ्रातृ प्रेम, एक पत्नीव्रत का आचरण, सुग्रीव, हनुमान एव विभीषण के प्रति कृतज्ञता भाव तथा धरती से राक्षसों के विनाश की उन की दृढ़ प्रतिज्ञा उन के चरित्र को लोकोत्तर धरातल पर प्रतिष्ठित करती है। वे अपने परिजनों तथा मित्रों के प्रति यदि कुसुमवत् कोमल हैं तो अत्याचारी शत्रुओं के प्रति उन का आचरण वज्र के तुल्य कठोर हो जाता है। महाकवि भवभूति के शब्दों मे कुसुमवत् कोमल किन्तु समय आने पर वज्र से भी कठोर बन जाने वाले राम के सदृश महापुरुषों के आचरण को ठीक-ठीक समझना भी सम्भव नहीं है।

राम का अपने पिता महाराजा दशरथ के प्रति जो आदर भाव है उस की झलक हमे उस समय मिलती है जब वे विमाता कैकेयी से स्पष्ट कहते हैं—

अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके।
भक्षयेय विष तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे॥

राजा के आदेश को पाकर मैं अग्नि में कूद सकता हूं, विष खा सकता हूं, यहां तक कि समुद्र में भी छलांग मार सकता हूं। राम की प्रतिज्ञा है कि वे एक बात कहकर उस से पीछे नहीं हटते।

रामो द्विर्नं भाषते।

इसीलिए वाल्मीकि ने उन्हें धर्म का मूर्तिमान् प्रतीक कहा है—

राम को धरती पर आये कई सहस्राब्दियाँ व्यतीत हो गई हैं। उन की ऐतिहासिकता को लेकर भी विद्वानों ने अनेक प्रकार की आशंकाएं व्यक्त की हैं, किन्तु आज भी करोड़ों भारतवासियों के हृदय-मंदिर में विराजमान हैं। आर्य संस्कृति की मूर्तिमान् झलक जैसी राम के चरित्र में दिखाई देती है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। रामनवमी पर उनका पुण्य स्मरण देशवासियों में नैतिक चेतना, राष्ट्रीय स्वाभिमान तथा उदात्त चरित्र के निर्माण की भावना जागृत करे, यही हम सब की कामना होनी चाहिए। □

वर्तमान स्थिति में उपयोगी सुझाव

डा० शकुनचन्द विद्यावाचस्पति
लालगंज, रायबरेली (उ०प्र०)

आर्यसन्देश के ९ मार्च, १९८६ के अंक में "जम्मू कश्मीर और पंजाब को सेना के हवाले करो" शीर्षक से सार्वदेशिक सभा की अपील तथा २३ मार्च, १९८६ के अंक मे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की साधारण सभा द्वारा पारित प्रस्ताव महत्त्वपूर्ण, उपयोगी एव ध्यान देने योग्य हैं।

जिस प्रकार इस समय देश की आंतरिक स्थिति बिगड़ती जा रही है, देशद्रोही तत्त्व भारतविरोधी विदेशी शक्तियों के साथ साठगांठ कर देश की सुरक्षा, अखंडता तथा स्वाभिमान को चुनौती दे रहे हैं, बहुसंख्यक हिन्दुओं का बहुत बड़ा वर्ग अपने ही देश में अपने को अपमानित अनुभव कर रहा है, पंजाब एवं कश्मीर के अल्पसंख्यक परन्तु देशभक्त हिन्दू मुसीबत के दिन बिता रहे हैं, मुसलमानों का एक बहुत बड़ा वर्ग शरियत के नाम पर मुसलमानों के लिए अलग कानूनों की रचना की मांग कर रहा है, बंगलादेश से बंगलादेश के घुसपैठिये तथा पाकिस्तान से पाक-घुसपैठिये क्रमश. बिहार तथा राजस्थान आदि में प्रवेश कर वहां के बहुसंख्यक हिन्दुओं को अल्पसंख्यक बनाने तथा उन की भूमि हड़पने का सुनियोजित षड्यन्त्र कर रहे हैं तथा देश की एकता सुदृढ़ करने वाले देवभाषा संस्कृत, राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा भारतीय संस्कृति के बन्धन कमजोर पड़ रहे हैं, भारत सरकार को उपरोक्त अपील एवं प्रस्ताव के क्रियान्वयन हेतु गम्भीरतापूर्वक विचार कर ठोस कदम उठाने चाहिएं। उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में निम्नांकित सुझाव एव विचार ध्यान देने योग्य हैं—

१. जम्मू-कश्मीर, पंजाब, हरियाणा तथा हिमाचल प्रदेश को मिलाकर पश्चिम प्रदेश नाम के एक नये प्रांत की रचना की जाए। जिसकी राजधानी चण्डीगढ़ हो। उत्तर प्रदेश की तरह यह विशाल राज्य जिस में देशभक्तों का विशाल बहुमत होगा, अपने यहां पल रहे आतंकवादियों एवं राष्ट्रद्रोही तत्त्वों पर अंकुश लगाने में सफल होगा।

२. उपरोक्त कदम के पूर्व पंजाब में तथा जम्मू कश्मीर में राज्यपाल शासन लागू किया जाए तथा वहां राज्यपाल शासन तब तक लागू रखा जाए जब तक शांति-व्यवस्था की स्थिति सामान्य न हो जाए तथा देशभक्त तत्त्व सुरक्षित न हो जायें।

३. देश के नागरिकों को फोटोसहित परिचयपत्र दिए जायें ताकि अवैध रूप से घुसे लोगों का पता लगाया जा सके तथा अनधिकृत घुसपैठ रोकी जा सके।

४. देश के सभी नागरिकों के लिए समान सिविल कोड बनाया जाए।

५ सांस्कृतिक भाषा के रूप में संस्कृत तथा सम्पर्क एव राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए हर सम्भव उपाय किये जायें।

६ सभी देशवासियों को एक-सी शिक्षा दी जाए। नैतिक, भारतीय संस्कृति, शारीरिक योग, छोटे बच्चों के लिए स्काउटिंग तथा बड़ों के लिए एन. सी. सी की शिक्षा अनिवार्य की जाए। □

नव संवत्सर पर चैत्र प्रतिपदा २०४३ विक्रमी
एवम्
आर्यसमाज स्थापना के शुभ अवसर पर शुभकामनाएं

यज्ञाग्नि से दिग-दिगन्त हो, सुरभित व्याधि विपद भय क्षय हो।
भारत की उर्वरा धरा हो, विश्वम्भरा शक्ति अतिशय हो॥
वेद निन्दक की पराजय, धर्म वैदिक की विजय हो।
सब विधि यह नव वर्ष सभी को, सुखद शान्ति मंगलमय हो॥

—स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती

साहित्य-समालोचना

अध्यात्म-बोध और दिव्य जीवन

(प्रथम सोपान : शारीरिक स्वास्थ्य)

प्रकाशक : हरिराम गुप्ता, सी-६१/६, औद्योगिक क्षेत्र, वजीरपुर, दिल्ली-५२; लेखक : परमहंस अपरोक्ष ब्रह्म; आकार २३ × ३६; पृष्ठ संख्या ३४०; कागज . मध्यम; मुद्रण : उत्तम; सज्जा . उत्तम सजिल्द; प्रथम संस्करण; मूल्य : (दान) पैंतीस रुपये मात्र।

भारतीय मनीषियों ने अध्यात्म-विद्या को सब विद्याओं में श्रेष्ठ माना है। आध्यात्मिक बोध अर्थात् आत्म-साक्षात्कार की ओर प्रवृत्त होते ही मानव का जीवन देवीगुणों से सम्पन्न होने लगता है। अध्यात्म-बोध अन्तर्मुखी यात्रा है। समालोच्य ग्रन्थ में इस यात्रा के पांच सोपान-शरीर, मन, हृदय (चित्त), बुद्धि, अहंकार बताए हैं। इन में से प्रथम सोपान का साङ्गोपाङ्ग निरूपण प्रस्तुत ग्रन्थ में किया गया है। ग्रन्थ तीन खण्डों में विभक्त है— सैद्धांतिक, व्यावहारिक और तालिकाएं व परामर्श।

सैद्धांतिक खण्ड में प्राच्य-पाश्चात्य दार्शनिकों के शरीर सम्बन्धी विचार, आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से शरीर-रचना, रोग के कारण तथा उन की चिकित्सा आदि विषयों पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। "दार्शनिक दृष्टिकोण" साधारण पाठक के लिए अनुपयोगी है और विशेष के लिए अपर्याप्त। शरीर की रचना और उस के विभिन्न संस्थाओं के क्रिया-कलापों का विवरण रोचक और उपयोगी है। वर्तमान चिकित्सा-विज्ञान के अनुसार जीवाणुओं तथा आंतरिक ग्रन्थियों के स्रावों की विषमता को, आयुर्वेद के मत से दोष-धातु मलों के वैषम्य को और प्राकृतिक चिकित्सा की दृष्टि से मलों या विजातीय द्रव्यों के संचय को रोगों का कारण माना गया है। लेखक ने यौगिक पद्धति की मान्यता के अनुसार रोगों का कारण बताया है। शारीरिक क्रियाओं में प्राणशक्ति के यथोचित वितरण का अभाव। चिकित्सा (ग्रन्थ में चिकित्सा के अर्थ में प्रयुक्त निदान शब्द चिन्त्य है) के प्रसंग में रोग निवारणात्मक उपायों का विस्तृत वर्णन बहुत उपयोगी है।

द्वितीय, व्यावहारिक खण्ड में अनेक महत्त्वपूर्ण प्रकरण हैं। सूक्ष्म व्यायाम प्रकरण में सरल व्यायामों को लाभ और श्रम की दृष्टि से तीन भागों में बांटा गया है—वातनिर्मुक्ति, गैस निर्मुक्ति, विशेष सूक्ष्म व्यायाम। आसन प्रकरण में ८४-६ आसनों का सचित्र निरूपण विधि-लाभ आदि विवरण सहित किया गया है। सचित्र सूर्य नमस्कार, नेत्र ज्योतिवर्धक यौगिक क्रियाएँ, बीस विशिष्ट मुद्राएँ (शारीरिक अवयवों की स्थितियां) चार, बन्ध, तेईस प्रकार के प्राणायाम और शिथिलीकरण प्रकरण अत्यन्त स्पष्ट रीति से लिखे गए हैं जो योग मार्ग के पथिक एवं साधारण जनों के लिए उपयोगी हैं। हठयोग प्रकरण में हठयोग के सिद्धांत और षट्कर्मों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। प्राकृतिक चिकित्सा प्रकरण में इस चिकित्सा पद्धति के सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक पक्षों को उत्तम रीति से उपस्थित किया गया है। "घरेलू प्राकृतिक सरल औषधियां" प्रकरण में इकसठ रोगों के उपचारार्थ सरल-सुलभ औषधि योग लिखे गये हैं।

तालिकाएं व परामर्श नामक तृतीय खण्ड ने ग्रन्थ की रचनात्मक उपयोगिता बढ़ा दी है। इसके पश्चात् चौदह तालिकाएं दी गई हैं जिन में सूक्ष्म व्यायाम, योगासन, सूर्य नमस्कार, मुद्रा, बन्ध, प्राणायाम, हठयोग तथा शिथिलीकरण के वर्गीकृत उपयोगों का निर्देश किया गया है। रोगोपचार सरणी में साठ रोगों के उपचारार्थ उपर्युक्त यौगिक क्रियाओं का निर्देश है। मन कायिक रोगोपचार, शरीरांगों की पुष्टि और ग्रन्थियों के उचित स्राव के लिए भी यौगिक क्रियाओं का समायोजन किया गया है। विभिन्न आयु तथा अवस्था वाले पुरुषों एवं महिलाओं के लिए अभ्यास तालिकाएं दी गई हैं।

अनुभवी तथा विद्वान् लेखक ने विषय को सर्व सुलभ एवं सुग्राह्य बनाने के लिए लोक-प्रचलित सरल हिन्दी का प्रयोग किया है। सम्भवतः इसी कारण शब्द-वाक्य परिष्कार की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। कुल मिलाकर पुस्तक रोचक, ज्ञानवर्धक तथा कर्मोत्प्रेरक है। प्रथम सोपान के सफल प्रतिपादन के लिए लेखक बधाई के पात्र हैं। आशा है अग्रिम चार सोपान भी शीघ्र प्रकाश में आयेंगे।

—विपाश

आर्यसमाज दीवान हाल

(पृष्ठ १ का शेष)

कैसे रहती ? दहेज प्रथा के विरोध में साहित्य बांटा तथा धरनों आदि से प्रबल विरोध किया। अपने यहां अन्तर्जातीय विवाह केन्द्र की स्थापना की जो दहेज उन्मूलन की दिशा में एक सुदृढ़ कदम है। नशाबन्दी नारी सुरक्षा आदि के लिए भी सराहनीय कार्य किये हैं। अनाथों के संरक्षण के लिए आर्य बाल गृह पटौदी हाउस दरियागंज दिल्ली में हमारा यह संस्थान सम्पूर्ण सहयोग करता है। नारी शिक्षा के लिए आर्यसमाज गर्ल्स हायर सैकेण्डरी स्कूल की चावड़ी बाजार में स्थापना की यह स्कूल दिल्ली के पुरातन स्कूलों में से है।

आर्यसमाज ने देश में सिर उठाते अराष्ट्रीय तत्त्वों के खिलाफ सदा आवाज उठायी है। कश्मीर पंजाब, असम नागालैण्ड, मिजोरम, केरल आदि में उठती देश विरोधी, संस्कृति विरोधी समस्याओं के विरुद्ध आर्यसमाज दीवानहाल ने जन-सभाओं से समय समय पर जन जागृति की है। जन कल्याण समाज सुधार, राष्ट्रीय एकता के पवित्र संकल्प को यह संस्थान सदा स्मरण रखता हुआ सेवा करता रहेगा। पूर्ण विश्वास है।

— यशपाल सुधांशु

R. N No. 32387/77 Post in N.D.P.S.O. on 17-4-86 Licenced to post without prepayment, Licence No. U 139
रजि० नं० डी० (सी०) ७५६ पूर्व भुगतान बिना भेजने का लाइसेंस नं० यू १३९

ओ३म्

आर्य सन्देश

केवल ५० रुपये में तीन वर्ष तक

हर सप्ताह पढ़ते रहिए

- ☐ क्या आप ऋषि, मुनि, तपस्वी, योगियों की अमृत वाणी पढ़ना चाहते हैं ?
- ☐ क्या आप वेद के पवित्र ज्ञान को सरल एवं मधुर शब्दों में जानना चाहते हैं ?
- ☐ क्या आप उपनिषद्, गीता रामायण, ब्राह्मणग्रन्थों का आध्यात्मिक सन्देश स्वयं सुनना और अपने परिवार को सुनाना चाहते हैं ?
- ☐ क्या आप अपने शूरवीर एवं महापुरुषों की शौर्य गाथाएं जानना चाहेंगे ?
- ☐ क्या आप महर्षि दयानन्द की वैचारिक क्रान्ति से आत्मचेतना जागृत करना चाहते हैं।

यदि हां, तो आइये आर्यसन्देश परिवार में शामिल हो जाइए।

केवल ५० रुपये में तीन वर्ष तक हर सप्ताह पढ़ते रहिए। साथ ही वर्ष में चार अनुपम भव्य विशेषांक भी प्राप्त कीजिए।

एक वर्ष केवल २० रुपये, आजीवन २०० रुपये।

प्राप्ति स्थान **आर्यसन्देश साप्ताहिक**

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

१५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-११०००१

उत्तम स्वास्थ्य के लिए

गुरुकुल काँगड़ी फार्मेसी,

हरिद्वार की औषधियां

सेवन करें

शाखा कार्यालय—६३, गली राजा केदारनाथ,
चावड़ी बाजार, दिल्ली-६ फोन : २६९८३८

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन : ३१०१५० के लिए डा० धर्मपाल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा वैदिक प्रेस, गली नं० १७, ..., दिल्ली-३१ में मुद्रित। रजि० नं० डी० (सी०) ७५६

वर्ष १० · अंक २२ | रविवार, २७ अप्रैल, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ | वैशाख २०४३ | दयानन्दाब्द—१६१

मूल्य एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश में ५० डालर, ३० पौंड

हिन्दी ही देश की एकता और अखण्डता की कड़ी

—पी० शिवशंकर, केन्द्रीय मंत्री

नई दिल्ली, २० अप्रैल। महात्मा हंसराज दिवस के उपलक्ष्य में तालकटोरा इण्डोर स्टेडियम में आयोजित एक विशाल सभा को सम्बोधित करते हुए केन्द्रीय वाणिज्य मंत्री श्री पी० शिव शंकर ने अपने भावपूर्ण उद्गार व्यक्त करते हुए कहा कि देश की एकता और अखण्डता के लिए हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में सर्वात्मना अपनाना नितान्त आवश्यक है। महात्मा हंसराज जी द्वारा स्थापित डी० ए० वी० संस्थाएं यह कार्य बड़ी सुगमता से सम्पन्न कर सकती है। संस्था के सचालकों से उन्होंने अनुरोध किया कि वे दक्षिण भारत में डी० ए० वी० विद्यालयों की स्थापना करें। वर्तमान समय में आध्यात्मिक और चारित्रिक शिक्षा की देश को नितान्त आवश्यकता है। आर्यसमाज और डी० ए० वी० सस्थाओं का इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। मैं आज जो कुछ भी हूँ उसका श्रेय आर्यसमाज के संस्कारों को ही जाता है।

सभा को सम्बोधित करते हुए प्रसिद्ध संविधानविद् डा० लक्ष्मीमल सिंघवी ने महात्मा हंसराज को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन्हें भारतीय चेतना और पुनर्जागरण का अग्रदूत बताया। डा० सिंघवी ने कहा कि महात्मा हंसराज जी व स्वामी दयानन्द जी का आविर्भाव न हुआ होता तो गांधी जी का मार्ग इस प्रकार प्रशस्त न हो पाता। डा० सिंघवी जी ने स्वामी दयानन्द को राष्ट्र के शिल्पी

(शेष पृष्ठ ५ पर)

॥ ओ३म् ॥

आर्यसमाज दीवान हाल दिल्ली

शताब्दी समारोह

के विविध कार्यक्रम

राष्ट्र एकता यज्ञ

आर्यसमाज दीवान हाल, दिल्ली के शताब्दी समारोह का विस्तृत कार्यक्रम १८ अप्रैल से आर्यसमाज दीवान हाल में राष्ट्रमेध यज्ञ (राष्ट्र (एकता यज्ञ) से प्रारम्भ होगा। इस का नेतृत्व स्वामी दीक्षानन्द जी, श्री प० राजगुरु शर्मा तथा ऋत्विज् प० यशपाल सुधांशु करेंगे। यज्ञ का समय प्रातः ७.३० से ९ ३० बजे तक रहेगा। यज्ञ के उपरान्त प्रसिद्ध वैदिक विद्वानों के प्रवचन का आयोजन रहेगा। यह यज्ञ २७ अप्रैल तक चलेगा।

उद्घाटन समारोह

२५ अप्रैल शुक्रवार, मध्याह्न २ बजे से ५ बजे तक

स्थान—मावलंकर हाल, रफी मार्ग, नई दिल्ली

उद्घाटन । श्री रामगोपाल शालवाले

मुख्य अतिथि : श्री के० सी० पन्त
(इस्पात एवं खान मन्त्री)

अध्यक्ष । सर्वश्री डा० स्वामी सत्यप्रकाश जी

वक्तागण—स्वामी दीक्षानन्द जी महाराज, प्रो० शेरसिंह, प्रो० वेद व्यास, वैद्य रामकिशोर जी, आचार्य विशुद्धानन्द शास्त्री, श्री पं० शिवकुमार शास्त्री, श्री पं० राजगुरु शर्मा आदि।

तथा अन्य अनेक विद्वान्, आर्य नेतागण सम्बोधन देंगे।

विशाल भव्य शोभा यात्रा

२६ अप्रैल, प्रातः १० बजे से

लालकिला से प्रारम्भ

२७ अप्रैल, प्रातः १० बजे दीवान हाल

पूर्णाहुति । श्री आर० वेंकटरमण (उपराष्ट्रपति भारत)

मुख्य समारोह

२७ अप्रैल, अपराह्न २ बजे से

तालकटोरा इण्डोर स्टेडियम, नई दिल्ली

मुख्य अतिथि : श्री बलराम जाखड़ (अध्यक्ष लोकसभा)

श्री सीताराम केसरी (संसदीय कार्य मंत्री)

अध्यक्ष : लाला रामगोपाल शालवाले (प्रधान सार्वदेशिक सभा)

सम्बोधन—स्वामी दीक्षानन्द जी, डा० स्वामी सत्यप्रकाश जी, श्री पं० शिवकुमार शास्त्री, श्री पं० राजगुरु शर्मा, श्री डा० वाचस्पति उपाध्याय, श्री पं० क्षितीश वेदालंकार आदि।

समस्त कार्यक्रम मे बढ-चढकर भाग लें तथा तन-मन-धन से सहयोग करें। इस पुनीत यज्ञीय अवसर पर अपनी हव्य आहुति भी अवश्य डालें।

निवेदक :

म० धर्मपाल (प्रधान) | अशोक सहगल (महामन्त्री)

आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली राज्य

सूर्यदेव (प्रधान) | डा० धर्मपाल (महामन्त्री)

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

सम्पादक—यशपाल 'सुधांशु' एम० ए० | व्यवस्थापक—डा० [illegible] | प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल

जीवन को मोड़ देने वाले

प्रेरक प्रसंग

प्रस्तोता—सत्यानन्द आर्य

: १ :

बम्बई मे आर्यसमाज मन्दिर के निर्माण के लिए एक निधि खोली गई थी। लोग यथाशक्ति उस में दान दे रहे थे। एक मारवाड़ी सज्जन महर्षि दयानन्द के निकट आए और नम्रता से बोले—"महाराज, मेरे पास दस सहस्र रुपये हैं। वह सारा द्रव्य मैं आर्यसमाज मन्दिर के कोश में समर्पित करता हू। कृपया यह तुच्छ भेंट स्वीकार कीजिए।"

महर्षि जी ने उन की भावना की प्रशंसा करते हुए कहा—"मैं अतीव प्रसन्न हूं कि आप के हृदय मे इतना धर्म प्रेम है, परन्तु मैं आप की सम्पूर्ण पूंजी लेकर आप के परिवार को परमुखापेक्षी, परान्नपरायण भिक्षुक नहीं बनाना चाहता।" आगे उन्होंने समझाया "जिस धर्म के एक अंग का पालन करते दूसरा धर्मांङ्ग बिगड़ जाए वह धर्म ठीक नही। उस मन्दिर की क्या शोभा होगी, जिस के बनने में आप का व्यापार बन्द हो जाए, आप की गृहस्थ-यात्रा न चल सके? हां, आप से एक सहस्र रुपया अवश्य लिया जा सकता है।"

: २ :

भगवान् बुद्ध को प्यास लगी थी। आनन्द पास के पहाड़ी झरने पर पानी लेने गया किन्तु देखा कि झरने से अभी-अभी बैलगाड़ियां गुजरी हैं और सारा जल गंदला हो गया है। वे वापस लौट आए और भगवान् से बोले—"मैं पीछे छूट गई नदी पर जल लेने जाता हूं, इस झरने का पानी बैलगाड़ियों के कारण गंदला हो गया है।" किन्तु भगवान् ने आनन्द को वापस उसी झरने पर भेजा। तब भी पानी साफ नहीं हुआ था और आनन्द लौट आए। ऐसा तीन बार हुआ। परन्तु चौथी बार आनन्द हैरान रह गए। सब सड़े गले पत्ते नीचे बैठ चुके थे, काई सिमटकर दूर जा चुकी थी और पानी आइने की भांति चमक रहा था। इस बार वे पानी समेत लौटे।

भगवान् ने तब कहा—"आनन्द, हमारे जीवन के जल को भी विचारों की बैलगाड़ियां रोज-रोज गंदला करती हैं और हम जीवन से भाग खड़े होते हैं किन्तु हम भागें नहीं मन की झील के शान्त होने की थोड़ी-सी प्रतीक्षा कर लें तो सब कुछ स्वच्छ हो जाता है, उसी झरने की तरह।"

: ३ :

एक और वेश्यागामी युवक को उसके हितैषी मित्र महर्षि दयानन्द जी के पास लाए कि इसे सत्पथ पर ले आइए। महर्षि जी ने वेश्यावृत्ति से होने वाले आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक पतन का चित्र उसके सामने खींचा। फिर उन्होंने पूछा, "युवको, भला यह तो बताओ कि वेश्या-सक्ति से यदि लड़की उत्पन्न हो, तो वह लड़की किस की हुई?" युवक के मित्रों ने कहा, "उस वेश्यासक्त पुरुष की।" महर्षि जी ने पूछा, "युवती होकर वह क्या करेगी?" वह युवक स्वयं बोला, "भला और क्या करेगी? बाजार में बैठेगी।" तब महर्षि जी ने मर्मस्पर्शी शब्दों में कहा, "देखिए संसार में कोई भी भला मनुष्य नहीं चाहता कि उसकी पुत्री अपना शरीर बेचे। परन्तु वेश्यानुरक्त जन ही ऐसे हैं जो अपनी ही बेटियों को वेश्या बनाते हैं। आप ही सोचिए कि क्या यह बहुत बुरी बात नहीं है?'

यह सुनकर कुव्यसनी युवक के रोंगटे खड़े हो गए। उस ने महर्षि जी के चरण छूकर सदाचार का व्रत लिया। बाद में वह महर्षि जी का शिष्य बनकर धार्मिक जीवन बिताने लगा।

: ४ :

मिस्र के काहिरा शहर में एक बार स्वामी विवेकानन्द रास्ता भूल गए और भटकते-भटकते वेश्याओं के गन्दे मोहल्ले में जा निकले। दुःसंयोग यों रहा कि वेश्याओं ने ग्राहक समझकर उन का भी आह्वान किया। स्वामी जी निस्संकोच उन के पास गए। किन्तु उन तक पहुँचते-पहुंचते उनके अन्तर्यामी की करुणा आखों से टपकने लगी। रुद्ध कण्ठ से अपने साथियों को सम्बोधित करके स्वामी जी बोले, "ये ईश्वर की हतभाग्य संतानें हैं। शैतान की उपासना में भगवान् को भूल गई हैं।"

करुणा विह्वल स्वामी जी के इस दिव्य रूप को देखकर वेश्याएँ भी फूट-फूटकर रोने लगीं। एक सप्ताह बाद ही उस मोहल्ले की वेश्याओं ने अपनी समस्त सम्पत्ति लगाकर उस गन्दी गली को एक सुन्दर सड़क में परिणत कर लिया और शीघ्र ही वहाँ एक पार्क, एक मठ और एक महिलाश्रम भी निर्मित हो गया।

□

सरहदों के पार था कल तक लहू

हर दिशा के हाथ में, अंगार कैसे आ गए।
बेकफन ये लाश के, उपहार कैसे आ गए॥

मोल मिट्टी के बिके हैं, शीश कल बाजार में।
दोस्तों के वेश मे, खरीदार कैसे आ गए॥

कौन किस का मीत है, भाई यहाँ है भीड़ में।
कल यहा पर फूल थे, अब खार कैसे आ गए॥

सरहदों के पार था, कल तक लहू, कल तक कत्ल।
देखते ही देखते, इस पार कैसे आ गए॥

सिर उठाती आंधियां ये, खेल होती हैं नहीं।
नमन करने को इन्हें, लाचार कैसे आ गए॥

यहीं चले थे सोचकर हम, कि अमन अब हो गया।
खून के बादल यहाँ, इस बार कैसे आ गए॥

—रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'
७३२ सदर बाजार, बरेली कैन्ट

रामनवमी

शबरी के जूठे बेर खाये जिस राम ने थे,
भक्त उसके ही भेद-भाव-अनुरागी हम।
मृत्तिका को उसने बनाया हेम, हेम को भी—
मिट्टी में मिलायें ऐसे हन्त! हतभागी हम।
भ्रातृ भावना का वह प्रथित नमूना कहाँ
एक में अनेक कहाँ बन्धुता-विरागी हम।
उसने लगाये देश-गौरव में चार चांद
रौरव-रसिक हाय! देश से ही बागी हम॥

पीड़ा का न लेश शेष मन में विमाता के हो
राजसी उतार वस्त्र चीर धरे वन के।
बड़ों के निदेश के समक्ष लक्ष लालसाएँ
लुप्त हुईं चन्द्रिका में रंग ज्यों गगन के।
घृणा के समुद्र रुद्र क्षुद्रता-उपासकों के
नागर प्रणम्य प्राण-तुल्य ग्राम-जन के।
आदि में भी अन्त में भी व्याप्त भू-दिगन्त में भी
सौरभ-समान गुण जानकी-रमण के॥

शील का निधान शौर्य-स्वतः प्रमाण जो था,
याद उस राम की दिलाती रामनवमी।
रावण के नाश से दिशाएँ विहंसी थीं जब,
कथा उस काल की सुनाती राम नवमी।
सदा यज्ञ रूप जो था लोक-सेवी भूप जो था
उसकी अनूपता बताती राम नवमी।
संयम-सुनीति-प्रेम-प्रीति का प्रशस्त पथ
विश्व को दिखाने 'वीर' आती राम नवमी॥

—धर्मवीर शास्त्री
बी I/६१, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-६३

आर्यसमाज दीवानहाल : प्रेरक प्रसंग

लेखक : सच्चिदानन्द शास्त्री

फव्वारे पर स्थित आर्यसमाज तथा चावड़ी बाजार में स्थित आर्यसमाज दूसरा ही था। उस समय दीवान हाल का अस्तित्व भी न था। १९३६ में इस भवन का शिलान्यास म० नारायण स्वामी जी महाराज द्वारा हुआ था। १९३८ के आस-पास भवन बनकर तैयार हुआ और श्री राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने इस भवन का उद्घाटन किया। तभी चावड़ी बाजार से आर्यसमाज इस नवनिर्मित भवन अर्थात् ला० दीवानचन्द्र जी के सात्विक दान से निर्माण कराया गया। फव्वारा आर्य-समाज भी इसी मे मिल गया। फव्वारा आर्यसमाज के सदस्य इस दीवान हाल में सदस्य स्वीकार कर लिए गए। श्री ला० रामगोपाल जी शालवाले इसी के सदस्य थे।

सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन इस भवन के सामने ४ से ६ नवम्बर १९२७ में हुआ था। इस सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी थे।

आर्यसमाज दीवान हाल, हैदराबाद सत्याग्रह का धर्मयुद्ध शुरू हो गया। आर्य-समाज की मागो के समर्थन में निजाम स्टेट तथा देश के अन्य भागों से हजारों व्यक्तियों ने अपनी गिरफ्तारी दी। उत्तर-पश्चिम से हजारों सत्याग्रही दिल्ली से पास होकर हैदराबाद प्रस्थान करते थे। उन की आवभगत-व्यवस्था, निवास का प्रबन्ध आर्यसमाज दीवान हाल द्वारा ही होता था।

प० व्यासदेव जी शास्त्री के साथ ला० रामगोपाल जी शालवाले, ला० चतुर सेन गुप्त, पं० देवेन्द्रनाथ शास्त्री, प्रो० रामसिंह आदि नेता कार्यरत थे। इन्हें आज्ञा दी गई थी कि वे अपनी गिरफ्तारी अभी सत्याग्रही बनकर जाने की इच्छा न करें और आन्दोलन को संगठित करते रहें निरन्तर आर्यसमाज दीवान हाल में ही रहें।

हैदराबाद सत्याग्रह और श्री देहलवी जी

जनवरी १९३९ में हैदराबाद मे धार्मिक अधिकारो की प्राप्ति के लिए जो सत्याग्रह सग्राम प्रारम्भ हुआ, उस की लम्बी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। आर्य-समाज को विवश होकर आत्मरक्षा और वैदिक धर्म के प्रचार पर मुस्लिम निजाम शाही के लगाये प्रतिबंधों के निवारणार्थ सत्याग्रह अनिवार्य था। १९३२-३३ से ही शांतिपूर्ण प्रयासों से संघर्ष को टालने का का प्रयास किया। साम्प्रदायिक विद्वेष की ज्वाला भड़काने वाले रजाकारी भाषणों पर जब निजाम ने प्रतिबन्ध नहीं लगाया तो आर्यसमाज ने इस का उत्तर देने के लिए अरबी-फारसी के विद्वान् मुस्लिम धर्म ग्रंथों का गहरा ज्ञान रखने वाले श्री प० रामचन्द्र जी देहलवी को बीदर-हैदराबाद भेजा गया। वहाँ वैदिक धर्म और इस्लाम के तुलनात्मक जो भाषण हुए उस से मुसलमान व सरकार तिलमिला उठे और "रहबरे दक्खन" पत्रिका द्वारा पं० जी को चेतावनी दी कि वह ऐसे व्याख्यान न दें। मुसलमानों में घोर असन्तोष था। पण्डित जी ने पुलिस की रिपोर्ट के अनुसार कहा था कि "वेद, कुरान, इञ्जील व दीगर-आसमानी कुतुब का बाप है। सिवाय वेद के दीगर कुतुब नाकाबिले अमल है और इन्सान के बनाये हुए हैं। कुरान रात को उतरा है रात को कौन उतरता है मालूम है।" इस पर (सब हंसे) वेद सूरज है बाकी मजहब लैम्प और चिराग हैं।

इस पर प० जी पर अन्य मतो की मान हानि होने से पुलिस ने मुकदमा चलाया। अन्त मे अभियोग वापस लिया गया। यह लोक मत और आर्यसमाज की महान् विजय थी। इस प्रकार उन्हें और राज्यों में प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

पं० रामचन्द्र देहलवी के प्रतिबन्धित करने के बाद सार्वदेशिक सभा ने आर्य-समाज के प्रसिद्ध विद्वान् प० व्यास देव शास्त्री को वहाँ भेजा जाना था किन्तु निजामशाही की रोक पर दिल्ली सरकार ने ही उन्हें वहाँ जाने से रोक दिया। इस प्रकार इन दो महान् आर्य नेताओ के भाषणों से भारत सरकार और निजाम सरकार दहल गई।

देहलवी जी के ऊपर लगे प्रतिबन्ध के विरोध में रेलवे स्टेशन के सामने सर्वप्रथम श्री ला० देशबन्धु गुप्त की अध्यक्षता में सार्वजनिक सभा आयोजित की थी। उस समय आर्यसमाज दीवान हाल नहीं था बल्कि आर्यसमाज चावड़ी बाजार के नाम से प्रसिद्ध था।

ला० नारायणदत्त ठेकेदार व दलितोद्धार सभा

खिलाफत आंदोलन में मुसलमानों में जो संकीर्ण भावना पैदा हो गई थी। ईसाइयों के समान मुसलमान भी अछूत हरिजनों को मुसलमान बनाने में प्रयत्न-शील थे। उसे दृष्टि मे रखकर स्वामी श्रद्धानन्द जी ने दलितोद्धार सभा स्थापित कर अछूतों की ओर ध्यान दिया। आर्य-समाज द्वारा पहले भी कार्य किया जा रहा था। इस में दिल्ली के जिन विशेष व्यक्तियों का सहयोग था। उन में थे—श्री ला० नारायणदत्त जी ठेकेदार आर्यसमाज के नेता थे। दिल्ली के चमारों को शिकायत थी कि जूते के दुकानदार उन से दुर्व्यवहार करते हैं। उन दिनों दिल्ली में हिन्दुओं की कोई दुकान न थी। जूतों का व्यवसाय मुसलमानों के हाथों में था।

श्री ला० नारायणदत्त जी ने चमार भाइयों की शिकायत दूर करने के लिए "नारायण शू कम्पनी" नाम से जूतों की एक दुकान खोल दी। अन्य हिन्दुओं ने भी उन का अनुसरण किया। इस तरह २० दुकानें हिन्दुओं की खुल गईं। इस से चमारों की कुछ शिकायत दूर हुई। ला० नारायणदत्त की दुकान देर तक तो नहीं चली क्योंकि उन का अपना व्यवसाय ठेकेदारी का था। उस में उन्हें घाटा हुआ। इस से दुकान बेच दी। पर जिस उद्देश्य से "नारायण शू क०" खोली थी, वह उद्देश्य पूरा हो गया। हिन्दुओं मे जूतों के व्यव-साय की भावना से हीनता की भावना दूर हो गई। ला० नारायणदत्त जी स्वामी श्रद्धानन्द के अनन्य भक्त थे। उन से प्रेरणा पाकर ही दलितोद्धार के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया था।

आर्य महासम्मेलन दिल्ली

यह सम्मेलन बडे उत्साह के साथ मनाना निश्चय हुआ और १४०० सदस्य स्वागत समिति हेतु बन गए थे। इस स्वा-गत समिति के स्वागताध्यक्ष बनाए गए थे श्री ला० नारायणदत्त जी ठेकेदार। साथ ही चौ० देशराज जी को स्वागत मन्त्री चुना गया।

स्वागत करते हुए श्री ला० जी ने कहा था, मुस्लिम लीग द्वारा सत्यार्थ-प्रकाश के विरुद्ध उठाए गए आन्दोलन की विशेष रूप से चर्चा की और कहा कि परीक्षा की घड़ी आ ही गई है तो आर्य-समाज इस में पूर्णरूपेण सफल होगा।

उस समय जलूस की समाप्ति पर "ध्वजारोहण" करने पर जो भाषण दिया गया था उस में एक समर्थ उद्बोधन था कि—"यह ओ३म्" का ध्वज कपडे का निरा टुकड़ा ही नहीं है अपितु देश, जाति, धर्म का प्रतीक है। अत सब भेदभाव भुलाकर इस झण्डे के नीचे आ कार्य करने को उद्यत हों।

१९४६ में आर्यसमाज दीवान हाल के उत्सव पर श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी और श्री रामचन्द्र जी यकता का शास्त्रार्थ हुआ था, जिस की अध्यक्षता श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी ने की थी। उस समय एक छोटे से व्यक्तित्व वाले ने इस उत्सव पर जो अभिनय-परिचय के रूप में दिया था, वह थे श्री ला० राम-गोपाल जी शालवाले।

इस प्रकार समय-समय पर शास्त्रार्थों की परम्परा-सी चलती थी। दो दिग्गजों का मेल हर समय प्रतीक्षा मे रहता था कि कब, कहाँ वाक् चातुर्य दिखाने का अवसर मिले। प० रामचन्द्र जी देहलवी तथा पं० व्यास देव जी शास्त्री।

दिल्ली युवक मण्डल का उत्साह देखने योग्य होता था।

१. आन्दोलनों का कार्यक्षेत्र था आर्यसमाज दीवान हाल

हिन्दी रक्षा आन्दोलन मे आर्यसमाज दीवान हाल ही मुख्य स्थल था। बाहर से आए सत्याग्रहियों के निवास और भोजन की व्यवस्था का दायित्व पूर्णरूपेण दीवान हाल पर रहता था। कभी-कभी ऐसी भी स्थिति आई कि काम चलाने हेतु धना-भाव आ गया। तुरन्त ही श्री ला० राम-गोपाल जी उठ पड़े और केवल एक घण्टे मे एक लाख रुपया एकत्रित करके ले आये। यह बात निर्विवाद है जहां तक आन्दोलन का सम्बन्ध है हिन्दी सत्याग्रह आन्दोलन अपने आप मे एक सफल आंदो-लन रहा है। मालूम यह पडता था कि सत्याग्रह का स्थल चण्डीगढ, पजाब नहीं है बल्कि आर्यसमाज दीवान हाल ही सत्याग्रह भूमि है। बडी चहल-पहल, सत्याग्रहियो को बुलाना, फिर पजाब भेजना, यह सब आर्यसमाज दीवान हाल द्वारा ही सम्पन्न होता था।

२. गोरक्षा सत्याग्रह

केन्द्रीय गोरक्षा महाभियान समिति के आह्वान पर संसद भवन पर प्रथम प्रद-र्शन आर्यसमाज दीवान हाल से श्री ला० रामगोपाल शालवाले द्वारा ही किया गया था जिस मे सरकार से गोहत्या बन्दी की मांग की गई थी और आर्यसमाज को प्रत्येक काम मे सब से आगे पायेंगे, यह घोषणा की गई। लोकसभा के लिए चुने गए थे श्री ला० जी। उस दिन चुनाव की घोषणा होने वाली थी। तुरन्त बाद ही आर्यसमाज दीवान हाल में एक जत्था लेकर श्री राम-गोपाल जी शालवाले सत्याग्रह को चल पडे और गिरफ्तार हो गए।

आर्यसमाज दीवान हाल द्वारा समय-समय पर स्टेशनों पर जाकर गायों से लदी ट्रेनों को रोककर सरकार से प्रोटेस्ट करना आदि ऐसे कार्य हैं जिन का कार्य-स्थल आर्यसमाज दीवान हाल ही था यहीं सार्वजनिक सभाएं, सत्याग्रहियो का अभि-नन्दन, सरकार की गोहत्या बन्दी की निंदा की जाती थी। जगद्गुरु शंकराचार्य निरञ्जनदेव तीर्थ का जब अनशन बन्द हो गया तो उन के भाषण आर्यसमाज दीवान हाल में ही होते थे। इसी प्रकार स्वामी करपात्री जी के भी भाषण होते रहे। पूज्य स्वामी करपात्री जी ने एक बार आर्यसमाज दीवान हाल से सत्याग्रह भी किया था।

(शेष पृष्ठ ७ पर)

मां-बाप पर भी रिसर्च होती है

डा० भवानीलाल भारतीय

★

आचार्य विश्वश्रवा जी ने अपने लेख मे इस बात का उपहास किया है कि लोग अपनी मां और बाप पर रिसर्च (डी०लिट्) करते हैं। यह लिख कर वे उन रिसर्च स्कालरों का मजाक बनाते है जो किसी महापुरुष के वैयक्तिक जीवन के सबन्ध में तथ्य पूर्ण अनुसंधान करते हैं या करना चाहते हैं। सच तो यह है कि मां बाप पर भी रिसर्च की जाती है। यदि देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय जैसे स्वामी दयानन्द के जीवन विषयक अनुसंधान मे समर्पित व्यक्तित्व वाले लोग शोध नही करते तो न तो हमें यह पता लगता कि स्वामी जी के पिता का नाम करसन जी लाल जी तिवारी था और न हम यही जान सकते थे कि वे (१) एक बडे जमीदार थे। (२) वे लेन-देन का काम करते थे। (३) उन्हें जमेदार (फौजदार) का पद प्राप्त था (४) वे शिव भक्त थे। अस्तु। अब माता की बात लें। स्वामी जी की माता के अब तक निम्न नाम भिन्न-भिन्न लोगो ने प्रस्तुत किये हैं।

(१) मेधाव्रताचार्य ने महाराज की माता का नाम रुक्मिणी लिखा है। (द्रष्टव्य दयानन्द दिग्विजय सर्ग ३ श्लोक ४)

२. स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने उनकी माता का नाम यशोदा बताया। (द्रष्टव्य-राष्ट्रीय इतिहास का अनुशीलन पं० जयचन्द्र विद्यालकार कृत पृ ४८)।

३ स्वामी विद्यानन्द विदेह ने दयानन्द चरितामृत मे मूलशकर की जननी का नाम शोभा बाई लिखा है —

कर्षन के घर बजत बधाई।
बड कुल मे जन्मो सुत सुन्दर।
बड भागिन शोभाहरषाई॥

४. राजकोट के स्व० श्रीकृष्ण शर्मा ने स्वामी जी की माता का नाम अमूबेन (अमृतबाई) बताया। प्रो० दयाल जी भाई इस से सहमत नही हैं। क्या आचार्य जी शोधकर्ताओ को स्वामी जी की माता का वास्तविक नाम खोज निकालने से विरत करेंगे? मां-बाप पर की गई रिसर्च से सन्तान के सस्कारो का पता चलता है।

वस्तुत तथ्य तो यह है कि विश्वश्रवा जी की आतरिक पीडा भी यही है कि वे भी रिसर्च कर अपने नाम के आगे डी० लिट्० या पी० एच० डी० क्यों नहीं लगा सके। वे वेदाचार्य भी हैं और एम० ए० भी। उनकी एक बडी लालसा थी "महामहोपाध्याय" की उपाधि प्राप्त करने की। दुर्भाग्य से ब्रिटिश शासन की समाप्ति के साथ ही महामहोपाध्याय की उपाधि देना बन्द हो गया तो आचार्य जी ने एक नई तरकीब निकाली। उन्होंने १९५१ में प्रकाशित अपनी पुस्तक यज्ञ-पद्धति मीमासा के मुख्य पृष्ठ पर अपना नाम इस प्रकार छापा -

म० म० आचार्य विश्वश्रवा

इसे पढकर प्रथम दृष्टि से पाठक उन्हें महामहोपाध्याय ही मानने का सुखद भ्रम पालने लगे, किन्तु पुस्तक के भीतरी पृष्ठ पर वे म० म० न लिख कर लिखते हैं -

महामहोपदेशक आचार्य विश्वश्रवा: वैदिक रिसर्च स्कालर--

आचार्य जी पी-एच० डी० वालों को लाख कोसते रहें, रिसर्च स्कालर कहलाने का भूत उन पर भी कम नही है। इसी म० म० का चमत्कार एक अन्य रूप में हम उनके ऋग्वेद महाभाष्यम् पर छपे, उनके नाम के साथ देखते हैं। यहा वे अपने आप को महामहिमोपाध्याय लिखते हैं। अब उन के गुरु पं० शिवदत्त दाधिमथ म० म० (महामहोपाध्याय) हैं तो शिष्य क्यों कम रहे? न सही "महामहोपाध्याय" "महामहिमोपाध्याय" कहलाने से उनको कौन रोक सकता है। हम यह पता अब तक नही लगा सके कि उन्हें महामहिमोपाध्याय की उपाधि किसने और किस उपलक्ष्य में प्रदान की। रिसर्च और रिसर्च स्कालरों तथा उनके निर्देशक प्रोफेसरों को कोसने वाले स्वय आचार्य जी अपने आपको भूतपूर्व प्रोफेसर तथा रिसर्च स्कालर संस्कृत विभाग, अनुसंधान विभाग डी० ए० वी० कालेज लाहौर' कहलाने मे गर्व अनुभव करते हैं।

बात यह है कि अपने लेख के प्रारंभ मे उन्होंने मां और बाप पर रिसर्च करने वाले जिन दो भाइयों की कथा लिखी है वह तो काल्पनिक ही है क्योंकि जब आचार्य जी स्वयं ही पी-एच० डी० या डी० लिट् नही हैं तो उनके पास भला शोधार्थी क्यों आते? हमें यह जानकर और भी खेद हुआ कि लाहौर के ओरियण्टल कालेज के प्रिंसिपल प्रो० ए० सी० वूलनर के शिष्य बन कर नाना भाषाओं और लिपियों का ज्ञान प्राप्त करने वाले, सम्पादक कला तथा शोध प्रक्रिया सीखने वाले विश्वश्रवा जी स्वय पी० एच० डी० प्राप्त नहीं कर सके और इसी पीड़ा ने उन्हें मां और बाप पर रिसर्च करने के इच्छुक भाइयों की कल्पित कथा लिखने के लिए बाध्य किया।

स्वामी दयानन्द का जीवन चरित्र लिखने वाले सभी प्रणम्य और वंदनीय महापुरुषो के प्रति आचार्य जी को अत्यंत विरक्ति और चिढ़ है। तभी तो प० लेखराम का नाम लिये बिना वे कहते हैं कि "स्वामी जी के स्वर्गवास के पश्चात् ऋषि भक्तों ने महर्षि का जीवन चरित्र लिखना प्रारम्भ किया। सब जगह घूम-घूम कर पूछते फिरते थे कि आपने स्वामी दयानन्द को देखा था।" प० लेखराम और देवेन्द्रनाथ के शोध कार्य के प्रति उपयुक्त तिरस्कार पूर्ण भाव प्रकट करने वाले यह भूल जाते हैं कि यदि उपयुक्त लेखक-द्वय श्री महाराज के जीवन विषयक तथ्यों की खोज जन जन से पूछ पूछ कर नही करते तो समग्र दयानन्द चरित्र तमसाच्छन्न ही रह जाता और उस महापुरुष के विराट व्यक्तित्व से हम सर्वथा अपरिचित ही रहते।

आचार्य जी वस्तुत ऋषि की जीवनी में कोई दिलचस्पी नहीं लेते तभी तो वे यह लिख बैठे कि "एक जीवन चरित्र में यह छाप दिया कि स्वामी दयानन्द के पिता ने दो विवाह किये थे।' मैं आचार्य जी को चैलेंज देता हूं कि वे ऋषि के किसी भी जीवन चरित्र में यह लिखा बता दें कि महाराज के पिता की दो पत्नियां थी। मैंने स्वामी जी के जितने जीवन चरित्र पढे हैं और सग्रह किए हैं उनके आधार पर मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि स्वामी जी के किसी भी जीवन चरित्रकार ने ऐसा नही लिखा। जिसने लिखा, वे जीवन चरित्रकार नही हैं और न वह पुस्तक ही जीवन चरित्र है। अत यह बात यही तक रहे।

अब एक और मिथ्या प्रसंग का भण्डाफोड़ किया जा रहा है। आचार्य जी अपने लेख में लिखते हैं कि "वे राजकोट निवासी लाभशंकर व्याकरणाचार्य से मिलने राजकोट गये···उस समय वे (आचार्य जी) बहुत हट्टे कट्टे थे और उनका विवाह भी नहीं हुआ था। वे लाभशंकर के हाथ-पांव तोड़ देते यदि लोगों ने उसे बचाया न होता आदि।" पं० लाभशंकर शास्त्री राजकोट के निवासी नहीं हैं। ये मोरवी के निवासी हैं अत: उससे मिलने राजकोट जाने और उसके हाथ पांव तोड़ने का आचार्य जी का उत्साह दिखाना आदि सर्वथा कल्पित है।

तथ्यों को न जानने वालों को बहकाना आचार्य जी के लिए सरल हो सकता है किन्तु ऋषिजीवन विषयक तथ्यों को हस्तामलकवत् रखने वाले मुझ जैसे गवेषकों के समक्ष इन का यह मिथ्या प्रलाप बालू पर बनाये जाने वाले भवन की ही भांति ध्वस्त हो जाने वाला है। पं० लाभ शंकर द्वारा बताई गई घटनायें १९५९ में प्रकाशित की गयी। क्या आचार्य जी १९५९ तक अविवाहित ही थे? कम से कम हमे तो यह पता नही कि आचार्य जी का विवाह १९५९ के बाद में हुआ है? यदि कोई ऐसी दुर्घटना घटी भी होगी तो उस समय आचार्य जी की आयु ५५ वर्ष के लगभग रही होगी।

अब आचार्य जी द्वारा वर्णित दूसरी घटना को लें। वे जोधपुर आर्यसमाज के जलसो मे जाते रहे हैं। मैंने भी अपनी छात्रावस्था में उन के अनेक प्रेरणाप्रद भाषण सुने। मैं उनकी विद्वत्ता और वक्तृत्व शक्ति से उस काल मे अत्यन्त प्रभावित हुआ था। कारण कि मैं स्वय जोधपुर का ही निवासी हूं परन्तु मैं मूल प्रसग पर आता हूं। पं० घासीराम द्वारा सम्पादित (पं० देवेन्द्रनाथ लिखित अपूर्ण जीवनी को पं० घासीराम ने पूरा किया था।) स्वामी जी के जीवनचरित की चर्चा करते हुए आचार्य जी ने एक सर्वथा कपोल कल्पित बात जोधपुर के दो अज्ञातनामा वृद्ध पुरुषो के नाम से कहलाई है, जिसका आशय यह है कि "जब प० घासीराम जीवनचरित लिख रहे थे (आचार्य जी "जीवनचरित्र" और "जीवनचरित" मे अन्तर नही करते) वर्तमान जोधपुर नरेश ने उन्हें बुलाया। प० घासीराम राजा के अतिथि हुए और बहुत धन तथा शाल दुशाले प० घासीराम को दिए गए कि किसी प्रकार इस घटना (विष देने की) को तोड मरोडकर लिखा जावे।"

पाठक आचार्य जी को क्षमा करें। उपर्युक्त कपोल कल्पित बात लिखकर आचार्य प्रवर ने पाठकों को तो गुमराह किया ही है, पं० घासीराम जैसे आर्यसमाज के सौम्य नेता, लेखक, साहित्यकार तथा ऋषि भक्त को बदनाम करने का भी जघन्य अपराध किया है। प० घासीराम के चरित्र के बारे में तो उन के साथी और सहयोगी स्व० पं० गंगाप्रसाद जज से अधिक अभिज्ञ और कौन रहा होगा? मुझे स्वयं स्व० जज साहब ने जयपुर में पं० घासीराम विषयक अनेक संस्मरण सुनाए थे तथा उन की ऋषि भक्ति को वर्णित किया था। ऐसे गण्यमान्य आर्य लेखक को राजा से उत्कोच (रिश्वत) लेकर जीवनचरित को अन्यथा लिखने वाला बताना सर्वथा अनुत्तरदायित्वपूर्ण तथा असभ्य है। अब वास्तविकता को

मां-बाप पर भी रिसर्च होती है

जान लें। आचार्य जी दुनिया को तो जोधपुर की घटनाओं की गलत सलत जानकारी देकर भ्रमित कर सकते हैं किंतु इन पंक्तियों का लेखक इससे गुमराह नहीं हो सकता।

तथ्य यह है कि—

पं० घासीराम जोधपुर के राजकीय महाविद्यालय जसवन्त कालेज मे तर्क एवं दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त होकर १८९६ में आये थे। उस समय जोधपुर में महाराजा सरदारसिंह जी का शासन था, न कि महाराजा उम्मेदसिंह का (जिन के शासनकाल में आचार्य विश्वश्रवा आर्यसमाज जोधपुर के उत्सव में आमन्त्रित होकर गए थे।) वे उपर्युक्त पद पर पांच वर्ष तक रहे अर्थात् इस शताब्दी के आरंभ तक।

द्रष्टव्य जसवन्त कालेज जोधपुर की स्वर्ण जयन्ती स्मारिका पृ० ५।

A note on Past Professor: Ghasi Ram M A was appointed professor of logic and philosophy when B.A. classes were stared in 1896. He served the College for about five years upto 1901

उन पांच वर्ष के काल को जोधपुर में व्यतीत कर प० घासीराम अपने नगर मेरठ लौट गए और वकालत करने लगे। उस के पश्चात् उन्होंने कभी जोधपुर का मुह भी नही देखा। अत महाराजा उम्मेद सिंह द्वारा उन्हें धन और शाल दुशाले देना सर्वथा कपोल कल्पित एवं मिथ्या है। प० घासीराम द्वारा रचित स्वामी जी जीवनी का मुख्य उपजीव्य देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय रचित जीवनचरित है। इस जीवनचरित विषयक सामग्री सग्रह करने का कार्य तो देवेन्द्रनाथ ने १९०५ के लगभग प्रारम्भ किया था। महाराजा उम्मेद सिंह के राज्यकाल में पं० घासीराम कभी जोधपुर नही गये।

आचार्य जी ने जोधपुर में दयानन्द स्मृति भवन (मिया फैजुल्ला खा की कोठी जहां महाराज को विष दिया गया था) के किसी समारोह की घटना का उल्लेख किया है। उसके सम्बन्ध में मुझे अधिक कुछ नही कहना। किन्तु आचार्य जी ने इस प्रसग के समापन में लिखा है—"ऋषि के विष के विरोधी जितने लेखक हैं प्राय. सब जोधपुरिया हैं।" यह पंक्ति अस्पष्ट है। यदि लेखक (आचार्य जी) का आशय यह है कि जोधपुर के निवासी लेखकों ने स्वामी जी को विष देने की घटना को अस्वीकार किया है अथवा उसे मिथ्या बताया है तो वे स्वयं ही भ्रम में हैं। जोधपुर के सभी लेखकों और इतिहासकारों ने एक स्वर से श्री महाराज को विष देने की ही पुष्टि की है। इन लेखकों के नाम हैं—

प० नेनूराम ब्रह्मभट्ट (सरस्वती में प्रकाशित लेख)

प० पुरुषोत्तमप्रसाद नैयर (चांद के मारवाड़ी अंक में प्रकाशित लेख)

ठा० जगदीशसिंह गहलोत द्वारा नवजीवन में प्रकाशित मारवाड का भीषण पाप शीर्षक लेख।

बात यह है कि स्वयं आचार्य जी को तो इतिहास तथा श्री महाराज की जीवनियों से विरक्ति है। वे तो स्वामी जी के जीवनचरितों तथा उनके पत्र-व्यवहार को पढना भी पाप समझते हैं। अब उन्हें कौन बताये कि धर्मयुग जैसे लोकप्रिय पत्र मे जब श्रीमती सावित्री परमार तथा डा० त्रिलोकीनाथ ब्रजलाल के लेखो मे यह लिखा गया कि स्वामी जी को विष देने का आरोप नन्ही वेश्या पर नहीं लगाया सकता तो इन्ही पंक्तियों के लेखक ने इसका प्रबल प्रतिवाद करते हुए धर्मयुग में अपना विस्तृत वक्तव्य प्रकाशित कराया था। इस लेखक का इसी विषय पर शोधपूर्ण लेख धर्मयुग में शीघ्र ही छपेगा।

आचार्य जी को इस बात का बड़ा गिला है कि कोई स्वामी जी को सुधारक बताता है तो कोई नवजारण का पुरोधा (आचार्य जी का लक्ष्य मेरे द्वारा लिखित महाराज की खोजपूर्ण जीवनी की ओर है, जो इसी शीर्षक से परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुई है) किन्तु कोई उन्हें साक्षात्कृत धर्मा ऋषि नही कहता। मेरी तुच्छ बुद्धि मे स्वामी जी को सुधारक कहने, नवजागरण का पुरोधा सम्बोधित करने तथा साक्षात्कृत धर्मा ऋषि बताने मे कोई तात्त्विक विरोध नही है। दयानन्द जैसी बहुमुखी प्रतिभा का धनी सुधारक भी था, नवजागरण का पुरोधा भी था और अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा के तुल्य मन्त्रद्रष्टा ऋषि भी नवजागरण के पुरोधा (जीवनचरित) शीर्षक ग्रथ के लेखक ने महाराज के परलोक प्रस्थान के प्रसग में लिखा है—"महाराज की मानव लीला समाप्त हुई। उन्नीसवी शताब्दी के महर्षि, आर्य धर्म द्रष्टा, अप्रतिम धर्माचार्य और धर्म सशोधक, महान् समाज सस्कारक तथा राष्ट्र एवं मानव जाति के सर्वविध मगल विधायक महापुरुष के जीवन रूपक का यवनिका पतन हुआ।"

—पृष्ठ ५४४

मेरे विचार में उपर्युक्त पंक्ति में प्रयुक्त स्वामी दयानन्द के सभी विशेषणों को उचित ही कहा जाएगा। इन मे परस्पर विरोध कहा है?

लेखक के उपसंहार मे निवेदन है कि आचार्य जी मेरे कथन को उसी भावना से ग्रहण करें जैसे आचार्य द्रोण ने अपने शिष्य अर्जुन के प्रहारों को झेला था। मैं आचार्य विश्वश्रवा जी का प्रशंसक अपने छात्रकाल से ही रहा हू। उन की उत्कट ऋषिभक्ति सर्वथा श्लाघनीय है। □

श्री प्रियव्रत और श्री सन्तराम को गोवर्धन पुरस्कार

जयपुर, १० अप्रैल। सघड विद्या सभा ट्रस्ट ने १९८६ का गोवर्धन पुरस्कार गुरुकुल कांगडी सहारनपुर के आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति तथा समाजसेवी और लेखक श्री सन्तराम को देने की घोषणा की है।

ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री गोवर्धन बलभद्र कुमार हूजा ने यहां पुरस्कार समिति के निर्णय की जानकारी देते हुए बताया कि इससे पूर्व १९८१ में आचार्य रामप्रसाद वेदालकार, १९८२ मे डा० भवानी लाल भारतीय, १९८३ में पं० विश्वनाथ, १९८४ मे विद्या मार्तंड प० सत्यराम तथा १९८५ मे वेद मार्तण्ड पं० भगवद्दत्त पुरस्कृत हुए।

उन्होंने बताया कि श्री प्रियव्रत को इसी माह होने वाले गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में पुरस्कार प्रदान किया जाएगा। श्री सन्तराम को दिल्ली मे समारोह आयोजित कर पुरस्कार दिया जाएगा।

श्री हूजा ने बताया कि संघड विद्या सभा ट्रस्ट प्रारम्भ मे देराधाजी खान जिले के सघड तहसील के निवासियों की शिक्षा हेतु बना। १९४७ मे देश विभाजन के समय ट्रस्ट ने गुड़गांव मे एक शिक्षण सस्थान की स्थापना की। अब जयपुर से सचालित इस ट्रस्ट द्वारा हर वर्ष शिक्षा, समाज सुधार एव वैदिक साहित्य के क्षेत्र में पुरस्कार दिए जाते हैं। समाज सेवा के कार्यों के अतिरिक्त ट्रस्ट तेरह पुस्तकें प्रकाशित कर चुका है।

पुरस्कार प्राप्त ८५ वर्षीय श्री प्रियव्रत गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति रह चुके हैं। उन की पुस्तकें वेदोद्यान के चुने हुए फूल तथा वेद का राष्ट्रीय गीत पुरस्कृत हो चुकी हैं।

दूसरे पुरस्कार विजेता ९९ वर्षीय श्री सन्तराम इस शताब्दी के प्रथम दशक से लेखन और सम्पादन के क्षेत्र में "सन्तराम बी०ए०" के नाम से प्रसिद्ध हैं। आप की करीब सौ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है और इन पर अनेक पुरस्कार मिल चुके हैं। १९२२ मे कालेज छोडने के उपरान्त आप ने जातपात तोडक मण्डल बनाया। आप ने अपना समस्त जीवन जातिप्रथा में विरोध मे लगा दिया। आखें खोने के बावजूद आप समाज सेवा के कार्यों मे लगे हुए हैं। □

हिन्दी देश की एकता…

(पृष्ठ १ का शेष)

के रूप मे स्मरण किया और महात्मा हंसराज जी को उनके शिल्प को क्रियान्वित करने का श्रेय प्रदान किया।

समारोह की अध्यक्षता करते हुए स्वामी सत्यप्रकाश जी ने कहा कि महात्मा हंसराज जी को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा कि यद्यपि मैं संन्यासी हू, किन्तु वे गृहस्थ होते हुए भी मेरे से कही अधिक उच्चतर थे, कह कर उन की प्रशसा की।

समारोह में सार्वदेशिक सभा के प्रधान माननीय लाला रामगोपाल शालवाले, संसद सदस्य श्री रामचन्द्र विकल, भू० पू० केन्द्रीय मंत्री प्रो० शेरसिंह तथा भू०पू० सांसद श्री ओमप्रकाश त्यागी एव श्री शिवकुमार शास्त्री ने भी महात्मा जी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। □

डा० आनन्द सुमन द्वारा शुद्धियाँ

पटना, ६ अप्रैल। आर्यसमाज के युवा नेता वैदिक प्रवक्ता डा० आनन्द सुमन ने २ अप्रैल से ८ अप्रैल तक बिहार प्रांत की पीरो आरा दानापुर, पटना, बाकीपुर मे निरन्तर वैदिक धर्म प्रचार कार्य किया।

डा० सुमन की विचारधारा से प्रभावित होकर पीरो के विधर्मी युवक गोपाल को दीक्षा देकर गोपाल आर्य नाम दिया गया। दानापुर की कुमारी शाहीन बेगम पुत्री श्री कय्यूम अंसारी व टुनटुन अंसारी पुत्र सुरजूसाव को वैदिक धर्म मे दीक्षित कर कुमारी आशा देवी व अशोक कुमार नामकरण किया गया व दोनो का विवाह सम्पन्न करवा दिया। डा० सुमन द्वारा विवाह पद्धति की मनोहारी व्याख्या से प्रभावित होकर आर्यजनों ने डा० सुमन की भूरि-भूरि प्रशसा की।

नवसंवत्सर पर्व एवं आर्यसमाज स्थापना दिवस सम्पन्न

आर्यसमाज शिवाजी चौक खण्डवा मे दिनाक १०-४-८६ को नवसंवत्सर पर्व एव आर्यसमाज स्थापना दिवस मनाया गया।

प्रात ६.०० बजे ध्वज वन्दन गीत के साथ ध्वजारोहण कार्य सम्पन्न हुआ। साय काल ६ बजे से पर्व पद्धति अनुसार वृहद् यज्ञ, सन्ध्या, प्रार्थनादि के पश्चात् पर्व-पद्धति का लेख, दोनो पर्वों का पढकर सुनाया गया। प्रसाद वितरण एव शान्ति पाठ के पश्चात् वैदिक धर्म की जयघोष के साथ कार्यक्रम समाप्त हुआ।

मां पर पी-एच. डी. और बाप पर डी. लिट्

लेखक—म०म० आचार्य विश्वश्रवा: व्यास वेदाचार्य

दो सगे भाई मेरे पास आये और बोले कि आप ने अनेकों को पी-एच०डी० और डी-लिट् कराया है। हम लोगो के थीसिस का भी आप सिनाप्सिस बना दीजिए। मैंने पूछा कि आप लोगो के थीसिस का विषय क्या है? एक भाई बोला, मेरा थीसिस का विषय है—

"मेरी मां पतिव्रता थी या दुराचारिणी।"

दूसरे भाई ने कहा कि मैंने डी-लिट् के लिए विषय चुना है—

"मेरा पिता धर्मात्मा था या गुण्डा।"

मैं आश्चर्य के साथ इन दोनों भाइयों को देखने लगा। तब ये दोनों बोले, आप को संकोच क्यों हो रहा है। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने लिखा है—

सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिए।

दोनों भाइयों ने कहा कि रिसर्च का सिद्धांत है कि पूर्वाग्रह कुछ नही होना चाहिए। हम ईमानदारी से रिसर्च करेंगे कि हमारे मां-बाप क्या थे? और जो रिसर्च के बाद परिणाम होगा वह सिद्ध कर देंगे। आप तो डी० ए० वी० कालिज लाहौर में दस वर्ष रिसर्चस्कालर रह चुके हैं। आप को हर स्कालर को सहयोग देना चाहिए। मैंने उन को यह कह विदा किया कि एक सप्ताह बाद आना।

मैं सोचने लगा कि ऐसे भी पूत संसार में हैं। पर यह विचार मेरा थोडी ही देर रहा। मुझे स्मरण आया कि महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के स्वर्गवास के पश्चात् ऋषि भक्तों ने महर्षि का जीवन चरित्र लिखना प्रारम्भ किया। सब जगह घूम-घूमकर पूछते फिरते थे कि आप ने स्वामी दयानन्द को देखा था। यदि वह कहता कि हा तो उस से पूछते थे कोई बात सुनाइए। जो वह कहता वह लिख बैठते थे। किसी ने कहा स्वामी जी हुक्का पीते थे। बस लिख दिया। जीवन चरित्र लेखक यह भूल गए कि वे किसी प्रवर्तक का जीवन चरित लिख रहे हैं। अनेक ऐसी बातें हैं।

यह पूर्वाग्रह रहित स्कालरपना यहा तक बढा बढा कि एक जीवन-चरित में यह छाप दिया कि स्वामी दयानन्द जी के पिता ने दो विवाह किए। एक पत्नी से चार पुत्र थे फिर भी वृद्धावस्था में दूसरा विवाह किया। तब उन चारो लड़कों ने नालायक बाप से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया। जो दूसरा विवाह किया उस से स्वामी दयानन्द पैदा हैं। उस युग मे विधवा विवाह या बड़ी आयु की लडकी ब्याही नही जाती थी। बुड्ढा बाप ७० वर्ष का होगा और पत्नी अधिक से अधिक १६ वर्ष। यह है स्वामी दयानन्द जी के पिता की प्रशस्ति। कहो यह मां पर पी-एच० डी० और बाप पर डी-लिट् से कम है क्या?

उस में प्रमाण दिया था कि राजकोट के रहने वाले लाभशंकर व्याकरणाचार्य ने यह शुभ समाचार सुनाया है। मुझ से पढ़ कर रहा न गया और मैं राजकोट पहुंचा और लाभ शकर का मकान तलाश करके उस के घर गया और उस से पूछा कि इस का आधार क्या है तब वह बोला कि मेरे गांव में एक बढ़ई रहता था उसने मुझे बताया। मैंने लाभ शंकर से कहा कि स्वामी दयानन्द के पिता की मृत्यु के पश्चात् सम्पत्ति का केस चला। उन दिनों हिन्दू कोड बिल तो था नही। लड़की सम्पत्ति की मालिक हो नहीं सकती थी यदि कोई भी वंशज जीवित हो। केस के अनुसार सारी सम्पत्ति स्वामी जी की बहन के पुत्र पोपटलाल को मिली। मथुरा जन्म शताब्दी पर हम लोगों ने पोपटलाल के दर्शन किए थे। यदि पूर्व पत्नी के चार पुत्र थे तो वे मालिक हो जाते। पोपटलाल का प्रश्न ही नहीं उठता। तब लाभ शंकर बोला कि वे सौतेले लड़के थे। मैंने कहा कि सौतेले लडके मा के थे या बाप के भी सौतेले थे। मैंने कहा, लाभ शंकर मेरे शहर में एक बढई रहता है उस ने बताया कि लाभ शंकर की माँ के चार यार थे। तब वह लड़ने को तैयार हो गया। मैं बहुत हट्टा-कट्टा तो था, विवाह भी मेरा हुआ न था। मैं उस के हाथ पैर तोडकर डाल देता। मगर लोगों ने बचा दिया और मैं उस दुष्ट के घर से वापस लौटा।

(दूसरी घटना)

मैं जलसों पर पहले जाता था। जोधपुर के जलसे पर मुझे बुलाया। मेरा व्याख्यान अन्त में ही रखा जाता था। मैं पहली बार जोधपुर गया था। स्टेशन पर जोधपुर का बोर्ड पढ़ते ही ध्यान आया कि यही जोधपुर है जो ऋषि का हत्यारा शहर है। जिस दिन मेरा व्याख्यान था वह दिवाली का दिन था। मैं ऋषि दयानन्द पर जब व्याख्यान कहीं भी देता हूं आपा भूल जाता हूं। मैं जोश में दो-तीन घण्टे बोलता चला गया। जनता की आंखों में आंसू थे। कोई उठना नहीं चाहता था।

प्रात: काल दो वृद्ध पुरुष मुझ से मिलने आए। नन्ही जान-वेश्या और जोधपुर नरेश के फोटो उन के हाथों में थे। मुझ से कहने लगे कि आप ने देवेन्द्र बाबू का व घासीराम का लिखा ऋषि का जीवन चरित्र पढ़ा है? मैंने कहा कि मैं नहीं पढ़ता इन जीवन चरित्रो से उपेक्षा मुझे है जो लेखक नही समझते कि प्रवर्तक का जीवन चरित्र कैसे लिखा जाता है। उन वृद्ध पुरुषों ने कहा कि जब प० घासीराम जीवन चरित्र लिख रहे थे वर्तमान जोधपुर नरेश ने उन्हें बुलाया। पं० घासीराम राजा के अतिथि हुए और बहुत धन तथा शाल दुशाले पं० घासीराम जी को दिये कि किसी प्रकार इस घटना को तोड़-मरोड़ कर लिखा जाए। मैंने कहा कि मुझे कुछ पता नहीं। आप जोधपुर के लोग विशेष जान सकते हैं। उन्होंने वे फोटो मुझे दे दिये। घासीराम जी जीवन चरित्र मे मैंने इतना तो पढा था एक शीर्षक है— मिथ्या किंवदन्ती। भगवान् जाने लेखकों की लीला।

(तीसरी घटना)

जिस जोधपुर के महल में महर्षि को विष दिया वह आर्यसमाज को मिल गया। उस के उद्घाटन समारोह में मुझे बुलाया गया। बहुत वक्ता थे। कोतवाल साहब सभापति थे। वहां जोधपुर के वाइस चांसलर भी थे। मुझे तो अन्त मे ही बोलने को मिलता है। सब वक्ता जोधपुर के थे। जो वक्ता आता था यही कहता था कि स्वामी जी इस महल मे बीमार पडे थे। मैं तंग आ गया सुनते-सुनते, यह कोई नहीं कहता था कि यहां जहर दिया गया। जब मेरी बारी आई मैंने कहा कि कोई वक्ता यह नहीं बताता कि क्या बीमारी थी। किसी के मुख से यह नहीं निकलता कि यहा जहर दिया गया। वाइस चांसलर साहब ने मेरी बात का अनुमोदन किया। ऋषि के विष के विरोधी जितने लेखक हैं प्राय: सब जोधपुरिया हैं।

कोई स्वामी जी को सुधारक बताता है। कोई नव जागरण का पुरोधा। किसी के मुख से यह नहीं निकलता कि आदि ऋषि अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा के बाद महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का साक्षात्कृत धर्मा का स्थान है। जिस परम्परा में ब्रह्मा से लेकर जैमिनी व्यास हैं वह स्थान महर्षि का है।

(एक स्मरणीय घटना)

हमारे नगर में हमारे बचपन के पास पौराणिक पण्डित पं० देवदत्त शर्मा रहते थे। लगभग सौ वर्ष की उन की आयु थी। हमारा बाल्यकाल था। उन्होंने हमें सुनाया कि बरेली में स्वामी दयानन्द आये। वहां के प्रसिद्ध विद्वान् अंगद शास्त्री से शास्त्रार्थ तै हुआ। शास्त्रार्थ स्थल पर अंगद शास्त्री पचास प्रश्न लिखकर लाए और गर्व के साथ बोले कि दयानन्द आज तुम्हारा पाला अंगद शास्त्री से पड़ा है। मैं पचास प्रश्न लाया हूं तुम जवाब नहीं दे सकोगे। स्वामी जी ने कहा कि अंगद शास्त्री सब प्रश्न सुना दो। मैं इकट्ठे जवाब दे दूंगा। अंगद शास्त्री के हाथ में एक कागज था। जिस में पचास प्रश्न लिखे थे, पढ़कर सुना दिए। स्वामी जी हंसकर बोले, अंगद शास्त्री ये प्रश्न तुम्हारे हैं या किसी से लिखवाकर लाए हो। वह तड़पकर बोला, मैं पण्डित हूं मेरे ये प्रश्न हैं। स्वामी जी ने कहा कि यदि ये प्रश्न तुम्हारे हैं तो कागज नीचे रख दो और बिना देखे पचास प्रश्न अपने सुनाओ। तब अंगद शास्त्री बोला, बिना कागज देखे मैं नहीं बोल सकता। स्वामी जी ने कहा तभी तो मैंने कहा कि किसी से लिखवाकर लाए हो। स्वामी जी फिर बोले, अंगद शास्त्री अपना कागज अपने हाथ मे उठाओ पहले मैं तुम्हारे पचासों प्रश्न बोलता हूं फिर उत्तर दूंगा। स्वामी जी ने पचासों प्रश्न उसी क्रम से सुना दिए जिस क्रम से लिखे थे और अंगद शास्त्री ने बोले थे। अंगद शास्त्री चकित होकर बोला, स्वामी दयानन्द तुम मनुष्य नही हो कोई देवता हो मैं तुम से शास्त्रार्थ नही कर सकता। देवदत्त शर्मा ने सुनाया कि मैं उस शास्त्रार्थ में स्वयं उपस्थित था। अरे ऋषिभक्तो यह सुधारक या नवजागरण का पुरोधा है या यह कोई योगी ऋतम्भरा प्रज्ञा वाला महान् कोई देव है। इस का जीवन चरित्र लिखते समय यह मत भूला करो कि हम किसी प्रवर्तक का जीवन चरित्र लिख रहे हैं। रिसर्चस्कालर मत बनो। मुझे दु:ख होता है उन पण्डितो की अक्ल पर जो अधूरी विद्या वाले, दस-पांच बच्चे पैदा करने वाले, योगाभ्यास शून्य महर्षि के ग्रन्थों, वेदभाष्यों में भूल निकालते हैं, टिप्पणियाँ देते हैं, समझते हैं नहीं। यह रोग परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ऋषि के ग्रन्थों और वेदभाष्यों में भी फैल गया है। यह उत्तराधिकारिणी है या अपकारिणी है। प्रभु ऋषि के अनुयायियों को सुबुद्धि दे। □

आर्यसमाज दीवान हाल…

(पृष्ठ ३ का शेष)

आर्यसमाज दीवान हाल द्वारा अनाथ रक्षा, नारी-उद्धार, हिन्दी-संस्कृत सेवा, विद्वानों का आदर, गोरक्षा, आर्य संस्कृति की रक्षा, आर्य सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार, पाखण्ड-खण्डन, निर्धन छात्रों व असहायों की सहायता आदि ऐसे कार्य हैं जिन के लिए आर्यसमाज दीवान हाल प्रसिद्ध है।

इस के अधिकारी सदा जागरूक-तेजस्वी, योग्य विद्वान् व्यक्ति ही बनते हैं। ला० दीवानचन्द्र जी का यशस्वी-तन-मन-धन का मूर्त रूप यह आर्यसमाज दीवान हाल है। उस समय में लाखों की सम्पत्ति आर्यसमाज को दान देकर एक विशाल इमारत खड़ी की। इस के प्रणेता थे श्री नारायणदत्त जी ठेकेदार। इन्हीं की देखरेख में सारा भवन बना है।

आज हम इस विशाल भवन के निर्माता के त्यागपूर्ण यश का तो स्मरण करेंगे, आर्यसमाज के महान् यश को चिर-स्थायी बनाने का भी प्रण लेंगे।

इस आर्यसमाज द्वारा सनातनधर्मी, मुसलमानों, ईसाइयों से अनेक शास्त्रार्थ भी किए गए हैं। जिन में सदा ही यशः गाथा फहराई तथा विजय पर निरन्तर हर्ष मनाया जाता रहा।

आर्यसमाज दीवान हाल सैद्धांतिक दृष्टि से दिल्ली में प्रचार-प्रसार का केन्द्र रहा है।

यमुनापार…श्री करपात्री जी का चैलेञ्ज स्वीकार कर पं. व्यासदेव शास्त्री, प. हरिदत्त जी शास्त्री ने इन सनातनी पण्डितों का मान-मर्दन किया था। शास्त्रार्थ संस्कृत भाषा मे होना निश्चित किया था। बड़े-बड़े विद्वानों ने आर्य-समाज की विद्वन्मण्डली का लोहा माना था।

हिन्दुत्व के रक्षक

दिल्ली में उन दिनों शिव मन्दिर आंदोलन जारी था। मन्दिर को तोड़े जाने के विरोध में जहां सनातनधर्मी नेता आगे थे वहाँ उन से भी आगे थे आर्य विद्वान् पं० व्यासदेव शास्त्री। आर्यसमाज दीवान हाल का नेतृत्व प्रखर था। ला० राम-गोपाल शालवाले की हिन्दुत्व के प्रति अगाध निष्ठा देखने का अवसर मिला। आर्यसमाज दीवान हाल आज भी मानव-बिन्दुओं की रक्षा के लिए तत्पर है।

मन्दिरों पर आघात, हिन्दू कोड बिल, समान अधिकारों की रक्षा, गोहत्या बन्दी आन्दोलन, "सरिता" जैसी हिन्दू-विरोधी पत्रिका ने जब-जब भी विष वमन किया या हिन्दुओं की भावनाओं पर आघात पहुंचाया आर्यसमाज दीवान हाल युद्ध-स्थल का रूप लेकर कुरुक्षेत्र बनकर सदा रहा है।

पं० रामचन्द्र जी देहलवी कहा करते थे, आर्यसमाज—हिन्दू समाज की सामा-जिकता, राष्ट्रीयता, तीर्थ, देवता, महा-पुरुष धर्मशास्त्रों में एक है। यह आपसी मतभेद भुलाकर, एकजुट होकर चलें तो हिन्दू प्राणवान हो सकता है।

आर्यसमाज दीवान हाल और आमरण अनशन के क्षण

(१)

पंजाब मे मास्टर तारा सिंह की खिचड़ी में समय-समय पर उबाल आया करता था। एक समय ऐसा आया कि पंजाबी सूबे की मांग को लेकर आमरण अनशन प्रारम्भ किया। देशभर में चिन्ता व्याप्त हो गई। आर्यसमाज चुप क्यों रहता। अत. निश्चय हुआ कि इधर से भी जवाबी कार्यवाही मे भूख हड़ताल कराई जाए। परिणाम आर्यसमाज दीवान हाल में स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज को आमरण अनशन पर बैठाया गया। उधर पंजाब में पं० सूर्यदेव जी भी आमरण अनशन पर बैठे। अब क्या था। दोनों तरफ से जवाबी कार्यवाही हुई तो सरकार को पंजाबी सूबा देने में कठिनाई हुई और सिखों को यही कहकर समझाया गया कि आर्यसमाज की ओर से भी दो व्यक्ति बैठे हैं। उस समय आर्यसमाज दीवान हाल एक केन्द्र बिन्दु बना। बड़ी हलचल सारे देश में दीवान हाल की चर्चा रही। बाद में अनशन समाप्त हो गया।

(२)

गुरुकुल कांगड़ी के विवाद को लेकर वातावरण बड़ा ही दूषित था और अनधि-कृत व्यक्तियों के हाथों से लेकर वैधानिक व्यक्तियों को सौंपा जाए। इस बात को लेकर श्री ला० रामगोपाल जी शालवाले सरकार को चेतावनी देकर अनशन पर बैठ गए। साथ में पं० इन्द्र जी की लड़की भी अनशन पर बैठी। सारे आर्य जगत् में हलचल मची थी। आर्यसमाज दीवान हाल गतिविधियों का केन्द्र था। बड़ी कठि-नाइयों के बाद श्री ला० जी का आमरण अनशन श्री जगजीवन राम जी के हाथो से रस पिलाकर तुड़वाया गया।

महान् भविष्य का संकेत

फव्वारा (दिल्ली) के निकट एक छोटे से कमरे मे आर्यसमाज स्थित था। तब स्थितिवश कोई सेवक नहीं रखा हुआ था। इस के अधिकारी स्वय आर्यसमाज मन्दिर को साफ-सुथरा करते और स्वयं ही सदस्यों के घर-घर जाकर चन्दा वसूल करते थे। यह समाज नवयुवकों का समाज कहा और समझा जाता था। इस के कार्यकर्ताओं ने आज के समान विशाल भवनों वाले समाजों और अधिकारियों के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत किया था कि दो-चार जुझारू तबियत रखने वाले व्यक्ति ही विशाल भवनों और बिना आडम्बरों के बहुत कुछ कर सकते थे। झोंपड़ों व साधारण स्थिति के आर्यसमाजों में भी प्रकाश की प्रखर ज्योति प्रकाशित हो सकती है। भविष्य की आशा के पुञ्ज थे— प० व्यासदेव जी शास्त्री, ला० चतुर सेन जी गुप्त और आज के महान् नेता श्री ला० रामगोपाल जी शालवाले प्रमुख थे।

आज का दीवान हाल ला० राम-गोपाल जी की प्रवृत्तियों का विशिष्ट केन्द्र था। बीते युग में श्री ला० नारायणदत्त जी ठेकेदार इस समाज के सर्वेसर्वा थे। युवक के मन में यह धारणा बनी थी कि वृद्ध वर्ग को नये वर्ग का आगे आना पसंद नहीं है। युवक वर्ग का नेतृत्व जिन में आर्य वीर सम्मिलित थे। ला० रामगोपाल जी के हाथ में था। वही साधारण-सा पौधा, आज वटवृक्ष के रूप मे खड़ा मानव मात्र की सेवा कर रहा है।

विस्थापितों की सेवा

पाकिस्तान से आये विस्थापित बन्धुओं के लिए सहायता केन्द्र आर्यसमाज मे खोल कर रात-दिन एक कर दिया। उन की मदद व सेवा-रक्षा में प्रशंसनीय कार्य किया। विभाजन के अनन्तर काल मे अनेक बच्चों और हिन्दू-मुस्लिम देवियों की गुण्डों से रक्षा की।

अपहृत नारियों की रक्षा-गुजारे का प्रबन्ध का यश भी प्राप्त किया। आश्रय-हीन बच्चों की शिक्षा-सुधार का कार्य भी इस युग में आर्यसमाज द्वारा किया जा रहा है। □

आर्यसमाज विनय नगर (सरोजिनी नगर) नई दिल्ली का वार्षिकोत्सव

आर्यसमाज विनय नगर, नई दिल्ली का वार्षिकोत्सव शनिवार, १० मई और रविवार ११ मई, १९८६ को सरोजिनी नगर मार्केट पार्क में बड़े समारोहपूर्वक मनाया जाएगा। इस अवसर पर महत्व-पूर्ण सम्मेलनों का आयोजन किया जा रहा है। अनेक विद्वान् पधारेंगे। ५ मई से १० मई तक प्रात. ६ ३० बजे से ७.३० बजे ऋग्वेद महायज्ञ और रात्रि को ९ बजे से १० बजे तक वेद कथा श्री स्वामी दीक्षा-नन्द जी सरस्वती करेंगे। कथा से पूर्व ८ बजे से ९ बजे तक श्री सत्यदेव जी स्ना-तक भजनोपदेशक के मनोहर भजन हुआ करेंगे।

रविवार ११ मई, १९८६ को प्रातः ९ बजे से दोपहर १ बजे तक दक्षिण दिल्ली वेद प्रचार मण्डल के तत्वावधान मे आर्य-समाज स्थापना दिवस उत्सव स्थल पर मनाया जाएगा जिस में दक्षिण दिल्ली की सभी समाजें भाग लेंगी। दोपहर १ बजे ऋषि लंगर भी होगा।

रोशनलाल गुप्ता
प्रचार मंत्री

R. N. No. 32387/77 Post in N.D.P.S.O. on 24-4-86 Licenced to post without prepayment, Licence No. U 139
रजि० न० डी० (सी०) ७५६ पूर्व भुगतान बिना भेजने का लाइसेंस नं० यू १३६
साप्ताहिक 'आर्यसन्देश' २७ अप्रैल, १९८६

ओ३म्

आर्य सन्देश

केवल ५० रुपये में तीन वर्ष तक

हर सप्ताह पढ़ते रहिए

- ☐ क्या आप ऋषि मुनि, तपस्वी, योगियों की अमृत वाणी पढ़ना चाहते हैं ?
- ☐ क्या आप वेद के पवित्र ज्ञान को सरल एवं मधुर शब्दों में जानना चाहते हैं ?
- ☐ क्या आप उपनिषद्, गीता रामायण, ब्राह्मणग्रन्थों का आध्यात्मिक सन्देश स्वयं सुनना और अपने परिवार को सुनाना चाहते हैं ?
- ☐ क्या आप अपने शूरवीर एवं महापुरुषों की शौर्य गाथाएं जानना चाहेंगे ?
- ☐ क्या आप महर्षि दयानन्द की वैचारिक क्रान्ति से आत्मचेतना जागृत करना चाहते हैं।

यदि हां, तो आइये आर्यसन्देश परिवार में शामिल हो जाइए। केवल ५० रुपये में तीन वर्ष तक हर सप्ताह पढ़ते रहिए। साथ ही वर्ष में चार अनुपम विशेषांक भी प्राप्त कीजिए।

एक वर्ष केवल २० रुपये, आजीवन २०० रुपये

प्राप्ति स्थान **आर्यसन्देश साप्ताहिक**
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
१५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-११०००१

उत्तम स्वास्थ्य के लिए

गुरुकुल काँगड़ी फार्मेसी,

हरिद्वार की औषधियां

सेवन करें

शाखा कार्यालय—६३, गली राजा केदारनाथ, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६ फोन : २६१८३८

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन : ३१०१५० के लिए डा० धर्मपाल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा

वर्ष १० अंक २३ | रविवार, ४ मई १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८७ | वैशाख २०४३ | दयानन्दाब्द—१६१
मूल्य एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश में ५० डालर ३० पौंड

आर्यसमाज देहली दीवान हाल की शताब्दी धूमधाम से सम्पन्न

आर्यसमाज देहली दीवान हाल की शताब्दी धूमधाम से सम्पन्न हुई। इस अवसर पर १८ अप्रैल से राष्ट्र भृत् यज्ञ का भी आयोजन किया गया जिस के ब्रह्मा स्वामी दीक्षानन्द जी थे। आचार्यत्व श्री प० राजगुरु शर्मा ने निभाया। इस यज्ञ के संयोजक प० यशपाल सुधांशु थे। यज्ञ के कार्यक्रम में सैकड़ों नर-नारियों ने श्रद्धा सहित भाग लिया।

आर्य सम्मेलन—२५ अप्रैल को मावलंकर हाल में आर्य सम्मेलन आयोजित किया गया जिस में मुख्य अतिथि के० डी० पन्त, स्वामी सत्यप्रकाश, प० शिवकुमार शास्त्री ने अपने ओजस्वी विचार प्रकट किये। सम्मेलन के अध्यक्ष श्री रामगोपाल शालवाले ने आर्यसमाज दीवान हाल की गतिविधियां तथा विगत आन्दोलनों के संचालन में आर्यसमाज दीवान हाल के प्रेरक योगदान की सराहना की।

शोभा यात्रा—२६ अप्रैल को एक शोभा यात्रा निकाली गई जो लालकिला प्रांगण से प्रारम्भ होकर चांदनी चौक, नई सड़क, चावड़ी बाजार, अजमेरी गेट होती हुई रामलीला मैदान में सम्पन्न हुई। इस शोभा यात्रा में आर्य नर-नारियों, युवक युवतियों एवं किशोरों का उत्साह देखने लायक था। आर्य वीर दल के वीरों के प्रदर्शन भी वीरता और पराक्रम को जगाने के उदात्त उदाहरण थे। जलूस का बाजार क्षेत्र के लोगों व्यापारियों ने अच्छा स्वागत किया।

मुख्य समारोह—२७ अप्रैल को प्रात काल आर्यसमाज दीवान हाल में यज्ञ की पूर्णाहुति हुई जिसमें हाल खचाखच भरा था। भावविभोर स्वामी दीक्षानन्द जी ने अपने प्रवचन एवं सन्देश से उपस्थित श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर दिया। यज्ञ के विभिन्न दिनों में श्री शिवकुमार शास्त्री, प० जैमिनी शास्त्री श्री सच्चिदानन्द शास्त्री, श्री डा० महेश विद्यालंकार, प० राजगुरु शर्मा आदि विद्वानों के प्रवचन हुए।

२५ अप्रैल को भारत के उपराष्ट्रपति महामहिम श्री आर० वेंकट रमन ने यज्ञ में भाग लिया तथा अपना सन्देश पढ़ा। पाठकों के लिए उपराष्ट्रपति का भाषण हम अलग से प्रकाशित करेंगे।

मुख्य समारोह—शताब्दी का मुख्य समारोह २७ अप्रैल को दोपहर २ बजे से

(शेष पृष्ठ ७ पर)

सम्पादक—यशपाल सुधांशु एम० ए०
प्रधान सम्पादक—

स्तुति, प्रार्थना, उपासना

—स्वामी रामेश्वरानन्द

स्वामी दयानन्द जी का अति प्रिय मन्त्र—

नारायण ऋषि । सविता देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ।

—यजु० अ० ३० । मं० ३ ॥

अर्थ—हे (सवित) सकल जगत् के कर्त्ता, समग्र ऐश्वर्य युक्त (देव) शुद्ध स्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर आप कृपा करके (न.) हमारे (विश्वानि) संपूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुखों को (परासुव) दूर कर दीजिए (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं (तत्) वह हम सबको (आसुव) प्राप्त कराइये।

वैसे तो स्वामी दयानन्द जी महाराज को सभी वेद मन्त्र प्रिय थे लेकिन यह 'विश्वानि देव' मन्त्र स्वामी दयानन्द जी महाराज को अति प्रिय था । इसलिए उन्होंने यजुर्वेद का भाष्य करते समय यजुर्वेद अध्याय ३० मन्त्र ३ पर यह मन्त्र लिखा है। महाराज ने वहां भी इस का भाष्य किया किन्तु यजुर्वेद के प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में इस मन्त्र को स्वामी जी ने लिखा है और ऋग्वेद के सात मण्डलो का भाष्य करते समय भी सब मण्डलो के आदि मे भी इस मन्त्र को लिखा है और अपनी सभी पुस्तको में महाराज ने इस मन्त्र का पाठ किया है। यह गायत्री मन्त्र है। इसके दो पाद मे 'विश्वानि देव' दुर्गुण दूर करने की प्रार्थना है और एक पाद मे सद्गुण प्राप्ति की प्रार्थना है। यह मन्त्र समर्पण मन्त्र कहा जा सकता है। हे ईश्वर जितने दुर्गुण और दुर्व्यसन है मैं नही जानता। उन्हें दूर कर दो और जितने सद्गुण है वे मुझे प्राप्त कराओ। यह कितना सरल भाव है।

सर्वाधार ईश्वर है

हिरण्यगर्भ ऋषिः। प्रजापति देवता।
आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवत स्वर।

ओ३म् हिरण्यगर्भ समवर्त्तताग्रे भूतस्य जात. पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवी द्यामुतेमा कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

—यजु० अ० १३। मं० ४ ॥

अर्थ—जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाश स्वरूप और जिस ने प्रकाश करने हारे सूर्य चन्द्रादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतन स्वरूप (आसीत्) था है और होगा जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्त्तत) वर्तमान था (स.) सो वह (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि (उत) और द्याम् सूर्य आदि को (दाधार) धारण कर रहा है हम लोग उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा की (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास अति प्रेम से (विधेम) विशेष भक्ति किया करें।

भावार्थ—हिरण्यानि तेजांसि-गर्भे यस्य स हिरण्यगर्भ. जैसे माता के विशाल शरीर मे गर्भ एवं बालक लघु अत्यन्त छोटे वैसे सारे भूमि, भानुचन्द्र नक्षत्रादि दृश्यादृश्य ईश्वर के एक अंश में उत्पन्न तुच्छ हैं। एकाश भी अनन्त महान् है उस का भी किसी को पूरा ज्ञान नही है। इसीलिए यजुर्वेद के अध्याय ३१ मे कहा है—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।

कि सारा चराचर दृश्यादृश्य संसार परमेश्वर के एक अंश मे निवास करता है और उसके तीन अंश अमृत अविनाशी मोक्ष स्वरूप हैं उन्हे कोई जोव नही जानता और इस मन्त्र मे ईश्वर को एक कहा है। यदि २४ अवतार २४ सूर्यादि नियत समय पर उदय अस्त न होंगे क्योंकि जैसे दो स्वामियों का एक सेवक एक समय में दोनो के काम नही कर सकेगा जिसकी इच्छा पूरी नही होगी वही उस नौकर को हटा देगा एवं दो ईश्वरों की विरोधी इच्छा पूरी न होने पर सूर्य को तोड देगा तथा दो ईश्वरो में बिल्कुल समानता न होगी। अत जो ईश्वर बलवान् होगा वह निर्बल ईश्वर को मौत के घाट उतार देगा। इसीलिए वेद एक ईश्वर को मानता है जो सृष्टिक्रम के अनुकूल है तथा स दाधार द्यामुतेमा कस्मै देवाय। अर्थात् वह इस प्रत्यक्ष पृथिवी और सूर्य चन्द्रादि को धारण कर रहा है। ये सूर्य चन्द्र पृथिवी परस्पर के आकर्षण से ठहरे हैं यह सत्य नहीं है क्योंकि आकर्षकर्त्ता को पैर जमाने होते हैं आकर्षणकर्त्ता निराधार अलग नहीं रह सकते तथा यह दृष्टान्त भी सत्य नहीं है कि एक चुम्बक नीचे भूमि में रखो और दूसरा छत में रखो बीच में लोहे की वस्तु ठहर जाती है वैसे सूर्य, चन्द्र, भूमि एक-दूसरे को आकर्षण ठहरे हैं। यह दृष्टान्त विषम है क्योंकि दोनों चुम्बक भूमि और छत के आधार ठहरे हैं तथा भूमि भानु चन्द्रमा तीनों निराधार हैं। वे आकर्षण तो करते हैं परन्तु निराधार कैसे ठहरे है उन का भी कोई आधार चाहिए तथा आकर्षण को तो वेद मानता है। आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो०। यजु० अ० ३४ मं० ३१ में आकर्षण शक्ति सूर्यादि में स्वीकार किया गया है। क्योंकि आकर्षण का भी तो नियामक चाहिए। जबकि रस्सा खींचने वाले उन्नीस बीस के २ वर्ग में एक दल दूसरे को खींच ले आता है परन्तु सूर्य, भूमि चन्द्र से लाखों गुणा बडा है। इन भूमि चन्द्र को अपने ऊपर क्यों नहीं गिरा लेता है यदि ईश्वर नहीं है तो इन को किस ने वश में किया है। अतः ईश्वर वह है जिस ने सब को धारण किया है।

सब का राजा ईश्वर है

प्रजापति ऋषि.। परमेश्वरो देवता।
त्रिष्टुप छन्द। धैवत स्वर।

ओ३म् य प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशेऽस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

—यजु० अ० २३, मं० ३

अर्थ—(य) जो (प्रणत) प्राण वाले और (निमिषत) अप्राणि. रूप (जगत.) जगत का (महित्वा) अपनी अनन्त महिमा से (एक इत्) एक ही (राजा) राजा (बभूव) विराजमान है (य) जो (अस्य) इस (द्विपदः) दो पैर वाले मनुष्यादि (चतुष्पद) चार पैर वाले गौ आदि प्राणियों के शरीरों की (ईशे) रचना करता है हम उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) सकल ऐश्वर्य के देने हारे परमात्मा की उपासना अर्थात् (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री को उस की आज्ञा-पालन में समर्पित करके (विधेम) विशेष भक्ति किया करें।

भावार्थ—इस मन्त्र में ईश्वर को जगत् का अपनी महिमा से राजा स्वीकार किया गया है और वह दो प्रकार के जड़ चेतन शरीरों का निर्माता हैं। अर्थात् दो पैर वाले मनुष्य और पक्षी केवल चार पैर वाले पशु और बिना पैर वाले सर्प आदि और बहुत से पैर वाले गिजाई आदि के शरीर का निर्माता है। क्योंकि ईश्वर की रचना और मनुष्य की रचना में बडा भेद है। मनुष्य चेतन का एक भी अंग न बना सका और उस की रचना में शिशुता (बालकपन) यौवन एव स्त्री-पुरुष और नपुंसक जाति का भेद भी नहीं है। मनुष्य अपनी रचना के अलग-अलग अंग बनाकर उन को फिर जोडता है किन्तु ईश्वर चेतन के शरीरों को गर्भ एवं अण्ड में अनेक अंगों को एक साथ बनाता है,मनुष्य की रचना जगत् से जब जाती है अपना परिवार छोडकर नहीं जाती और ईश्वर के मनुष्य वृक्ष वनस्पति भी जब मरते हैं तब अपने अनेक परिवार छोडकर जाते हैं। ईश्वर अपनी रचना के सदा साथ रहता है, मनुष्य की रचना और मनुष्य दूर-दूर रहते हैं। यदि मनुष्य अपनी रचना के सदा साथ रहता तो दर्जी एक ही कपडे के साथ घूमा करता, ईश्वर की चेतन रचना भोजन खाकर अपने शरीर को बढाती है, पर मनुष्य की रचना मशीन पानी और तेल खाकर भी अपने शरीर को बढाती नही। ईश्वर का सूर्य भी प्रात पृथिवी तक अपनी किरणें और प्रकाश भेजता है और सायं काल समेठ लेता है। यदि ऐसा न होता तो सूर्य शीतल हो जाता और पृथिवी जल भुन जाती, परन्तु मनुष्य की बनाई अग्नि, दीपक, गैस आदि अपने प्रकाश को पुनः ग्रहण नहीं करते इसलिए वे बुझ जाते हैं। ईश्वर का सूर्य अरबों वर्षों से प्रकाश व गर्मी दे रहा है और संसार में तीन प्रकार के राज्य चल रहे हैं। चुने हुए सामन्तशाही और मजहबी इन सब में अंधेर होता है, अंधेर अन्याय अत्याचार होता है क्योंकि मनुष्य काम-क्रोध के वश होकर पाप करता है किन्तु ईश्वर एक ही प्रकार का व्यवहार सबके साथ करता है, अपने अग्नि जल-प्रकाश आदि का किसी से कर नहीं लेता, उसके अग्नि जल चन्द्रादि सबके साथ एक-सा व्यवहार करते हैं। ईश्वर ने सारा जगत्

(शेष पृष्ठ ५ पर)

ला० रामगोपाल शालवाले कुछ घटनाएँ कुछ संस्मरण

लेखक : प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

अमृतसर ने आर्यसमाज को बड़े-बड़े र्विकर्त्ता, विद्वान् तथा नेता दिये हैं। इस नगरी ने आर्यसमाज को आरम्भिक युग से इस युग तक कई शास्त्रार्थी दिये हैं। श्री ला० रामगोपाल जी भी उनमें से एक हैं। पूज्य महाशय अलखधारी (मुहम्मद उमर) देहरादून के पश्चात् जो प्रख्यात व्यक्ति मुसलमानों में से आर्यसमाज में आया वह मौलाना अब्दुल अजीज था, जो शुद्ध होकर हरजस राय बना। इन लाला हरजस राय की शुद्धि बड़ा साहसिक कार्य था। इसका बहुत-सा श्रेय अमृतसर वालों को ही प्राप्त था। अमृतसर वालों को ही श्रेय प्राप्त है कि उस युग में अमृतसर के एक प्रतिष्ठित परिवार ने लाला हरजस राय को अपनी कन्या देकर अपने धर्मानुराग का परिचय दिया।

इसी नगरी मे आर्यों का मुसलमानों से एक शास्त्रार्थ देखने एक युवक गया। मौलवी ने प्रश्न किया कि हिन्दू गाय को माता कहता है, इस मे क्या विशेष बात है? गो दूध के गुणो से मियां जी को भी इन्कार न था परन्तु, वह कहता था भैंस, बकरी आदि को माता क्यों नही कहा गया? आर्य शास्त्रार्थी ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए युक्तियो व प्रमाणों की झड़ी-सी लगा दी। एक युक्ति यह दी कि मानवीय माता नौ मास के पश्चात् बालक को जन्म देती है और गाय भी नौ मास के पश्चात् अपने बच्चे को जन्म देती है। भैंस व बकरी नही। दूध के गुणों के साथ यह भी एक कारण है कि गाय को वेद आदि शास्त्रों ने माता कहा है। आर्य शास्त्रार्थी थे श्री ज्ञानी पिण्डीदास जी। इन की वाणी में बड़ा ओज था। वक्तृत्व कला मे प्रवीण थे। उन्होंने बडे अनूठे ढंग से यह बात कही। मौलवी साहब इस से निरुत्तर हुए।

इस शास्त्रार्थ ने एक युवक के जीवन को मोड दिया। यही युवक आज ला० रामगोपाल जी के नाम से प्रसिद्ध है। आचार्य पं० देवप्रकाश के सत्संग ने इन पर वैदिक धर्म का गूढा रग चढ़ा दिया। यह घटना लाला जी स्वयं कभी-कभी सुनाते हैं। आचार्य प० देवप्रकाश जी आर्य युवकों को सैद्धांतिक ज्ञान दिया करते थे। शास्त्रार्थ शङ्का समाधान सिखाया करते थे। उन के सम्पर्क में आकर घोर पौराणिक रामगोपाल जी को वैदिक धर्म के प्रचार व समाज सेवा की धुन लग गई।

१९५२ ई० की सर्दी की बात है। मैं आर्यसमाज नया बास में महात्मा आनन्द भिक्षु जी से कुछ सैद्धांतिक चर्चा कर रहा था। एक युवक वहां आया। काली नमनक लगा रखी थी। पता लगा कि उस की एक ही आंख थी। उसने उस चर्चा को दो-चार मिनट सुना और एक प्रश्न कर दिया। मैंने ही उस का उत्तर दिया। फिर कुछ कहा तो महात्मा जी बोले। इस पर उससे हम ने उसका नाम पूछा। उस ने कहा मेरा नाम अब्दुल रहमान है। क्या मुझे आप आर्यसमाजी बना सकते हैं?

महात्मा जी को भी कहीं जाना था मुझे कहा इसे ला० रामगोपाल जी के पास ले जाओ। उसे आश्वस्त किया कि किया कि निश्चिन्त रहो लाला जी सब व्यवस्था कर देंगे। मैं उसे लाला जी के पास उनकी दुकान पर ले गया। तब मैं देहली ही रहता था। रास्ते मे बातचीत से पता चला कि वह बड़ा योग्य है। उसे संस्कृत का ज्ञान था। कई विषयों को जानता था। लाला जी ने उसे दीवान हाल में रखा। उससे स्वय दीवान हाल मे बड़ी लम्बी सैद्धांतिक बातचीत की। सायण व ऋषि का वेदभाष्य भी चर्चा के विषय बने। उस की इन बातों का मेरी उपस्थिति में लाला जी ने उत्तर दिया। पं० मेधातिथि जी व पं० रामस्वरूप जी धारासार भी वहीं बैठे थे। मैं तो युवक था। भावुक होकर समझा कि एक सुयोग्य युवक समाज को मिला है। लाला जी ने अपनी सूझबूझ का परिचय देते हुए शुद्धि के लिए कुछ दिन आगे की तिथि रख दी।

उस से उस का परिचय पूछा। उस ने अपना विस्तृत परिचय दिया। श्री पं० मेधातिथि जी को लाला जी ने कहा कि इस की सब देखभाल आप ने करनी है। मैं भी प्रतिदिन दीवान हाल जाता। उसे मिलता था। मेधातिथि जी उस युवक को तथा दीवान हाल मे सब को यह बता कर कहीं चले गए कि मेरा साला बहुत रुग्ण है। हम आर्थिक विपत्ति मे हैं पर क्या करें, जाना पड़ता है।

तीन-चार दिन के पश्चात् प० मेधातिथि जी लौटे। उन्होंने आकर बताया कि उस युवक की बातों में बहुत कुछ झूठ है। उस का नाम रामविलास था। वह राजस्थान का था। उस का काम ही यही था कि अपने को कभी मुसलमान बताता, कभी कुछ और अपनी शुद्धि करवाता रहता। कुछ सहायता आर्यों से लेकर फिर लुप्त हो जाता। करता कराता कुछ भी नही था। आर्यसमाज एक बहुत बड़े फ्राड से बचा। इस का श्रेय ला० रामगोपाल जी को जाता है। मेधातिथि जी को लाला जी ने ही भेजा था। 'साला बीमार है' यह कहानी भी लाला जी ने ही प० मेधातिथि को घड कर दी। दीवान हाल मे किसी को भी पता न था कि मेधातिथि कहां गए हैं। प० मेधातिथि जी को ही इस काम पर भेजना लाला जी की सूझ थी।

इसमें क्या विशेषता थी? प० मेधातिथि जी भारत सरकार के गुप्तचर विभाग में रह चुके थे। लौह पुरुष सरदार पटेल की विशेष प्रेरणा से आर्यजगत् ने प० मेधातिथि जैसा रत्न सरदार को देशहित में सौंपा था। निजाम राज्य, भोपाल, जूनागढ तथा कादियां मे देशघाती पाकिस्तान पोषक षड्यन्त्रों का पता लगाने के लिए सरदार ने इन्हें भेजा था। मैंने प्रथम बार उन्हें मुसलमान मौलवी के रूप में पं० मेधातिथि जी को लेखराम नगर कादियां में १९४८ ई० में देखा था। प्रसंगवश लिख दूं कि जब जमाते इस्लामी के संस्थापक मौलाना मौदूदी के दारुल-उलूम से मेधातिथि निकले थे तो शास्त्रार्थ महारथी पं० शान्तिप्रकाश जी से बटाला में इन का बड़ा शानदार शास्त्रार्थ हुआ था।

अब सारी जानकारी मिल जाने पर लाला जी ने उस अब्दुल रहमान राम बिलास को बड़े प्रेम से समझाया कि यह यह कुकृत्य तजकर सन्मार्ग पर आए। यदि वह आर्यसमाज का कार्य करे तो उस को सब सहयोग दिया जाएगा। उसका एक व्याख्यान भी दीवान हाल मे हुआ। दुर्भाग्य से अपनी दूषित प्रवृत्ति के कारण वह कोई सत्कर्म न कर पाया। मैंने १९६४ ई० में उसे फिर शोलापुर आर्यसमाज में देखा। मैंने उसे न पहचाना। कुछ देर बाद मैंने उसे पहचान लिया परन्तु उस के प्रश्न के उत्तर के लिए जब मैं खड़ा हुआ तो वह मुझे पहचान गया। अत. समाज को हानि न पहुंचा सका। पाठकवृन्द! यदि लाला जी तब उस की कुचाल को न भापते तो वह समाज में कई गुल खिलाता। कारण वह बहुत योग्य व चतुर था।

यह सन् १९३७ ई० की घटना होगी। श्री प० शान्तिप्रकाश जी हाई कोर्ट द्वारा ससम्मान मिर्जाइयो द्वारा चलाए गए अभियोग मे दोषमुक्त घोषित किए गए। जिस दिन जेल से छूटकर वह लाहौर पहुंचे। उसी दिन आर्यसमाज दीवान हाल के मास्टर केदारनाथ जी लाहौर पहुंचे और सभा से मांग की कि आर्यसमाज दीवान हाल के उत्सव पर कई शास्त्रार्थ रखे गए हैं। इसलिए पं० शान्तिप्रकाश जी को अभी मेरे साथ भेजा जाए। प० जी ने कहा कि शास्त्रार्थ के लिए आवश्यक पुस्तकें व नोट बुक्स मेरे पास नही परन्तु मास्टर जी के आग्रह के कारण सभा ने पं० जी को देहली भेजा। बेड़ियों के कारण जेल मे उन की टांगो पर घाव थे फिर भी वह आ गये।

जब प० जी देहली पहुंचे। उस दिन पूज्य पं० व्यास देव जी ने रात्रि को एक मौलवी से शास्त्रार्थ किया। प० जी कोई इस्लामी साहित्य के मर्मज्ञ तो न थे परन्तु अपनी सूझ व पाण्डित्य के बल पर बहुत अच्छा शास्त्रार्थ किया। प० जी ने अपने भाषण में हजरत मुहम्मद के जीवन सबन्धी एक घटना की चर्चा कर दी। मौलवी ने कहा, यह कहां लिखा है? प्रमाण दो। व्यास जी का हदीसो का इतना ज्ञान न था। मौलवी भी जानता था कि यह संस्कृत का प० भले ही बड़ा गम्भीर विद्वान् व वक्ता है। अपने कथन की पुष्टि न कर सकेगा। उस ने कहा, प्रमाण दो या क्षमा मांगो। मुसलमानो को उत्तेजित करता गया। ला० रामगोपाल तब युवक थे। इन के आर्य युवक संघ के सैकड़ों दिलजले आर्य युवक पण्डाल को संभाल रहे थे। व्यास देव जी इसी विषय पर अपनी बारी मे बोलते गए।

रात्रि के दस बजे होंगे। ला० रामगोपाल एक साथी को लेकर दीवान हाल पहुंचे। प० शान्तिप्रकाश जी को जगाकर कहा, चलो यह स्थिति है। व्यास जी यह कह चुके हैं। आप प्रमाण देकर इस स्थिति को सभालें। प० जी ने कहा, जब तक कोई पुस्तक मेरे पास न होगी, मौलवी चुप न करेगा। मुसलमानो को भडकाता जाएगा। अभी आप प० जी से कहलवायें कि कल हम यह प्रमाण न उपस्थित कर पाए तो आर्यसमाज सार्वजनिक रूप मे क्षमा माग लेगा परन्तु आप रात-रात या प्रात तक कहीं से भी एक पुस्तक मुझे लाकर देंगे तो काम बनेगा। प० जी के कहे अनुसार ही शास्त्रार्थ मे ऐसा कहा गया। मौलवी साहब मान गए।

रात ही रात मे ला० रामगोपाल तथा उन के एक दो साथी मुसलमानो की बन्द हुई दुकानें खुलवा कर प० शान्तिप्रकाश जी द्वारा मांगी हुई मोटी पुस्तक मुंह मागी कीमत देकर ले आए। श्री प० शान्तिप्रकाश जी ने रात भर जाग कर प्रमाण खोज लिया। अगली रात का शास्त्रार्थ श्री प० शान्तिप्रकाश जी ने ही करना था। विषय कुछ और था। मौलवियों को पता न था कि प० शान्तिप्रकाश आ चुके हैं। जब शास्त्रार्थ के नियत समय पर प० जी मञ्च पर पधारे तो मौलवी साहब ने उस दिन का शास्त्रार्थ

(शेष पृष्ठ ४ पर)

महर्षि दयानन्द का दिल्ली प्रवास

लेखक—डा० भवानीलाल भारतीय

★

आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द अपने जीवन काल में कुल तीन बार दिल्ली आये थे। उस समय दिल्ली भारत की राजधानी नहीं थी। उनका प्रथम बार दिल्ली आगमन १७ दिसम्बर १८७६ को हुआ। १८७७ ई० की पहली जनवरी को भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड लिटन ने एक बहुत बड़े दरबार का आयोजन किया था। देश के प्रमुख राजा, सेठ साहूकार, नवाब, ताल्लुकेदार तथा सामन्त वर्ग के लोग इसमें आमंत्रित थे। दरबार के अवसर पर दिल्ली में उपस्थित रहने में स्वामी जी का प्रयोजन तो यही था कि वहाँ विशाल जन समूह उपस्थित रहेगा। अतः उसके समक्ष देशहित, धर्म संशोधन तथा समाजोन्नति की बातों को विस्तार पूर्वक रखना सम्भव हो सकेगा। वे स्वदेशी राजाओं के समक्ष भी अपने कार्यक्रम को प्रस्तुत करना चाहते थे।

अजमेरी गेट के बाहर कुतुब की सड़क पर शेरमल के अनारबाग में उनके निवास की व्यवस्था की गई। डेरे तम्बू आदि की व्यवस्था छलेसर के ठाकुर मुकुन्दसिंह ने पहले ही कर दी थी। स्वामी जी के डेरे के बाहर एक सूचना पट्ट लगा था जिस पर 'निवास स्थान स्वामी दयानन्द सरस्वती' शब्द अंकित थे। स्वामी जी के अनेक भक्त एवम् अनुयायी भी इस अवसर पर आ गये थे जिनमें से कुछ नाम उल्लेखनीय है—राजा जयकृष्ण दास, अलीगढ़, ठाकुर मुकुन्दसिंह, ठाकुर गोपालसिंह, कर्णवास, मुन्शी इन्द्रमणि मुरादाबाद, हरिश्चन्द्र चिन्तामणि बम्बई तथा श्री लक्ष्मीनारायण खजांची बरेली आदि। कर्णवास के ठाकुर कवि कुमार शेरसिंह ने १८७७ के दिल्ली दरबार में स्वामी जी के साथ व्यतीत किये गये कुछ दिनों का स्मरण करते हुए लिखा है—"सम्वत् १९३३ वि० १८७७ ई० में महारानी विक्टोरिया के कैसरे हिन्द दरबार की घोषणा हुई। महर्षि ने कर्णवास के ठाकुरों को अपने आगमन की सूचना दी। इस सूचना के अनुसार ठा० गोपालसिंह, कु० शेरसिंह, मुन्शी गोपालसिंह प० रामप्रसाद पुरोहित राव बरौली स्वामी जी के स्वागत को राजघाट के स्टेशन पर पहुंचे। स्वामी जी ने आदेश दिया—हम दिल्ली दरबार के समय दिल्ली धर्म प्रचारार्थ जा रहे हैं। आप लोग शामियाना, डेरा, तम्बू, कनात फर्श आदि के साथ भरपूर भोजन सामग्री, पाचक, सेवकों सहित आयें हम छलेश्वर से ठाकुर मुकुन्द सिंह सहित देहली पहुंच रहे हैं। वहीं एक जगह सब मिलें। यह आदेश देकर स्वामी जी देहली पधार गये।

इस आदेश का तुरन्त पालन किया गया। ठाकुर गोपालसिंह की संरक्षता में कुटुम्ब के युवक शेरसिंह, लक्ष्मणसिंह कुन्दनसिंह, लीलाधरसिंह, धर्मसिंह अपने पुत्रों सहित, ठा० बलराम सिंह अपने पुत्र, भाइयों अन्य कुटुम्ब के व्यक्ति, सेवक, ब्राह्मण जो इष्टमित्रों में थे, इस प्रकार सौ के लगभग व्यक्ति स्वामी जी के बतलाये स्थान पर दिल्ली पहुंचे। उत्सव समाप्त हुआ विदा मांगने के हेतु सब लोग स्वामी जी की सेवा में पहुंचे। स्वामी जी एक कुर्सी पर गेरुआ अलखा (चोगा) गले में लम्बा रेशमी दुपट्टा, धारण किये बैठे थे। सब कर्णवास वालों की ओर मुस्कराते हुए निहारा, कर्णवासस्थ सब ने नमस्ते कर वन्दना की और अपनी भेंट सामने रखी। उसे स्वीकार कर बहुत प्रमुदित हो देख, सब से कुशल क्षेम और घर की बात पृथक्-पृथक पूछी। फिर ठाकुर गोपालसिंह की ओर मुड़कर कहा—"हम ने आप लोगों को सन्ध्या में 'तच्चक्षुर्देवहितं' मंत्र के अनन्तर सूर्य को तीन अञ्जलि जल अर्पण कर गायत्री मन्त्र का जप करने का आदेश दिया था। अब हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि यह उचित नहीं है। इस कारण यह क्रिया छोड़ दो।"

ठाकुर साहब ने तत्काल हाथ जोड़कर उत्तर दिया "महाराज, हम उन स्वामी दयानन्द के शिष्य हैं। उनके सिखाये हुए हैं, जो पौष माघ के प्रबल शीत में एक कौपीन, सकल शरीर पर गंगारज लेपन किये, बिना वस्त्र के ही समाधिस्थ होते थे हम लोग आपको कम्बल ओढ़ाते थे तब आपके शरीर में पसीना बह निकलता था। तब आप कम्बल हटा देते थे। आप आज राजर्षि के वेश में विराजमान हैं। हमें सभी की बात माननीय है। उसी मार्ग पर चलेंगे।" यह सुन स्वामी जी खिलखिला कर हंसे और 'अच्छा, तुम्हें जो अच्छा लगे वही करो,' कह आशीर्वाद दिया। चरण वंदना कर हम सब विदा हुए।

स्वामी दयानन्द विषयक यह सर्वथा नूतन संस्मरण इस लेख के लेखक ने कवि कुमार शेरसिंह के पुत्र कर्णवास निवासी स्व० ठाकुर गवेन्द्र सिंह से प्राप्त किया था। इसे मैंने स्वसम्पादित ग्रन्थ 'कर्णवास में महर्षि दयानन्द के ऐतिहासिक संस्मरण' में प्रकाशित किया है।

काश्मीर के महाराजा रणवीर सिंह दिल्ली में स्वामी जी से मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे। किन्तु पण्डितों और सामन्तों के बहकावे में आकर वे स्वामी जी से नहीं मिले। इसी अवसर पर स्वामी जी ने देश के प्रमुख धार्मिक नेताओं और सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं का एक सम्मेलन आयोजित किया। इसमें निम्न महानुभाव उपस्थित हुए थे, सर सैयद अहमद खां—मुस्लिम ऐंग्लो ओरियण्टल कालेज के संस्थापक तथा भारतीय मुस्लिम जागरण के सूत्रधार, केशवचन्द्र सेन—भारतवर्षीय ब्रह्मसमाज के संस्थापक। श्री नवीनचन्द्र राय—पंजाब ब्रह्म समाज के आचार्य। मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी, पंजाब के समाज सुधारक मुन्शी इन्द्रमणि मुरादाबाद के निवासी इस्लाम के मर्मज्ञ विद्वान्।

श्री हरिश्चन्द्र चिन्तामणि आर्यसमाज बम्बई के प्रतिनिधि प० गोपाल राव हरि देशमुख को आमन्त्रित किया गया था, किन्तु वे उपस्थित नहीं हो सके। स्वामी दयानन्द द्वारा आयोजित यह सम्मेलन क्यों नहीं सफल हो सका, इसके कारणों का विचार करते हुए नवीनचन्द्र राय ने अपनी ज्ञानप्रदायिनी मासिक पत्रिका के जनवरी १८८५ के अंक में लिखा था, 'स्वामी दयानन्द से हमारी मुलाकात देहली दरबार के समय हुई थी। वहाँ उन्होंने हमें तथा बाबू केशवचन्द्र सेन और दक्षिणवासी राव गोपाल राव हरि देशमुख और श्रीयुत हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को आमंत्रित किया और हम लोगों से यह प्रस्ताव किया कि हम लोग पृथक्-पृथक रीति से धर्मोपदेश न करके एकता के साथ करें तो अधिक फल होगा। इस विषय में बहुत बातचीत हुई, परन्तु मूल विश्वास में उनके साथ हम लोगों का भेद था, इसलिए जैसी वे चाहते थे, वैसी एकता नहीं हुई।"

स्वामी दयानन्द का द्वितीय दिल्ली प्रवास १८७८ ई० में हुआ। वे ३ अक्टूबर को दिल्ली आये और सब्जी मण्डी में लाला बालमुकुन्द केसरीचन्द के उद्यान में ठहरे। उनके पांच व्याख्यान तो यहीं पर हुए। १३ अक्टूबर से महाराज के व्याख्यान शाह जी के छत्ते में होने लगे। ३ नवम्बर १८७८ को श्री महाराज की उपस्थिति में ही दिल्ली में आर्यसमाज की स्थापना हो गई। इस बार वे रेवाड़ी से यहां आये थे। इस प्रवास में भी वे सब्जी मण्डी में बालमुकुन्द केसरीचन्द के उद्यान में ही ठहरे। इस बार दिल्ली से वे जयपुर चले गये। स्वामी जी की दिल्ली की तीसरी यात्रा जनवरी १८७९ में हुई इस बार उनके २-३ व्याख्यान हुए वे मेरठ चले गये।

दिल्ली के आर्य बन्धुओं का कर्त्तव्य है कि अजमेरी गेट के बाहर तथा सब्जी मण्डी में बालमुकुन्द केसरीचन्द के उद्यान का ठीक-ठीक सधान करे तथा वहां महाराज के निवास की स्मृति में संगमरमर का शिलालेख स्थापित कर उनके दिल्ली आगमन तथा प्रस्थान की तिथियां अंकित करायें।

□

रामगोपाल शालवाले

(पृष्ठ ३ का शेष)

आरम्भ करने की बात कही। इस पर पं० जी ने कहा, पहले मुझे कल वाली बात का प्रमाण दे लेने दीजिए। मौलाना ने कहा कि नहीं, अब प्रमाण नहीं चाहिए। प० जी ने कहा, कल तो आप बार-बार इसके लिए आग्रह कर रहे थे। मौलाना ने कहा, कल की कल के साथ गई। अब आप आ गए, हमें प्रमाण नहीं चाहिए। पाठकवृन्द! यह है लगन का एक चमत्कार कि युवक रामगोपाल रात रात को मुसलमानों से पुस्तक लेकर आए।

□

जो धर्म को जानते हैं वे अत्याचार नहीं करते

श्री बलराम जाखड़

लोकसभा अध्यक्ष बलराम जाखड़ ने कहा है कि जब तक बच्चों को देश प्रेम और भारतीय संस्कृति की शिक्षा नहीं दी जाती, तब तक हम नये समाज के निर्माण में सफल नहीं हो सकते।

श्री जाखड़ आर्यसमाज दीवान हाल शताब्दी समारोह में बोल रहे थे। उन्होंने कहा कि जिस को भारतीय कहलाने पर गर्व नहीं है, उसे देश मे रहने का कोई हक नहीं है। जो आदमी अपने देश पर मर-मिटने की भावना नहीं रखता, वह इसकी सेवा क्या करेगा।

उन्होंने कहा कि आर्यसमाज ने देश को जोड़ने का काम बखूबी किया है।

श्री जाखड़ ने कहा कि जिस ने कोई भी धर्म ग्रन्थ पढ़ा है, वह कभी अत्याचार नहीं कर सकता। इस से यह बात साबित होती है कि धर्म के नाम पर लड़ने वाले लोगों ने कभी धर्म को जाना ही नहीं है।

श्री जाखड़ ने आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द के बताए मार्ग पर चलकर देश को सुखी और समृद्ध बनाने का आह्वान किया।

इस अवसर पर स्वामी दीक्षानन्द, श्री शिवकुमार शास्त्री, श्री डा० वाचस्पति उपाध्याय, श्री प० राजगुरु शर्मा, पं० क्षितीश वेदालंकार आदि वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किए।

इस मौके पर आर्यसमाज के नेता रामगोपाल शालवाले ने राष्ट्रीय एकता व राष्ट्रीय रक्षा के कार्यों मे अपना पूरा समय देने के लिए सन्यास लेने की घोषणा की।

कई अन्य शिक्षा शास्त्रियों व विद्वानो ने भी अपने विचार जाहिर किए। डा० वेद प्रताप वैदिक ने कहा कि अगर राष्ट्र की रक्षा करनी है तो यह धर्म-परिवर्तन रोकने भर से नही होगी। देश मे पैदा हुए सांस्कृतिक शून्य को भरने का प्रयास नही किया गया तो हिन्दू रहते हुए भी यह देश नष्ट हो सकता है।

उन का कहना था कि भाषा, भूषा, भोजन, भजन और भेषज के मामले में भारत आत्मनिष्ठ नही होगा तो उस की राष्ट्रीयता सुरक्षित नही रह सकती।

प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने आर्यसमाज मन्दिर दीवान हाल के शताब्दी समारोह के मौके पर अपने सन्देश मे शिक्षा, समाज सुधार और अन्धविश्वास उन्मूलन के क्षेत्र में आर्यसमाज के योगदान की तारीफ की।

सूचना-प्रसारण मन्त्री श्री एन. गाडगिल ने अपने सन्देश में कहा कि स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज १९वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में चलाए गए समाज सुधार आन्दोलनों में अग्रणी था।

उन्होंने कहा कि स्थापना के समय से ही इस संगठन ने समाज मे फैली रूढ़ियो, धार्मिक आडम्बरो, जातपात, बालविवाह, जैसी अनेक सामाजिक बुराइयो का खुल कर विरोध किया। इस ने जनता में राष्ट्रीय चेतना जगाने मे प्रमुख भूमिका निभाई। □

स्तुति, प्रार्थना, उपासना

(पृष्ठ २ का शेष)

बनाकर सब को दान दिया हुआ है। मनुष्य के न्यायाधीश एक अपराधी को दंड देते हैं और दूसरे अपराधी को छोड़ देते हैं। इन दोनों मे से एक तो अन्यायी है ही परन्तु ईश्वर ऐसा नही करता उस के अग्नि, अन्न, जल आदि सब के साथ एक-सा व्यवहार करते हैं। इसलिए वह न्यायकारी है।

प्रश्न—ईश्वर ने एक को धनिक और एक को निर्धन क्यो बनाया?

उत्तर—ईश्वर किसी को धनिक और निर्धन नही बनाता। जिस के जैसे कर्म हैं, वैसा जन्म देता है। धनिक और निर्धनता राज्य व्यवस्था और माता-पिता के व्यवहार से होती है। राज्य व्यवस्था से जिन को नीचे गिराया गया था, वे आज ऊंचे उठ गए। इसलिए ईश्वर सब जगत् का राजा और जड जगत् का निर्माता और जीवो को कर्म फलदाता है।

ज्ञानदाता ईश्वर

प्रजापति ऋषि.। परमात्मा देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवत. स्वरः।

ओ३म् य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः। कस्मै देवाय हविषा विधेम।

—यजु० अ० २५। म० १३॥

अर्थ—(य.) जो (आत्मदा) आत्मज्ञान का दाता (बलदा) शरीर आत्मा और समाज के बल का देने हारा (यस्य) जिस की (विश्वे) सब (देवा.) विद्वान् लोग उपासते) उपासना करते हैं और (यस्य) जिस का (प्रशिषम्) प्रत्यक्ष सत्य स्वरूप शासन, न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं (यस्य) जिसकी (छाया) आश्रय ही (अमृतम्) मोक्ष सुखदायक है (यस्य) जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्यु) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है हम लोग इस उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए (हविषा) आत्मा और अन्त.करण मे (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा-पालन करने मे तत्पर रहें।

प्रश्न—जब निराकार परमात्मा है तो उसके आगे जीव पाप कर्म करते हैं वह मना क्यो नही करता?

उत्तर—वह ईश्वर सब को जब जीव पाप करने मे प्रवृत होता है तब भय देता है और जब जीव नहीं मानता तो उसे लज्जा भी देता है और जब लज्जा से भी नही मानता तो पापी को शंका भी देता है किन्तु जो ईश्वर के उपदेश को मान लेता है वह पाप कर्म से बच जाता है और जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के वशीभूत होकर पाप करता है वह दुःख पाता है। इसीलिए वह सब को ज्ञान देता है। जब जीव जगत् मे आता है तब वह ज्ञानशून्य जैसी गाढ निद्रा सुषुप्ति मे होता है ऐसे होता है। और जब माता के गर्भ से बालक आता है तब भी उसे कोई ज्ञान नहीं होता। वह प्रथम ईश्वर से सीखता है जैसे यन्त्रकार अपने यन्त्र का प्रयोग करना सिखाता है। ऐसे ही ईश्वर उसे शरीर के अंग का प्रयोग करना सिखाता है अर्थात् गर्भ मे बालक का श्वास नही चलता। ईश्वर के बिना उसे कौन कहे कि तू श्वास चला अन्यथा घडे में रखकर गाड देंगे और वही उसे बल देता है। इसलिए ईश्वर का नाम आत्मदा और बलदा है जो उसकी उपासना करेगा वह जन्म मरण के चक्र से छूटकर मुक्ति को प्राप्त करेगा और जो उपासना न करेगा वह जन्म मृत्यु में पड़ा रहेगा।

सबका प्रजापति परमेश्वर

प्रजापति ऋषि.। ईश्वरो देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्द। धैवत. स्वरः।

ओ३म् प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽ अस्तु वय स्याम पतयो रयीणाम्॥

ऋ० म० १०, सू० १२१, म० १०।
यजु० अ० २३, म० ६५।

अर्थ—हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा (त्वत्) आप से (अन्य) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड चेतनादिकों (न) नही (परि बभूव) तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि है (यत्कामा) जिस-जिस पदार्थ की कामना करने वाले हम लोग (ते) आपका (जुहुम) आश्रय लेवें और वाञ्छा करें (तत्) वह कामना (न) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे जिस से (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतय.) स्वामी (स्याम्) होवें।

ईश्वर को इस मन्त्र मे प्रजापति कहा है कि वह प्रजा का पति पालक है। उस ने कीड़ी से हाथी तक प्रत्येक प्राणी के शरीरो को बना कर उस की रचना का किसी से कुछ नही लिया। सारा विश्व बना कर जीवो को दान मे दिया है। इसलिए सब जीव जगत् मे कर्म करते है और कर्मफल भोगते हैं। इसी कारण ईश्वर से सब प्रकार के धन-धान्य की प्रार्थना करते हैं। जिस-जिस कामना से हम आप से प्रार्थना करते है वह-वह हमारी सफल हो। □

शराब के ठेके पर धरना

१ अप्रैल, १९८९ से ग्राम बडसी जिला भिवानी में आजाद युवा क्लब एव ग्रामीण महिला मण्डल की तरफ से धरना जारी है। दोनो पंचायतो का पूर्ण सहयोग है। यह ठेका पंचायत की अवहेलना करके जबरन खोला गया है। समय से पहले पंचायत शराब बन्दी प्रस्ताव दे चुकी थी। लोगों में काफी रोष है। धरने पर काम के समय में भी युवक बढ-चढकर भाग ले रहे हैं। ठेके से एक भी बोतल नही बिकती। ठेकेदार डर गया है। शायद शीघ्र ही सरकार को जनशक्ति के आगे झुकना पड़ेगा। बच्चे गाव मे शराब विरोधी नारे लगाते हैं। बाप शराब पीते हैं। बच्चे भूखो मरते है। शराब का ठेका बन्द करो। धरने पर प्रतिदिन हवन होता है। कई नवयुवको ने जनेऊ धारण किए हैं। कइयो ने शराब न पीने का व्रत लिया है। जब तक यह पाप का अड्डा नही उठेगा धरना जारी रहेगा।

अतरसिंह आर्य क्रान्तिकारी
प्रधान, शराब बन्दी समिति

समाचार सन्देश

पाणिनि कन्या महाविद्यालय वाराणसी का १५वां वार्षिकोत्सव अभूतपूर्व सफलता के साथ सम्पन्न

इस वर्ष ४, ५, ६ अप्रैल का त्रिदिवसीय पाणिनि कन्या महाविद्यालय वाराणसी का वार्षिकोत्सव इतना भव्य एव शानदार रहा है कि पिछले सभी वार्षिकोत्सवों से चार चांद लगा गया है। स्थानीय एवं बाहिर से पधारे हुए श्रोता महानुभावों से सभास्थल खचाखच भरा रहता था। वार्षिकोत्सव मे जहा मंचीय व्यवस्था अत्यन्त अनुशासित भव्य एव सुनियोजित थी वही विद्वज्जनो के भाषणों एवं विद्यालयीय कन्याओ के रोचक एवं शिक्षाप्रद कार्यक्रमों ने दर्शकों के मन पर गहरी छाप ही नही छोडी अपितु वैदिक धर्म की विजय का डका बजा दिया।

इस वार्षिकोत्सव के द्वितीय दिवस रात्रि मे कन्याओ द्वारा जो 'नवग्रहों का शुभागमन'' नामक शिक्षाप्रद नाटकीय प्रस्तुति की गई वह अपने आप में अद्वितीय एवं अभूतपूर्व थी तथा उसके माध्यम से वैदिक धर्म के सत्य-सिद्धान्तो का इतना व्यापक प्रभाव हुआ है कि बडे-बड़े सुपठित सुचिन्तक पौराणिक भाइयों ने भी यह स्वीकार किया कि सत्य वही है "जो वैदिक धर्म कहता है इसके अतिरिक्त सब आडम्बर और पाखण्ड ही हैं।" इस नाटकीय मंचन द्वारा कन्याओं ने उन सभी बातो पर प्रकाश डाला कि जो मध्यकाल में वेदो के अर्थों का अनर्थ करके स्वार्थवश उत्पन्न हो गई एव कर्मकाण्ड की स्वस्थ परम्परा दूषित हो गई। नाटकीय निर्देशन अत्यन्त प्रभावोत्पादक शालीन एव भव्य था अतः सभी लोगों ने उस में भरपूर आनन्द लिया तथा अनुभव किया कि तर्क से हीन बातों को मानना देश एव समाज के लिए अत्यन्त हानिकर होता है।

इस त्रिदिवसीय कार्यक्रम मे प्रथम दिवस कन्याओ की एक भाषण प्रतियोगिता हुई जिस का विषय था—"विश्व ऐक्य की दिशा में आज का चिन्तन कितना साधक है।" कुल छः कन्याओ ने इस भाषण प्रतियोगिता मे भाग लिया तथा बडे व्यापक एवं उत्कृष्ट विचार दिये जिन्हें सुनकर निर्णायक-प्रो० अनूपसिंह देहरादून ने यहां तक कहा कि "कन्याओं की भाषण कला, ठोस विषय वस्तु इतनी अच्छी थी कि मैं कह सकता हू कि प्रायः बडे-बड़े पोलिटिकल लोग भी देश देशान्तर संबधी इतने विचार नहीं दे पाते।" भाषणों द्वारा कन्याओं ने बताया कि वस्तुतः विश्व ऐक्य तभी सम्भव है जब हमारे वैदिक सिद्धांत "संगच्छध्वम्" आदि का पालन किया जाये। लोग अपना-अपना स्वार्थ छोडकर आर्यसमाज के नियम के अनुसार सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझें, किसी को निष्प्रयोजन न सतायें।

तृतीय दिवस खेलो के आश्चर्योत्पादक अनूठे कार्यक्रमो में तीरधनुष के प्रदर्शन ने दर्शकों को अत्यन्त विस्मय मे डाल दिया। आग के गोले से कूदना, तलवार एवं लाठी के शौर्य पूर्ण खेल दिखाना बहुत ही गजब के रहे जिन्हें देखकर दूर-दूर से पधारे अनेक लोगो ने कहा कि हमारा इस पुण्य भूमि में आना सफल हो गया। हम आज तक नहीं जानते थे कि पाणिनि कन्या महाविद्यालय "इतना गुरुतर कार्य कर रहा है।"

उत्सव में तीनों दिन विभिन्न वाद्य-यन्त्रों के साथ जो संगीत के मनोहारी विशिष्ट कार्यक्रम हुए उन्हें देखकर तो सभी जन मन्त्र मुग्ध होकर झूम उठे और अनुभव किया कि इस विषय में भी कन्याओं का अभ्यास और परिश्रम अत्यन्त ही श्लाघनीय है। ये परिश्रमी बालायें अपने जीवन मे उन्नति के उच्च शिखर पर पहुंच सकती हैं ऐसी सम्भावना सबने की।

इस महोत्सव का दूसरा दृश्य था प्रातःकालीन यज्ञ-मण्डप में श्रद्धालु जनो का भक्ति भावना से समुपस्थित होना। यज्ञ हमारे जीवन का वह विशिष्ट अंग है कि जिस से हम अपने सभी कल्मष तथा नानाविध चिन्ताओं को धो लिया करते हैं। विद्यालयीय यज्ञ वेदि पर श्रद्धालु जनों का इतनी निष्ठा एव प्रेम से यथा समय उपस्थित होकर भाग लेना यह बता रहा था कि वे यहां से जीवन के सच्चे मोती, आध्यात्मिक भावना को उपलब्ध करने आये हैं। यज्ञ के मध्य-मध्य मे विद्यालय की पूज्या आचार्या सुश्री डा० प्रज्ञा देवी जी द्वारा यज्ञ सम्बन्धी मार्मिक आध्यात्मिक उपदेश बहुत ही प्रेरक एवं कल्याणकारी रहे हैं।

विद्वज्जनों के भाषणों मे जहां पूज्य आचार्य विश्वश्रवा जी वेदव्यास के वेद सम्बन्धी गहन विचारों की विशिष्ट छाप विद्वानो पर पड़ी वहीं पूज्य प० शान्तिप्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी का वैदिक धर्म की विशेषताओं पर हुआ भाषण सब के मन मस्तिक को छू गया। प्रो० अनूपसिंह जी, प्रो० ज्वलन्त कुमार शास्त्री, प्रो० उमाकान्त उपाध्याय, आचार्य सुद्युम्न जी आदि के भी समय-समय पर हुए भाषण अत्युत्तम रहे।

मच सचालन व्यवस्था प्रथम दिवस प्रमुख रूप से श्री ओमप्रकाश जी झंवर ब्यावर उपमन्त्री राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा, द्वितीय दिवस प्रो० ज्वलन्त कुमार शास्त्री एवं तृतीय दिवस श्री पं० ओमप्रकाश जी वर्मा द्वारा की गई। सभी व्यवस्थायें इतनी उत्तम थीं कि उसमे पूज्या बहिन मेधा देवी जी एव सभी स्नातिका बहिनों की सूझ-बूझ तथा धैर्य का परिचय पूर्णतया मिल रहा था।

वार्षिकोत्सव के अवसर पर विद्यालयीय ५०००००,०० पाच लाख रु० को स्थिर निधि की आवश्यकता के सम्बन्ध में भी विशेष विचार प्रकट किये गये तथा श्री सोमदत्त जी करवा एवं श्री रमेश जी काबरा ने इस बात का बीड़ा उठाया कि हम इस कार्य को पूर्ण कर के ही दम लेंगे। पूज्या आचार्या जी के मस्तिष्क मे इस का कोई बोझ नही रखेंगे। श्री ओमप्रकाश जी झंवर के उत्साह पूर्ण शब्दों ने लोगों को विशेष प्रभावित किया और सबने विद्यालय की सदैव यथा शक्ति सेवा करते रहने का व्रत लिया।

संवाददाता—
श्रीमती सुषमा पाल एम० ए०
पाणिनि कन्या महाविद्यालय
वाराणसी

समाजसेवी पत्रकार पर हमला निंदनीय

आर्यसमाज के यशस्वी कार्यकर्ता एवं आर्यसमाज पुलबंगश के उपमन्त्री तथा शक्ति नगर क्षेत्र से प्रकाशित 'तीन सूत्रीय'' (पाक्षिक) पत्र के प्रबन्ध सम्पादक एव उत्साही पत्रकार श्री कमलकिशोर आर्य पर असामाजिक तत्वों द्वारा किए गए हमले की आर्य समाज पुलबंगश के समस्त सदस्य एव कार्यकरता घोर निन्दा करते है। आर्यसमाज पुलबंगश के प्रधान श्री मुकेश कुमार जी ने इस हमले को "मानव समाज की रीढ तोड़ने के असफल प्रयास की संज्ञा दी। तथा सभी मानवतावादी शक्तियो से इस घिनौनी हरकत का एक जुट होकर विरोध करने का आह्वान किया।

मानव शान्ति परिषद् घंटाघर दिल्ली ने भी इस हमले का विरोध किया है।

आर्य विवाह केन्द्र

श्री आत्मदेव, संयोजक, अन्तर्जातीय आर्य विवाह केन्द्र सभा कार्यालय में प्रत्येक सोमवार, बुधवार और शुक्रवार को साय ५ बजे से ६ बजे के बीच उपलब्ध रहेंगे। इच्छुक सज्जन इसी समय के बीच सम्पर्क करें।

धर्मपाल
महामंत्री
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

ग्रीष्मकालीन युवक निर्माण शिविर

हिमालय की सुरम्य घाटियों में स्थित महर्षि कण्व की तपःस्थली व वीर भारत की जन्म भूमि से वसुर्शति, रोमांचकारी ग्रीष्मकालीन अवकाश में आर्य युवकों के शारीरिक व बौद्धिक विकासहेतु महर्षि दयानन्द की विचारधारा से ओतप्रोत करने व राष्ट्र का सच्चा सिपाही बनाने के उद्देश्य से, 'विशाल आर्य युवक प्रशिक्षण शिविर" आगामी १३ जून से २२ जून १९८६ तक स्वामी जगदीश्वरानन्द जी महाराज के सरंक्षण मे व युवा हृदय सम्राट् ब्रह्मचारी आर्य नरेश की अध्यक्षता में गुरुकुल कण्वाश्रम जिला पौडी गढवाल, उत्तर प्रदेश मे केन्द्रीय आर्य युवक परिषद दिल्ली कोटद्वार प्रदेश के तत्वाधान में आयोजित किया जा रहा है।

शिविर संचालक व परिषद् महासचिव श्री अनिल कुमार आर्य ने बताया कि, महात्मा आर्य भिक्षु (ज्वालापुर) भी इस दिन शिविर में रहकर युवको को मार्ग दर्शन देंगे। ब्रह्मचारी विश्वपाल जयन्त (आधुनिक भीम) व श्री धर्मवीर आदि योग्य व्यायाम-शिक्षकों द्वारा आसन-प्राणायाम, दण्ड-बैठक, लाठी, जूडो-कराटे, कासिंग का विशेष प्रशिक्षण दिया जायेगा।

शिविर प्रवेश शुल्क ५०) रुपए होगा, शुद्ध भोजन व आवास की नि.शुल्क व्यवस्था रहेगी। न्यूनतम आयु सीमा १५ वर्ष रखी गई है। इच्छुक युवक परिषद् मुख्य कार्यालय: आर्यसमाज कबीर बस्ती, दिल्ली-७ अथवा प्रान्तीय कार्यालय गुरुकुल कण्वाश्रम, डाकखाना क्लाज घाटी कोटद्वार जिला पौड़ी गढवाल पिन. २४६१४९ से सम्पर्क करें। वेशभूषा सफेद कमीज, सफेद सैन्डो बनियान, सफेद कपड़े के जूते, सफेद निक्कर, सफेद जुर्राब, केशरिया जांघिया, लगोट, काली बैल्ट, ६ इन्च की कृपाण युवको के लिए अनिवार्य है।

योग साधना शिविर

इसके अतिरिक्त योग-साधकों के लिए "योग साधना शिविर" भी इस स्थान पर इन्ही तिथियों मे लोगा। सफेद कुर्ता, कटि वस्त्र, लंगोट साधकों के लिए अनिवार्य वेशभूषा रहेगी। आयु सीमा ६५ वर्ष रहेगी।

राधेश्याम शास्त्री
कार्यालय प्रबन्धक

आभार प्रदर्शन

आर्यसमाज दीवान हाल, दिल्ली की शताब्दी पर जिन महानुभावों, आर्य-संस्थाओं का सहयोग रहा, उन सभी के प्रति हम कृतज्ञ हैं। सभी को हार्दिक धन्यवाद।

मूलचन्द गुप्त
मंत्री
आर्यसमाज दीवान हाल, दिल्ली

युवक निर्माण शिविर

केन्द्रीय आर्य युवक परिषद् के तत्वावधान में १३ जून से २२ जून तक हिमालय की सुरम्य घाटियों के बीच मालती नदी के तट पर गुरुकुल कण्वाश्रम कोटद्वार, पौढ़ी गढ़वाल में एक युवक निर्माण शिविर का आयोजन किया गया है। जिसमें चरित्र निर्माण के साथ शारीरिक सौष्ठव के रक्षार्थ योगासन प्राणायाम, लाठी जूडो कराटे, बाक्सिंग आदि का भी प्रशिक्षण दिया जायेगा। सम्पूर्ण जानकारी के लिए पत्र व्यवहार करें या मिलें।

अनिल आर्य
आर्यसमाज कबीर बस्ती, पुरानी सब्जी मण्डी दिल्ली ७

वार्षिकोत्सव

आर्यसमाज माडल टाउन, दिल्ली-९ का ३०वां वार्षिकोत्सव ५ मई, सोमवार से ११ मई १९८६ तक बड़ी धूमधाम से मनाया जा रहा है। महोत्सव में आप सब सपरिवार, इष्ट मित्रों सहित सादर आमन्त्रित हैं।

आप के पधारने से उत्सव की शोभा बढ़ेगी और आप का ज्ञान बढ़ेगा तथा हमें सेवा और वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार कार्य में प्रोत्साहन मिलेगा।

निवेदक :
महावीर प्रसाद प्रमोद
(प्रधान)

जिला आर्योपप्रतिनिधि सभा गोरखपुर का निर्वाचन

आर्यसमाज पिपराइच (गोरखपुर) में जिला आर्योपप्रतिनिधि सभा गोरखपुर की साधारण सभा की बैठक ३० मार्च, १९८६ को पं० द्विजराज शर्मा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई जिस में निम्नलिखित पदाधिकारी सर्वसम्मत निर्वाचित घोषित किए गए—

प्रधान : पं० द्विजराज शर्मा 'पुरोहित'
उपप्रधान : सर्वश्री डा० सत्यनारायणसिंह एवं सूर्यबलीप्रसाद गुप्त
मन्त्री : श्री राजमंगल विश्वकर्मा
उपमन्त्री : सर्वश्री कल्पनाथ सिंह एवं अक्षयवर प्रसाद आर्य
कोषाध्यक्ष श्री रमेश प्रसाद गुप्त
पुस्तकाध्यक्ष . श्री गंगा प्रसाद आर्य
आय-व्यय निरीक्षक श्री भीमचन्द्र शर्मा
प्रचारमन्त्री श्री तेज प्रताप सिंह
अधिष्ठाता भू-सम्पत्ति . श्री बिहारी लाल आर्य

इन पदाधिकारियों के अतिरिक्त १४ अन्तरंग सदस्य निर्वाचित हुए।

भवदीय
राजमंगल विश्वकर्मा
मन्त्री
जिला आर्योपप्रतिनिधि सभा
गोरखपुर

अमृत के घूंट

वेदामृत के दान से करें जगत् कल्याण।
अणु के विषम विनाश से मानवता का त्राण॥
अखिल विश्व आलोक प्रकाशित वेदों के सम्बल से।
भ्रातृ भाव समवाय समन्वय सभी वेद के बल से॥१॥

वेद-ज्ञान का मार्ग प्रदर्शक, बहु थाती मानव की।
चतुर्वेद से विश्व संवारें, ज्ञान राशि यह भव की॥
वैदिक युग का सूत्रपात, सम्भव है वेद विभव से।
विविध ताप से मुक्त मनुजता, सुख समृद्धि वैभव से॥२॥

चक्रवर्ती साम्राज्य को स्थापित वैदिक बल से।
युग सवार कर शंखनाद चारों वेद सबल से॥
जन-जनहित के लिए समर्पित करें स्वयं सुविचारी।
सब के सुख में हो अपना सुख यह है नीति हमारी॥३॥

वेद-मन्त्र से गूंज उठे ब्रह्माण्ड विश्व का कोना।
स्नेह शान्ति श्रद्धा समता का बीज हमें है बोना॥
'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का नित निदान है करना।
जड़ता-ताप-विषमता-पीड़ा है जन-जन का हरना॥४॥

परमपिता परमेश्वर में श्रद्धा का स्रोत बहावें।
विहस-विहस कर हम प्रभुवर के गुण शतश: ही गावें॥
वैदिक कर्मकाण्ड वरिमा परखें हम प्रतिभा से।
अपना जीवन सुखी बनावें वेद राशि महिमा से॥५॥

त्रिविध ताप से मुक्त मनुजता होगी वैदिक बल से।
अक्षय सुख को प्राप्त करें हम अमर वेद सम्बल से॥
वेद धर्म के प्राण, इसी पर निर्भर है प्रगति हमारी।
इसको पढ़कर सुखी बनेगी विस्तृत दुनिया सारी॥६॥

दीवान हाल शताब्दी...

(पृष्ठ १ का शेष)

तालकटोरा इण्डोर स्टेडियम में प्रारम्भ हुआ। वेदगान के पश्चात् सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान आर्य जगत् के शीर्षस्थ नेता श्री रामगोपाल शालवाले का अभिनन्दन किया गया। इस अवसर पर श्री शालवाले द्वारा किए गए कार्यों एवं उन की सेवाओं का मूल्यांकन करते हुए उन्हें एक अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया गया।

आर्य स्त्री समाज सोसामऊ कानपुर का निर्वाचन

प्रधाना : श्रीमती शशिकान्ता जी शास्त्री
उपप्रधाना . श्रीमती विद्यावती जी शुक्ला
श्रीमती लक्ष्मी देवी जी गुप्ता
श्रीमती आशारानी जी गुप्ता
मन्त्रिणी श्रीमती स्वर्णकुमारी जी अरोड़ा
उपमन्त्रिणी श्रीमती दर्शना जी लाम्बा
श्रीमती प्रभा जी अरोड़ा
कोषाध्यक्षा श्रीमती शीलवती जी सक्सेना
उपकोषाध्यक्षा . ,, स्नेहलता जी अरोड़ा
पुस्तकाध्यक्षा श्रीमती विद्यावती जी आर्या
उपपुस्तकाध्यक्षा : ,, गंगी देवी जी

स्वर्ण अरोड़ा

R. N. No. 32387/77 Post in N.D.P.S.O. on 2-5-86 Licenced to post without prepayment, Licence No. U 139
रजि० नं० डो० (सो०) ७५६ पूर्व भुगतान बिना भेजने का लाइसेंस नं० यू १३९

ओ३म्

आर्य सन्देश

केवल ५० रुपये में तीन वर्ष तक

हर सप्ताह पढ़ते रहिए

- क्या आप ऋषि, मुनि, तपस्वी, योगियों की अमृत वाणी पढ़ना चाहते हैं?
- क्या आप वेद के पवित्र ज्ञान को सरल एवं मधुर शब्दों में जानना चाहते हैं?
- क्या आप उपनिषद्, गीता रामायण, ब्राह्मणग्रन्थों का आध्यात्मिक सन्देश स्वयं सुनना और अपने परिवार को सुनाना चाहते हैं?
- क्या आप अपने शूरवीर, एवं महापुरुषों की शौर्य गाथाएं जानना चाहेंगे?
- क्या आप महर्षि दयानन्द की वैचारिक क्रान्ति से आत्मचेतना जागृत करना चाहते हैं।

यदि हाँ, तो आइये आर्यसन्देश परिवार में शामिल हो जाइए।

केवल ५० रुपये में तीन वर्ष तक हर सप्ताह पढ़ते रहिए। साथ ही वर्ष में चार अनुपम भव्य विशेषांक भी प्राप्त कीजिए।

एक वर्ष केवल २० रुपये; आजीवन २०० रुपये।

प्राप्ति स्थान : आर्यसन्देश साप्ताहिक

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

१५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-११०००१

उत्तम स्वास्थ्य के लिए

गुरुकुल काँगड़ी फार्मेसी,

हरिद्वार की औषधियां

सेवन करें

शाखा कार्यालय—६३, गली राजा केदारनाथ, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६ फोन। २६६८३८

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन : ३१०१५० के लिए डा० धर्मपाल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा
[illegible] में मुद्रित। रजि० नं० डी० (डी०) ७५६

वर्ष १० अंक २४ | रविवार, ११ मई, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ | वैशाख २०४३ | दयानन्दाब्द—१६१
मूल्य एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश मे ५० डालर, ३० पौंड

आर्यसमाज दीवान हाल की शताब्दी सम्पन्न

स्वाधीनता प्राप्ति में आर्यसमाज का योगदान प्रशंसनीय है।

—उपराष्ट्रपति श्री वेंकटरमन

आर्यसमाज दीवान हाल के शताब्दी महोत्सव पर भारत के उपराष्ट्रपति महामहिम श्री वेंकटरमन ने हिन्दू धर्म में जागृति लाने की दृष्टि से आर्यसमाज की की गई सेवाओं की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की।

इस अवसर पर उपराष्ट्रपति ने देश की एकता व अखण्डता को बनाए रखने में सर्वसाधारण एवं विशेष रूप से आर्यसमाज को आगे आने के लिए अपील की।

उपराष्ट्रपति ने कहा आर्यसमाज वास्तव में एक हिन्दू धर्म के पुनर्जागरण का प्रतीक है और वह हिन्दू धर्म की प्राचीन विशुद्धता और गरिमा को फिर से वापस लाना चाहता है। पिछले सौ वर्षों में आर्यसमाज कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक फैला है और नवीन विचारधारा के कारण उसने अनेक कुरीतियों को दूर किया है। श्री वेंकटरमन ने कहा कि आर्यसमाज समूची मानवता की भलाई के लिए उठा और उस का आदर्श 'वसुधैव कुटुम्बकम्' रहा। भारत की स्वाधीनता में आर्यसमाज के योगदान को देश कभी नही भुला सकता। स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय के नाम आर्यसमाज की कीर्ति को अक्षुण्ण बनाए रखेंगे।

श्री वेंकटरमन ने अपने भाषण में रोमां रोलां की इन पंक्तियों को उद्धृत किया—

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती मे एक कर्मयोगी और चिन्तक होने के साथ नेतृत्व की अनूठी प्रतिभा थी। वे भारतीय संगठन और पुनर्निर्माण के दृढ दूरदर्शी व्यक्ति थे।

अपने ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश के द्वारा उन्होंने अपनी बौद्धिक श्रेष्ठता को सिद्ध किया। यज्ञ के नाम पर होने वाले अश्वमेध, गोमेध या नरमेध के खण्डन मे कितनी सूझबूझ से अपने विचारों को रखा।

यदि इस प्रकार का यज्ञ करने वाले स्वर्ग मे जाते हैं तो वे अपने सम्बन्धियों को क्यों नहीं मार कर यज्ञ मे डाल दे।

उपराष्ट्रपति श्री वेंकटरमन ने विचार व्यक्त करने से पूर्व यज्ञ की वेदी पर पधार कर यज्ञ मे भाग लिया और आहुति भी प्रदान की। □

श्री रामगोपाल शालवाले को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट

लोकसभा अध्यक्ष श्री बलराम जाखड़ के कर कमलों से अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया। ग्रन्थ भेंट करने से पूर्व श्री प० राजगुरु जी शर्मा ने एक अभिनन्दन-पत्र श्री शालवाले को पढ़कर दिया। साथ ही डा० सोमनाथ जी मरवाह अध्यक्ष, स्वागत समिति ने अभिनन्दन ग्रन्थ तैयार करने की प्रकिया को प्रस्तुत कर योजना कैसे क्रियान्वित हुई, इस की चर्चा करते हुए, बीच मे आये व्यवधानों का भी दिग्दर्शन कराया।

श्री क्षितीश वेदालंकार, श्री स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती, श्री वाचस्पति जी उपाध्याय, पं० शिवकुमार शास्त्री ने श्री लाला जी की सेवाओ की सक्षेप में चर्चा कर ऐसी कामना की कि उन्हें देश, जाति धर्म की चिरकाल तक सेवा करते हुए दीर्घायु मिले।

श्री शालवाले द्वारा संन्यास की घोषणा

श्री शालवाले ने अपने अभिनन्दन के उत्तर में कहा कि मैंने अपने जीवन मे जो कुछ किया है वह सब उस ऋषि का प्रताप है, मैंने कुछ नही किया। उन्होंने कहा कि मैं नहीं चाहता था कि आप लोग मेरा अभिनन्दन करें, मैंने ऐसा कौन-सा काम किया है जिस हेतु मेरा यह अभिनन्दन किया गया है। फिर भी मैं राष्ट्रीय एकता अखण्डता की भावना जन-जन मे जगाने के लिए 'सन्यास' ग्रहण करने की घोषणा करता हूं।

आज से उपरांत अब दुनियादारी से हटकर संन्यास आश्रम की ओर जाने को ही उचित समझता हूँ। साथ ही आर्य सभा की बैठक बुलाकर मैं सभा के अधिकार पद से भी मुक्त होना चाहता हू।

इस घोषणा पर उपस्थित जनमानस भाव विह्वल हो आश्चर्य में पड गया और कहा कि आप तो स्वभाव से ही संन्यासी हैं केवल गैरिक वस्त्र ही बदलने हैं।

स्वामी दीक्षानन्द जी ने श्री लाला जी के सन्यास पर यज्ञकुण्ड की तीन मेखलाओं की चर्चा तीन आश्रमों से की और चौथा सन्यास आश्रम अग्निकुण्ड की अग्नि से तुलना करके श्री लाला जी द्वारा अग्नि में प्रवेश कर सन्यास का रूप लेने पर १-१ ग्यारह होकर समाज को आगे बढ़ाने मे योग देने की बात कही।

श्री बलराम जाखड ने श्री शालवाले के सन्यास धारण की घोषणा पर बधाई देते हुए कहा कि मैं राष्ट्र रक्षा के इस काम में कन्धे से कन्धा मिलाकर चलूंगा। □

सम्पादक—यशपाल 'सुधांशु' एम० ए० | व्यवस्थापक—डा० गणेशीलाल | प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल

गौरव स्तंभ

जीवन को मोड़ देने वाले प्रेरक प्रसंग

प्रस्तोता—सत्यानन्द आर्य

: १ :

स्वामी श्रद्धानन्द सन्यास ले चुके थे। गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता और आचार्य पद को अन्य कार्यकर्ताओं ने सभाल लिया था। गुरुकुल का उत्सव हो रहा था, उत्सव के निमित्त आकर वे उसी प्रसिद्ध गगा तट वाले बगले मे ठहरे हुए थे। उत्सव का सब से मुख्य अपील सम्बन्धी व्याख्यान हो रहा था, इतने में दर्शको का निवास-स्थान की ओर से उठता हुआ धुआं दिखाई दिया। क्षण भर में शोर मच गया— आग लग गई, आग लग गई। पण्डाल एकदम खाली हो गया। सब लोग कैम्प की ओर भागे। वहा जाकर देखा तो फूस छप्पर, बारूद के ढेर की तरह धू-धू करके जल रहे थे। दर्शक लोग पागलो की तरह चारों ओर भागने लगे और शोर मचाने लगे। बीसियो बच्चे कैम्प मे सोए पडे थे। इस भयानक आग मे घुसकर कौन उन को बचाए ? यह नही सूझता था कि फूस में लगी आग बुझेगी कैसे ? कुछ देर तक आर्तनाद और हाहाकार के सिवाय कुछ सुनाई नही देता था। इतने मे स्वामी जी आ गये तथा सारी स्थिति का निरीक्षण कर कार्यकर्ताओं को फावड़े, टोकरियां, घड़े, बाल्टियां लाने के लिए भेजकर और स्वय सब को साथ लेकर आग के पास पहुंचे और दर्शको को स्वय सेवक दलो के रूप मे विभक्त कर दिया। एक दल को आज्ञा दी कि हाथो मे या कपडो मे भरकर जैसे भी हो, मिट्टी और रेत ले लेकर आग पर डालो। दूसरे दल को आज्ञा दी कि जिन छप्परो मे आग नही लगी उन का सामान निकालकर बहुत दूरी पर रख दो और यथाशक्ति घसीटकर आग से दूर ले जाओ। इतने मे फावड़े, टोकरियां, बाल्टियां, घड़े सब चीजें आ पहुची। एक दल मिट्टी खोदने लगा, दूसरा उसे टोकरियो मे भरकर आग पर डालने लगा, तीसरे दल ने कुए तक लम्बी लाइन लगा दी, जहा से घडो और बाल्टियो द्वारा पानी आने लगा। आर्तनाद बन्द हो गया। जहा अव्यवस्था थी वहा व्यवस्था हो गई और लगभग आध घण्टे भर मे आग शात हो गई। स्वामी जी जैसे नेता ही ऐसे समय अव्यवस्था में से व्यवस्था पैदा कर सकते हैं।

: २ :

श्री मदनलाल ढीगरा को विनायक दामोदर सावरकर ने अपने गुप्त क्रांतिकारी सगठन "अभिनव भारत" का सदस्य बनाया, इन्हें क्रांति का पाठ पढाया। श्याम जी कृष्ण वर्मा लाला हरदयाल आदि के सम्पर्क में आने पर इन में क्रांति की भावना इतनी उग्र हो गई कि इन मे किसी अग्रेज का वध करने की भावना बलवती हुई।

भारत में ब्रिटिश सरकार क्रांतिकारियों को कड़ी सजाएँ दे रही थी। अत: ढीगरा और उसके क्रातिकारी मित्रों ज्ञानचन्द वर्मा और कोरेगावकर ने इतका बदला ब्रिटिश साम्राज्य की राजधानी लन्दन में लेने का निश्चय किया। इस के लिए कर्जन वायली को चुना गया। पहली जुलाई को सर कर्जन वायली ने इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट जहांगीर हाउस में इण्डियन नेशनल एसोसिएशन की वार्षिक बैठक के अवसर पर एक प्रीतिभोज दिया। ढींगरा भी इस मे आमन्त्रित थे। सात महीने से चिरप्रतीक्षित अवसर उन्हे अब मिल रहा था। कार्यक्रम की समाप्ति पर वायली निमन्त्रित लोगों से अन्तिम बात करने लगा, ढींगरा ने बहुत पास से गोली चलाई। कुछ क्षणो में एडीकाग धराशाई हो गया।

अदालत में ढीगरा का व्यवहार बडा गौरवपूर्ण था। उन्होंने अपना अपराध छिपाने का कोई प्रयास नही किया। उसे स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हुए कहा—"मैं चाहता हू कि अग्रेज मुझे फासी की सजा दें क्योंकि उस अवस्था मे मेरे देशवासियो के अन्दर प्रतिकार की भावना और भी अधिक तीव्र होगी। मैं यह वक्तव्य इसलिए दे रहा हू कि ससार को विशेषकर अमेरिका मे हमारे समर्थको को यह पता लग जाये कि हमारा यह पुण्य कार्य न्यायपूर्ण है। जब न्यायाधीश ने उन्हें फांसी की सजा दी तो उन्होंने उस का आभार प्रकट करते हुए कहा, "श्रीमन्, मैं अपने देश की ओर से आपका धन्यवाद करता हूँ। मुझे इस बात का गर्व है कि मैं देश के लिए अपने प्राणो का बलिदान कर रहा हू। मेरे जैसे धन-बुद्धिहीन भारत माता के पुत्र के पास अपना रक्त ही बलिदान करने के लिए है। मैं मातृभूमि की बलिवेदी पर अपने प्राणो का उत्सर्ग कर रहा हूं।"

ढीगरा ने अपने कार्य के मूल उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए "चुनौती" नामक पत्रिका में लिखा था—"मैं यह समझता हूं कि मैंने जान-बूझकर और एक विशेष उद्देश्य से एक अग्रेज का खून बहाया है। भारतीय नवयुवकों को काला पानी और फांसी की अमानुषिक सजाएं दी जा रही हैं। उनके विषय मे यह मेरा नम्र विरोध है। इस विषय में मैंने सिवाय अपनी अन्तरात्मा के किसी से मन्त्रणा नहीं की है। सिवाय अपने कर्तव्य के किसी के साथ षड्यन्त्र नही किया। मेरी धारणा है कि जिस राष्ट्र को उस की इच्छा के विरुद्ध गुलाम बनाया जाता है, वह सदा ही युद्ध की अवस्था मे रहता है। मेरे लिए खुली लडाई सम्भव नही थी। इसलिए मैंने एकाएक प्रहार किया क्योंकि मुझे तोप न मिली, मैंने रिवाल्वर निकाला और गोली मार दी। हिन्दू होने के कारण मैं अनुभव करता हूँ कि मेरे राष्ट्र का दासत्व मेरे परमात्मा का अपमान है। मातृभूमि का कार्य स्वतन्त्रता का कार्य है।

मेरी हार्दिक प्रार्थना यह है कि मैं फिर भारतभूमि में जन्म लूं और फिर इस पुनीत कार्य के लिए मरता रहू, जब तक कि मेरा उद्देश्य पूरा न हो जाए और मातृभूमि मानवता के हित तथा परमात्मा के गौरव के लिए बन्धनमुक्त न हो जाए।"

: ३ :

एक बार स्वामी दयानन्द जी के भक्त श्री इन्द्रमन जी ने स्वामी जी से निवेदन किया—"आप परस्पर नमस्ते कहने का आदेश देते हैं, परन्तु हम ने पहले "जय गोपाल" शब्द चलाया था और फिर "परमात्मा जीते" आरम्भ कर दिया। पहले शब्दों पर ही लोगो ने बहुतेरे कटाक्ष किए थे अब यदि नया "नमस्ते" शब्द चलाया तो लोग हमारी खिल्ली उडाने लगेंगे। वैसे भी देखें तो मेल-मिलाप मे "परमात्मा जीते" ऐसा कहना बहुत ही उचित है। छोटा तो बडे को "नमस्ते" करता अच्छा लगता है, परन्तु पिता पुत्र को, स्वामी नौकर को और राजा अपने चपरासी को "नमस्ते" कहे यह बात शोभा नही देती।" स्वामी जी ने कहा, "इन्द्रमन जी! अभिमानी पुरुष बडा नही होता, बडा वह है जिस ने अपने अहकार को जीता! जो वास्तव मे बड़े हैं वे अपने बडप्पन को आप प्रकट नही किया करते। हमारे पूर्वजो में जितने भी ऋषि महर्षि और राजे महाराजे हुए है, उन मे से एक ने भी अपने मुख से अपनी बड़ाई नही बताई। "नमस्ते" का अर्थ पांव पकड़ना नही है, इसका अर्थ है सम्मान करना। सभी ऊंचे-नीचे और छोटे-बडे मेल-मिलाप में सम्मान-सत्कार के भागी हैं। सर्वत्र होता भी ऐसा ही है। अच्छा, आप ही अपने अन्त:करण से कहें कि जब कोई मनुष्य अपने आवास पर आता है तो उस समय आप के हृदय में क्या भाव उत्पन्न होता है?"

इन्द्रमन जी इस पर मौन साधे रहे। तब स्वामी जी ने फिर कहा, "महाशय! इस बात को सभी जान जाते हैं कि जब कोई पूज्य और प्रतिष्ठित मनुष्य घर पर आता है तो उसे देख अभ्युत्थान और झुक कर सम्मान देने को जी चाहता है। पुत्र से प्यार करने का भाव उत्पन्न होता है। नौकर-चाकरों को अन्न-जल और आइये, बैठिये आदि शब्दो से सत्कृत करने की हृदय प्रेरणा करता है। ऊपर कहे सारे भावों का प्रकाश "नमस्ते" से तो हो जाता है परन्तु उस समय परमेश्वर का नाम लेना असंगत है, आत्मगत भावों के विपरीत है। जो भाव भीतर हो उसी को करना शोभा देता है।

: ४ :

प्रयाग मे गंगा तट पर एक महात्मा रहते थे। वे वयोवृद्ध थे। जब कभी महर्षि दयानन्द जी उन्हे मिलते, तो वे महर्षि जी को "बच्चा" कहकर सम्बोधन करते थे। एक दिन उस वृद्ध सन्त ने महर्षि जी को कहा, "बच्चा! अगर आप पहले के ही निवृत्ति मार्ग पर स्थिर रहते और परोपकार के झगडे मे न पडते तो आपकी इसी जन्म में मुक्ति हो जाती। अब तो आप को एक और जन्म धारण करना पड़ेगा।"

महर्षि जी ने कहा, "महात्मन्! मुझे अपनी मुक्ति का कुछ भी ध्यान नही है। जिन लाखो मनुष्यो की मुक्ति-चिन्ता मुझे चलायमान कर रही है, उन की मुक्ति हो जाये, मुझे भले ही क्यों न कई जन्म धारण करने पड़ें। दु:खो के त्रास से, दीन दशा से और दुर्बल अवस्था से परमपिता के पुत्रो को मुक्ति दिलाते, मैं आप ही आप मुक्त हो जाऊँगा।"

दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद और आर्यसमाज की भूमिका

ब्रह्मदत्त स्नातक

आज भारत और भारतीय जनता का दक्षिण अफ्रीका की सरकार के साथ राजनयिक एवं आर्थिक सम्बन्ध विच्छेद होने पर भी उस देश के साथ और विशेष रूप से वहां की भारतवंशी जनता के साथ हमारे ऐतिहासिक एव सांस्कृतिक संबंध अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। भारत के राष्ट्र-पिता कर्मवीर मोहनदास करमचन्द गांधी जो आगे चलकर महात्मा गांधी के नाम से प्रख्यात हुए। उन की प्रथम कर्मभूमि दक्षिण अफ्रीका ही थी। १८९२ से १९१३ तक वहीं रह कर ' हिंसा और सत्य के प्रयोग उन्होंने किये थे। वहीं पर अश्वेतों के प्रति अन्याय के प्रतिरोध के लिए संस्था एवं संगठन का कार्य उन्होंने शुरू किया था। हाल के अपने दक्षिण अफ्रीका के प्रवासकाल में हमें गांधी जी द्वारा स्थापित फीनिक्स सेण्टलमेण्ट और पीटर मैरिट्जबर्ग उस रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म को भी देखा जहां बैरिस्टर गांधी जी को एक गोरे ने रेल के डिब्बे से धकिया कर गिरा दिया था।

दक्षिण अफ्रीका का महत्त्व इसलिए भी है कि वहां जन्मे एक भारतीय सपूत भवानी दयाल ने अपनी मातृभूमि की सेवा के दौरान वहां के दमनकारी कानूनों के खिलाफ प्रचण्ड आंदोलनों में भाग लिया, यातनाएँ भुगतीं और सपत्नीक वहां की जेलों में रहे। परन्तु इसके अतिरिक्त अपने माता और पिता की जन्म-भूमि भारत की आजादी के लिए भी उन्होंने कारावास भुगता और अनेक प्रकार से राष्ट्रीय आंदोलन में अनेक बार भाग लिया। वे हिन्दी और अंग्रेजी के श्रेष्ठ वक्ता, लेखक तथा सम्पादक होने के अतिरिक्त प्रवासी भारतीयों के दुःख-दर्द के मसीहा थे। अपने युग की धारा के अनुकूल आर्यसमाज एवं हिन्दी की उन्होंने महती सेवा की थी। इस दृष्टि से वे अद्वितीय व्यक्ति थे। वे उस देश की आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रथम प्रधान थे।

हमारे लिए दक्षिण अफ्रीका का महत्त्व इसलिए है कि भारत से बाहर सब से अधिक भारतवंशी इसी देश में रहते हैं। इन की संख्या इस समय १० लाख के आसपास है यानी ९॥ लाख के करीब। वर्तमान दक्षिण अफ्रीका के चार राज्यों में से ट्रांसवाल और नैटाल पिछली शती में ब्रिटिश उपनिवेश थे और शेष दोनों डच या बोअर लोगों के शासन मे थे। ब्रिटेन में १८३३ मे दास प्रथा समाप्त होने के बाद नैटाल प्रांत में गन्ने की खेती के लिए जब मजदूरों की जरूरत पड़ी तब ५ साल की अवधि की शर्त पर भारत से मजदूर बुलाए जाने शुरू हुए। चूंकि ये एक एग्रीमेंट के तहत लाये जाते थे, इस प्रणाली को गिरमिट और इन मजदूरों को गिरमिटिया कहा जाता था। ब्रिटिश सरकार की अनुमति से १८३५ में मारीशस १८४४ में ब्रिटिश गियाना तथा १८६० में नैटाल में इन गिरमिटियो का आना शुरू हुआ। इनका पहला दल कलकत्ता के मटियाबुर्ज स्थान से ट्रूरो नामक जहाज से मद्रास से रवाना हुआ। दूसरा मजदूरों गिरमिटियों का दल सर्वप्रथम दक्षिण अफ्रीका मे उतरा।

प्राप्त विवरणों के अनुसार गिरमिट प्रथा समाप्त होने तक कुल मिला कर १,५२,१८४ भारतीय वहां पहुंचे थे। इन में सर्वाधिक संख्या भूतपूर्व मद्रास प्रेसीडेन्सी के निवासियों तथा उसके बाद पूर्वी उत्तर प्रदेश एव बिहार राज्यों से आने वालों के वंशधरों की है। बाद में गुजरात और कच्छ (काठियावाड़ के व्यापारी भी वहां पहुंच गए। यों पूर्वी अफ्रीकी तट पर भारतीय गुजराती पहले से रहते आए हैं। घोर सामाजिक अन्यायों के बावजूद और विषम परिस्थितियों के रहते हुए भी १९१० में दक्षिण अफ्रीका नाम से बने, और बाद में दक्षिण अफ्रीका गणराज्य बने इस देश के विकास में भारतवंशियों का बड़ा भारी उद्योग रहा है। आज वे खेतिहर मजदूर की स्थिति से आगे बढकर उस देश में छोटे-बड़े व्यापारी और डाक्टर इन्जीनियर एकाउण्टेंट जैसे कार्यों में लगे हुए हैं। आज भी गोरों के बाद कृषि और औद्योगिक विकास में भारतीय सब से आगे हैं। चूंकि शुरू-शुरू मे ये लोग नैटाल प्रांत में ही बसाए गए थे, आज भी उस प्रदेश में उन की संख्या बहुत अधिक है। डर्बन शहर के लगभग नौ लाख निवासियों में आधे से अधिक संख्या भारतवंशियों की है। इसके अतिरिक्त समूचे भारतवंशियों की संख्या का दो तिहाई भाग से ज्यादा उसी नैटाल प्रांत में और डर्बन के चारों ओर बसा हुआ है।

पिछले दिनों डर्बन में भारतीयों का एक विशाल वैदिक सम्मेलन हुआ, जिसमें लगभग दो हजार व्यक्ति अपनी सांस्कृतिक समस्याओं को सुलझाने के लिए एकत्र हुए थे। दक्षिण अफ्रीका की आर्य प्रतिनिधि सभा की उन दिनों हीरक जयन्ती थी। इसके अतिरिक्त चतुर्थ विश्व वैदिक सम्मेलन का अवसर होने के कारण देश और विदेश के प्रतिनिधि बड़ी संख्या में वहां पर उपस्थित हुए। मारीशस से ३५ प्रतिनिधि आये परन्तु भारत सरकार ने विशेष अनुमति देकर केवल पांच प्रतिनिधियों को वहां जाने की अनुमति दी थी। इस प्रकार दक्षिण अफ्रीका में होने वाला यह सम्मेलन अब तक वहां हुए सारे सम्मेलनों से अधिक प्रतिनिधियों का जमघट था। दस दिन के इस सम्मेलन की बैठकें आठ दिन डर्बन में और शेष दो दिन पीटर मैरिट्जबर्ग में, जो वहां से लगभग १०० किलोमीटर की दूरी पर है, हुआ।

इन दोनों सम्मेलनों में वहां पहुँचने वाला सर्वप्रथम व्यक्ति मैं ही था। उस देश में चल रही हिंसाओं की घटनाओं और आंदोलनों के वातावरण से हमारे मित्र और स्वजन चिन्तित थे। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने इनके संयोजक के रूप में मुझे नियत किया था। अनेक वर्षों के बाद किसी भी भारतीय नागरिक का वहां यह पहला प्रवेश था। यह बताना प्रासंगिक होगा कि दक्षिण अफ्रीका के सारे समाचार पत्र गोरे लोगों के स्वामित्व में है। उनके प्रतिनिधियों ने हमारे आने पर इस सम्मेलन के उद्देश्यों पर काफी जिज्ञासा प्रकट की।

जब उन्हें पता लगा कि भारत में आर्यसमाज स्वाधीनता आंदोलन का जन्मदाता रहा है और उस के द्वारा देश की स्वाधीनता की आवाज सबसे पहले उठाई गई थी, तब उन की आशंकाएँ और भी बढ़ी। मेरे सम्बन्ध में उन्होंने वक्तव्य को उद्धृत करते हुए एक भारतीय स्वाधीनता सेनानी का आगमन लिखा और अपार्थिड के सम्बन्ध में जातिभेद या रंगभेद को वैदिक आदर्शों के विरुद्ध लड़ने वाला एक सिपाही घोषित किया। वस्तुतः इस सम्बन्ध में मेरे विचार जो सम्मेलन के अवसर पर और उससे पहले प्रकाशित हुए उन से रंगभेद के विरुद्ध जनमानस में एक चेतना उत्पन्न हुई।

रंगभेद विरोधी संघर्ष

डर्बन सम्मेलन मे कुल मिलाकर १५ प्रस्ताव स्वीकार किए गए। इन में सब से महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव यह था कि दक्षिण अफ्रीकी सरकार अपने देश से रंगभेद और जातिभेद को तुरन्त समाप्त करके अन्यायमूलक कानूनों को अविलम्ब समाप्त करे, क्योंकि धर्म में ऊंच-नीच का स्थान कदापि निहित नहीं है। इस प्रस्ताव को वहां की आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान शिशुपाल रामभरोसे ने प्रस्तुत किया, जिसका समर्थन भारतीय प्रतिनिधि श्री ओम्प्रकाश त्यागी ने किया। प्रस्ताव से पूर्व आर्यसमाज और राष्ट्रवाद पर मेरा एक भाषण हुआ।

एक अन्य प्रस्ताव द्वारा भारत सरकार से अनुरोध किया गया कि दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले गैर-हिन्दुओं की सांस्कृतिक आवश्यकताएं तो पाकिस्तान व अरब देशों और पश्चिमी देशों द्वारा पूरी कर दी जाती हैं परन्तु हिन्दुओं के लिए धार्मिक प्रचारक, धार्मिक साहित्य और सामग्री मंगाने पर प्रतिबन्ध होने के कारण उनके सामने बड़ा सांस्कृतिक संकट पैदा है जिस का निराकरण भारत सरकार को शीघ्र करना चाहिए। हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के अध्यापक वहां नहीं पहुंच पाते। इस से भी वहां के भारतवंशियों मे एक प्रकार की निराशा व्याप्त थी। सम्मेलन मे आए हुए प्रतिनिधियों को डर्बन के मेयर ने सिटी हाल में बुला कर स्वागत भोज दिया और वे स्वयं सम्मेलन मे आए और यह घोषणा की कि नगर के म्युनिसिपल समुद्री घाटों पर रंगभेद के कारण हर प्रकार का प्रतिबन्ध समाप्त कर दिया गया है। इसे सम्मेलन की आवाज की सफलता मानी जाए कि इन प्रस्तावों के स्वीकृत होने के अगले मास ही दक्षिण अफ्रीका के प्रेसिडेण्ट बोथा ने राष्ट्रीय पार्लियामेंट के उद्घाटन के दिन ३१ जनवरी को एक सार्वजनिक घोषणा द्वारा रंगभेद यानी अपार्थिड की असंगतता को खुले रूप मे स्वीकार किया।

इस प्रकार वहां की नेशनलिस्ट सरकार की ३८ साल से चली आ रही अपार्थिड की नीति इस घोषणा द्वारा समाप्त हो चुकी है। इसके साथ ही जुलाई तक रंगभेद और अन्याय पर आश्रित कानूनों को निरस्त करने के लिए भी एक कदम उठाने की घोषणा हुई है। ३० जनवरी को गांधी जी का बलिदान दिवस था और उसके अगले ही दिन उनकी कर्मभूमि में की गई यह घोषणा एक अच्छा कदम सिद्ध हो सकती है।

(दिल्ली रेडियो से प्रसारित)

सी ४ बी-३३२ बी, जनकपुरी
दिल्ली-५८

धर्म का वास्तविक स्वरूप

प्रकाशवती बुग्गा शास्त्री, एम०ए०, सिद्धांतशास्त्री

★

किसी ने पूछा एक भवन को कौन धारण करता है? उत्तर मिला नींव। जब नीव हिले तो मकान के गिरने की सम्भावना सदा बनी रहती है। ऐसा ही मानव जीवन रूपी भवन को धारण करने के लिए धर्म ही नीव है। मनु भगवान् कहते हैं—

धर्मो रक्षति रक्षितः। धर्म एव हतोहन्ति।

अर्थात् जहां धर्म की रक्षा होती है वहां मानव जीवन की रक्षा होती है। जहा धर्म को नष्ट कर दिया जाता है मानव जीवन स्वयमेव नष्ट हो जाता है। इसलिए प्राण देकर भी धर्म की रक्षा करनी चाहिए। ऐसी शिक्षा भारतीय संस्कृति का आधार है। परन्तु शोक, महाशोक, अज्ञानता के कारण लोगों ने धर्म का अर्थ ही नही समझा। धर्म के बाह्य रूप की रक्षा करते हुए उसके प्राणो का नाश कर दिया।

नास्ति सत्यात् परो धर्मः।

सत्य से बडा कोई धर्म नही अर्थात् किसी भी कार्य से यदि सत्य को निकाल दिया जाये तो वह धर्म नहीं रह जाता है।

स्नान करना शरीर की शुद्धि के लिए आवश्यक है परन्तु केवल स्नान करना ही धर्म है यह मानना अज्ञानता की उस पराकाष्ठा को पहुच गया है कि धर्म के वास्तविक लक्षणों को छोड बैठे। झूठे शुद्धाचार से ही छुआछूत नीच ऊंच जैसी कुप्रथाओं ने जन्म ले लिया। धर्म के सच्चे रूप को न जानकर ही भारतवर्ष मे अनेक कुप्रथाएं, रूढियां और अन्धविश्वास बरसात के मच्छरों की भांति उत्पन्न होते रहे तथा आर्य जाति की शक्ति को क्षीण करते रहे।

न केवल भारत मे वरन् अन्य देशो में भी जहां-जहां ज्ञानरश्मियो ने प्रवेश नहीं किया, वहां मानव समाज विभिन्न अन्धविश्वासों से घिरा रहा। समय-समय पर कुछ श्रेष्ठ पुरुषों ने जन्म लेकर उन कुप्रथाओं के दोष दिखाकर जनता का मार्गदर्शन किया। जनमानस की सोई चेतना जागती रही और उन महापुरुषों का अनुकरण करने लगी। ईसाई मत तथा इस्लाम मत ऐसे ही महापुरुषों की शिक्षा का फल है। ईसा और मुहम्मद ने अपने स्थान पर रहने वालों की कुरीतियों को कम करने की चेष्टा की। उदाहरण के तौर पर जो अनेकों शादियां करते थे उन्हें केवल चार शादियों की सीमा में बांध दिया। ईसा ने भी अपने देश के लोगों को ईश्वर पर विश्वास रखना सिखाया और उन उपदेशों को प्रभावित करने के लिए अपने आप को ईश्वर का पुत्र घोषित किया। बाइबल को ईश्वर की बनाई पुस्तक बताया।

इसी प्रकार हमारे देश मे जब लोगो ने वेदों के अशुद्ध अर्थ करके यज्ञों को हिंसा का साधन बना लिया तो महात्मा बुद्ध ने जन्म लिया। लोगों को अहिंसा का पाठ पढाया। शुभ कर्मों का उपदेश दिया। निस्सन्देह तत्कालीन बुराइयां दूर करने मे उन्हें कुछ सीमा तक सफलता मिली परन्तु बाद में इन्हीं उपदेशों ने जनता में अन्धविश्वास और मूर्तिपूजा का ऐसा घोर प्रचार किया कि लोग महात्मा बुद्ध के उपदेशों को भूलकर उनकी मूर्तियां गढने में ही उनके जीवन के साथ चमत्कार कथाएं जोडने मे ऐसे मग्न हुए कि देश को अकर्मण्य, आलसी और पराधीन बना दिया। क्यों? क्योंकि महान् तपस्वी ज्ञानी होते हुए भी महात्मा बुद्ध जनता को धर्म का वास्तविक रूप न दिखा सके। जन-जन का जीवन-दीपक जलाने की चेष्टा की परन्तु वेदज्ञान का तेल बिना डाले, ईश्वर की महान् सत्ता का सहारा छुडाकर। मेले मे भीड़ के कारण बच्चे के हाथ से मां का आंचल छूट गया। रोते-रोते भ्रमवश उस ने किसी और रमणी का आंचल पकड लिया। बताइए वह बच्चा कभी घर पहुंचेगा? महात्मा बुद्ध ईसा, मुहम्मद आदि गुरुओं ने सर्वशक्तिमान् प्रभु का आश्रय छुडाकर स्वयं को भगवान् बना लिया, पर भगवान् तो नही थे।

किसी कवि ने ठीक ही लिखा है—

काम धधा छोड सत धंधो रही।
बावली दुनिया न कब अन्धी रही॥

इस प्रकार कई सम्प्रदायों का जन्म हुआ। जिन्होंने उस एक प्रभु की एक सृष्टि को अनेक भागों में बांट दिया। एक माता-पिता की सन्तान होते हुए भी परस्पर भेदभाव उत्पन्न हो गए। बडे पैगम्बरों की देखादेखी नये-नये छोटे पैगम्बरों, गुरुओं और भगवानों की उत्पत्ति कितनी द्रुतगति से हुई और अब भी हो रही है कि कुछ न पूछिए। एक परिवार मे यदि पांच सदस्य हैं तो पांचों के भिन्न-भिन्न गुरु अथवा देवी-देवता हैं। भिन्न-भिन्न ग्रन्थ हैं, व्रत हैं, नियम हैं।

ऐसी अवस्था में एकता की बात तो सोची भी नहीं जा सकती। आप राष्ट्रीय एकता की बात करते हैं। यहां पारिवारिक एकता और सामाजिक एकता के ही लाले पडे हुए हैं।

बात यहीं समाप्त नही होती। संप्रदायों को धर्म मानकर उन्हें राजनीति के साथ जोड दिया गया। कोई अपने अधिकार के लिए बहुत-सा धन पाकर हत्या कर देता है और उसे धर्म का नाम देता है क्योंकि कथित धर्म स्थान पर बैठकर शपथ खाई थीं। जहां स्पष्ट लोभ है, स्वार्थ है, धन लिप्सा है, अधिकार लिप्सा है उसे धर्म का नाम देना क्या बुद्धि के दिवालियों का काम नहीं?

तो बात पक्की हो गई, निर्विवाद है कि जब तक संसार धर्म का वास्तविक स्वरूप नहीं समझेगा? हां एक बात तो बीच में ही रह गई, हम ने बड़ी उदारता दिखाई। अपनी शासन प्रणाली में एक शब्द का प्रयोग किया 'धर्मनिरपेक्ष राज्य।

इतनी शिक्षा का प्रचार होते हुए भी मत और धर्म को समानार्थक समझ लिया। मत निरपेक्ष राज्य कहते तो भी कुछ ठीक था। भेदभाव को दूर करने की नीति का स्वरूप सामने आता। परन्तु धर्म जो कि किसी के भी जीवन का यदि व्यक्ति हो, समाज हो, राष्ट्र हो, आधारस्तम्भ है उसकी उपेक्षा हम कैसे कर सकते हैं। राज धर्म क्या धर्म नही, राष्ट्र धर्म क्या धर्म नहीं? मानवधर्म क्या धर्म नहीं? क्या यह उपेक्षणीय है?

भगवती भागीरथी का जल निस्सदेह पावन था। जब वह हिमालय के घर से निकली थी कितनी सुन्दर, कितनी शक्तिमयी, मधुर और प्रभावमयी थी परन्तु ज्यों-ज्यों वह आगे बढती गई उस की शुद्धता का अशुद्ध प्रयोग होने लगा। दुनिया भर की गन्दी नालियां, नाले तथा अन्य मानवक्रियाओं ने उस का जल केवल अपावन ही नहीं विषैला बना दिया। क्या हमारी बुद्धि इसे स्वीकार करती है कि जितनी पवित्रता गंगोत्री से उतरती गंगा में थी। वह आगे हरिद्वार से बनारस तक पहुंचते पहुंचते रह गई। उसकी कृमिनाशक शक्ति क्या अब वैसी ही रह गई है? कदापि नहीं। तो क्या हमें इस तथ्य से आंखें मूंदकर उस की पवित्रता की दुहाई देना कहां तक युक्ति संगत है। फलस्वरूप जनता में पतित पावनी गंगा मानसिक अन्धविश्वासों के साथ-साथ शारीरिक व्याधियों की भी जननी बन गई है।

यही अवस्था धर्म गंगा की हो रही है। आज धर्म का जो स्वरूप दृष्टिगोचर हो रहा है उस को देखकर तो अधर्म भी नाक सिकोड़ता है।

निस्संदेह आज आवश्यकता है धर्म के सच्चे स्वरूप के प्रचार और प्रसार की जैसे गंगा की प्रदूषण समस्या पर बड़े पैमाने पर विचार किया जा रहा है। उसे शुद्ध करने के उपाय सोचे जा रहे हैं। इसके जल को शुद्ध बनाने की योजनाएं बनाई जा रही हैं। ठीक इसी प्रकार धर्म के भी सारे दोषो को हटाकर उस के उसी शुद्ध रूप को जनता के सम्मुख प्रस्तुत करने की अनिवार्य आवश्यकता है अन्यथा न केवल भारत की वरन् सारे विश्व की उन्नति और शांति भी खतरे में पड़ी रहेगी। तो आइए, एक बार मनु भगवान् की शरण में आकर उन से प्रार्थना करें कि वे विश्व के रंगमंच पर खडे होकर सभी राष्ट्रों को, नेताओं को, जनता को सम्बोधित करके कहें कि धर्म उन दस गुणों का नाम है जिससे मानव के चरित्र-भवन का निर्माण होता है।

वे दस गुण हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम्।

अर्थात् जिस मनुष्य के स्वभाव में ये दस गुण विद्यमान हैं, उसी के कर्म धर्म शब्द को सत्य सिद्ध करते हैं।

सर्वप्रथम धर्म का लक्षण धृति अर्थात् धैर्य है। इस गुण के बिना किसी मनुष्य का कर्म निर्दोष नही हो सकता। अधीरता से किया हुआ कर्म धर्म नही कहा जाएगा। किसी ने ठीक ही लिखा है—

विकारहेतौ सति न विक्रियन्ते येषां चेतांसि त एव धीराः।

विकार का हेतु उपस्थित होने पर भी जिनके चित्त में विकार नही उत्पन्न होता वही धीर है, धर्मात्मा है। हां जी धीर, धर्म, धृति इन सब में धृ धातु है। क्षमा धर्म का दूसरा लक्षण है सहनशक्ति। इसके बिना मनुष्य धर्म का पालन कैसे कर सकता है। इस के अभाव में तो मनुष्य घबरा जाएगा। अपने सत्य मार्ग को छोड़ बैठेगा। धर्म का तीसरा लक्षण दम अर्थात् मन का संयम है। आत्मनियन्त्रण है।

किसी ने ठीक ही कहा है—

मन के हारे हार है मन के जीते जीत।

धर्म का चौथा लक्षण है अस्तेय अर्थात् चोरी न करना। सभी जानते हैं कि चोरी

धर्म का वास्तविक स्वरूप

करना महापाप है। प्राचीनकाल में चोरी का दण्ड मृत्यु दण्ड होता था। बिना आज्ञा के किसी भी व्यक्ति की वस्तु का प्रयोग करना चोरी कहलाती है चाहे वह व्यक्ति आपका निकटतम सम्बन्धी क्यों न हो। चोरी चाहे धन की हो, विचारों की हो या किसी के नाम यश की हो, सभी को महापातक माना जाता था। यहां तक कि भगवान् को दी हुई वस्तुओं का प्रयोग भी यदि हम बिना कुछ दिये करते हैं तो वह भी चोरी मानी जाती है।

पंचयज्ञ इसका प्रमाण हैं।

शौच अर्थात् पवित्रता धर्म का पांचवां लक्षण है। मनुष्य का पवित्र रहना कितना आवश्यक है वह धार्मिकता का ही दूसरा नाम है। जब हम कहते हैं कि मनुष्य पवित्र है तो इस का तात्पर्य धर्मात्मा ही समझा जाता है। पवित्रता केवल शारीरिक ही नहीं मानसिक और आत्मिक भी होनी अनिवार्य है।

धर्म का छठा लक्षण इन्द्रियनिग्रह अर्थात् शरीर की सारी इन्द्रियों को वश में रखना है।

जिस की वाणी आदि इन्द्रिया ही वश में नहीं हैं, वह क्या धर्म का आचरण करेगा।

गीता में भी लिखा है—

वशे हि यस्य इन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।

धर्म का सातवां लक्षण धी अर्थात् बुद्धि है। पवित्र और विकसित, स्थिर बुद्धि ही धर्म के कार्यों में सहायक होती है। ऐसी बुद्धि वाला आदमी कठिन से कठिन परिस्थिति में भी अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होता।

धर्म का आठवां लक्षण विद्या अर्थात् सत् ज्ञान है। अज्ञानी मनुष्य के कार्य कैसे शुभ कहला सकते हैं। वह न चाहते हुए भी अशुभ कार्य कर सकता है।

धर्म का नौवां लक्षण सत्य है। सत्य तो धर्म का ही दूसरा नाम है।

नास्ति सत्यात् परो धर्मः।
धर्म न दूसरा सत्य समाना॥

सत्य बोलना, सत्य ही करना मनुष्य को धर्मात्मा बनाता है या यों कहिए कि धर्मात्मा उसी को कहना चाहिए जिस के मन, वचन, कर्म एक से हों।

धर्म का दसवां लक्षण अक्रोध है अर्थात् जो मनुष्य कभी क्रोध नहीं करता, अपने अनिष्टकारी के लिए भी उसके मन में कोई बुरा भाव उत्पन्न नही होता, वही व्यक्ति धर्मात्मा कहलाने का अधिकारी है।

उपरोक्त कही बातें धर्म के लक्षणों से मनु भगवान् ने स्पष्ट कर दिया है—धर्म, स्नान, ध्यान, पूजा का ही नाम नही वरन् इन गुणों का नाम धर्म है। यही मनुष्य को वास्तविक मनुष्य बनाते हैं। ऐसे गुण वाले मनुष्यो से ही संसार का कल्याण होता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि विश्व का जन-जन धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझे, इन गुणों को धारण करे, तभी मानव अपना और दूसरो का कल्याण कर सकेगा। यही है विश्व शांति का सच्चा मार्ग। □

देश की सुरक्षा के सम्बन्ध में कुछ विचार

इतिहास साक्षी है कि भारतीय बल एवं बुद्धि में किसी से पीछे नही थे। उन्होंने शून्य, अंक, वेदज्ञान तथा आयुर्वेद का जो आविष्कार एवं प्रसार किया, वे अभूतपूर्व रहे। परन्तु इसके बावजूद उन्हें शक, हूण, यवन, कुशन, अफगान तथा मुगल आदि विदेशी शत्रुओं के समक्ष हार खानी पडी, इसका कारण देश में व्याप्त फूट के साथ-साथ प्रतिरक्षा के मामले मे उस का पिछड़ापन था। कौन नहीं जानता है कि जब यूनानी बादशाह सिकन्दर का सामना वीर भारतीय नरेश पुरु से हुआ, जहां यूनानी सैनिक घोड़ों पर चढकर फुर्ती से लड़ रहे थे, हाथियों पर आरूढ भारतीय सैनिकों को हाथियों के बिगड जाने के कारण पराजित होना पड़ा। इसी प्रकार चित्तौड नरेश राणा सांगा की बाबर के समक्ष पराजय का एक प्रमुख कारण बाबर के पास तोपखाना का होना था जबकि राजपूत इस मामले में अनभिज्ञ थे।

मानना पडेगा कि इस समय देश प्रतिरक्षा एवं आन्तरिक सुरक्षा के मामले मे संकट की स्थिति से गुजर रहा है। जहां हमारे पडोसी बंगला देश, पाकिस्तान, लंका तथा चीन किसी न किसी प्रश्न पर हम से संघर्षरत है, हमारा धार्मिक सहोदर नेपाल भी हम से सन्तुष्ट नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय जगत् मे अमेरिका, ब्रिटेन तथा फ्रांस आदि पश्चिमी राष्ट्र हमारे उत्कर्ष को स्वीकार न करके हमे येन केन प्रकारेण नीचा दिखाने का प्रयास करते रहते हैं, उपरोक्त धारणा की पुष्टि के लिए पर्याप्त है। हमारी आंतरिक सुरक्षा भी बहुत विश्वसनीय नहीं है। जिस प्रकार पंजाब में खालिस्तानी आंदोलन से सम्बन्धित आतंकवादी, कश्मीर, असम, बिहार तथा राजस्थान मे पाक घुसपैठिए, बिहार मे लोहित तथा श्रीकृष्ण आदि निजी सेनाएं, देश के पूर्वांचल मे सशस्त्र अराष्ट्रीय तत्त्व, उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश केरल, कर्नाटक तथा आंध्र में विद्यमान पाक समर्थक तत्त्व हमारी आंतरिक सुरक्षा के लिए चुनौती बने हुए हैं, आवश्यकता है कि हम देश की बाह्य एवं आतरिक सुरक्षा की दृष्टि से एक दीर्घकालीन नीति तैयार करे तथा उसके क्रियान्वयन की ओर ध्यान दे। हाल ही में प्रधानमन्त्री श्री राजीव ने वायुसेना कमांडरो के अर्धवार्षिक सम्मेलन में ऐसे ही विचार व्यक्त किए हैं। इस सम्बन्ध मे निम्नांकित सुझाव ध्यान देने योग्य हैं.

१. भारतीय स्थल, जल तथा वायु सेनाओं को आधुनिकतम शस्त्रास्त्रों तथा उपकरणो से सुसज्जित कर इस योग्य बनाया जाए ताकि वे हर प्रकार के आक्रमण का मुकाबला तथा हर परिस्थिति का सामना कर सके। प्रसन्नता का विषय है कि भारत सरकार इस दिशा मे सचेष्ट है।

२. भारत सरकार परमाणु बम समेत सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रों का निर्माण करे ताकि इस के अभाव मे उसे कभी पराजय का सामना न करना पडे। ससार में जो भी ऊंचे से ऊंचा हथियार तैयार हो, उसके निर्माण तथा उसके काट के लिए तत्काल कदम उठाये जायें।

३. रक्षा विभाग की गुप्तचर सेवा का इस प्रकार पुनर्गठन किया जाए ताकि

(शेष पृष्ठ ७ पर)

समाचार सन्देश

आर्यसमाज की आजन्म सेवा करने वालों का सम्मान

जिन भजनोपदेशकों और उपदेशकों ने अपने जीवन का अधिकांश भाग वैदिक धर्म के प्रचार में और आर्यसमाज की सेवा में बिताया है ऐसे वृद्ध महानुभावों का सम्मान करने की योजना है। संगीत और व्याख्यानों के द्वारा आर्यसमाज की सेवा करने वाले महानुभावों को यथोचित नकद राशि और एक 'शाल' देकर सम्मानित किया जाएगा।

यह समारोह नवम्बर के दूसरे सप्ताह में नई दिल्ली मे होगा। मेरी समस्त आर्य जनता से प्रार्थना है कि वह ऐसे महानुभावों के नाम और उनके पते से सूचित करने की कृपा करें ताकि इस सम्बन्ध में उन से पत्र-व्यवहार किया जा सके। जो उपदेशक और भजनोपदेशक सेवा-निवृत्त होकर वृद्धावस्था प्राप्त कर चुके हैं, वे स्वयं भी अपने नाम और पते तथा अपना कार्य विवरण भेज सकते हैं। सम्मान के लिए बुलाये जाने वाले महानुभावों को आने-जाने का मार्ग व्यय दिया जाएगा तथा उनके आवास एवं भोजन की निःशुल्क व्यवस्था होगी।

आर्यसमाज के प्रसिद्ध भजनोपदेशक श्री आशानन्द जी जिनकी आयु इस समय ८३ वर्ष हो चुकी है और जिन्होंने लगभग ६५ वर्ष तक अपने भजनों से आर्यसमाज की सेवा की है, इस सम्मान के लिए अपनी ओर से काफी बड़ी राशि एकत्रित करके देने को सहमत हैं।

रामनाथ सहगल
मन्त्री
आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा
मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-१

आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा पर असामाजिक तत्त्वों का कब्जा

आर्यजगत् के लिए अत्यन्त दुःख की बात है कि आर्यजगत् की एकमात्र अन्तर्राष्ट्रीय संस्था आर्य कन्या महाविद्यालय, बड़ौदा पिछले लगभग एक वर्ष से अनार्यों के हाथों में चली गई है, जिसके परिणामस्वरूप यहाँ यज्ञवेदी, कार्यालय, बैंक अकाउण्ट्स व छात्रावासों पर तालाबन्दी है। संस्था के ८७ वर्षीय प्राण श्री पं० आनन्दप्रिय जी के प्रति अभद्र व अपमानजनक व्यवहार किया जा रहा है और असामाजिक तत्त्वों को वहां लाकर बैठा दिया गया है। मानसिक रूप से वहां का स्टाफ क्षुब्ध है, उन्हें ९ माह से वेतन नहीं मिल रहा है।

श्री मधुसूदन पित्ती जैसे व्यक्ति से यह आशा नहीं की जा सकती थी कि गुरुकुल की सम्पत्ति के प्रति वे गिद्धदृष्टि रखेंगे और अपने दुश्चक्र से उसे हड़पने का प्रयत्न करेंगे। आज गुजरात राज्य के ही नहीं देश के एकमात्र वीरांगनाओं को उत्पन्न करने वाले संस्थान पर संकट के काले बादल मंडरा रहे हैं और आर्यों की शिरोमणि संस्था सार्वदेशिक सभा मूकदर्शक बनी क्या बैठी रहेगी?

आर्यों को मेरी यह चेतावनी है कि वे निजाम जैसे अत्याचारी शासक से जहाँ लोहा ले सकने की क्षमता रखते हैं, वहां मधुसूदन पित्ती किस गणना में हैं? सन्यासी, धर्मप्रेमी, वैदिक धर्मावलम्बी महानुभावों को शीघ्र ही इस ऐतिहासिक आर्य संस्था को बचाने के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए।

श्रीकरण शारदा
मन्त्री
परोपकारिणी सभा, अजमेर

शोक समाचार

श्री विरजानन्द वैदिक साधनाश्रम मथुरा के भूतपूर्व व्यवस्थापक, महान् गो-भक्त, यज्ञनिष्ठ एवं मां आर्यसमाज के अनन्य सेवक श्री पुरुषोत्तमदास जी आर्य का २१ अप्रैल को स्वर्गवास हो गया है।

हम परमपिता परमात्मा से उन की आत्मा की शान्ति के लिए और शोक-सन्तप्त परिवार के लिए इस दारुण दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करने की कामना करते हैं।

धर्मपाल
महामंत्री, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
१५, हनुमान रोड, नई दिल्ली

निबन्ध प्रतियोगिता का परिणाम

विषय—आर्यसमाज की भावी योजना और कार्यशैली

विद्वानों के निर्णायक मण्डल ने निम्नलिखित प्रतियोगियों को पुरस्कृत घोषित किया है, जिन के नाम निम्न हैं—

प्रथम पुरस्कार : १०००/- रुपये
१. श्री डा० भवानीलाल भारतीय, चण्डीगढ़।

द्वितीय पुरस्कार : ७००/- रुपये
२. श्री वेदप्रकाश आर्य, एम० ए०, बम्बई।

तृतीय पुरस्कार : ५००/- रुपये
३. आचार्य प० ओंकारमिश्र प्रणव शास्त्री, आगरा।

इन तीन प्रतियोगियों के अलावा १० अन्य व्यक्तियो को भी मूल्यांकन के अनुसार १००-१००/- रु० के सान्त्वना पुरस्कार से सम्मानित किया गया है—

१. श्री बलजीत शास्त्री, नई दिल्ली
२. श्री हरेन्द्र राय एडवोकेट, आगरा
३. श्री वेदमित्र आर्य, कानपुर
४. श्री डा० मदन मोहन जावलिया, भीलवाड़ा (राजस्थान)
५. ब्रह्मचारी राजेन्द्र आर्य, खरोड़िया (जम्मू कश्मीर)
६. डा० सत्यपाल शास्त्री, मेरठ
७. पं० मधुकर बसन्त राव आर्य, मराठवाड़ा
८. डा० गंगाप्रसाद विद्यार्थी, जबलपुर
९. श्री भगवानदेव चैतन्य, एम० ए०, मण्डी, (हि०प्र०)
१०. श्री वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, लखनऊ।

इस प्रतियोगिता में कुल ११४ प्रतियोगियो ने हिस्सा लिया, जिस में आर्यसमाज के उच्चकोटि के विद्वान्, मनीषी और कार्यकर्ता तो थे ही साथ ही साथ समस्त भारत के सभी क्षेत्रों के लोगों ने इस मे काफी उत्साहपूर्वक भाग लिया।

हमारी यह कामना है कि आर्यसमाज का भावी कार्यक्रम, उनका क्रियान्वयन तदनुसार उनके साधनों की योजना इस प्रकार बने ताकि अगले सौ वर्ष आर्यसमाज के स्वर्णिम हो सकें तथा व्यक्ति, समाज, देश व मानवता के कल्याण के प्रति आर्यसमाज ज्योति-स्तम्भ का कार्य कर सके।

गजानन्द आर्य
संयोजक—लालमन आर्य निबन्ध प्रतियोगिता

निर्वाचन

आर्यसमाज रतलाम की साधारण सभा के अधिवेशन में दिनांक २।३।८६ को वर्ष १९८६ के लिए पदाधिकारियों का चुनाव हुआ। निम्नलिखित पदाधिकारी सर्वसम्मति से चुने गए—

प्रधान : श्री एन० एल० सुन्दर
मन्त्री : श्री रमेशचन्द्र चौहान
कोषाध्यक्ष : श्री कैलाशनाथ जी बिराड़ा

रमेशचन्द्र चौहान
मन्त्री
आर्यसमाज रतलाम (म०प्र०)

आर्यसमाज महर्षि दयानन्द मार्ग, बीकानेर, राजस्थान का चुनाव दिनांक ३० मार्च १९८६ को हुआ जिस में केवल प्रधान का चुनाव किया गया और उन को अधिकार दिया गया कि अन्तरंग (कार्यकारिणी) गठित करें। तदनुसार दिनांक ६ अप्रैल १९८६ को अन्तरंग का गठन निम्न प्रकार हुआ—

प्रधान : श्रीमती कमला भण्डारी
मन्त्री : श्री भवरलाल आर्य बन्धु
कोषाध्यक्ष : श्री सोहनलाल आसेरी
पुस्तकालयाध्यक्ष : श्री भंवरलाल आर्य

भवरलाल आर्य बन्धु
मन्त्री

दिनांक १५।४।८६ को आर्यसमाज गन्नौर शहर (सोनीपत) का चुनाव सम्पन्न हुआ जिसमें निम्न पदाधिकारी चुने गए—

प्रधान : पं० जयदेव जी बहोई वाले
मन्त्री : श्री ओमप्रकाश वर्मा
कोषाध्यक्ष : श्री मनोहरलाल जी,
श्री रामस्वरूप वर्मा

ओमप्रकाश वर्मा
मन्त्री
आर्यसमाज गन्नौर शहर (हरि०)

श्री बलराज मधोक, चिन्तन स्वस्थ नहीं

आर्यसन्देश १३ अप्रैल के अंक मे स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती के एक अत्यन्त विचारपूर्ण व हिन्दू जाति को उत्थान के उच्च सोपान पर आरूढ करने में सहायक लेख "आर्यसमाज और हिन्दू सम्प्रदाय" पर श्री गयाप्रसाद उपाध्याय एव बलराज मधोक के विचार पढ़े। लगता है, आलोच्य लेख जिस पवित्र भावना और उद्देश्य से लिखा गया उसे समझ पाने में दोनों समीक्षाकार असफल रहे हैं।

जहां श्री गयाप्रसाद जी ने अपने हृदय से बड़ी पवित्र भावना से अपने हृदयोद्गार पाठकों के विचारार्थ प्रस्तुत किए हैं वही श्री मधोक अपने पूर्वाग्रहो के कारण अद्वितीय कार्यक्षमता एव ज्ञान सम्पन्न होते हुए भी 'हिन्दुओ का' कोई व्यावहारिक हित साधन करने मे सर्वथा अक्षम रहे हैं तथा 'कुटिलता' का आश्रय लेकर स्वामी सत्यप्रकाश जी के लेख की समीक्षा के दोषी हैं। अत स्वस्थ पत्रकारिता एव साहित्यिक पर्यालोचना की दृष्टि से मुझे श्री मधोक के लेख पर घोर आपत्ति है।

इसे हम सब का दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है कि आज परिस्थितियां ऐसी बनती जा रही हैं कि हमारी हिन्दू जाति इस बात को समझ भी न सके कि उसके 'रक्षक' बने स्वार्थी तत्त्व कुछ इस रूप में हावी हुए जा रहे हैं कि इस जाति के लोग 'स्याल' को 'स्याल' कहने का विवेक ही खो बैठें और उन तथाकथित 'रक्षको' की दुकानदारी, पण्डागिरी, मठाधीशी या नेतागिरी अबाध चलती रहे और वे इस रूप मे हमारे भावुक हृदय हिन्दू भाइयों का शोषण करते रहें। श्री मधोक इस के अपवाद नहीं है।

श्री मधोक मे वह क्षमता कहां जो वे आलोच्य लेख के प्रतिपाद्य विषय में प्रवेश कर सकते, न ही वे स्वामी जी द्वारा प्रस्तुत किसी भी मुद्दे के खण्डन में एक शब्द भी लिख पाए हैं। फिर यह कैसी विडम्बना है कि वे यहा तक लिखने का दुस्साहस कर बैठे कि स्वामी सत्यप्रकाश जी के लेख मे दिये गये विचार न तर्क संगत हैं न वस्तुपरक। सत्यप्रकाश जी कुछ बुनियादी बातो से भी अनभिज्ञ दीखते हैं। पुन. स्वामी जी के लेख के किसी मुद्दे को स्पर्श न कर कुछ आर्यसमाज की ही मान्यताओं वाला उपदेश झाड़ कर आर्यसमाजियों को धोखा देने का प्रयास करने के पूर्व श्री मधोक ने स्वामी सत्यप्रकाश जी के विचारों के लिए "भ्रमित" शब्द का प्रयोग कर वास्तव में पत्र एव पत्रकारिता के उद्देश्य को भी कलंकित किया है।

काश ! श्री मधोक अपनी अद्भुत कार्यक्षमता का सदुपयोग कर वास्तव में हिन्दू समाज के जागरण हेतु तहे दिल मे आगे आकर आह्वान करते कि आर्यसमाज के प्रवर्तक द्वारा प्रदर्शित एवं स्वामी सत्य प्रकाश जी जैसे निर्भीक एवं स्पष्टतावादी साधु द्वारा व्याख्यात भावनाओं के अक्षरश. अनुपालन से भारत की बहुसंख्यक हिन्दू जाति में व्याप्त कोढ़ को जड़ मूल से उखाड फेंककर ही हिन्दू जाति का एवं उसके चलते ही हमारे प्यारे भारत राष्ट्र का समग्र कल्याण सम्भव है, तो निःसन्देह श्री मधोक अपने समय के कर्तव्यपालक राष्ट्रोद्धारकों की पंक्ति मे खड़े होकर भारतीय पुनर्जागरण के इतिहास में अपना स्थान बना पाते। इसी सद्भावना और कामना से पूर्वापर प्रसग का विवेचन कर मैं अपना कर्तव्य बोध करते हुए इस समीक्षा मे समुद्यत हुआ हू, आशा है विवेकीजन सहृदयता से इस पर मनन करेंगे।

—चांदरतन दम्माणी
संस्कृति, ८६/२१५, नागडपार्क,
रिसडा (हुगली) पश्चिम बंगाल

देश की सुरक्षा...

(पृष्ठ ५ का शेष)

हमारी गोपनीयता पर आंच न आए तथा दूसरे राष्ट्रो के गुप्त रहस्यों को समझा जा सके।

४ अर्धसैनिक बलो तथा सीमा सुरक्षा बलों की सख्या बढाई जाए ताकि वे सुरक्षा की द्वितीय पंक्ति की भाति कार्य करें। उनके जवानो को सेना के जवानो की भाति प्रशिक्षित किया जाये।

५ राज्य स्तर पर पी० ए० सी० तथा राज्य सशस्त्र बलो की सख्या बढा कर उन्हे सैनिको की भाति प्रशिक्षण दिया जाये।

६ प्रत्येक ग्राम के कम से कम दस व्यक्तियों को सैनिक प्रशिक्षण दिया जाये। उन्हें मासिक भत्ता दिया जाये ताकि आवश्यकता पडने पर बाह्य अथवा आंतरिक सुरक्षा के लिए बुलाया जा सके।

७ प्राथमिक स्तर पर स्काउटिंग तथा ड्रिल तथा कालेज व विश्वविद्यालय स्तर पर एन०सी०सी० की ट्रेनिंग जो कि कम से कम साठ दिनो की हो, छात्रों को अनिवार्य रूप से दी जाए।

८. आकाशवाणी एव दूरदर्शन द्वारा देशभक्ति के विचार जागृत कर लोगों मे देश की रक्षा के लिए मर मिटने की भावना जागृत की जाए।

डा० शकुनचन्द गुप्त विद्यावाचस्पति
लालगंज, रायबरेली, उ०प्र०

खेल जगत —

क्या हाकी टीम में स्टेमिना की कमी है ?

उन्नीस अप्रैल को बम्बई की स्वर्ण कप हाकी प्रतियोगिता के मध्यान्तर में लिए गए साक्षात्कार के समय भारतीय हाकी फेडरेशन के महासचिव श्री पासी ने कराची चैम्पियन ट्राफी मे भारतीय हाकी दल की असफलता के लिए 'स्टेमिना की कमी' को जिम्मेदार ठहराया है। श्री पासी की बात मे अगर दम होता तो भारतीय हाकी टीम प्रारम्भिक मैच मे पश्चिम जर्मनी से ३-० से हार कर दूसरे ही दिन मेजबान पाकिस्तान की टीम से कराची के हाकी ग्राउण्ड मैदान पर श्रेष्ठ प्रदर्शन के साथ ३-२ से नही जीत सकती थी। उस दिन भारतीय टीम के तीनों गोल बहुत बेहतरीन हुए थे।

मैं हाकी का एक साधारण प्रेमी हूं और इस खेल की तीव्र गति और तालमेल का प्रशंसक भी। चैम्पियन ट्राफी मे भारतीय टीम के सभी मैच उलझन वाले थे, जबकि पाकिस्तान को अपने मैचों में दम लेने और योजनानुसार खेलने का अवसर मिला। अन्तिम मैच मे १०।४ को यदि भारतीय दल ने ग्रेट ब्रिटेन को हरा कर ६ अंक प्राप्त कर लिये होते तो ११।४ को पाकिस्तान और आस्ट्रेलिया के खेल का नक्शा ही बदल जाता और आस्ट्रेलिया की टीम १-३ से कभी पराजित न होती।

यदि भारतीय हाकी टीम मे स्टेमिना की कमी है तो भारतीय टीम के राइट-फुल-बैंक परगटसिंह नीदरलैंण्ड के विरुद्ध ८० गज की दौड के बाद बेहतरीन गोल बनाने मे सफल नही होता। भारतीय हाकी टीम चैम्पियन ट्राफी मे पहले पाकिस्तान से ७ मैच खेलकर अपने स्टेमिना का प्रदर्शन कर चुकी थी। अन्तिम टेस्ट मैच में कराची को जीत हकीकत मे स्टेमिना की ही जीत थी।

कुछ साल पहले अनुभवी और धाकड खिलाडियो मे गति का अभाव अनुभव करते हुए नये खून को बढावा दिया गया था। वर्तमान हाकी टीम कई अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओ मे भाग ले चुकी है। लगभग यही टीम पथ मे पश्चिम जर्मनी से ५-५ गोल से बराबर रही थी। 'अज़लनशाह हाकी कप' पर अधिकार करने वाली इस हाकी टीम के खिलाडी निश्चय ही अच्छे खेल का प्रदर्शन कर रहे हैं। हां, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति (धाक) के मामले मे भारत के कई युवा खिलाडी अभी नये हैं। उनकी धाक बनने मे समय लगेगा। एक बार अच्छी हाकी टीम बन जाये तो ८-१० साल तक चलती है। यह बात हाकी अधिकारियों को भी स्मरण रखनी चाहिए।

भारतीय हाकी टीम मे एन.पी सिंह तथा विनीत कुमार को बारी-बारी से पेनल्टी कार्नर के अवसर मिलने चाहिए। कारवेल्हो के अतिरिक्त एक अन्य खिलाडी को पेनल्टी स्ट्रोक का अभ्यास कराना हितकर होगा। यह टीम प्रतिद्वन्द्वी टीम तथा गोल रक्षक के अनुसार व्यूह-रचना करके खेले तो आगामी एशियाई हाकी प्रतियोगिता मे अपना वर्चस्व सिद्ध कर सकती है।

—ब्रजभूषण दुबे

R. N. No. 32387/77 Post in N.D.P.S.O. on 8, 9-5-86 Licenced to post without prepayment, Licence No. U 139
रजि० नं० डी० (सी०) ७५६ पूर्व भुगतान बिना भेजने का लाइसेंस नं० यू १३६
साप्ताहिक 'आर्यसन्देश' ११ मई, १९८६

केवल ५० रुपये में तीन वर्ष तक

हर सप्ताह पढ़ते रहिए

- क्या आप ऋषि, मुनि, तपस्वी, योगियों की अमृत वाणी पढ़ना चाहते हैं?
- क्या आप वेद के पवित्र ज्ञान को सरल एवं मधुर शब्दों में जानना चाहते हैं?
- क्या आप उपनिषद्, गीता रामायण, ब्राह्मणग्रन्थों का आध्यात्मिक सन्देश स्वयं सुनना और अपने परिवार को सुनाना चाहते हैं?
- क्या आप अपने शूरवीर एवं महापुरुषों की शौर्य गाथाएं जानना चाहेंगे?
- क्या आप महर्षि दयानन्द की वैचारिक क्रान्ति से आत्मचेतना जागृत करना चाहते हैं।

यदि हाँ, तो आइए आर्यसन्देश परिवार में शामिल हो जाइए। केवल ५० रुपये में तीन वर्ष तक हर सप्ताह पढ़ते रहिए। साथ ही वर्ष में चार अनुपम अन्य विशेषांक भी प्राप्त कीजिए।

एक वर्ष केवल २० रुपये; आजीवन २०० रुपये।

प्राप्ति स्थान : आर्यसन्देश साप्ताहिक
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
१५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-११०००१

उत्तम स्वास्थ्य के लिए

गुरुकुल काँगड़ी फार्मेसी,

हरिद्वार की औषधियां

सेवन करें

शाखा कार्यालय—६३, गली राजा केदारनाथ, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६ फोन : २६१८३८

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन : ३१०१५० के लिए डा० धर्मपाल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा
वैदिक प्रेस, गली नं० १७, कबाड़ा नगर, दिल्ली-३१ में मुद्रित। रजि० नं० डी० (सी०) ७५६

वर्ष १० : अंक २५-२६ | रविवार, १८ एवं २५ मई, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ | वैशाख २०४३ | दयानन्दाब्द—१
मूल्य एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश मे ५० डालर, ३०

श्री ला० रामगोपाल शालवाले द्वारा आंखों देखा हाल

कश्मीर घाटी में क्या हो रहा है ?

राजधानी दिल्ली में पिछले दिनों कश्मीरी पंडितों का एक दो दिवसीय सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में कश्मीर घाटी में बसने वाले अल्पसंख्यकों में कश्मीर न छोडने और उनमें नये सिरे से यहीं बसे रहने की भावनाओं को प्रोत्साहित करने के प्रयत्न किए गये। लेकिन इन सभी प्रयत्नों के बावजूद आज हालाकि जम्मू-कश्मीर मे शाह सरकार को हटाकर गवर्नरी राज लागू है, फिर भी कश्मीर के अल्पसंख्यक और खास तौर पर कशमीरी पंडित कश्मीर से निकल कर देश के विभिन्न भागों मे बस जाने की योजनाए बना रहे हैं। इस समय जम्मू-कश्मीर का कश्मीरी पंडित बावजूद श्री जगमोहन के आश्वासनों और केन्द्र सरकार के प्रयत्नो के सहमा हुआ, हतोत्साहित और अपनी जान तथा माल समेत बहू-बेटियों की इज्जत के प्रति बेहद सवेदनशील है। शायद कश्मीरी पंडितो के दिलों में दो माह पहले के दंगों ने इस कदर गहरा असर छोड़ा है कि अब उन्हें कश्मीर छोडने के अलावा और कोई भी रास्ता बाकी बचा नजर नही आ रहा है।

कुछ अर्सा पहले पंडितो की कश्मीरी समिति ने पाच सदस्यीय कमेटी बनाई थी। इस कमेटी का काम यह पता लगाना था कि फरवरी माह में कश्मीर घाटी के अन्दर जो दगे हुए थे उनके पीछे कौन-कौन शक्तियां काम कर रही थी? और इन दगों का असल कारण क्या था? उपरोक्त समिति के अध्यक्ष और कमेटी के एक सदस्य श्री जे० एल० भट्ट ने अपने एक बयान में यह रहस्योद्घाटन किया है कि "जो कुछ फरवरी माह में कश्मीर में हुआ उसे 'दगों' की सज्ञा नही दी जा सकती। यह एक साजिश थी जिसकी मदद से कश्मीर के अल्पसंख्यको के वजूद को खत्म करने की कोशिश की गई थी।" फरवरी माह में कश्मीर में हुए दगो का असल कारण कश्मीरी पडितों की इस कमेटी के मुताबिक एक सोची-समझी और गहरी चाल थी जिसकी मदद से कश्मीर घाटी में से हिन्दू अल्पसंख्यकों को धमका कर वहां से बाहर भगा देने की एक साजिश रची गई थी।

कश्मीर घाटी से यहा आए कश्मीरी पंडितों की दु खभरी कहानियां रौंगटे खडे कर देने वाली है। इन कहानियों के मुताबिक दगाइयों ने बड़ी ही 'प्लान' के साथ घाटी के चुने हुए और संवेदनशील इलाकों पर हमले किए। शहरों से दूर गावो मे उस समय हमले किये गए जब मर्द लोग खेतों पर गए हुए थे। जो भी मर्द नजर आया या तो उसे मार दिया गया या अधमरा कर दिया गया। यहां तक कि गायों को भी नही छोडा गया, क्योंकि हिन्दुओ के लिए वह पूजनीय है। हिन्दुओं की औरतों के साथ जबरदस्ती की गई और इन दंगों मे पूरी कश्मीर घाटी मे शायद ही कोई ऐसा मन्दिर बचा हो जिसे दगाइयों ने नुकसान न पहुंचाया हो।

शायद महा शिवरात्री का शुभ दिवस घाटी के अल्पसख्यकों के लिए एक सदेश लेकर आया था। इस दिन द के ठीक १२ बजे तक एक सुनियो योजना के अधीन काजी कुण्ड से बारामूला तक दगाइयो ने एक हो और एक ही तरीके के साथ हिन्दू अ संख्यकों के घरों पर हमले शुरू कर f हजारों ही बेघर हो गए, सैंकडो औ की इज्जत से खेला गया और अनगि लोग अभी तक गुम हैं।

पिछले माह सार्वदेशिक आर्य प्र निधि सभा के अध्यक्ष श्री रामगो

(शेष पृष्ठ ६ पर)

हिन्दी भाषा की रक्षा कौन करेगा ?

— डा० विजयेन्द्र स्नातक —

आर्यसमाज जनकपुरी नई दिल्ली पखारोड के वार्षिक उत्सव के अवसर पर आयोजित राष्ट्रभाषा सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण देते हुए डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने कहा कि बडे दुख की बात है कि आज देश को स्वतंत्र हुए लगभग ३८ वर्ष हुए और देश ने भारत के सविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप मे १९६५ तक पदासीन कर देना था परन्तु आज भी आर्यसमाज जैसी संस्थाओं को हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए "राष्ट्रभाषा सम्मेलन करना पड़ रहा है। विदेशी सस्कृति कुछ इतनी हावी हो गई है कि हम अपने घरों में भी हिन्दी का प्रयोग धीरे-धीरे छोड़ते जा रहे हैं। मैं नहीं कह सकता कि हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा बनेगी अथवा नही। परन्तु यह निश्चय है कि यदि हिन्दी को राष्ट्रभाषा का स्वरूप अपने देश में ही हम न दे सके तो पश्चिमी सभ्यता का विकास अग्रेजी माध्यम के स्कूलो द्वारा होता रहेगा और हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद दिलाना तो दूर हम अपनी सस्कृति से ही दूर हट जायेंगे। कहने की आवश्यकता नही कि भारतीय सस्कृति मे पच सकार का महत्त्व जिसमे स्वसस्कृति, स्वभाषा स्वदेश, स्ववेश तथा स्वधर्म के प्रति निष्ठा यदि नही होगी तो हम भारत को राष्ट्रीय एकता की कडी मे जोड नही सकेंगे। केवल भारत ही ऐसा देश है जहा पर इसकी अपनी बोलचाल की भाषा हिन्दी को अभी तक राष्ट्रभाषा का स्वरूप नही दिया जा सका। राष्ट्र भाषा कोई नीति नहीं यह तो देश के सहस्रों वर्ष की परम्परा और आम बोलचाल की भाषा है, परन्तु हम सहस्रो वर्ष से गुलाम रहते हुए अपने पच सकार को भूल चुके हैं। अब आवश्यकता इस बात की है कि आर्यसमाज तथा स्वदेश प्रेमी सभी अन्य सामाजिक एव धार्मिक राजनैतिक संस्थाए इस पच सकार प्रचलन करना प्रारम्भ करे जो सर्वप्रथम हमे अपने घरो से ही करना होगा। तभी तो हम "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" के वैदिक नाद को अपने देश मे तथा विदेशो मे गुजा सकेंगे।

इस आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव मई से ११ मई तक मनाया गया। जिस बृहद् यज्ञ वेद प्रवचन तथा अनेक सम्मेलन का आयोजन किया गया। उत्सव में स्वामी अमर स्वामी डा० वाचस्पति उपाध्याय, श्री डा० विजयेन्द्र स्नातक, श्री ब्रह्मदत्त स्नातक, फिजी से पधारी श्रीमती प्रमोदिनी निरजन, श्री रामनाथ सहगल आदि महानुभावो ने अपने विचार व्यक्त किये।

निवेदक :
वैद्य महेन्द्रपाल सिंह आर्य

सम्पादक—यशपाल 'सुधांशु' एम० ए० | व्यवस्थापक—डा० मलेशीलाल | प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल

गौरव स्तंभ

प्रेरक प्रसंग

प्रस्तोता—सत्यानन्द आर्य

: १ :

ामी श्रद्धानन्द जी को ईश्वर पर श्वास था। आप ने जब महर्षि के थ सत्यार्थप्रकाश में पढा कि विद्या ा स्थान एकान्त मे होना चाहिए ाप ने गुरुकुल स्थापना का दृढ कर लिया और स्वामी जी ने अपने ़ प्रयासो से सन् ९०२ मे गुरुकुल ापना कर दी।

आप घर से निकले और प्रतिज्ञा कर ि जब तक तीस हजार रुपया एक-न कर लूंगा घर न लौटूंगा। आप ने ़ देश का भ्रमण किया। ुरुकुल प्रणाली पर स्थान-स्थान पर व्या-दिये। रुपया प्राप्त हुआ। परन्तु र्तामो की चिन्ता थी। कहा से ो, वानप्रस्थी और विद्वान् सदाचारी प्राप्त किये जायें जो अपना उद्देश्य ही बना लें? सब से पहले आप ने स्थ आश्रम में प्रवेश किया और सेवा के लिए स्वतन्त्र हो गये। त्यागी त्यों को सहयोगी भी मिल जाते हैं। ा शालिग्राम (जालंधर) ने आजन्म वाहित रहने का व्रत लिया था। त्मा मुन्शीराम (स्वामी जी का पूर्व) के दो मित्र—प० गगादत्त और ादत्त थे। इस प्रकार मुन्शीराम जी ने तीनो व्यक्तियो के साथ काम शुरू दिया। अब सवाल यह था कि पढ़ने े कहाँ से आये? कौन माता-पिता ने बच्चो को नये परीक्षण मे एक लम्बे य के लिए जगलो मे भेजने का साहस र सकते हैं? इसके लिए भी सबसे पहले शीराम जी आगे बढ़े। आप ने अपने नों पुत्रों—हरिश्चन्द्र और इन्द्र को गुरु-ल मे प्रविष्ट किया। शीघ्र ही कुछ अन्य त्रो ने भी अनुकरण किया और अपने त्र गुरुकुल मे भेजने लगे। तदनन्तर रुकुल कागडी का सर्वोच्च स्थान बना। वामी जी का सपना पूरा हुआ।

: २ :

पजाब के इतिहास मे "मार्शल ल" फौजी कानन) की घटना विशेष स्मर-णीय है, जिस के कारण सारे पजाब मे ातक छाया हुआ था। अभी तक बहुत े निरीह प्राणी अण्डमान की जेलो मे पडे ड़ रहे थे। रोलट एक्ट भारतीयो पर थोपा गया था। देहली मे भी इसके विरुद्ध आदोलन के नेता स्वामी श्रद्धानन्द थे। ३० मार्च १९१९ को जिस समय टाउन हाल के मैदान में गोरखों की संगीनें, बन्दूकें और मशीनगनें तैनात थी। वीर सन्यासी श्रद्धानन्द निर्भयतापूर्वक ४० हजार व्यक्तियो की भारी भीड के साथ जलूस का नेतृत्व करते हुए घण्टाघर के नीचे पहुँचे। गोली छूटते ही आप आगे बढे। छाती तानकर वे गरजकर बोले, 'निर्दोष जनता पर गोली चलाने से पहले मेरी छाती में संगीन भोंक दो।" इतना कहना था कि गोरखो का खौलता हुआ रक्त ठण्डा पड गया। आप ने अनुपम साहस का उदाहरण पेश करके सम्पूर्ण भारत को वीरता और निर्भयता का संदेश दिया।

: ३ :

सन् १९४२ की घटना है। स्वामी सत्यप्रकाश जी के छोटे भाई श्रीप्रकाश बी० एस० सी० की परीक्षा दे रहे थे। भौतिक रसायन की प्रायोगिक परीक्षा में वे कुछ न कर सके। दोनों प्रयोग चौपट हो गये और वे फेल हो गये थे। परीक्षा के बाह्य परीक्षक भी स्वामी सत्यप्रकाश जी के अनुज थे। परीक्षा के दिन ही वे दोनों घर पर चाय पीने आये और आत-रिक परीक्षक ने उन की परीक्षा की चर्चा प्रारम्भ कर दी तथा बाह्य परीक्षक ने उन के असफल हो जाने पर खेद प्रकट किया। लेकिन स्वामी सत्यप्रकाश जी मुस्कराते रहे "आखिर कौन सी जिन्दगी बीत गई अगले वर्ष फिर परीक्षा दे देगा।" उस समय उनके छोटे भाई स्वामी सत्य-प्रकाश जी के साथ ही रहते थे और उन का पूरा भार वे ही सभलते थे, उन की आय अत्यन्त ही सीमित थी, पर अपने भाई के फेल हो जाने पर भी चिन्ता ने उन्हें नही पकडा न तो उनके मस्तिष्क ने ही उन्हें कुरेदा कि नम्बर बढाये जा सकते हैं।

: ४ :

एक दिन प० नन्दकिशोर जी स्वामी जी के दर्शन करने गये और कुछ श्याम सेम की फलिया स्वामी जी के सामने रख दी। स्वामी जी ने कहा, "आप ये सेम की फलिया चोरी करके लाये हो।" पण्डित जी पहले तो घबराये किन्तु फिर कहा कि मैंने किस की चोरी की है? स्वामी जी ने हंसकर कहा कि क्या आप ने ये फलिया खेत के स्वामी से आज्ञा लेकर तोडी थीं? पण्डित जी बहुत लज्जित हुए और अपने अपराध की क्षमा मागी।

: ५ :

३० अक्तूबर, १९२८। साइमन कमीशन का भारतवर्ष मे आगमन। लाहौर की जनता का साइमन कमीशन के विरोध मे भव्य प्रदर्शन। विराट जलूस आगे-आगे काला झण्डा लिये लाला लाजपत राय चल रहे हैं। वन्दे मातरम के नारों से आकाश गूंज रहा है। अंग्रेजी शासन विक्षिप्त हो रहा है। सिपाही रास्ता रोक देते हैं। "हटो, भागो, जलूस तितर-बितर नहीं होता, खड़ा रहता है। अधिकारी होश-हवास खो देते हैं। "लाठी चलाओ।" लाठी का प्रहार। आगे खडे हैं लाजपत राय। लाठी की चोट लाजपत राय पर पडती है। वे गिर पड़ते हैं। "यह प्रहार मेरे उपर नहीं, अंग्रेजी शासन के कोनों ने यह प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य पर किया है।" क्रोध में प्रस्फुटित हो जाते हैं वे शब्द। प्रहार के १९ दिन बाद लाजपत राय की मृत्यु हो गई। प्रहार के १९ वर्ष बाद ही भारत में अंग्रेजी शासन की मृत्यु हो गई।

: ६ :

प्रकाशवीर जी की सगठन शक्ति अनोखी थी और इसकी एक झलक कानपुर मे आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश द्वारा आयोजित आर्यसमाज शताब्दी महोत्सव में। महोत्सव के एक माह पूर्व कानपुर आये प्रकाशवीर जी—क्या-क्या तैयारियाँ हुई इसका जायजा लेने। स्वागत समिति में भेद था। खींच तानी चल रही थी। प्रकाशवीर जी ने पलक झपकते ही स्थिति भाप ली और स्थिति सभाल ली। अपनी जेब से भिन्न कार्यों के लिए व्यक्ति निकालने गए—"फलाना व्यक्ति कोषाध्यक्ष बनेगा और धन एकत्रित कर लेगा", फलाने व्यक्ति को जलूस का काम सौप दो। स्मारिका मुद्रित करने के लिए देहली मे इस व्यक्ति को कह दो। वह सामग्री भी संग्रहीत कर लेगा, विज्ञापन भी ले आयेगा और मुद्रण भी करवा देगा। न जाने कितने व्यक्ति थे उनकी जेब में। इतने अनुभवी व्यक्ति जिन्हें यदि जंगल मे भी खडा कर दिया जाए तो जगल मे मगल कर दें।

: ७ :

३० अक्तूबर १९८३ को तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के समापन समारोह में श्रीमती महादेवी वर्मा विश्व के विद्वत जनों को सम्मान दे रही थीं। उपस्थित विद्वत जन, जिस समय उनकी प्रशस्ति पढ़ी जाती, हिन्दी प्रेमियों के सामने खड़े हो जाते और फिर महादेवी जी से सम्मान सूचक सामग्री ग्रहण कर अपने स्थान पर बैठ जाते। सम्मानार्थ चयन समिति के सचिव प्रो० विजयेन्द्र स्नातक के अनुरोध करने पर प्रयाग विश्वविद्यालय के रसायनशास्त्र के भूतपूर्व अध्यक्ष और अब सन्यासी डा० सत्यप्रकाश सरस्वती आगे नहीं बढे क्योंकि सन्यासी प्रशस्ति और धन का अभिलाषी नहीं होता है। कुछ क्षणों के लिए सभागार में सन्नाटा छाया रहा। कार्यक्रम जैसे रुक-सा गया। तभी महादेवी जी अपनी कुर्सी से उठीं और स्वामी जी के पास जाकर मधुर मुस्कान के साथ सम्मान सामग्री हाथ जोडकर भेंट की। निस्तब्ध सभागार तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। सन्यासी के आगे महादेवी जी की विनम्रता नतमस्तक थी।

: ८ :

कानपुर की एक घटना का वर्णन करते हुए प० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्डया ने कहा कि कुछ लोगो ने लाठी और ढेलो से महाराज पर आक्रमण किया। एक व्यक्ति ने आगे बढकर उन पर लाठी चलाई। उन्होने उसकी लाठी पकड ली और उसे गगा मे धकेल दिया और पास के एक वृक्ष की शाखा तोडकर कई मनुष्यों को मारा और बोले मैं निरा साधु ही नही हूँ। इसके पश्चात् वे लोग चले गए और स्वामी जी गंगा में तैरने लगे। महाराज तैरने में भी बडे निपुण थे। मथुरा में कई-कई मील तैरते हुए यमुना की एक धार से दूसरी धार मे चले जाते थे। निर्भय होकर अकेले ही भिड जाना स्वामी जी के अदम्य साहस तथा अपूर्व अध्यात्मबल का प्रतीक था।

: ९ :

मिर्जापुर में बूढे महादेव के प्रसिद्ध मंदिर का पुजारी छोटूगिरी गोस्वामी जो बडा हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ था, एक दिन अपने कुछ साथियों को लेकर स्वामी दयानन्द जी के पास आया और उन की जंघा से जघा मिलाकर बैठ गया और चिल्लाकर बोला कि बच्चा हम तेरे गुरु हैं, आज सब खण्डन करने का फल तुझे ज्ञात हो जाएगा। स्वामी जी ने देखा छोटूगिरी दुष्टता करना चाहता है, वह खडे हो गए और सिराहने का पत्थर उठा

(शेष पृष्ठ ८ पर)

की प्रथा प्रचलित थी। स्त्री जाति का पूर्ण सम्मान था। "अयज्ञो वा ह्येष योऽपत्नीकः।" तैत्तिरीय ब्राह्मण २।२।२।६ अपत्नीक पुरुष को यज्ञ करने का अधिकार नहीं होता था। "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। मनु० ३।५५। जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है उसमें विद्यायुक्त पुरुष होके देव संज्ञा धरा के आनन्द से क्रीड़ा करते हैं। नियोग और विधवा विवाह प्रचलित थे।

आर्यों का रहन सहन बड़ा उत्तम था। रुई, रेशम, ऊन के बने कपडे पहनते थे। आभूषणों में "रुक्म और मणि" का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण में निष्कण्ठ और वेदों में "निग्रीव" (गले का हार) का उल्लेख है।

आर्य संस्कृति एवं सभ्यता के गौरवमय इतिहास को बिगाड़ने का षड्यन्त्र

घरों मे रहन-सहन के सभी प्रकार के उपकरण एवं उपयोगी घरेलू सामग्री होती थी। आर्यों का भोजन सात्विक, पौष्टिक था। भोजन में अन्न, कन्द, मूल, फल, दूध, घृत दाल, तिल, गन्ना आदि कृषि उत्पादक थे। आर्य लोग गाय को माता कहते थे, वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर गाय को "अघ्न्या" (जिसका वध न किया जा सके) कहा गया है, भला वे फिर इसका मांस कैसे खा सकते थे। पाश्चात्य विद्वानों ने गोघन का अर्थ गोमांस करके अपनी घृणित मनोवृत्ति का भद्दा नमूना पेश किया है। गोघन का अर्थ है गाय के दूध से बने पदार्थ जो अतिथि को दिये जाते थे जैसे खीर। संक्षेप में आर्यों का समाज एक आदर्श समाज था।

साहित्य और कला-विज्ञान—वैदिक काल के इतिहास का प्रमुख स्रोत वैदिक साहित्य है। वेद प्रधान तथा धर्मग्रंथ है। वेदों से उस युग की धार्मिक सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक दशाओं की जानकारी प्राप्त होती है। राजनीतिक इतिहास तो रामायण, महाभारत, पुराणों व अन्य ग्रन्थों से प्राप्त किया जा सकता है। वैदिक ग्रन्थों की सूची इस प्रकार से है—चार वेद: ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद चार ब्राह्मण ग्रन्थ . ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ। दस उपनिषद्: ईश, केन, कठ प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक। छः दर्शन: पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य, वेदान्त, मनुस्मृति (प्रक्षिप्त श्लोक छोड़कर) वाल्मीकि रामायण, महाभारत, विदुर नीति, पिङ्गलाचार्यकृत छन्दोग्रन्थ, निरुक्त, यास्क मुनिकृत निघण्टु, महाभाष्य, महर्षि पाणिनिकृत अष्टाध्यायी, आयुर्वेद धनुर्वेद, नारदसंहिता, शिल्प शिक्षा, हस्तक्रिया, बीजगणित, खगोल विद्या आदि के अन्य ग्रन्थ भी हैं। जो भी वेदानुकूल ग्रन्थ हैं वे सभी वैदिक ग्रन्थों में सम्मिलित हैं।

शतपथ ब्राह्मण ११-४-२-३ और मनु० १-२ ३ मे स्पष्ट लिखा है कि परमात्मा ने सृष्टि की आदि में अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा इन चार महर्षियों के आत्मा में वेद का प्रकाश किया। जब आर्यावर्त देश से शिक्षा नही गई थी। तब तक मिश्र यूनान और यूरोप देश आदिस्थ मनुष्यों में कुछ भी विद्या नही थी। वेद परमेश्वरोक्त हैं। इन्हीं के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिए (सत्यार्थप्रकाश)। वेदों के निर्माणकाल के सम्बन्ध मे कुछ अन्य मत इस प्रकार हैं'''प्रो० मैक्समूलर ३००० ई० पू० लोकमान्य तिलक ४२०० ई० पू० अविनाशचन्द्र दास २७००० वर्ष पूर्व रामशरण शर्मा १५०० ई० पू०।

वैदिक काल में आर्यों के भवन बडे सुन्दर, दिव्य होते थे। अथर्ववेद के ९-३-१-७-१५-१६-१९-२१-२२-२४ मन्त्रों में भवनों के निर्माण की विधि और प्रमाण दिए गए हैं। इस प्रकार की दिव्य कमनीय, बनाई हुई शाला सुखदायक, रोगरहित होती है। मनुष्यों को ऐसे घर बनाने का स्पष्ट संकेत है। महाभारत में काफी प्रमाण मिलते हैं। कृषि के साथ-साथ शिल्प कलाएं भीं बड़ी उन्नत अवस्था मे थी। प्राकृतिक टांगों के स्थान पर लोहे की टांगे लगा दी जाती थी। कर्मार, सुवर्णकार, बढई उच्चकोटि के शिल्पकार थे। रथ, वाहन, नौकाओं का विशेष उपयोग होता था। सोने की मुद्राओं का निर्माण होता था। वैदिक युग मे उच्चकोटि का साहित्य और सभी उन्नत कलाएं थीं।

शिक्षा—वैदिक काल मे शिक्षा का बडा महत्त्व था। शतपथ ब्राह्मण १४-६-१०-५ के अनुसार "मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान् पुरुषो वेद" अर्थात् बच्चे का निर्माण करने वाले माता, पिता व आचार्य हैं। उपनयन संस्कार के द्वारा आचार्यकुल (गुरुकुल) मे शिक्षा आरम्भ होती थी। आचार्यकुल नगरो व ग्रामो से दूर आश्रमों में स्थित होते थे। जिनमे गोशालाओं का होना अनिवार्य था। इन आचार्यकुलों को पर्याप्त भूमि दान में मिलती थी। वहां आचारवान्, तपस्वी, विद्वान् अध्यापक होते थे और शिष्यों को तपस्वी जीवन व्यतीत करना पडता था। समावर्तन [दीक्षान्त] संस्कार के अवसर पर आचार्य उन्हें भविष्य में भी 'स्वाध्याय मे लगन' और 'धर्माचरण करने' का उपदेश देते थे। स्त्री पुरुषों सभी को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था। यजुर्वेद २६-२ में लिखा है "यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।" सभी के यज्ञोपवीत व उपनयन संस्कार होते थे। गार्गी, मैत्रेयी, लक्ष्मी आदि अनेक स्त्रियां भी मन्त्र द्रष्टा थीं। शतपथ ब्राह्मण मे विदुषी स्त्रियों का उल्लेख है।

वैदिक युग में तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिए आर्य लोग उत्सुक थे। परमात्मा, आत्मा व सृष्टि (जगत्) ये तीन मूल तत्त्व थे। मृत्यु पर विजय प्राप्त की जा सकती है, यह आर्यों का विश्वास था। दर्शन और उपनिषदों की रचना इसका प्रमाण है। वैदिक युग के शिक्षा केन्द्रों में विदेशों से भी विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए यहां आते थे। भारत "विश्वगुरु" कहलाता था।

आर्थिक जीवन—आर्यों का आर्थिक जीवन पशुपालन, कृषि, उद्योग एवं व्यापार पर आधारित था। गोधन का बड़ा महत्त्व था। भैंस, बकरी आदि पशु भी पाले जाते थे। आर्यावर्त देश धन-धान्य से भरपूर था। शिल्प व उद्योग उन्नत दशा मे थे। वस्त्र उद्योग, धातु उद्योग, बढई का शिल्प, चर्म उद्योग, शालाओं (भवनों) व पुलों का निर्माण आदि कार्य उन्नत दशा में थे।

व्यापार मे बहुधा वस्तु विनिमय एव निष्क (सोने के सिक्के) का प्रयोग होता था। अन्य देशवासी इसलिए भारत को 'सोने की चिड़िया' कहते थे, क्योंकि आर्य लोग उनसे वस्तु के बदले अधिकतर सोना लेते थे। व्यापार समुद्र और स्थल दोनो मार्गों में होता था। ऋग्वेद १०-१२६-२ में पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों का वर्णन है। ईरान, तुर्की, रोम आदि देशों के साथ व्यापार सम्बन्ध अधिक थे।

आर्य जाति से भिन्न जाति के लोग 'पणि' आर्यों की गायें चुरा ले जाते थे। किन्तु पणि जाति के सज्जन लोग ऋषियों को गौएं दान भी करते थे। अथर्ववेद में सुन्दरशालाओ (भवनो) का तथा ऋग्वेद ७-५५-६ में विशाल भवन (महल) का वर्णन है। ऋग्वेद १-१६६-८ मे पुर या दुर्ग की संज्ञा का संकेत है। जनपदों (नगर राज्यों) की राजधानी पुर कहलाती थी। ऋग्वेद में ग्रामों का उल्लेख मिलता है। महाभारत के समय आर्यों के भवन सूर्य-चन्द्र के समान चमकते थे। अनेक विद्याओं, विज्ञानो, ज्योतिष, चिकित्साशास्त्र, गर्भ विज्ञान, अश्वविद्या, हस्तविद्या, शरीर विज्ञान, धनुर्वेद आदि का विशेष रूप से वर्णन मिलता है। शिल्पियों और व्यापारियों के महत्त्वपूर्ण संगठन (समूह निगम) थे। वैदिक काल मे आर्यों की आर्थिक दशा बहुत ही अच्छी थी।

राजनीतिक जीवन—वैदिक युग में प्रजा राजा का वर्ण करती थी। (अथ० ६-८७, १, २, ६-८८, १-२) राजा की सहायता सभा और समिति करती थी। राजा एवं राजाधिकारी पूर्ण धार्मिक विद्वान् होते थे। राजा के अधिकारी रत्न कहलाते थे। इन रत्नियों की संख्या १२ थी। सेनापति, पुरोहित, राजा (स्वयं) महिषी, सूत, ग्रामणी, क्षत्रिय, संग्रही भागदुघ, अक्षवाप, गोविकर्ता, पालागल राजभाषा संस्कृत थी। सभी ग्रन्थ संस्कृत भाषा मे लिखे थे। ये ग्रंथ सम्पूर्ण ज्ञान भण्डार थे। फ्रांस के जैकालयट अपनी पुस्तक 'बाईबिल इन इण्डिया' मे लिखते हैं, सब विद्या और भलाइयों का भण्डार आर्यावर्त्त देश है और सब विद्या तथा मत इसी देश से फैले हैं। 'दाराशिकोह बादशाह ने भी कहा था, 'जैसी पूर्ण विद्या संस्कृत भाषा मे है वैसी किसी भाषा में नही।'

वैदिक काल में युद्ध सामग्री अति उत्तम थी। धनुष, बाण, कटार, भालों के अतिरिक्त आग्नेयास्त्र (गोला) या वरुणास्त्र से आग्नेयास्त्र को नष्ट किया जाता था। नागफास, मोहनास्त्र (नशे की चीज), पाशुपतास्त्र (बिजली का) तोप (शतघ्नी), बन्दूक (भुशुण्डी) आदि अस्त्र प्रयोग मे आते थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखते हैं कि जितनी विद्या भूगोल मे फैली है वह सब आर्यावर्त देश से मिस्र वालो, उनसे यूनानी, उनसे रूम और उनसे युरोप देश में उनसे अमेरिका आदि देशों में फैली है। इकबाल कवि ने भी भारत की अमर संस्कृति के बारे में ठीक ही कहा है–

यूनान मिश्र रोमा मिट गए सभी जहां से
पर बाकी है अब भी नामो निशा हमारा

आर्यावर्त के दूर दूर देशो तक विवाह सम्बन्ध थे। धृतराष्ट्र का विवाह गान्धार की राजपुत्री से, पाण्डु का विवाह ईरान की राजकन्या माद्री से, अर्जुन का विवाह अमेरिका की राजकन्या उलोपी से हुआ। राजसूय और अश्वमेध यज्ञो मे अनेक देश के राजाओं का आना लिखा है संक्षेप में वैदिककाल मे आर्यों का चक्रवर्ती, आदर्श शक्तिशाली जनकल्याण राज्य था। राजा हरिश्चन्द्र राजा रामचन्द्र, राजा कृष्ण चन्द्र सदृश सत्यवादी, मर्यादा पुरुषोत्तम योगीराज राजा हुए है। महाभारत युद्ध के पश्चात् सन् ३१०२ ई० पू०) आर्यावर्त देश का चक्रवर्ती राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा। प्राची दिशा के जनपद 'साम्राज्य' दक्षिणी दिशा के 'भोज' प्रतीची दिशा के स्वराज्य, उत्तर दिशा के वैराज्य' (विराट) और मध्य देश 'राज्य' आपस मे मतपरत रहने लगे देश में 'वाममार्ग का प्रादुर्भाव हो गया

कश्मीर घाटी में...

(पृष्ठ १ का शेष)

दंगाग्रस्त कश्मीर घाटी का दौरा किया। वहां से वापिस आकर श्री लालवाले ने अपनी रिपोर्ट प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी को भेजी। कश्मीर घाटी की अपनी यात्रा के पश्चात जब मेरी लाला जी से मुलाकात हुई तो वह काफी दुखी थे। उनके मुताबिक जो कुछ उन्होंने वहां देखा है, वह सचमुच दुखद है। लाला रामगोपाल जी के मुताबिक इस समय कश्मीर के अन्दर ऐसा माहौल बन चुका है जिसमें अब वहां अल्पसंख्यकों का रहना असम्भव है। इनके पास अब कश्मीर छोड़कर देश के किसी और हिस्से मे बस जाने के अलावा और कोई भी रास्ता नहीं बचा है।

लाला जी के मुताबिक उनके कश्मीर दौरे के दौरान उन्होंने यह देखा था कि काफी बड़ी संख्या में बंगलादेश, बिहार तिब्बत और पाकिस्तान से मुसलमान सम्प्रदाय के लोग कश्मीर घाटी में आ बसे हैं। ये लोग अब वहां अपना कारोबार चला रहे हैं और वहीं इन लोगों ने अपने स्थायी निवास स्थान स्थापित कर लिये हैं। इससे बढ़कर इन बाहरी लोगों ने कश्मीर में रहने के लिए स्थायी नागरिकता के प्रमाण पत्र भी हासिल कर लिये हैं। जबकि दूसरी तरफ हजारों की संख्या में सदियों से घाटी मे रहने वाले भारत के अन्य सम्प्रदायों के नागरिकों जिनमे सिख और ईसाई भी शामिल हैं तथा खासतौर पर हिन्दू पंडितों को यहां रहने के लिए स्थायी नागरिकता के प्रमाण पत्र नहीं दिये गये हैं।

कुछ हिन्दुओं, सिखों और ईसाइयों को बेशक थोड़ी संख्या मे कश्मीर की स्थायी नागरिकता के प्रमाण पत्र मिले है लेकिन अब इनके खिलाफ जानबूझ कर झूठी शिकायतें प्रदेश के अधिकारियों के समक्ष दर्ज की जा रही हैं। स्थायी नागरिकता पाने वाले इन थोड़े से अल्पसंख्यकों को धमकाया और डराया जा रहा है। देश-विरोधी तत्त्व इन लोगों को बेनामी चिट्ठियां डाल कर धमका रहे हैं कि वे कश्मीर से चले जाएं। कई मुस्लिम संगठन जिनमें जमायते इस्लामिया, जमाते तुलबा और अल्लाहवाला वहां की मुस्लिम जनता की भावनाओं को अल्पसंख्यकों के खिलाफ भड़का रहे हैं। भारत के खिलाफ एक लम्बे अर्से से कश्मीर घाटी मे भावना बनाई जा चुकी है। खुले तौर पर अब तो घाटी में पाकिस्तान समर्थक और भारत विरोधी नारे लगाये जाते हैं। मुस्लिम संगठनों, पाकिस्तान समर्थकों और प्रदेश के स्थानीय सरकारी अफसरों और विभिन्न राजनीतिक दलों की मदद से कश्मीर को दूसरा पंजाब बनाए जाने की साजिश आजकल चल रही है। इस साजिश के आधीन यहां के अल्पसंख्यकों को निकाल कर घाटी को पूर्ण रूप से एक ही सम्प्रदाय के लोगों के रहने योग्य बनाया जा रहा है। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय साजिश है। जिसमे हम फंसते चले जा रहे हैं। पहले पंजाब मे यह साजिश चलाई गई अब कश्मीर की बारी है।

काश्मीर की घाटी में जो कुछ भी हो रहा है, वह विदेशी शक्तियों और खासतौर पर पाकिस्तान की एक सोची समझी और गहरी साजिश का नतीजा है। १९४७ से लेकर आज तक पाकिस्तान ने हमेशा कश्मीर घाटी के मुसलमानों को भारत के खिलाफ भड़काने के प्रयास किए। स्वर्गीय शेख अब्दुल्ला से लेकर श्री गुलाम मुहम्मद शाह तक और डा० फारुख तथा कांग्रेस पार्टी की सरकारें भी प्रदेश में पनप रहे इस देश विरोधी पौधे को जड़ों से काटने में नाकाम सिद्ध हुई है। भारत विरोधी संगठन और तत्त्व आज से ३९ साल पहले भी कश्मीर में थे और आज भी हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि इस समय पेट्रोडालर की मदद से वह पहले से भी ज्यादा मजबूत हो चुके हैं।

यह बात तो सर्वविदित है कि भारी मात्रा में पाकिस्तान से लोग धड़ाधड़ ३९ वर्षों से कश्मीर मे घुसपैठ कर रहे है। इसके अलावा यहां की सरकारों ने भारत के विभिन्न प्रांतों से मुस्लिम सम्प्रदाय के लोगों को कश्मीर मे आकर बस जाने के लिए प्रोत्साहित किया। देश के अन्य सम्प्रदायों का कोई व्यक्ति अगर जबरदस्ती यहां घुस भी आया तो उसे कारोबार और घर स्थापित करने में इस कदर मुश्किलें पेश आईं कि वह अपने आप ही यहा से भाग खड़ा हुआ, जबकि मुस्लिम सम्प्रदाय के लोगो को यहां हर तरह की सहूलियतें प्रदान की गईं। यानि एक भारतीय नागरिक की बजाए एक पाकिस्तानी के लिए कश्मीर में रहना, कारोबार करना और बस जाना कहीं आसान है।

जो कुछ पाकिस्तान पंजाब में कर रहा है, वही कुछ कश्मीर में भी हो रहा है। फर्क सिर्फ इतना है कि पंजाब में गोली की मदद से अल्पसंख्यकों में आतंक फैलाया जा रहा है। वहां कश्मीर में अल्पसंख्यकों को डरा धमकाकर बाहर निकाला जा रहा है ताकि बैलट की मदद से यहां जीत प्राप्त की जा सके। सार यह है कि पंजाब और कश्मीर दोनों ही जगह अल्पसंख्यकों को भगाने की साजिश जोर-शोर से चल रही है। पंजाब और कश्मीर दोनों ही सुरक्षा की दृष्टि से भारत के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। पाकिस्तान की सीमा भी इन्हीं प्रदेशों से ज्यादा लगती है। लेकिन दुःख की बात है कि हमारी केन्द्र सरकार इस नाजुक मामले पर कोई ठोस कदम उठाने में अभी तक नाकामयाब सिद्ध हुई है।

२० फरवरी को घाटी में जो दंगे हुए हैं, वह तो अभी शुरुआत है। यह भी कहा जा रहा है कि जम्मू कश्मीर के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री श्री गुलाम मुहम्मद शाह की मूक सहमति से ही यह दंगे हुए हैं। शायद इसीलिये केन्द्र सरकार ने इन दंगों के पश्चात शाह सरकार हटाकर वहां राज्यपाल राज लागू कर दिया है। इस समय जम्मू-कश्मीर की बागडोर एक सुलझे हुए प्रशासक श्री जगमोहन के हाथों में है। राज्यपाल राज लागू होने के फौरन बाद श्री जगमोहन ने खुद घाटी के दंगाग्रस्त इलाकों का दौरा किया था। श्री जगमोहन अपने दौरे के बाद इस बात से सहमत हो गये कि कश्मीर घाटी में हुए इन दंगों के पीछे भारत विरोधी तत्त्वों और शक्तियो का हाथ था, और शाह सरकार तथा स्थानीय प्रशासन इन दंगों को रोकने की क्षमता रखते हुए भी चुपचाप बैठा रहा। श्री जगमोहन अब इस बात से भी सहमत हो चुके होंगे कि पाकिस्तान की यह एक सोची समझी और गहरी चाल थी जिसके मुताबिक अल्पसंख्यकों के वजूद खत्म करके कश्मीर घाटी को पाकिस्तान के लिए भारत विरोधी योजनाए बनाने के लिए पूर्ण रूप से तैयार किया जा रहा है। श्री जगमोहन यह भी जानते हैं कि २० फरवरी के बाद हजारों अल्पसंख्यक घाटी को सदा सदा के लिए छोड़ देने की तैयारी कर चुके है। जब जम्मू-कश्मीर में केन्द्र सरकार ने राज्यपाल राज लागू किया था, तो ऐसा लगा था कि यहां माहौल बदलेगा। कुछ हद तक ऐसा ही हुआ है लेकिन अब जम्मू-कश्मीर के अल्पसंख्यकों का विश्वास राज्यपाल शासन से भी धीरे धीरे उठता चला जा रहा है।

कश्मीर के अल्पसंख्यकों का यह कहना है कि अभी तक प्रशासन ने दंगों के मुजरिमों की ठीक ढंग से धर पकड़ शुरू नहीं की है। अभी भी हिन्दुओं की जान-माल पर खतरा पहले जैसा ही बना है। भारत विरोधी और पाक समर्थक तत्त्व आज भी घाटी में दनदनाते घूम रहे हैं। गवर्नरी राज के दौरान ही एक और कट्टरपंथी संगठन जमायते-इस्लामी की स्थापना कश्मीर घाटी में हुई है। कश्मीर के अल्पसंख्यक यह सोचने पर मजबूर हो गये हैं कि अगर गवर्नरी राज में यह हालत है तो फिर जब कल को यहां सरकार बनेगी, चाहे वह डा० फारूक की बने या कांग्रेस (इं) की, तो उनका भविष्य क्या होगा?

भारत सरकार को यह भी पता चला है कि फरवरी माह के दंगों के पश्चात भारत विरोधी तत्त्वों ने प्रोत्साहित होकर धड़ाधड़ घुसपैठिये और पेट्रो डालरों के अम्बार यहां लगाने शुरू कर दिये हैं। गवर्नरी राज के बावजूद ऊपर से देखने में कश्मीर घाटी की आग ठन्डी हो गई लगती है लेकिन अन्दर ही अन्दर यह सुलग रही है। इस आग को दुबारा भड़काने वाले शरारती तत्त्व गुप्त रूप से सामान इकट्ठा करने में लगे हैं। कुछ नहीं पता, कब यह आग दुबारा भड़क पड़े। लेकिन अब अगर यह आग दुबारा घाटी में भड़की तो फिर वहां के अल्पसंख्यकों का वजूद सदा-सदा के लिए मिटा दिया जाएगा और भारत सरकार हाथ मलती देखती ही रह जाएगी। सचमुच कश्मीर का भविष्य मुझे बेहद खतरनाक नजर आ रहा है। अगर जल्दी ही श्री राजीव गांधी ने कुछ न किया तो फिर कश्मीर घाटी में एक ऐसी आग भड़केगी कि फिर उस पर काबू पाना असम्भव हो जाएगा।

—पंजाब केसरी से साभार

आर्यवीर दल शिविर का आयोजन

गुरुकुल झज्जर में १६ जून से २५ जून तक एक विशाल सार्वदेशिक आर्यवीर दल का शिक्षक एवं प्रशिक्षण शिविर लगाया जा रहा है। जिसका समापन समारोह २५ जून को बहुत ही धूमधाम से सम्पन्न होगा, आप इस शिविर में छात्रों को सैद्धान्तिक व बौद्धिक प्रशिक्षण देने हेतु सादर आमन्त्रित हैं, हम आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास रखते हैं कि आप इन दस दिनों में से किन्हीं भी दो दिनों का समय निकाल कर छात्रों को अवश्य लाभान्वित करेंगे। और अपने सम्पर्क के किन्ही दो चार अच्छे नवयुवकों को भी इस शिविर में भेजेंगे। आशा है आप अपनी स्वीकृति लौटती डाक से शीघ्र ही भेजने की कृपा करेंगे।

भवदीय :
विजयपाल
प्रधानाध्यापक

अध्यापक गोष्ठी

आर्यसमाज रामकृष्ण पुरम सैक्टर-६ नई दिल्ली में दिनांक ४।५।८६ को "भावी छात्र पीढ़ी को धर्म तथा कर्तव्यों की ओर कैसे प्रेरित करें" विषय पर अध्यापक गोष्ठी हुई जिसमें विषय ज्ञान के साथ-साथ सदाचार, चरित्र एवं देश प्रेम के निर्माण पर ध्यान देने का निर्णय किया गया।

आपका शुभ चिन्तक
ओमप्रकाश कपूर

वर्ष १० : अंक २५ रविवार, १८ मई, १९८६ सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ वैशाख २०४३ दयानन्दाब्द—१६१

मूल्य एक प्रति ५० पैसे वार्षिक २० रुपये आजीवन २०० रुपये विदेश मे ५० डालर, ३० पौंड

ओमप्रकाश त्यागी : एक याद

—ब्रह्मदत्त स्नातक

बुलन्द शहर के एक गाव में जन्मे ओमप्रकाश त्यागी ने अपने जीवन में प्रसिद्धि समाजसेवा और अद्भुत साहस के जो ऊँचे मानदण्ड स्थापित किए वह किसी भी व्यक्ति के लिए गौरव की बात है। लोकसभा में जब उन्होंने धर्मस्वातन्त्र्य विधेयक को प्रस्तुत किया, उस पर जो बहसें चली अपवाद स्वरूप कुछ राजनीतिज्ञो ने सैद्धान्तिक रूप से उस विधेयक का समर्थन किया था। परन्तु शासक दल जनता पार्टी ने विधेयक का समर्थन करना स्वीकार नहीं किया। अपितु कइयों ने खुलकर उनका विरोध किया। परन्तु वे सिद्धान्तवादी थे। विधेयक के प्रश्न पर भारतीय जनता पार्टी का जिसके वे लौह-स्तम्भ थे, उनका साथ छोड गए। तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरारजी भाई और शासक दल जनता पार्टी के नेताओं ने उन पर विधेयक प्रस्तुत न करने के लिए अनेक प्रकार के दबाव डाले थे, पर वे टस से मस नही हुए।

जीवन के इस अंतिम भाग मे राजनीति के घिनौने रूप को देखकर आर्यसमाज और जनजातियों की सेवा के काम में वे समर्पित हो गए थे। श्री त्यागी का जीवन आर्यसमाज से शुरू हुआ और अन्त में अपने जीवन को उसी कार्य के लिए सर्वात्मना समर्पित कर दिया। भारत के पूर्वांचल और मध्य भारत के आदिवासी अंचलो में उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र बना लिया था। दयानन्द सेवाश्रम को स्थापित कर उन्होंने इस क्षेत्र में सेवा और शिक्षा के कार्य का जाल फैला दिया।

भारतीय जनता पार्टी से उनका संबंध संस्थागत रूप से लगभग समाप्त था, परन्तु अपने पुराने साथियो से भेंट करने मृत्यु से पहले दिन (१० मई को) दिल्ली मे हुए जनता पार्टी के महाअधिवेशन मे वे पहुंचे। वहा से घर लौटने के बाद उनकी तबीयत खराब हुई और वे सवेरे ही दिवगत हो गये।

वे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के १३ वर्ष महामन्त्री रहे और इमरजन्सी के दौरान जब उन्होंने आर्यसमाज को राजनैतिक बदले की भावना से सरकारी कोप का शिकार होते देखा तो अपनी उस प्रिय संस्था के पद से भी मुह मोड लिया।

पूर्वी अफ्रीका मे वर्षों तक वे प्रचारक के रूप मे रहे। मारीशस, नौरोबी, लन्दन मे तीन अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलनों का आयोजन उन्होंने सफलतापूर्वक किया और उसके द्वारा भारतवंशियो में एक नये जागरण के बीज बोए। हाल ही मे दक्षिण अफ्रीका मे अन्तर्राष्ट्रीय वैदिक सम्मेलन के सिलसिले के दौरान तीन मास के प्रवास में इन पक्तियो के लेखक ने उनके साथ यात्रा की। मुझे उनके सरल और नियमित जीवन का पूरा परिचय तभी मिला। दक्षिण अफ्रीका मे अनेक अवसरो पर भारतीयो के बीच अंग्रेजी मे भी भाषण देने होते थे। त्यागी जी हिन्दी के ओजस्वी

(शेष पृष्ठ २ पर)

श्री ओमप्रकाश त्यागी को

आर्य जगत् की भावभीनी श्रद्धाञ्जलि

१२ मई आर्य जगत् के प्रसिद्ध नेता, सार्वदेशिक सभा के महामंत्री वैदिक धर्म के सच्चे सेवक श्री ओमप्रकाश त्यागी को आर्य जगत ने सजल नेत्रो से याद किया। श्री ओमप्रकाश जी त्यागी का आकस्मिक निधन ११ मई को हो गया। वे ७२ वर्ष के थे। श्री त्यागी जी को आर्यसमाज की सेवा करते हुए ५१ वर्ष हो चुके हैं। उन्होने भारत के आदिवासी क्षेत्रों में जहां पर ईसाई मिशनरियों के द्वारा धर्मान्तरण की आंधी चलायी गयी थी ईसाइयत के मुकाबले स्वयं जा जा कर उस आंधी का मुंह मोड़ने की पुरजोर कोशिश की। इस निमित्त उनके द्वारा किये गये कार्य सदा स्मरण किये जाते रहेंगे। वैदिक धर्म और आर्यसमाज रूपी मां के लाडले सपूत की स्मृति आर्यसमाज दीवानहाल मे समस्त आर्यजगत् की ओर से एक श्रद्धाञ्जलि सभा का आयोजन किया गया जिसमे श्री सत्यदेव जी भारद्वाज (नैरोबी दक्षिण अफ्रीका) श्री रामचन्द्र राव वन्देमातरम् (हैदराबाद) श्री मनमोहन तिवारी (लखनऊ) श्री राजगुरु शर्मा मध्य भारत, श्री प्रो० शेरसिंह (हरियाणा) प्रसिद्ध सन्यासी स्वामी सत्यप्रकाश डा० मण्डन मिश्र (अखिल भारतीय संस्कृत विद्यापीठ नई दिल्ली) सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री रामगोपाल शालवाले, श्री प्रेमचन्द गुप्ता (सनातन धर्म) श्री राधाकृष्ण बजाज (गोरक्षा समिति), श्री सूर्यदेव (दिल्ली सभा) श्री रामनाथ सहगल (प्रादेशिक सभा) आदि अनेक वक्ताओं ने श्री त्यागी जी के प्रति भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

वक्ताओं ने कहा—वह महान् योद्धा आर्य वीर दल प्रसारक, धर्म स्वातन्त्र्य विधेयक का लोकसभा मे बिगुल बजाने वाला कर्मठ प्रचारक, ओजस्वी वक्ता, गम्भीर एव सामयिक लेखक के रूप में सदा स्मरण किया जाता रहेगा। उनके महान् पुनीत कार्य ही उनके स्मारक हैं। आज फिर आर्य वीर दल, धर्म रक्षा महाभियान, तथा भारत के दक्षिण पूर्वाचलो मे वैदिक धर्म प्रचार आदि कार्य जो उनके द्वारा निर्दिष्ट हैं उन्हें आगे बढ़ाकर हम उन्हें सच्चे रूप मे श्रद्धाञ्जलि दे सकते हैं। आर्य जगत् इन कार्यों को पूर्ण करने का सकल्प लें, उनकी स्मृति वैदिक धर्म की सेवा के लिए "सकल्प दिवस" के रूप मे मनायी जाये।

शोक सभा में विभिन्न स्थानो से सैकड़ों नर नारियो ने पहुच कर प्रिय नेता के प्रति श्रद्धाञ्जलि एवं शोक प्रकट किया।

सम्पादक—यशपाल 'सुधांशु' एम० ए० व्यवस्थापक—डा० सच्चिदानन्द प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल

आर्यसमाज के दार्शनिक लेखक–

प्रो० दीवानचन्द

लेखक : डा० भवानीलाल भारतीय

आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री, दार्शनिक तथा लेखक प्रो० दीवानचद का जन्म '१ जुलाई १८७८ को पंजाब के जेहलम जिले के सधोई नामक ग्राम मे हुआ। इनके पिता का नाम श्री नानकचंद तथा माता का नाम वजीर देवी था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गांव के स्कूल में ही हुई, जहां से दिसम्बर १८८८ में इन्होंने प्राइमरी परीक्षा पास की। पुनः मिडिल की पढाई के लिये समीपवर्ती ग्राम रोहतास में भेजे गये। तीन वर्ष तक यहां पढने के अनन्तर १८९३ में गुजरांवाला के मिशन स्कूल में प्रवेश लिया। गुजरांवाला निवास के समय ही दीवानचंद आर्यसमाज के सम्पर्क में आये। मार्च १८९७ में इन्होंने लाहौर जाकर हाई स्कूल की परीक्षा दी और छात्रवृत्ति सहित उत्तीर्ण हुए। इसी वर्ष वे डी० ए० वी० कालेज लाहौर मे प्रविष्ट हुए। उस समय महात्मा हंसराज कालेज के प्रिंसीपल थे। एफ० ए० के उनके सहपाठियों मे प्रो० रामदेव तथा आनन्दस्वरूप 'साहब जी महाराज' (राधा स्वामी सम्प्रदाय के आचार्य) के नाम उल्लेखनीय हैं एक वर्ष तक गवर्नमेंट कालेज लाहौर मे अध्ययन करने के उपरान्त दीवानचद ने डी० ए० वी० शिक्षा सेवा में आजीवन कार्यकर्ता के रूप मे प्रवेश किया। उस समय आर्यसमाज के शिक्षा कार्य हेतु समस्त जीवन समर्पित कर देने वाले व्यक्तियो को निर्वाहार्थ ७५ रुपये मासिक मिलते थे।

नवम्बर १९०५ मे दीवानचद ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से दर्शन विषय लेकर एम० ए० की परीक्षा दी तथा उत्तीर्ण हुए। डी० ए० वी० कालेज लाहौर में अब उन्हे दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर पद पर नियुक्त किया गया। इस पद पर वे १५ वर्ष तक (१९०४ से १९१४ तक) रहे। इसी अवधि मे लाला दीवानचद ने आर्यसमाज के कामो मे सक्रिय रूप से भाग लिया। कुछ वर्षो तक वे आर्य प्रादेशिक सभा के मुख पत्र 'आर्य गजट' के सम्पादक भी रहे। विभिन्न स्थानो पर प्रचारार्थ जाने का अवसर भी उन्हें मिलता रहता था।

१९१९ मे जब कानपुर मे डी० ए० वी० कालेज खुला तो प्रो० दीवानचद को उसका प्रथम प्रिंसीपल नियुक्त किया गया यहा वे २१ वर्ष तक रहे। प्रो० दीवानचंद के कार्यकाल मे कालेज का सर्वतोमुखी विकास हुआ और वह प्रान्त का सर्वाधिक महत्वपूर्ण शिक्षण संस्थान बन गया। कुछ समय तक वे आगरा विश्वविश्वविद्यालय के कुलपति भी रहे। १२ जुलाई १९४० को डी० ए० वी० कालेज कानपुर के प्राचार्य पद से निवृत्त होकर प्रो० दीवानचन्द लाहौर चले गये। इस वर्ष के प्रारम्भ में ही उन्हें डी० ए० वी० कालेज प्रबन्धकर्तृ सभा का प्रधान चुन लिया था। लगभग साढ़े तीन वर्ष तक लाहौर में रहकर उन्होंने डी० ए० वी० शिक्षण संस्थाओं का संचालन किया। १९४४ के प्रारम्भ में वे पुन. कानपुर आ गये। प्रो० दीवानचंद का अवशिष्ट जीवन कानपुर मे ही व्यतीत हुआ।

प्रो० दीवानचद दर्शनशास्त्र के उच्चकोटि के विद्वान्, विख्यात लेखक तथा अनुभवी शिक्षा मर्मज्ञ थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में अनेक ग्रन्थ लिखे जिनका विवरण निम्न प्रकार है—

१. जीवन ज्योति–आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा जालंधर से प्रकाशित

२. स्वाध्याय सग्रह--आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा जालधर से प्रकाशित

३. कर्मयोग

४. महर्षि दर्शन--आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा जालंधर से प्रकाशित

५. दयानन्द शतक

६. वेद उपदेश

७. दीपक

८. कठ उपनिषद्

९ प्रश्न उपनिषद् -दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार, ग्रन्थमाला-२ स० २०१९ वि०

१० मुण्डक उपनिषद्– नानकचद वजीरदेवी ट्रस्ट, कानपुर से २०१४ वि० में प्रकाशित।

११ उपनिषद दिग्दर्शन—विश्वेश्वरानन्द वैदिक सस्थान होशियारपुर से १९५९ में प्रकाशित।

१२. उपनिषद् प्रवचन माला—दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार से प्रकाशित २०२० वि०

१३. गीता दिग्दर्शन—नानकचद वजीरदेवी ट्रस्ट कानपुर से १९६१ में प्रकाशित

१४. मानसिक चित्रावली--कुछ सस्मरण'''नानकचंद वजीरदेवी ट्रस्ट-कानपुर १९६० में प्रकाशित। (इस पुस्तक का कुछ अंश 'आर्यसमाज के त्यागी व तपस्वी संत' शीर्षक से पृथक् छपा है।)

१५. महात्मा हंसराज'''नानकचंद वजीरदेवी ट्रस्ट कानपुर से १९६४ ई० में प्रकाशित

उर्दू ग्रन्थ

जीवन रहस्य
दुनिया के नौ महापुरुष
आर्य सिद्धान्त
सांख्य दर्शन
विचार माला

अंग्रेजी ग्रन्थ

The Arya Smaj

Life Ever Lasting'''स्वामी दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर नारायण एण्ड कम्पनी कानपुर ने १९२५ में प्रकाशित की।

Short Studies in the Upnishads 1948

Short Studies in the Bhagvad Gita 1950

Fundamentals of Religion नानकचंद वजीरदेवी ट्रस्ट कानपुर से प्रकाशित

क्षेमचन्द्र 'सुमन' सम्मानित

भारत सरकार के 'मानव संसाधन विकास मंत्रालय' के संस्कृति विभाग ने दस खण्डों में प्रकाश्य 'दिवगत हिन्दी-सेवी' नामक विशाल सन्दर्भ-ग्रन्थ के ख्याति प्राप्त लेखक आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन' को साहित्य के क्षेत्र में किये गये विशिष्ट योगदान के लिये अपनी 'अमेरिटस फैलोशिप' देकर सम्मानित किया है।

स्मरणीय है कि मत्रालय की इस योजना के अतर्गत नृत्य, संगीत, नाटक, चित्रकला, मूर्तिकला और साहित्य के क्षेत्र मे कार्य करने वाले जिन १० प्रमुख महानुभावो को इस वर्ष यह सम्मान दिया गया है उनमे साहित्य क्षेत्र का सम्मान अकेले सुमन जी को ही प्राप्त हुआ है। इस प्रसंग मे प्रत्येक सम्मानित व्यक्ति को २ वर्ष तक २ हजार रुपये प्रति मास प्रदान किये जाएगे।

सुमन जी के उक्त ग्रन्थ के दो खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं और आजकल वे उसके आगामी खण्डो की सामग्री तैयार करने में जुटे हुए हैं।

वार्षिक उत्सव

आपको यह जानकर भारी हर्ष होगा कि आर्यसमाज गम्भीर शहर का वार्षिक उत्सव ६ से ८ जून १९८६ (२५ से २७ ज्येष्ठ २०४३) को मनाया जा रहा है। जिसमे उच्च कोटि के विद्वान् तथा साधु महात्मा पहुँच रहे हैं।

प्रचार मन्त्री
प्रेमनाथ आहूजा

(पृष्ठ १ का शेष)

वक्ता थे, परन्तु अग्रेजी में भी उन्होंने अच्छा प्रभाव डाला। दक्षिण अफ्रीका में राजनीतिक सकट को दूर करने के लिए सरकार की ओर से अनेक सरकारी गैर-सरकारी प्रतिनिधि और ससद सदस्य हमारे निवास पर आते थे। एक अवसर पर प्रिटोरिया सरकार ने राजनैतिक स्थिति पर चर्चा करने के लिए हमें आमंत्रित किया। वहां के राष्ट्रपति बोथा के सूचना विभाग के महानिदेशक ने डर्बन में बुलाकर दक्षिण अफ्रीका की राजनैतिक स्थिति पर बातचीत की। उस अवसर पर श्री त्यागी ने बलपूर्वक जातीय समस्या का न्यायपरक समाधान ढूढने पर जोर दिया। यह बात पहली बार लोगों को ज्ञात होगी कि डर्बन में हुए अधिवेशन में बोथा सरकार को जातीय समस्या का न्यायपूर्वक हल करने के लिए जो प्रस्ताव पास किया था उसे दक्षिण अफ्रीका आर्य आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री रामभरोसे ने प्रस्तुत किया था और उसका अनुमोदन त्यागी जी ने किया था। जातीय संबंधों में सुधार की अनेक घोषणाएं उस विशाल अधिवेशन के बाद बोथा सरकार ने की।

१९४७ में नोआखाली (पूर्वी बंगाल) में महात्मा गांधी की शान्ति यात्रा से अपहृत स्त्रियों को मुक्त कराने का काम त्यागी जी ने अपने स्वयं सेवको की मदद से और गांधी जी की जानकारी मे किया था। असम के भूकम्प मे पीडितों के लिए सहायता शिविर उन्होंने लगाए। बनारस विश्वविद्यालय में जब कुछ गुडागर्दी की घटनाएँ हुई तब महामना मालवीय जी ने विश्वविद्यालय के अखाड़े से ओमप्रकाश नाम के इस युवक को बुलाकर सहायता मांगी। उन्होने कुलपति की आज्ञा का तुरन्त पालन किया, जिस पर मालवीय जी ने छाती से लगाकर प्यार व सम्मान किया।

श्री त्यागी १५ वर्षों तक लोकसभा व राज्यसभा के सदस्य रहे। उनके मित्रों में सभी वर्गों के लोग थे। नवयुवको को आकर्षित करने की उनमे असाधारण क्षमता थी।

—नवभारत टाइम्स से साभार

आर्यसमाज विवेक विहार दिल्ली का वार्षिकोत्सव सम्पन्न

इस आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव ५ मई से ११ मई तक धूमधाम से मनाया गया। यज्ञ के ब्रह्मा स्वामी जगदीश्वरानन्द थे। अन्य वक्ता डा० महेश विद्यालंकार, श्री यशपाल सुधांशु सम्पादक आर्यसन्देश, एवं श्री क्षेमचन्द्र सुमन आदि महानुभावों ने उपदेश किये।

रूपचन्द दैयूरिया
मन्त्री

समाचार

आर्य नेता द्वारा धर्म परिवर्तन करने पर अब्दुल्लापुर में हिन्दुओं की पिटाई का कड़ा विरोध

कानपुर, उरई व कानपुर की सरहद पर स्थित थाना कुठौंद क्षेत्र की मुस्लिम बस्ती अब्दुल्लापुर मे बलात् धर्म परिवर्तन करने के लिए गत सप्ताह हिन्दुओं की पिटाई की गई। इस बस्ती में कुछ ही हिन्दू परिवार रहते हैं।

सुप्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के वरिष्ठ उपाध्यक्ष श्री देवीदास आर्य ने अपने एक वक्तव्य में उक्त आरोप लगाते हुए कहा है कि गत वर्ष अक्टूबर माह में इस गाव में गो-हत्या करते कुछ मुसलमानों को पुलिस ने बन्दी बनाया था, तब से गांव के बचे खुचे पाच हिन्दु परिवारों को धमकी देना प्रारम्भ कर दी कि वह मुसलमान बन जायें अथवा गांव छोड़कर भाग जायें हिन्दुओं ने इस धमकी का विरोध किया तब कुछ मुस्लिम गुण्डों ने उनके घरों में घुसकर जमकर उनकी पिटाई की।

श्री आर्य ने आगे बताया कि अब्दुल्लापुर निवासी ५० वर्षीय श्री ओछेलाल मोशी ने थाना कुठौंद मे इस सम्बन्ध में नामजद रिपोर्ट दर्ज कराई है तथा पुलिस अधीक्षक जालौन के समक्ष अपनी करुण कहानी सुनाई।

श्री आर्य ने प्रदेश सरकार से माग की है कि वह इस दिशा मे तुरन्त कड़ा कदम उठाकर अपराधियों को सख्त सजा देने की कार्यवाही करें।

मन्त्री
शुभ कुमार

शोक समाचार

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) के स्तम्भ, वेदों के अद्वितीय विद्वान् त्यागी सन्यासी श्री स्वामी नारायण मुनि चतुर्वेद (पूर्वनाम श्री लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी) का दिनांक ३-५-८६ को निधन हो गया। वे ७६ वर्ष के थे। अपने पीछे एक पुत्र तथा पौत्र आदि छोड गए हैं। इनके निधन से आर्यसमाज और गुरुकुल की अपूरणीय क्षति हुई है।

दिल्ली के उपराज्यपाल महोदय के नाम महाक्रान्तिकारी वेदपथिक धर्मवीर आर्य झंडाधारी का खुला पत्र

श्रीमान श्रद्धेय उपराज्यपाल जी,
राजनिवास, दिल्ली।

सादर नमस्ते,

सेवा में विनम्र निवेदन है कि आर्य समाज मन्दिर करौल बाग के सामने शराब की दुकान और मांस की दुकान खोली गई है। आप आदेश देकर मास और शराब की दुकान को बन्द करा देने की कृपा करें। यदि ऐसा नहीं होगा और आप संतोष जनक उत्तर नही देंगे तो इस कार्य के लिए सत्याग्रह का बिगुल बजेगा।

इस सत्याग्रह के लिए दिल्ली की आर्यसमाजों को सनातन धर्म सभाओं को तथा स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों को हम निमन्त्रित कर रहे हैं। यदि कोई अप्रिय घटना होगी तो उस की सारी जिम्मेवारी आप के सर पर होगी। ब्रिटिश साम्राज्य में हम शराब बन्दी के लिये सत्याग्रह कर चुके हैं।

कांग्रेस के कर्णधार पूज्य महात्मा गाधी जी के सबल सिद्धान्तों की निर्मम हत्या कर रहे हैं। भारत जननी पुकार पुकार कर यह कह रही है कि कांग्रेस के सभी कर्णधार समुद्र के खारे पानी मे डूब कर मर जायें।

एक सप्ताह के अन्दर यदि पत्र का उत्तर नहीं मिलेगा तो हम दिल्ली की तिहाड़ जेल को भरने के लिए तैयार हो जायेंगे। यह पत्र भारत माता कसम खाकर, गौ, गंगा, गीता, गायत्री की कसम खाकर मैं आपको लिख रहा हूँ।

इति आपका सेवक
वेद पथिक धर्मवीर आर्य झंडाधारी
अध्यक्ष
महर्षि दयानन्द वेद विश्व विद्यालय
निर्माण समिति
९८५७ अहाता ठाकुर दास
सराय रोहिल्ला
नई दिल्ली-११०००५

वार्षिकोत्सव समारोह धूमधाम से सम्पन्न

आर्यसमाज रघुवरपुरा नं० २, गाधी नगर, दिल्ली-३१ का वार्षिकोत्सव समारोह बडी धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर ४।५।८६ को शोभा यात्रा निकाली गई। शोभा यात्रा में आगे आगे घुडसवार दल, पीछे गण्यमान्य व्यक्ति उसके बाद आर्यसमाजों के कई विद्यालयों के बालक बालिकाएं अपने अपने बैण्डों सहित आकर्षक वेशभूषा मे चल रहे थे। घुडसवारो के आगे लाठी तलवारो का प्रदर्शन अति उत्तम रहा। मार्ग मे स्थान-स्थान पर मीठे जल से स्वागत किया गया। शोभा यात्रा आर्य समाज गाधीनगर पर समाप्त हुई।

५।५।८६ से समाज मन्दिर मे विशेष यज्ञ श्री प्रकाशचन्द्र जी शास्त्री के ब्रह्मत्व मे सम्पन्न हुआ। पूर्णाहुति रविवार को प्रात. ९ ३० बजे दी गई। यजमानों को आशीर्वाद के उपरान्त हुए राष्ट्ररक्षा सम्मेलन मे ध्वजारोहण के पश्चात् श्री कुंवर धर्मवीर सिंह जी व श्री मेघश्याम वेदालकार के प्रेरणादायक प्रवचन हुए।

प्रतिदिन रात्रि ने श्री प्रकाशचन्द्र जी शास्त्री की मनोहर कथा मध्याह्न तक हुई। कथा से पूर्व श्री वेदव्यास जी के मनोहर भजन हुए। रविवार को ऋषि लंगर का भव्य आयोजन रहा।

प्रचार मन्त्री

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन : ३१०१५० के लिए डा० धर्मपाल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा वैदिक प्रेस, गली नं० १५, ...नगर, दिल्ली-३१ में मुद्रित। रजि० नं० डी० (सी०) ७५६

[आ]र्य संस्कृति एवं सभ्यता के गौरवमय [इ]तिहास को बिगाड़ने का षड्यन्त्र

लेखक—मांगेराम आर्य एम०ए०
बाकनेर, दिल्ली-४०

·ट से लेके पांच सहस्र वर्षों से पूर्व [स]मय आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती [भू]गोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य [औ]र देशों में मांडलिक अर्थात् छोटे-[रा]जा होते थे। (मनु० २-२०) चीन [का भग]दत्त, अमेरिका का बभ्रुवाहन, यूरोप [का] विडालाक्ष, ईरान का शल्य, [इत्य]ादि के सब राजा धृतराष्ट्र के [राज]यज्ञ में आए थे। महाभारत और [इति]हास आदि ग्रन्थों में सब भूमि में चक्र-[वर्ती र]ाजाओं के नाम लिखे हैं। महा-[भारत] युद्ध में अधिकांश योद्धा और वीरगति को प्राप्त हुए। इसके [बाद] साम्राज्य छोटे-छोटे राज्यों में [बंट गय]ा। विद्या का स्थान अविद्या ने, [सत्य म]ार्ग का स्थान 'वाम मार्ग' ने ले [लिया]। फलस्वरूप भारत की राजनीतिक, [धार्मि]क, सामाजिक स्थिति बिगड़ने लगी। [इस स्थि]ति का लाभ उठाने का सर्वप्रथम [यूनान के] सिकन्दर तथा सेल्यूकस ने प्रस-[प्र]यास किया। फिर एक हजार वर्ष [तक अ]रबों, तुर्कों और मुगलों ने हमारी [संस्कृ]ति एवं सभ्यता को नष्ट करने में [स]फलता प्राप्त की। उन्होंने हमारे [धर्म] व धार्मिक ग्रन्थों को जलाया; लाखों [का ध]र्मपरिवर्तन किया, हमारे भवनों का [नाम] परिवर्तन किया, जैसे समुद्रगुप्त द्वारा [मह]रौली (दिल्ली) में बनाए विष्णु ध्वज [का] नाम कुतुबमीनार, राजपूतों द्वारा [आग]रे में बनाए मन्दिर भवन का नाम [ताज]महल रख दिया। इस युग मे अपनी [संस्कृ]ति, सभ्यता और धर्म की रक्षा करने [वाल]ों में राजा दाहर हकीकत राय, गुरु [तेग] बहादुर, गुरुगोविन्द सिंह के पुत्र [ज]ोरावरसिंह व फतहसिंह) बन्दा बैरागी [इ]त्यादि इतिहास सहस्रः हजारों वीरों के अमर [ब]लदान, और महाराणा प्रताप सिंह, [छत्र]पति शिवाजी सदृश असंख्य शूरवीरों [के] पराक्रम के कारण हमारी संस्कृति व [स]भ्यता को पर्याप्त संरक्षण मिला।

अठारहवीं शताब्दी में यूरोपीय [श]क्तियों का भारत मे प्रभाव बढ़ने लगा। [यू]रोपीय विद्वान् के. अर्दू (फ्रेंच) ने सन् [१]७६७ ई० में और विलियम जोन्स [(इ]ग्लैंड) ने १७८६ ई० में आर्य भाषा [सं]स्कृत का अध्ययन कर घोषणा की कि [यू]रोपीय भाषाएं और संस्कृत एक ही परि-[वा]र की भाषाएं हैं। उनका तात्पर्य यह [थ]ा कि संस्कृत यूरोप में जन्मी फिर भारत [में] इसका प्रचार हुआ। आर्य भाषा के [इ]तिहास को बिगाड़ने का यह पहला [प्र]मुख प्रयास था।

[१८]३५ ई० में भारत में ब्रिटिश सर-कार के विधि मन्त्री लार्ड मैकाले ने एक "नई शिक्षा नीति" बनाई, जिसके अनु-सार शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बना और विज्ञान को पढ़ाने की व्यवस्था स्कूल कालेजों में सरकार द्वारा की गई। अंग्रेजी भाषा को माध्यम बनाकर हमारी भाषा, संस्कृति और सभ्यता को नष्ट करने का षड्यन्त्र रचा गया।

प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध में (सन् १८५७-५८ ई०) में भारतीयों में अपने धर्म, संस्कृति, स्वराज्य की रक्षा के लिए आत्म-सम्मान जाग उठा। भारत के गौरवमय अतीत ने उनको महान् प्रेरणा दी। भार-तीयों के राष्ट्राभिमान ने अंग्रेजों के अहं-कार को मिट्टी में मिला दिया था। अंग्रेजों ने "१८५७ की पुनरावृत्ति न हो" इस विचार को लेकर भारतीयों के प्रेरणा स्रोत अतीत के इतिहास को बिगाड़ने के लिये जर्मन के संस्कृत विद्वान् मैक्समूलर की सेवाएं प्राप्त कीं। प्रो० मैक्समूलर ने १८५९ ई० में केवल भाषा को काल्पनिक आधार बनाकर घोषणा की कि भारतीय आर्यों का मूल निवास स्थान मध्य एशिया है। इस मत की पुष्टि सन् १८७४ ई० में प्रो० सेयस ने की। प्रो० मैक्समूलर ने ऋग्वेद का रचना काल प्रथम तो १२०० ई० पू० बीस वर्ष पश्चात् ३००० ई० पू० घोषित किया, किन्तु उन्होंने अपने मत की पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं दिया। केवल कल्पना ही प्रस्तुत की। इस कल्पना ने हमारे स्वर्णमय अतीत पर भयकर चोट की है।

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् भारतीयों में स्वदेशाभिमान चरम सीमा पर था। भारतीय पुरातत्व विभाग के महानिदेशक सर जान मार्शल ने मोहन जोदड़ो की खुदाई (१९२१-१९२७) के दौरान १९२४ ई० में घोषणा की कि भारत में आर्यों से पहले सिन्धु-घाटी की सभ्यता खोज ली गई है। हड़प्पा की खुदाई (१९२७-३१) का काम जे० एच० मैके के नेतृत्व में हुआ। संसार की सर्वश्रेष्ठ एवं मौलिक सभ्यता के इतिहास को बिगाड़ने का यह एक और घृणित षड्यन्त्र रचा गया।

स्वतन्त्र भारत सरकार की संस्था "राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशि-क्षण परिषद्" द्वारा प्रकाशित "प्राचीन भारत" (कक्षा ११ वीं के लिये) इतिहास की पुस्तक के १९८५ ई० के संस्करण में आर्यों की सभ्यता और संस्कृति के इति-हास को अत्यन्त घृणित ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक से लिये हुए कुछ उद्धरण पाठकों की सेवा में प्रस्तुत हैं— "अथर्ववेद में—भूत प्रेतों के निवा-रण के लिए तावीज धारण करने का भी सुझाव दिया गया है।—हड़प्पा संस्कृति के साहित्य और उनके विचारों एवं विश्वासों के बारे मे कुछ नहीं कहा जा सकता। (पृष्ठ ३७)"

"हड़प्पा संस्कृति का अस्तित्व २५०० ई० पू० से १७५० ई० पू० तक रहा। (पृष्ठ ३८)"

'हड़प्पा संस्कृति के उद्‌गम और इसके अन्त के बारे में निर्णायक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। एक मत यह भी है कि हड़प्पा संस्कृति का विध्वंस आर्यों ने किया।.. हमारे पास इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि हड़प्पा वासियों और आर्यों के बीच कड़ा संघर्ष हुआ।" (पृष्ठ ३९)।

"आर्यों का जीवन स्थायी नहीं था। ···भारत आगमन से पहले आर्य लोग ईरान मे पहुंचे।···हिन्द-यूरोपीय भाषा की सबसे प्राचीन कृति ऋग्वेद...। भारत में आर्यों का आगमन १५०० ई० पू० के कुछ पहले हुआ।·· ऋग्वेद के दस्यु संभ-वतः इस देश के मूल निवासी थे।" (पृष्ठ ४०)

"आर्य लोग शहरों में नहीं रहते थे, उनकी मिट्टी के घरों वाली बस्तियों की सम्भवत. किलेबन्दी की जाती थी। ऋग्वेद का काल लगभग १६०० ई० पू० से १००० ई० पू० का ही है"।(पृष्ठ ४१)

'ऋग्वेद में न्यायाधीश के बारे में कोई जानकारी नही मिलती। पर इसका यह अर्थ नहीं कि वह एक आदर्श समाज था। ऋग्वैदिक काल के दो प्रमुख पुरो-हितों···वशिष्ठ और विश्वामित्र ने गायों और दासियों के रूप में भरपूर दक्षिणाएं प्राप्त कीं।·· चोरियां होती थी, विशे-षतः गायो की। 'नागरिक व्यवस्था अथवा प्रादेशिक प्रशासन जैसी किसी चीज का अस्तित्व नहीं था।...राज्य की स्थापना ही नही हुई थी"। (पृष्ठ ४२)

"शूद्रों के चौथे वर्ण का उद्‌भव ऋग्वैदिक काल के अन्तिम दौर में हुआ। भूमि अथवा अथवा अनाज के दान के बारे में हमें कोई उल्लेख नहीं मिलता।" (पृष्ठ ४३)

'सोम नाम का एक मादक पेय भी था। ऋग्वैदिक काल में···वे लोग आध्या-त्मिक उन्नति अथवा मोक्ष के लिए देव-ताओं की आराधना नहीं करते थे। वे इन देवताओं से मुख्यत सन्तति, पशु, अन्न, धन, स्वास्थ्य आदि की माग करते थे"। (पृष्ठ ४४)

"महाभारत युद्ध···९५० ई० पू० के आसपास (दो कबीलो) कौरवों और पाण्डवों के बीच लड़ा गया था।···उत्तर वैदिक काल के लोग पक्की ईंटों का इस्ते-माल नहीं जानते थे। वैदिक साहित्य में राम का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। . यज्ञ में होने वाली पशु-बलि के कारण बैल उपलब्ध नहीं हो सकते थे।·· सीता के पिता विदेहराज जनक भी स्वय हल जोतते थे"। (पृष्ठ ४६)

"उनके घर घटिया किस्म के थे··· कुल मिलाकर उत्तरवैदिक काल में लोगों के भौतिक जीवन में बड़ी उन्नति हुई।" (पृष्ठ ४८)

"उत्तर वैदिक काल में अभी वर्ण भेद की दिशा में बहुत अधिक प्रगति नही हुई थी।' (पृष्ठ ४९)

वैदिक काल मे आश्रम व्यवस्था अभी ठीक से स्थापित नहीं हुई थी।···वैदिक काल मे चौथे आश्रम की अभी स्पष्ट रूप से स्थापना नही हुई थी। यज्ञो मे पशुओं की बड़े पैमाने पर हत्या की जाती थी और इस प्रकार गोधन का विशेष रूप से हनन होता था। अतिथि को गोघ्न यानी गोमांस खिलाये जाने वाला कहा गया है। (पृष्ठ ५०)

"६०० ई०पू० उपनिषदों की रचना" ... (पृष्ठ ५१)

"रामायण और महाभारत, अन्तिम तौर पर सम्भवत चौथी शताब्दी ई० मे संकलित किए गए" (पृष्ठ १२७)

"बिना कुछ किए खाने वालों में राजा, सामन्त, राजाधिकारी, सिपाही और महाजन थे।...भागवद्‌गीता ने बताया...दूसरो के धर्म को अपनाने की कोशिश करना खतरनाक बात है।" (पृष्ठ १५६)

"प्राचीन भारतीयों को भारत के बाहर के देशों के भूगोल की बहुत कम जानकारी थी।' (पृष्ठ १५८-५९)

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि श्री रामशरण शर्मा ने अपनी इस पुस्तक "प्राचीन भारत" में आर्यों की श्रेष्ठ सभ्यता, संस्कृति के इतिहास की वास्त-विकता को छुपाने का लज्जाजनक प्रयास किया है। "आर्यों की सभ्यता की भारत को कोई देन नही है" केवल इस भावना को

शित किया गया है। इस पुस्तक में आर्यों के लिए कोई भी सम्मान सूचक शब्द का प्रयोग नही किया है। अत: वैदिक युग के आर्यों का गौरवपूर्ण प्रामाणिक इतिहास छपवाकर भारत के घर-घर में मुफ्त बंटवाने का पुनीत समय आ गया है। इस कार्य के लिए प्रत्येक प्रान्त में 'शोध-केन्द्र" स्थापित किये जायें और सर्वश्री डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, डा० हरिदत्त वेदालंकार, क्षितीश वेदालंकार, स्वामी ओमानन्द, डा० प्रशान्त वेदालंकार, डा० भवानीलाल भारतीय, प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु, ब्र० आर्य नरेश सदृश: लेखकों व विचारकों की सेवाएं प्राप्त की जाएं। सार्वदेशिक सभा इस पुस्तक "प्राचीन भारत" को पाठ्यक्रम से निकालने के लिए भारत सरकार से सशक्त मांग करे। इस असभ्य पुस्तक की सर्वत्र निन्दा की जाए।

'प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग' का इतिहास

आर्यों का मूल निवास स्थान भारत [आर्यावर्त]- जर्मन के विद्वान् प्रो० मैक्समूलर ने सर्वप्रथम १८५९ ई० में घोषित किया कि भारत में आर्य लोग मध्य एशिया से आकर बसे थे। कुछ अन्य विद्वानों ने हंगरी (डेन्यूब नदी) को, कुछ ने जर्मन को, नेहरिंग ने दक्षिणी रूस को, मार्गन ने साईबेरिया को कल्पना के आधार पर आर्यों का मूल निवास स्थान बताया। लोकमान्य तिलक ने उत्तरी ध्रुव को आर्यों का मूल निवास स्थान बताया। भारत सरकार द्वारा मनोनीत समिति ने आर्यों का मूल निवास स्थान भारत ही माना है। बंगाली इतिहासकार अविनाशचन्द्र दास ने अपनी पुस्तक "ऋग्वेदीय भारत मे आर्यों का मूल निवास स्थान "सप्त सिन्धु" [भारत] माना है। डा० सम्पूर्णानन्द ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। एलफिन्स्टन ने अपने ग्रथ भारत के इतिहास मे लिखा है—'भारतीय हिन्दुओ क पूर्व पुरुष कभी अपने आधुनिक निवास स्थान के अतिरिक्त किसी दूसरे देश में थे ऐसा मानने का कोई भी कारण नही है।' डा० कीथ लिखते हैं—"यह निश्चय है कि वैदिक भारतीय किस प्रकार भारत में प्रविष्ट हुए, यह निर्धारित करने मे ऋग्वेद से कोई सहायता नही मिलती।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास मे लिखा है—"मनुष्य की आदि सृष्टि त्रिविष्टप (तिब्बत) में हुई। आदि सृष्टि मे एक मनुष्य जाति थी, पश्चात् "विजानीह्यार्यान्ये च दस्यव." (१-५१-८) यह ऋग्वेद का वचन है। श्रेष्ठों का नाम आर्य, विद्वान् देव और दुष्टों के दस्यु अर्थात्, डाकू, इन नाम होने से आर्य और दस्यु दो नाम हुए। जब आर्य दस्युओ में सदा

आर्य संस्कृति एवं सभ्यता के गौरवमय इतिहास को बिगाड़ने का षड्यन्त्र

लड़ाई बखेडा हुआ किया, तब आर्य लोग सब भूगोल में उत्तम इस भूमि के खंड को जानकर यहीं आकर बसे इसी से देश का नाम आर्यावर्त हुआ। मनुस्मृति में (२-२२, १७) आर्यावर्त्त की अवधि उत्तर में हिमालय, दक्षिण मे विन्ध्याचल, पूर्व और पश्चिम मे समुद्र तथा सरस्वती पश्चिम में अटक नदी"'पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी...रामेश्वर पर्यन्त...जितने देश हैं उन सब को आर्यावर्त इसलिए कहते हैं कि यह आर्यावर्त देव अर्थात विद्वानों ने बसाया और आर्यजनों के निवास करने से आर्यावर्त कहलाया है। इसके पूर्व इस देश का नाम कोई भी नहीं था और न कोई आर्यों के पूर्व इस देश में बसते थे। क्योंकि आर्य लोग सृष्टि की आदि में कुछ काल पश्चात्, तिब्बत से सूधे इस देश में आकर बसे थे"'किसी संस्कृत ग्रथ में व इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आये और यहां के जंगलियों को लड़कर जय पाके, निकाल इस देश के राजा हुए, पुन: विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है। "'इक्ष्वाकु (आर्यावर्त के प्रथम राजा) से लेकर कौरव कौरव पाण्डव तक सर्व भूगोल में आर्यों का राज्य और वेदों का थोड़ा-थोड़ा प्रचार आर्यावर्त से भिन्न देशों में भी रहता था। जगत की उत्पत्ति और वेदों के प्रकाश होने मे एक अरब छियानवे करोड़ कई लाख और कई सहस्र वर्ष हुए हैं। पाश्चात्य विद्वान एफ० ई० पार्जिटर ने भी स्वामी दयानन्द के मत को मान्यता दी है। अधिकाश विद्वानों का मत यही है कि आर्य भारत के निवासी हैं और सिन्धु घाटी की सभ्यता के निर्माता आर्य ही थे, अन्य कोई नही था। निरुक्त के अनुसार जीवन में विघ्न डालने वाले को दस्यु कहा जाता था। उन्हीं के पुरोगामियों का ध्वस किए जाने की बात ऋग्वेद में कही गई है। आर्यों के पुरोगामी सत्ता ऋग्वेद १०-१०१-८ मे स्पष्ट रूप से सूचित है। पशुपति शिव की प्रतिमा वाला प्राप्त मुद्राक वैदिक सभ्यता का ही था। सिन्धु घाटी से प्राप्त एक अन्य मुद्राक पर एक मन्त्र (ऋ० १-१६४-२०) चित्रलिपि द्वारा प्रस्तुत किया गया है। डा० प्राणनाथ ने सिन्धु सभ्यता की लिपि को वैदिक शब्द ही अंकित किया है। वर्तमान प्राप्य प्रमाणों से सिद्ध है कि आर्य लोग भारत के ही मूल निवासी हैं। "सिन्धुघाटी की सभ्यता आर्यों की ही सभ्यता है, अत. ये दोनों प्रश्न १. आर्य बाहर से आए। २. सिन्धु घाटी की सभ्यता आर्यों से पहले की है, प्राचीन भारतीय इतिहास से तुरन्त निकाल देने चाहिए।"

धार्मिक जीवन—वैदिक आर्य एक निराकार ईश्वर की सत्ता में विश्वास करते थे। देवता इन्द्र, वरुण, अग्नि, यम आदि ये सब एक ही सर्वोच्च सत्ता के विविध नाम हैं (ऋ० १-१६४-४६)। ३३ देवताओं के नामों का उल्लेख ऋ० ३-९-९ में और ३३३९ की संख्या का उल्लेख ऋ० ३।३।९ में है। आर्य लोग उषा व अश्विनी काल से पहले उठकर नित्यकर्म से निवृत्त होकर यज्ञकुण्ड में वेद मन्त्र पाठ के साथ घी, समिधा, सामग्री आदि की आहुतियां देते थे। वे प्रजा की तेजस्विता की याचना करते थे। वेद मन्त्रों की तीन प्रकार से व्याख्या करते थे—आधिभौतिक, आध्यात्मिक तथा आधिदैविक। आर्य लोग मन्त्रों का यौगिक अर्थ करते थे। देवताओं के नामों का ईश्वर की शक्तियों का आलंकारिक ढंग से वर्णन मात्र है। जिसके कारण प्रो० मैक्समूलर ने आर्यों के धर्म का नाम अनेक देवतावाद की संज्ञा दी थी।

आर्यों के घरों में दैनिक पांच प्रकार के यज्ञ किए जाते थे—देव यज्ञ, ऋषि यज्ञ, पितृ यज्ञ, नृयज्ञ, भूत यज्ञ। अमावस्या व पूर्णिमा को विशेष यज्ञ किए जाते थे। सोम यज्ञ, राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, अभी यज्ञों का भी विधान है। यज्ञों में पशुबलि की कुप्रथा की देन 'वाममार्गियों' की देन थी, आर्यों की नहीं।

यजुर्वेद के मन्त्र अ० ३-९, १० में "मोक्ष प्राप्ति के लिए, सबके कल्याण के लिए होम करते हैं कहा गया है।" ओम् आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुव. स्वरों स्वाहा। (तैत्तिरीयोपनिषद्) मे ब्रह्म की प्राप्ति कर आनंद में विचरने की प्रार्थना की गई है। यजु० अ० ३०-३ के मन्त्र ओम् विश्वानिदेव"'में दुष्ट आचरण दूर करने और सुखकारक आचरण प्राप्ति के लिए प्रार्थना की गई है। "धर्मार्थकाममोक्षाणा" में मोक्ष आर्यों के जीवन का अन्तिम लक्ष्य माना गया है। प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादस। करम्भेण सजोषस. (यजु० ३-४४) मे"'प्रीति से यज्ञ करने वाले विद्वान् लोगो को सत्कार पूर्वक नित्यप्रति बुलाते रहें। सामवेद के प्रथम मन्त्र 'अग्न आ याहि वीतये"'" ईश्वर ने हृदय में प्रकाश करने के लिए"' और अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र "ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा"'' मे पराक्रमी और परोपकारी होने की प्रार्थना की गई है। अथर्ववेद के अन्तिम मन्त्र 'पनाय्य तदश्विना कृतं"'तां उपमाता विश्वर्ये" में राजा और मन्त्री को सोम अर्थात्, तत्व रस पीने की प्रेरणा दी है। गर्भाधान संस्कार से लेकर अन्त्येष्टि संस्कार तक ग्यारह प्रकार के संस्कारों का विशेष महत्त्व था।

मनु० ४-२३९ में कहा है परलोक में न माता, न पिता, न स्त्री, न ज्ञाति सहाय कर सकते एक धर्म ही सहायक होता है स्वार्थ के लिए कोई काम न करे भारत उ० पर्व। माता, पिता. अतिथि, पुत्र भृत्यकादिकों को कराके गृहस्थ को भोजन करना यह बलिवैश्वदेव या विधि में [illegible] का स्पष्ट संकेत है। मा नो वधी मोत मातरम् (यजु० १६-१५) पिता, आचार्य और अतिथि की पूजा कहलाती है। आर्यों का [illegible] सांस्कृतिक जीवन अत्यन्त महान मूल्यों सत्य, परोपकार, मोक्ष से [illegible] था। कालान्तर में यज्ञ कर्मकांडों [illegible] लताओं के कारण धार्मिक [illegible] गिरावट आनी आरम्भ हो गई [illegible]

सामाजिक जीवन—वैदिक [illegible] सामाजिक जीवन के स्वरूप क[illegible] स्वरूप के समान प्रतिपादित कि[illegible] है। ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्, बाहू [illegible] कृत:। ऊरूतदस्य यद्वैश्य: पद्भ्यां [illegible] जायत। ऋ० १०-९०-१२ ब्राह्म[illegible] कार्य पढना-पढाना, यज्ञ करना-[illegible] दान लेना या दान देना क्षत्री क[illegible] राष्ट्र रक्षा व शासन करना, वै[illegible] कार्य कृषि व व्यापार करना, शू[illegible] कार्य तीनों वर्गों की सेवा करन[illegible] वर्ण व्यवस्था शुद्ध रूप से जन्म के [illegible] पर न होकर केवल कर्म के आधा[illegible] होकर केवल कर्म के आधार प[illegible] थी। मनुष्य ब्रह्मचर्य आश्रम मे [illegible] तक) विद्या उपार्जन, गृहस्थ आश्र[illegible] [२५ से ५०] रहकर सांसारिक [illegible] दय करे, वानप्रस्थ आश्रम में (५० [illegible] वनो मे रहकर ब्रह्मचारियों को वि[illegible] करे और अध्यात्म चिन्तन करे, [illegible] आश्रम में (७५ से १००) तप, त्या[illegible] सयम का आदर्श जीवन बिताते हु[illegible] पकार में सारा समय लगाए और [illegible] के अन्तिम लक्ष्य 'मोक्ष" की प्राप्ति [illegible] वैशेषिक दर्शन मे कणाद मुक्ति का [illegible] लक्षण "यतोऽभ्युदयनि:श्रेयससिद्धि धर्म" जिस द्वारा सांसारिक अभ्युद[illegible] मोक्ष की सिद्धि हो वही धर्म है।

शर्यणावति सोममिन्द्र. पिबतु वृ[illegible] बल दधान आत्मनि करिष्यन् वीर्यं [illegible] इन्द्रायेन्दो परिस्रव। ऋ० ९-१[illegible]

परमैश्वर्य के लिए, हे चन्द्रमा [illegible] सबको आनन्द करने हारे पूर्ण वि[illegible] तू सन्यास लेके सत्र पर सत्योपदेश [illegible] वृष्टि कर। राजा का कर्तव्य था [illegible] सबसे वर्ण-आश्रम व्यवस्था का[illegible] कराए।

वैदिक काल में गुण, कर्म [illegible] में एक समान लड़के और लड़कि[illegible] विवाह वयस्क अवस्था में होता था[illegible] बहिन का विवाह निषिद्ध था। [illegible]

समाचार

र्यसमाज विनयनगर (सरोजिनी नगर) नई दिल्ली का वार्षिकोत्सव सफलता पूर्वक सम्पन्न

ाज विनय नगर नई दिल्ली त्सव ५ मई से ११ मई तक किट के पार्क में बडे समारोह ा गया। ५ मई से ११ मई ला यज्ञ स्वामी दीक्षानन्द जी द्वारा कराया गया। पूर्णाहुति प्रातः ११ बजे सम्पन्न हुई। यज्ञ वेदियों का आयोजन जिसमें कई सौ नर नारी उप- का दृश्य देखने योग्य था।

ई को प्रातः रतन चन्द आर्य कूल के बच्चों का कार्यक्रम पहर को महिला आर्यसमाज हुआ और रात्रि को राष्ट्र म्मेलन स्वामी दीक्षानन्द जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ सोमनाथ जी मरवाह एडवो- मी जीवनानन्द जी सरस्वती, रसी सिंह एम० ए० और श्री शास्त्री के ओजस्वी भ षण हुए।

११ मई को प्रातः ११ बजे दक्षिण दिल्ली वेद प्रचार मंडल के तत्त्वावधान में आर्यसमाज स्थापना दिवस मनाया गया जिसकी अध्यक्षता श्री सोमनाथ जी मरवाह एडवोकेट ने की। सर्वप्रथम श्री ओमप्रकाश जी त्यागी, मन्त्री सार्वदेशिक सभा के अकस्मात् निधन पर दक्षिण दिल्ली की सभी आर्यसमाजों की ओर से शोक प्रस्ताव पारित किया गया। तत्पश्चात् ला० रामगोपाल शालवाले, स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती, स्वामी जीवनानन्द जी सरस्वती। श्री क्षितीश वेदालंकार, श्री रामनाथ सहगल मन्त्री प्रादेशिक सभा, श्री यशपाल शास्त्री ने अपने विचार रखे। इस अवसर पर दक्षिण दिल्ली के सभी आर्यसमाजों के हजारों नर नारी उपस्थित थे। अन्त में ऋषि लंगर का आयोजन किया गया।

रोशनलाल गुप्त
प्रचार मन्त्री

द अनाटोमी आफ वेदान्त

प्रिय श्री धर्मपाल जी,

नमस्ते। आपका पत्र प्राप्त हुआ। श्री स्वामी विद्यानन्द सरस्वती द्वारा लिखित 'द अनाटोमी आफ वेदान्त' पुस्तक भेजने के लिए, मैं आपका अति आभारी हूं। यह पुस्तक सुन्दर साज सज्जा के साथ, विदेशी पाठकों के लिए सुगम सुबोध शैली मे लिखी गयी है। कृपया मेरी भावनाएं लेखक तक पहुंचा करके अनुगृहीत करें।

सस्सम्मान।

भवदीय
डॉ० रामचन्द्र राव वन्दे मातरम्
१४।३।१७८ कमला-निलयम्
गोशामहल, हैदराबाद (आन्ध्रप्रदेश)

आर्यसमाज विवेकविहार का वार्षिकोत्सव सम्पन्न

आर्यसमाज विवेक विहार का वार्षिकोत्सव ५ मई से ११ मई १९८६ तक बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। प्रतिदिन प्रातः ६ से ७.३० बजे यज्ञ हवन के ब्रह्मा पूज्य पाद स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती रहे। प्रति रात्रि ८ बजे से १० बजे तक श्री गुलाबसिंह राघव के मनोहर भजनों के उपरान्त वेद मर्मज्ञ पूज्य स्वामी जगदीश्वरानन्द जी ने छोटी छोटी कथाओं के माध्यम से गम्भीर विषयो को बोधगम्य एवं सरल बनाते हुए श्रोताओं को मन्त्र मुग्ध कर दिया। धर्मप्रेमी श्रद्धालु जनता प्रतिदिन बड़ी संख्या में पधारी।

११ मई को पूर्णाहुति दिवस पर प्रातः ७ बजे से १ बजे तक श्रद्धालुओ का अपार जन समूह देखते ही बनता था। डा० महेश विद्यालंकार का प्रवचन हुआ जो जनता ने बहुत सराहा। पूज्यपाद स्वामी जी, विवेकानन्द महिला कालिज की मनीषी आचार्या राजवधवा एवं निर्मल ज्योति साधना आश्रम हरिद्वार की अधिष्ठात्री संन्यासिन निर्मल ज्योति जी ने अपने सारगर्भित प्रवचनों द्वारा जनता जनार्दन को जीवन मार्ग सुझाया। मुख्य अतिथि पद्मश्री क्षेमचन्द्र सुमन ने कार्यकर्ताओं के प्रयास की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा कि समीपस्थ अनेक कालोनियों के धर्मप्रेमियो की उपस्थिति इस आयोजन की अभूतपूर्व सफलता की द्योतक है। श्री रूपचन्द्र कथूरिया ने सब का हार्दिक धन्यवाद किया।

निवेदक :

प्रधान	मन्त्री
इन्द्रजीत भाटिया	रूपचन्द कथूरिया

व्यायाम शिक्षक प्रशिक्षण शिविर नरवाना

२ जून से १५ जून १९८६ तक

सार्वदेशिक आर्यवीर दल की शाखाएं चलाने के लिए व्यायाम शिक्षक प्रशिक्षण शिविर २ जून से १५ जून तक आर्यसमाज नरवाना जिला जीन्द हरियाणा में सार्वदेशिक आर्यवीर दल के प्रधान उप संचालक डा० देवव्रत आचार्य के निर्देशन में लगाया जा रहा है।

भारत भर के उन आर्य वीरों को आह्वान किया जाता है जिन्होंने पहले ही एक शिविर में प्रशिक्षण लिया हो या स्थानीय शाखा की नियमित सदस्यता का प्रमाण पत्र रखते हों ऐसे आर्य वीरों को शिक्षक के रूप में प्रशिक्षित करना इस शिविर का उद्देश्य रहेगा ताकि वे शाखा चलाने व नवयुवकों को आकर्षित करने मे समर्थ हो सकें।

निवेदक :
प्रा० धर्मदेव विद्यार्थी
अधिष्ठाता

निर्वाचन सम्पन्न

आर्यसमाज लल्लापुरा वाराणसी का वार्षिक निर्वाचन दिनाक २७।४।८६ को श्री मेवालाल जी की अध्यक्षता में आर्यसमाज मन्दिर, लल्लापुरा मे सम्पन्न हुआ। जिसमें निम्न पदाधिकारी निर्वाचित हुए।

श्री बेचन राम आर्य	प्रधान
श्री प्रेमचन्द आर्य	उप प्रधान
श्री [illegible]कान्त जी	"
श्री रामगोपाल आर्य	मन्त्री
श्री नरेन्द्रनाथ आर्य	उपमन्त्री
श्री सत्यप्रकाश आर्य	"
श्री बुद्धदेव आर्य	कोषाध्यक्ष
श्री लक्ष्मी नारायण आर्य	प्रचार मन्त्री
श्री मदनलाल जी आर्य	उपप्रचार मन्त्री
श्री रामलखन जी आर्य	पुस्तकालयाध्यक्ष
श्री ज्वाला प्रसाद आर्य	अधिष्ठाता आर्यवीर दल
श्री रामकृष्ण आर्य	आय-व्यय निरीक्षक

दिनाक २४।४।८६ को आर्य समाज रमा कालोनी खण्डवा म० प्र० का वार्षिक चुनाव पं० रामचन्द्र जी आर्य (अध्यक्ष) एव कैलाश पालीवाल (मन्त्री) आर्यसमाज शिवाजी चौक की अध्यक्षता मे सर्वानुमति मे निर्विरोध सम्पन्न हुआ।

सरंक्षक	श्री हीरालाल आर्य
प्रधान	एम० एम० चौधरी
मन्त्री	अनोखी लाल आर्य
कोषाध्यक्ष	पी० एम० गढ़वाल
प्रचार मंत्री	प्रदीप सोहनी

R. N No. 32387/77 Post in N.D.P.S.O. on 15, 16-5-86 Licenced to post without prepayment, Licence
र.जि० नं० डी० (सी०) ७५६ पूर्व भुगतान बिना भेजने का लाइसेंस न

(पृष्ठ २ का शेष)

कर जोर से हुकार किया और कहा कि मूर्ख तू मुझे भय दिखाता है। यदि मैं ऐसे हीं भय खाता तो देश मे घूमकर खण्डन कैसे करता ? और ललकारकर बोले कोई है ? किवाड़ बन्द कर दो। इसे मैं अकेला ही पीट सकता हू। महाराज की हुंकृति से ही वह दुष्ट और उस के साथी भय मे कापने लगे।

इसी छोटूगिरी ने एक दिन दो गुंडो को स्वामी जी को पीटने भेजा। वे जाकर स्वामी जी के पास बैठ गए। उस समय स्वामी जी प० रामप्रसाद को कुछ शास्त्र की बाते बता रहे थे। वे गुण्डे बीच-बीच में हसने और व्यंग्यपूर्ण बाते करने लगे। एक दो बार महाराज ने उन्हें सभ्यता-पूर्वक और कोमल शब्दो मे रोका परन्तु वे न माने। तब महाराज ने उठकर ऐसा हुंकार किया कि दोनों भय से कापकर भूमि पर गिर पड़े। यहा तक कि उन का मूत्र पुरीष भी निकल गया और सज्ञा रहित हो गए। प० रामप्रसाद को भी यह हुंकारनाद इतना असह्य हुआ कि उन्होंने अपने कानों में उगलिया डाल दीं। जब दोनों गुण्डों को जल के छीटे देकर होश में लाया गया और स्वामी जी ने उन्हें उचित शिक्षा देकर विदा किया। □

जरूरत

आज देश को मानवता की
इन्सान को इन्सान के प्यार
इस बिगड़ते वातावरण में,
मनुष्य खो गया।
चांद तक पहुंच गया,
लेकिन नैतिकता से पिछड़
आपस मे मेल मिलाप की स

आज देश को मानवता की ज
भाई भाई के खून का प्यासा
इस खून की प्यास जो है उसे

अगर शान्ति चाहते हो तो,
आपस का भेद मिटाओ
खुद जिओ और दूसरों को भी
दंगा फसाद छोड़ दो,
मित्रता को बढ़ा लो।
नही तो मिट जाओगे दुनिया
रहेगा न कुछ तुम्हारे पास।
पछताओगे तुम बैठ करके जार
इस ओ३म् नाम के साथ ही,
शान्ति ही मिलेगी।
वेदों के पाठ से ही शांति ही मि

—श्रीमती

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन : ३१०१५० के लिए डा० धर्मपाल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा
वैदिक प्रेस, गली नं० १७, ज्वालानगर, दिल्ली-११ में मुद्रित। रजि० नं० डी० (सी०) ७५६

वर्ष १० : अंक २७ | रविवार, १ जून, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ | ज्येष्ठ २०४३ | दयानन्दाब्द—१६१

मूल्य एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश में ५० डालर, ३० पौंड

लाला रामगोपाल शालवाले ने पंजाब में क्या देखा

पिछले दिनों सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान लाला रामगोपाल शालवाले अन्य प्रदेशों के कई प्रमुख आर्य समाज के नेताओं के शिष्ट मण्डल को लेकर पंजाब दौरे पर गए थे। लाला जी के नेतृत्व में यह दल पंजाब के सभी प्रमुख नगरों और उग्रवादग्रस्त देहाती क्षेत्रों में भी गया और वहां के उद्योगपतियों, व्यापारियों और कृषकों से मिला। इस शिष्ट मण्डल का मुख्य उद्देश्य उन लोगों से मिलना और उन के विचार प्राप्त करना था जो पिछले कुछ समय से पंजाब में हो रही हिंसा का शिकार हुए हैं। पंजाब में कई स्थानों पर इस दल ने जनसभाओं को भी सम्बोधित किया।

अपने पंजाब दौरे से वापिस आने के पश्चात् लाला रामगोपाल शालवाले ने प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी को एक पत्र लिखा है। लाला जी ने पंजाब में क्या देखा और अपने प्रधानमन्त्री को भेजे खत में उन्होंने क्या लिखा? इस सम्बन्ध में पाठकों की जानकारी के लिए लाला जी द्वारा प्रधानमन्त्री को भेजे खत की कापी पेश करने जा रहा हूं।

प्रिय श्री राजीव गांधी

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का एक अध्ययन दल हाल ही में पंजाब प्रांत का १५ से २१ मई तक दौरा करके वापस लौटा है। इस दल में भारत के विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधि नेता सम्मिलित थे। यह दल सभी प्रमुख नगरों और उग्रवादग्रस्त देहाती क्षेत्रों में गया और वहां के उद्योगपतियों, व्यापारियों और कृषकों से मिला था, जो पिछले कुछ समय से पंजाब में हो रही हिंसा का शिकार हुए हैं। कई स्थानों पर इस दल ने जनसभाओं को भी सम्बोधित किया।

इस दल की यात्रा का मुख्य उद्देश्य पंजाब की सही स्थिति का पता लगाना था और वहां की जनता को इस तथ्य से अवगत कराना था कि इस समय देश की सुरक्षा और अखण्डता को बचाना ही उन सबका प्रमुख कर्त्तव्य है और इसके लिए उन्हें साम्प्रदायिक सद्भाव कायम रखकर उन शक्तियों से लड़ना है, जो देश को विघटित करके उसे कमजोर बनाना चाहती हैं। दल के वक्ताओं ने अपने भाषणों में उस भय और आतंक की चर्चा भी की जो इस समय पंजाब के सीमावर्ती क्षेत्रों में रहने वाले हिन्दुओं में फैला हुआ है। उन्हें यह धमकियां दी जा रही हैं कि यदि वे पंजाब छोड़कर नहीं गए तो उन्हें मार दिया जाएगा और उनकी स्त्रियों को बेइज्जत किया जाएगा आदि।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का यह उपरोक्त दल परिस्थिति के संदर्भ में आप से निवेदन करता है कि भारत सरकार पंजाब की समस्या पर निम्न तथ्यों को ध्यान में रखते हुए विचार करके तुरंत प्रभावी कदम उठाए अन्यथा पंजाब की स्थिति और भी अधिक खराब हो सकती है।

१. बरनाला सरकार अपने आप को 'पंथ सरकार' कहकर प्रचारित करती है। इस समय पंजाब के शासन में मुख्यमंत्री अथवा राज्याध्यक्ष के आदेशों का कोई प्रभाव नहीं है। वहां तो केवल सिख ग्रंथियों और दूसरे पंथक नेताओं की ही बात मानी जाती है। प्रकारान्तर से पंजाब पर उन्हीं का शासन है। यह परिस्थिति भारतीय संविधान की मूल भावनाओं के एकदम विपरीत है। भारतवर्ष एक धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र है जहां किसी भी धर्म विशेष पर आधारित सरकार का कोई स्थान नहीं है। सार्वदेशिक सभा का विचार है कि पंथ सरकार की भावना और कार्य उन खालिस्तान समर्थक तत्त्वों से अलग नहीं है जो सरेआम राज करेगा खालसा की आवाजें लगा रहे हैं। हिन्दुओं को अब वहां विदेशी समझा जा रहा है और इस प्रकार के हालात पैदा किए जा रहे हैं जिस से उनका पंजाब में रहना असंभव हो गया है।

२. सार्वदेशिक सभा ने अनुभव किया है कि पंजाब के हिन्दुओं में बरनाला सरकार के प्रति कोई विश्वास नहीं रह गया है। कानून और व्यवस्था बनाए रखने वाला प्रशासनिक तंत्र अप्रभावी सिद्ध हुआ है जिसका मूल कारण उसमें निष्ठापूर्वक अपना उत्तरदायित्व पूरा करने की इच्छा का अभाव है। बरनाला स्वयं जानते हैं कि उनकी सरकार के बहुत से मंत्री उग्रवादियों के समर्थक और हित चिंतक हैं।

३. गत १२ मार्च से २६ मार्च तक उग्रवादियों और उन के समर्थक लगभग २० हजार लोगों ने बटाला शहर का घेराव किया था। पास के सोजेवाल गांव में ब्राह्मण कृषकों तथा हिन्दू जमींदारों की हत्या की गई। अमृतसर जिले के पट्टी और तरनतारण कस्बों में भी बहुत से व्यापारी मारे गए। इन घटनाओं से हिन्दुओं का मनोबल बिल्कुल टूट चुका है। यदि स्थिति पर तुरन्त नियंत्रण न किया गया तो हिन्दुओं का सामूहिक पलायन कभी भी शुरू हो सकता है। कुछ व्यापारी तथा किसान अपना घर-बार छोड़कर इस समय तक पंजाब से अन्यत्र चले भी गए हैं।

४. भारत पाकिस्तान सीमा पर तस्करी का धंधा करने वाले लोग बड़े ट्रांसपोर्टरों से पैसा लेते हैं और पंजाब पुलिस इनमें से अधिकांश को जानती भी है। यह लोग पाकिस्तान से पैसा और हथियार भारत में लाकर उग्रवादियों को देकर उनकी सहायता करते हैं। पुलिस इन तस्करों के खिलाफ कोई कदम उठाने में डरती है।

५. पिछले चार वर्षों में पंजाब की हिन्दू जनता भयंकर हत्याकाण्डों के दौर से गुजरी है। सार्वदेशिक सभा का यह प्रतिनिधि मण्डल जहां-जहां भी गया वहां के रहने वाले पुरुषों और स्त्रियों ने अत्याचारों की करुण कहानी उसे सुनाई। सब के मुख पर एक प्रश्न था कि इन हत्याओं और अत्याचारों का कभी अन्त होगा भी या नहीं? क्या उन्हें पंजाब से निकालकर किसी अन्य सुरक्षित स्थानों पर भेजने का प्रबन्ध किया जाएगा या नहीं? यह दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि दल के सदस्यों के पास जनता के इन ज्वलंत प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं था।

सभा का मन्तव्य है कि विदेशों में विशेषकर इंग्लैंड, अमरीका, कनाडा, आदि देशों में रहने वाले कुछ महत्त्वाकांक्षी सिख राजनेताओं ने भारत के अन्दर रहने वाले पंजाबी समुदाय में यह भ्रान्ति फैलाने में सफलता प्राप्त कर ली है कि खालिस्तान की स्थापना सम्भव है, केवल थोड़े से बलिदान से वे अपने इस लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। यह तो प्रत्यक्ष रहस्य है ही कि पाकिस्तान इस

(शेष पृष्ठ ५ पर)

सम्पादक—यशपाल 'सुधांशु' एम० ए० | व्यवस्थापक—डा० गणेशीलाल | प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल

प्रेरक प्रसंग

प्रस्तोता—सत्यानन्द आर्य

: १ :

बरेली में लाला लक्ष्मीनारायण की कोठी पर एक दिन स्वामी दयानन्द पुराणों की कथाओं की समालोचना करते हुए कहने लगे कि इन ग्रन्थों के कर्ताओं ने कुन्ती आदि कन्याओं पर कितने कपोल-कल्पित कलंक मढ़े हैं। तारा और दामोदरी पर कैसे मिथ्या आरोप किये हैं। स्वामी जी के कथन में उपहास-रस इतना रहता था कि व्याख्यान चाहे जितना लम्बा हो, किसी को खलता न था। किसी का भी जी उकता न था। कभी-कभी तो सारा सभा हाल समुद्र हंसी से झकझोरा खाने लग जाता था। पुराणों की समालोचना पर पादरी महाशय कलेक्टर और कमिश्नर महाशय तथा अन्य योरोपीय सज्जन जी खोलकर हंसते रहे। थोड़ी देर में ही स्वामी जी ने कहा—'यह तो हुई पौराणिकों की लीला, अब किरानियों की सुनिये। ये ऐसे हैं कि कुमारी के पुत्र होना बताते हैं और उसका दोष सर्वज्ञ शुद्ध स्वरूप परमेश्वर पर लगाते हैं। यह घोर कर्म करते, ये लोग तनिक भी लज्जित नहीं होते।" यह सुनकर कमिश्नर महाशय का चेहरा कोपावेश तमतमा उठा। स्वामी जी उसी वेग में व्याख्यान देते चले गये और अन्त तक ईसाई मत पर ही बोलते रहे।

अगले दिन कमिश्नर महोदय ने लाला लक्ष्मीनारायण को बुलाकर कहा—"आप पण्डित जी को कह दीजिये कि अधिक कठोर खण्डन से काम न लिया करें। हम ईसाई पुरुष तो सभ्य और सहनशील हैं, परन्तु अशिक्षित हिन्दू और मुसलमानों में उत्तेजना फैल गई तो पण्डित दयानन्द के व्याख्यान बन्द हो जायेंगे।"

लाला महाशय (खजान्ची) ने जब देखा कि घूम घामकर विपत्ति उन्हीं के सिर पर आ पड़ी है तो वे बहुत घबराये। अन्त में वे स्वामी दयानन्द के पास हिम्मत करके गये और डरते-डरते निवेदन किया, "महाराज यदि कठोरता से काम न लिया जाये तो क्या हर्ज है? इससे असर भी अच्छा पड़ता है और अंग्रेजों को नाराज करना भी अच्छा नहीं है इत्यादि।" इस पर महाराज हंसे और बोले, "अरे क्या बात थी जिसके लिए गिड़गिड़ाता है, और इतना समय खराब किया, साहब ने कहा होगा तुम्हारा पण्डित सत्य बोलता है, व्याख्यान बन्द हो जायेंगे। यह होगा, वह होगा। अरे भाई मैं हव्वा तो नहीं कि तुझे खा लूंगा। उसने तुझ से कहा, तू मुझसे सीधा कह देता। व्यर्थ इतना समय क्यों गंवाया। विश्वासी पौराणिक हिन्दू बैठा था बोला देखा यह तो कोई अवतार हैं, दिल की बात जान लेते हैं।

अगले दिन व्याख्यान आत्मा के स्वरूप पर था। जब स्वामी सार्वजनिक भवन में पधारे तो वह श्रोताओं से खचाखच भरा हुआ था पादरी स्काट को छोड़कर पहले दिन वाले सभी योरपीय सज्जन उपस्थित थे। महाराज ने व्याख्यान में आत्मा के गुणों का वर्णन करते हुए सत्य पर बल देते हुए कहा—"लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो। कलेक्टर क्रोधित होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा। अरे चक्रवर्ती राजा क्यों न अप्रसन्न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे!" इसके बाद उस उपनिषद् वाक्य को पढ़कर जिसमें लिखा है कि न आत्मा का कोई हथियार छेदन कर सकता है और न उसे आग जला सकती है, गर्जती हुई आवाज में बोले, "यह शरीर तो अनित्य है। इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है। इसे जिस मनुष्य का जी चाहे नष्ट कर दे।" फिर चारों ओर अपनी तीक्ष्ण ज्योति डालकर सिंहनाद करते हुए फरमाया, "लेकिन वह सूरमा-वीर पुरुष मुझे दिखलाओ, जो यह दावा करता है कि वह मेरे आत्मा का नाश कर सकता है। जब तक ऐसा वीर इस संसार में दिखाई नहीं देता, मैं यह सोचने के लिए भी तैयार नहीं हूं कि मैं सत्य को दबाऊं या नहीं?"

: २ :

डा० स्वामी सत्यप्रकाश जी पिछले दिनों अमृतसर आर्यसमाज में कई दिनों से वेदों, उपनिषदों पर कथा कर रहे थे, समाज के अधिकारी व श्रोतागण बड़े ध्यान मग्न होकर सुनते थे। स्वामी जी ने यह महसूस किया कि उनके सुनने वालों में कुछ लोग मांसाहारी हैं तो अपने प्रवास के अन्तिम दिन उन्होंने उसी विषय को लेना उचित समझा तथा वेदों के आधार पर अण्डे व मांस के उपयोग पर कस कर प्रहार किया तथा उससे होने वाले शारीरिक मानसिक तथा आध्यात्मिक हानियों का उल्लेख किया।

कथा के बाद समाज के एक अधिकारी (जो सम्भवतया शाकाहारी न थे) ने स्वामी जी से कहा "आज की कथा में मजा नहीं आया। स्वामी जी ने विनोद में कहा कि पिछले दिनों की कथा में आपके ग्रहण करने लायक कुछ था ही नहीं आप अन्य कर्ण रस का सेवन करते थे। आज आपको कुछ करने के लिए कुछ त्यागने के लिए प्रेरित किया गया था ताकि पिछले दिनों की कथा के आध्यात्मिक गुणों को आप ग्रहण कर सकें। आपके कथा में मात्र शामिल होने से कोई आपके पाप कटने वाले नहीं। आपका आना निरर्थक है अगर आप स्वयं के जीवन को वेदानुकूल बना सको तथा अपने पाप (मांस सेवन आदि) न करने का संकल्प न ले सको।

: ३ :

लाहौर निवासी पं० कृष्णनारायण ने स्वामी दयानन्द से मांस भक्षण पर कुछ प्रश्नोत्तर किये। स्वामी जी ने कहा कि मांस भक्षण वेद विरुद्ध है। पंडित जी ने कहा मांस भक्षण से कोई हानि होती हुई प्रतीत नहीं होती? स्वामी जी बोले कि ईश्वराज्ञायें हमें लाभदायक हैं और उनका उल्लंघन हानिकारक मांस भक्षण शरीर के लिए हानिकारक न भी हो, परन्तु आत्मोन्नति के लिए अवश्य हानिकारक है। मांसाहारी को योग सिद्धि नहीं हो सकती और वह ईश्वर का साक्षात्कार नहीं कर सकता। स्वामी जी ने कहा कि यदि आपको विश्वास न हो तो मैं आपको एक योग विधि बताता हूं। निरामिष भोजन कीजिए और ४० दिन तक उसका अभ्यास कीजिए। पंडित जी ने बताया कि मैंने ३० दिन तक उस विधि को किया तो मेरे शारीरिक बल और स्वास्थ्य में वृद्धि हो गई। जिसके आनन्द का मैं शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता मेरा मस्तिष्क प्रकाश युक्त हो गया। परन्तु ३१ वें दिन मैंने मांस खा लिया, जिससे तुरन्त ही मेरा मस्तिष्क अन्धकारमय हो गया और जो कुछ प्राप्त किया था सब जाता रहा।

: ४ :

एक गांव में एक लड़का था। नाम था नन्हे। वह बहुत ही गरीब था। वह हर रोज अपने दोस्तों के साथ गंगा नदी पार करके स्कूल जाया करता था।

एक दिन उसके पास केवल दो ही पैसे थे। नाविक शुरू में ही किराया वसूल करता था। जब उसने नन्हे से पैसे मांगे तो उसने कहा, "आज मेरे पास केवल दो ही पैसे हैं। वैसे भी मैं बहुत गरीब हूं। यदि ये पैसे मैं आपको दे दूंगा तो दोपहर में खाने के लिए कुछ भी नहीं बचेगा।" लेकिन उसकी बात सुनने के बावजूद नाविक ने उसे नाव से उतर जाने के लिए विवश किया।

नन्हे किसी भी कीमत पर स्कूल जाना चाहता था। अतः अपनी पुस्तक एक मित्र को देकर वह नदी की तेज धारा में कूद पड़ा। छोटे नन्हे के साहस को देखकर सभी लोग आश्चर्य चकित रह गए। पर उसने तैरकर नदी पार कर ली। वह नन्हे वही लालबहादुर शास्त्री थे, जो बाद में चलकर देश के प्रधानमंत्री बने थे।

: ५ :

रविवार का दिन था। उस दिन सवेरे-सवेरे ही एक ईसाई सज्जन दीन बन्धु एंड्रूज से मिलने आए। बातें होने लगीं। बातों ही बातों में २ बज गये।

दीन बन्धु एंड्रूज ने जब घड़ी देखी तो क्षमा मांगते हुए बोले, क्षमा कीजिये, मुझे गिरजाघर जाना है।

उस सज्जन ने कहा, "गिरजाघर तो मुझे भी जाना है। अच्छा साथ रहेगा।"

'पर मैं आपके वाले गिरजाघर नहीं जा रहा, दीनबन्धु एंड्रूज बोले।"

'फिर आप पूजा कहां करेंगे?" उस सज्जन ने आश्चर्य से पूछा।

दीनबन्धु मुस्कराये और उस सज्जन को साथ आने को कहा। वह उन्हें लेकर शहर की साफ सुथरी गलियों को छोड़ते हुए एक हरिजन बस्ती की एक झोंपड़ी में जाकर घुस गए। वहां एक बूढ़ा खाट पर लेटे हुए १०-१२ साल के बच्चे को पंखा झल रहा था।

दीनबन्धु ने बूढ़े के हाथ से पंखा ले लिया और बोले, "बाबा, अब आप जाओ।" बूढ़े के जाने के बाद वह उस सज्जन से बोले, "यह बालक अनाथ और तपेदिक का मरीज है। पड़ोस का यह बूढ़ा ही इसकी देखभाल करता है। पर इसे १० से २ बजे तक काम पर जाना होता है। इस बीच मैं इसकी सेवा करता हूं। ४ घंटे के बाद यह बूढ़ा वापस आ जाता है। यही मेरी पूजा है और यही झोंपड़ी मेरा गिरजाघर है।

भारत के प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी के नाम खुला पत्र

राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के वायदे का क्या हुआ ?

निवेदन यह है कि राष्ट्ररत्न इन्दिरा गांधी जी अपने जीवन के अन्तिम पांच वर्षों में मुस्लिम तुष्टीकरण एवं अल्पसंख्यक तुष्टीकरण की जिस नीति का परित्याग कर दिया था और खुलेआम घोषणा की थी कि भारतवर्ष में अल्पसंख्यकों को जितने अधिकार प्राप्त हैं, विश्व के किसी भी अन्य देशों में नहीं हैं। अभी-अभी मैं राजस्थान और मध्यप्रदेश के कई स्थानों से होकर आया हूं, वहां पर पहले जनता में १० में से ६ आपका पक्ष लिया करते थे और आपकी बड़ी प्रशंसा किया करते थे। आज हिन्दू समुदाय में १० के १० लोग आपको चन्द उन लोगों को छोड़कर जिनकी रोटी, रोजी और वर्दी आपके ऊपर निर्भर करती है, सब के सब आपकी निन्दा कर रहे हैं और आपकी नीति के विरोधी बन गये हैं।

मुस्लिम महिला विधेयक लाकर आपको क्या मिला। हिन्दुओं का विरोध पढ़े लिखे मुसलमानों का विरोध, मुस्लिम जाति की बहुसंख्यक महिलाओं का जो तलाक से दुःखी हैं, उनकी बददुआयें। आपके इस बिल को पास कराने से आप इधर के न उधर के, कहीं के नहीं रहे। हिन्दू समाज में आपके प्रति विश्वास खत्म हो रहा है, और मुसलमान भी जो पढ़े लिखे हैं, आपका साथ देने को तैयार नहीं हैं।

आज तक कांग्रेस के इतिहास में, जो कभी नहीं हुआ वह भी आपने लालकटोरा इन्डोर स्टेडियम में मुसलमानों को इकट्ठा करके, उनसे भाषण कराकर कर दिखाया है। क्या आप कांग्रेस के सारे जीवन में कहीं यह साबित कर सकते हैं, किसी सम्प्रदाय को विशेष सम्मेलन करके, उसके हित की बात की हो। क्या यही राष्ट्रियता है? जिसका आप ढिंढोरा पीट रहे हैं। स्वर्गीय सरदार पटेल जी से एक बार किसी ने पूछा था कि भारत में कितने मुसलमान राष्ट्रवादी हैं, उन्होंने उसका उत्तर दिया था कि बस एक ही राष्ट्रवादी मुसलमान है और वह है जवाहर लाल नेहरू।

ऐसा लगता है कि आपके परामर्श दाता आपको गलत दिशा में ले जा रहे और आपकी गुप्तचर एजेंसियां भी आपको ठीक दिशा निर्देशन नहीं कर रहीं। जनता में विशेषकर हिन्दू समाज में आपके प्रति अनिष्ठा की भावना पैदा हो गयी है, उसका स्पष्ट प्रमाण भारतीय जनता पार्टी का दिल्ली में सफल अधिवेशन है। आपकी इन नीतियों से ही मुर्दा पार्टी में जान पड़ गयी है। यदि यही नीति जारी रही तो जहां देश की एकता के लिए खतरा साबित होगी वहां कांग्रेस (आई) पार्टी को भी ले डूबेगी।

आपके द्वारा देश की एकता और अखण्डता का नारा देने से तथा इस दिशा में ठोस कार्य करने का वचन देने से आर्य समाज ने सारे भारतवर्ष में लगभग ४० हजार कार्यकर्ताओं को लगाकर (कांग्रेस आई) के चुनाव प्रचार में दिन रात एक करके लोगों को राष्ट्रियता और हिन्दुत्व का वास्ता देकर कार्य किया, जिसके परिणाम स्वरूप हिन्दुओं पर काफी असर पड़ा और उन्होंने तीन चौथाई बहुमत देकर आपको प्रधानमन्त्री के आसन पर बिठाया है। मेरा दावा है कि चुनाव प्रचार में दिल्ली में तथा देश के अन्य स्थानों में मैंने स्वयं जा जाकर देखा है कि मुसलमानों ने आपको १० प्रतिशत और सिक्खों ने आपको २ प्रतिशत मत भी नहीं दिया और हिन्दुओं ने आपको ८० प्रतिशत से भी ऊपर मत देकर विजयी बनाया है। यदि आज के वर्तमान समय में चुनाव हो जाये तो हिन्दुओं का २० प्रतिशत मतदान भी मिलना आज की परिस्थिति में आपको मिलना कठिन हो जाये, उसका क्या परिणाम होगा, यह आप भी सोच लें।

हम आपके हितैषी हैं, हमें आपसे किसी प्रकार की गद्दी, मैम्बरी चपड़ासीगिरि भी नहीं चाहिए और न ही आर्यसमाज के किसी कार्यकर्ता को किसी प्रकार का लालच है। आपकी प्रतिष्ठा को गिरते हुए देखकर, तथा राष्ट्रवादी तत्वों को बढ़ते देखकर हमें दुःख होता है। क्योंकि आपको विजयी बनाने में हमारा भी हाथ है, आप के साथ हम भी निन्दा के पात्र बन रहे हैं।

यह पत्र मैं आपको इसलिए लिख रहा हूं कि हम नहीं चाहते कि सारे उत्तर भारत में और दक्षिण में भी कई स्थानों पर हिंन्दू आपसे मुख मोड़कर अन्य किसी राजनीतिक पार्टी में मिल जायें।

अतः मेरा आपसे नम्र निवेदन है कि आप इस पत्र पर गम्भीरता से विचार करेंगे और समय रहते भारतरत्न वीरांगना इन्दिरा गांधी जी की तरह मुस्लिम एवं अल्पसंख्यक तुष्टीकरण की नीति का परित्याग करेंगे।

समय की मांग है कि जिस राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के नारे को लेकर आपने चुनाव जीता था, उस पर आप स्थिर रहें और सच्चे मायनों में असाम्प्रदायिक समाजवादी जनकल्याणकारी भारत के निर्माण में यदि आप लगेंगे तो मैं आपको विश्वास दिलाता हू आर्यसमाज के साथ साथ सारे हिन्दू जगत का प्रबल समर्थन आपको प्राप्त होगा।

धन्यवाद,

भवदीय
ओमप्रकाश आर्य
मन्त्री
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा [पंजी]
१५ हनुमान रोड, नई दिल्ली-१

---

२८ मई १९८६ को जिनका जन्मदिवस है

सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत

स्वातन्त्र्य वीर सावरकर

नरेन्द्र अवस्थी

क्रान्तिकारियों के मुकुटमणि, महान् विचारक एवं राष्ट्र निर्माता स्वातन्त्र्य वीर सावरकर का नाम अधरों पर आते ही हर देशवासी का मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है। वह दिव्य दृष्टि के कवि, विस्फोटक गद्य लेखक, ओजस्वी स्वतन्त्र, निर्भीक समाज सुधारक, अद्वितीय राजनीतिज्ञ और मातृभूमि के लिए आत्मोत्सर्ग करने वाले नेता थे। सच तो यह है कि वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। अन्धविश्वास और रूढ़िबन्धन उन्हें छू तक नहीं गया था। उनका निर्भीकता साहस जहां उनके जीवन की विभिन्न घटनाओं को झलकाता है, वहां उनके वक्तव्य, काव्य, लेखों में प्रत्येक शब्द स्फुलिंग बनकर झरता था। वे प्रत्येक समस्या पर भावकता में बहने की बजाए उस पर गम्भीरता से विचार कर उसका वैज्ञानिक और तर्कसम्मत समाधान प्रस्तुत करते थे। उनकी यह आस्था थी कि अन्धविश्वास ही भारत पतन के मूल कारण रहे हैं।

उन्होंने लिखा है—'कितने दुख की बात है कि बीसवीं शताब्दी में भी अन्धविश्वास हमारे देश में वैसे ही चल रहे हैं। हमने अंग्रेजों के हाथों अपना सब कुछ विनष्ट होने दिया, केवल अन्धविश्वासों के खजाने को छोड़कर। वे आगे लिखते हैं कहीं भूकम्प आता है, हम प्रार्थना करने दौड़ते हैं। कोई देशभक्त बीमार पड़ जाता है, हम-आगे-आगे प्रार्थना सभा में जाते हैं। देश में महामारी फैलती है, हम उसे दूर करने के लिए बकरों की बलि देने लगते हैं। जब हमें इन आपदाओं के कारण का पता नहीं था, तब उस समय सब ठीक था। परन्तु आज जब विज्ञान ने हमें इन कारणों की जानकारी दी है उसी ढंग से अन्धविश्वासों पर चलना सरासर मूर्खता है।

सामाजिक सुधार के लिए केवल बौद्धिक चिन्तन तक ही अपना कार्यक्षेत्र सीमित न रखकर सन् १९२६ में रत्नगिरि में पतित पावन मन्दिर का निर्माण करके छुआछूत की भावना पर करारा प्रहार किया। उन्होंने मन्दिर के पुजारी के स्थान पर एक हरिजन को नियुक्त करके जाति-पांति की खाई को पाटने का प्रयास किया। समस्त हिन्दुओं को एकता के सूत्र में पिरोने के लिए उन्होंने महान् ग्रन्थ 'हिन्दुत्व' की रचना की, जिस की प्रशंसा में आर्यसमाज के महान् नेता स्वामी श्रद्धानन्द ने लिखा था कि इस ग्रंथ को पढ़कर आभास होता है कि वीर सावरकर में वेदों की अभिव्यक्ति करने वाली किसी आदि ऋषि की आत्मा अवतरित हुई है।

गणेशोत्सव में कथित अछूतों को भाग लेने की मनाही थी उन्होंने उसमें भाग लेने की अनुमति दिलाई। १९२६ में रत्नगिरि के विनोबा मन्दिर में अछूतों को प्रवेश दिलाया। रत्नगिरि जिले में यह सब से महत्वपूर्ण मन्दिर था। यह घटना इतनी उत्तेजना पूर्ण थी कि डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को विशेष आदेश दिया गया था कि वह स्वयं वहां उपस्थित होकर स्थिति को नियन्त्रण में रखें। रूढ़िवादी हिन्दुओं के घोर विरोध के बावजूद वीर सावरकर ने एक सहभोज का आयोजन किया जिसमें छूत-अछूत सभी बुलाए गए। अछूत कहे जाने वाले लोग ऊंची जातियों के साथ खाने को तो उत्सुक थे लेकिन आपस में उपजाति के लोगों के साथ बैठकर खाने को तैयार नहीं थे। रत्नगिरि की यह घटना भारत के सामाजिक इतिहास में अतुलनीय है। इस सहभोज में क्षत्रिय, वैश्य, ब्राह्मण, हरिजन सभी ने एक साथ बैठकर खाना खाया।

वीर सावरकर हरिजन बस्तियों मे जाकर उनके जीवन का अध्ययन करते तथा उन्हें स्वच्छता से रहने का उपदेश देते थे। स्त्री शिक्षा के प्रबल पक्षपाती सावरकर राष्ट्र के उत्थान में स्त्री शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण मानते थे। उनका कहना था कि स्त्रियों के लिए ऐसी शिक्षा का कार्यक्रम बनाया जाना चाहिए जो उनकी प्रकृति के अनुकूल हो। अपने सौंदर्य की रक्षा करना स्त्री का पहला कर्तव्य है। जिस राष्ट्र मे माताएं सुन्दर और स्वस्थ होंगी। उसी अनुपात से वह राष्ट्र शक्तिशाली व स्वस्थ होगा। अत

(शेष पृष्ठ ८ पर)

ईश्वर एवं मनुष्य स्वभाव

लेखक—कवि सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर

★

ईश्वर का निजी नाम ओ३म् है। शरीर में जहां आकर ओ३म् की प्राप्ति होती है, बस वहां ही पूर्णता मिलती है, वहां जाकर समस्त विरोध शान्त हो जाते हैं। सकल द्वन्द्वों के समाधान में उपनिषद् ने उस परम पूर्ण का दर्शन किया है, अर्थात् जो आत्मा में ही नित्य स्थिर है, वह जानने योग्य है, उनके परे जानने योग्य कुछ भी नहीं रहता।

'ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा, युक्तात्मानं सर्वमेवाविशन्ति।' वे धीर पुरुष युक्तात्मा होकर ही सर्वव्यापी को सकल दिशाओं से प्राप्त करके सर्वत्र प्रवेश करते हैं। केवल आत्मा से आत्मा को ही नहीं देखना—देखना सर्वत्र है। वे 'भूर्भुवः स्वः' पृथ्वी अंतरिक्ष आकाश की सृष्टि कर रहे हैं और दूसरी ओर हमारी धी बुद्धि को प्रेरणा दे रहे हैं दोनों में से किसी को छोड़कर वह नहीं रहते। एक ओर विद्या और दूसरी ओर अविद्या, एक ओर ब्रह्मज्ञान दूसरी ओर संसार, इन दोनों का ही यहां समाधान होता है, वहां ही हमारे आत्मा की स्थिति है। वह दूर भी है निकट भी है, वह चलते भी हैं और नहीं भी चलते, सब के अंदर भी हैं और बाहर भी हैं।

'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतो अयमग्निः' वहां सूर्य का प्रकाश काम नहीं देता, न चन्द्र तारागण का, न उस विद्युत का ही, फिर अग्नि की कौन कहे। उनके प्रकाश से ही सब प्रकाशमान होते हैं, और अपनी आभा से ही सब विभाते हैं, वह अद्वितीय हैं वह एक हैं। वह तुम और मैं को एक करके रखते हैं, इसलिये वह हैं अद्वैतम्।

पहले मनुष्य, जहां कुछ भी अद्भुत देखते थे वहां ईश्वर की कल्पना करते थे, जैसे जल झरना, ज्वालामुखी, पृथ्वी से अग्नि निकलना, वहीं पूजा का आयोजन करने लगते हैं, ऐसे ही मनुष्य में असामान्य लक्षण देखकर कल्पना कर ली और कहने लगे 'इस पर देवता आ गये हैं। क्रमशः जब अखण्ड विश्व नियमों की शिक्षा मनुष्यों को हुई तो पता चला, वे सृष्टि के सामान्य नियम हैं, असामान्य कुछ भी नहीं है। तब ही ब्रह्म के प्रसार को अखंड भाव में सर्वत्र व्याप्त देखने में उसे आनन्द प्राप्त होने लगा। तब ही मनुष्य का ज्ञान, प्रेम, कर्म में उसी विराट प्रभु को देखकर प्रसन्न हो गया।

यह दर्शन एक अनुभव है, ब्रह्म के सर्वत्र दर्शन का, स्वभाव में दर्शन का। परन्तु बहुत से मनुष्य, सब रूप त्याग कर एक विशेष रूप में, या सब मनुष्यों को त्याग कर किसी एक विशेष, मनुष्य में ईश्वर का दर्शन करना ही चरम पूजा समझते हैं।

इस तरह से मनुष्य किसी एक रस को, अति तीव्र बनाकर खड़ा कर सकता है। परन्तु क्या इतना ही हमारी साधना का लक्ष्य है, किसी प्रकार संकीर्ण उपायों द्वारा सम्मोहन को मेस्मेरेजम को, धर्म साधन का प्रधान अंग न बनाकर हमारा चित्त अपने स्वभाव, स्वास्थ्य से विच्युत होगा ही हमारा सन्तुलन बिगड़ जायेगा।

संयम का काम है, प्रवृत्ति को नियमित करना, इकट्ठा करना, इकट्ठा करने की इच्छा अत्यन्त उग्र हो उठती है। और मनुष्य शक्ति को बन्धन में रखना चाहती है, तो लोभ बनकर खड़ी हो जाती है। किसी मनुष्य के प्रति अति अनुराग जब हमें स्वभाव से हटा देता है, तो वह काम का रूप धारण कर लेता है, वहां काम हमारी ईश्वर प्राप्ति में बाधा देता है। इसलिए विकृति से मनुष्य चित्त का स्वभाव में उद्धार करना ही धर्मनीति की एकाग्र चेष्टा है। हमारे बीच पाप समग्र को क्षत करके किसी एक को ही बढ़ावा देता है। इस तरह वह अपने स्वभाव में सन्तुलन नहीं रहता, चारों दिशाओं और समाज के साथ हमारी एकता नष्ट हो जाती है।

ईश्वर साधना से भी क्या हम किसी एक भाव को किसी एक रस को, संकीर्ण अवलम्बन द्वारा अति मात्रा में आन्दोलित करके उठाने को ही क्या हम ठीक कहेंगे। उसी प्रकार भक्ति की उत्तेजना को उग्र नशे की तरह बनाने में मनुष्य की सार्थकता नहीं है। क्या हम ब्रह्म को उसी प्रकार पा सकते हैं जैसे घोड़ा, मोटर, लोटा थाली आदि।

परन्तु जो ब्रह्म को चाहता है। उसके माने यह हैं, बहुत से पीड़ित होकर एक को चाहता है, चंचलता द्वारा थककाता है, वह ध्रुव अर्थात जो सदा एक रस रहता है। 'ईशावास्यम् इदं सर्वम् यत्किंच जगत्याम् जगत्' जो कुछ भी है वह ईश्वर से आच्छादित है, अर्थात ढका हुआ, मानों तभी आत्मा को आनन्द मिलेगा। 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः।' जो प्रभु ने दिया है; उसी का भोग करे, किसी के धन का लोभ न करे। अर्थात् जो कुछ तुमने पाया है उसी का दिया हुआ है, उससे ही तुम्हें संतोष, तुम्हारी तृप्ति होनी चाहिए। ब्रह्म प्राप्ति के लिए हमें अपने को समर्पण करना पड़ेगा। उन्होंने तो हमें दे डाला, हमने अपने स्वार्थ अहंकार से अपने को छोटा बना लिया है और उनके विरुद्ध खड़ा किया है।

भगवान की उपासना करना, उन्हें प्राप्त करने के लिए अपने को दान करने की उपासना है, भक्ति द्वारा, क्षमा द्वारा, सेवा द्वारा, प्रेम में बाधाहीन रूप से व्याप्त कर देना ही उनकी उपासना है।

हमारा जितना दुख, जितनी वेदना है, वह इसलिए है, कि अपने अहं को हम मिटा नहीं पा रहे हैं। उनका ही आनन्द शक्ति रूप से सब छोटे बड़े कार्यों की चेष्टा प्रदान कर रहा है। मैं उन्हीं की शक्ति से कर्म कर रहा हूं, एवं भोग रहा हूं। उनके दान से ही, इस ज्ञान को जीवन में उतारना होगा। व्यक्तिगत स्वार्थ को समष्टिगत मंगल में परिणित करना केवल यंत्रवत जड़ शासन में घटित नहीं हो रहा इसमें प्रेम है। मनुष्य के मनुष्य से मिलन में एक रस है। स्नेह, प्रेम, दया हमारे परस्पर के योग को स्वेच्छावृत, आनन्दमय, अर्थात ज्ञान और प्रेम मय योग रूप में जाग्रत करता रहता है। माता इच्छा पूर्वक ही सन्तान की सेवा करती है, इसी तरह ज्ञानी प्रेम के द्वारा समाज का हित कर रहा है। समग्रता के बीच आनन्द है विच्छिन्नता में दुख और दुर्बलता। इसलिए आत्मा और परमात्मा का मिलन, ज्ञान, कर्म, प्रेम का मिलन है। इस मिलन में ही आनन्द का मिलन है।

हमारा विज्ञान समस्त वस्तुओं में एक सत्य वस्तु की खोज करता है। हमारा इतिहास समस्त घटनाओं में एक अभिप्राय को ढूंढता है, हमारा प्रेम समस्त सत्ताओं में एक आनन्द खोजता है, नहीं तो वह कहीं 'ओ३म्' नहीं कह सकता हो मिल गया नहीं कह सकता। यदि मैं अपनी ही प्रकृति पर ही जोर दूं तो मुझे धर्म की ओर नहीं ले जाती, अधर्म से नहीं छुड़ाती। इसलिए हे प्रभु मैंने निश्चय किया है कि आपको ही हृदय में रखूंगा, आप मुझे जिधर चलायेंगे उधर चलूंगा। अहंकार मुझे जिस पथ पर चलायेगा नहीं चलूंगा।

जब तक तुम आत्म समर्पण नहीं करोगे तब तक तुम्हारी हार जीत तुम्हारे सुख दुख, तरंग की भांति ऊंचे नीचे होते रहेंगे, केवल घुमाते ही रहेंगे, प्रत्येक का पूर्ण आघात तुम्हें सहना पड़ेगा। तुम्हारी नाव में उसकी हवा लगेगी, तब तरंग उठती रहेगी परन्तु तुम्हारी नाव हू हू करती बढ़ी चली जायेगी। वह तरंग आनन्द की तरंग होगी, फिर प्रत्येक तरंग तुम्हें नमस्कार करती रहेगी, और इस बात का प्रमाण देगी कि तुमने आत्म समर्पण कर दिया है।

एक पतली बेल जैसे पेड़ का अवलम्बन, सहारा लेकर ऊपर चढ़ती है, हम भी ईश्वर से जिन सम्बन्धों द्वारा मिलते हैं, वे एक ही प्रकार के नहीं हैं। हम उनका पिता भाव में सहारा ले सकते हैं, आश्रय ले सकते हैं, प्रभु भाव में भी, बन्धु भाव में भी। सकल प्रकार के भाव लेकर मनुष्य उन्हें प्राप्त कर सकता है।

ईश्वर को यदि प्राप्त करना चाहो तो उन्हें किसी न किसी सम्बन्ध द्वारा ही पा सकते हैं। नहीं तो वे केवल एक दर्शन के तत्त्व रह जायेंगे। न्याय शास्त्र का सिद्धान्त बन कर रह जायेंगे, हमारे अपने नहीं बन पायेंगे। वे केवल हमारी बुद्धि का तर्क का विषय नहीं हैं, प्रेम और श्रद्धा का विषय है।

वृक्ष के फल के स्वाद, गंध और शोभा देकर, उसे हमारा बना दिया है। वह मेरे हैं इसलिए फल में रस भर कर मुझे दिया है, नहीं फल नामक सत्य को मैं किसी प्रकार भी प्राप्त न कर सकता।

प्रभु तुम मेरे अपने हो, तुम मेरी माता हो, पिता हो, मेरे प्रभु हो, मेरी विद्या हो. मेरे धन हो, त्वमेव सर्वं मम देव देव।' इसी योग द्वारा, तुम में मुझ में विशेष भाव को देना लेना होगा। इस योग का मुझे सम्पूर्ण ज्ञान के सहित, सम्पूर्ण बल के सहित अवलम्बन करना चाहिए। इसलिये हमारी प्रार्थना है, हमारा नमस्कार आपको पहुंचे। हम नम्रता के साथ आत्म समर्पण में परिपूर्ण होकर आपके चरण युगल में लेट जायें। हमारा समस्त जीवन मानो आपके प्रति नमस्कार रूप में परिणित हो जावे।

हे पिता मैं आपका पुत्र हूं 'आत्मा वै जायते पुत्र, पुत्रः पिता का ही प्रकाश है। सन्तान के रूप में पिता ही सन्तान(उत्पन्न) होता है। इस प्रकार हमें जीवन में प्रभु प्रकाश धारण करना चाहिए। ☐

—शान्ति स्वरूप शर्मा
६४१३, मुकर्जी गली
गांधीनगर, दिल्ली-३१

प्रतिभा सम्पन्न छात्र

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक से सम्बद्ध, श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ के अन्तर्गत मार्च १९८६ की वार्षिक परीक्षा के ११।५।८६ को घोषित परिणाम के अनुसार दयानन्द वेद विद्यालय, दिल्ली का छात्र नरेन्द्र कुमार सर्वप्रथम ७४.६७%, गुरुकुल प्रभात आश्रम, मेरठ का छात्र यशपाल द्वितीय ७२.१०%, आर्य कन्या गुरुकुल नरेला, दिल्ली की छात्रा कु० निर्मला तृतीय ७०.८४% अंक प्राप्त कर अपने विद्यालय को गौरव प्रदान किया।

धीरानन्द

आर्यसमाज दीवान हाल दिल्ली शताब्दी की झलकियां

श्री ला० रामगोपाल शालवाले को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करते हुए श्री बलराम जाखड़।

राष्ट्रभृत यज्ञ में आहुति प्रदान करते हुए उपराष्ट्रपति श्री आर० वेंकट रमन, श्री ला० रामगोपाल शालवाले, श्री सोमनाथ मरवाह तथा ऋत्विज् प० राजगुरु, पं० यशपाल सुधांशु।

मुख्य समारोह में मंच पर बैठे हैं बायें से— श्री डा० धर्मपाल, महाशय धर्मपाल, श्री सोमनाथ एडवोकेट, श्री बलराम जाखड़, श्री रामगोपाल शालवाले, श्री सूर्यदेव एवं स्वामी दीक्षानन्द जी।

पंजाब में क्या…

(पृष्ठ १ का शेष)

विषय में खालिस्तान समर्थकों और उग्रवादियों की हर तरह की सहायता कर रहा है। उग्रवादी युवकों को पाकिस्तान में 'कमाण्डो ट्रेनिंग' दी जा रही है जिससे वे भारत में घुसकर तोड़फोड़ की कार्यवाही कर सकें और इस प्रकार देश में कानूनी अव्यवस्था फैलायें। विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि इस प्रकार से प्रशिक्षित हजारों युवक पाकिस्तान से भारत में आ चुके हैं।

बरनाला सरकार में इस विस्फोटक स्थिति का सामना करने का राजनैतिक साहस नहीं है। उसके बहुत से मंत्री उग्रवादियों के समर्थक और पृष्ठ पोषक हैं। यह बरनाला स्वयं भी जानते हैं। प्रशासनिक तंत्र एकदम अप्रभावी और निष्क्रिय सिद्ध हो चुका है।

प्रधानमंत्री के रूप में आप शायद यह हमसे अधिक ही जानते होंगे कि पाकिस्तान में उग्रवादियों को भारत में तोड़-फोड़ की कार्रवाई करने आदि के लिए प्रशिक्षित किया जा रहा है। उनके द्वारा पंजाब में खासकर सीमा से लगने वाले फिरोजपुर, अमृतसर और गुरदासपुर जिलों में जो आतंक फैलाया जा रहा है, उसके कारण वहां के हिन्दू किसी भी समय सामूहिक रूप से पलायन कर सकते हैं। सीमा पर पाकिस्तानी सेना की गतिविधियां इन दिनों तेज होती जा रही हैं। इस समय परिस्थिति वैसी ही बनती जा रही है जैसी कि १९६२ में चीन के भारत पर आक्रमण से पहले 'नेफा' क्षेत्र में थी। उस समय कमाण्डर-इन-चीफ जनरल थिमैया और जनरल थोरट की सामयिक चेतावनी पर किसी ने ध्यान नहीं दिया था और भारत को पराजय का अपमान झेलना पड़ा था।

सार्वदेशिक सभा अनुभव करती है कि पंजाब की स्थिति अब केवल कानून और व्यवस्था का प्रश्न न रहकर देश की सुरक्षा का प्रश्न बन गई है और इसका एकमात्र हल यही है कि सीमावर्ती क्षेत्र के तीनों जिले तुरन्त सेना को सौंप दिये जाएं। इस विषय में देर करना देश के लिए घातक सिद्ध होगा।

सार्वदेशिक सभा इस समस्या को हल करने में भारत सरकार की सहायता करने के लिए तैयार है। यह इतना ही चाहती है कि इस विषय में तुरन्त कार्यवाही की जाए अन्यथा पंजाब से हिन्दुओं का सामूहिक पलायन देश में प्रतिकूल प्रतिक्रिया पैदा कर सकता है जिससे देश की आंतरिक सुरक्षा और एकता खंडित हो सकती है।

भवदीय

रामगोपाल शालवाले प्रधान

मेरी अपनी व्यक्तिगत राय में लाला जी ने अपने उपरोक्त पत्र में श्री राजीव गांधी को जो भी लिखा है वह एक कटु सत्य है। वस्तुतः अपने इस पत्र में लाला जी ने पंजाब की वर्तमान परिस्थितियों की एक दर्दनाक और खतरनाक तस्वीर पेश की है।

—अश्विनी

—पंजाब केसरी से साभार

समाचार

निवेदन

वैदिक यतिमण्डल के संरक्षण में यतिमण्डल के कर्मठ सदस्य गुरुकुल आमसेना (उड़ीसा) के आचार्य एवं उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री स्वामी धर्मानन्द सरस्वती जी ने जोरदार ढंग से शुद्धि का कार्य शुरू कर रखा है। स्वामी जी ने गत फरवरी ८६ में पोप पाल के भारत आगमन पर भी एक विशाल शुद्धि समारोह गुरुकुल आमसेना में आयोजित किया था। अब पुनः जून के प्रथम सप्ताह में ५ हजार ईसाइयों को वैदिक धर्म में दीक्षित करने का कार्यक्रम है। यह कार्य अति परिश्रम एवं व्यय साध्य है। सभी वैदिक संस्कृति प्रेमी देशभक्त सज्जनों से अनुरोध है कि इस महत् कार्य में अधिक से अधिक सहायता देकर पुण्य के भागी बनें और विदेशी शक्तियों के षड्यन्त्रों के चंगुल से देश और अखण्डता की रक्षा में योगदान कर अपनी देशभक्ति का परिचय दें।

सहायता श्री स्वामी धर्मानन्द सरस्वती, गुरुकुल आमसेना, जि० कालाहाण्डी (उड़ीसा) ७६६१०४ के पते पर भेजें।

—: निवेदक :—

स्वामी ओमानन्द सरस्वती
प्रधान
परोपकारिणी सभा (अजमेर)

स्वामी सर्वानन्द सरस्वती
अध्यक्ष
वैदिक यतिमण्डल दयानन्द मठ दीनानगर

वर्ष १९८६ के वेद वेदांग पुरस्कार के लिए श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री का नाम

आर्यसमाज सान्ताक्रूज बम्बई द्वारा निर्धारित वेद वेदाग पुरस्कार समिति ने वर्ष १९८६ के लिए आर्य जगत् के प्रख्यात विद्वान् श्री प० उदयवीर जी शास्त्री का चयन किया है। ९२ वर्षीय पूज्य प० उदयवीर जी शास्त्री ने अपना सम्पूर्ण जीवन वैदिक वाङ्मय के प्रचार-प्रसार में समर्पित किया है।

आदरणीय पण्डित जी गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, उपदेशक विद्यालय लाहौर-नेशनल कालेज लाहौर, ओरियण्टल कालेज जालंधर में आचार्य के पदों पर सुशोभित रहे।

आप ने शास्त्री, वेदाचार्य, न्याय-सांख्य-वैशेषिक-योगतीर्थ, विद्याभास्कर आदि की अनेक उपाधियां प्राप्त कीं तथा वैदिक वाङ्मय के निम्न ग्रंथों की रचना भी की—

१. सांख्य दर्शन का इतिहास २. सांख्य दर्शन भाष्य ३. सांख्य सिद्धांत का इतिहास ४. वेदांत दर्शन का इतिहास ५. वेदांत दर्शन भाष्य ६. वैशेषिक दर्शन भाष्य ७. न्याय दर्शन भाष्य ८. योग दर्शन भाष्य ९. मीमांसा दर्शन भाष्य १०. प्राचीन सांख्य दर्शन भाष्य आदि।

ऐसे सम्माननीय विद्वान् के अभिनन्दन में यह समारोह १५ जून १९८६ के आस पास आयोजित किया जायेगा। पूज्य पण्डित जी के जीवन सम्बन्धी संस्मरण जो सज्जन भेजना चाहें वह सीधे आर्य जगत् साप्ताहिक, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली के पते पर भेज सकते हैं। उस की प्रतिलिपि आर्यसमाज सान्ताक्रूज को अवश्य भेज देवें।

पूज्य प० उदयवीर जी शास्त्री को इस अभिनन्दन समारोह में २१०००/- इक्कीस हजार रुपये की थैली, अभिनन्दन-पत्र, रजत ट्राफी तथा शाल भेंट कर सम्मानित किया जाएगा।

इस समारोह में जो सज्जन पधारना चाहें निजी व्यय पर अवश्य पधारें।

भवदीय
कैप्टन देवरत्न आर्य
महामंत्री

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के वार्षिक अधिवेशन की तिथि में परिवर्तन

आर्य जनता को सूचित किया जा रहा है कि आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली का जो वार्षिक अधिवेशन रविवार, १ जून को होने वाला था, उस दिन डी०ए०वी० स्थापना दिवस चण्डीगढ़ में मनाये जाने के कारण अधिवेशन की तिथि में परिवर्तन कर दिया गया है। अतः अब यह अधिवेशन शनिवार ३१।५।८६ को प्रातः ९.३० से १ बजे तक एवं तत्पश्चात् २ से सायं ४.३० बजे तक आर्यसमाज (अनारकली), मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली में होगा।

—रामनाथ सहगल

श्री रूपकिशोर की पी-एच०डी० उपाधि एवं विदेश यात्रा

आर्यसमाज हनुमान रोड के धर्माचार्य युवा विद्वान डा० रूपकिशोर जी शास्त्री वैदिक धर्म के प्रचारार्थ यूरोप की यात्रा पर गये हैं। आपने दिनांक १८।५।८६ को प्रस्थान किया। इस यात्रा का उद्देश्य पाश्चात्य देशों में ऋषि दयानन्द के मंतव्य को व्यापक रूप से जन-जन तक पहुँचाकर "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" के संकल्प को पूर्ण करना है।

उल्लेखनीय है कि इसी मास की दिनांक ३।५।८६ को दिल्ली विश्वविद्यालय ने इन्हें डॉक्टरेट (पी-एच०डी०) की उपाधि से सम्मानित किया है। इन का सामवेद के सभी ब्राह्मण ग्रंथों पर वैदुष्य-युक्त शोधात्मक कार्य एक शोध प्रबन्ध के रूप में है।

ग्राम प्रचार

आर्यसमाज नांगल राया के अधिकारियों ने दि० २४।५।८६ शनिवार को ग्राम प्रचार का आयोजन रखा। दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा का प्रचार वाहन आर्यसमाज नांगलराया पहुंचा सभी आर्य जनों ने सभा मन्त्री डा० धर्मपाल आर्य का भव्य स्वागत किया वहां से प्रचार वाहन द्वारा सागरपुर आये। वहां एक पौराणिक मन्दिर के प्रांगण में एक विशाल स्टेज सजाया गया। सर्व प्रथम संगीत कथाकार पं० तुलसीदास आर्य का कार्यक्रम रखा गया। श्री दयानन्द आर्य का प्रवचन रहा। सभा के महामन्त्री डा० धर्मपाल आर्य का भाषण रहा। पं० ओमवीर शास्त्री व्यवस्थापक वेद प्रचार का सुन्दर प्रवचन रहा। श्री श्यामवीर राघव के संगीत के पश्चात् स्वामी स्वरूपानन्द अधिष्ठाता वेद प्रचार का प्रवचन रहा तथा जिसमें हास्य कविताओं द्वारा श्रोता गण मुग्ध हो गये। कार्यक्रम समाप्ति पर शान्ति पाठ जयघोष के बाद वापसी प्रस्थान रहा। वहां के आर्य बन्धुओं ने हम सभी का जलपान इत्यादि से सुन्दर स्वागत किया।

—स्वरूपानन्द सरस्वती

चारों वेदों का शुद्ध प्रकाशन

पिछले दिनों अनेक ग्रन्थों के प्रणेता स्वामी जगदीश्वरानन्द जी सरस्वती के निवास पर उन का विशाल पुस्तकालय देखकर मुझे आश्चर्य हुआ।

स्वामी जी वेद, दर्शन, महाभारत, रामायण, पाठ निर्णय, आयुर्वेद आदि विषयों के अच्छे ज्ञाता हैं तथा अहर्निश साहित्य निर्माण कार्य में लीन होकर अमर शहीद आर्य मुसाफिर पं० लेखराम जी के "आर्यसमाज से लेखन और प्रचार (तहरीर और तकरीर) का कार्य कभी बन्द न हो"।

आदेश का पालन करने में पूर्णतः संलग्न हैं। स्वामी जी सार्वदेशिक सभा के संस्कृत सत्यार्थप्रकाश के प्रकाशन में भी सहयोग दे रहे हैं।

स्वामी जी ने चारों वेदों का शुद्ध संस्करण छापने का संकल्प लिया है तथा प्रकाशन हेतु "भगवती प्रकाशन" नामक एक न्यास ट्रस्ट बनाया है। इस न्यास में ५००/- रुपये एक बार देने वाले सदस्यों को ५०० पृष्ठ का एक ग्रंथ प्रतिवर्ष भेंट स्वरूप दिये जाने की योजना है।

आर्यसमाज दीवान हाल, दिल्ली शताब्दी पर निबंध प्रतियोगिता परिणाम

आर्यसमाज दीवान हाल, दिल्ली शताब्दी के अवसर पर "वेद सब सत्य-विद्याओं की पुस्तक है" विषय पर निबंध प्रतियोगिता का आयोजन किया गया था, अखिल भारतीय स्तर की इस प्रतियोगिता में भारत भर के प्रतिष्ठित पचास आर्य विद्वानों ने अपने निबन्ध भेजे थे। जिसमें निर्णायक मण्डल ने इस प्रकार अपना निर्णय दिया—

प्रथम : आचार्य वीरेन्द्र मुनि (लखनऊ)
द्वितीय : डा० भवानीलाल भारतीय (चण्डीगढ़)
तृतीय : श्री डा० रघुवीर मुमुक्षु (दिल्ली)

जिन लेखक महानुभावों ने इस प्रतियोगिता में परिश्रमपूर्वक अपने लेख भेजे हैं मैं उन सबका आभारी हूं।

निवेदक
मूलचन्द गुप्त
मंत्री
आर्यसमाज दीवान हॉल, दिल्ली-६

निर्वाचन सम्पन्न

आर्यसमाज नारायणा विहार, नई दिल्ली का वार्षिक निर्वाचन १३।४।८६ को सर्वसम्मति से सम्पन्न हुआ। जिसमें निम्नलिखित अधिकारी निर्वाचित हुए—

प्रधान : श्यामसुन्दर गुप्ता
मंत्री : दर्शनलाल कपूर
कोषाध्यक्ष : राकेश मल्होत्रा
संरक्षक : प्रवीण भटनागर, वीरेन्द्र मार्कण्डे, सुरेन्द्रनाथ सेठिया

स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती की महत्त्वपूर्ण घोषणा

स्वामी जी की संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी में अब तक बारह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्होंने कभी भी लिखना और बोलना व्यवसाय नहीं बनाया। इसीलिए पुस्तकों की कोई रायल्टी नहीं ली। वे सदैव ऋषि के सन्देश के प्रचार-प्रसार के लिए लिखते और बोलते रहे हैं। यही उन के जीवन का ध्येय रहा है।

उन्होंने निश्चय और घोषणा की है कि जहां भी आर्यसमाजों में प्रवचनार्थ जायेंगे वास्तविक मार्ग-व्यय के अतिरिक्त दक्षिणा के रूप में एक भी पैसा नहीं लेंगे। स्वामी जी ने गृहस्थ में रहते हुए भी कभी न तो ठहराया और न ही कोई दक्षिणा स्वीकार की। उनका यह त्याग आर्यजगत् के लिए अनुकरणीय और प्रशंसनीय है।

महेश विद्यालंकार
शालीमार बाग

उठो हिन्दुओ, सोना छोड़ो !

—धर्मवीर शास्त्री

उठो हिन्दुओ, सोना छोड़ो,
घर में कांटे बोना छोड़ो।
तुमने युग-युग कष्ट उठाये,
सबने तुम पर तीर चलाये।
प्रलय रात्रि की वेला काटी,
पाने को अपनी ही माटी।
वे निर्मम सूली की घड़ियां,
देखी बेड़ी औ हथकड़ियां।
जीवन दे ईमान बचाते,
देश - धर्म - सम्मान बचाते।
पाई मुश्किल से आजादी,
वह भी भू खंडित कर आधी।
जो कुछ अपने पास बचा है,
उसमें भी संग्राम मचा है।
सब की अपनी - अपनी मंजिल,
राष्ट्र टूटता जाता तिल - तिल।
जिनकी गंगा और कहीं है,
भारत उनका देश नहीं है।
घर न तुम्हारा और ठिकाना,
आवश्यक थो इसे बचाना।
अतः हिन्दुओ, सोना छोड़ो,
घर के बन्दी होना छोड़ो।
शक्ति - पुंज शत कोटि भुजा ...
सत्य मेव तुम रुद्र ...थकर।
उठो, काल - सरि का ... फेरो,
अरि को चार ...रफ से घेरो।
... अवतार भला क्यों,
... जब फिर ले मनुज-बला क्यों।
अतुल आत्म-बल मधु सूदन है,
करता कल्मष - कंस - हनन है।
अपने पर विश्वास करो हे ?
मत नर ... उपहास करो हे ?
कृष्ण तुम्ही में, राम तुम्ही में,
पवन - पुत्र बल धाम तुम्हीं में।
आये गुजर सिरों से पानी,
तब उठना लगभग बेमानी।
दुनिया है यह बड़ी सयानी,
उसने नब्ज तुम्हारी जानी।
कुछ दिन चलता शोर तुम्हारा,
कुछ दिन रहता जोर तुम्हारा।
फिर सो जाते चादर ताने,
बिखरे से बेसुध अनजाने।
आज तुम्हारा स्वत्व दांव पर,
बैठे मनु की प्रलय - नाव पर।
अपना घर तो साफ करो हे !
फिर दुनियां की बात करो हे !
खिड़की खोलो द्वारे खोलो,
मन के बन्धन सारे खोलो।
समता की नाव सस्य उगाओ,
जन-जन में ममता उपजाओ।
बन्धुभाव की स्वर्ण रेखा,
रख सकती है तुम में एका।
तब स्वर्णिम लंका का स्वामी,
लौटेगा लेकर नाकामी।
स्वर मन्त्रों के सुरभि हवन की,
धो देंगे कुण्ठाएं मन की।
वैदिक ज्योति जगाओ घर-घर,
धर्म - तत्त्व समझाओ घर-घर।
वेद शास्त्र पहुंचाओ घर-घर,
स्वाहा शब्द गुंजाओ घर-घर।
कौन पोप फिर कदम धरेगा,
अरबी डालर स्वयं डरेगा।
फिर भी आये, कान मरोड़ो,
उठो हिन्दुओ, सोना छोड़ो।

ऋषि दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य पर महत्त्वपूर्ण शोध

महर्षि दयानन्द वैदिक अनुसंधान पीठ पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ के तत्त्वावधान में श्रीमती वसुन्धरा रिहानी एम.ए., बी.ए. (आनर्स) ने पीठाध्यक्ष प्रो. भवानी लाल जी भारतीय के सुयोग्य निर्देशन में इस वर्ष (१९८६) "स्वामी दयानन्दकृत याजुषभाष्य में देवता तत्त्व" विषय पर

(शेष पृष्ठ ८ पर)

R. N. No. 32387/77 Post in N.D.P.S.O. on 29, 30-5-86 Licenced to post without prepayment, Licence No. U 139
दिल्ली न० सी० (सी०) ७५६ पूर्व भुगतान बिना भेजने का लाइसेंस नं० यु १३९

वीर सावरकर...

(पृष्ठ ३ का शेष)

स्त्री की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो उसमें राष्ट्र को अधिक सुन्दर बनाने की योग्यता ला सके। रूस में स्त्री को पुरुष समान सभी अधिकार प्राप्त हैं। इसीलिए वहां उसमें अधिक आत्मविश्वास है।

सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत वीर सावरकर भारत को गली-सड़ी रूढियों से मुक्त करके सबल राष्ट्र व तीसरी शक्ति के रूप में उभरा हुआ देखना चाहते थे २६ फरवरी १९६६ को राष्ट्र का महान् ज्योति पुञ्ज इस नश्वर शरीर को छोड़कर सदा के लिए अमर हो गया। मृत्यु के समय उन्होंने राष्ट्रहित की उपेक्षा नहीं की। "मेरे मरने पर शोक या हड़ताल न हो' यह उनकी अन्तिम इच्छा थी जो उनके धधकते राष्ट्रप्रेम की सूचक है। पर यह विचित्र विडम्बना है आज का नेतृत्व कुर्सी के लिये सिद्धान्तों को नीलामी पर चढ़ाने के लिए हर समय तत्पर है। उनके आदर्शों की मशाल को प्रज्वलित रखने के लिए कटिबद्ध रहने की प्रतिज्ञा ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी। □

यजुर्वेद भाष्य पर शोध...

(पृष्ठ ७ का शेष)

पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

वैदिक देवतावाद की समस्या अपने आप में एक अति जटिल और दुरूह समस्या है। विभिन्न वेदविद्वान् इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न धारणाएँ रखते हैं। विज्ञ शोधकर्त्री ने प्रकृत समस्या पर पौरस्त्य और पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि से आलोचनात्मक और विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर स्वामी दयानन्द अभिमत देवत तत्त्व पर विचार करते हुए अग्नि, विष्णु प्रभृति वैदिक देवों के स्वरूप निर्धारण का अनुपम प्रयास किया है। शोध का यह कार्य अतीव परिश्रमसाध्य, मौलिक एवं वैज्ञानिक विधि से प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तोत्री ने वैदिक देव-स्वरूप विवेचन के संदर्भ में एक नवीन पथ प्रशस्त किया है जो कि भविष्य में इस पद्धति से शोध करने वाले शोधार्थियों का मार्ग प्रदर्शन करेगा।

--शार्दूल सिंह
कार्यालयाध्यक्ष, दयानन्द शोध पीठ □

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५ हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन: ३१०१५० के लिए ... द्वारा सम्पादित एवं ...

वर्ष १० : अंक २८ | रविवार, ८ जून, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ | ज्येष्ठ २०४३ | दयानन्दाब्द—१६१

मूल्य एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश मे ५० डालर, ३० पौंड

पंजाब धधक रहा है

धमकियां, पुलिस और श्री बरनाला का बयान

पंजाब के मुख्यमंत्री सरदार सुरजीत सिंह बरनाला ने हेड ग्रंथियों द्वारा क्षमा दान दिए जाने के बाद अमृतसर में एक पत्रकार सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए पंजाब के चार अशांत सीमावर्ती जिलो में सेना तैनात करने की सम्भावनाओं को रद्द कर दिया है। उन्होंने इस संदर्भ में भारतीय जनता पार्टी तथा कुछ अन्य संगठनों की अमृतसर, गुरदासपुर, फिरोजपुर और कपूरथला जिलों को सेना के हवाले किए जाने की मांग का जिक्र किया और कहा कि यह समस्या का कोई हल नहीं है।

मुख्यमंत्री ने यह भी कहा कि पंजाब के किसी भी हिस्से को न तो सेना के हवाले किया गया है और न ही किया जाएगा। कानून व्यवस्था कायम रखना पुलिस का काम है और वही इसे करेगी। चाहे इसके लिए कितनी भी सख्ती करनी पड़े। सरदार बरनाला ने जहां यह घोषणा की कि स्वर्ण मंदिर परिसर से पुलिस जल्दी ही चली जाएगी, वहां वह दावा भी किया कि पंजाब में कानून व्यवस्था की हालत इतनी खराब नहीं है जितनी जाहिर की जा रही है।

हमारे मन में सरदार बरनाला के लिए बड़ा आदर और मान है मगर हम यह कहे बगैर नहीं रह सकते कि पंजाब में कानून-व्यवस्था के बारे में जो कुछ उन्होंने कहा है, वह वास्तविकता से आंखें मूंद लेने के अनुरूप है। पंजाब की वर्तमान परिस्थितियों का अनुमान केवल इस बात से ही लगाया जा सकता है कि—

- अकाली शासन के आठ महीनों में ३७० हत्याएं हो चुकी हैं।
- मई के केवल २६ दिनों मे ही ८४ से अधिक हत्याएं पंजाब मे हो चुकी हैं।
- सीमावर्ती जिलों के देहात से अल्पसंख्यकों का अभूतपूर्व ढंग से पलायन हुआ है और हो रहा है, जिससे सारा देश चिंतित है।
- खुल्लम-खुल्ला खालिस्तानी झंडे, पोस्टर और बोर्ड जगह-जगह लगाए जा रहे हैं और कोई ऐसा करने वालों पर हाथ डालने और झण्डों और पोस्टरों आदि को हटाने का साहस नहीं कर पा रहा।
- मुख्यमंत्री समेत पंजाब का कोई भी मंत्री या विधायक गनमैनों के बगैर दो कदम चल नहीं सकता।
- दमदमी टकसाल और मुख्यमंत्री की ओर से अकाल तख्त पर रखाए गए अखंड पाठों को सादा वस्त्रों में पुलिस कर्मियों ने एक दीवार सी बना कर अलग रखा।

इतना ही नहीं, धमकियों का सिलसिला जो पहले बड़े लोगों तक ही सीमित था, अब पंजाब के आम लोगों को भी अपनी लपेट में लेने लगा है। अभी दो दिन पहले ही पांच सदस्यीय पंथक कमेटी की ओर से भुलत्थ (जिला कपूरथला) के एक प्रमुख आढ़ती श्री जोगिन्दर पाल को यह धमकी मिली थी कि दरबार साहिब में २७ मई तक पांच हजार रुपया पहुंचा दें वरना २८ मई को भुलत्थ में 'जाबो' पहुंच जाएगी और अब जालंधर के बीच वहां के अल्पसंख्यकों को सिख कमांडो फोर्स की ओर से यह धमकी दी गई है कि वे पहली जून तक केश रखकर पगड़ी धारण कर लें वर्ना उन्हें बलि का बकरा बना दिया जाएगा या वे गांव छोड़कर चले जायें। श्री मेलाराम खुराना को दी गई इस धमकी में एक हिट लिस्ट भी शामिल है, जिसमें ३७ लोगों के नाम दर्ज हैं।

यहां यह उल्लेखनीय है कि जब धमकियों का क्रम पंजाब में शुरू हुआ था, तब लोग उन्हें गम्भीरता से नहीं लेते थे मगर ज्यों-ज्यों यह बात स्पष्ट होती गई कि इन धमकियों पर अमल भी होता है, तो लोगों ने उन्हें गम्भीरता से लेना शुरू कर दिया और जब से इन धमकियों पर अमल में तेजी आ गई है, तब से एक घबराहट स्वाभाविक रूप से लोगों में पैदा होने लगी है।

बेशक इन धमकियों की नकल पुलिस को भेज दी गई है और प्रशासन ने भी लोगों को सुरक्षा देने की बात कही है मगर लोग यही समझते हैं कि मौत कभी भी उनके दरवाजे पर दस्तक दे सकती है, क्योंकि ज्यों-ज्यों पुलिस और उग्रवादियों की मिली भगत के मामले सामने आ रहे हैं, पुलिस पर से लोगों का भरोसा उठता जा रहा है।

जिस पुलिस के बारे में सरदार बरनाला यह कहते हैं कि वही पंजाब की परिस्थितियों से निपटेगी, उसकी हालत क्या है, उसकी झलक निम्नलिखित थोड़े से उदाहरण से मिल जाती है—

❀ कृष्ण नगर(अमृतसर)के लोगों का कहना है कि उन्होंने काफी समय पहले ही पुलिस को यह सूचना दी थी कि अमुक घरों में उग्रवादी आते हैं, अगर पुलिस कारंवाई करती तो यह कांड नहीं होता।

❀ अमृतसर के एस० पी० (सिटी) के स्टैनो को इस संदेह में मुअत्तिल कर दिया गया है कि उग्रवादियों से उसके सम्बन्ध थे। इसके अलावा दो तीन पुलिस कर्मियों को भी हिरासत मे ले लिया गया है।

❀ गुरदासपुर के तीन पुलिस कर्मचारियों को, जिनमें एक हवलदार भी शामिल है, उग्रवादियों से सम्बन्ध रखने के आरोप में निलम्बित किया गया है।

❀ धारीवाल क्षेत्र में जब भी अल्पसंख्यकों हत्या हुई और युवकों ने प्रोटेस्ट किया, तो पुलिस ने उन्हें घरों से निकाल कर पीटा और गिरफ्तार किया।

❀ धारीवाल क्षेत्र में श्री प्रेम सागर पर हुए हमले के बाद लोग थाना कलानौर में गए, तो थानेदार ने कहा कि मैं अपनी रक्षा करू या आपकी? इससे लोगों का मनोबल टूट गया। यह शिकायत भी लोगों की आम है कि पुलिस उग्रवादियों के विरुद्ध रपट भी दर्ज नहीं करती।

❀ गत दिनों जंडियाला गुरु के पास गांव देवीदास पुरा के देहातियों ने शराबी सिपाहियों को पकड़कर तूड़ी वाले कोठे में बन्द कर दिया।

❀ ऐसी भी रिपोर्टें हैं जहां पुलिस वाले उग्रवादियों के पैर छूते और उनके

(शेष पृष्ठ २ पर)

सम्पादक—यशपाल 'सुधांशु' एम० ए० | व्यवस्थापक—डा० गणेशीलाल | प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल

गौरव स्तंभ

प्रेरक प्रसंग

प्रस्तोता—सत्यानन्द आर्य

: १ :

एक बार एक सेठ जी ने आकर महात्मा गांधी से शिकायत भरे स्वर में कहा 'बापू देखिये, दुनिया कितनी बेईमान है। मैंने पचास हजार रुपए लगाकर एक धर्मशाला बनवाई। अब धर्मशाला बन जाने पर मुझे ही उसकी प्रबन्ध समिति से अलग कर दिया गया है। जब तक वह नहीं बनी थी, तब तक वहां कोई भी नहीं आता था और अब बन जाने पर पचासों उस पर अधिकार जताने वाले आ गये हैं।"

यह सुनकर बापू कुछ देर सोचते रहे, फिर बोले, "आप को इसलिए निराशा हो रही है, क्योंकि आपने दान का सही अर्थ नहीं समझा है, किसी चीज को देकर कुछ पाने की इच्छा दान नहीं है। वह तो व्यापार है और जब आपने व्यापार किया है तो आपको लाभ और हानि दोनों के लिए तैयार रहना चाहिए। व्यापार में लाभ भी हो सकता है और हानि भी।"

यह सुनकर सेठ जी निरुत्तर हो गये।

: २ :

गुरु नानक एक बार घूमते घूमते एक गांव में उपदेश देने के लिए ठहर गये। ग्रामवासियों ने उनका बडे प्रेम से स्वागत किया। काफी लोगों ने ध्यान से उनका उपदेश सुना।

दूसरे दिन नानक जो चलने लगे, तो उन्होंने ग्रामवासियों को आशीर्वाद दिया—"उजड जाओ!" शिष्यों ने सुना तो दंग रह गये पर कुछ बोले नहीं।

शाम होते होते वे दूसरे गांव में जा पहुंचे। वह गांव बदमाशों का था। वहां के लोगों ने उनका खूब तिरस्कार किया। कटु वचन की क्या, वे तो लडने झगड़ने तक को उतारू हो गये। नानक जी वहां से दूसरे दिन रवाना हुए तो हंसते हुए बोले, "आबाद रहो।"

शिष्यों ने सुना तो आश्चर्य चकित रह गये। एक शिष्य से नहीं रहा गया। वह पूछ बैठा—"भगवन् आपने बड़े ही विचित्र आशीर्वाद दिये हैं। स्वागत सत्कार करने वालों को तो आपने "उजड़ जाने" का आशीर्वाद दिया और तिरस्कार करने वालों को "आबाद रहने" का। आखिर इन रहस्यमय विचित्र आशीर्वादों का रहस्य तो बताइये!"

नानक जी की मंद-मंद मुस्कराहट बिखर पडी। हंसते हुए बोले—"सज्जन लोग उजडेंगे तो वे जहां भी जाएंगे, अपनी सज्जनता के बल पर उत्तम वातावरण बना लेंगे, पर दुर्जनों का तो एक ही जगह बंधे रहना शुभ है।"

: ३ :

एक रात का वर्णन है स्वामी दयानन्द आधी रात के समय जग पडे और उठकर इधर-उधर चक्कर लगाने लगे। उनके पांव की आहट सुनकर एक कर्मचारी की भी आंख खुल गई। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि स्वामी जी किसी बडी व्याकुलता और घबराहट में घूम रहे हैं। उसने विनय की—"भगवन्! यदि कोई वेदना है तो आज्ञा दीजिए। सेवक औषधोपचार करने के लिए उपस्थित है। यदि आदेश हो तो वैद्य को बुला लाऊं। उस समय स्वामी जी ने सुदीर्घ सांस लेकर कहा—भाई! यह बडे वेग से बढ़ी हुई वेदना आपके औषधोपचार से शमन होने वाली नहीं है। यह वेदना भारत के परिश्रमी लोगों की दुर्दशा के चिन्तन से, चित्त में उत्पन्न हुई है। ईसाई लोग कोल-भील आदि भारत-वासियों को ईसाई बनाने के लिए अपनी कल्पनाओं के ताने बाने तन रहे हैं। रुपया भी पानी की तरह बहाने को कटिबद्ध हैं। परन्तु इधर आर्य जाति के पुरोहित हैं, जो कुम्भकर्ण की नींद पडे सोते हैं। उनके कानों पर जूं तक नहीं रेंगती। मैं अब यह चाहता हूं कि राजों-महाराजाओं को सन्मार्ग पर लाकर सुधार करूं। आर्य जाति को एक उद्देश्य रूपी, सुदृढ सूत्र में आबद्ध करूं।

एक कवि के शब्दों में स्वामी जी की स्थिति यह थी—

इक हूक सी दिल में उठती है,
एक दर्द जिगर मे होता है।
हम रात को उठकर रोते हैं,
जब सारा आलम सोता है॥

: ४ :

एक योगी श्री रामकृष्ण परमहंस के पास गया और कहने लगा—'मैंने चौदह वर्ष जंगल में रहकर योगाभ्यास किया। फलस्वरूप मैंने पानी के ऊपर चलने की दैवी शक्ति पा ली है—मेरी योग साधना सफल हुई।"

श्री परमहंस ने उत्तर दिया—"तुमने क्यों चौदह वर्ष का व्यर्थ कष्ट झेला? डेढ़ पैसे में मांझी तुम्हें पार पहुंचा सकता है। तुमने जो सिद्धि पाई है, वह तो सिर्फ डेढ़ पैसे की है।" □

(पृष्ठ १ का शेष)

आदेश लेते बताए जाते हैं।

ऐसी हालत में पंजाब के अल्पसंख्यकों और अन्य भयभीत नागरिकों को पुलिस के रहम पर छोड देना कहां तक उचित है, यह एक विचारणीय प्रश्न है।

आसार बता रहे हैं कि अब उग्रवादियों का रुख माझा से दोआबा की ओर होगा और अब इधर से अल्पसंख्यकों को पलायन के लिए विवश किया जाएगा। इसके अतिरिक्त पहली जून से घल्लूघारा सप्ताह मनाने की घोषणा भी इस बात की सूचक है कि आने वाले दिन पंजाब के लिए काफी काले हो सकते हैं। अतः हम सरदार बरनाला से फिर यही कहेंगे कि वह वास्तविकता से आंखें न मूंदें, हालात की नजाकत को समझें, सीमित समय के लिए सेना न बुलाने की हठ को छोड़ें और तत्काल पंजाब के लोगों विशेषकर अल्पसंख्यकों के जानमाल की रक्षा का ठोस और प्रभावपूर्ण प्रबन्ध करें। या फिर सेना न भी बुलाना चाहें, तो लोगों की सुरक्षा को उसी तरह निश्चित बनाएं जैसे प्रधानमंत्री की, उनकी स्वयं की और उनके साथियों की है।

—विजय

—पंजाब केसरी से साभार

हिंदी भाषा-लिपि विकासार्थ संशोधन आवश्यक

—आर्य प्रहलाद गिरि 'सिद्धांतवाचस्पति'

संसार की सभी भाषाओं-लिपियों से विशिष्ट गुणवाली हिन्दी देवनागरी अपने प्राचीन नियमों के कारण कठिन बनी हुई है, यही कारण है कि अधिकांश हिन्दी भाषी भी इसे शुद्ध रूप से लिखने बोलने में असमर्थ पाये जाते हैं। आज हम हिन्दी को अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनाना चाहते हैं, जबकि यह स्वदेश में ही पूर्णत ग्राह्य नहीं बन पायी है। अतः सर्व भाषा जननी संस्कृत की प्रिय पुत्री स्वरूप हिन्दी को विश्वमंच पर लाने के लिये इसके कुछ प्राचीन परिधान बदल कर यथासंभव अन्य भाषाओं के समरूप बनाना होगा, तभी हमारी राष्ट्रभाषा स्वदेश ही नहीं, विदेशों में भी स्वागत पा सकेगी, वर्ना अरबी लिपि और अंग्रेजी भाषा लिपि के निरवरोध पैरों से दबकर हम भारत संतानों की मातृभाषा उसी तरह ढंक जाएगी, जिस तरह कभी की अंतर्राष्ट्रीय भाषा संस्कृत अपने कठिन व्याकरण के कारण आज पूजा कराने के लिए कुछ पंडितों को रटने भर की बची है।

अतः जरूरत है, हिन्दी को सरल, संक्षिप्त किन्तु पर्याप्त समृद्ध भाषा लिपि बनाने की, जिसके लिए कुछ सुझाव निम्नांकित हैं :—

१. जिस तरह राष्ट्र के नाम पर राष्ट्रभाषा लिपि का नामकरण चीन में चीनी, जर्मन में जर्मनी, रूस में रूसी, आदि हुआ उसी तरह भारत की राष्ट्र भाषा लिपि का नाम भी 'भारती' ही होना चाहिए।

२. गुजराती अंग्रेजी आदि एवं सर्व प्राचीन, नागरी की मां 'ब्राह्मी लिपि' की तरह देवनागरी भी शिरोरेखा से मुक्त होनी चाहिए।

३. हिन्दी आदि भारतीय अंकों के ही रूपांतरित-अंग्रेजी के अंक स्वीकार किये जायें।

४. ककहारे की तरह ही 'अ' वर्ण पर भी मात्रायें बैठाकर उपेक्षित 'अं' सहित तेरहों स्वर वर्ण तैयार किये जायें, जैसे—अ, आ, अि (या ओ), अी, अु, अू, अे, अै, ओ, औ, अ, अः, अं।

५. ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ये उच्चारणतः व्यंजन हैं. अतः इसे स्वर वर्ण माला से निकाल कर इसके जगह पर रि, री, लि, का प्रयोग हो।

६. ङ, ञ, और ण को वर्ण माला से हटाकर इसके जगह पर बिन्दु से ही गंगा, कुंजी और झंडा आदि तथा चंद्र बिन्दु युक्त 'ड' (डँ) से आड़ँ, नारायड़ँ आदि लिखना सुसमोचित है।

७. दो प्रकार से लिखे जाने वाले कुछ ग्राह्य वर्णों (अ, झ, ल) को एक एक प्रकार से ही लिखा जाये।

८. वल्कि, रुक्मिणी, कृष्णा जैसे शब्द इस प्रकार लिखे जायें—वल्कि, रुक्मिनी, क्रिश्ड़ँ या दीर्घ ईकार की तरह ह्रस्व

(शेष पृष्ठ ७ पर)

इतिहास के पृष्ठों का अनावरण—

महाराजा रणवीर सिंह की ऋषि से भेंट

लेखक : प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

गत मास श्री पं० निरञ्जनदेव जी से मेरी भेंट हुई जब कभी भी उनके दर्शन होते हैं, हम घण्टों आर्यसमाज के साहित्य या इतिहास सम्बन्धी चर्चा करते हैं। यद्यपि श्री प० जी एक कुशल लेखक हैं। कई भाषाओं के विद्वान् हैं परन्तु न जाने अब क्यों नहीं लिखते। उनको आर्यसमाजके इतिहास के विषय में बहुत विस्तृत जानकारी है। प्रत्येक गवेषक को नई से नई सप्रमाण जानकारी देते हैं।

ऋषि जीवन की चर्चा चली तो आपने एक घटना सुनाई कि १९५० ई० में वह किश्तवाड़ (जम्मू राज्य) में प्रचारार्थ गये। वहा आयसमाज के प्रधान जी को सब जन गुरुजी ही कहते थे। गुरु जी ने श्री पं० जी को कहा कि महाराज रणवीर सिंह ऋषि दयानन्द जी के दर्शन करके वा उनका उपदेशामृत पान करके अत्यन्त प्रभावित हुए।"

यह बात सुनकर पं० जी को आश्चर्य हुआ। कारण स्पष्ट है कि अमर धर्मवीर पं० लेखराम जी, कर्मवीर श्री मास्टर लक्ष्मण जी सरीखे गवेषकों ने जम्मू राज्य के अधिकारियों के प्रमाण से लिखा है कि पण्डितों ने महाराजा को ऋषि से न तो देहली में मिलने दिया और न ही ऋषि की पंजाब यात्रा के समय महाराजा की ऋषि से भेंट होने दी। इसी आधार पर श्री डा० भवानीलाल जी भारतीय ने 'आर्य सन्देश' में यह लिखा है कि महाराजा रणवीर सिंह को पण्डितों ने ऋषि से मिलने से रोका।

जब पं० निरञ्जनदेव जी ने मुझे किश्तवाड़ में गुरु जी द्वारा सुनाई गई घटना सुनाई तो मुझे प्रेरणा दी कि इसे लेख के रूप में दे दें और इसकी जांच की जानी चाहिए। मैं सम्भवतः इस लेख को देने में कुछ प्रमाद करता परन्तु भारतीय जी के लेख को पढ़कर मन में आया कि यह सामग्री अभी प्रकाश में आनी चाहिए।

गुरु जी ने पं० निरञ्जनदेव जी से कहा कि महाराज रणवीर सिंह अपने अनेक अधिकारियों कर्मचारियों सहित देहली गये। वहां ऋषि जी के तप, तेज, विद्वत्ता की बड़ी धूम थी। एक दिन महाराजा ने भी ऋषि जी से समय मांगा। जब महाराजा रणवीर सिंह ऋषि जी से मिले तो और बातों के अतिरिक्त महाराज ने श्री महाराजा रणवीर सिंह से कहा, "क्या आप लोग अंग्रेजों पर इतना भी दबाव नहीं डाल सकते कि गौ जैसे उपकारी पशु की हत्या भारत में बन्द की जाये।"

यह प्रेरणा ऋषि ने कुछ ऐसे अनूठे ढंग से दी कि महाराजा रणवीर सिंह के आत्मा पर इसकी अमिट छाप लग गई। इस भेंट के कुछ ही समय पश्चात् वायसराय का Military Secretary (सेना सचिव) महाराज के डेरा पर उनसे मिलने गया। महाराजा ने उससे बड़े प्रबल शब्दों में कहा कि गो-वध बन्द होना चाहिए। उस सेना-सचिव ने कहा, "इस बात को छोड़ो, इसमें क्या रखा है?"

इस पर महाराजा रणवीर सिंह को क्रोध आ गया। उसने तत्काल उस Military Secretary का सिर काट दिया। जब उसे मार डाला तो फिर महाराजा को जोश के स्थान पर होश आया कि अब इसका परिणाम क्या होगा? तब बहुत विश्वस्त कर्मचारियों की सहायता से उस शव को ठिकाने लगाया गया। महाराजा रणवीर सिंह कुछ साथियों को लेकर देहली से एकदम चले गये। और जो साथी वहां रहे, वह पूछने वालों को यही बताते कि महाराजा यहां नहीं हैं।

उधर Military Sec'etary की खोज आरम्भ हुई कि कहां गया। पता लगाते लगाते पता चल ही गया कि वह महाराजा रणवीर सिंह को मिलने गया था। महाराजा के डेरा पर पता लगाते अंग्रेज अधिकारी आए। पूछा कि यहां महाराजा साहिब के पास Military Secretary मिलने आया था। वहां जो व्यक्ति उपस्थित थे, उन्होंने कहा कि "महाराजा तो यहा थे नहीं, इसलिए उनसे मिलने का प्रश्न ही नहीं उठता।" तब किसी अंग्रेज ने अथवा अंग्रेजी सरकार के कर्मचारी ने कहा, "मैंने महाराज को कल देखा था।"

वहा उपस्थित महाराजा के व्यक्तियों ने बड़ी समझदारी से कहा, "आप अन्दर आकर देख लें।" वहां डेरा पर लाभ जी हैं (उन्हें डोगरी में लाभ जू कहा जाता था), उन्हें आपने महाराजा समझा होगा।" डेरा वालों ने अन्दर से 'लाभ जू' को बुलाया। वह व्यक्ति मानने पर विवश हुआ कि हां इन्हें देखा था। वास्तविकता यही थी कि लाभ जू को महाराजा साहिब ही वहां छोड़ गये थे। उनकी आकृति महाराजा से इतनी मिलती थी कि सबको धोखा हो जाता था कि यह महाराजा रणवीर सिंह हैं। लाभ जी को इतना आदेश था कि जब वह महाराजा के सामने आए तो अपनी मूंछें नीची कर ले। लाभ जी ने कहा, यहा तो मैं ही हूं। महाराजा साहिब नहीं हैं। मुझे देखकर किसी को भ्रम हो गया होगा। अतः महाराजा से Military Secretary की भेंट का प्रश्न ही नहीं उठता। उन अंग्रेज अधिकारियों की इस स्पष्टीकरण स सन्तुष्टि हो गई। महाराजा एक उलझन से बच गये।

इस अद्भुत सेवा के लिए लाभ जी को किश्तवाड़ में जागीर मिली जहां अब भी उनके वंशज रहते हैं। अब प्रश्न है कि प्रधान आर्यसमाज को यह घटना किसने बताई? लाभ जी को उस क्षेत्र मे 'लाभ जू' कहा जाता था। लाभ जू के वंशजों से यह घटना प्रधान जी वा अन्य लोगों तक पहुंची। १९५० ई० में लाभ जू का पोता जीवित था। प्रधान जी ने व्यक्ति भेजकर उसको बुला लिया। लाभ जू का पोता रियासती प्रजा की भांति बड़ा भोला भाला था। पण्डित निरञ्जन देव जी ने उससे इस विषय में पूछा तो उसने वहीं कहानी सुना दी। उसने कहा पण्डित जी यह कहानी पूर्णतया सत्य है। अंग्रेजी राज के कारण इस घटना को गुप्त रखा गया। हमारे दादा लाभ जू को यहां की जागीर इसी सेवा के लिए पुरस्कार स्वरूप दी गई। लाभ जू का पोता सीधा सादा होने से तब भी इतना डरता था कि पं० जी से कहा, "पं० जी यह बात किसी को न बताना। हमारी कोई हानि न हो।" उस ने पं० जी को हाथ जोड़कर यह विनती की। उसे तब इतना भी ध्यान न था कि अंग्रेज चले गये, अब इतने वर्ष पश्चात् क्या हानि होगी। प्रधान जी ने बताया कि यह घटना इधर सब पुराने लोगों को पता है।

अब इस घटना को झुठलाने वाले एकदम श्री प० लेखराम जी का नाम लेकर लिख देंगे कि प० जी ने स्पष्ट लिखा है कि महाराजा की ऋषि जी से भेंट नहीं हुई। ऐसे सज्जनों से मैं कहूंगा कि वे उतावले न हों। एक तो वह यह खोज कर सकते हैं तो करें कि देहली दरबार के समय सेना सचिव अथवा कोई अन्य अंग्रेज अधिकारी गुम हुआ था क्या? दूसरी बात यह पता लगाई जावे कि किश्तवाड़ में 'लाभ जू' को जागीर कब मिली? यदि देहली दरबार के पश्चात् ही मिली प्रमाणित हो जावे तो घटना की सत्यता में मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है।

मैं किसी भी अप्रामाणिक घटना को तथा बिना प्रमाण के किसी घटना को मानने की प्रवृत्ति ही नहीं रखता। महर्षि दयानन्द अपने योगबल, अपने ऋषित्व, अपने ब्रह्मचर्य, अपने बलिदान, अपनी विद्या तथा परोपकार आदि गुणों के कारण इतने महान् हैं कि उनके विषय में निराधार कहानियां घड़ना मुझे अखरता ही नहीं चुभता भी है (यथा अज्ञात जीवनी रूप नवयुग का पुराण) परन्तु मेरे पास इस बात के लिए भी कोई कारण नहीं कि मैं लाभ जू के पौत्र की इस बात को एकदम झुठला दूं। उसका यह घटना सुनाने में कोई स्वार्थ नहीं था। फिर अकेले उसी को तो इसका ज्ञान न था। किशतवाड़ के अन्य लोग भी इस घटना से परिचित थे।

एक और प्रमाण

पूज्य प० शान्ति प्रकाश जी, श्री अमर स्वामी जी, पं० निरञ्जन देव जी आदि विद्वान् जानते हैं कि रक्तसाक्षी प० लेखराम ने अपनी एक पुस्तक मे महाराजा रणवीर सिंह की बड़ी प्रशसा की है। किसलिए? उत्तर है शुद्धि के लिए। महाराजा रणवीर सिंह उस युग में शुद्धि के इतने पोषक पक्षपाती कैसे बन गये? यह प्रश्न चौड़ा मुह किए हुए उत्तर की की खोज मे है। मैं इसका उत्तर खोजता रहा। उपरोक्त घटना इसका ठोस उत्तर है। संशय वृत्ति का व्यक्ति कह सकता है कि महाराजा आर्यसमाज के आन्दोलन के प्रभाव से शुद्धि के पक्षपाती बन गये। मेरा उत्तर है कि तब जम्मू राज्य में तो आर्यसमाज ही न था। मुझे कहा जावेगा कि जम्मू के पण्डितों के प्रभाव के कारण। यह उत्तर तो बड़ा हास्यास्पद है। जम्मू के पण्डित तो १८९२ ई० (महात्मा हंसराज जी वाले) जम्मू दरबार के ऐतिहासिक शास्त्रार्थ तक भी आर्यसमाज के विरोधी थे। यह शास्त्रार्थ महाराजा प्रतापसिंह जी के युग में हुआ। फिर महाराजा रणवीर सिंह पर शुद्धि की छाप किसने लगा दी?

मेरी आर्य गवेषकों से कर जोड़ विनती है कि वह यूं ही हठ न करें और इस तथ्य के प्रकाश मे इसे सहर्ष स्वीकार करें कि महाराजा रणवीर सिंह की ऋषि से भेंट अवश्य हुई। ऋषि ने ही शुद्धि व गो रक्षा का पाठ पढ़ाया। डा० कर्ण सिंह जो कि महाराजा रणवीर सिंह के वंशज हैं उनको भी इस तथ्य का ज्ञान नहीं होगा कि इस युग में ऋषि दयानन्द जी महाराज के पश्चात् मुसलमान हुए भाइयों की शुद्धि करने वाला पहला व्यक्ति महाराजा रणवीर सिंह ही था। यह ऋषि की गहरी छाप थी कि महाराजा ने जम्मू के आर्यसमाज द्वेषी पण्डितों से 'रणवीर-प्रकाश' ग्रन्थ लिखवा लिया। यह ग्रन्थ शुद्धि के

(शेष पृष्ठ ७ पर)

महर्षि के तीन संकल्प और उनकी पूर्ति

लेखक · यशपाल आर्यबंधु

संसार के महापुरुषो के जीवनों के सूक्ष्म अध्ययन से हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि महापुरुषों के जीवनों के प्राय. दो भाग हुआ करते हैं। एक भाग को हम संकल्प कह सकते हैं और दूसरे भाग को पुरुषार्थ। पण्डित लेखराम आर्य मुसाफिर के सहधर्मी लेखक प० आत्माराम जी अमृतसरी महर्षि के जीवन चरित्र मे इस तथ्य को स्वीकारते हुए लिखते हैं कि– "महापुरुषो के जीवन दो भागो में विभक्त होते हैं। पहला भाग वह जिसमें वे शुभ संकल्प धारण करते हैं और दूसरा वह, जिसमे पुरुषार्थ द्वारा धारण किये संकल्प-इच्छा की पूर्ति करके दिखाते हैं। या यों कहिए कि महान् पुरुषों का जीवन प्रश्नोत्तर के रूप मे होता है। साधारण पुरुषों के जीवन केवल इच्छाओं और प्रश्नों की ही समष्टि होते हैं, परन्तु महापुरुषों के जीवन प्रश्न और उनके उत्तर, साथ-साथ लिए होते हैं।" (प० लेखराम कृत महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र, पृष्ठ ९५७) महापुरुषो का महापुरुषत्व ही इसी मे है कि वे प्रश्नों को न टाल कर उसका समुचित समाधान प्रस्तुत कर दिखाते हैं। पण्डित आत्माराम जी के शब्दों में–"यदि हम्बोलट ने नदियों, पर्वतों और प्राकृतिक दृश्यों की वास्तविकता जानने का प्रश्न उठाया तो उसका समाधान करने के लिए उसने दो बार संसार का चक्कर भी लगाया और इसी कारण उसकी महानता की प्रशंसा करने वाले उसको "न्यूटन" से बढ़कर सम्मान देते हुए "अरस्तु" से उसकी उपमा देते हैं।" (पं० लेखराम कृत महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र पृष्ठ ९५७) तात्पर्य यह कि महापुरुष यदि कोई प्रश्न उठाता है तो उसका हल भी प्रस्तुत करता है अथवा यूं कहिए कि यदि वह कोई संकल्प करता है तो पुरुषार्थ द्वारा अपने जीवन-काल में पूरा कर दिखाता है।

आर्यसमाज के यशस्वी संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ऐसे ही महापुरुष थे कि जिन्होंने अपने जीवन में कुछ विशेष संकल्प लिये थे और फिर अपने पुरुषार्थ से अपने जीवन काल मे ही उन्होंने उन्हें पूरा कर दिखाया। "प्रश्न की महत्ता से उसके उत्तर देने वाले की महत्ता का पता लगता है। साधारण प्रश्न का समाधान करने वाले को संसार कोई सम्मान नही दे सकता। कठिन से कठिन प्रश्न का उत्तर देने वाले को संसार ऊंचे से ऊंचा सम्मान देने को तैयार है।" (प० लेखराम कृत महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र पृष्ठ ९५७) अब देखना यह है कि महर्षि दयानन्द के सम्मुख कौन से और कैसे प्रश्न थे। "जब हम प्रश्न की ओर ध्यान करते हैं जिसका समाधान करने के लिए स्वामी दयानन्द ने अपने जीवन को लगाया तो नि.सन्देह हमे स्वीकार करना पड़ता है कि वह प्रश्न बहुत ही जटिल है। उस प्रश्न को सुनकर ही वीरों के हृदय दहल जाते हैं, फिर उस प्रश्न का उत्तर देने और समाधान करने की तो बात ही क्या है। नैपोलियन के लिए सुगम था कि अपनी प्रबल इच्छा शक्ति के सहारे यूरोप के मुकुटधारियों को खिलौना बनाकर खेलता और एल्प्स की चोटियों पर डेरे लगा देता परन्तु अन्तिम समय में उस प्रश्न का समाधान करने के लिए स्वामी दयानन्द ने बीड़ा उठाया था सिकन्दर और महमूद सरीखे सम्राट संसार को तलवार के बल से जीतकर भी उस प्रश्न के आगे हाथ बांधे दास के रूप में खड़े दिखायी दे रहे हैं। जिस पशु को कोई वीर छेड़ना नही चाहता उस पशु पर दयानन्द जीन डालकर सवार होना चाहता है। जिस सिंह की गर्जना से संसार कांप उठता है उस विकराल सिंह को पालतू और आधीन बनाने के लिए वीर दयानन्द उद्यत होता है। उसकी बहन की मृत्यु ने उसके हृदय को ठोकर लगायी और मृत्यु से छुटकारा पाने का विचित्र कठिन प्रश्न समाधान करने के लिए उसको सौंप दिया। मृत्यु क्या है? उससे मनुष्य किस प्रकार बच सकता है–यह समस्या उसके मन में बस गयी। उसका सारा पुरुषार्थ इस समस्या का समाधान करने और अपने उदाहरण से संसार को इस बात की साक्षी देने के लिए था कि मनुष्य मृत्यु पर इस प्रकार विजय पाते हैं। मृत्यु और उसका समाधान यह महर्षि के जीवन का सारांश है।" (पं० लेखराम कृत महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र, पृष्ठ ९५७)

वस्तुतः जिस समय मूलशंकर की बहन की मृत्यु हुई थी तो बालक मूलशंकर भयातिरेक के कारण अवसन्न होकर रह गया था। तब उसे रुलाई भी नही आ पाई थी। मूलशंकर की शुष्क आंखें देख कर घर के लोग उसे निष्ठुर और निर्मोही कहने लगे। यहां तक कि उनकी माता जो उनसे सर्वाधिक प्यार करती थीं वह भी दुतकारने लगीं। किन्तु मूल शंकर था कि इसी सोच में था कि क्या मुझे भी एक दिन इसी प्रकार मरना होगा। क्या संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं जहां मृत्यु से बचा जा सके अथवा ऐसा कोई उपाय नहीं जिससे मृत्यु से बचा जा सके। इसी चिन्ता में डूबे रहने के कारण उन्हें रोना नही आया और निष्ठुर कहलाये गये। पर लोग क्या जानें कि केवल आंसू ही दुःख को प्रकट करने की निशानी नही हैं। क्योंकि—

"शक न कर मेरी शुष्क आंखो पर,
कभी ऐसे भी आंसू बहाये जाते हैं।"

फिर अपने चाचा की मृत्यु पर तो मूलशंकर फूट-फूट कर रोया और संकल्प लिया कि जैसे भी हो, मृत्यु पर विजय पाऊंगा। और अन्ततः उस महामानव ने मृत्यु पर विजय पा कर ही दिखाई। पाठक वृन्द! महर्षि की मृत्यु पर विजय यात्रा की एक अलग ही कहानी है, जिसे स्थानाभाव के कारण हम यहा प्रस्तुत नहीं कर पा रहे किन्तु यह वास्तविकता है कि उस वीर ने मृत्यु पर विजय कर दिखायी और मृत्युंजय कहलाया।

इससे पूर्व भी महर्षि ने एक संकल्प लिया था, तब जब कि वे केवल चौदह वर्ष के थे और शिवरात्रि का व्रत करने के लिए उन्हें कहा गया था। शिव के दर्शनों की लालसा में मूलशंकर रात भर जागता रहा और जब उसने चूहों को शिव की पिण्डी पर उछल कूद मचाते देखा तो संशय हुआ कि कैसा शिव है कि जो चूहों को भी अपने ऊपर से हटा नहीं सकता। पिता ने बताया कि यह तो शिव का प्रतीक मात्र है, असली शिव तो कैलाश पर्वत पर रहते हैं। तब मूलशंकर ने यह संकल्प लिया था कि जब तक सच्चे शिव के दर्शन नहीं कर लूंगा, मैं पूजा नहीं करूंगा। प्रश्न यह भी कोई साधारण नहीं, फिर इसका भी समाधान करने वाला कोई महापुरुष ही होना चाहिए। महर्षि ने अपने जीवन मे इस प्रश्न का भी समाधान कर दिखाया। कितने कष्ट उठाये उसने सच्चे शिव की तलाश मे। वर्षों वनों, पर्वतों की खाक छानता रहा वह महामानव। जहां जिसने जो योगी बताया, वह उस के पास गया और योग द्वारा सच्चे शिव के दर्शनों की प्रार्थना की। और अन्ततः स्वयं एक योगी बन कर संसार को सच्चे शिव के दर्शन कराने में सफल हुए। तात्पर्य यह कि दूसरे संकल्प की सिद्धि में भी महर्षि पूर्ण सफल हुए। यह उनकी दूसरी विजय थी।

महर्षि के जीवन का तीसरा संकल्प था। संसार में पाखण्ड का विनाश और वेद विद्या का प्रचार। और यह संकल्प महर्षि ने तब लिया था, जब वे गुरुवर विरजानन्द जी से विद्या ले रहे थे। दीक्षा के समय गुरु दक्षिणा के रूप में गुरु की प्रिय लौंग भेंट करने लगे। वैसे इस अकिंचन सन्यासी के पास धन दौलत हो भी कहां सकती थी कि जिसे वह दक्षिणा में देता। किन्तु गुरु ने वह भेंट स्वीकार नहीं की। इसलिए नही कि उसे कोई धन-सम्पत्ति चाहिए थी। अपितु इसलिए कि वे उसके भीतर छिपी ज्वाला को और भी उद्दीप्त करना चाहते थे। गुरु के इन्हीं भावों को कविवर सूर्यदेव शर्मा ने इस प्रकार कविताबद्ध किया है–

अहो प्रिय शिष्य मुदित मतिमान,
अखिल आशा पञ्जर के कीर।
अरुणवत् अतुलित आभावान,
अनुपम आज्ञाकारी वीर॥
दक्षिणा देते हो क्या तात,
थाल में रख कर आधा सेर।
न लौंग लूगा, सुन लो बात,
आ रही अन्तस्तल से टेर॥
अहो, ऋषि मुनियो का गुरुज्ञान,
भुलाया भारत ने भरपूर।
गपोडे ग्रंथ गढे, गढ मान,
उन्हें तुम कर दो चकनाचूर॥
दिखा कर वैदिक "सूर्य" प्रकाश,
भगा दो निशिचर अबुध उलूक।
अविद्या तम का कर के नाश,
सुपथ दिखला दो अटल अचूक॥

जब गुरु ने इस प्रकार की गुरु दक्षिणा मांगी तो शिष्य भी यह प्रतिज्ञा करता है–

विश्व में कर के वेद प्रचार,
करूं संस्थापित आर्यसमाज।
मातृ-भू भारत का उद्धार,
आर्य जाति का गौरव राज॥
इसी में अर्पण कर दूं अपने प्राण,
अमर है दयानन्द मम नाम।
आपकी आशिष से कल्याण,
सफल होगा गुरुवर यह काम॥

(आर्यसमाज और हिन्दी पृष्ठ ६७)

पाठक वृन्द! यह था तीसरा संकल्प जो महर्षि ने लिया। मेरे मत में सब से कठिन व्रत यही था और ऋषि को इसका बहुत मूल्य भी चुकाना पड़ा।। कहीं ईंट, कहीं पत्थर, कहीं गाली, कहीं गलौज, यहां तक कि १७ बार विषपान भी करना पड़ा। अनेको बार अपमानित भी होना पड़ा। किन्तु उस व्रती पर इन सबका कुछ भी प्रभाव न हुआ। उसकी तो मान्यता यही थी कि —

"निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

अर्थात् नीति निपुण लोग निन्दा करें

(शेष पृष्ठ ८ पर)

प्रभु भक्ति और उसकी आवश्यकता

लेखक : रघुनन्दन सिंह 'निर्मल'

ईश्वर की उपासना जीव का परम कर्तव्य होना चाहिए। जिस परमात्मा ने हम को शरीर दिया, इन्द्रियाँ दीं, मन दिया, बुद्धि दी, भोगने के लिए जगत् के पदार्थ तथा समस्त ऐश्वर्य दिये, उसको यदि हम भूल जावें तो इससे बड़ी कृतघ्नता और क्या होगी?

बहुत से लोग उपासना करते हुए ऐसा समझते हैं कि हम ईश्वर पर अहसान कर रहे हैं। ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है जो जगदिखावे के लिए ईश्वर की उपासना करते हैं। स्तुति, प्रार्थना, उपासना से हमारा अपना ही लाभ है, ईश्वर का क्या लाभ है? वह पूर्ण काम है, उसको हमारी स्तुति, प्रार्थना, उपासना की आवश्यकता नहीं है। अपने गुण, कर्म, स्वभाव सुधारने तथा मुक्त होने के लिए हमको ही इनकी आवश्यकता है।

प्रातः और सायं यह दो समय ऋषियों ने ईश्वर की उपासना के निर्धारित किये हैं। प्रत्येक मनुष्य को दोनों समय कम से कम एक-एक घंटा ईश्वर की उपासना अवश्य करनी चाहिए। ऐसा करने से जहाँ हम पापों से बचे रहेंगे वहाँ हमको सच्ची शान्ति भी प्राप्त होगी। उपासना द्वारा हम ईश्वर के अधिक से अधिक समीप होते चले जायेंगे और आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक तीनों प्रकार के दुःखों से छूटकर परम आनन्द प्राप्त करेंगे।

जो मनुष्य उपासना नहीं करता वह कृतघ्न होने से सज्जनों की दृष्टि में निन्दनीय है। मनुस्मृति में लिखा है :

न तिष्ठति तु यः पूर्वां
 नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः
 सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥

(मनुस्मृति, अ० २, श्लोक १०३)

अर्थ :--जो मनुष्य पूर्वा सन्ध्या (प्रातः काल) और पश्चिमा सन्ध्या (सायंकाल) में ईश्वर की उपासना नहीं करता उसको शूद्र के समान समस्त द्विजकर्मों से बहिष्कार कर देना चाहिये।

मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है। यदि हम मोक्ष प्राप्ति के लिए कोई प्रयत्न नहीं करते तो हमारा मनुष्य जीवन व्यर्थ है।

स्तुति शब्द का अर्थ और उसका वैदिक स्वरूप

स्तुति शब्द प्रशंसा के अर्थ में आता है। जो वस्तु जैसी है उसका वैसा ही वर्णन करना स्तुति और उससे विपरीत वर्णन करना निन्दा कहलाती है, जैसा कि कहा है :

"गुणेषु दोषारोपणमसूया", "दोषेषु-गुणारोपणमसूया", "गुणेषु गुणारोपणं दोषेषु दोषारोपणं च स्तुतिः।"

अर्थात् गुण को दोष और दोष को गुण बताना निन्दा है। गुण को गुण तथा दोष को दोष बताना स्तुति कहलाती है। कहने का तात्पर्य यह कि यथार्थ गुण-कीर्तन को ही स्तुति कहते हैं।

सगुण और निर्गुण भेद से स्तुति दो प्रकार की है। किसी पदार्थ में विद्यमान गुणों का यदि वर्णन किया जावे तो यह उसकी सगुण स्तुति होगी। इसके विपरीत किसी पदार्थ में न पाये जाने वाले गुणों का वर्णन उसकी निर्गुण स्तुति कहलायेगी।

उदाहरणार्थ ईश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ तथा न्यायकारी है--ऐसा कहना ईश्वर की सगुण स्तुति है क्योंकि इससे ईश्वर में पाये जाने वाले गुणों का बोध होता है।

इसके विपरीत ईश्वर में न पाई जाने वाली बातों का वर्णन अर्थात् उसको अनादि, निर्विकार, पापरहित तथा शरीर रहित आदि बताना उसकी निर्गुण स्तुति है।

ईश्वर की दोनों प्रकार की स्तुति वेदों तथा उपनिषदों में पाई जाती है, उदाहरणार्थ :--

"य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।"

(यजुर्वेद, अ० २५, मं० १३)

अर्थ :--जो शरीर से आत्मा का मेल कराने वाला तथा बल का देने वाला है, सब विद्वान् जिसकी उपासना करते और जिसकी शिक्षा को मानते हैं।

यह ईश्वर की सगुण स्तुति है क्योंकि इसमें ईश्वर में पाये जाने वाले गुणों का वर्णन है। इसके विपरीत।

"अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्"

(कठोपनिषद्, अ० १, वल्ली ३, मं० १५)

अर्थ :--वह परमात्मा शब्दरहित, स्पर्शरहित, रूपरहित तथा नाशरहित है।

यह ईश्वर की निर्गुण स्तुति है क्योंकि इसमें ईश्वर में न पाये जाने वाले गुणों का निरूपण है।

स्तुति का फल

बहुत से लोग ऐसा समझते हैं कि स्तुति करने से ईश्वर प्रसन्न होकर हमारी मनोकामनाएं पूर्ण कर देगा। यह विचारधारा मूर्खतापूर्ण है। क्या ईश्वर खुशामदपसन्द है कि प्रशंसा से प्रसन्न होकर किसी को निहाल कर दे अथवा निन्दा से अप्रसन्न होकर किसी का विनाश कर दे? ईश्वर न प्रशंसा से प्रसन्न और न निन्दा से अप्रसन्न होता है। बहुत से लोग ईश्वर को गालियाँ दिया करते हैं तो क्या ईश्वर क्रुद्ध होकर उनका नाश कर देता है? नहीं, वह तो सब काल सब पर दया ही करता है।

जैसा कि हम "दयालु" शब्द की व्याख्या करते हुए पहले बता चुके हैं कि यदि वह दुष्टों को उनके पापकर्मों का दंड देता है तो, यह भी उसकी दया ही है। प्रशंसा से प्रसन्न और निन्दा से अप्रसन्न होना मनुष्यों का स्वभाव है, ईश्वर का नहीं।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब ईश्वर स्तुति से प्रसन्न ही नहीं होता तो उसकी स्तुति क्यों की जावे? इसका उत्तर यह है कि स्तुति का फल और ही है, जैसा लोग समझते हैं वह नहीं है।

स्तुति करने से ईश्वर के गुणों का ज्ञान होता है और उसके प्रति प्रेम की उद्‌भूति होती है तथा उन गुणों को अपने में धारण करने की रुचि उत्पन्न होती है। ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव से परिचित होकर यदि हम अपने गुण, कर्म, स्वभाव नहीं सुधारते अर्थात् ईश्वरीय गुणों के अनुकूल अपने को नहीं बनाते तो स्तुति का कोई लाभ नहीं है। स्तुति का लाभ तभी है जब हम ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव को जानकर उसके अनुसार अपने गुण, कर्म, स्वभाव में सुधार करें।

स्तुति का यही फल श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने "सत्यार्थ प्रकाश" के सप्तम सम्मुल्लास में प्रकट किया है जो बुद्ध्यनुकूल होने से सर्वथा माननीय है।

प्रार्थना शब्द का अर्थ और उसका वैदिक स्वरूप

प्रार्थना शब्द का अर्थ है याचना अर्थात् मांगना। मांगा उसी से जाता है जो देने की सामर्थ्य रखता हो। ईश्वर देने की सामर्थ्य रखता है इसलिए उसी से मांगा जाना योग्य है।

संसार के लोग यदि कोई वस्तु किसी को देते हैं तो वह ईश्वर की ही दी हुई होती है इसलिये संसार के लोगों से न मांगकर ईश्वर से ही मांगना चाहिए। जो सब को देने वाला है उसी से मांगना उचित है, जो स्वयं दूसरे से लेता है उससे मांगना मूर्खता है।

संसार में प्रायः हम देखते हैं कि यदि कोई किसी का कुछ उपकार करता है तो वह उसका प्रतिफल अर्थात् बदला चाहता है। संसारी लोगों का दान किसी न किसी स्वार्थ को लिये हुए होता है परन्तु ईश्वर के दान में स्वार्थ को स्थान नहीं। ईश्वर सब जीवों का सदा उपकार ही करता है और बदले में किसी से कुछ नहीं चाहता।

स्तुति के समान प्रार्थना भी सगुण और निर्गुण भेद से दो प्रकार की है।

यदि किसी वस्तु अथवा गुण की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की जाती है तो वह सगुण प्रार्थना कहलाती है, उदाहरणार्थ --

"तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्य्यमसि वीर्य्यं मयि धेहि। बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि। मन्युरसि मन्यु मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि।"

(यजु०, अ० १९, म० ९)

अर्थ :--हे परमात्मन्! आप तेजस्वरूप हैं, मुझ में भी तेज स्थापन कीजिये। आप पराक्रम शाली हैं, मुझको भी पराक्रम युक्त कीजिये। आप अनन्त बल वाले हैं, मुझको भी बल प्रदान कीजिये। आप अत्यन्त ओजस्वी हैं, मुझको भी ओजस्वी बनाइये। आप दुष्टों पर क्रोध करने वाले हैं, मुझको भी वैसा ही बनाइये। आप सहनशील हैं, मुझको भी सहनशीलता प्रदान कीजिये।

इसके विपरीत यदि किसी दोष अथवा दुर्गुण से बचने की प्रार्थना की जावे तो वह निर्गुण प्रार्थना कहलायेगी जैसे कि :--

"युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम"

(यजु०, अ० ४०, मं० १६)

अर्थ :--हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप हमसे कुटिलतारूप पापाचरण को पृथक् रखिये ताकि हम आप की बहुत सी स्तुति करें।

उपर्युक्त मंत्र में जो कुटिलता रूप पापाचरण से पृथक् रखने की प्रार्थना की गई है--यह निर्गुण प्रार्थना है।

प्रार्थना के सम्बन्ध में दो बातें सदा स्मरण रखनी चाहियें। एक तो यह कि प्रार्थना अनुचित न हो, उचित हो। अनुचित प्रार्थना स्वीकार नहीं हुआ करती, जैसे कोई कहे कि हे परमेश्वर! आप पर धन हरण में मुझे सफल बनाइये, पराई स्त्री को मेरे वश में कर दीजिये, मेरे शत्रुओं का सर्वनाश कर दीजिये, मुझ

(शेष पृष्ठ ७ पर)

समाचार

आचार्य प्रियव्रत वेदमार्तण्ड आचार्य गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार से सम्मानित

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार के ८६ वें वार्षिकोत्सव पर ११ अप्रैल १९८६ को आयोजित वैदिक धर्म एवं संस्कृति संगोष्ठी में सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् आचार्य प्रियव्रत वेदमार्तण्ड को संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट, जयपुर के आचार्य गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार से समादृत किया गया। विश्वविद्यालय के कुलाधिपति डा० सत्यकेतु विद्यालंकार ने अध्यक्ष पद से आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति की आर्यसमाज और वेद के क्षेत्र में की गई सेवाओं का उल्लेख करते हुए उन्हें शाल समर्पित की। विश्वविद्यालय के आचार्य एवं उप-कुलपति प्रोफेसर रामप्रसाद वेदालंकार ने अभिनन्दन-पत्र तथा पुरस्कार राशि समर्पित की। प्रो० रामप्रसाद जी ने कहा कि आचार्य प्रियव्रत जी का सम्मान कर संघड़ विद्या सभा स्वयं सम्मानित हुई है। स्वतन्त्रता सेनानी तथा पूर्व सांसद श्री रामचन्द्र विकल इस समारोह के मुख्य अतिथि थे।

सम्मेलन के संयोजक डा० विष्णुदत्त राकेश ने प्रस्तावित भाषण में कहा कि विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा ने अपने पूज्य पिता आचार्य गोवर्धन शास्त्री की पुण्य स्मृति में स्थापित इस पुरस्कार से आर्यसमाज, वैदिक साहित्य तथा वेद प्रचार के क्षेत्र में जीवन समर्पित करने वाले महानुभावों के अभिनन्दन की योजना क्रियान्वित कर एक अभाव की पूर्ति की है। आचार्य प्रियव्रत जी से पूर्व यह पुरस्कार प्रो० रामप्रसाद वेदालंकार, डा० भवानीलाल भारतीय, पण्डित विश्वनाथ विद्यालंकार, पण्डित सत्यकाम विद्यालंकार एवं पण्डित भगवद्दत्त वेदालंकार को मिल चुका है। पुरस्कृत व्यक्तियों को एक शाल तथा एक सहस्र धनराशि समर्पित की जाती है।

दैनिक हिन्दुस्तान के पूर्व सम्पादक श्री क्षितीश विद्यालंकार, जयपुर विश्वविद्यालय के वैदिक विद्वान् डा० सुभाष वेदालंकार, दिल्ली विश्वविद्यालय के डा० प्रशान्त वेदालंकार तथा अफ्रीका और लन्दन के प्रमुख व्यवसायी तथा विद्वान् पण्डित सत्यदेव भारद्वाज वेदालंकार ने आचार्य प्रियव्रत के ग्रन्थों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। यहां यह ज्ञातव्य है कि आचार्य प्रियव्रत की शोधकृति "वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त" उनकी अन्य रचनाओं के साथ-साथ अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह अपने विषय का पहला मौलिक तथा प्रामाणिक ग्रन्थ है जो बड़े-बड़े तीन खण्डों में प्रकाशित हुआ है तथा जिसमें आधुनिक राजनीतिशास्त्र के ढांचे पर संविधान, सामाजिक अभ्युदय तथा कल्याण एवं प्रतिरक्षा पर हजारों मन्त्रों के सन्दर्भ में व्यवस्थित सामग्री प्रस्तुत की गई है। इस कृति से पूर्व भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वान् भी इतने अधिकार के साथ वैदिक राजनीति शास्त्र का सांगोपांग विवेचन नहीं कर सके थे।

अन्त में प्रो० रामप्रसाद वेदालंकार जी ने आगत महानुभावों का धन्यवाद कर समारोह की सफलता पर सन्तोष व्यक्त किया।

महाविद्यालय गुरुकुल झज्जर (रोहतक) में

१६ जून ८६ से २५ जून तक विशाल आर्यवीर एवं शिक्षक प्रशिक्षण शिविर

गुरुकुल झज्जर में एक विशाल सार्वदेशिक आर्यवीर दल का आर्यवीर एवं शिक्षक प्रशिक्षण शिविर १६ जून से आरम्भ होगा जिसका समापन समारोह बहुत ही धूमधाम से २५ जून को सम्पन्न होगा।

इस शिविर का सम्पूर्ण व्यय गुरुकुल ही वहन करेगा। खाने, पीने, रहने आदि का सब उत्तम प्रबन्ध भी गुरुकुल की ओर से ही होगा। इस शिविर मे डा० देवव्रत जी व्यायामाचार्य तथा उनके अनेक योग्य शिष्य, जो कि विविध व्यायामों में पारंगत हैं, वे यहां नवयुवकों को शारीरिक, बौद्धिक शिक्षा देंगे।

शिविर में भाग लेने वाले नवयुवकों से प्रार्थना है कि वस्त्र, पात्र आदि दैनिक कार्य में प्रयोग होने वाला सामान अपने साथ लावें।

निवेदक :
ब्र० विजयपाल
प्रधानाध्यापक

आवश्यकता

आर्यसमाज के पाक्षिक पत्र के लिए आर्यसमाजी विचारों के अनुभवी लेखक तथा सह-सम्पादक की आवश्यकता है। वेतन योग्यतानुसार। शिक्षा तथा अनुभव के विवरण सहित मंत्री आर्यसमाज अजमेर को लिखें।

निर्वाचन सम्पन्न

आर्यसमाज धूरी का वार्षिक चुनाव दिनांक ४-५-१९८६ को हुआ।

प्रधान—म० प्रतिज्ञापाल
मन्त्री—महाशय लक्ष्मणदास
कोषाध्यक्ष—श्री सतीशपाल आर्य

आर्य कालेज धूरी

प्रधान—डा० सन्तराम
सहायक—महाशय हरबंस लाल
मैनेजर—श्री बचनलाल गोयल

यश चौधरी आर्य माडल स्कूल, धूरी

प्रधान—महाशय लक्ष्मणदास
सहायक—श्री प्रहलाद कुमार आर्य
मैनेजर—श्री सतीशपाल आर्य

आर्य कुमार सभा, धूरी

संयोजक—श्री राधेश्याम मोहिल

दयानन्द स्पोर्टस क्लब, धूरी

प्रधान—श्री सुशीलदत्त
सहायक—श्री सोमप्रकाश
मैनेजर—श्री प्रदीप कुमार

निवेदक :
सतीश आर्य

आर्यसमाज सिलीगुड़ी का चुनाव सर्वसम्मति से दिनांक २७.४.८६ को सम्पन्न हुआ। जिसमें निम्नलिखित पदाधिकारियों का चुनाव हुआ।

प्रधान - श्री रतीराम शर्मा
मन्त्री—श्री सर्वेश्वर झा
कोषाध्यक्ष —सुभाष चन्द्र नकीपुरिया

मोहनचन्द्र गुप्त
उपमन्त्री
आर्यसमाज सिलीगुड़ी

वर्ष १९८६-८७ के लिए आर्यसमाज अमर कालोनी, लाजपत नगर के १८ मई १९८६ को निम्नलिखित अधिकारी चुने गये।

प्रधान—श्री मलक राज डावर
मन्त्री—श्री जोगेन्द्र नाथ उप्पल
कोषाध्यक्ष—श्री तिलकराज कपूर

निवेदक
जोगेन्द्र (मन्त्री)

आर्यसमाज राजौरी गार्डन की कार्यकारिणी के वार्षिक चुनाव वर्ष ८६-८७ के लिए निम्न अधिकारी निर्वाचित हुए।

संरक्षक—श्री मा० भगवानदास चानना
प्रधान—श्री देसराज सेठी
मन्त्री—श्री नन्द किशोर भाटिया
कोषाध्यक्ष—श्री केवल कृष्ण कोहली

स्त्री आर्यसमाज राजौरी गार्डन

संरक्षिका : माता सोमावन्ती आर्या
प्रधाना : श्रीमती रामचमेली देवी
मन्त्रिणी : ,, राज पाण्डे
कोषाध्यक्षा : ,, सत्यामंगल पाण्डे
सह कोषाध्यक्षा : ,, आनन्द कुमारी गुप्ता

द्विजेन्द्र कुमार शास्त्री
पुरोहित

आर्यसमाज परमानन्द बस्ती, बीकानेर का वार्षिक निर्वाचन सर्व सम्मति से दिनांक ४.५.१९८६ को श्री प्रो० प्रताप सिंह जी की प्रधानता में सम्पन्न हुआ।

अन्तरंग सभा के पदाधिकारी एवं सदस्य निम्नलिखित निर्वाचित हुए :—

प्रधान : श्री अमरनाथ जी
मन्त्री : धर्मपाल
कोषाध्यक्ष . श्री सेठ जमनलाल जी आर्य

गोरखपुर में वार्षिकोत्सव

आर्यसमाज असुरन रेलवे कालोनी, वेद मन्दिर गोरखपुर का ४३ वां वार्षिकोत्सव दिनांक ९-५-८६ से १२.५.८६ तक बड़े धूम-धाम के साथ मनाया गया। कार्यक्रम का उद्घाटन श्री लालजी सिंह सपत्नीक (भूतपूर्व महाप्रबन्धक पूर्वोत्तर रेलवे) ने यज्ञ के बाद ध्वजोत्तोलन एवं अपने संक्षिप्त भाषण से किया।

उक्त कार्यक्रम में श्री ब्रह्मचारी अखिलेश्वर जी, व्याकरणाचार्य आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय कालवा हरियाणा, श्री आचार्य सूर्यवंशी पाण्डे जौनपुर; श्री आचार्य सुक्रांमित्र शास्त्री विद्या मार्तण्ड दरभंगा के गम्भीर एवं विद्वत्ता पूर्ण प्रवचन के साथ ही श्री वीरेन्द्र आर्य गाजीपुर एवं श्री ठाकुर इन्द्रदेव सिंह छपरा के सरस एवं ओजस्वी भजनोपदेश से क्षेत्र की जनता मंत्रमुग्ध हो गई।

—मन्त्री

आर्यसमाज स्थापना तथा निर्वाचन

आर्यसमाज मन्दिर की स्थापना पूज्य स्वामी स्वरूपानन्द जी, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि के कर कमलों द्वारा, पुष्पांजलि एन्क्लेव प्रीतमपुरा, दिल्ली-११००३४ में १५।४।८६ को, की गई। यह कालोनी बिल्कुल ही नई है, जिसमें लगभग ६००-प्लाट हैं। अभी २०० मकान बने हैं और १०० के लगभग व्यक्तियों ने अपने-अपने मकान बना कर रहना प्रारम्भ कर दिया है। आर्यसमाज मन्दिर भवन यज्ञशाला भी बन रही है।

प्रधान : श्री विद्यासागर
उप प्रधान : श्रीमती शिवबाला गुप्ता
मन्त्री : विद्या प्रकाश वर्मा
उप मन्त्री : श्रीमती सुदेश कुमारी नारंग
कोषाध्यक्ष : श्री बी० एस० कक्कड़

—मन्त्री

महाराजा रणवीर सिंह...

(पृष्ठ ३ का शेष)

पक्ष मे लिखा गया। दक्षिणा पर मरने वाले काशी के पण्डितों से भी इस व्यवस्था की महाराजा ने पुष्टि करवा ली।

यह महाराजा रणवीरसिंह पर ऋषि दर्शन की अमिट छाप थी कि महाराजा के वशजो पर आर्यसमाज का गहरा प्रभाव रहा। महाराजा प्रतापसिंह जी महात्मा हंसराज जी के विशेष भक्त थे। प० गणपति शर्मा जी के प्रति पूज्य भाव रखते थे। महाराजा हरिसिंह भी आर्य समाज से बड़े प्रभावित थे। उनकी मृत्यु इच्छा Death-Will के अनुसार उनका दाहकर्म आर्य विद्वान् श्री प० देवव्रत जी शास्त्री बम्बई ने करवाया। डा० कर्णसिंह नेता बन गये। वह आर्य समाज के निकट कभी नही आए।

पुन. मैं आर्य विद्वानो से कहूगा कि प्राणवीर प० लेखराम द्वारा महाराजा रणवीर सिंह की प्रशंसा को ध्यान में रखते हुए, महाराजा पर ऋषि की छाप का रहस्य समझें। उपरोक्त घटना ही इसका कारण है।

हिंदी भाषा-लिपि

(पृष्ठ २ का शेष)

ईकार भी अक्षर के बाद (दायी ओर) हो, किन्तु दीर्घ ईकार की तुलना मे ह्रस्व ईकार के नीचे की रेखा आधा छोटी हो, जैसे—कीसी, प्रीय, भादी।

९. उच्चारणत तीनों उष्म वर्ण एक समान हैं, अतः श, ष को हटाकर सिर्फ दंतीय 'स' ही प्रयुक्त हो।

१०. बनावटी संयुक्ताक्षर क्ष, त्र, ज्ञ को हटाकर छात्र, लक्क्षमी, ग्यान, इसी प्रकार लिखाये। किसी भी शब्द का बहुवचन बनाने के लिए सिर्फ गण या वृन्द का प्रयोग हो।

११ सयुक्ताक्षर को आपस में इतना न सटाया जाए कि उसका मौलिक रूप ही दुर्बोध हो जाये, अतः भक्त, निश्वास, विद्यालय जैसे शब्द इस प्रकार से भक्त, दफ्तर, विद्यालय हों।

१२. बगला, अंग्रेजी आदि की तरह हिन्दी मे भी लिंग सिर्फ नर-मादा प्राणियों के संबोधक शब्दों तक ही सीमित रहे। सभी निर्जीव वस्तु कुर्सी आदि नपुंसक या पुल्लिग मान लिया जाये।

१३. बगला अंग्रेजी आदि की तरह हिन्दी का भी क्रियापद दोनों लिंगो में एक समान हो, जैसे—राम आस्छे, सीता आस्छे, राम कम्स--सीता कम्स, अतः 'राम आता है--सीता आता है' हो।

१४. पूर्ण विराम की जगह पर बिन्दु का प्रयोग हो।

१५. 'ख' में नोचे के दोनो सिरों को सटाकर लिखा जाये, ताकि 'र' और 'व' का भ्रम न हो।

१६. रेफा का स्थान दायीं वर्ण पर न होकर बिंदु की तरह बायीं वर्ण पर ही होना चाहिए, जैसे—कर्म, दुर्दिन, अर्त ग्लानि, वर्मन आदि।

१७ कुछ उर्दू शब्दो के नीचे लगने वाला बिंदु (नुक्ता) का प्रयोग बद हो।

१८. क्लिस्ट शब्दो की उपेक्षा कर, अन्य भाषाओं के सरल शब्दो (अधिकाशत. संस्कृत) एवं लिपि के उन वर्णों को हिन्दी मे मिला लिया जाये, जो पाच्य हो, जैसे बगला के क, ख, न, व आदि।

१९ आजकल चंद्र बिंदु के स्थान पर सिर्फ बिंदु का ही प्रयोग चल पड़ा है, जो भ्रामक है, क्योंकि किसी वर्ण पर बिंदु रखने से आगे वाले वर्ण का पचम वर्ण अर्धोच्चरित होता है। जैसे सपादक, मंगल, वदना आदि। किंतु बिंदु लगे वर्ण के बाद कोई वर्ण न हो तो वह बिंदु म् उच्चारण होता है, जैसे स्वय, वर, एव अत: मा, दांत, पाच, हंसना आदि पर चद्र बिंदु लगे।

२० गैर हिंदी क्षेत्रों से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं मे वहाँ की ही भाषा मे किन्तु नागरी लिपि मे वहीं के जन जीवन से सम्बन्धित सर्वप्रिय एक रोचक स्तम्भ नियमित प्रकाशित हो, एव प्रति सप्ताह या मास "स्वराष्ट्र लिपि भारती सीखिये" शीर्षक से वहाँ की लिपि के माध्यम से नागरी लिपि का ज्ञान कराया जाय। राष्ट्रीय एकता के लिये ऐसा अमोघ कदम उठाने मे बगाल, गुजरात और पंजाब जैसे अर्ध हिन्दी एवं गैर हिन्दी प्रेस सम्पादकों को पहल करना चाहिए।

(विविध भाषा के भूत एवं वर्तमान विद्वानों-साहित्यकारो के विचार, व्यवहार तथा निज विवेकानुसार यह सुझाव-सूत्र हिन्दी हितचिन्तको को सादर समर्पित है।)

प्रभु भक्ति और उसकी...

(पृष्ठ ५ का शेष)

को सर्वज्ञ बना दीजिए, मनुष्य रूप मे पृथ्वी पर अवतरित हो जाइए आदि। ईश्वर असम्भव प्रार्थनायें स्वीकार नहीं किया करता और न बुरे काम में किसी की सहायता करता है।

दूसरे यह कि प्रार्थना पुरुषार्थ सहित होनी चाहिए पुरुषार्थ रहित प्रार्थना कभी स्वीकार नहीं होती। यदि कोई अहर्निश यह प्रार्थना करता रहे कि हे परमात्मन्! आप मेरा मकान बना दीजिए परन्तु मकान बनाने का कोई प्रयत्न स्वय न करे तो क्या मकान बन जाएगा? कदापि नहीं बनेगा। इससे क्या सिद्ध हुआ कि प्रार्थना

(शेष पृष्ठ ८ पर)

R. N No. 32387/77 Post in N.D.P.S.O. on 5, 6-5-86 Licenced to post without prepayment, Licence No. U 139
रजि० नं० डी० (सी०) ७५६ पूर्व भुगतान बिना भेजने का लाइसेंस नं० यू १३९

(पृष्ठ ४ का शेष)

या प्रशंसा, लक्ष्मी आवे अथवा चली जाये, चाहे आज ही मरण हो या युगान्तर में, धीर पुरुष न्याय के पथ से कभी विचलित नहीं होते। गेटे ने ठीक ही कहा था कि ...य दृढ़ और अटल है, वह ...ने सांचे में ढाल सकता है। ...यह कर दिखाया। संसार ...ी वेद-विद्या के प्रचार-प्रसार ...र महर्षि दयानन्द को जाता ...र्य के सम्पादन ... कितने कष्ट ...। भी कठिन है। ...श्नों का समाधान करने वाला महाप ही महामानव था। उसने अपने जीवन में जो संकल्प लिए उन्हें पूरा करके दिखाया यही उनकी विशेषता है। प्रायः लोग अपने जीवन में शुभ संकल्प लेते ही नहीं और यदि लेते भी हैं, तो उनकी पूर्ति नहीं कर पाते। किन्तु महर्षि ने शुभ संकल्प भी लिए और उनकी पूर्ति भी की। उनका जीवन केवल प्रश्नों का समुच्चय ही नहीं था अपितु साथ में समुचित समाधान लिए हुए था। तभी वह महामानव कहलाया। अरविन्द ने ठीक ही कहा था कि—'यदि संसार के महामानवों को पर्वत की चोटियां कहा जाये, तो दयानन्द सबसे ऊंची चोटी है।" वह अपने नाम में भी निराला था और काम में भी। ऐसे महामानव को शत-शत नमन।

(पृष्ठ ७ का शेष)

के साथ पुरुषार्थ आवश्यक है, पुरुषार्थ रहित प्रार्थना व्यर्थ है।

अब यदि कोई कहे कि जब पुरुषार्थ से ही कार्यसिद्धि होती है तो फिर प्रार्थना का क्या लाभ है तो इसका उत्तर यह है कि प्रार्थना का अपना लाभ है। प्रार्थना करने से अभिमान का नाश सहायता प्राप्ति और उत्साहवृद्धि होती है।

जब कोई व्यक्ति किसी से कुछ मांगता है तो अभिमान का त्याग करके ही मांगता है। अभिमान का नाश तो प्रार्थना का तत्कालिक फल है। इसके अतिरिक्त यदि प्रार्थना उचित और पुरुषार्थ सहित होती है तो परमात्मा उसकी सहायता भी करते हैं।

परमात्मा की ओर से सहायता प्राप्त होना प्रार्थना का दूसरा लाभ है।

जब कोई मनुष्य किसी शुभ कार्य के लिए पूर्ण पुरुषार्थ करता है और साथ ही ईश्वर से प्रार्थना भी करता है तो उसका उत्साह स्वयमेव बढ़ जाता है क्योंकि वह जानता है कि परमात्मा न्यायकारी होने से मेरे पुरुषार्थ का फल मुझको अवश्य प्रदान करेंगे। उत्साहवृद्धि प्रार्थना का तीसरा फल है। □

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन : ३१०१५० के लिए ला० धर्मपाल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा वैदिक प्रेस, गली नं० १७, कैलाशनगर दिल्ली-३१ में मुद्रित। रजि० नं० डी० (सी०) ७५६

वर्ष १० : अंक २९ | रविवार, १५ जून, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ | ज्येष्ठ २०४३ | दयानन्दाब्द—१६१
मूल्य । एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश में ५० डालर, ३० पौंड

आखिर कब तक बहेगा निर्दोषों का खून

आखिर कब तक चलेगा यह खून का बहना, गोलियों का चलना ? कब तक पंजाब में बेकसूर लोगों की जान लेकर आतंकवादी दिन दहाड़े अलोप होते रहेंगे और कोई माई का लाल उनका बाल भी बाका नहीं कर पायेगा ? कब तक मुख्यमंत्री बरनाला देशद्रोहियो को सख्ती से कुचलने की रणनीति बनायेंगे और उनकी निकम्मी पुलिस गोली चलते ही दडबो मे दुबक जायेगी ? कब तक आतकवादियो, बन्दूक, रायफल्स, बम का राज चलेगा ? समझाने बुझ ने की और समझदारी की भी कोई हद होती है।

अकाली सरकार अब तक कोई ऐसा कदम नही उठा पायी जिससे पजाब के हिन्दुओं के मन मे सुरक्षा का भाव आ सके बल्कि अकाली सरकार के कार्य व्यवहार से साबित हो चुका है कि उसे उग्रवादियों और आतकवादियों का डर है। लोकतन्त्र की चिन्ता नही।

एक सप्ताह का घल्लुघारा २४ जानें लेकर और अनगिनत लोगों को घायल करके खत्म हो गया । १९७४ में स्वर्ण मन्दिर में की गई सैनिक कार्रवाई मे मरे लोगों की सख्या बहुत ही कम थी परन्तु जिसके नाम पर घल्लुघारा सप्ताह मनाया गया अब तक पाच साल की हिसा के दौर मे पजाब में बेकसूर लोग कथित घल्लूघारे से भी अधिक घल्लुघारा भोगते रहे हैं गये साल लोग उम्मीद करते थे कि समझौता हो, चुनाव हो और अकाली सरकार बने तो आतकवादियो की कार्रवाइया अपने आप कम हो जायेंगी। लेकिन पिछले नौ महीने का रिकार्ड देखें तो अकाली राज मे आतंकवादियों ने और ज्यादा लोगों को और ज्यादा सरेआम और बेरहमी से मारा है। अमृतसर गुरदासपुर और फिरोजपुर जिलो में तो जैसे आतकवादियों का राज ही हो गया है । इन्ही जिलों से अल्पसंख्यक हिन्दु भागकर आये हैं और आ रहे हैं।

पाकिस्तान की सीमा से लगे इन्ही जिलो से आतकवादियो को ट्रेनिंग और हथियार मिलते हैं। आर्यसमाज, पजाब के हिन्दू, तथा भारतीय जनता पार्टी इन्ही जिलो को सेना के हवाले करने की बात कर रहे हैं। लेकिन बरनाला सरकार पजाब मे सेना को भेजने में लगातार हिचकिचा रही है। ऐसा लगता है १९८४ के अनुभव की तरह अर्घ सैनिक बलों के पूरी तरह विफल हो जाने पर ही सेना को सौंपने की बात सरकार सोचेगी परन्तु आज तक के हालात कह रहे हैं कही बहुत देर न हो जाये। बरनाला सरकार ने गुरदासपुर बी० एस० एफ० को और अमृतसर सी० आर० पी० को सौंपा है। इन जिलों में ये दोनों अर्ध सैनिक बल पहले से ही हैं लेकिन अब तक पजाब पुलिस के साथ और उसकी कमान मे काम करते थे। अब गुरदासपुर का जिम्मा बी० एस० एफ० के एक विशेष महानिरीक्षक और अमृतसर सी० आर० पी० के महानिरीक्षक के अधीन होगा। श्री बरनाला ने इन दो जिलो के लिए चौबीस और कम्पनिया मागी थी। दस

(शेष पृष्ठ ७ पर)

बरनाला सहित सारे अकाली खालिस्तानियों के सहायक हैं

—ओमप्रकाश आर्य

हिन्दु शिव सेना हरि नगर यूनिट का उद्घाटन करते हुए दिल्ली हिन्दु शिव सेना के अध्यक्ष श्री ओम प्रकाश आर्य ने भाषण देते हुए कहा कि बादल, टोहरा और बरनाला सभी एक ही थैली के चट्टे बट्टे हैं और अन्दर से सब ही खालिस्तान चाहते हैं, और भारत सरकार की नीति आतंकवादियो के प्रति कायरतापूर्ण है।

श्री आर्य ने कहा पजाब की अधिकांश पुलिस ही आतंकवादियों से मिली हुई है। और वही पंजाब में हिन्दुओं को चुन चुनकर मार रही है। श्री आर्य ने मांग की कि सारी पंजाब पुलिस को पंजाब से हटा लिया जाये, स्वत ही शान्ति स्थापित हो जायेगी।

शिव सेना दिल्ली प्रदेश के महामन्त्री श्री देवकी नन्दन शास्त्री ने कहा कि यदि इस प्रकार से मारकाट जारी रही तो पंजाब को फौरन सेना के हवाले किया जाये।

श्री शास्त्री ने कहा कि शिव सेना देश की अखण्डता और एकता के लिए किसी से किसी प्रकार का कोई समझौता नही करेगी। आपने कहा कि हमारे कोई भी राजनीतिक स्वार्थ नहीं हैं, परन्तु अब

(शेष पृष्ठ ७ पर)

श्री रामगोपाल शालवाले द्वारा २२ जून ८६ को संन्यास ग्रहण

सार्वदेशिक सभा के माननीय प्रधान प्रसिद्ध आर्य नेता श्री रामगोपाल शालवाले २२ जून ८६ को संन्यास दीक्षा ले रहे हैं।

भारतवर्ष के वीतराग संन्यासी त्यागमूर्ति स्वामी सर्वानन्द जी एवम् अनेक संन्यासी विद्वान् लोग दिल्ली पधार रहे हैं। संन्यासदीक्षा श्री स्वामी सर्वानन्द जी देंगे।

संन्यासदीक्षा स्थल यमुना किनारे लालकिले का निकटवर्ती स्थान होगा या आर्यसमाज दीवान हाल होगा। कार्यक्रम प्रातः ७ बजे से ही प्रारंभ हो जायेगा। समस्त आर्यसमाज एवम् आर्यसंस्थाएँ व आर्यजन अपने सत्सग स्थगित कर कार्यक्रम में नियत समय पर पधारें।

प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल | व्यवस्थापक—डा० गणेशीलाल | सम्पादक—यशपाल सुधांशु

प्रेरक प्रसंग

प्रस्तोता—सत्यानन्द आर्य

: १ :

एक दिन विनोबा जी के पास कालिज के कुछ छात्र आए तो उन्होंने छात्रों को कागज के कुछ टुकड़े देते हुए कहा, "इन टुकड़ों को जोड़कर भारत का नक्शा बनाना है।"

छात्र बहुत देर तक सिर खपाने के बाद भी उन टुकड़ों को जोड़कर नक्शा नहीं बना सके। पास ही एक नौजवान बैठा हुआ यह सब देख रहा था कुछ साहस करके उसने विनोबा जी से कहा, यदि आप आज्ञा दें तो मैं इन टुकड़ों को जोड़ दूं।"

विनोबा जी की आज्ञा पाकर कुछ ही देर मे उस युवक ने टुकड़े जोड़कर नक्शा बना दिया। विनोबा जी ने उससे पूछा, "तुमने इतनी जल्दी इन टुकड़ों को कैसे जोड़ दिया?" युवक ने कहा "इन टुकड़ों मे एक तरफ भारत का नक्शा है और दूसरी तरफ आदमी का चित्र मैंने आदमी को जोड़ा, नक्शा अपने आप बन गया।"

यह सुनकर विनोबा जी बोले, "ठीक है, यदि हमें देश को जोड़ना है तो पहले प्रत्येक नागरिक को जोड़ना पड़ेगा। देश-वासी आपस मे जुड़ेंगे तो देश अपने आप जुड़ जायेगा।"

: २ :

पांच वर्ष की आयु में नेता जी सुभाष चन्द्र बोस को अंग्रेजी स्कूल में पढने के लिए भेजा गया। अंग्रेज बात-बात मे भारतीयों का अपमान करते थे। इसी तरह इस स्कूल मे भी बंगाली छात्रों का अपमान किया जाता।

एक बार सब विद्यार्थी खेल रहे थे कि उनमें से एक अंग्रेज विद्यार्थी बोला कि भारतीय बहुत नीच होते हैं। इस पर दूसरा अंग्रेज छात्र बोला—मैं इन्हें जहां देखता हू ठोकर मार देता हू। यह सुनकर सभी भारतीय बालक तिलमला उठे, पर वे एक दूसरे की ओर देखने लगे। अब सुभाष बोस से रहा न गया और एकदम उन अंग्रेज लड़कों के सामने जाकर क्रोध से बोले–मैं भारतीय हूं, बोलो क्या कहते हो? बालक सुभाष का यह रूप देखकर अंग्रेज बालकों के होते उड गये और वे अपराधी की तरह भूमि की ओर देखने लगे। जब उनसे कोई उत्तर न मिला, तो हमारे नेताजी बोस उन की ओर बढ़े और बोले—भारतीय नीच होते हैं? ऐसा कहकर उन दोनों को ठोकर से भूमि पर गिरा दिया।

: ३ :

मिशन स्कूल में जहाँ हंसराज पढ़ते थे, वहां हिन्दू धर्म और जाति का मजाक उड़ाया जाता था। विद्यार्थियों के सामने हिन्दू धर्म पर आक्षेप किये जाते थे। एक दिन की बात है कि जब हंसराज नवीं श्रेणी में पढ रहे थे, मिशन स्कूल के हैड मास्टर, मिस्टर दास कहने लगे कि प्राचीन काल में आर्य लोग ईश्वर को नहीं जानते थे, वे पत्थर के देवी देवताओं को पूजते थे। इस पर झट हंसराज ने खड़े होकर कहा, "आप गलत कह रहे हैं। प्राचीन काल में सब आर्य एक ही ईश्वर उपासक थे।" साथ ही उन्होंने ईसाई मत आक्षेप कर डाले।

हैडमास्टर ने आग बबूला होकर हंसराज पर बेंतों की बौछार कर डाली और उसे श्रेणी से निकाल दिया। थोड़े दिन बाद उसने हंसराज के सद्‌विचारों प्रेरित होकर उसे फिर स्कूल में दाखिल कर लिया। पर इस घटना से सब विद्यार्थियों की आंखें खुल गईं और हंसराज के दिल में इस बात ने घर कर लिया कि हिन्दुओं को अपनी कोई शिक्षा संस्था होनी चाहिए, जिससे सब हिन्दु सम्मानपूर्वक शिक्षा प्राप्त कर सकें। आगे चलकर उन्होंने लाहौर में दयानन्द कालेज की स्थापना की और आजन्म उसकी सेवा का व्रत लिया।

: ४ :

स्वाधीनता संग्राम में जेल में सरकार द्वारा सत्याग्रहियों को विशेष छूट दी गई थी कि यदि वे चाहें तो घर से कपड़े मंगा कर पहन सकते थे। बडे-बडे नेताओं के के लिए जिनमें, लाल बहादुर शास्त्री भी सम्मिलित थे, बाहर से कपडे भेजे जाने लगे। किन्तु शास्त्री जी इसे अपने उसूलों के खिलाफ समझते थे। उन्होंने हमेशा वही कपड़े पहने जो जेल से मिलते थे। प्रतिदिन सुबह उठकर उन कपड़ों को धोना उनकी दिनचर्या का सामान्य अंग था।

इसी प्रकार अच्छे से अच्छा खाना भी उनके लिए बाहर से आता था। परन्तु शास्त्री जी ने इस भोजन को कभी हाथ नहीं लगाया। वे हमेशा इसे सामान्य वर्ग के सत्याग्रहियों में बांट दिया करते थे। उनका कहना था कि हमारे लिए तो अच्छा खाना बाहर स आ जाता है, किन्तु इन बेचारों को रूखा सूखा खाकर ही सोना पड़ता है। इतना ही नहीं जेल में मिलने वाले खाने की स्वादिष्ट चीजों को भी वे अपने साथियों में बांट देते थे। दूसरों का पेट भर कर अपने आप रूखा सूखा खा कर रह जाने में ही वे प्रसन्नता अनुभव करते थे।

: ५ :

स्वतन्त्रता संघर्ष के समय लाल बहादुर शास्त्री जी परिवार की अपेक्षा देश को बड़ा मानते थे। एक बार किसी काम से वे परिवार के साथ लखनऊ के अपने किराये के मकान में ठहरे हुए थे। उनकी लड़की पुष्पा को बड़ी चेचक निकल आई। डाक्टर ने सलाह दी कि बच्चे को हीटर से गर्म किए कमरे में रखा जाए। शास्त्रीजी के पास इतना पैसा कहां कि वे हीटर पर होने वाले बिजली के खर्च का बिल अदा कर सकें। अंगीठी आदि से कमरे को गर्म रखने का प्रयत्न किया गया, सब बेकार सिद्ध हुआ। कुछ ही समय बाद पुत्री चल बसी।

नेहरू जी भी उन दिनों लखनऊ में कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेने के लिए आए हुए थे। जब उन्हें इस घटना पता लगा तो वे नाराज हुए और उन्होंने उनसे कहा कि मेरे रहते हुए तुम्हारे घर में पैसे की कमी के कारण मृत्यु हो जाए, कितनी शर्म की बात है। भविष्य में कभी भी ऐसी ऐसी बातों के लिए मुझसे संकोच मत करना।

शास्त्रीजी भी इस बात को भली भांति जानते थे कि उनके एक बार कहने पर लोगों की रुपयों की थैलियां उनके सामने खुल जाएंगी, उनके सारे दु:ख दर्द दूर हो जाएंगे, किन्तु वे किसी और मिट्टी के बने थे।

: ६ :

एक बार प्रातः काल ईश्वरचन्द्र विद्यासागर घूमने जा रहे थे। आपने देखा कि एक आदमी रोता हुआ जा रहा है। आप उसके पास गये और प्रेम से उसके दुःख का कारण पूछा। इन को सादी वेश-भूषा में देखकर बोला कि मैं बड़े-बड़े धनवानों के पास गया, पर किसी ने मेरी सहायता न की। आप क्या कर सकेंगे? ईश्वर जी के बहुत विनय करने पर वह बोला—भाई! मेरे बाप दादों की सम्पत्ति केवल एक घर ही है वह कल नीलाम होगा, अब हम लोग कहाँ रहेंगे? आपने उसका पता पूछ लिया।

अगले दिन आप कचहरी में गये और उसके नाम २३०० रु० जमा करा आए। उधर वह आदमी दिन भर कचहरी वालों की राह देखता रहा। जब कोई न आया तो वह घबराकर कचहरी में गया। पता चला कि कोई सज्जन तेईस सौ रुपये जमा कर गए हैं वह सोचने लगा कि हो न हो, यह काम उन्हीं सज्जन का है जो मुझे प्रातः काल मिले थे। वह आपको ढूंढने लगा।

एक दिन प्रातः काल वायु सेवन को जाते समय उसने आपको पहचान ही लिया। और दोनों हाथ जोड़कर बोला कि आपने मुझे बचा लिया है, मेरा बड़ा उपकार किया है। इस पर आपने उत्तर दिया- तुम्हें भलाई का बदला चुकाना चाहिए। इसलिए मैं तुम से चाहता हूं कि इस बात को किसी से मत कहना। वह आपका त्याग देखकर हैरान रह गया।

मिरजापुर में आर्यसमाज का सफल आयोजन

आर्यसमाज मन्दिर चोपन मिर्जापुर की तीन दिवसीय चौबीसवां वार्षिकोत्सव १६-५-८६ से १८-५-८६ तक बड़े उत्साह एवं उल्लास के साथ मनाया गया। जिस में आर्योपदेशक विद्वान श्री पं० जयप्रकाश आर्य भूतपूर्व इमाम बेतिया, तथा भजनोपदेशक श्री वीरेन्द्र आर्य श्री विश्राम सिंह सम्मिलित हुए।

समारोह अत्यन्त सफल रहा।

भवदीय:

ठा० रिजौराम मंत्री

आर्यसमाज मंदिर, चोपन मिरजापुर

प्रवेश प्रारम्भ

गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन की वार्षिक परीक्षायें समाप्त हो गई। अधिकांश ब्रह्मचारी अपने-अपने घर चले गये; और कुछ अब भी आश्रमों में निवास कर रहे हैं।

१ जुलाई ८६ से नवीन बालकों का प्रवेश प्रारम्भ हो जायेगा। गुरुकुल आश्रमों में अपने बालकों का प्रवेश दिलाने के इच्छुक महानुभाव गुरुकुल वृन्दावन के कार्यालय से प्रवेश की जानकारी प्राप्त कर लें।

मुख्याधिष्ठाता

देवप्रकाश आर्य

नामकरण संस्कार आवश्यक है

लेखक : सुरेशचन्द्र वेदालंकार

संसार में प्रत्येक पुरुष और स्त्री को पुकारने के लिए नाम रखा जाता है। साधारणतया यह समझा जाता है कि नाम रखने का केवल मात्र उद्देश्य उसे पुकारना है। बात ठीक भी है कि वस्तु का ज्ञान नाम के बिना हो भी नहीं सकता है। जब तक किसी वस्तु या प्राणी की संज्ञा नहीं होती तब तक उस के सम्बन्ध में ज्ञान प्रत्ययात्मक(perceptual)तो हो सकता है परन्तु क्रियात्मक, व्यवहारात्मक तथा उपयोगात्मक नहीं हो सकता। प्रत्यात्मक ज्ञान का भाव है कि जैसे हमें घोड़े और गधे का ज्ञान है, हमें यह ज्ञान दूसरों को बताना संभव न होगा। हम दूसरों को कोई बात समझाने या दूसरों के साथ बातचीत में प्रयोग नहीं कर सकेंगे। यह ज्ञान हम तक सीमित रहेगा। प्रत्यात्मक ज्ञान दार्शनिक परिभाषा के अनुसार 'निर्विकल्पक ज्ञान' कहलाता है। निर्विकल्पक का तात्पर्य है संज्ञा या नाम रहित ज्ञान जब नामकरण कर दिया जाता है तब इसे 'सविकल्पक' ज्ञान कहा जाता है। सविकल्पक ज्ञान पर हमारे सभी सांसारिक ज्ञान और व्यवहार चलते हैं। नामकरण इसी सविकल्पक ज्ञान का प्रारंभ है। बच्चा जब संसार में आएगा तो उसका भाई बहन, मां बाप आदि सम्बन्धियों समाज में अनेक मित्रो, शत्रुओं आदि से पाला पड़ेगा अतः उसे नाम देना आवश्यक है।

नामकरण भी एक धार्मिक संस्कार है। और शब्द का प्रभाव मनुष्य के ऊपर पड़ता है। शब्द क्या है ? शब्द नाम का ही दूसरा नाम है। प्रत्येक शब्द का एक भाव है जिससे हम किसी अर्थ को ग्रहण करते हैं। जब हम बालक को कोई नाम देते हैं तब उस के लिए एक शब्द चुन लेते हैं जिस का प्रयोग बालक केलिए आयु भर किया जाता है। जिस शब्द का नाम के रूप में आयु भर प्रयोग किया जाना है उस के चुनने के लिए कितना सतर्क रहना चाहिए यह स्वाभाविक है।

यही कारण है कि नामकरण संस्कार भी हमारे यहां संस्कार के रूप में रखा गया है। इस संस्कार से पूर्व जातकर्म संस्कार वैदिक प्रथा केअनुसार किया जाता है। यह संस्कार जन्म लेने के बाद किया जाता है और उस जातकर्म संस्कार में माता पिता बच्चे के व्यक्तित्व निर्माण के लिए अपने हृदय में एक लक्ष्य निर्धारित करते थे और नामकरण संस्कार द्वारा वे अपने लक्ष्य या संकल्प को स्थूल रूप देते हैं। बालक के सामने वे जो लक्ष्य रखना चाहते हैं वैसा नाम उसे देते हैं। अतः नाम केवल पुकारने के लिए नहीं होता, उसके पीछे माता-पिता की बच्चे को जो बनाने की इच्छा होती है, वह भी अन्तर्निहित होती है। अतः नामकरण संस्कार द्वारा जाने, अनजाने में उसके जीवन के लक्ष्य को याद कराते रहना है। उदाहारणार्थ 'सत्य स्वरूप' नाम वाला व्यक्ति अगर झूठ बोले तो उसे स्वयं शर्म आए। प्रेम सागर कहाने वाला अगर लड़े झगड़े तो उसका नाम ही उसे झिड़क दे।

नाम कैसे हों—नामों के विषय में हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि नाम छोटे और सरल रखने चाहिए। ऐसे नामों का उच्चारण भी सरल होता है और वे आसानी से याद भी रखे जा सकते हैं। नाम भद्दे और विचित्र होते हैं तो कभी कभी वे प्रहसन के कारण भी बन जाते हैं। कहीं एक बड़ा मनोरंजक चुटकुला पढ़ा था। एक दिन एक स्त्री ने बड़े शौक से दही की पकौड़ियां बनाई। उसने बड़ी प्रसन्नता के साथ अपनी पड़ोसिन को बुलाया और उस ने उस से मुस्कराते हुए कहा 'बहन, मैंने आज बड़ी जायकेदार चीज बनाई है।'

'क्या बनाई है ऐसी चीज ?' पड़ोसिन ने उत्सुकता के साथ पूछा।

वह स्त्री कुछ देर चुप रही फिर हंस कर बोली, 'मुन्ने के पिता जी को मसालेदार दही में डाला है।'

बेचारी पकौड़ी कैसे कहती क्योंकि उस के पति देव का शुभ नाम 'पकौड़ीमल' था। औरत अपने पति का नाम कैसे लेती। मुन्ने के पिता जी को मसालेदार दही में डालने का मतलब शायद आप समझें या न समझें पर औरतों की भाषा औरतें आसानी से समझ लेती है, उसे यह पहेली झट समझ आ गई और आज उस ने भी बहुत अधिक स्वादिष्ठ वस्तु अपने यहां तैयार की थी। वह खुश होकर बोली 'बहन, मैंने भी आज एक बढ़िया पकवान बनाया है।'

'लड्डू ?' मुन्ने की मां ने पूछा

'नहीं, लल्ला के पिता जी और ताऊ जी को चाशनी में डाला है।'

अब कहिए क्या समझे आप ? उस उस पड़ोसिन के पति का नाम था गुलाब चन्द्र और जेठ का नाम था जमुनाप्रसाद। जो मिठाई उसने तैयार की वह थी गुलाब जामुन। उस का उल्लेख करने में दोनों नाम बाधक थे।

नाम रखना भी एक कला है। यदि हम अपने बच्चों के बेढंगे और बे सिर पैर के नाम रखेंगे तो जहां उन के जीवन में उन बच्चों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव न पड़ेगा वहां पत्तीलाल, डालचन्द, ठेकूमल, भब्बूलाल, घूरेलाल, गप्पूलाल, बरफीचन्द, कूकुरचन्द, पकौड़ीलाल नामों से इन व्यक्तियों को जीवन भर लज्जित भी होना पड़ेगा। हमारे गांव के फेंकू बाबू का नाम अन्धविश्वासी मां बाप ने इसलिए रखा कि इनके पहले भाई-बहन मर जाते थे। मां बाप ने ऐसा नाम रखा कि यमराज भी उस को फेंका हुआ समझ कर पास न फटके और वे जीवन भर फेंकू बाबू ही रह गए।

नाम कैसे रखें ? इस विषय में भी आश्वलायन गृह्यसूत्र तथा चरक के अनुसार एक नाम सार्थक हो और दूसरा वह होना चाहिए जो माता पिता तथा गुरु द्वारा बालक को सम्बोधन के लिए रखा गया हो। सार्थक नाम तो वह है, जिसके लिए नामकरण संस्कार किया गया हो जैसे प्रभुसेवक, ईश्वरदत्त, रमेशचन्द्र आदि यह नाम सुबोध सुवाच्य और सरल होना चाहिए। यह नाम बालकों के द्व्यक्षर या चतुरक्षर तथा बालिकाओं के अयुग्माक्षर या तीन अक्षरों वाले होने चाहिए। दूसरा नाम जिसे हम प्यार का नाम Nickname कहा जाता है। जैसे चीकू, पप्पू मुन्ना आदि। नामकरण संस्कार का नाम स्थायी और सदा काम में आता है। प्यार का नाम बचपन में ही समाप्त हो जाता है या उस को बड़े लोग कभी बाद में भी पुकारते हैं।

इसलिए नाम सरल और सुन्दर रखने चाहिए। मां बाप को भद्दे नाम रखकर जन्मभर अपने बच्चों को जलील नहीं करवाना चाहिए। क्या वे यह कल्पना नहीं कर सकते कि उनके बेटे ठनकनलाल, लोटूमल या कलवाकराम को अपने नाम के कारण जन्म-भर पग-पग पर शर्मिन्दा होना पड़ेगा ? नाम कई प्रकार के हो सकते हैं।

धार्मिक नाम—राम, कृष्ण, भरत, ध्रुव, गौतम, राहुल आदि।

राष्ट्रीय और ऐतिहासिक नाम—विक्रम, अशोक, हर्ष, दिलीप, प्रताप, शिवा जी, चन्द्रगुप्त आदि। सुन्दरता की दृष्टि से नाम—अरुण, अतुल, आनन्द, आदित्य, अनिल, वैभव, विनोद, सुरेश, रवीन्द्र, सुरेन्द्र, अरविन्द प्रफुल्ल, प्रभात, सुभाष आदि नाम रखे जा सकते हैं।

इसी प्रकार बालिकाओं के भी इन दृष्टियों से नाम रखे जा सकते हैं। जैसे—

धार्मिक दृष्टि से नाम—उमा, गौरी, देवकी, रोहिणी, रुक्मिणी, उर्मिला, सुभद्रा सुमित्रा, यशोधरा, पार्वती, सीता आदि।

ऐतिहासिक और राष्ट्रीय दृष्टि से—शकुन्तला, पद्मा, मीरां, दुर्गा, अहिल्या, कमला, लक्ष्मीबाई आदि।

सुन्दरता की दृष्टि से—भारती, विमला, ऊषा, मृदुला, इन्दिरा, पुष्पा, सरला, विजया, गीता, सरस्वती, वासन्ती, मुक्ता, साधना, आदि।

हिन्दुओं की तरह मुसलमान और ईसाई भी बेतुके नाम रखते हैं। बुल, वर्ड, लेम्ब, ब्लैना, फौक्स, ड्रिंकवाटर, मांगुकमली आशिक हुसैन, घूरेखां आदि नाम भी ठीक नहीं लगते।

धार्मिक मेलों में वी० आई० पी० न जायें !

धर्म प्राण भारत की महान परंपराओं में १२ वर्षों बाद कुम्भ मेले की भी एक अति प्राचीन परंपरा विद्यमान है। इस वर्ष हरिद्वार में कुम्भ मेला आयोजित हुआ जिसमें लाखों तीर्थ यात्रियों के आने जाने ठहरने, स्नान करने आदि की व्यवस्था महीनों पहिले से की गयी थी। दूर-दराज पर दूर-दूर तक देशवासी मां पतित-पावनी गंगा के साथ ही हर जाति, हर धर्म हर भाषा, हर वेशभूषा तथा हर उम्र के लोगों का अत्यंत अनुकरणीय बाह्य-कुंभ भी देख रहे थे। गंगे, हर हर गंगे, के गगन भेदी नारों से कलियुग में भी सतयुग की स्वर लहरी गूंज रही थी।

एक माह से अधिक समय तक हिन्दुओं का यह महान ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पर्व बिना किसी बाधा के चलता रहा। १३ अप्रैल १९८६, दिन रविवार को कुंभ में अचानक हिमाचल हिमाचल प्रदेश, हरियाणा तथा बिहार के मुख्य मंत्री बिना किसी पूर्व घोषणा के आ पहुंचे। उनके पहुंचने से पुलिस अधिकारियों को अचानक हर की पौड़ी की ओर जाने वाले ६ मार्गों को बंद करना पड़ा। जनता के वोटों से चुने हुये नेताओं की सुविधा के लिए अचानक बंद किये गए ६ मार्गों के परिणामस्वरूप ही लाखों की भीड़ में रेल-पेल हुई और अ ततोगत्वा सैंकड़ों तीर्थ यात्रियों कोअकाल मौत मरना इन मरने वालों में महिलाओं की संख्या अधिक है। मुस्लिम महिलाओं के तलाक संबंधी बिल की वकालत करने वाले कानून के पुतलों तथा राजनीति के ठेकेदारों के पास क्या इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना की निंदा करने का समय नहीं है ? क्या जनता के वोटों से चुने जाने वाले नेता इसी तरह वी. आई पी. सुविधाएं गरीबों धार्मिक-श्रद्धालुओं, वृद्धों तथा महिलाओं को मौत के मुंह में ढकेलते रहेंगे ? क्या यह नेताओं धार्मिक कार्यों में अनधिकृत दखल नहीं होगा ?

—श्रीमती वसन्ती दुबे
३०, गोराचंद रोड, कलकत्ता-१४

समाचार

शुद्धि

ब्र० जितेन्द्र ने एक मुस्लिम लड़की को शुद्ध करके वैदिक रीति से शादी कराई साथ-साथ चार ईसाई बच्चियों को भी शुद्ध किया गया।

इस कार्यक्रम का पूर्ण व्यय गुरुकुल पोरबन्दर की संचालिका नानजी कालीदास की लड़की सविता बहन ने १ लाख २० हजार रुपये दिये अन्तिम दिन एक बड़े यज्ञ का आयोजन रखा गया था जिसमें एक हजार से ज्यादा बच्चों का यज्ञोपवीत संस्कार किया गया ये सभी बच्चे उन परिवारों के थे जिन परिवारों पर ईसाईयों का अत्यधिक प्रभाव है। सभी बच्चों को कपड़े तथा बर्तन मुफ्त बाँटे गये। यज्ञ के एक यजमान ने जिनका नाम घीरु भाई मेहता (पोरबन्दर) ने २५ हजार रुपये आर्य कन्या आश्रम हेतु घोषित किये। दूसरे यजमान सेठ तुलसीदास अग्रवाल ने ५ एकड़ भूमि की घोषणा की (चौंडा डोंगरी वाले)। गया प्रसाद महतो (शाहपुर वालों) ने ५ एकड़ भूमि एक अन्य व्यक्ति ने एक एकड़ भूमि दी। ५ हजार रुपये हास्पिटल हेतु घीरु भाई ने घोषित किये।

६ एकड़ जमीन तथा ५ हजार रुपये मूलशंकर भाई ने पहले ही आर्य समाज को दान दिये।

एक एकड़ जमीन और ब्र० जी ने वहां खरीदी इस प्रकार यह कार्य आगे बढ़ रहा है।

हास्पिटल में पूर्ण उपचार निःशुल्क किया जाता है, ब्रह्मचारी जो बिना किसी आर्यसमाज के सहयोग के यह हास्पिटल चलाते हैं। उनके शिविर अधिकांश कबिलों में होते हैं। उन्ही से दवाएं दक्षिणा लेकर हास्पिटल चलाते हैं।

—जितेन्द्र ब्रह्मचारी

सार्वदेशिक आर्य वीर दल शिविर

गत वर्षों की भांति सार्वदेशिक आर्य वीर दल दिल्ली प्रदेश की ओर से आर्यसमाजों, आर्य संस्थाओं मे युवकों के चरित्र विकास तथा राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना जागृत करने हेतु दिल्ली में निम्न प्रकार शिविर का आयोजन किया गया है।

तिथि : शुक्रवार २७ जून ८६ से ६ जुलाई ८६ रविवार तक।

शिविर स्थल . रघुमल आर्य कन्या सीनियर स्कूल निकट मद्रास होटल, राजा बाजार, नई दिल्ली-११०००१

संयोजक : श्री श्याम सुन्दर बिरमानी

प्रियतम दास रसवन्त
अधिष्ठाता
आर्य वीर दल

वैदिक धर्म मे दीक्षित

नगर आर्यसमाज साहबगंज गोरखपुर के तत्त्वावधान मे लालडिग्गी उद्यान स्थित प० रामप्रसाद बिस्मिल स्मारक यज्ञशाला पर एक मुस्लिम युवती श्रीमती ललवन निशां पुत्री श्री साधु कोम(पठान) निवासी मिर्चोलिया थाना पचपेडवा जिला गोण्डा का शुद्धि संस्कार (वैदिक धर्म) हिन्दू मे दीक्षित कराकर उसका नाम श्रीमती सुशीला देवी रखा गया। तत्पश्चात् युवती का विवाह संस्कार श्रीमान बनई प्रसाद पुत्र श्री सुखइ प्रसाद निवासी मिर्चोलिया थाना पचपेडवा जिला गोण्डा के साथ जो दोनों वर्षों से एक साथ रहते थे जिला आर्य प्रतिनिधि सभा गोरखपुर के अध्यक्ष प० द्विजराज शर्मा पुरोहित जी ने सम्पन्न कराया।

कार्यक्रम का संचालन नगर आर्य समाज साहबगंज के मंत्री रमेशप्रसाद गुप्त ने किया।

भारत जोड़ो की प्रेरणा दयानन्द ने दी

—आमटे

बाबा आमटे ने बम्बई आर्यसमाज तथा कई अन्य सामाजिक, शैक्षणिक संगठनों द्वारा आयोजित समारोह में कहा कि उन्हें भारत जोड़ो आन्दोलन की प्रेरणा आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द से मिली। स्वामी जी ने जातिवाद, क्षेत्रीयता तथा प्रान्तीयता के विरुद्ध जो आन्दोलन चलाया, उससे मैं बहुत ही प्रभावित हुआ।

(आर्य विजय से साभार)

छात्र प्रवेश सूचना

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट, टंकारा द्वारा संचालित अन्तर्राष्ट्रीय उपदेशक महाविद्यालय, टंकारा, जिला राजकोट, सौराष्ट्र में ग्रीष्मावकाश प्रारम्भ हो गया है। नया सत्र प्रथम जुलाई १९८६ से प्रारम्भ होगा।

संस्कृत के साथ मैट्रिक परीक्षा, अथवा तत्समकक्ष संस्कृत परीक्षा (अंग्रेजी के साथ) उत्तीर्ण, ब्रह्मचारी, विनम्र भारतीय (वैदिक) साहित्य, संस्कृति और भूमि के प्रति निष्ठावान् छात्रों को प्रवेश मिलता है। प्रवेश फार्म और नियमावली ५/- रु० भेजकर मंगाकर यथाविधि फार्म भर कर भेजिये। २५ जून तक स्वीकृति प्राप्त छात्रों के लिए स्थान सुरक्षित रहेगा।

यहां पर महर्षि दयानन्द कृत वेदभाष्य, उनके अन्य ग्रंथ, दर्शन, उपनिषद्, व्याकरण, निरुक्त, संस्कृत साहित्य, अंग्रेजी विज्ञान, सामान्य ज्ञान, आयुर्विज्ञान का भी ज्ञान दिया जाता है।

शिक्षा, भोजन, आच्छादन, क्रीडा, औषधि नि:शुल्क है। शिक्षाकाल चार वर्ष का है।

धर्मवीर विद्यालकार
आचार्य

आवश्यकता

आर्यसमाज के लिए योग्य पुरोहित की आवश्यकता है। पुरोहित जी अपने कार्य में कर्मठ होने चाहिए तथा महर्षि दयानन्द कृत संस्कार-विधि पर आधारित कर्मकाण्ड कराने में समर्थ हों। मुनासिब वेतन दिया जाएगा तथा रहने की व्यवस्था समाज में अलग उसे दी जाएगी। पत्र व्यवहार किया जा सकता है।

के० डी० महाजन
प्रधान आर्यसमाज
मधु भवन, चौगान नूरपुर
जिला कांगड़ा,
हिमाचल प्रदेश-१७६०२०

वार्षिकोत्सव

आर्यसमाज फफलपुर (सुन्दर नगर) जि० मेरठ प्रतिवर्ष की भांति अपना वार्षिकोत्सव दिनांक २१, २२ तथा २३ जून १९८६ को मना रहा है।

अशोक
मन्त्री

इटावा जिले के दो हजार हरिजन इस्लाम धर्म ग्रहण करेंगे

सात सौ लोगों की सूची अरब देश को भेजी जा चुकी है

इटावा जनपद के लगभग दो हजार हरिजन हिन्दू धर्म छोड़कर मुस्लिम धर्म को ग्रहण करने को तैयार हो गये हैं। इसमें औरया तथा अर्थना तहसीलों से सर्वाधिक संख्या मे अगस्त से पहले धर्म धर्म परिवर्तन कर लेंगे। इस सम्बन्ध में लगभग सात सौ लोगों की लिस्ट अरब देश को भेजी जा चुकी है।

विश्वस्त सूत्रों द्वारा ज्ञात हुआ है कि धर्मान्तिरण का विचार हरिजनों मे तीन साल पहले भी उठा था परन्तु वहाँ के जागरूक लोगों द्वारा तुरन्त सम्पर्क करके समझाने से मामला टल गया था। इन लोगों में आर्यसमाजी नेता श्री देवीदास आर्य (कानपुर) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। अब अरब देशों के प्रचारकों के प्रलोभन व दबाव के कारण पुन. धर्मान्तरण के मामले में सक्रियता आ गयी है। इन हरिजनों मे चमारों की संख्या सर्वाधिक है। उनको हिन्दू समाज से छुआछूत की शिकायत है। उनकी डा० अम्बेडकर भीमराव की प्रतिमा की स्थापना में सवर्ण हिन्दुओं द्वारा विरोध भी उखड गया है।

यह भी ज्ञात हुआ है कि जिला इटावा की कुछ अन्य संस्थाएं पुनः आर्यसमाजी नेता श्री देवीदास आर्य तथा कुछ साल पूर्व हिन्दू धर्म ग्रहण करने वाले नवाब छतारी के पौत्र डा० आनन्द सुमन को इटावा जिले में आमन्त्रित कर रही हैं।

उधर हरिजन नेता अपनी बिरादरी में इस्लाम के बराबरी के दर्जे का प्रचार कर रहे है। उनका दावा है कि दो हजार हरिजन धर्म परिवर्तन करेंगे। इन नेताओं में सर्वश्री बाबमणि दोहरे (ग्राम प्रधान) युवा कांग्रेस नेता श्री कृष्ण केशवार तथा शम्भुदयाल दोहरे के नाम उल्लेखनीय हैं।

—मन्त्री
आर्यसमाज इटावा

आर्यसमाज सुभद्रा कालोनी में 'विवाह समिति' की स्थापना

आर्यसमाज सुभद्रा कालोनी ने परिवारों की आवश्यकता को देखते हुए विवाह समिति का गठन किया है। जिसके द्वारा आप अपने नौजवान लड़के लड़कियों के रिश्ते-नाते मन पसन्दी से कर सकेंगे।

इसके लिए छपे हुए फार्म आर्यसमाज सुभद्रा कालोनी से मुफ्त मिलेंगे।

समय : प्रत्येक रविवार प्रातः ६.३० से १०.३०

—मंत्री

हैदराबाद आर्यसमाज सत्याग्रह १९३८-३९ और स्वाधीनता सेनानी सम्मान योजना

—ब्रह्मदत्त स्नातक

२२ जनवरी १९३९ का एक ऐतिहासिक दिन था जबकि भूतपूर्व हैदराबाद रियासत में नागरिक एवं धार्मिक अधिकारों की स्वतन्त्रता न दिये जाने के विरोध में समस्त देश में हैदराबाद दिवस मनाया गया था। इससे पूर्व वहां की स्टेट कांग्रेस, नागरिक स्वतन्त्रता समिति और हिन्दू महासभा ने सांकेतिक विरोध के रूप में और उत्तरदायी शासन मांगने के लिए सीमित आधार पर आन्दोलन और सत्याग्रह किये थे। २२ जनवरी को आन्दोलन के रूप में समस्त देश में आर्यसमाज के आह्वान पर वह विरोध दिवस मनाया गया था। देश और विदेश (उस समय भारत का विभाजन नहीं हुआ था) तथा सभी सम्प्रदायों के विवेकशील लोगो ने इसका समर्थन किया था। परिणाम स्वरूप समझौता होने के बाद मागो को मान लेने पर १७ अगस्त १९३९ को निजाम शासन द्वारा लगभग १४ हजार सभी सत्याग्रही रिहा कर दिये गये थे। आर्यसमाज के इस जन आन्दोलन के फलस्वरूप भारत सरकार द्वारा इस रियासत में पुलिस कार्यवाही करने पर रजाकारों का प्रतिरोध समाप्त हुआ और हैदराबाद का भारत में विलय सभव हो सका।

स्वाधीनता के लिए हैदराबाद की जनता द्वारा लड़े गये इस संघर्ष मे जिन लोगों ने भाग लिया था उन सबको रियासत के तीन भागो मे आन्ध्रप्रदेश कर्नाटक और महाराष्ट्र मे विलीन होने पर भारत सरकार की सहमति से सम्मान स्वरूप उन सत्याग्रहियो के केन्द्र एव उन राज्य सरकारों से पेंशन ताम्रपत्र भूमि वितरण व्यवसायिक शिक्षणालयों में प्रवेश, बस परमिट और नौकरियो में पदोन्नति दी गयी।

१९३९ के ४७ वर्षों बाद ३० सितम्बर १९८५ से भारत सरकार ने आर्यसमाज के उक्त आन्दोलन मे भाग लेने वालों को स्वाधीनता सम्मान देने की एक अधिसूचना जारी की। इस लम्बी अवधि में हजारों लोग दिवगत हो गये। अधिकांश की विधवाए भी ससार से चली गईं। इस पर भी इस सम्मान को देने के लिए हाल ही मे एक अधिसूचना द्वारा भारत सरकार के गृह मत्रालय ने ३० जून ८६ तक निर्धारित फार्म पर २ प्रतियों मे आवेदन पत्र मांगना तय किया है। इस निर्धारित प्रपत्र के अनुसार उक्त १९३८-३९ में भाग लेने वालों के लिए जेल के प्रमाण-पत्र, अथवा वर्तमान या भूतपूर्व संसद सदस्यों और विधायकों द्वारा जेल के सहयात्री होने का प्रमाण पत्र देने पर अन्य सम्मान देने के लिए सरकार विचार करेगी। ऐसी दशा में इस काल के बचे-खुचे वृद्ध स्वतन्त्रता सेनानी किस प्रकार उस सम्मान को पा सकते है? हैदराबाद से बाहर के रहने वाले स्वाधीनता सेनानियों के लिए उक्त राज्यों की जेलों से प्रमाण पत्र पाना भौगोलिक दूरी के कारण अत्यन्त असम्भव सा है। वर्तमान या भूतपूर्व विधायक और ससद सदस्य आर्यसमाज के इस जन-आन्दोलन में कारावास में गये भी नहीं थे।

विश्वस्त रूप से ही ऐसी सूचना प्राप्त हुई है कि जेल का प्रमाण पत्र ३० जून तक प्राप्त करने के लिए इन सेनानियों को न केवल दूरस्थ स्थानों पर जाना पड रहा है, अपितु बीच में दलाल बने हुए कतिपय धोखेबाज संगठन जेल और कचहरियों के अधिकारियों के साथ मिलकर कमाई कर रहे हैं। ऐसा भी देखने में आया है कि १९४७ की पुलिस कार्रवाई के नाम पर जिन निजाम रियासत के निवासियों को स्वाधीनता सेनानी पहले नहीं स्वीकार किया गया था वे अब आर्यसमाज के इस आन्दोलन के नाम पर भूमिगत होकर कार्य करने अथवा जिन जेलो के रिकार्ड नष्ट हो गये हैं वहां जेल जाने की विधायकों, ससद सदस्यों या कांग्रेस के नेताओं द्वारा साक्षी देकर सरकार को आवेदन कर रहे हैं। हमें यह भी मालूम है कि १९३९ के इस आन्दोलन के बाद लोगों को यह सम्मान देने के लिए उक्त तीन राज्यों की जो तीन सदस्यीय समिति भारत सरकार ने गठित की हुई है। उसने बहुत बड़ी संख्या मे बोगस लोगो की सिफारिश की है। स्मरण रहे कि पश्चिम बगाल हैदराबाद और भूतपूर्व पाकिस्तान के निवासियों मे से अवसरवादियों ने एक जाली आधार पर इस प्रकार की आर्थिक सुविधाएं और सहायता केन्द्र एव राज्य सरकारों से प्राप्त करली हैं। गृह मत्रालय के सेनानी प्रभाग के कतिपय कर्मचारियों की इसमें साजिश पाई गई है और ऐसे कतिपय मामलों की अब भी जांच पड़ताल की जा रही है। कई ने प्रचुर राशि जमा कर अपने तबादले अन्यत्र करा लिए हैं। बकाया पेंशन राशि जो २०-३०-४० हजार रुपयों तक की होती है उसका बड़ा भाग बिचोलिये ले जाते हैं। विधायकों एव संसद सदस्यों द्वारा सिफारिश पाके भी सुविधा शुल्क लिए जाने की घटनाए हमे सुनने में मिली हैं।

१९३९ से १९८५ तक की इन ४७ वर्षों की अवधि के बाद सरकार को यह निर्णय कैसे लेना पड़ा। इसकी एक लम्बी कहानी है। सरकारी और कांग्रेसी क्षेत्रो मे शुरू में आर्यसमाज के इस आन्दोलन को साम्प्रदायिक बताने के कारण १९७२ मे स्वाधीनता सेनानी सम्मान योजना चालू होने पर भी बराबर विचाराधीन रहकर यह मामला टाला जाता रहा। वस्तुत. इन पक्तियो का लेखक जब सघ लोकसेवा आयोग के सम्मुख प्रत्याशी के रूप मे १९५३ मे अपनी इस गिरफ्तारी और इस आन्दोलन में भाग लेने तथा १३ माह की सजा का पूरा विवरण सरकार को दे दिया था, और उससे भारतीय सूचना सेवा मे नियुक्ति हो गयी। १९६८ मे मुझे ज्ञात हुआ कि राजनीति के पीडितों के लिए सेवा की शर्तों मे कुछ रियायतें उपलब्ध हैं। जिनमे नियुक्ति के लिए आयु सीमा की शिथिलता, प्रोन्नति और नियुक्ति की सम्पुष्टि और सेवा काल में अधिकतम २ वर्ष की वृद्धि जैसे महत्वपूर्ण नियमों मे दी हुई हैं। (तब तक १९७२ की स्वाधीनता सेनानी सम्मान योजना नहीं बनी थी)। १९७६ में जब इन पंक्तियों का लेखक सरकारी सेवा से रिटायर हुआ, यह मामला अधर में लटका रहा। बारम्बार हर तरह के स्पष्टीकरण और प्रमाण मांगे गये और उक्त आन्दोलन को विचाराधीन बताकर सारी सुविधाओ से वचित रखा गया।

इस विषय मे सूचना एव प्रसारण मंत्रालय के मन्त्रियो और उच्चतम सचिवस्तर तक के अधिकारियो को मेरे लिखने का कोई परिणाम नही निकला। १९३९ में आर्य सत्याग्रह के प्रमुख नेता स्व० श्री घनश्यामसिंह गुप्त भूतपूर्व अध्यक्ष सी० पी० एसेम्बली और सविधान निर्मात्री सभा के सदस्य ने और श्री नरदेव स्नातक पूर्व सांसद ने जो मेरे साथ जेल में अन्त तक रहे थे, मंत्री महोदय को जो पत्र लिखे उस पर कोई भी निर्णय नही लिया गया।

इसी बीच खिलाफत अकाली और मोपला विद्रोह जैसे साम्प्रदायिक आन्दोलनों को स्वाधीनता संग्राम का अंग माना जा चुका था। इन विसंगतियो को दूर करने लिए रिटायर होने के बाद भी इन पंक्तियों के लेखक ने प्रधान मंत्री व गृह मंत्रियों को लिखा। समाचार पत्रों ने इस विसंगति की ओर सरकार का ध्यान खींचा। सेवा निवृत्त होने के बाद मेरे अनुरोध पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने इस मामले को सरकार के सामने संगठित रूप से रखा। उक्त सभा के सरक्षण में ही १९३८-३९ का आर्यसमाज का वह सत्याग्रह चला था। इतने वर्षों के बाद अब ऐसे लोगों को स्वाधीनता सेनानी सम्मान देने की घोषणा सरकार ने की है, परन्तु जेल के प्रमाण पत्र पाने की तथा अन्य औपचारिकताओ को कैसे पूरा किया जा सकेगा। यहां एक प्रश्न चिह्न लगा हुआ है।

इन पंक्तियो के लेखक को अपनी सरकारी सेवा के दौरान चारो जेलो के प्रमाण पत्र बैठे आ गये थे परन्तु सरकार द्वारा निर्णय के असाधारण विलम्ब के कारण १९८२ मे मैंने उन्हें बाद मे फाडकर फेंक दिया। १९७६ से पूर्व मैंने अपने मूल प्रतिवेदनो मे जेल प्रमाण पत्रो से जो सत्यापित प्रतियाँ प्रस्तुत की थीं और सरकारी फाइलों में मौजूद हैं, वे सरकार को मान्य नहो हैं। ऐसी दशा मे पूर्व निजाम रियासत के बाहर रहने वाले स्वाधीनता सेनानियों के सामने बडी कठिनाई उपस्थित है। इसका समाधान इस प्रकार है कि उक्त आर्यसमाज आन्दोलन में भाग लेने वालों की एक निगरानी सलाहकार समिति सरकार गठित करे। इससे अभीष्ट उद्देश्य पूरा हो सकता है।

इस सम्बन्ध मे एक बडी कठिनाई यह भी है कि पूर्व निजाम रियासत से चुन कर आये हुए वर्तमान ससद सदस्य अथवा विधायकों को १९३८-३९ में उक्त आन्दोलन की पृष्ठ भूमि और विवरण का भी ज्ञान नहीं है। वे आर्यसमाज के इस आन्दोलन के नाम पर बोगस लोगो के नाम सरकार को भेज रहे हैं, इनमे से अनेक ने इस लेखक से कहा कि १९३८-३९ के आन्दोलन में मात्र आर्यसमाजियों ने ही भाग नहीं लिया, अपितु पूरी निजाम रियासत के सभी लोगो ने उसमें कष्ट और कारावास उठाये है। इन उलझनो से वास्तविक और दूर स्थानो पर रहने वाले जीवित एव मृत स्वाधीनता सेनानियो का प्रश्न खटाई मे पड़ गया है। प्रामाणिक जानकारी के अनुसार यह बात ठीक है कि इस आन्दोलन मे फीजी, थाइलैंड जैसे विदेशो और दूरस्थ सीमा प्रान्त (ये सब मेरे साथ जेल मे रहे) सिंध पश्चिमी पंजाब के कुछ छात्रो तक ने इसमे भाग लिया था और पीलीभीत (उ० प्र०) के एक युवा सिक्ख और शाहपुरा (राज०) के एक मुस्लिम सज्जन फैयाजदानी भी मुझे जेल मे मिले थे। सर्वधर्म समभाव वाले इस सैयद फैयाज अली द्वारा इस वृद्धावस्था मे भेजा गया मार्मिक पत्र हमे पढ़ने को मिला है, उससे सरकार की सहायता का लाभ इस मामले मे तुरन्त मिलना आवश्यक है।

□

जीवन सुख का रहस्य

प्रि० पो० डी० चौधरी

प्राचीन शास्त्रों में कुछ ऐसे स्पष्ट व सार्वकालिक निर्देश व प्रार्थनाएँ हैं जिनका अस्तित्व सम्पूर्ण कार्य सृष्टि तक रहता है, ऐसी एक प्रार्थना का भाव है—

'हे परमेश्वर सभी सुखी व निरोग रहें सभी एक दूसरे के कल्याण को देखें (समझें व करें) तथा किसी के हिस्से में भी दुःख न होवे।"

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। जिस प्रकार का सुख सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य अनुभव करेगा यह निश्चित है कि उसी प्रकार की सुख भावना समाज मे व्याप्त होगी, मनुष्य रूपी इकाई से ही समाज का निर्माण हुआ। शिक्षित मनुष्यों का समूह शिक्षित समाज, धनी मनुष्यों का समुदाय धनी समाज इसी प्रकार यदि सभी सामाजिक इकाइयां सुखी होंगी, सम्पन्न व सन्तुष्ट होंगी, तो समाज की उन्नति करता हुआ राष्ट्र को हाल बना सकेगा।

जीवन सुख मुख्यतया तीन प्रकार का होता है। शारीरिक, आत्मिक व सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षणिक, पारिवारिक सुख के तो तीन मुख्य उपाय हैं। ऋतभुक्, हितभुक् तथा मितभुक्। भोजन हमारे शरीर की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। तथा यह सर्वविदित है कि हमारी ९०% शारीरिक बीमारियां पेट की और खान-पान की गड़बड़ी के कारण ही होती हैं। इसीलिए तो वैदिक शास्त्र ने भोजन व पान (खान-पान) पर विशेष जोर दिया है। इसी के आधार पर व्यायाम संयम व तपस्या स्थित है। और इन्हीं कुछ उपनियमों पर शारीरिक सुखों का एक और भी मूल कारण है, और वह है पूर्व जन्म के कर्मों का फल, सभी प्रकार के वर्तमान सुखों व दुःखों मे ये पूर्व अर्जित कर्म महत्व पूर्ण भूमिका निभाते हैं। वैद्यक शास्त्र ने एक और निर्देश दिया है, कि खाद्य व अखाद्य का पेय व अपेय का विशेष ध्यान रखना। संक्षेप में सुखी जीवन का यही रहस्य है।

शारीरिक सुख के साथ ही सीधा सम्बन्ध अन्य दो प्रकार के जीवन सुखों का है। और वे हैं आत्मिक व सामाजिक सुख लगभग सभी सम्प्रदायों व विचारधाराओं ने खुले रूप से आध्यात्मिक सुख की अपने-अपने अनुसार चर्चा की है। इस सम्बन्ध मे सबसे उत्तम विचार धारा योग शास्त्र की है, जिसको महर्षि पतञ्जलि ने बनाया, आध्यात्मिक शक्ति लोक परलोक-आत्मा-परमात्मा तथा ध्यान आदि के साथ सांसारिक उन्नतियों मे भी बहुत सहायक सिद्ध हुआ करता है। मनुष्य में इतना अधिक आत्मिक बल पाया जाता है कि बड़ी से बड़ी विपत्ति मे भी अपना धैर्य नही खोता। उत्तम रीति से बौद्धिक विकास भी किसी हद तक ध्यान धारण व योग के अन्य अङ्गों पर ही निर्भर होता है। निर्मल स्वच्छ व कुशाग्र बुद्धि का स्वामी मनुष्य बड़ी से बड़ी उलझनों को सुलझाने में समर्थ होता है, आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति ही सही अर्थों में मनुष्य का मुख्य उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति ही है। जिसे पुरुषार्थ भी कहते हैं।

मानव जीवन में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण सुख सामाजिक सुख होता है। मानव सामुदायिक विकास पर पूर्णतया आधारित है। सामुदायिक विकास के बौद्धिक विकास, आत्मिक विकास तथा आर्थिक विकास वैयक्तिक स्वतन्त्रता पर ही अधिक जोर देता है। वह समाज बीमार है जिसके सदस्य अकुशल तथा जीवन के योग्य नही हों। अतः हमारा शारीरिक आत्मिक व अन्य सभी प्रकार के सुख व विकास सामाजिक उन्नति के लिए ही होते हैं, (दुनिया का छोटे सा छोटा प्राणी भी अपने समाज के लिए उपयोगी व महत्वपूर्ण बनने की इच्छा रखता है। तथा स्वसामर्थ के अनुसार इसका प्रयत्न भी करता है। व जानता है कि समाज का सुख उनके कल्याण व उन्नति के लिए ही है, अतः अनेक तरीके वह अपनाता है। इसलिए सामाजिक सुख या विकास बहुत सी बातों पर आधारित होता है, मनुष्य शरीर व आत्मिक बल वाला होकर बुद्धि के द्वारा पवित्रतापूर्वक धनोपार्जन करे। कमाए हुए धन का सत्कार्यों में व परोपकार युक्त गतिविधियों में उपयोग करे। मनुष्य स्वस्थ शरीर व आत्मिक बल से अनेक प्रकार की विद्याएं प्राप्त करके उस विशाल ज्ञान का प्रयोग मानव के अज्ञान अन्धकार व अभाव को मिटाने में करें, सामाजिक प्रतिष्ठा व अनेक प्रकार के गुणों को पाकर मनुष्य स्वयं को नम्र तथा अभिमान रहित बनाकर सबसे सुख के लिए कार्य करें, ये बातें मनुष्य जीवन के सामाजिक सुख के महत्वपूर्ण पहलू हैं।

सामाजिक सुख का एक महत्वपूर्ण अङ्ग है। जन कल्याण की भावना मन में रखना तथा उसके लिए भरसक प्रयत्न करना, सभी इन बातों को जानते हैं, कि सभी प्रकार से समान नहीं हो सकते अतः निर्बल-बलवान, निर्धन-धनवान, अज्ञानी व ज्ञानी ये सब विरोधाभासी बातें साथ-साथ चलती हैं, अतः इस प्रकार की अवस्था में परोपकार की भावना का होना अति आवश्यक है, जिससे कमी वाला मनुष्य हीन भावना का शिकार न हो तथा सम्पन्न मनुष्य अभिमान का शिकार नहीं हम देखते हैं कि समाज में अनेक प्रकार के सामाजिक कार्यकर्ता हैं। जो अपना सम्पूर्ण समय सामाजिक भावना को बढ़ाने के लिए अपनी शक्ति व समर्पक के साथ व्यतीत करते हैं। इस प्रकार के महामानवों की सूची बहुत ज्यादा बड़ी होती है। अतः यहाँ इसका उल्लेख स्थानाभाव के कारण सम्भव नहीं।

जीवन मे दो प्रकार की भावनाए काम करती हैं। एक आशावादी और दूसरी निराशावादी परन्तु जीवन की उन्नति आशावादी भावना के कारण ही हो सकती है। निराशावादी मनुष्य जीवन में हमेशा दुःखों अभावों का ही अनुभव करता है, उसे जीवन में हमेशा नाकामयाबी ही प्राप्त होती है, व जीवन से ही निराश हो जाता है, फिर बताइये उसके जीवन में सुख कहा आ पायेगा, सुखी-जीवन का एक राज और है। अर्थात् हमेशा आशावादी बने रहना, तथा किसी भी परिस्थिति में परमात्मा का विश्वास कम न होने देना, ईश्वर पर विश्वास व समर्पण की भावना ही जीवन की कामयाबी है, हम देखते हैं कि आचरण युक्त व ईमानदार मनुष्य जीवन में कभी भी असन्तोष को व मानसिक अस्थिरता को प्राप्त नहीं करता, हमेशा प्रसन्न रहता है, वह चाहता है कि मेरे सामर्थ्य अनुसार सुख प्राप्ति होती रहे, मनुष्य जीवन में सामाजिक सुख और प्रतिष्ठा का एक कारण और है। वह है हमेशा नेकी करने की भावना व प्रयत्न करना, इतना तो अवश्य ही होना चाहिए कि यदि नेकी का कार्य किसी कारणवश नही हो सके तो बुराई (निन्दा, चुगली) की भावना तो कभी भी न होवे, एक बात और है कि प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने प्राप्तव्य ही सुख की कल्पना करता है। विद्यार्थी विद्या प्राप्ति में, पिता पालन-पोषण व रक्षण मे माता ममत्व की भावना में व्यापारी अपने व्यापार की उन्नति वृद्धि में और सामाजिक कार्यकर्ता समाज की सेवा में सुख का अनुभव करता है, परन्तु ये बात सत्य है कि हमारे मनों में ही सुख का स्रोत है और दुख की खान भी। बाहर से सुखों की प्राप्ति भी मन से ही प्राप्त हो सकती है। अतः मन को हमेशा अपने अनुकूल रखना चाहिए, हमें सुख प्राप्त करने के लिए यह बात ठीक है कि धन कमाएं परन्तु अपने स्वास्थ्य, आत्मा और सामाजिक सम्बन्ध की कीमत पर नहीं, बल्कि इनके साथ-साथ वृद्धि करके धन कमाना अच्छा लगता है। अतः यह भी स्पष्ट हुआ कि सच्चा सुख ईमानदारी, ईश्वर पर श्रद्धा और विश्वास, मन की अनुकूलता सन्तोष की भावना तथा अपने अपने कर्तव्यों का पालन करने से ही प्राप्त होती है, एक महत्वपूर्ण पहलू सामाजिक सुख का और है, वह है, "जीओ और जीने दो" की उत्तम भावना मित्रता का परस्पर प्रचार-प्रसार, शान्ति का प्रचार-प्रसार तथा प्राकृतिक सुन्दरता का अनुभव करना, इसीलिए तो प्राचीन ऋषि-मुनि व बड़ी-बड़ी खोज करने वाले महामानव पर्वतों नदियों व जंगलों के पास जाकर मानसिक शक्ति उपलब्ध किया करते थे, स्वयं महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती जी भी अपने गूढ रहस्यों को तथा गम्भीर प्रश्नों के निराकरण के लिये समय समय पर गंगा नदी व हिमालय की तलहटियों में जाया करते थे, मानसिक शक्ति प्राप्ति का यह एक महत्व पूर्ण तरीका है, इससे हमें अपने क्रोध पर काबू पाने व जीवन को हंसमुख बनाने में बहुत मदद मिलती है, इसी दुनिया में स्वर्ग भी है और नरक भी, मात्र देखने की बात है कि हम क्या करना चाहते हैं? और क्या प्रयत्न करते हैं?

महात्मा बुद्ध ने कहा है कि अपनी खुशियों आवश्यकताओं को तथा मन की इच्छाओं को कम करना चाहिए, मनुष्यों को अपने आर्थिक हिसाब से चलना चाहिए, स्थिर निधि को जेब का जैसा रखना चाहिए, जितनी ही चारपाई हो उतने ही पैर पसारने चाहिए।

मैं इस बात को अच्छी तरह से अनुभव करता हूं कि शिक्षा के क्षेत्र में सेवा करते हुए मैंने पिछले ४० वर्ष बिताये, अनेक होनहार व उज्ज्वल भविष्य से युक्त विद्यार्थी शिष्य रहे हैं। वे अपनी उन्नति करते हुए समाज सेवा कर रहे हैं मुझे इस बात से काफी मानसिक सुख व प्रसन्नता प्राप्त होती है।

अन्त में मैं एक बात और कहना चाहता हूं कि हमें अपने दिल व दिमाग को तन्दरुस्त रखने के लिए हमेशा ही अच्छे प्रकार का स्वाध्याय योग्य साहित्य का पठन-पाठन करना चाहिए व अपनी संस्कृति, सभ्यता व सिद्धान्तों के ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए व अपनी संस्कृति, सभ्यता, सिद्धान्तों के ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए तथा कभी भी दिल व दिमाग को निष्क्रिय नहीं रखना चाहिए, क्योंकि एक कहावत भी है कि "खाली मन व दिमाग शैतान का कारखाना होता है।"

कितना ही अच्छा हो यदि हम सुख प्राप्ति के रहस्य को समझकर अपने जीवन में अपनाएं और स्वयं को सुखी और खुशहाल बनाते हुए राष्ट्र व समाज को भी सुखी और खुशहाल बनाएं।

□

निर्दोष लोगों का खून…

(पृष्ठ १ का शेष)

पहुँच चुकी हैं और चौदह भी आजकल में तैनात हो जायेंगी। यानी एक तरह से ये जिले पंजाब पुलिस से लेकर अर्धसैनिक बलों के हवाले कर दिये गये हैं। परन्तु यह निश्चित है सेना के तैनात होने से हिन्दुओं के मन में सुरक्षा का भाव आता और आतंकवादियों में जो डर उत्पन्न होता वह इन अर्धसैनिक बलों से संभव नहीं। क्योंकि इनके साथ सबसे बड़ी दिक्कत यह है मैदानी जानकारी के लिए उन्हें स्थानीय पुलिस पर निर्भर रहना पड़ता है। पंजाब पुलिस से वैसे ही हिन्दुओं का विश्वास उठ गया है। पंजाब में अगर आतंकवादियों के खिलाफ सख्त कार्रवाई भी कामयाब नहीं हो पा रही तो इसका भी मुख्य कारण ही यही है पंजाब पुलिस मैदानी कार्रवाई के अपने बुनियादी कर्तव्य को पूरा नहीं कर पाती। हर बार ऐसा होता है कि आतंकवादी या तो अंधेरे का फायदा उठाकर भाग निकले या दिन दहाड़े पैदल ही आये और वारदात करके पैदल ही चले गये ऐसा एक बार हो सकता है दो बार हो सकता है, लेकिन हर बार नहीं हो सकता है। इससे साफ झलकता है पंजाब पुलिस का मनोबल बहुत गिरा हुआ है कि वह कुछ कर नहीं सकती या फिर उसके लोग आतंकवादियों से मिले हुए हैं।

—यशपाल सुधांशु

अकालियों के सहायक…

(पृष्ठ १ का शेष)

समय आ गया है कि किसी भी हिन्दु दुश्मन व्यक्ति को संसद या विधान सभा में चुनकर नहीं जाने दिया जायेगा। श्री शास्त्री ने भारतीय जनता पार्टी की दो रंगी नीति पर भी कड़ी आपत्ति की, एक तरफ तो धरने कर रहे हैं और दूसरी तरफ बरनाला सरकार को पंजाब में भंग करने की मांग का समर्थन नहीं कर रहे। आपने कहा कि अडवानी जैसे लोगों के दिमाग से अभी भी सरकुलरवाद का भूत नहीं उतरा। यदि यह लोग पंजाब के हिन्दुओं के वोट लेकर दो कुर्सियों की खातिर पहली अकाली सरकार में सम्मिलित न होते तो आज पंजाब में हिन्दुओं की यह दुर्दशा न होती।

सभा में सर्वसम्मति से दिल्ली विकास प्राधिकरण से मांग की गयी कि पंजाब से आ रहे शरणार्थियों को डी०डी०ए० के तमाम खाली पड़े फ्लैट अस्थाई तौर पर आवंटित कर दिये जायें।

सभा में लाला रामगोपाल शालवाले जी को आश्वासन दिया गया कि यदि वह पंजाब के हिन्दुओं की रक्षा के लिए कोई प्रभावी कदम उठायेंगे तो शिव सेना दिल्ली भर में उनका साथ देगी। प्रचार एवं हर प्रकार की सहायता करेगी सभा उन को आर्यसमाज का ही नहीं समस्त हिन्दु समाज का नेता मानती और उनका आदर करती है। ★

धूम्रपान से परहेज करने वाले भी सुरक्षित नहीं

वर्षों पहले प्रायः यह समझा जाता था कि धूम्रपान से परहेज रखने वाले व्यक्ति हर हालत में धूम्रपान से होने वाले स्वास्थ्य-संकट से मुक्त रहते हैं। परन्तु अब वैद्यक वैज्ञानिकों ने अनुसंधान करके सिद्ध कर दिया है कि जितना स्वास्थ्यसंकट धूम्रपान करने से होता है, उतना ही स्वास्थ्य-संकट धूम्रपान से परहेज रखने वालों के लिए भी उनके गिर्द बैठे धूम्रपान करनेवालों के मुंह से निकाले धूएं से होता है। अत यह अत्यावश्यक है कि धूम्रपान से परहेज रखनेवों को, उनके स्वास्थ्य की रक्षा के लिए, ऐसे धूएं से बचाया जाये। यानी उनको धूम्रपान करनेवालों से अलग रखा जाये।

परन्तु ट्रेन-यात्रा के दौरान, वर्तमान रेलवे-शासन पद्धति के अनुसार, धूम्रपान से परहेज रखनेवालों को अनिवार्यतः धूम्रपान करनेवालों के साथ ही रहना पड़ता है। इस तरह ट्रेनों के डब्बों की सीमित तथा तंग जगह में दोनों प्रकार के यात्रियों को "टोकरों में बन्द किये पंछियों के समान" इकठ्ठे रहने से परहेज रखने वाले भी धूम्रपान से होने वाले स्वास्थ्य संकट से घिर जाते हैं। यद्यपि उनका निजी कुछ दोष नहीं होता है।

आर्यसमाज के छठे नियम—"संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य

(शेष पृष्ठ ८ पर)

स्वामी स्वरूपानन्द जी अस्वस्थ

वेद प्रचार अधिष्ठाता स्वामी स्वरूपानन्द जी ७ जून से अस्वस्थ चल रहे हैं। वे होली फेमिली होस्पिटल के कमरा नं० ४०१ में प्रविष्ट हैं। और उनसे मिलने का समय सायं ४ से ७ बजे तक है।

R. N. No. 32387/77 Post in N.D.P.S.O. on 12, 13-6-86 Licenced to post without prepayment, Licence No. U 139
रजि० नं० डी० (सी०) ७५६ पूर्व भुगतान बिना भेजने का लाइसेंस नं० यू १३६

धूम्रपान से परहेज...

(पृष्ठ ७ का शेष)

उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।" के अनुसार आर्य सामाजिक संस्थाओं तथा उनके सदस्यों के लिए भी सामूहिक या व्यक्तिगत रूप से धूम्रपान से परहेज रखनेवालों (non-smokers) के हेतु ट्रेनों में पृथक् डब्बे सुरक्षित कराने के लिये प्रयास करना आवश्यक कर्तव्य बन जाता है। ताकि ट्रेन-यात्रा के दौरान धूम्रपान करने वालों (Smokers) के मुह से निकाले धुएं के कारण स्वास्थ्य-सकट (health hazard) से उनकी रक्षा कराकर महान् उपकार सम्पन्न करके इस छठे नियम के पालन में समर्थ और सफल होने का पूरा संतोष मिले।

अत: आपसे नम्र निवेदन है कि इस परोपकारक कार्य में अपना सहयोग निम्नलिखित दो प्रकार से देकर कर्तव्य-पूर्ति के साथ-साथ धूम्रपान से परहेज रखनेवालों, जिनमें मूक शिशु, बच्चे, किशोर, युवक, कन्याएं तथा स्त्रियां भी शामिल हैं, के आशीर्वाद के पात्र बनें—

[१] रेलवे मन्त्री, भारत सरकार, दिल्ली को ट्रेनों में उनके (non-smokers) लिए पृथक् डब्बे सुरक्षित करने के लिए प्रार्थना पत्र भेजें व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से।

[२] अपने दैनिक, साप्ताहिक या मासिक पत्रों में मेरे इस पत्र को प्रकाशित कराइये। धूम्रपान से परहेज करनेवालों को धूम्रपान करने वालों से अलग रखना ही उन को स्वास्थ्य-संकट से बचाने का उत्तम उपाय है। जैसा कि अंग्रेजी में कहावत है—"Prevention is better than cure."

निवेदक
एस० डी० मित्तल

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५ हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन : ३१०१५० के लिए डा० धर्मपाल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा वैदिक प्रेस, गली नं० १७, कैलाशनगर दिल्ली-३१ में मुद्रित। रजि० नं० डी० (सी०) ७५६

वर्ष १० अक ३३ रविवार १३ जुला॰, १९८६ सृष्टि संवत् १९७२९४९०८८ आषाढ २०४३ दयानन्दाब्द—१६१

मूल्य एक प्रति ५० पैसे वार्षिक २० रुपये आजीवन २०० रुपये विदेश मे ५० डालर, ३० पौंड

श्री रामगोपाल शालवाले स्वामी आनन्द बोध बने

स्वामी आनन्द बोध सरस्वती (श्री रामगोपाल शालवाले)

प्रसिद्ध आर्य नेता और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री रामगोपाल शालवाले ने अपनी पूर्व घोषणा के अनुसार दिल्ली की प्रसिद्ध आर्यसमाज दीवान हाल में वैदिक धर्म की मान्यताओं और परम्पराओं के अनुसार प्रसिद्ध वीतराग सन्यासी श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज से संन्यास की दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा की व्यवस्था आर्यसमाज दीवान हाल और आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली की ओर से की गई थी। आर्यसमाज दीवान हाल का हाल जनसमूह से खचाखच भरा था। लोग ऊपर बालकनी में तथा बाहर बरामदे और सड़क पर लगे शामियाने में खड़े होकर कार्यक्रम का आनन्द ले रहे थे। कार्यक्रम ठीक ८.३० बजे प्रारम्भ हो गया था। यज्ञवेदी पर समस्त भारत से पधारे प्रसिद्ध विद्वान्, सन्यासी, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, ज्ञानवेत्ता बैठे थे। यज्ञ का संचालन श्री प० राजगुरु शर्मा, श्री पं० यशपाल सुधांशु, श्री आचार्य हरिदत्त, श्री पं. पृथ्वीराज शास्त्री कर रहे थे।

श्री शालवाले का नाम दीक्षा के पश्चात् श्री स्वामी आनन्द बोध रखा गया। दीक्षा समारोह के समापन पर उपस्थित जनसमुदाय ने वैदिक धर्म के जयघोषों के साथ उनका जोरदार स्वागत किया और शुभकामनाएँ व बधाई दी।

श्री स्वामी आनन्द बोध जी ने उपस्थित महानुभावो का आभार प्रकट करते हुए कहा, वह अपना शेष जीवन पूरी तरह से वैदिक धर्म की सेवा, आर्य (हिन्दू) जाति के उत्थान तथा राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के लिए समर्पित करेंगे।

उन्होंने कहा, वह जनजातियों, भीलों, आदिवासियों, हरिजनो के मध्य जाकर उनके अधिकारों का संरक्षण करके देश के नवयुवको का वैदिकीकरण करेंगे। हिन्दू जाति आज ईसाईकरण और इस्लामीकरण के खतरों से घिरी हुई है, इसके विरुद्ध आर्य (हिन्दू) जाति में संघर्ष करने की शक्ति पैदा की जाएगी। धर्मान्तरण में प्रयुक्त डालर और पेट्रोडालर की बाढ़ को चरित्र निर्माण की लहर और देश प्रेम की भावना से रोकना होगा।

पंजाब की घटनाओं पर गहरा दुख प्रकट करते हुए श्री स्वामी जी ने कहा, उग्रवादियों को बाहर से सामान और सहायता मिल रही है। भारत सरकार सब कुछ समझकर भी पंजाब को तुरन्त सेना के हवाले करने मे विलम्ब कर रही है। उन्होंने संकेत किया कि पंजाब के अल्पसंख्यक हिन्दुओं के ऊपर हो रहे अत्याचारो के विरुद्ध प्रतिशोध की ज्वाला कहीं इस देश को भस्मसात न कर दे, इस के लिए पंजाब की बरनाला सरकार को भंग करके सेना को पंजाब सौंपना आवश्यक हो गया है।

पंजाब के पीडित हिन्दू जो पंजाब से अन्यत्र शरण ले रहे हैं, उनको हर प्रकार के संरक्षण व सहयोग के लिए उन्होंने आम जनता से प्रार्थना की। □

श्री सच्चिदानन्द शास्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के महामन्त्री

दिल्ली, २५ जून। सभाप्रधान श्री स्वामी आनन्दबोध सरस्वती ने स्वर्गीय श्री ओमप्रकाश त्यागी के रिक्त स्थान पर सभा के उपमन्त्री पं० सच्चिदानन्द शास्त्री की नियुक्ति की है। अभी श्री पण्डित सच्चिदानन्द शास्त्री सभा के उपमन्त्री पद पर कार्य कर रहे थे। उन के स्थान पर मध्य प्रदेश के प्रसिद्ध विद्वान् श्री प० राजगुरु शर्मा को उपमन्त्री पद पर आसीन किया गया है।

प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल व्यवस्थापक—डा० सच्चिदानन्द [illegible] सम्पादक—पं० यशपाल सुधांशु एम० ए०

देश को विघटन से बचाओ

सार्वदेशिक सभा पंजाब समस्या पर निर्णायक पग उठायेगी

संवाददाता सम्मेलन में स्वामी आनन्द बोध सरस्वती की घोषणा

(हमारे कार्यालय संवाददाता से)

नई दिल्ली, २५ जून। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के माननीय प्रधान स्वामी आनन्दबोध सरस्वती (संन्यास-पूर्व नाम श्री रामगोपाल शालवाले) ने आज यहां एक संवाददाता सम्मेलन में पंजाब को बचाने की अपील करते हुए कहा कि पंजाब बचेगा तो देश बचेगा। अन्यथा देश का विघटन अवश्यम्भावी है।

उन्होंने यह भी बताया कि पंजाब की स्थिति पर विचार करने के लिए देशभर के आर्यसमाजों के प्रतिनिधियों और कार्यकर्ताओं की एक आवश्यक बैठक १२ और १३ जुलाई को नई दिल्ली में होगी, जिसमें निर्णायक पग का फैसला किया जाएगा।

खचाखच भरे संवाददाता सम्मेलन में दिए गए वक्तव्य के मुख्य-मुख्य अंश नीचे दिए जा रहे हैं—

जैसा आप सब जानते ही हैं, मैंने कुछ दिन पूर्व ही वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार अपने जीवन के चतुर्थ एवं अन्तिम चरण में प्रवेश किया है और भविष्य में एक सन्यासी का जीवन व्यतीत करने का व्रत लिया है। गांधी जी ने इस वर्णाश्रम व्यवस्था की सराहना करते हुए कहा था कि "यह (वर्णाश्रम व्यवस्था) वैदिक धर्म की मानव जाति के लिए एक अमूल्य और अनुपम देन है।"

इस पर आचरण करने के बाद ही संसार के लोग इसके महत्त्व को समझ सकेंगे। मैं आशा करता हूं कि वह समय शीघ्र आएगा। संन्यास ग्रहण करने से मेरा मन्तव्य यह नहीं है कि मैं अपनी समस्त जिम्मेदारियों को त्याग कर किसी वटवृक्ष के नीचे, किसी कन्दरा में या किसी पुण्य-सलिला नदी के तट पर बैठ कर एकान्तवास करते हुए केवल ईश्वरा-राधना में ही अपना सारा समय व्यतीत करूं। अपने गुरु स्वामी दयानन्द सरस्वती से प्रेरणा लेकर मैंने निश्चय किया है कि घर के सारे पारिवारिक बन्धनों से मुक्त होकर मैं अपना समय देश, जाति और धर्म की सेवा में समर्पित कर दूं।

हमारा देश आजकल एक बहुत ही कठिन दौर से गुजर रहा है। इस की एकता और अखण्डता खतरे में है। उत्तर और पश्चिम दोनों ही भागों में हमारी संस्कृति पर आक्रमण किए जा रहे हैं। पंजाब में हम आंतरिक और बाह्य दोनों ओर से विघटनवादी ताकतों से लड़ रहे हैं। पश्चिम के तथाकथित लोकतंत्रवादी देश यह नहीं चाहते कि भारत एक शक्ति-शाली देश बनकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में "तीसरी ताकत" की किसी प्रकार की सहायता करे। इसके लिए वे तरह-तरह के भारत विरोधी षड्यन्त्रों में लगे हुए हैं।

मैंने पिछले दिनों पंजाब का विस्तृत दौरा किया था। वहां मैं समाज के अनेक नेताओं से मिला। उन लोगों से भी बात-चीत की जो उग्रवादियों के अत्याचारों के शिकार हुए हैं। मैंने वहां के अल्पसंख्यक हिन्दुओं को सुरक्षा की तलाश में अपना घरबार और जमीन जायदाद छोड़कर पंजाब से पलायन करते देखा है। एक बहुत ही साधारण गणना के अनुसार पांच हजार से अधिक परिवार अब तक पंजाब छोड़कर अन्यत्र जा चुके हैं। पंजाब सरकार कुछ एकड़ जमीन प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रही है, जबकि वहां की निरीह-निर्दोष हिन्दू जनता आए दिन आतंकवादियों की गोलियों की शिकार हो रही है। श्री बरनाला जिस नीति पर चलते हुए कार्य कर रहे हैं, उससे तो यही प्रतीत होता है कि वे चाहते हैं कि पंजाब की बिगड़ी हुई स्थिति उस समय तक इसी तरह चलती रहे जब तक खालिस्तान का स्वतः निर्माण न हो जाए।

पंजाब में मैंने जो कुछ देखा उस से मुझे पीड़ा हुई है। वहां के हिन्दुओं की दुर्दशा ने मुझे जल्दी से जल्दी सन्यास आश्रम में प्रवेश करने के लिए प्रेरित किया। अब मैं पूर्ण रूप से स्वतन्त्र और बन्धन रहित होकर पंजाब और देश को बचाने के लिए अपना जीवन भी दांव पर लगा सकता हूं।

२२ जून को ही अपराह्न में सार्व-देशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा की बैठक भी हुई, जिसमें पंजाब की बिगड़ती हुई स्थिति पर विचार-विमर्श किया गया। इस बैठक में देश के अन्य भागों से भी विशिष्ट प्रतिनिधि आमंत्रित किए गए थे। विचार-विमर्श के पश्चात् सार्वदेशिक सभा इस निर्णय पर पहुंची है कि पंजाब की स्थिति को और अधिक बिगड़ने से बचाने के लिए निम्नलिखित पग उठाना आवश्यक है—

(१) बरनाला सरकार को बर्खास्त किया जाए क्योंकि वह पंजाब की स्थिति को संभालने के लिए हृदय से कृत सकल्प नहीं। ऐसे समय जबकि वहां उग्रवादियों द्वारा प्रतिदिन निर्दोष हिन्दू अल्पसंख्यक मौत के घाट उतारे जा रहे हैं, बरनाला सरकार का ध्यान कुछ एकड़ क्षेत्रीय लाभ के लिए संघर्ष करने में लगा हुआ है।

(२) पंजाब में तुरन्त राष्ट्रपति शासन लागू करते हुए उसे सेना के हवाले किया जाए।

(३) और वहां ऐसी परिस्थितियां पैदा की जायें, जिससे वहां की कानून और सुरक्षा व्यवस्था सुदृढ़ हो सके और जो अल्पसंख्यक राज्य छोड़कर चले गए हैं, वे पुनः अपने घरों को लौट सकें।

सभी की सभी शाखाओं के कार्य-कर्ताओं की एक बैठक दिल्ली में १२ और १३ जुलाई को बुलाई गई है। उस समय इस दिशा में आगे की कार्रवाई पर अन्तिम निर्णय लिया जाएगा।

पंजाब को बचाने की अपील

हमारी आशंका है कि देश के विघटन वादी तत्त्व कुछ विदेशी ताकतों के सहयोग और समर्थन से सारे देश में फैलकर हमारे राजनैतिक ढांचे को तोड़कर देश को और विभाजित करने का प्रयत्न करेंगे। आर्यसमाज जो देशभक्तों की एक सामाजिक संस्था है, इस विनाश पर मूक दर्शक बनकर नहीं रह सकता। हम समझते हैं कि देश की सुरक्षा के लिए अधिक-तम बलिदान देने का समय आ गया है और हमें किसी भी कीमत पर इसकी रक्षा करनी है। मैं देश की सभी सामाजिक संस्थाओं और राजनैतिक संगठनों से, चाहे वे किसी भी विचारधारा को मानते हों, अपील करता हूं कि वे इस कठिन समय में आगे आकर पंजाब को बचाने का प्रयत्न करें। यदि पंजाब बचेगा तो देश भी बच सकेगा, अन्यथा विघटन अवश्यम्भावी है। □

पंजाब के विस्थापित हिन्दुओं की सहायता के लिए पंजाब हिन्दू सहायता कोष में दिल खोलकर दान दें

आज पंजाब उग्रवाद और आतंकवाद से जल रहा है। वहां का हिन्दू पूरी तरह भयभीत होकर पंजाब छोड़ कर अन्य राज्यों के विभिन्न नगरों में सुरक्षा हेतु पहुंच रहा है। दिल्ली, हरियाणा, हिमाचल, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के अनेक नगरों में अब तक लाखों हिन्दू पहुंच चुके हैं।

यद्यपि आर्यसमाज इस सम्बन्ध में भारत सरकार से सम्पर्क रखे हुए है और इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि सरकार की ओर से तुरन्त कोई ऐसी व्यवस्था हो जाये जिससे वहां के अल्पसंख्यक हिन्दुओं में आत्मविश्वास पैदा हो सके और उनका पलायन रोका जा सके।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की २२ जून की अन्तरंग सभा में यह निर्णय लिया गया है कि यदि भारत सरकार यथाशीघ्र पंजाब में राष्ट्रपति शासन लागू नहीं करती है तो सार्वदेशिक सभा की ओर से आगामी १२-१३ जुलाई, १९८६ को भारत की समस्त आर्यसमाजों का कन्वेन्शन बुलाया जाएगा और आगे की कार्रवाई पर निर्णय लिया जाएगा।

इस संकट की घड़ी में समस्त आर्य-समाजों, आर्य जनता तथा राष्ट्रवादी जनता से मेरा निवेदन है कि पंजाब के विस्थापितों को मन्दिरों, धर्मशालाओं में हर प्रकार का सहयोग-संरक्षण प्रदान करें। सार्वदेशिक सभा ने इस कार्य के लिए पंजाब हिन्दू सहायता कोष की स्थापना कर दी है। सभी समाजों व धर्म-प्रेमी जनता से अपील है कि वह अपनी सहयोग राशि निम्न पते पर तुरन्त भिजवाने का कष्ट करें—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
महर्षि दयानन्द भवन
रामलीला मैदान, नई दिल्ली-२

निवेदक :
स्वामी आनन्द बोध सरस्वती
प्रधान, सार्वदेशिक सभा दिल्ली

घटनाक्रम के झरोखे से झांकता व्यक्तित्व

श्री रामगोपाल शालवाले, वानप्रस्थ से संन्यासी

१९०७ से २२ जून, १९८६ तक

बचपन का परिचय—श्री रामगोपाल का जन्म लाला नन्दलाल जी के घर १९०७ में अनन्तनाग में हुआ। इनके पिता बड़े भारी व्यापारी थे। बाद में यह ११ वर्ष की आयु में अमृतसर आ गए और वहां आर्यसमाज के सदस्य बन गए। १९२१ में दिल्ली आए और दिल्ली में आर्यसमाज के सक्रिय कार्यकर्ता बन गए।

आर्यसमाज में कार्य—दिल्ली के प्रमुख आर्यसमाजी कार्यकर्ता आप बहुत पहले ही बन चुके थे। आप ने श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज, श्री नारायण स्वामी जी, श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज तथा श्री रामचन्द्र देहलवी के साथ काम किया। आर्यसमाज के गोरक्षा आंदोलन, हैदराबाद आर्य सत्याग्रह, हिंदी रक्षा आंदोलनों में भाग लिया। बंगाल पीड़ितों की सहायता के लिए कलकत्ता गए। वहां दर्जनों शरणार्थी कैम्पों का संचालन किया।

राजनीतिक जीवन—१९६६ में निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में दिल्ली के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ लाला श्यामनाथ को हराकर लोकसभा के सदस्य बने। अपने कार्यकाल में आप ने सरकारी कोठी व अन्य सुविधाएं नहीं लीं। सरकारी राशि ५००) रु० जो मिलती थी, वह गरीबों व विधवाओं व अनाथों में वितरित की। लोकसभा सदस्य के रूप में राष्ट्रपति भवन में बनने वाली बहुचर्चित मस्जिद के निर्माण को रुकवाया। प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी, श्री मोरार जी देसाई, चौधरी चरणसिंह, बाबू जगजीवन राम आदि से इनके अच्छे सम्बन्ध रहे। श्री राजीव गांधी वर्तमान प्रधानमन्त्री से भी इनका अच्छा सम्पर्क है। राष्ट्रीय एकता, अखण्डता व हित के लिए इनकी राय व परामर्श का उच्च क्षेत्रों में सम्मान व आदर किया जाता है।

अन्य क्षेत्र—१९३३ में शिव मन्दिर के विवाद के मामले में बढ़चढ़कर भाग लिया। राष्ट्रीय आंदोलनों में श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति आदि नेताओं के साथ काम किया। गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ से ब्रह्मचारियों को लाकर आंदोलनकारियों को हर प्रकार से सहायता व मदद पहुंचाने का कार्य किया। १९४७-४८ में देश के विभाजन के समय पीड़ित हिन्दुओं और सिखों के लिए आर्यसमाज की ओर से ३३ कैम्पों का संचालन किया गया। वह सब इनके ही जिम्मे थे।

पदाधिकारी—आर्यसमाज दीवान हाल व आर्य केन्द्रीय सभा के कई बार प्रधान बने। १९६० के पश्चात् सार्वदेशिक सभा के उपमन्त्री व बाद में कई बार मन्त्री रहे। १९७४ से लगातार सार्वदेशिक सभा के निर्विरोध प्रधान चुनते आ रहे हैं।

धर्मरक्षा अभियान—इनके कार्यों की सबसे बड़ी उपलब्धि आर्यसमाज द्वारा हिन्दू जागरण अभियान के रूप में "धर्मरक्षा महाभियान" आंदोलन है। जब मीनाक्षीपुरम में हरिजनों का पूरा गांव मुसलमान बना दिया गया तो श्री शालवाले ने आर्यसमाज की ओर से उक्त आंदोलन का सूत्रपात किया और १९८२ के जनवरी मास में मीनाक्षीपुरम में ऐतिहासिक आर्य महासम्मेलन का आयोजन किया। उसके पश्चात् देश में धर्मरक्षा की आंधी चली और कई मौलवी व पादरी वैदिक धर्म में प्रविष्ट हुए जो आज हिन्दू जाति की सेवा में काम कर रहे हैं, यह श्री शालवाले की विशेष उपलब्धि है।

साम्प्रदायिक दंगे—जम्मू काश्मीर, मुरादाबाद, सम्भल, अलीगढ़, सहारनपुर आदि जहां भी साम्प्रदायिक दंगे हुए, श्री शालवाले उन जगहों पर गए और पीड़ितों की हर प्रकार से सहयोग संरक्षण के कार्य में लगे रहे। दिल्ली व हैदराबाद के साम्प्रदायिक दंगे भी इनमें शामिल हैं।

आर्यसमाज के प्रमुख सम्मेलन—इन के कार्यकाल में (प्रधान पद पर रहते हुए) आर्यसमाज स्थापना शताब्दी समारोह, सत्यार्थप्रकाश शताब्दी समारोह, निर्वाण शताब्दी समारोह, डरबन आर्य महासम्मेलन, नैरोबी आर्य महासम्मेलन और लन्दन आर्य महासम्मेलन हुए। सितम्बर १९८४ में पश्चिम जर्मनी में विश्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने गए। दिसम्बर १९८५ में नेपाल के विराट नगर में आर्य महासम्मेलन के मुख्य अतिथि के रूप में वैदिक धर्म का नेपाल राष्ट्र में उद्घोष किया। आर्यसमाज के सर्वोच्च पदाधिकारी होने के नाते देश के सभी क्षेत्रों में आर्यसमाज के कार्य में भाग लिया। कश्मीर से कन्याकुमारी तक, नागालैण्ड से पंजाब की सीमा तक कोई क्षेत्र ऐसा नहीं रहा, जहां श्री शालवाले न गए हों।

अभिनन्दन—२७ अप्रैल, १९८६ को दिल्ली के तालकटोरा इण्डोर स्टेडियम में अभिनन्दन ग्रन्थ श्री बलराम जाखड़, लोकसभा अध्यक्ष द्वारा दिया गया और श्री शालवाले ने सन्यास लेने की घोषणा की।

संन्यास—२२ जून, १९८६ को दिल्ली की प्रसिद्ध आर्यसमाज दीवानहाल में आर्य जगत् के वीतराग सन्यासी पू० श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज से सन्यास की दीक्षा ग्रहण करके श्री स्वामी आनन्द बोध के नाम से जाने गए।

—दानसिंह मेहरा
सार्वदेशिक सभा, दिल्ली

भारत की एकता और अखण्डता को हर कीमत पर बनाए रखा जाना चाहिए

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा का नया अभियान

भारत की एकता और अखण्डता को हर कीमत पर बनाए रखा जाना चाहिए। इसकी जिम्मेदारी भारत की जनता तथा हम सबकी है। यह शब्द दिल्ली आर्य आर्य प्रतिनिधि सभा के युवा महामन्त्री डा० धर्मपाल जी ने उस समय कहे, जब इन्द्रपुरी के निकट स्थित बुढ़पुरा जे० जे० कालोनी में सभा के तत्वावधान में आयोजित दो दिवसीय रात्रि वेदप्रचार कार्यक्रम चल रहा था। आपने उपस्थित जनता को बताया कि आज भारत को चारों ओर से अन्दर तथा बाहर से भीषण खतरा बना हुआ है, अन्दर तथा बाहर की ताकतें भारत को विघटित करने में लगी हुई हैं। हम सबको एक जुट होकर इन ताकतों का मुकाबला करना चाहिए और आपसी भाईचारा, सद्भाव तथा शान्ति बनाए रखना है।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा ने देश की वर्तमान स्थिति को देखते हुए एक नया अभियान चलाया है जिसमें दिल्ली के हर ग्राम-ग्राम, पुनर्वास कालोनियों पिछड़ी बस्तियों में प्रचार के माध्यम से जनता में जनजागृति, नई चेतना, धर्म का वास्तविक स्वरूप बताने तथा संगठन बनाए रखने का जनता से अनुरोध किया जाता है।

इस सप्ताह ६, ७ जून १९८६ को बुढ़पुरा जे० जे० कालोनी में श्री कामेश्वर शास्त्री के तथा स्थानीय आर्य समाज इन्द्रपुरी, नारायण विहार के अधिकारियों के सहयोग से रात्रि प्रचार का कार्यक्रम रखा गया। प्रचार कार्य में वहां की धर्मपरायण जनता ने उत्साह पूर्वक भाग लिया। वैदिक साहित्य भी वितरण किया गया। प्रचार कार्यक्रम में बोलते हुए अपने प्रवचन में सभा के वेद प्रचार व्यवस्थापक श्री ओमवीर शास्त्री ने उपस्थित जनता को बताया कि जैसे अग्नि, वायु, सूर्य का एक धर्म होता है, उसी प्रकार हर व्यक्ति का एक धर्म होता है, वह है मानव धर्म। अग्नि का कार्य है जलाना, वायु का कार्य है जीवित रखना, सूर्य का कार्य है प्रकाश/ऊर्जा देना और अन्धकार को दूर करना, उसी प्रकार मानव का भी एक ही धर्म, कर्तव्य है मानवता का प्रचार करना। आपने रामायण तथा गीता के श्लोकों के आधार पर बल देते हुए जनता से आग्रह किया कि हमें हर कीमत पर देश की रक्षा करनी है। आज भाई-भाई का दुश्मन बन गया है, हमें फिर से उन्हें जोड़ना है। इस इसकी जिम्मेदारी हम सबकी है। हमें मंदिरों, गिरजाघरों, मस्जिदों, आर्यसमाज मंदिरों से बाहर निकल कर गली गली, मुहल्ले में जा जाकर हर बहन भाई तक वेद के संदेश को पहुंचाना होगा। सभा इस कार्य के लिए उद्यत है और आपका सहयोग चाहती है।

सभा के यशस्वी भजनोपदेशक, रेडियो तथा दूरदर्शन कलाकार श्री सत्यदेव जी स्नातक, श्री चुन्नीलाल जी आर्य, श्री श्यामवीर जी राघव, श्री कामेश्वर शास्त्री ने वैदिक धर्म की मान्यताओं, ऋषि दयानन्द द्वारा किये गये कार्यों, ऋषि मुनियों के आदर्शों, पदचिह्नों पर चलने की उपस्थित जनता से अपील की।

स्थानीय धर्मपरायण जनता ने इस कार्य की सराहना की तथा बढ़ चढ़कर भाग लिया।

जगदीश लाल
वेद प्रचार विभाग

शरीर की पहचान नाड़ी से राष्ट्र की पहचान नारी से

लेखक—चमनलाल आर्य

एक प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् रिचर्ड एलंडिंग्टन का कहना है—

"The true wealth of a country lies in its men and women, if they are mean, unhappy and ill, the country is poor"

स्पष्ट है कि किसी देश की समृद्धि और खुशहाली उस देश की स्त्री जाति की प्रसन्नता और खुशहाली पर भी आश्रित है। जितना आदर सम्मान तथा सामाजिक व राजनैतिक अधिकार स्त्री को प्राप्त होंगे उस अनुपात में ही वह प्रसन्न होगी। इसी बात को लाखों वर्ष पूर्व महर्षि मनु ने अपने धर्म ग्रन्थ के अध्याय तीन में इस प्रकार लिखा है "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रिया"। यही बात आर्यसमाज के प्रवर्तक भारत के नव जागरण के अग्रदूत महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने अमरग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश मे आज से एक सौ ग्यारह वर्ष पूर्व दोहराई थी। वैदिक वाङ्मय मे स्त्री को अर्धाङ्गिनी कहा गया अर्थात् वह पुरुष के बराबर अधिकारों वाली है। यदि गृहस्थ एक रथ या दो चक्र वाला वाहन है तो उस का एक पहिया पुरुष और दूसरा स्त्री है। यह निश्चित है कि जब तक दोनों पहिए समान क्षमता वाले नही होंगे गृहस्थ रूपी गाड़ी का चलना कठिन है। गृहस्थ विश्व की सबसे छोटी परन्तु महत्वपूर्ण इकाई होने के नाते स्त्री को जब तक सर्वांग अधिकार पुरुष के समान प्राप्त न होंगे तब तक गृहस्थ परिणामत. विश्व मे शान्ति का अभाव बना रहेगा—तनावपूर्ण जीवन मे कभी शान्ति की आशा नही की जा सकती।

हमारे धर्म शास्त्रों में गृहस्थ—स्त्री पुरुष का विवाहित जीवन पाश्चात्य देशो की भांति कामवासना तृप्ति का साधन नही अपितु एक धार्मिक व पवित्र सामाजिक कर्तव्य निभाने के लिए बताया गया है। उपनिषद् मे आया है "सो अकामयत जाया मे स्यादथ प्रजायेय अथ वित्तं मे स्यादथ कर्म कुर्वीयेति"।

अर्थात् पुरुष ने कामना की कि मुझे स्त्री किसी भोग-विलास के लिए नहीं अपितु प्रजा की वृद्धि करके ऋण से उऋण होने के लिए और धन दान आदि कर्तव्य पालन करने के लिए प्राप्त हों। अत: स्त्री पुरुष का संसर्ग धार्मिक व सामाजिक व्यवस्था को ठीक ढंग से चलाए रखने के लिए होता है स्त्री का पावन कर्तव्य मातृत्व धर्म निभा "मातृमान्" बनने के पश्चात् "मातृदेवो भव" माना जाता है। जिसका आर्य हिन्दु समाज के सिवा कही कोई महत्व नहीं पाया जाता। भारतीय समाज में स्त्री को इतना ऊंचा स्थान दिया गया है कि उसके बिना कोई यज्ञ कर्म सफल नही माना जाता। यहा की कन्याएं विदुषी बनकर स्वयं अपने पति को गुण-कर्म स्वभाव के आधार पर वरण करती थीं "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" वेद में नारी के गौरव का जो समुज्ज्वल स्वरूप हमें दिखाई देता है वह किसी भी सभ्य देश व समाज के लिए महान गौरव की वस्तु है। ऋग्वेद मे कहा है "अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी ममेदनु क्रतु पतिः सेहानाया उपाचरेत्।"

अर्थात् मैं ज्ञानवती हू, सुशिक्षिता हू घर मे मुख्य हू। मैं धैर्य वाली और शत्रुओं का नाश करने वाली हू मैं चाहती हूं कि पति मेरे अनुकूल रहकर सब कार्य करे। भारतीय प्राचीन सभ्यता कितना बड़ा अधिकार नारी को देती है। वेद में कहा कि नारी अशिक्षित न रहे, शिक्षा प्राप्त कर उत्तम गुणों वाली बने। घर की अधिष्ठात्री हो, आवश्यकता पड़ने पर घर की चारदीवारी से निकल भाषण देने की क्षमता रखती हो तथा शत्रुओं का नाश करने से न घबराती हो। धैर्यपूर्वक नाना सामाजिक कार्य करने की क्षमता वाली नारी के अधिकारों के साथ-साथ कुछ मर्यादाएं भी निर्धारित की है जिनका पालन कर वह पापाचारी, विषयलोलुपता नर की भोगलिप्सा से अपने अस्तित्व की रक्षा कर अपने गौरव को अक्षुण्ण बना सकती है।

वैदिक काल मे नारी समाज का एक महत्वपूर्ण अंग बनकर पुरुष के समकक्ष प्रतिष्ठित थी शिक्षा, दीक्षा व समुन्नति का प्रत्येक द्वार उसके लिए उन्मुक्त था, इसी से समाज राष्ट्र, देश समुन्नति की चरम अवस्था पर पहुँचा। उस काल में यहां नारियां अपने पतियों के साथ युद्ध में जाती व राज्य कार्य भार भी कुशलता पूर्वक सम्भालती थीं। महारानी कैकेयी, अहिल्याबाई, लक्ष्मीबाई ऐतिहासिक उदाहरण हैं। देवी भारती द्वारा मण्डन मिश्र एवं आचार्य शंकर सदृश विद्वानों के शास्त्रार्थ का युक्तियुक्त न्याय अवलम्बन का मातृत्व व विदुषी लीलावती का वर्णित ज्ञान किसके कौतूहल का विषय नहीं है। शकुन्तला के विवाह पर तापसी नारियों द्वारा वेदमन्त्रों से किये गए स्वस्ति वाचन का उल्लेख महाकवि कालिदास ने अपने काव्य में बड़े सुन्दर ढंग से किया है।

स्पष्ट है नारी एक ईश्वरीय उपहार जो समाज का अभिन्न अंग है। मानवता की प्रतिफल जन्म शक्ति और प्रेरणा का अमर सन्देश है। एक नहीं नहीं दो-दो मात्राएं "नर" से बढ़कर "नारी" है। भारतवर्ष का धर्म कर्म पुरुष वर्ग से नहीं अपितु नारी वर्ग की श्रद्धा से जीवित है। प्रकृति और परमात्मा के प्रेमपूर्ण अनुबन्ध का नाम ही "नारी" है। प्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद ने लिखा है—

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास, रजत, नग, पग।
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।।

अतः भारतीय नारी चिकित्सा, क्रीड़ा, प्रशासन, विज्ञान की विविध दिशाओं में गौरवपूर्ण मानदण्ड स्थापित करती हुई विश्व के विस्मय की वस्तु बनी हुई है।

परन्तु समय सदैव एक जैसा नही रहता। यह काल चक्र चलता हुआ बदलता रहता है। अभाग्यवश एक समय ऐसा आया कि जब हमारी घरेलू फूट और स्वार्थ वृत्ति के कारण हमारे शासकों ने विदेशियों को बुलाकर यहां उनका शासन स्थापित करने में खूब सहयोग दिया। महाभारत काल मे नारी की अवस्था बिगड़नी आरम्भ हुई पुराण काल में इसे पवित्र वेदवाणी भी पढ़ने सुनने के योग्य न समझा गया और धूर्त लोगों ने "स्त्री शूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः" का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। गुप्तकाल में इसकी स्वतन्त्रता केवल उच्च वर्ग तक सीमित रह गई। मुस्लिम काल मे तो इसकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई। विदेशियों के अत्याचारों के कारण नारी वर्ग को अपनी लाज बचानी कठिन हो गई। जिस कारण उनका घर से निकलना मुश्किल हो गया और स्वतन्त्रता छिन गई। अपने प्राचीन रीति-रिवाजों के अनुकूल गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार पति चुनने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इस प्रकार शिक्षा, दीक्षा से वंचित नारी केवल भोग-विलास की वस्तु बन गई। फलतः अज्ञान के अन्धकार में भटकती नारी अपने शुद्ध स्वरूप को भूलकर कुरीतियों व कुप्रथाओं की जंजीरों में जकड़ गई। नारी की छाया "नारी तो हम भी सभी—नारी बड़ा विकार" सदृश वाक्यों के वर्णन में देखी जाने लगी। दासता के पाशों में जकड़ी ऋषि मुनियों की पुण्य स्थली भारत भूमि अपने मूल पाठ भूलकर 'गृहिणी गृहमिच्छहुर्न गृहं गृहिणीविना" के स्थान पर "द्वार किमेकं नरकस्य नारी" को आदर्श वाक्य मान बैठी। समय के प्रभाव से रीतिकालीन कवियों के काव्य में सीता सदृश पवित्र नारियों का भी भोग विलासमय कुत्सित चित्रण किया गया। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने नारी की दुर्दशा का चित्र इस प्रकार उपस्थित किया—

"अबला जीवन हाय तेरी यही कहानी, आंचल मे है दूध, आंखों मे है पानी" यही नही बड़े-बड़े विचारकों ने भी युगानुरूप दृष्टि से नारी को हेय दृष्टि से देखना आरम्भ कर दिया। भक्त कबीर ने लिखा—"नारी की झाईं परत अन्धा होत भुजंग, कबीरा तिनकी कौन गति जो नित नारी के संग"। मूर्धन्य कवि सन्त तुलसी दास ने यहां तक कह डाला "ढोल, गंवार शूद्र पशु, नारी, ये सब ताडन के अधिकारी"। हिन्दी साहित्य के सूर्य कविवर भक्त सूरदास ने तो नारी के कारण अपनी आंखें ही फोड़ डाली। इससे बढ़कर शंकराचार्य ने तो नारी को नरक का द्वार बताकर नारी जाति की निन्दा की। कुछ विदेशी विचारकों के विचार भी नारी जाति के सम्बन्ध में ऐसे ही थे। महान नाटककार शेक्सपियर के शब्दों में "छलनामयी तेरा नाम है औरत।" तथा महात्मा टालस्टाय ने "मेरी मृत्यु के समय मेरी शय्या के पास नारी न रहे" आदि शब्दों द्वारा नारी जाति के लिये घोर निंदनीय भावनाएं व्यक्त की हैं।

यदि हम तुलनात्मक दृष्टि से नारी की इन दोनो स्थितियों पर विचार करें तो उनमें आकाश पाताल का अन्तर स्पष्ट दीख पड़ेगा। वस्तुतः नारी को विधाता ने विविध प्राकृतिक गुणों से विभूषित करके निर्मात्री के गरिमामयी आसन पर प्रतिष्ठित किया था किन्तु कालगति की क्रूर चाल ने अपनी अठखेलियों से अनायास ही उसे व्यावहारिक रूप में भारतीय समाज में अज्ञान के कुहरे में भटकने को छोड़ दिया। एक कवि ने नारी की दुर्दशा से व्याकुल होकर कहा है "मुक्त करो नारी को मानव, चिरबंदिनी नारी को, युग-युग की निर्मम कारा से, जननी सखी प्यारी को"।

परन्तु अब समय नहीं रहा, आधुनिक युग जागृति का युग है। देश में गत १०० वर्षों में जहां सामाजिक, राजनैतिक क्रांतियां आईं वहां नारी वर्ग को विकास और उन्नति का अवसर भी मिला। यह समानता का युग है। नारी ने अपने खोये अधिकारों के लिए समाज के साथ प्रबल संघर्ष छेड़ दिया। इतिहास साक्षी है कि राजा राममोहनराय और आर्यसमाज के प्रवर्तक नव जागरण के अग्रदूत आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती से पूर्व गत दो सहस्र वर्षों में

शरीर की पहचान नाड़ी से राष्ट्र की पहचान नारी से

किसी अत्यन्त क्रान्तिकारी दिशा बोधक शासकों या धर्माचारियों, दार्शनिकों में से किसी ने भी आधी मानवता यानी नारियों की दशा के अभ्युत्थान के लिए कोई विशेष कार्य नहीं किया।

नारी मुक्ति के आंदोलन का श्रेय युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द को जाता है। वे नारी जाति की दुर्दशा को देखकर बड़े व्याकुल चिन्तित रहते थे। उन्होंने अकेले ही प्रचलित सामाजिक अमानवीय बन्धनो तथा मान्यताओं के विरुद्ध आवाज उठाई। उनकी दूर-दृष्टि और स्थिर चिन्तन ने नारी की प्रगति में बड़ा क्रान्तिकारी काम किया। घोर विरोध के होते हुए भी उन्होंने उपनिषदों, स्मृतियों, वेद व इतिहास द्वारा युक्तियुक्त प्रमाण देकर नारी की श्रेष्ठता सिद्ध की और स्त्री को पुनः समाज में उत्तम मान का पात्र बनाया। उन्होने महिला प्रगति के लिए और समाज में उनको समान अधिकार दिलाने हेतु स्थान-स्थान पर उनकी शिक्षा दीक्षा के लिए अलग विद्यालयों के खोलने का अभियान चलाया। उन्होंने नारी को प्राचीन भारतीय सभ्यता व संस्कृति की छाया में प्रगति की दिशा दी। समान अधिकारों के साथ साथ उपनिषद् वाक्य—"मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद" की ओर दृष्टि दिलाकर माता को बालक का सर्वप्रथम एवं सर्वाधिक महत्वशाली गुरु का गौरव प्राप्त कराया। महर्षि का नारी जागरण का शंखनाद मानो घोर अंधकार को सूर्य की चुनौती थी। ऋषि की मान्यता थी कि बिना नारी वर्ग के विकास के देश की उन्नति अधूरी है। अतः समस्त भारतवर्ष देश और सर्वाधिक नारी वर्ग महर्षि दयानन्द की ऋणी है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार ने जनकल्याण के अनेकों विकास कार्यों के नारी जगत् के उत्थान की ओर भी ध्यान दिया है। जिसका परिणाम यह हुआ है कि आज बड़े से बड़े पद पर महिलाएं नियुक्त हैं, जहाँ वे बड़ी कुशलता और सफलता पूर्वक कार्य कर रही हैं। परन्तु याद रहे कि साधारणतः नारी की यह प्रगति बड़े-बड़े नगरों और शहरों तथा केवल उच्च वर्ग की नारियों तक ही सीमित है। भारत का तीन चौथाई भाग नगरो शहरों में न रहकर देहातों और दूर दराज ग्रामों में स्थित है। अतः नारी जागरण की यह रोशनी अभी तक उन ग्रामीण अशिक्षित महिलाओं तक नही पहुंची, यद्यपि प्रान्तीय सरकारे इस दिशा मे प्रयत्नशील तो हैं परन्तु पर्याप्त सफलता नही मिली। जब तक इस ग्रामीण नारी वर्ग का सर्वांग विकास न होगा, तब सब अन्त विकास कार्य अधूरे गिने जावेंगे! इन ग्रामीण महिलाओ की स्थिति में सुधार लाने के कुछ सुझाव इस प्रकार हैं—

(क) शहर की सुशिक्षित महिलाओं की टीमें ग्रामो में जाकर ग्रामीण औरतों को साफ सुथरा घर रखने की प्रेरणा करें।

(ख) बच्चो को स्वस्थ और साफ सुथरा रखने की शिक्षा दें।

(ग) अपने नेताओं, महापुरुषों और वीरांगनाओं के जीवन चरित्र पढ़ने की प्रेरणा करें व पढ़कर सुनावें।

(घ) रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों से शिक्षाप्रद प्रसंगों को सुनाना न भूलें।

(ङ) सुशिक्षित महिलाएं सादे लिबास में जावें ताकि ग्रामीण महिलाएँ उनसे मिलने में संकोच न करें।

(च) प्रान्तीय सरकारें स्त्री सम्बन्धी विकास योजनाओं को उत्सुकता से सम्पन्न करें। स्वागत समारोह आदि पर धनराशि व्यय न करें ताकि प्रभावित वर्ग को पूरा लाभ पहुच सके।

(छ) सरकारें आर्य समाज द्वारा किए जा रहे नारी उत्थान के कार्यों मे धन की यदि सहायता दे तो इसके प्रचार से ग्रामीण महिलाओ की स्थिति के सुधार मे आशातीत प्रगति हो सकती है। आर्य समाज के प्रचार के अभाव के कारण दक्षिण भारत मे तो नारी जागरण का कार्य अभी आरम्भ तक नही हुआ है।

(ज) ग्रामीण पचायतें व स्कूल अध्यापक इस कार्य मे सन्तोष जनक भूमिका निभा सकते हैं।

अंत० संयुक्त संघ ने विश्वशांति के लिए महिलाओं के उत्थान का महत्व समझकर वर्ष १९७५ "अन्तर्राष्ट्रीय महिला सुधार वर्ष" की घोषणा कर वर्षों से पीडित स्त्री जाति के जागरण मे योगदान दिया। इसके अन्तरगत एक ऐतिहासिक अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन रूस देश की राजधानी मास्को मे उसी वर्ष जून-जुलाई माह में सम्पन्न हुआ। जिसमे विश्व के लगभग १२५ देशों की ३००० महिला प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। जहां सबने एक जुट होकर पुरुषों के समान अधिकारों को प्राप्त करने के लिए बलपूर्वक माग की। इस आन्दोलन का समापन समारोह गत वर्ष १९८५ में कीनिया देश की राजधानी नैरोबी नगर में सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। इससे निस्सन्देह नारी जाति की स्थिति में सुधार तो हुआ, परन्तु याद रहे कि हमारे भारत देश में स्त्री जाति को जो ऊंचा स्थान आज प्राप्त है वह बड़े से बड़े विकसित देश की स्त्रियों को अभी तक प्राप्त नहीं है।

यहा एक बात कहनी अत्यावश्यक है कि नारी सुधार की योजना बनाते समय अपनी सभ्यता, संस्कृति तथा सामाजिक मर्यादाओं और मूल्यों का उल्लंघन न करें। वास्तविक सुधार तभी होगा जब नारी पतिव्रता, उत्तम सन्तान पैदा करने वाली न होकर देश का गौरव बढाने वाली हो। आवश्यक है कि वे पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध का शिकार न बने। उनकी मातृत्व एवं नारीत्व की रक्षा के लिए सरकारो को चाहिए कि—

(क) होटलों में युवतियों के नग्न नृत्य पर तुरन्त प्रतिबन्ध लगावें।

(ख) वस्तुओं के विज्ञापनों में नारी को लज्जाजनक रूपों में प्रदर्शित करने पर रोक लगावे ताकि नारी का अपमान न हो व युवकों के आचार पर कुप्रभाव न पडे। जिससे महिलाएं अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकेंगी व किसी दुष्प्रवृत्ति का शिकार न होंगी इसकी हमारे देश में आज अत्यावश्यकता है। इसी मे ही नारी का वास्तविक उत्थान व देश का गौरव निहित है।

In the end I thank you all whole heartedly for the patient hearing □

पंजाब से हिन्दू पलायन के विरुद्ध सन्त महात्मा देशव्यापी आन्दोलन करेंगे

आर्य समाज दीवान हाल दिल्ली मे एक विशालसभा हुई जिसमें पुरी के जगत्गुरु शंकराचार्य निरंजन देव तीर्थ ने सरकार को चेतावनी दी यदि पंजाब के निर्दोष हिन्दुओं की जान-माल की सुरक्षा का प्रबन्ध शीघ्र न किया गया तो उग्रवाद के खिलाफ भारत के सभी सन्त महात्मा समूचे देश में आन्दोलन छेड़ देंगे।

शंकराचार्य ने यहां आयोजित हिन्दु समागम समारोह को सम्बोधित करते हुए कहा कि सरकार की तुष्टिकरण की नीति ही पंजाब से हिन्दुओं के पलायन में जिम्मेदार है।

जगत्गुरु ने कहा कि एक ओर विदेशी मिशनरी देश में हिंदुओं का धर्मान्तरण कर रहे हैं और दूसरी ओर कथित खालिस्तानी तत्व देश को तोड़ने पर तुले हैं। इसके लिए केन्द्र सरकार भी बराबर की दोषी है। उन्होंने कहा कि ईसाइयों के धर्म गुरु पोप जानपाल के भारत दौरे पर खर्च हुआ ५० करोड रुपया यदि हरिजनों व गिरिजनों के कल्याण पर खर्च किया जाता तो बड़ा भला होता। उन्होंने कांग्रेस और जनता सरकारो की आलोचना करते हुए कहा कि जनता सरकार ने दिवंगत सांसद श्री ओम प्रकाश त्यागी के धर्मान्तरण विरोधी विधेयक को पारित न कर बहुत बड़ा अन्याय किया।

शंकराचार्य ने जोरदार शब्दों में मांग मांग की कि पंजाब में अल्पसंख्यक हिन्दुओं को आधुनिकतम हथियार दिए जाएं तभी वह अपनी सुरक्षा कर सकते हैं।

उन्होंने हिन्दुओं को आह्वान किया कि वे सरकार के भरोसे न रहकर अपनी रक्षा स्वयं करने की भावना जागृत करें। वर्तमान सरकार को हिन्दु विरोधी बताते हुए हिन्दु मठों, मंदिरों व सम्पत्ति पर ताले लगाए जाने तथा मस्जिद, गिरजाघरों व गुरुद्वारों को सरकारी भूमि पर कब्जों की खुली छूट देने के आरोप लगाए। यह सब वोटों की गन्दी व बेनेमिंग राजनीति के सामने रखकर किया जा रहा है।

धर्मान्तरण को धार्मिक ब्लैकमेल बताते हुए उन्होंने धर्मान्तरण विरोधी कानून बनाने की मांग की।

इस मौके पर गोवंश सुरक्षा हेतु गोहत्या बन्दी कानून को लागू करने की भी मांग को दोहराया गया।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के लाला रामगोपाल शालवाले ने पंजाब को पांच वर्ष के लिए सेना के हवाले करने का सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि हिन्दुओं का पलायन रोकने के लिए अब यही एक रास्ता बचा है।

इस अवसर पर स्वामी नन्दनानन्द सरस्वती, स्वामी चिन्मा प्रकाश, स्वामी बवानन्द हरि, स्वामी शिवानन्द, स्वामी प्रपन्नाचार्य आदि विभिन्न मठो के सन्तों ने भी पंजाब की दुर्दशा के लिए सरकार को दोषी बताया।

सभा के पारित प्रस्ताव द्वारा सन्तों के पंजाब दौरे के बाद देशव्यापी आन्दोलन की रूपरेखा हेतु एक समिति का भी गठन किया गया।

समाचार

केन्द्रसरकार पंजाब के हिन्दुओं की सुरक्षा का दायित्व ले

देश भर से आये साढे तीन सौ प्रतिनिधियों की उपस्थिति में आर्य समाज अनारकली, मन्दिर मार्ग नई दिल्ली मे आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का वार्षिक अधिवेशन अत्यन्त उद्वेग पूर्ण वातावरण मे सम्पन्न हुआ। इस उद्वेग का मुख्य कारण पजाब मे हिन्दुओं पर हो रहा निर्दय एव निर्मम अत्याचार था। फतेहाबाद अमृतसर से भाग कर आये हिंदु परिवारो के प्रतिनिधि श्री बृजमोहन भगारी ने वहां की दशा का जो चित्र प्रस्तुत किया, वह बड़ा हृदय विदारक था। देश भर से आये सभी प्रतिनिधियों ने एक स्वर से पजाब के हिंदुओ की सुरक्षा के लिए तन-मन-धन से सहायता देने की घोषणा की। सभा के अध्यक्ष प्रो० वेद व्यास ने अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए पजाब के साथ-साथ देश के पूर्वांचल में घटने वाली घटनाओं का भी उल्लेख किया।

कांगड़ा भूकम्प पीड़ितों की सहायता में लगे प्रि० रमेश चन्द्र जीवन के हृदय स्पर्शी विचारों को सुनकर उपस्थित जन समूह ने अपनी सहायता का आश्वासन दिया। सभा के इस वार्षिक अधिवेशन को सम्बोधित करने वालों में प्रो० वेद व्यास के अतिरिक्त हीरो साईकिल उद्योग लुधियाना के सचालक श्री सत्यानन्द मुंजाल हरियाणा पूर्व मंत्री चौ० शिवराम वर्मा आदि सौ से भी अधिक महानुभाव थे। वक्ताओं मे सभी ने एक स्वर से पंजाब की स्थिति पर चिन्ता व्यक्त करते हुए केन्द्र सरकार से अविलम्ब उचित कार्रवाई करने का आग्रह किया। और यह भी कहा कि यदि सरकार निष्क्रिय बनी रहती है तो आर्य समाज इसके लिए सत्याग्रह करेगा।

संवाददाता आर्यजगत्

ईसाई युवती की शुद्धि

आर्यसमाज अजमेर द्वारा कृष्णगंज अजमेर निवासिनी २४ वर्षीया कु० पुनीता मैसी द्वारा स्वेच्छा से धर्म परिवर्तन हेतु प्रार्थना पत्र देने पर हिंदु (वैदिक) रीति से शुद्धि सस्कार कर उसे वैदिक धर्म मे दीक्षित किया गया तथा धर्म परिवर्तन के पश्चात् उसका नाम सुनीता आर्या रखा गया। बाद मे कु० सुनीता आर्या के अनुरोध पर वैदिक विधि से उनका विवाह संस्कार मेयोलिंक रोड निवासी ललिता प्रसाद तिवारी के साथ किया गया। इस अवसर पर आर्य समाज के पदाधिकारी तथा अन्य गणमान्य व्यक्ति भी आशीर्वाद देने हेतु उपस्थित थे। समाज की ओर से भी श्री ललिताप्रसाद तिवारी को वैदिक साहित्य प्रदान किया गया।

भवदीय
रासासिंह
मन्त्री
आर्यसमाज, अजमेर

आर्यसमाज बाजार सीताराम का निर्वाचन

आर्यसमाज बाजार सीताराम दिल्ली के वार्षिक अधिवेशन में दिनांक १५।६।८६ को निम्नलिखित पदाधिकारी सर्वसम्मति से निर्वाचित हुए—

श्री राजाराम शास्त्री	प्रधान
श्री लाला सुर्जनसिंह जी	उपप्रधान
श्री डा० किशनलाल तारवाले	,,
श्री बाबूराम आर्य	मन्त्री
श्री नरेन्द्रनाथ गुप्ता	कोषाध्यक्ष

भवदीय
बाबूराम आर्य
मंत्री

आवश्यकता है

एक अनुभवी कार्यालय लिपिक जो कि हिन्दी टाइप और लेखा विवरण के बारे में जानकारी रखता हो। कोई अवकाश प्राप्त आर्यसमाजी व्यक्ति को तरजीह दी जाएगी। वेतन योग्यता के अनुसार। प्रार्थना पत्र पन्द्रह दिन के अन्दर मन्त्री आर्यसमाज, हनुमान रोड, नई दिल्ली को देवें।

त्रिनारायण
मंत्री

आर्य वीर दल दिल्ली प्रदेश द्वारा

विशेष प्रशिक्षण शिविर

आर्य युवकों में चरित्र निर्माण तथा राष्ट्रीय चेतना एवं सांस्कृतिक चेतना जागृत करने के लिए सार्वदेशिक आर्य वीर दल दिल्ली प्रदेश की ओर से २७ जून से ६ जुलाई तक एक प्रशिक्षण शिविर रघुमल आर्य कन्या सीनियर सेकण्डरी स्कूल (निकट मद्रास होटल) राजा बाजार, नई दिल्ली में सम्पन्न हुआ जिस में आसन, प्राणायाम, व्यायाम, योग साधना, दण्ड बैठक, शस्त्र प्रशिक्षण, लेखन, बौद्धिक, मनोरजन, प्रवचन आदि के कार्यक्रम हुए। समापन समारोह ६ जून को पूर्ण हुआ। सैंकड़ो नर-नारियो ने आर्यवीरों के आश्चयजनक प्रदर्शन को देखा। समारोह की अध्यक्षता प्रो० शेरसिंह ने की। इस अवसर पर आचार्य वेदव्रत, श्री बालदिवाकर हस, श्री प० क्षितीश वेदालकार, श्री प० यशपाल सुधांशु, श्री सूर्यदेव जी, वैद्य रामकिशोर जी आदि वक्ताओ ने सम्बोधन किया। प्रो० शेरसिंह ने कहा, आज समय की माग है युवा शक्ति का जागरण यदि आर्य वीर दल पजाब मे जागृत होता और उसका शक्ति प्रांत में व्यापक होता तो पजाब से हिन्दुओ का पलायन न होता। आत्म-सुरक्षा तथा सेवा और अनुशासन के लिए आर्य वीर दल को सुदृढ़ बनाना बनाना चाहिए। दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री सूर्यदेव ने घोषणा की कि आर्य वीर दल के शिविरो मे भाग लेने वाले सभी युवक जो निर्धन हैं तथा जिन्हें पुस्तक एव स्कूल ड्रेस आदि की आवश्यकता है उन्हें दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से मदद की जाएगी।

आर्य वीर दल के अधिष्ठाता श्री प्रियतमदास रसवन्त ने बताया, शिविर का आयोजन युवकों की चारित्रिक, नैतिक, शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति के लिए किया गया। इस शिविर मे समस्त दिल्ली प्रदेश के युवकों ने भाग लिया। उन्होंने आर्यजनों से तथा संस्थाओं से आर्य वीर दल के रचनात्मक कार्यों के लिए भरपूर दान से सहयोग देने की अपील की है।

—संवाददाता आर्यसन्देश

पता परिवर्तन

विख्यात युवा गायक श्री गुलाबसिंह राघव का घर का पता परिवर्तन हो गया है। अब उनका पता निम्न है—

श्री गुलाबसिंह राघव
F 271 C (एफ २७१ सी)
दिलशाद गार्डन
दिल्ली-११००३२

पाठकों से

आर्यसन्देश दो सप्ताह से आप की सेवा में नहीं पहुंच पाया। यान्त्रिक खराबी के कारण दो अंक प्रकाशित नहीं हो पाये। हम अपने समस्त पाठकों से असुविधा के लिए क्षमा प्रार्थी हैं।

—व्यवस्थापक

एक समर्पित पत्रकार, प्रचारक एव रचनात्मक कार्यकर्त्ता

पण्डित दीनानाथ

यह समाचार बडे शोक से सुना जायेगा कि आचार्य दीनानाथ ९३ वर्ष का देहावसान ३१ मई को यहाँ अपने पुत्र के निवास स्थान पर हो गया और अगले दिन उनकी अन्त्येष्टि हो गई । वे एक बहुआयामी व्यक्तित्व के रचना धर्मी लेखक थे। मेरी हार्दिक कामना थी कि ऐसे पत्रकार, आर्यसमाज के प्रचारक एव रचनात्मक कार्यकर्त्ता का जीवन परिचय उनके जीवनकाल में जनसाधारण के सामने रखूं। मेरे इस अनुरोध पर उन्होंने मेरे द० अफ्रीका से लौटने के बाद २ फरवरी के अपने अन्तिम पत्र में जो विवरण दिया उसके अविकल शब्द इस प्रकार हैं :—

"इस समय लगभग ९३ वर्ष की आयु समाप्त कर जौलाई ८६ में ९४ वर्ष मे मैं प्रविष्ट हुआ, अगर स्वस्थ और नीरोग रहा" पर यह सालगिरह देखने के लिए दीनानाथ जी हमारे बीच नही रहे।

उनका सर्वोत्तम स्वरूप उनके उन प्रवचनो या लेखो से मिलता है जिनम उन्होंने ज्ञात और अज्ञात कार्यकर्ताओं और क्रान्तिकारियों के सम्बन्ध मे अपने संस्मरण जीवन के अन्तिम क्षणों तक श्रोताओं पाठको के सम्मुख रखे। इन लेखो मे उनकी उस लेखन विधा का परिचय मिलता है, जिसके द्वारा वे जनमानस को प्रभावित करने की शक्ति रखते थे। सस्मरणों के रूप में उन्होंने जो योगदान पत्रकारिता के क्षेत्र मे दिया, अपनी भाषण शैली से श्रोताओं को मुग्ध किया वह अब एक याद भर रह गई है। पंजाब के प्रसिद्ध पत्रकार म० कृष्ण और स्व० रामप्रसाद बिस्मिल आदि के बारे मे बड़े बडे यथार्थ रूप में जो उनके लेख पढ़ने को मिले वे लेखक के चरित्र की महानता को स्पष्ट करते हैं और याद आ जाते हैं सस्कृत के नीतिकार के वे शब्द जिसमें दूसरों के अंशमात्र गुणों को विशालरूप में जनमानस के सम्मुख वे प्रस्तुत करते थे —परगुण-परमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यम्। निज-हृदि विकसन्त. सन्ति सन्त. कियन्त. । वे यथार्थ और भावना दोनो का समावेश अपनी रचनाओं मे करते थे।

पिछले कई मासों से दुर्घटना से ग्रस्त हो जाने पर वे चलने फिरने से मजबूर थे, परन्तु उनकी लेखनी अन्तिम समय तक नही थकी। उनकी रचना के अक्षर बुढापे से बिगड जरूर गये थे, परन्तु उनकी स्मरण शक्ति पूर्णतया उज्ज्वल थी। काश इन पंक्तियो का लेखक उनके जीवन वृत्त को उनके जीवन काल मे पाठको के सम्मुख रख पाता। १९८६ के वर्ष में उनके तीन पत्र हमारे पास आये, और अपने स्वभाववश मुझे लेखों के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया या प्रशसा लिखने में वे चूकते नही थे।

प्रारम्भिक जीवन

उनके अपने शब्दो मे गगा पार और वर्तमान हरिद्वार से लगभग ५-६ मील दूर रेतीली और घने जगल युक्त शिवालिक उपत्यका से लगे कागडी ग्राम में स्थित गुरुकुल मे मार्च १९२० मे प्रविष्ट हुए थे। इस ग्राम से २ मील दूर थाना गाजीपुर जिला बिजनौर (उ० प्र०) मे पहाडी

(शेष पृष्ठ ८ पर)

R. N No. 32387/77 Post in N.D.P.S.O. on 11, 12-7-86 Licenced to post without prepayment, Licence No. U 139
र'जि० न० डी० (सी०) ७५६ पूर्व भुगतान विना भेजने का लाइसेंस न० यू १३६

(पृष्ठ ७ का शेष)

नाले के तट पर उन दिनो यह गुरुकुल स्थापित था।

महात्मा मुंशोराम (स्वामी श्रद्धानन्द) की देखरेख मे इस मे उन्होने १५ वर्ष शिक्षा प्राप्त को और सिद्धान्तालंकार बने, बाद मे दो वर्ष तक गुरुकुल मे सेवा की। पारिवारिक जोवन में उनकी सन्तान अच्छे पदो पर नियुक्त हैं।

श्री दीनानाथ जी के अपने शब्दों मे ९३ वर्ष के इस आयुकाल में उन्होने विविध और विभिन्न क्षेत्रो मे कार्य किया। उनका सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन १९२३-२४ से शुरू हुआ था। आर्य समाज मे वे उपदेशक और पुरोहित के रूप मे पजाब मे और बाहर वे काम करते रहे। लाहौर के सर गंगाराम ट्रस्ट द्वारा सचालित विधवा आश्रमों तथा अन्य सस्थाओ मे वे क्षेत्रीय प्रतिनिधि के रूप मे श्रेष्ठ सवा, तपस्या त्यागमय जीवन पूरी निष्ठा के साथ करते रहे। अपने जीवन काल मे उन्होने बहुत सारा आध्यात्मिक और जोवन के लिए प्रेरणादायक साहित्य लिखा और नाटकों मे लोकप्रिय रहा। भारत की प्राचीन नीतिया पुस्तक का विमोचन श्री बी. डी जत्ती, उपराष्ट्रपति द्वारा हुआ था और जगजीवन बाबू ने उनकी भूमिका लिखी थी। उनकी अन्य प्रसिद्ध रचनाओ में अमृत पथ की ओर, आर्यसमाज की उपलब्धिया अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द, प्रेरक जीवन कहानियां आदि रहे हैं।

पत्रकारिता व सम्पादन

श्री दीनानाथ जी भारतसेवक समाज के मुख पत्र के वर्षों सम्पादक रहे, तथा उसके कई प्रकाशनों का सम्पादन करते रहे। जन जागृति के लिए दिल्ली की ग्राम सहयोगो नामक साप्ताहिक के भी वे सम्पादक रहे। आर्य सामाजिक पत्र-पत्रिकाओं में उनके लेखों की धूम रहती थी। इसके साथ वे विश्वामित्र कलकत्ता दैनिक के सम्पादक रहे तथा कुछ मासिक पत्रिकाओ का सम्पादन किया। हिन्दुस्तान व नवभारत जैसे दैनिको मे सामाजिक विषयो पर वे पिछले ३० वर्षो मे लिखते रहते थे।

अपने जीवन काल मे दीनानाथ जी ने डेढ दर्जन के लगभग पुस्तके लिखी और सम्पादन के अतिरिक्त सैकडो लेख सामान्य एव ख्याति प्राप्त सभी प्रकार के पत्रों मे वे लिखते रहे हैं। यह खेद की बात है कि ऐसे रचनात्मक एवम् प्रमुख कार्यकर्ता के निधन की सूचना समय पर समाचार पत्रों अथवा संचार माध्यमों के द्वारा नही मिल सकी और आज उनके गुणो को केवल हम याद कर सकते हैं।

—ब्रह्मदत्त स्नातक
अवैतनिक प्रेस एव जनसम्पर्क सलाहकार
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

शाखा कार्यालय—६३, गली राजा केदारनाथ, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६ फोन: २६१८३८

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन : ३१०१५० के लिए डा० धर्मपाल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा वैदिक प्रेस, गली नं० १७, कैलाशनगर दिल्ली-३१ में मुद्रित। रजि० नं० डी० (डी०) ७५६

वर्ष १० : अंक ३४ | रविवार २० जुलाई, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८७ | आषाढ २०४३ | दयानन्दाब्द—१६१
मूल्य एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश में ५० डालर, ३० पौंड

सार्वदेशिक सभा द्वारा संघर्ष समिति का गठन

आर्य नेताओं की केन्द्र सरकार से मांग

पंजाब में तुरन्त राष्ट्रपति शासन लागू करो

पंजाब की समस्या केवल आंतरिक कानून और व्यवस्था की समस्या नहीं है बल्कि यह विदेशी शक्तियों द्वारा देश की एकता और अखण्डता को नष्ट करने का एक सुनियोजित षड्यन्त्र है। आर्यसमाज साम्प्रदायिक आधार पर देश के विभाजन के विरुद्ध है और सभी विघटनकारी शक्तियों से लड़ने के लिए कृतसंकल्प है। हम अपने देश और संविधान की सुरक्षा के लिए पंजाब में हो रहे नरसंहार को रोकने के लिए सब प्रकार की जिम्मेदारी उठाने के लिए प्रस्तुत हैं।

यह उद्गार स्वामी आनन्द बोध सरस्वती प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने सप्रू हाउस, नई दिल्ली में अखिल भारतीय आर्य प्रतिनिधियों के पंजाब बचाओ सम्मेलन में व्यक्त किए। इस सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए न्यायमूर्ति श्री एच० आर० खन्ना ने कहा कि आर्यसमाज देशभक्तों की संस्था है और उसके द्वारा पंजाब समस्या को हल करने की दिशा में उठाए गए सही कदम का पूर्ण समर्थन करता हूं। भारत धर्मनिरपेक्ष गणतन्त्र राज्य है और इसमें पंथिक सरकार जैसी रूढ़िवादी और दकियानूसी सरकार का कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

इस अवसर पर दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री सूर्यदेव, महामन्त्री डा० धर्मपाल, मध्य प्रदेश के प० राजगुरु शर्मा, हैदराबाद से प० रामचन्द्र राव वन्देमातरम्, हरियाणा से स्वामी ओमानन्द सरस्वती, बम्बई से कैप्टन देवरत्न, जालन्धर (पंजाब) से श्री वीरेन्द्र और सारस्वत मोहन मनीषी, प्रो. बलराज मधोक, श्री हरदयाल देवगुण और श्री बी० किशनलाल आदि ने इस समस्या के समाधान हेतु अपने विचार प्रस्तुत किए। खचाखच भरे हुए हाल में सभी प्रतिनिधियों के सीने पर 'पंजाब जल रहा है, सब मिलकर बचाओ' दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा की पट्टिकायें लगी थी। इस सम्मेलन में पंजाब में क्रूर आतंकवादियों द्वारा मारे गए भाई-बहनों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

इस अवसर पर पारित प्रस्तावों का सार यह था कि यदि भारत की सरकार तुरन्त राष्ट्रपति शासन लागू करके अथवा सेना भेज कर हिन्दुओं की सामूहिक हत्याओं को रोकने, संवैधानिक कानून और व्यवस्था को लागू करने व देश की एकता और अखण्डता की रक्षा करने का प्रयास नहीं करती तो, १५ अगस्त से आर्यसमाज अत्यावश्यक सामयिक कदम उठायेगी।

देश के समस्त भागों से आए हुए आर्यसमाज के प्रमुख नेताओं का यह खुला अधिवेशन निम्नलिखित प्रस्ताव पारित करता है—

१. बरनाला की पंथिक सरकार भारतीय धर्मनिरपेक्ष गणतन्त्र में एक कट्टरपन्थी शासनतन्त्र के रूप में कार्य कर रही है। उसका एकमात्र उद्देश्य पंजाब में केवल सिख प्रशासनिक व्यवस्था को कायम करना है। इस विषय पर भारत सरकार को विचार करना चाहिए। बरनाला सरकार का वह कार्य जिसे वह धीरे धीरे अप्रकट रूप से कर रही है, संविधान के विरुद्ध है क्योंकि इसके द्वारा पंजाब में रहने वाले गैर सिख समुदाय के हितों की हानि होती है।

२. पंजाब में संविधान की रक्षा और हिन्दुओं की सामूहिक हत्याओं को रोकने के लिए वहां तुरन्त राष्ट्रपति शासन लागू होना चाहिए।

३. आर्यसमाज का यह दृढ़ विश्वास है कि पंजाब से गैर सिखों के पलायन को रोकने और उनमें सुरक्षा की भावना पैदा करने के लिए वहां के तीनों सीमावर्ती जिले—फिरोजपुर, अमृतसर तथा गुरदासपुर को तुरन्त सेना को सौंप देना चाहिए। पंजाब की समस्या केवल आंतरिक कानून और व्यवस्था की समस्या नहीं है अपितु यह विदेशी शक्तियों द्वारा भारत की अखण्डता और एकता को नष्ट करने का गहरा षड्यन्त्र है।

४. आर्यसमाज यह प्रस्तावित करता है कि पंजाब के उन शहरों में जहां गैर-सिखों की संख्या अधिक हो, अन्य उपद्रवग्रस्त इलाकों से भागकर आए हुए हिंदुओं के लिए शिविर खोले जायें और सरकार वहां की गम्भीर परिस्थिति को देखते हुए उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध करे।

५. आर्यसमाज उसी दशा में संघर्ष का रास्ता अपनाना चाहती है जब कि उसे ऐसा करने के लिए विवश न होना पड़े। आर्यसमाज की मान्यता है कि पंजाब को बचाने का एकमात्र उपाय वही है जो उपरोक्त प्रस्तावों में कहा गया है।

६. आर्यसमाज एक मास अर्थात् १५ अगस्त, १९८६ तक भारत सरकार द्वारा अपने प्रस्तावों के कार्यान्वयन के लिए प्रतीक्षा करेगा, उस के बाद अपने विशेष अधिवेशन (जो दिल्ली में हुआ था) में गठित समिति परिस्थिति के अनुसार इस सम्बन्ध में आगे के कार्यक्रम की घोषणा करेगी।

इस अंक में

प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल | व्यवस्थापक—डा० गणेशीलाल | सम्पादक—पं० यशपाल सुधांशु एम० ए०

समज और समाज

लेखक—आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री, दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार

संस्कृत साहित्य में एक श्लोक आता है—

योगेन चित्तस्य पदेन
वाचा मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां
पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

अर्थात् जिस महापुरुष ने योग दर्शन के द्वारा चित्त के रोगों, व्याकरणशास्त्र के द्वारा वाणी के दोषों और आयुर्वेद शास्त्र के द्वारा शारीरिक दुःखों को दूर करने के उपाय बताये उस पतञ्जलि मुनि के सामने हम नतमस्तक हैं।

इसी पतञ्जलि महामुनि ने व्याकरण विषयक महाभाष्य ग्रन्थ लिखा, जो कि अष्टाध्यायी का भाष्य है। उसमें एक सूत्र आता है—

समुदोरजः पशुषु॥ ३।३।६९

जिसका अभिप्राय यह है कि जब पशु अर्थ अभिहित होगा तो 'समज' शब्द बनेगा और जब मनुष्यार्थ अभिप्रेत होगा तो "समाज" शब्द बनेगा। एक अक्षर अकार के अंतर से अर्थ में बड़ा भारी अंतर आ गया है। कि यदि पशुओं का झुण्ड हो तो उसे समज कहा जाएगा और परन्तु यदि मनुष्यों का समुदाय हो तो उसे समाज शब्द से पुकारा जाएगा। पशु चूंकि व्यक्तिगत रूप अथवा एकत्रित रूप में होने पर भी जीवन की अपनी सामान्य गति को बनाए रखने के लिए सचेष्ट होते हैं। इसीलिए उनके समुदाय को समज कहा जाता है। सम् का अर्थ संगठित होना और अज् का अर्थ भौतिक रूप से जीवन चलाने के लिए गति करना है। परन्तु इस के विपरीत समाज का अर्थ अच्छी तरह अपने यथार्थ स्वरूप में उत्पन्न होना होता है। अर्थात् मनुष्य केवल मात्र पञ्चभूतों का पुतला नहीं है। यह तो उसका शरीर है जिस पर जीव का अधिष्ठातृत्व है। उसके अन्दर रहकर अपने को सर्वाधिक म नव रूप में उपस्थित करना ही मनुष्यता है। जिसमें आध्यात्मिकता प्रमुख है। परन्तु इसके विपरीत पशु का जीवन भौतिक प्रधान है। चूँकि वह अपने भौतिक व्यक्तिगत जीवन के लिए ही प्रयत्न करता है। मनुष्य की तरह आध्यात्मिक अथवा अन्यों के सुख के लिए उतना प्रयत्न नहीं करता। उदाहरणार्थ यदि किसी स्थान पर दस पशु बैठे हों और उन सभी के आगे अलग-अलग सबका भोजन रखा हुआ हो, तो उनमें यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि अपना घास खाने के पश्चात् अपने में निर्बल सजातीय बन्धु के हिस्से को भी बलपूर्वक छीनने का प्रयत्न करता है। प्रश्न यह नहीं कि उस का ऐसा करना न्याय है अथवा अन्याय है और उसका ऐसा करने से अगले प्राणी को कष्ट पहुंचता है कि नहीं? यह उसकी मीमांसा के सीमा से बाहर है। ये प्रश्न आध्यात्मिक ज्ञान की अपेक्षा रखते हैं। जिस स्तर तक पशु का मस्तिष्क पहुंचने में असमर्थ है। इसीलिए उसे पशु कहते हैं।

सर्वम् अविशेषेण पश्यतीति पशुः॥

जीवन की सभी दिशाओं में आध्यात्मिक ज्ञान के बिना केवल मात्र भौतिक दृष्टि से देखने वाला पशु है। पशु के चिन्तन का दायरा भौतिक ही होता है। भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही वह चिन्तन करता है। भूख लगने पर भोजन करना यह शरीर की आवश्यकता है। उस भोजन की प्राप्ति अच्छे ही उपायों से होनी चाहिए। यह चिन्तन मनुष्य का है पशु का नहीं। पशु का चिन्तन तो केवल मात्र पेट भरने का है। खाद्य पदार्थ की शुचिता या अशुचिता का नहीं। इसीलिए अपनी भूख को दूर करने के लिए निर्बल पशु को परे धकेलकर उसके खाद्य पदार्थ को प्राप्त कर लेता है। इसी अच्छे बुरे के विवेक को "धर्म" कहा जाता है, जो कि बुद्धि का विषय है। एक पशु अपने स्वामी के खेत के पास से गुजर रहा है। खेत में हरा गेहूं खड़ा है, भविष्य में जिसमें फल लगना है और स्वामी को अमित लाभ होना है। परन्तु भूखा पशु स्वामी की इस होने वाली हानि की चिन्ता न करके उस गेहूं को खा जाता है क्योंकि उसके ज्ञानानुसार भूख लगने पर उसे शान्त करने के वह घास भोज्य है। उससे होने वाली हानि का विवेक उसके चिन्तन की सीमा से बाहर है। वैसे भी सृष्टि में परमात्मा ने मनुष्य को अपूर्ण अर्थात् (Incompleet) और पशु को पूर्ण अर्थात् (Compleet) बनाया है। पशु को जीवनोपयोगी ज्ञान स्वभाव से प्राप्त है, जिसे सीखने के लिए अन्यों के पास जाने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु मनुष्य को निज जीवनोपयोगी व्यवहार सीखने के लिए अन्यों का सहयोग लेना आवश्यक है। जिसके बिना मनुष्य का मनुष्य बनना तो असम्भव है ही लेकिन पशु-पक्षी बनना भी असम्भव है।

सत्यता यह है कि परमात्मा ने इसके जीवन में अपूर्णता रखकर इसे उन्नति का अत्यधिक अवसर दिया है। जैसे एक कुत्ता अपने जीवन से न ऊपर उठ सकता है और न ही नीचे गिर सकता है। कुत्ता ही रहेगा, क्योंकि वह जन्म से पूर्ण है। परन्तु इसके विपरीत मनुष्य अपूर्ण होने से उत्तम व्यवहारों को सीखकर मनुष्य से देव भी बन जाता है और अमानवीय व्यवहार को ग्रहण करके दानवीय बन जाता है। इसमें मुख्य कारण अपूर्ण होना ही है। इसी कारण मनुष्य जैसे-जैसे विवेक को ग्रहण करता जाता है, वैसे-वैसे मनुष्य बनता जाता है। क्योंकि मनुष्य शब्द का निर्वचन महर्षि यास्क ने निरुक्त में किया है।

"मनुष्याः कस्मात्, मत्वा कर्माणि सीव्यन्ति, मनोरपत्यं वा।"

अर्थात् मनुष्य को मनुष्य इसीलिए कहते हैं कि तत्वज्ञान पूर्वक कर्म करता है। अथवा मनन शक्ति उत्पन्न होने से मनुष्य है। जब तक मनुष्य में मनन शक्ति नहीं आती तब तक वह पशु है। मनन शक्ति आ जाने से मनुष्य कहलाता है। जन्म से तो हम सभी पशु पैदा होते हैं। इसीलिए पशु के समान हमारे सब व्यवहार होते हैं। बचपन में मनुष्य भी पशु के समान दो हाथ, दो पांव से चलता है। खाने पीने और अन्य आवश्यक कार्य करने की उसमें कोई शिष्टता नहीं होती। परन्तु जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है, वैसे-वैसे पशु के समान आचरण और व्यवहारों को छोड़ता जाता है। क्योंकि उसमें धीरे-धीरे मनन शक्ति आती जाती है। इसी शक्ति से मनुष्य हिताहित, अच्छे-बुरे, ग्राह्य अग्राह्य, वाच्य अवाच्य तथा भक्ष्य-अभक्ष्यादि व्यवहारों को धारण करता जाता है। इसीसे मनुष्य अपने मन की बात को सार्थक शब्दों द्वारा प्रकट करने का अभ्यासी हो जाता है। जो कि पशु के जीवन में नहीं है। इन सब कार्यों के मूल में अन्यों से गृहीत प्रेरणा ही कार्य करती है। पशु को प्यास लगी है, प्यास उसकी शारीरिक आवश्यकता है। उस अवस्था में उसे दूर करने के लिए जल चाहिए तब आप पशु के समान मैला, कुचैला जैसा भी जल रख देंगे, तो वह पशु उसी से अपनी प्यास बुझाएगा। पशु को इतनी समझ नहीं कि यह जल गन्दा है अथवा इसमें कूड़ा कर्कट पड़ा है, इसीलिए इसे नहीं पीना चाहिए। क्योंकि यह सब विवेक मनुष्य के अधिकार क्षेत्र में आता है। पशु तो केवल शारीरिक आवश्यकताओं की अनुभूति तथा उन्हें पूर्ण करने के लिए उस-उस पदार्थ की पहचान ही कर सकता है।

हाँ, यदि आप किसी मनुष्य को पीने के लिए जल दें तो वह पीने से पहले उसे देखेगा कि इसमें कहीं कूड़ा, कर्कट या गन्दगी तो नहीं है? यदि पीने योग्य होगा तो पीएगा अन्यथा अपेय समझकर उसे छोड़ देगा। न केवल इतना ही प्रत्युत मनुष्य तो स्नान से पहले देखेगा कि जल स्नान करने योग्य है अथवा नहीं। इसको हम यूं भी कह सकते हैं कि पशु खड़ा होकर भी अपना भोजन खाता, गोबर मूत्र करता और उसी पर बैठ जाता है। परन्तु क्या कोई मनुष्य सबके सामने ऐसा करने का साहस कर सकता है? पाश्चात्य देशों के अन्धानुकरण प्रवृत्ति के वशीभूत होकर हमारे देश में खड़े-खड़े खाने की प्रवृत्ति तो चल पड़ी है, परन्तु भगवान् का शुक्र है कि असली प्रवृत्तियाँ अभी हमारे आचरण में नहीं आयी हैं। मनुष्य जहाँ बैठता है उस स्थान को स्वच्छ रखता है। जिन बर्तनों में खाता है, उन्हें भी स्वच्छ रखता है और जिन वस्त्रों को पहनता है उन्हें भी यथाशक्ति स्वच्छ रखने का प्रयत्न करता है। परन्तु क्या इनमें से कोई प्रवृत्ति पशुओं के जीवन में दिखाई देती है?

पशु और मनुष्य दोनों ही अपनी शारीरिक आवश्यकताओं को जानते हैं और उसकी पूर्ति के साधनों को भी जानते हैं। परन्तु पशु जिस प्रकार उन साधनों से अपनी इन आवश्यकताओं को पूर्ण करता है, उसमें और मनुष्य में यही अन्तर है कि मनुष्य सभ्यता पूर्ण ढंग से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, किन्तु पशु के जीवन में ऐसी कोई चीज नहीं है। इसीलिए सभ्यता की परम्परा के पत्र मात्र मनुष्यों में ही है, पशुओं में नहीं। साथ ही मनुष्य का आध्यात्मिक जीवन भी होता है, उसकी भी कुछ अपे-

(शेष पृष्ठ ५ पर)

हिन्दुत्व प्रेमी जनता और नेताओं से !

—आचार्य प्रेमभिक्षु:, वेद मंदिर, मथुरा

वैदिक युग का—श्रीराम और श्रीकृष्ण के युग का—'आर्य' समाज जो आज का हिन्दु-समाज है, वह रोगी है। और इस रोग ने धीरे-धीरे सन्निपात का रूप धारण कर लिया है। ऐसी स्थिति में हिन्दुत्व निष्ठ जनता और उसके नेता चिन्तित हों, यह स्वाभाविक है। आर्यसमाज रा०स्व० सेवक संघ, विश्व हिन्दु परिषद्, राम राज्य परिषद्, विराट् हिन्दु समाज, हिन्दु मंच, हिन्दु रक्षा समिति और हिन्दु सभा आदि अनेक हिन्दुत्व-निष्ठ संस्थाएँ उसके नेता इसे स्वस्थ-सबल और सक्षम बनाने के लिए उपचार में जुटे हैं किन्तु स्थिति यह है—"मर्ज बढ़ता गया ज्यो-ज्यों दवा की"।

आखिर ऐसा क्यो है ? कारण बहुत स्पष्ट है—रोग का निदान किये बिना उपचार करने का प्राय. यही दुष्परिणाम होता है। क्या हमारे इन हिन्दु हितैषी संगठनों के सम्मान्य नेताओ ने गहराई से उन कारणो का पता लगाने का यत्न किया है, जिन कारणों से यह हमारा विश्व गुरु भारत, विश्व का चक्रवर्ती सम्राट् भारत जिसे कभी 'सोने की चिड़िया' और 'पारस बटिया' कहा जाता था, इतना दीन-हीन और क्षीणमान कैसे हो गया ? सदियों की यह दासता हमारे यहाँ कैसे आई और आज भी हमारी यह दयनीय दशा क्यों है ? आइये, चिकित्सा के पूर्व रोग का निदान करें।

विश्व की सब से प्राचीन इस महान् आर्य (हिन्दु) जाति के इस घोर पतन और पराभव के अनेक कारण हैं जैसे—वैदिक वर्ण व्यवस्था के स्थान पर जन्मगत जाति-पाति और तज्जन्य छुआछूत की गर्हित मान्यता। राष्ट्रशक्ति की मूलाधार, राष्ट्र-यज्ञ की ब्रह्मा' मातृ शक्ति या नारी समाज का अपमान, अवज्ञा और अवहेलना। एक ईश्वर या उपास्यदेव—ओ३म् के स्थान पर अनेकेश्वरवाद या बहुदेवतावाद की स्वीकृति, एक धर्म ग्रन्थ—वेद के स्थान पर अनेक तथाकथित धर्म ग्रंथों की मान्यता, एक गुरुमन्त्र—गायत्री के स्थान पर अनेक गुरुमन्त्रो की परिकल्पना, एक सांस्कृतिक नाम 'आर्य' को भुला देना, एक अभिवादन—नमस्ते के स्थान पर शत-शत अभिवादनो की स्वीकृति, आश्रम-व्यवस्था का परित्याग, बालविवाह, बहु-विवाह, अनेक सामाजिक कुरीतियों धार्मिक पाखण्डों की स्वीकृति, संस्कारो और पर्वो में आई हुई विकृतियाँ 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के आधार पर शुद्धि और संगठन के अभियान का त्याग आदि अनेक कारण या लक्षण हैं इस महारोग के। किन्तु इन सब कारणों का कारण या मूल कारण एक ही है—वेद का त्याग। 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'—वेद ही समस्त कर्त्तव्य कर्मों का कोष है (मनु०)। वेदाचार ही सम्पूर्ण समस्याओं का एकमेव समाधान है—

एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।
जो तू सींचे मूल को फूले-फले अघाय ॥

हाँ, वेद और केवल वेद ही आर्य (हिन्दु) जाति ही नहीं विश्व-जीवन का मूलाधार है। अब हमें जब यह ज्ञात हो गया, हम ने यह निदान कर लिया कि पवित्र वेदों का त्याग ही इस महान् आर्य(हिन्दू)जाति के रोग के लक्षणों का मूल कारण है तो आइये हम सभी एक स्वर से घोषित करें कि प्रभु की वाणी एकमेव वेद ही हमारा धर्मग्रन्थ है। अन्य मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रों, गीतादि आचार संहिताओं, विदुरनीति, चाणक्य नीति आदि नीतिग्रन्थो और रामायण-महाभारत आदि इतिहास ग्रन्थों में जो वेदानुकूल है वही हमे ग्राह्य है और जो कुछ बीच के कालखण्ड (अन्धकार युग) मे इनमें वेद विरुद्ध मिलावट की गई है, वह हमें अमान्य है।

इस प्रकार इन ग्रन्थो में जहाँ-जहाँ भी जन्मगत जाति-पाति की अवैदिक मान्यता है, और इसी के आधार पर छूत-छात के पाप का समावेश किया गया है, हम साहस पूर्वक कहें कि वह सब वेद विरुद्ध और मानवता विरोधी है। ऐसे अंश हमारे इन ग्रन्थों से हम निकाल कर उन्हें शुद्ध अर्थात् वेदानुकूल बना लेवें। तब हमें वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड को जो वास्तव में प्रक्षिप्त है, पृथक् कर देना होगा। तब तुलसी रामायण मे से बहुत सारा कबाड़ा दूर करना होगा और "पूजिय विप्र शील गुणहीना, शूद्र न पूजिय वेद प्रवीना" एवं "अधम ते अधम अति नारी" सहज अपावन नारी जैसी और अन्याय पूर्ण अवैदिक चौपाइयो को सर्वथा त्यागना होगा। मनुस्मृति आदि धर्म ग्रन्थों मे भी जहाँ-जहाँ जो कुछ वेद विरुद्ध है उसे निकालना ही होगा।

हिंदु समाज के उदर मे विकृति है, यह उदर की विकृति ही अनेक रोगों का कारण है। हमे उदर-शुद्धि के लिए यह कुञ्जल क्रिया अथवा वमन-क्रिया करनी ही होगी। 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। हिन्दू समाज के स्वास्थ्य-लाभ का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

अभी कुछ समय पूर्व हमें हिन्दू संगठन सम्बन्धी एक संगोष्ठी में भाग लेने का सुयोग मिला। चर्चा-क्रम में 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्०' मन्त्र की व्याख्या करते हुए शरीर के अङ्गों—मस्तक, भुजाएँ, पेट और पाँव की भांति ही राष्ट्र के अङ्ग-स्वरूप—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में परस्पर समानता, एकता सद्भाव की बात जब हम ने कही और छुआछात को पाप बताया तो वे बोले कि मीनाक्षीपुरम् जैसे काण्डो के घटित होने की स्थिति मे आज आप यह सब कहते और इस प्रकार की व्याख्याएं करते हैं, अन्यथा हमारे धर्म पर तो सदैव से ही अत्याचार होते आये हैं।

हमने इतिहास के उदाहरण देकर जब उन्हें समझाने का प्रयास किया कि वर्ण-व्यवस्था का आधार जन्म नहीं, गुण कर्म स्वभाव रहा है, अन्यथा हम वाल्मीकि और वशिष्ठ को महर्षि और कुलगुरु की पदवी क्यों देते ? विश्वामित्र राजर्षि और फिर महर्षि कैसे बनते और ब्राह्मण एवम् ऋषि-कुलोत्पन्न रावण दूर से भी पतित 'राक्षस' कैसे हो जाता ? तो वे इन जीवत तथ्यों को सुनकर कुछ मौन हुए।

वे तुरन्त ही फिर बोले—राम ने शम्बूक का वध किया था, क्या यह अत्याचार नही था ? तबहम ने मध्यकाल मे ग्रन्थो में की गई मिलावट और प्रक्षेप की दुर्भाग्यपूर्ण कहानी बताते हुए कहा कि रामायण का उत्तर काण्ड सम्पूर्ण प्रक्षिप्त है। 'उत्तर' शब्द ही बताता है कि यह बाद की रचना है। जब पवित्र वेद की ऋचाओं को भुलाकर अनेक अवैदिक ग्रन्थो की प्रतिष्ठापना हिन्दू समाज मे हो गई और नारी एवं शूद्र के प्रति हीनता का दृष्टिकोण (जो सर्वथा वेद के विरुद्ध और न्याय-विरुद्ध है) बना, तभी 'सीता वनवास' और 'शम्बूक-वध' जैसे प्रकरण जोड़े गये। हम ने उन्हें बताया कि 'सीता वनवास' नारी समाज के प्रति घोर अन्याय एवम् असमानता का का पापपूर्ण प्रकरण है। शम्बूक वध की भाँति ही भगवान राम के पावन चरित्र पर घोर कलङ्क है। वे सन्तुष्ट हुए। हमारे प्रति आभार प्रकट किया और कहा कि ग्रन्थो में की गई इस मिलावट को स्पष्ट रूप से स्वीकार करने और उन्हें साहस पूर्वक निकाल देने पर ही हिन्दु समाज नीरोग स्वस्थ बन सकेगा अन्यथा ऊपर की लीपा-पोती या छुट पुट उपचारो से कुछ बनेगा नहीं। और बहुत शीघ्र ही हिंदु समाज की यह १५ करोड़ की सम्पत्ति मुसलमानो, ईसाइयों और बौद्धों में बँट जायेगी।

हिन्दू संस्थाएँ निर्णय ले

इस विवेचन के प्रकाश में अन्त में हिंदु संगठना के कर्णधारो से हमे सबल शब्दो में निवेदन करना है कि केवल हिंदु-हिंदु भाई-भाई चिल्लाने से काम नहीं चलेगा। हिन्दुओं यदि जीवित रहना है तो समय की पुकार को सुनना होगा और १. इस भाई चारे की साख या प्रामाणिकता के लिए भेद-भाव मूलक सभी अंशों को अपने ग्रन्थों से निकालना होगा। २. हर हिन्दू को शिखा (चोटी) और सूत्र (यज्ञोपवीत या जनेऊ) को अपने इन सांस्कृतिक चिह्नों को अनिवार्य रूप से धारण करना होगा। आज हिन्दू-हिन्दू चिल्लाने वाले संगठनों के स्वयंभू नेताओं में से अधिकांश के पास आज शिखा सूत्र ही नही हैं। ३. हर हिंदू को अंग्रेजी की दासता छोड़कर हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना होगा तथा प्रान्तीय मातृ-भाषाओं—बंगला, गुजराती, तमिल तैलगू, मराठी आदि को भी अपनाना होगा। अपने घरों और व्यापारिक संस्थानों मे से अंग्रेजी का काला मुंह करना होगा। परिवारों में से डैडी-पापा, मम्मी और चिण्टू-मिण्टू, आण्टी-अंकल आदि को निकाल बाहर करना होगा साथ ही—४ कम से कम दूसरों से ही एकता पाठ सीखकर गम्भीर स्वर में कहना होगा—हम सबका एक उपास्यदेव—ओ३म् एक धर्मग्रन्थ वेद, एक सांस्कृतिक नाम-आर्य, एक राष्ट्र का नाम हिन्दु, एक अभिवादन नमस्ते, एक गुरुमन्त्र गायत्री, एक [illegible] एक वैदिक धर्म (सनातन या मानव धर्म) है। 'अनेकता मे एकता' के भ्रान्त नारे को छोड़कर एकता के इन सप्त सूत्रो को अपनाना होगा। ५. गो पालन या गो दुग्ध सेवन का व्रती बनना तथा गो-हत्या के जघन्य पाप को मिटाने के लिए कृत सङ्कल्प होना होगा। तभी हम आर्य (हिन्दू) जाति के अस्तित्व की रक्षा कर सकते हैं।

ध्यान रहे, आज प्रश्न मात्र धर्म-रक्षा और संस्कृति-रक्षा का ही नहो अस्तित्व रक्षा का है। हमारे अस्तित्व को चतुर्दिक् से चुनौतियां हैं। नये पाकिस्तान, ईसाईस्तान और खालिस्तान निर्माण के षड्यन्त्र विदेशी शक्तियों के साथ साजिश कर पूरे वेग से चल रहें है, अरब और अमेरिका के डालरों के बल पर भगवान् राम और कृष्ण, बुद्ध और महावीर, शङ्कर और दयानन्द शिवा और प्रताप, गुरुनानक देव व बन्दावैरागी तथा ऋषि मुनियो की महान् संस्कृति को मिटाकर इस विराट् हिन्दू समाज के इस्लामीकरण और ईसाईकरण की दिशा मे लाखो मौलवी और ईसाई मिशनरी कार्य-रत हैं। हमारी प्यारी प्यारी गैया-मैया निर्ममता से कट रही है, हिंदू और हिन्दी का पदे पदे अपमान हो रहा है। लगता है जैसे हमारी स्वतन्त्रता वरदान के स्थान पर अभिशाप बन गई हो। महारानी लक्ष्मीबाई और नेताजी, भगत और बिस्मिल सरीखे शत सहस्र वीर-वीरांगनाओं के बलिदान जैसे व्यर्थ होकर रह गये हों, ऐसी भयावह स्थिति में हमें साहसपूर्वक उपर्युक्त निर्णय लेने होंगे और इन निर्णयो को क्रियान्विति के लिए हमे भी वैदिक मिशनरियों—समर्पित वेद प्रचारको की एक सेना ही खड़ी करनी होगी। परिवार नियोजन से हिन्दू को बचावें।

प्रभुदेव हमे शक्ति-भक्ति दें। हिंदुत्व प्रेमी जनता और विभिन्न हिंदु संगठनो के नेता जागें, संगठनो की अनेकता को भी मिटाकर एकता स्वीकार करें। वर्ण-व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था (वर्णाश्रम-धर्म) को व्यवहार की वस्तु बनायें। तभी यह उद्घोष [illegible]

आज हिमालय की चोटी से
हमने फिर ललकारा है।
हम हिन्दू, हम हिंदी भाषी
हिन्दुस्तान हमारा है ॥

अथर्ववेद में गणित के चमत्कार

लेखक—श्री वी० राम बालिगा

प्राचीन हिन्दुओं के बारे में दीर्घकाल तक यह धारणा रही कि गणित और विज्ञान को उन की एकमात्र देन है वर्तमान अंक पद्धति। गणित-विषयक विख्यात लेखक जे०एम० मेयर ने लिखा है, "तथाकथित अरबी अंक पद्धति यानी १ से ९ तक अंक एवं शून्य तथा उनके स्थान एवं अग्रनदन की व्यवस्था का आविष्कार और पूर्ण विकास पूरी तरह प्राचीन हिंदुओं की देन है, जो कि अपने युग के सबसे बडे विचारक और तत्ववेत्ता थे"।

हम इस पद्धति को बडी स्वाभाविक सी चीज समझते हैं और शायद ही कभी महसूस करते हैं कि यह मनुष्य के सबसे अदभुत अविष्कारो में से एक है। जैसे यत्र विद्या में पहिया, उसी तरह यह एक ऐसा बुनियादी आविष्कार था, जिसने बाकी तमाम आविष्कारों को संभव बनाया। मेयर आनंदविभोर होकर कहते हैं—

"इसकी कल्पना भी नही को जा सकती कि इसके बिना हमारा काम कैसे चलता और दशमलव-पद्धति के अभाव मे हमारे अकगणित और गणितशास्त्र का स्वरूप क्या होता। आज विज्ञान ने हमे जो आराम और सुख सुविधाए सुलभ करा रखी हैं, उनके लिए साधारण अंक इस हद तक जिम्मेदार हैं, जिसकी हमे कल्पना भी है। प्राचीन हिन्दुओं के हम चिरऋणी हैं कि उन्होंने इन अकों से हमारा परिचय कराया।"

नवनीतम शोध की कृपा से अब हम यह जानते हैं कि ये प्राचीन गणितज्ञ यानी वैदिक-काल के हिन्दु गणितज्ञ यह महान् आविष्कार करके ही संतुष्ट होकर नहीं बैठ गये। युगांतरकारी आविष्कार के बल पर वे आगे बढ़ते गये और उन्होने बीज गणित, रेखागणित और त्रिकोणमिति का आविष्कार किया और उनमे पर्याप्त प्रगति की। उन्होने समाकलन और अवकलन गणित (इटीग्रल एण्ड डिफरेन्शल कैलकुलस) का पता लगाया, पीथीगोरस एव एपोलोनियस के प्रमेय तथा ज्यामितीय और विश्लेषणात्मक शकुमिति के प्रश्न हल किये।

अंकगणितीय संक्रियाओ में उन्होने गुणा, भाग, वर्गफल, घनफल, वर्गमूल घनमूल आदि की आश्चर्यजनक रूप से क्षिप्र विधियां निकाली। आवर्ती दशमलव को तो उन्होंने जादुई बिसात बना डाला और उनके अनेक दिलचस्प गुणधर्मों का पता लगाया और साधारण भिन्नों को दशमलव में बदलने की अत्यन्त क्षिप्र-विधियां निकाली। उन्होने "वेष्टन" (आश्लेषण या आस्क्युलेशन) की विधि ईजाद की जिससे आप चद सेकन्डो में यह बता सकते हैं कि १३, १७, १९, २९ जैसी कोई छोटी संख्या अमुक बड़ी संख्या का गुणन-खंड है या नहीं। उनके इस तरह के आविष्कारो की सूची बहुत लम्बी है।

विलुप्ति के बाद पुन: खोज

जैसा कि सभी प्राचीन सभ्यताओं में होता आया है यह सब सूक्ष्म ज्ञान बहुत ही गुप्त रखा गया और चंद चुनिदा लोगों तक ही सीमित रहा। फलत: जब भारत पर विदेशी आक्रमणों का तांता लग गया, तब यह ज्ञान सदा के लिए विलुप्त हो गया। किन्तु हिन्दू जाति के एक मूलभूत धर्मग्रन्थ "अथर्ववेद" में गूढ सांकेतिक भाषा मे सूत्रो के रूप मे यह ज्ञान आज भी सुरक्षित है। इस तरह यह ज्ञान अथर्ववेद में मानो ताले मे बद था और उस ताले को एक बहुत ही जबर्दस्त प्रतिभा ने अत्यन्त कठोर बौद्धिक परिश्रम द्वारा आज से ६० वर्ष पूर्व खोला।

जगद्गुरु श्री भारतीकृष्ण

यह महान्‌प्रतिभा थी जगन्नाथ पुरी के गोवर्धन-पीठ के पिछले शकराचार्य जगद्गुरु श्री भारतीकृष्ण तीर्थ महाराज, जो प्रकाड संस्कृतज्ञ होने के साथ ही आधुनिक गणित और विज्ञान के भी तलस्पर्शी ज्ञाता थे प्राचीन वैदिक गणित के रहस्यो का उद्घाटन करने मे सफल होने पर उन्हें क्या अनुभव हुआ, इसका वर्णन उन्हीं के शब्दों में सुनिए—

"आठ वर्ष के केन्द्रित ध्यान के बाद अतत. हम चिरकाल से खोयी हुई इन कुंजियों को खोजने में सफल हो गये, जिनकी सहायता से ही इस ज्ञान भंडार के द्वार खोले जा सकते थे। हमें यह देख कर आनन्द-मिश्रित आश्चर्य और गहरा संतोष हुआ कि गणित के अत्यन्त जटिल प्रश्नों को'''अथर्ववेद के परिशिष्ट में आने वाले इन अतिसरल वैदिक या गणितीय सूत्रों की सहायता से बड़ी आसानी से, आनन-फानन में हल किया जा सकता है।" स्वामी जी आगे कहा है कि ये सूत्र गणित की प्रत्येक शाखा पर लागू होते हैं।

स्वामी जी महाराज जबरदस्त लिक्खाड़ थे। उन्होंने १६ ग्रन्थ लिखे। ये ग्रन्थ किसी भक्त के घर रखे हुए थे और दुर्भाग्य से वहा एक बार आग लग गयी और वे भस्म हो गये। स्वामी जी हिम्मत हारने वाले आदमी नहीं थे। अपनी याददाश्त से उन्होंने उन्हें फिर से लिखना शुरू किया। किन्तु अभी वे पहली पोथी ही दुबारा लिख पाये थे कि १९६० में उनकी महासमाधि लग गयी इस तरह कितना विशाल वैदिक खजाना अभी तक अज्ञात ही रह गया है, इसकी कल्पना ही की जा सकती है।

वैदिक विधि से गणित अतिरोचक

अगर कक्षा में वैदिक विधि से गणित पढाया जाय, तो गणित का पाठ जादू के के कार्यक्रम जितना ही रोचक बन जायेगा। कितने आह्लादित हो उठेंगे नन्हें शिक्षार्थी यह देखकर कि हमारी अंक व्यवस्था दशमलव पद्धति पर आधारित है। इस तथ्य का उपयोग करते हुए छ: अङ्कों की एक राशि को उतने ही अङ्कों की दूसरी राशि से महज १५ मिनट में गुणा किया जा सकता है। १/१९ का दशमलव मूल्य १९ के बजाय २ से भाग करके प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रश्न का उत्तर ०.०५२६३१५७८९४७३६८४२१ है, यह यह बताने में बस उतना ही समय लगेगा, जितना कि इसे लिखने मे लगता है—यही कोई दस सैकंड। बहुत से गुणनफल और वर्गफल तो एक ही नजर में निकाल लिये जा सकते है। वैदिक गणित-विधियां जादु की छडी की तरह नीरसता और उबाऊ मेहनत के भूतो को गणित की कक्षा से भगा देती हैं।

अब इनमें से कतिपय विधियों पर दृष्टिपात करें। ये किस प्रकार काम करती हैं यह दर्शाने के लिए मैं एक सरल तालिका बनाऊंगा। मगर आप जब तरीके को समझ लेंगे, उसके बाद तो आप प्रश्न को देखकर मुंहजबानी उत्तर लिखा सकेंगे, आपको कागज-पेंसिल की भी जरूरत नही नहीं पडेगी। सुविधा और सुबोधता के लिए मैं छोटी संख्याओ का उपयोग करूंगा।

कुछ उदाहरण

आइये, ९४ को ८९ से गुणा करें। इन दोनों राशियों से सबसे निकटवर्ती १० का घात १०० है और हम उसे आधार-संख्या के रूप में प्रयोग करेंगे। दोनों संख्याओं को एक दूसरे के नीचे लिखिए और १०० से उनका जो अंतर है, वह उनकी दायी ओर लिख दीजिए। हमारी तालिका कुछ ऐसी बनेगी।

तालिका

१००

९४ | —६
८९ | —११

आइए, अब उत्तर निकालें। उत्तर का बायां हिस्सा होगा ८९—६ यानी ८३ आप देखेंगे कि ९४—११ भी ८३ ही है। उत्तर का दायां हिस्सा होगा ६×११ यानी ६६। पूरा उत्तर हुआ ८३६६ और अन्त में हमारी तालिका का रूप ऐसा होगा।

तालिका

१००

९४ | —६
८९ | —११

८३ | —६६ उत्तर

चूंकि हमारी आधार-सख्या १०० थी, इसलिए बायीं ओर के ८३ सैकड़े में थे यानि ८३०० थे इस बात को समझना बहुत जरूरी है, खासकर ऐसे मामलों में जिनमे थोडा एडजस्टमेंट करना पडता हो जैसे कि ९३×८४ में।

तालिका

१००

९३ | —७
८४ | —१६

७७ | ११२

७८१२ उत्तर

बायी ओर आते हैं ८४—७ या ९३-१६, जोकि ७७ होते हैं, और दायीं ओर ७×१६ अर्थात् ११२ मगर ये ७७ असल मे ७७०० हैं, जिसमे आपको ११२ जोड़ने हैं। यानी उत्तर ७८१२ है। ऐसे मामलों मे दायीं ओर का पहला अंक बायीं ओर ले जाना होता है।

लेकिन जब राशियां चुनी हुई आधार संख्या से अधिक हों तो? तब भी विधि तो वही काम में लाई जाती है, पर आधार सख्या में अन्तर घटाने के बजाय जोड़ जोड़ दिया जाता है। उदाहरण है ११२×१०७

तालिका

१००

११२ | +१२
१०७ | + ७

११९ | ८४

ध्यान दीजिए ११२+७=११९ और ७×१२=८४।

यह विधि तब भी काम में लायी जा सकती है, जब दो में से एक राशि आधार-सख्या से छोटी हो। उदाहरण है ९३×१०८।

तालिका

१००

९३ | —७
१०८ | —८

१०१ | +—५६

१००४४ उत्तर

अथर्ववेद में गणित के चमत्कार

बायीं ओर का उत्तर ९३+८ अथवा १०८–७अर्थात् १०१ है। दायीं ओर आते हैं (–७)×(+८) अथवा –५६। चूंकि बायीं ओर का १०१ वास्तव में १०१०० है, इसलिए उत्तर है १०१००––५६ अर्थात् १००४४।

आधार-संख्या के रूप में १० का कोई भी घात काम में लाया जा सकता है, जैसे १०, १००, १००० और उनके गुणज। अथवा उनके अपवर्तक भी काम में लाये जा सकते हैं, जैसे २०, ५०, ६०, २००, ३००, २५०, ५०० आदि। अगले उदाहरण में हम आधार-संख्या के रूप में ५० को लेते हैं। प्रश्न है ३८×४६।

तालिका

५०	
३८	—१२
४६	—४
३४	४८
१७	४८ उत्तर

प्रथम स्तर में बायी ओर की संख्या होगी ३८––४ अर्थात् ३४। मगर चूंकि आधार संख्या हमने ५० रखी है, इसलिए यह ३४ वस्तुत. ३४ पचास यानी १७०० है। दायी ओर आता है ४८। आधार-संख्या चाहे कुछ भी हो, दायी ओर के अंक बदलते नही हैं।

वर्गफल की क्षिप्रविधि

किसी भी संख्या का वर्गफल निकालने की एक यह क्षिप्रविधि इस सूत्र में निहित है कि जो कम है, उसे घटाओ।' मान लीजिए हमें वर्गफल निकालना है ९२ का जो कि १०० से ८ कम है। अब अब हमें करना इतना ही है कि ९२ में से ८ घटा दें। उसे बायीं ओर रखें। दायीं ओर रखें ८ अर्थात् ६४ पूरी संख्या हुई ८४६४। ९२ को ९२ से गुणा करने मे कितना समय लगता, पर इस विधि से कितनी जल्दी उत्तर निकल आया।

इस सूत्र का अर्थ यह भी है कि जिस का वर्गफल निकालना हो वह राशि अगर आधार संख्या से अधिक है, तो जितना अधिक हो उतना जोड दिया जाए। १०९ का उत्तर निकालना हो तो उसका ढग यह होगा १०९+९=११८ और चूंकि ९=८१ है, इसलिए उत्तर होगा ११८८१।

वैदिक गणित मे वर्णित क्षिप्रविधियां लगभग ३५ वर्ष पूर्व रूस के अत्यन्त प्रतिभा वान यहूदी गणितज्ञ याकोव ट्रैक्टेनबर्ग ने स्वतन्त्र रूप से खोजी थी। यूरोप के अनेक देशों तथा अमेरिका और कनाडा मे ये "ट्रैक्टेनबर्ग विधियों" के नाम से पढायी से पढायी जाती हैं। स्विट्ज़रलैंड में वे विशेष लोकप्रिय हैं और बैंको बडी व्यापारिक संस्थाओं और टैक्स-विभाग में में ट्रैक्टेनबर्ग विधियां जानने वालों को में तरजीह दी जाती है। ट्रैक्टेनबर्ग के आविष्कार सचमुच अद्भुत है, मगर वे वैदिक ज्ञानभण्डार मे भरी सम्पदा का बहुत छोटा-सा हिस्सा है। □

आयें हैं। उनको समझते हुए उसी स्तर के अनुरूप उनका पालन और पूर्ति करना यह संस्कृति कहलाती है। यह केवल मात्र मनुष्यों में ही है। इसका सम्बन्ध धर्म के साथ है। और यह अधिकांश मानव जीवन के सभी हिस्सों में व्याप्त है। जिसको हृदयङ्गम करने के लिए हमें वेद अर्थात् सर्वथा सत्य त्रिकालिक सभी दिशाओं मे पथ प्रदर्शक ज्ञान की शरण में जाना आवश्यक है। इसीलिए मनुष्य को पूर्ण मनुष्य बनने के लिए अर्थात् सभ्यता और संस्कृति से युक्त जीवनवाला बनाने के लिए वेद कहता है–

"मनुर्भव" 'सा प्रथमा संस्कृति-विश्ववारा ॥" यजु०

अर्थात् हे मनुष्य ! पूर्ण रूप से मनुष्य बन। हे मनुष्यो तुम्हारे लिए मैं उस संस्कृति का प्रवचन करता हूं जो कि सभी कालों, देशों और परिस्थितियों में एक समान है और सभी देशों मे रहने वालो के लिए एक समान स्वीकार करने योग्य है। इसी संस्कृति के रक्षण के लिए देश समाज और परिवारों की कल्पना की गई है। यदि हम निम्न स्तर से चलें तो कह सकते है कि गृहस्थ के माध्यम से शारीरिक सन्तान को जन्म दिया जाता है। अर्थात् एक गृहस्थ अपने पश्चात् अपनी मान्यता, परम्परा, धर्म, संस्कृति आदि की रक्षा के लिए अपने सन्तान को जन्म देता है। वैदिक मन्तव्यानुसार एक सन्तान दाय भाग के रूप में केवल मात्र भौतिक सम्पत्ति का ही उत्तराधिकारी नहीं होता, बल्कि अपने पिता की सर्वविध धार्मिक, आध्यात्मिक एव नैतिक मान्यताओं को जीवित रखने का उसका पूर्ण उत्तरदायित्व होता है। इसीलिए आलङ्कारिक भाषा में वैदिक मनीषियों ने इसे यूं कहा कि पति, पत्नी के अन्दर प्रविष्ट होकर उत्पन्न होता है, इसीलिए पत्नी को जाया कहते हैं।

"आत्मायां तद्धि जायास्व यदस्यां जायते पुनः।"

संभवत: इसीलिए हमारे देश में श्राद्ध

समज और समाज

(पृष्ठ २ का शेष)

की प्रथा प्रचलित है। जो कि प्रतिवर्ष तिथि विशेष में किया जाता है। होना यह चाहिए कि उस दिन मृत पितर के धार्मिक विचारों का, विशिष्ट कार्य कलापों का श्रद्धा पूर्वक स्मरण किया जाए। पर भविष्य में यथाशक्ति उनके प्रचार एवं प्रसार का व्रत लिया जाए। इसके लिए वेद ने पिता को सूर्य और माता को पृथ्वी तथा पुत्र को चन्द्र की उपमा प्रदान की।

"द्यौरहं पृथिवी त्वं ॥"

उसमें पुरुष कहता है–"मैं द्युलोक हूं और तुम पृथिवीलोक हो। सूर्य एक व्रत लेकर चलता है, वह यह है कि–

"तमसो मा ज्योतिर्गमय ॥"

अर्थात् संसार को अन्धेरे से निकालकर प्रकाश में लाना है। दिनभर सूर्य अपने इसी मिशन की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहने पर सायंकाल के समय अस्त होने जाता है। उस काल में सूर्य का पीलापन मानो उसकी निराशाभाव की अभिव्यक्ति है। और वह इसलिए कि मेरे पश्चात् मेरे मिशन का क्या होगा? परन्तु तभी उसे चन्द्रमा दिखाई देता है। जिसे देखकर उसे यह आशा बनती है कि मेरे पश्चात् रात्रि के गहन अन्धकार में यह मेरा उत्तराधिकारी पुत्रवत् चन्द्रमा प्रकाश करके मेरे मिशन को जीवित रखेगा। और होता भी यही है, क्योंकि चन्द्रमा के अन्दर स्वत. प्रकाश नहीं है। सूर्य की किरणें ही आकर उसे प्रकाशित करती हैं। इसी कारण वह सूर्य की अनुपस्थिति मे उस द्वारा प्रदत्त प्रकाश से उसके मिशन को जीवित रखता है। ठीक वही स्थिति वैदिक मन्तव्यानुसार पिता और पुत्र की होती है। इसलिए वेद में कहा गया है कि–

अनुव्रतः पितु पुत्रो
मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं
वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥

अर्थात् पुत्र पिता के कर्मों का अनुकरण करने वाला होना चाहिए। सम्भवतः इसीलिए पुत्र या सन्तान कहा जाता है। क्योंकि पुत्र शब्द की निरुक्ति करते हुए यास्क ने लिखा है कि–

पुम् नरक ततस्त्रायते इति पुत्र ॥

अर्थात् वह अपने पिता को दुःख से बचाता है। कल्पना कीजिए कि एक व्यक्ति अपने पुत्रों में से किसी को भी अपने अनुकूल नहीं देखता है। तब वह मेरे पश्चात् मेरे मिशन का क्या होगा? यह सोचकर दुखी होता रहता है। परन्तु दूसरे व्यक्ति के योग्य एवं अनुकूल पुत्र अपने पिता को इस दुःख से दूर करते हैं क्योंकि पिता को यह विश्वास है कि मेरे पश्चात् मेरी योग्य सन्तान इस मिशन को मरने नहीं देगी। क्योंकि वे सन्तान 'सम्' अर्थात् अच्छी प्रकार से 'तान' अर्थात् मेरे विचार प्रवाह को विस्तृत करेंगे। इसी भाव की शिक्षा या उपमा सूर्य और चंद्रमा से दी गई है और इसीलिए चन्द्रमा को सूर्य की सन्तान कहा गया है। वैदिक धर्म की इसी विशेषता के कारण आज मनु, वसिष्ठ, कणाद, राम, कृष्ण और दयानन्द की संस्कृति आज भी जीवित, जागृत है क्योंकि वह अपने पूर्वजों की पूर्व परम्परा को निभाते चले आ रहे हैं। इसी महान् उद्देश्य के लिए विवाह का प्रचलन हुआ, जो नैतिक नीवों की दृढ नींव पर आधारित हैं। परन्तु पशुओं में सन्तान उत्पत्ति का ऐसा कोई नैतिक नियम नहीं है। पशु जगत् में तो कामोत्पत्ति शारीरिक आवश्यकता तक सीमित है। जिसकी पूर्ति का उद्देश्य ही उसके ज्ञान में होता है।

एक पुल्लिङ्ग पशु अपने सजातीय स्त्रीलिङ्ग पशु से सन्तानोत्पत्ति करता है। नैतिकता के नियमानुसार उसे उस संतान से और आगे सन्तति उत्पादन का अधिकार नहीं है। परन्तु इसके विपरीत वह पशु अपनी सन्तान से भी सन्तान उत्पत्ति कर लेता है। क्योंकि पशु होने से नैतिकता के नीवों को समझने की उस में योग्यता नहीं है और इसीलिए उन नीवों का पाबन्दि भी नहीं है। क्योंकि नैतिकता के साथ धर्म का सम्बन्ध है। इसीलिए मानव जीवन का लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थ की प्राप्ति बताया है। प्राणिमात्र का यह लक्ष्य नहीं हैं क्योंकि सभी प्राणी इसे नहीं समझते। मनुष्य में ही इसे समझने की योग्यता है।

इसीलिए प्रत्येक मनुष्य धर्मपूर्वक अर्थ का संग्रह करे। अर्थात् जीवनोपयोगी भौतिक पदार्थों का संग्रह धर्मपूर्वक ही करे तथा धर्मपूर्वक काम करे अर्थात् गृहस्थ जीवन में सन्तानोत्पत्ति भी धर्मपूर्वक करे। इस प्रकार मनुष्य के लगभग सभी कार्यों पर धर्म का अंकुश लगाया गया है। आध्यात्मिक शब्दावली मे मनुष्य चतुष्पाद जन्तु है और पशु द्विपाद। जबकि शारीरिक दृष्टि से पशु चतुष्पाद और मनुष्य द्विपाद है क्योंकि मनुष्य जीवन का ध्येय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति है। जिसकी प्राप्ति का प्रयत्न किया जाता है, उसे "पाद" कहते हैं। परन्तु इन चारों में से आदि और अन्तिम के न होने से केवल अर्थ और काम की प्राप्ति ही जीवन का ध्येय होने से पशु द्विपाद है क्योंकि उसके जीवन का ध्येय अर्थ और काम होता है। जो मनुष्य इन्हीं दोनों को जीवन का अन्तिम लक्ष्य मानता है, नैतिक दृष्टि से वह पशु से उन्नत नहीं। क्योंकि मनुष्य का ध्येय केवल इन्हीं की प्राप्ति नहीं। उसकी दृष्टि मे तो मोक्ष परम प्राप्तव्य होता है। जिसकी प्राप्ति तत्त्वज्ञान से होती है। यही तत्त्वज्ञान पशु और मनुष्य मे अन्तर उत्पन्न करता है। जो मनुष्य व्यक्तिगत स्तर पर और सामाजिक स्तर पर ज्ञान की मीमांसा करता करता है, वही मानवता का रक्षक है। इसीलिए सौ पशु मिलकर भी समाज का निर्माण नहीं कर सकते जबकि दस मनुष्य मिलकर समाज का निर्माण कर सकते हैं। क्योंकि ज्ञान के कारण सामाजिक रूप मे मनुष्य एक आदर्श के पीछे चल सकते है।

किसी बुद्धिमान के शब्दों म कह सकते हैं कि "मनुष्य वह जो झण्डे के पीछे चले और पशु वह जो डण्डे के आगे चले।" झंडे का अर्थ आदर्श है और डण्डे का अर्थ दूसरे द्वारा किसी भी दिशा मे बल प्रयोग अथवा भय से प्रेरित करना है। यही मनुष्य और पशु में अन्तर है। इसीलिए मनुष्य समाज का निर्माण करते हैं और पशु समज का निर्माण करते हैं। □

समाचार

पंजाब से हिन्दुओं का पलायन और हमारा कर्त्तव्य

पंजाब के हिन्दू भाई बहन तथा उन के परिवार आतकवादियों के भय तथा उनके द्वारा किए जा रहे अत्याचारो से तंग आकर वहां से पलायन कर दिल्ली के गुरुद्वारा मन्दिरों सनातन धर्म मंदिरो तथा अन्य धार्मिक स्थानो मे शरण ले रहे हैं। प्रतिदिन सैकड़ो परिवार पंजाब से पलायन कर दिल्ली आ रहे हैं।

आर्यसमाज अपने जन्मकाल से ही शरण आये की हर प्रकार से रक्षा तथा सहायता करता आया है और सदैव करता रहेगा। हमारा कर्तव्य बनता है कि हम पंजाब से आए हिन्दू भाइयों के आवास, भोजन आदि की व्यवस्था करें।

सभा ने इस सहायता कार्य को अपने हाथ में लेने का निश्चय किया है। आप सभी महानुभावों से हमारा अनुरोध है कि इस निमित्त अपनी आर्यसमाज, अपने क्षेत्र से अधिक से अधिक धनराशि, लंगर का सामान आटा, दाल, चावल आदि एकत्रित कर भिजवायें ताकि वह उन भाई-बहनों तक पहुंचाया जा सके।

दिल्ली की आर्यसमाजों, दानी महानुभावों का हमें पूर्व भी समय समय पर सहयोग प्राप्त होता रहा है। आशा है इस बार भी आप किसी दूसरी संस्था से पीछे न रहकर हिन्दू संगठन शक्ति का परिचय देंगे।

पता :
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
१५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१
फोन : ३१०१५०

भवदीय
डा० धर्मपाल
महामन्त्री

संस्कृत में आई. ए. एस. परीक्षा उत्तीर्ण की

संस्कृत की उपयोगिता की सफलता का एक ज्वलन्त उदाहरण हमारे सम्मुख है। इस वर्ष की संघ लोक सेवा आयोग की सिविल सर्विस परीक्षा मे एक प्रत्याशी ने सभी विषयों के उत्तर संस्कृत में देकर सफलता प्राप्त कर एक कीर्तिमान स्थापित किया है। उसने यह सिद्ध कर दिया है कि सभी आधुनिक विषयो के उत्तर संस्कृत में सुविधापूर्वक दिए जा सकते हैं। इससे पहले भी अनेक संस्कृत के छात्र संस्कृत तथा प्राचीन भारतीय इतिहास और दर्शन विषय लेकर सफलता प्राप्त करते रहे हैं। इसमे कोई सन्देह नहीं कि संस्कृत के अध्ययन से सभी भारतीय भाषाओं मे अधिक अच्छी योग्यता बनती है और विचाराभिव्यक्ति सशक्त होती है। यदि इस परीक्षा मे विद्यार्थी हिन्दी अथवा अन्य भारतीय भाषाओं के साथ संस्कृत भी रखें तो वह सोने पर सुहागे का काम करेगी।

प्रायः आधुनिक शिक्षा पद्धति में शिक्षित लोगो में तथा आर्यसमाजियों में भी संस्कृत के प्रति एक उपेक्षावृत्ति है। वे संस्कृत को मृत भाषा कहने से भी बहुधा संकोच नही करते और इस की शिक्षा को अर्थहीन मान कर इसकी ओर ध्यान नहीं देते। यही कारण है कि नई शिक्षा पद्धति में संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन को बहुत हानि पहुंचाई जा रही है। परन्तु यहां इस तथ्य को भूल जाते हैं कि न केवल संस्कृत वेदों आदि प्राचीन शास्त्रो की भाषा है अपितु वह सभी भारतीय भाषाओं में जीवित है। वास्तव मे संस्कृत न कभी मृत भाषा थी, न है, न होगी। हां, यह कहना अधिक उचित होगा कि हम जैसे स्वत्वहीन मृत-प्राय लोगों की भाषा होने के कारण उसे मृत प्रा (मरे हुए लोगो) की भाषा कहा जा सकता है। हमें नई शिक्षा-पद्धति में संस्कृत की अनिवार्य शिक्षा की मांग (+२) तक अवश्य करनी चाहिए जिससे कि इस एक भाषा के ज्ञान के द्वारा सभी भारतीय भाषाओं के निकट पहुंचा जा सके और इस से क्षुद्र भाषा विवाद से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ हो। महर्षि दयानन्द ने इसी कारण संस्कृत शिक्षण के महत्त्व पर बल दिया है। महात्मा गांधी ने भी संस्कृत की आवश्यकता को दोहराया है।

हमें संस्कृत का तथा भारतीय भाषाओं का अधिक से अधिक प्रचार करना चाहिए तथा उनका अपने जीवन में प्रयोग करना चाहिए और बच्चों को अधिक से अधिक संख्या में ऊँची कक्षाओं में भी संस्कृत लेकर सफलता प्राप्त करने की प्रेरणा लेनी चाहिए।

विशनदास गम्भीर
मंत्री
आर्यसमाज, सरस्वती विहार
दिल्ली-११००३४

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा से सम्बन्धित आर्यसमाजें कृपया ध्यान दें

सभा के पूर्व परिपत्र दिनांक २।४।१९८६ का अवलोकन करें। उपर्युक्त पत्र में दिल्ली की समस्त आर्यसमाजों के अधिकारियों से अनुरोध किया गया था कि आर्यसमाज का वित्तीय वर्ष ३१ मार्च, १९८६ को समाप्त हो गया है। आप आगामी वर्ष के वार्षिक साधारण अधिवेशन (चुनाव) ३१ मई १९८६ तक अवश्य आयोजित कर लें। आशा है कि आपके समाज का चुनाव हो गया होगा।

उपर्युक्त परिपत्र में यह प्रार्थना भी की गई थी कि आप अपनी समाज का १ अप्रैल १९८५ से ३१ मार्च १९८६ तक का वार्षिक कार्य विवरण (यज्ञ, संस्कार, शुद्धियां, अन्तर्जातीय विवाह, तथा समारोहों का विवरण आदि।

२. समाज के अधीन चल रही संस्थाओं—विद्यालयों, चिकित्सालयों, पुस्तकालय, सेवा समिति, आर्य वीर दल आदि का विवरण।

३. १ अप्रैल, १९८५ से ३१ मार्च, १९८६ तक का आय-व्यय विवरण।

४. सदस्यों की सूची, पिता का नाम, पता, वर्ष भर में प्राप्त सदस्यता शुल्क के विवरण सहित।

५. सदस्यता शुल्क का दशांश, वेद-प्रचार न्यूनतम १०१/- रुपये आर्यसन्देश का वार्षिक शुल्क २०/- रुपये।

६. अपनी समाज की ओर से आर्य वीर दल के निर्वाचित/मनोनीत अधिष्ठाता का नाम।

७. यदि गत वर्ष आपने अपनी समाज की ओर से दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के लिए प्रतिनिधि न भिजवाए हों तो वह भी चुनाव में ही निर्वाचित कराकर भिजवा दें।

यदि आप ने अभी तक उपर्युक्त औपचारिकतायें पूरी न की हो तो यथाशीघ्र पूरी कराकर सभा को भेज कर अपना सहयोग प्रदान करें।

भवदीय
डा० धर्मपाल
महामन्त्री
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
१५, हनुमान रोड नई दिल्ली-१

हैदराबाद सत्याग्रह ठगों दलालों से सावधान

सार्वदेशिक सभा में इस प्रकार की सूचनाएँ मिली हैं कि हैदराबाद आर्यसमाज सत्याग्रह (१९३८-३९) के लिए प्रमाणीकरण हेतु आवश्यक जेल सर्टिफिकेट दिलाने के नाम पर भाग लेने वालों अथवा उनकी आश्रितों से सहायता शुल्क के नाम पर छोटी बड़ी रकमे वसूल कर चुके हैं या कर रहे हैं। कुछ संस्थाएँ बना कर इस प्रकार ठग रहे हैं। नकली प्रमाण-पत्र भी सभा में कुछ ने भेजे हैं।

कैराना जि० मुजफ्फरनगर के अनेक लोगों से शिकायतें आई हैं कि बलबीरसिंह नामक एक व्यक्ति अनेक विधवाओं व व्यक्तियों से धन एकत्र कर रहा है। इस प्रकार के अन्य व्यक्ति भी हमारी हैदराबाद यात्रा में मिले हैं। ऐसे लोगों से जनता सावधान रहे।

ब्रह्मदत्त स्नातक
अवै० प्रेस एव जनसम्पर्क सलाहकार

रिश्ते-नाते संयोग सेवा

आर्यसमाज हनुमान रोड की ओर से विवाह योग्य लड़के और लड़कियों के बारे में जानकारी और परामर्श की सेवा का आयोजन किया गया है। प्रतिदिन सायं ४ बजे से ६ बजे तक इस सेवा से लाभ उठाने वाले व्यक्ति समाज के कार्यालय में आकर अपने विवाह योग्य लड़के एवं लड़कियों का विवरण दे सकते हैं और उनको रिश्ता ढूंढ़ने में सहायता दी जाती है। आर्यसमाज के प्रधान श्री राममूर्ति कैंथा पिछले कई सालों से इस सेवा में कार्यरत हैं और इनके द्वारा अनेक रिश्ते कराए गए हैं।

श्री राममूर्ति कैंथा जी हर शनिवार को सायं ४ बजे से ६ बजे तक आर्यसमाज हनुमान रोड नई दिल्ली में मिल सकते हैं।

भवदीय
के० एल० भाटिया
मन्त्री

आर्यसमाजों से

श्री आचार्य विक्रम जी मेरे सुयोग्य शिष्य हैं जो निरन्तर २० वर्षों से आर्यसमाज की सेवा कर रहे हैं। आप आयुर्वेद के साथ-साथ एक सुयोग्य प्रभावशाली वक्ता हैं। मैंने आचार्य जी को आदेश दिया है कि आर्यसमाज की वेदी योग्य एवं सैद्धान्तिक वक्ताओं से शून्य हो गई है। अतः वह ज्यादा से ज्यादा समय महर्षि दयानन्द के कार्य में लगावें। यह आर्यसमाज का सौभाग्य होगा कि आचार्य जी की सेवाओं का मूल्यांकन करें और समाज के काम को चमकावें। आचार्य जी का पता १३४, मंगलापुरी, महरौली, नई दिल्ली-११००३० है।

वैदिक धर्म का सेवक
अमर स्वामी सरस्वती
वेद मन्दिर कवि नगर
गाजियाबाद (उ०प्र०)

सम्पादक के नाम पत्र

हमारे देश का नाम क्या है ?

एक दिन एक नवयुवक ने मुझ से प्रश्न पूछा, 'हमारे देश का नाम क्या है?' मैंने कहा, 'हमारे देश का नाम भारत है। हमारे देश के संविधान ने भारत नाम ही स्वीकार किया है।' नवयुवक ने मुस्कुराते हुए जो कुछ कहा उसका आशय था कि संविधान ने तो दो नाम स्वीकार किये हैं, भारत और इण्डिया। अंग्रेजी में तो इण्डिया ही लिखते और बोलते हैं, पर हिन्दी में भारत का प्रयोग कम और 'हिन्दुस्तान' का प्रयोग अधिक होता है। और हिन्दी में अनावश्यक रूप से अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करने वाले शौकीन महानुभाव 'इण्डिया' और 'इण्डियन' शब्दों के प्रयोग बड़े तपाक से करते हैं। यही नहीं, हमारे देश के विधायक, संसद-सदस्य और मन्त्री जो पद ग्रहण करते समय संविधान का पालन करने की शपथ लेते हैं, वे भी भाषणों, वक्तव्यों और चर्चाओं में 'हिन्दुस्तान' शब्द का भी प्रयोग करते हैं। २६ जनवरी के कार्यक्रमों के आयोजन के लिए 'हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दुस्तान हमारा' की पंक्ति का कई दिनों तक अभ्यास करवाया गया, जिसका दिल्ली में टी०वी० पर नियमित रूप से प्रदर्शन होता रहा। आन्ध्र के मुख्यमन्त्री श्री एन. टी. रामाराव हिन्दी बोलने का उत्साह दर्शाने के लिए इस पंक्ति का बड़े जोश के साथ उच्चारण करते हैं। संविधान में जब देश का नाम 'भारत' मान्य हो गया है, तो 'हिन्दुस्तान' नाम का प्रयोग संविधान की अवहेलना नहीं है? क्या संसार में ऐसा भी कोई देश है जिसके तीन नाम हैं और उस देश के निवासी उन तीनों नामों का प्रयोग करते हैं? यह विलक्षणता हमारे देश में ही है। सच तो यह है कि संविधान में आवश्यक परिवर्तन करके देश का नाम केवल 'भारत' ही रखा जाए 'इण्डिया' नाम से भी छुटकारा पाया जाए। जिस दिन देश का बटवारा हुआ और हमारे संविधान ने 'भारत' नाम को मान्य किया, हमारा देश 'भारत' ही रह गया 'हिन्दुस्तान' नाम समाप्त हो गया। जनता में इस विचार का अधिक से अधिक प्रचार होना चाहिए।

इस सन्दर्भ में एक बात का उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा कि 'हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दुस्तान हमारा' 'सारे जहां से अच्छा हिन्दुस्तान हमारा' ये पंक्तियां सर मोहम्मद इकबाल की हैं जो १९१९ में लिखी गई थी। १९३० में सबसे पहले पाकिस्तान की मांग करने वाले यही सर इकबाल हैं, जिन्होंने लिखा है 'कौम मजहब से है, मजहब जो नहीं तो हम भी नहीं' और 'मुस्लिम हैं हम वतन है सारा जहां हमारा'। देश से गद्दारी करने वाले व्यक्ति के उस गीत को, जो संविधान के विपरीत है, हम झूम-झूमकर गाते हैं। इसे हम क्या कहें?

—कृष्णदत्त

१-८-७००/६ पद्मानगर, नल्लाकुटा
हैदराबाद ४४

आर्यसमाज विवेक विहार का वार्षिक चुनाव सम्पन्न

२२ जून, १९८६ को हुए वार्षिक चुनाव के फलस्वरूप वर्ष १९८६-८७ के लिए नवगठित अन्तरंग सभा के निम्न सदस्यों के नाम घोषित किए गए—

प्रधान श्री इन्द्रजीत भाटिया
उप प्रधान श्री जयप्रकाश आर्य,
श्री धर्मचन्द हुरिया
मन्त्री श्री रूपचन्द्र कथूरिया
उपमन्त्री श्रीमती उषा किरण कथूरिया
कोषाध्यक्ष श्री रामप्रकाश मिश्रा
प्रचारमंत्री . श्री रेमलदास अरोड़ा
भवन मन्त्री : श्री वेदप्रकाश कथूरिया
पुस्तकालयाध्यक्ष : श्रीमती प्रेमलता सिंघल

विनीत
रूपचन्द्र कथूरिया
मंत्री

आर्यसमाज निमारपुर का वार्षिक निर्वाचन १५।६।१९८६ को दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रतिनिधि श्री रामशरण दास जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ जिसमें निम्न पदाधिकारी निर्वाचित हुए—

प्रधान . श्री भीमसिंह
मन्त्री : श्री कृष्ण देव
कोषाध्यक्ष : श्री आनन्द प्रकाश

विमलकांत शर्मा
उपमंत्री

रविवार दिनांक २१।६।८६ को आर्य समाज सान्ताक्रूज बम्बई का वार्षिक निर्वाचन १९८६-८७ के लिए बड़े सौहार्द पूर्ण वातावरण में निम्न प्रकार सम्पन्न हुआ—

श्री देवेन्द्रकुमार कपूर . प्रधान
श्री कैप्टिन देवरत्न आर्य . महामंत्री
श्री कस्तूरीलाल मदान : कोषाध्यक्ष

भवदीय
कैप्टिन देवरत्न आर्य
महामन्त्री

R. N No. 32387/77 Post in N.D.P.S.O. on 17, 18-7-86 Licenced to post without prepayment, Licence No. U 139
रजि० नं० डी० (सी०) ७५६ पूर्व भुगतान बिना भेजने का लाइसेंस नं० यू १३६

निर्वाचन

आर्यसमाज महरौली का वार्षिक चुनाव निम्न प्रकार से सम्पन्न हुआ—

प्रधान : श्री सोहनलाल जी सब्रवाल
मन्त्री : मुंशी मदनलाल जी
कोषाध्यक्ष : श्री वीरेन्द्र कुमार आर्य

निवेदक
मदनलाल आर्य
मंत्री, आर्यसमाज महरौली नई दिल्ली

आर्यसमाज सन्सनी विहार, दिल्ली की साधारण सभा की बैठक पिछले रविवार को सम्पन्न हुई जिसमे वार्षिक निर्वाचन भी कराया गया। अन्तरंग सभा के लिए निर्वाचित कार्यकारिणी निम्न प्रकार है—

प्रधान : कुंवर दयानन्द वर्मा
उपप्रधान : डा० राजेन्द्रप्रसाद बजाज,
श्री सूरतसिंह जून
मन्त्री : श्री विशनदास गम्भीर
संयुक्त एवं प्रचारमंत्री : आत्मप्रकाश दीवान
कोषाध्यक्ष : ईश्वरदास कुमार

मन्त्री
आर्यसमाज सन्सनी विहार

श्रद्धा सुमन

आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली के भूतपूर्व महामन्त्री श्री ओमप्रकाश तलवार के पूज्य पिता श्री रलाराम जी का ५ जुलाई १९८६ को देहावसान हो गया। उन की स्मृति में १७ जुलाई १९८६ को एक शोक सभा आयोजित की गई। दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के महामन्त्री श्री डा० धर्मपाल ने एक शोक प्रस्ताव मे उन के प्रति शोक संवेदना व्यक्त की। आर्य केन्द्रीय सभा ने भी दिवगत आर्य पुरुष के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की है।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन : ३१०१५० के लिए डा० धर्मपाल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा वैदिक प्रेस, गली नं० १७, कैलाशनगर दिल्ली-३१ में मुद्रित। रजि० नं० डी० (सी०) ७५६

वर्ष १० : अंक ३६ | रविवार ३ अगस्त, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८७ | श्रावण २०४३ | दयानन्दाब्द-- १६२
मूल्य . एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश मे ५० डालर ३० पौंड

मुक्तसर हत्याकाण्ड से देश स्तब्ध

समय की मांग है बरनाला सरकार बरखास्त करें —श्री सूर्यदेव

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री सूर्यदेव ने एक बयान में कहा है कि पंजाब मे मुक्तसर से चण्डीगढ़ जाने वाली बस मे १८ हिन्दुओ की निर्मम हत्या से सारा देश स्तब्ध रह गया है। इस घटना से हर देशभक्त देशवासी के दिल को गहरा सदमा पहुंचा है। पंजाब प्रशासन पंजाब के हिन्दुओ की जानमाल की सुरक्षा करने मे सर्वथा विफल रहा है। आये दिन पंजाब से आते हिन्दुओं के परिवार तथा बढ़ती आतंकवादी गतिविधियां इसका सबूत है। बरनाला शासन के दस महीनो में ५०० से भी अधिक निरीह निरपराध और निहत्थे लोगों की जान जा चुकी है। जो सरकार नागरिकों की जान माल की रक्षा नहीं कर सकती उसे प्रशासन में बने रहने का कोई अधिकार नहीं है। श्री सूर्यदेव ने प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी से मांग की है कि बरनाला सरकार को तुरन्त बरखास्त किया जाये तथा पंजाब में राष्ट्रपति शासन लागू किया जाये। सभा प्रधान ने मुक्तसर हत्याकांड की तीव्र भर्त्सना की है। उन्होंने आरोप लगाया अकाली नेता आतंकवादियों के खिलाफ बोलने से डरते हैं। कुछ का व्यवहार तो उग्रवादियो से साठगाठ की शंका उत्पन्न करता है। उन्होंने कहा पंजाब से आये हिन्दुओं के प्रति सहानुभूति के लिए अखबार मे छपवाने के लिए सिख नेताओं ने बयान तो दिए हैं परन्तु उनके साथ सहयोग, सेवा या सहायता करने कोई सिख नही पहुंचा यह खेद का विषय है।

श्री सूर्यदेव ने दिल्ली मे पंजाब के आक्रोश में मरने वाले बेकसूरो की मौत पर गहरा दुख व्यक्त किया। उन्होने अपील की है साम्प्रदायिक सद्भाव बनाए रखना ही मनुष्यता है और हमे मानवता का परिचय देना चाहिए।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के महामन्त्री डा० धर्मपाल ने पंजाब से पलायन किये भाइयो को सहायता के लिए तन, मन, धन तथा हर प्रकार से सहयोग करने की अपील की है। उन्होने कहा चैक/ड्राफ्ट/मनीआर्डर/कैश दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५ हनुमान रोड, नई दिल्ली के पते पर भेजे।

सम्पादक की कलम से—

पंजाब कब तक लेबनान बना रहेगा ?

पंजाब साम्प्रदायिकता की तूफानी लहरों पर सवार है, धैर्य दम तोड़ रहा है और आक्रोश उफान पर है। साम्प्रदायिक विद्वेष के ताने बाने खम ठोककर बुने जा रहे हैं। आकाश से धरती पर सावन की रिमझिम बरस रही है काली घटाओ में कड़कती बिजलियां और साथ ही विधवाओं के साथ बच्चो की चीत्कार, बहनों की सिसकियां और खून से सने जिस्मो से आहें, सरसराती हवा के झोको के साथ कपकपाता आतंक का अंधड भी है। आतंकवाद के जहरीले नाग की फुंकार हर रोज बढ रही है। न जाने यह सब देश को, मनुष्यता को कहां ले जाकर छोडेगा। पंजाब की धरती पर हर रोज खून का सवेरा होता है और चिताओं की शाम होती है। आखिर यह सब कब तक चलेगा ? इसका कहीं अन्त भी होगा ? पंजाब लेबनान बन गया है और अमृतसर बेरुत ? कौन है वो जो पंजाब के हरे-भरे चमन में आग भर गया है ? किसने धधकाये हैं ये शोले ? और कब तक धधकते रहेंगे ? हर दिशाओ मे ये सवाल पूछे जा रहे हैं, सारा विश्व हैरान है।

मुक्तसर में पन्द्रह बस यात्रियों को गोलियो से भूनकर आतंकवादियो ने जो क्रूर एवं अमानवीय कुकृत्य किया है वह अब तक आतंकवादियो द्वारा किए गए कुकर्मों मे सबसे अधिक भयावह घटना है। ५५ बस यात्रियो मे से चुनकर १३ हिन्दुओ को बर्बरतापूर्वक गोलियो से छलनी करना लोमहर्षक घटना है। दो गैर हिन्दू जो हिन्दू समझकर मारे हैं जिन को मिलाकर मुक्तसर में मृतको की संख्या १५ है कुछ घायल भी हुए है। उससे सारे देश मे रोष का दिखाई देना स्वाभाविक सभी दलों, धर्मों एवं वर्गों के लोगो ने इस बर्बरकाण्ड की तीव्र भर्त्सना भी की है। पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश तथा दिल्ली ने बन्द आयोजित कर अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। राजधानी दिल्ली में शनिवार को पांच व्यक्तियो का मारा जाना उसी रोष की प्रतिक्रिया थी जो वास्तव मे चिन्ता का विषय है। बरनाला साहब का कहना शायद सही है कि बाहर साम्प्रदायिक हिंसा हुई तो पंजाब मे हालत और बिगड़ेगी। लेकिन उनसे उलटकर निश्चित ही पूछा जाएगा कि जब आप पंजाब मे हिन्दुओ के खिलाफ आतंकवादी हिंसा पर काबू नही पा सकते तो उसकी छोटी मोटी प्रतिक्रिया को दूसरे राज्य कैसे रोक सकते हैं ? आतंकवादियो और कुछ अकाली नेताओं ने इसमे कोई शक नही रहने दिया कि उनके निशाने हिन्दू हैं और आतंकवादी हिंसा को जानबूझ कर साम्प्रदायिक बनाया जा रहा है। आतंकवादियो के कुछ सरगनों ने तो उनसे मिलने गए शक्ति भक्तों को साफ-साफ कहा भी है कि उन्हें पंजाब के बाहर के सिखो की फिकर नहीं है। ये सिख अगर मारे गए और उनमे से कुछ लोग भाग कर पंजाब आए तो वहां सिख हिन्दुओ को नही छोड़ेगे। खालिस्तान बनाने के लिए कुछ हजार सिखो की बलि से बचने नहीं पंजाब के पाकिस्तान प्रशिक्षित आतंकवादियो को एतराज नही है। लेकिन यह बलि तभी हो सकती है जब पंजाब के हिन्दुओ की बेरहमी से हत्या की जाए कि बाहर के हिन्दुओ का खून खौलने लगे और फिर उन्हें काबू से बाहर करने के लिए पंजाब

(पृष्ठ ९ का शेष)

प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल | व्यवस्थापक—डा० गणेशीलाल | सम्पादक—पं० यशपाल सुधांशु एम० ए०

यज्ञ

(१)

लेखक—आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री, दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार

यजुर्वेद के आरम्भिक मन्त्र में लिखा है—

श्रेष्ठतमाय कर्मणे।

अर्थात् श्रेष्ठतम कर्म के लिए मैं तुम्हें संसार में भेजता हूं। प्रश्न है कि श्रेष्ठतम कर्म क्या है? यही प्रश्न शतपथ ब्राह्मण में महर्षि याज्ञवल्क्य से किया गया है—

किं वै श्रेष्ठतम कर्म?

अर्थात् श्रेष्ठतम कर्म क्या है? महर्षि याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं—

यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म।

अर्थात् यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है। इसे यूं भी कह सकते हैं कि श्रेष्ठतम कर्मों का नाम यज्ञ है। इसी की व्याख्या यजुर्वेद में है। कर्म तीन प्रकार के माने गए हैं।

(१) त्याज्य, (२) विहीत और (३) सर्वोत्तम।

त्याज्य कर्म निन्दनीय कर्म है, जिन को न करने का विधान किया गया है। क्योंकि इन से मानव जीवन का अध पतन होता है। विहीत कर्म वे शुभ कर्म कहलाते हैं जिन से मनुष्य संसार में धार्मिक होता जाता है। सर्वोत्तम वे कर्म हैं जो जीवन के परमलक्ष्य मोक्ष तक पहुंचाते हैं। इनमें प्रथम प्रकार के कर्म करने वालों को ... है। द्वितीय प्रकार के कर्म करने वाले मनुष्य होते हैं, और तृतीय प्रकार के कर्म करने वाले 'देव" कहलाते हैं। इसीलिए वैदिक भाषा में कहा जाता है कि देव ही यज्ञ करते हैं। अभिप्राय यह है कि यज्ञ के तत्त्व को जीवन का मर्म जानकर उसे धारण करते हैं। यजुर्वेद इसी की व्याख्या विस्तृत रूप में करता है जिसमें अकर्तव्य क्या है और कर्तव्य क्या है? अकर्तव्यों का निषेध और कर्तव्यों का विधान किया गया है। इस विषय का उपसंहार करते हुए यजुर्वेद के ४० वें अध्याय में प्रतिपादन किया है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।

अर्थात् मनुष्य पूर्वोक्त श्रेष्ठतम यज्ञ कर्म करते हुए ही यावत् जीवन जीने की इच्छा करे क्योंकि इसके अतिरिक्त और कोई सुरक्षित मार्ग नहीं है। इस से कर्म मनुष्यों में लिप्त नहीं होते। यज्ञ कर्म ... मनुष्य के मन में इस प्रकार के भावों को उत्पन्न करने का एक साधन मात्र है।

... में यदि हम ... विश्लेषण करके यदि किन्हीं शब्दों से इस भाव की उपलब्धि कर सकते हैं, तो वह एक शब्द है "इदन्न मम" यह मेरा नहीं है। अर्थात् अनासक्ति की भावना। मनुष्य श्रेष्ठ कर्म करें इस में कोई विवाद नहीं है परन्तु श्रेष्ठ कर्म करने के अनन्तर उससे मिलने वाले फल से ममत्व का त्याग रखें। ऐसा न होने पर हमारी नासमझी से अच्छा कर्म भी कभी कभार अच्छा फल देने वाला नहीं होता। प्रतियोगिता में विजय प्राप्त करना अच्छी बात है। इसी विजीगिषा की भावना से मनुष्य प्रतियोगिताओं में सम्मिलित होते हैं। विजयी पुरुष की प्रशंसा होती है। परन्तु यह अच्छा कर्म ही अपने साथ एक बुरे चिंतन के लिए हुआ होता है। अर्थात् विजयी होने पर मनुष्य अभिमानी हो जाता है। वह समझने लगता है कि तेरे जैसा कोई नहीं। तू अपराजेय और सर्वशक्तिमान है और संसार के मनुष्यों को चुटकी बजाते खत्म कर सकता है। यही विचार नास्तिकता का जनक है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हमारे ऋषियों ने इस प्रवृत्ति पर इदन्न मम का अंकुश लगाया। जब मनुष्य जीवन में सभी प्रकार की विजयों को परमात्मा की कृपा का प्रसाद समझकर ग्रहण करता है तो उसके अभिमान की भावना धीरे-धीरे दूर होती जाती है। क्योंकि गीता के अनुसार—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन॥

अर्थात् कर्म करने का तेरा अधिकार है। फल प्रदान करना परमात्मा के अधिकार में है। इस प्रकार की भावना से जो किए जाते हैं, उन्हें निष्काम कर्म कहा जाता है। उन फलों की प्राप्ति के समय मनुष्य दुःखी नहीं होता। योगदर्शन में इसी को सन्तोष कहा गया है। जिसके फल का वर्णन करते हुए—

सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः॥

अर्थात् सन्तोष से सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति होती है। यह कहा गया है। इसी के परिणामस्वरूप मनुष्य का सांसारिक पदार्थों के प्रति ममत्व नहीं रहता और दुःख का मूल कारण ममत्व ही है। इसीलिए याज्ञवल्क्य ने ठीक ही कहा है—

यज्ञो वै श्रेष्ठतमम कर्म॥

जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष तक यही भावना पहुंचाने में समर्थ होती है। और इसी भावना के लिए मनुष्य ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ, इन तीन आश्रमों में ७५ वर्ष तक निरन्तर बाह्य भौतिक यज्ञ करता है। यज्ञ में मन्त्रों के साथ "इदन्न मम" का भी उच्चारण करता है। लम्बे समय तक इस शब्द के उच्चारण से उसके भाव को अपने आध्यात्मिक जीवन में दृढ़मूल करने का निश्चय हो जाता है। जब तक यह निश्चय नहीं होता तब तक भौतिक यज्ञ की अपेक्षा रहती है क्योंकि इसी के लिए यह किया जाता है और यह भावना आ जाने पर भौतिक यज्ञ छूट जाता है। क्योंकि तब वह स्वयं यज्ञरूप हो जाता है। वेद के शब्दों में—

इयं ते यज्ञिया तनू॥

अर्थात् तेरा जीवन यज्ञिय जीवन है, यह लक्ष्य है। भौतिक यज्ञ उसका साधन है। साध्य की प्राप्ति पर साधन छूट जाता है और तब उसका आध्यात्मिक यज्ञ प्रारम्भ होता है। एक व्यक्ति ब्रह्मचर्याश्रम में प्रातः सायं दोनों समय यज्ञ करता है और उस यज्ञ से "इदन्न मम" की भावना का अपने जीवन में स्थापन करता है। तब वह सोचता है कि क्या तेरा यह व्यक्तिगत जीवन ही सब कुछ है? उसकी समझ में आता है "इदन्न मम"। जीवन की यही स्थिति मेरे लिए पर्याप्त नहीं है। यह तो पशु-पक्षियों का चिन्तन है। जीवन की यह इकाई तो हो सकती है लेकिन अन्तिम किनारा नहीं क्योंकि जगत् इससे भी विस्तृत है। जहां हमें अपनी अपेक्षा दूसरों का भला करने पर सुख की अनुभूति होती है। इसका आरम्भ जीवन की इकाई से होता है लेकिन समाप्ति मोक्ष पर होती है। तब वह व्यक्ति सामाजिक उत्थान की ओर अग्रसर होता है। समाज में सबसे छोटा समाज और हमारे सब से नजदीक परिवार का है। इसीलिए द्वितीय आश्रम में पारिवारिक उन्नति यज्ञकर्ता के जीवन का ध्येय होता है। अपनी ही चिंता करना नहीं, आत्मिक क्षेत्र में अपने हृदय की विशालता को बढ़ाने का एक यह उपक्रम है। जहां जाकर स्वयं दुःख सहकर भी अन्यों को सुख देने का अभ्यास चालू होता है।

माता-पिता स्वयं दुःख सहन करके भी अपनी सन्तानों को सुख प्रदान करने का प्रयत्न करते हैं। प्रथम आश्रम वाली केवल अपनी चिन्ता को छोड़ कर अब दूसरों की चिन्ता के क्षेत्र में प्रवेश किया गया है। गृहस्थ काल में अपनी पारिवारिक उन्नति के लिए यज्ञ से शिक्षा लेते हैं। परन्तु परिवारों का दायरा भी बहुत छोटा है क्योंकि इस का विशेष सम्बन्ध खून के रिश्तों से होता है। वैसे तो परिवार भी अपने आप में एक छोटा राष्ट्र है और राष्ट्र भी अपने आप में एक परिवार है। इसीलिए वानप्रस्थ अवस्था में परिवारों के क्षुद्र दायरों से ऊपर उठ कर सम्पूर्ण देशवासियों के साथ उस का आत्मिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। अब देश का प्रत्येक नागरिक उसका पारिवारिक जन है। इसी विचार की प्राप्ति के लिए वानप्रस्थ आश्रम में वह प्रयत्न करता है। इस भावना को वह प्रतिदिन दोनों समय यज्ञ में प्रदत्त आहुतियों में देखता है। क्या ही अच्छा हो। इस प्रकार के परिवार प्रेम की भावना से ऊपर उठे हुए व्यक्ति देश के शासक होवें। ये परिवारों के दायित्व से मुक्त भी होंगे। अतः परिवार पोषण के लिए भ्रष्ट विधियां नहीं अपनायेंगे। दिनभर संसद में बैठकर राष्ट्र के कल्याणकारक उपायों का चिन्तन करेंगे। भोजन के समय भिक्षा पात्र लेकर भिक्षा द्वारा उदरपूर्ति कर लेंगे। सादा ढंग के बिना सिले कपड़े पहनेंगे। सादगी से जीवन व्यतीत करेंगे। ऐसी अवस्था में राजनीति में भ्रष्टाचार का स्थान कहां होगा?

आजकल प्रायः रिटायरमेण्ट के बाद केवल घूमना और समाचार पत्रादि पढ़ना ही दैनिक जीवन हो जाता है। इस की अपेक्षा यदि ला कालेज का रिटायर्ड प्रिंसिपल, मेडीकल कालेज का रिटायर्ड प्रिंसिपल और इञ्जीनियरिङ्ग कालेज का रिटायर्ड प्रिंसिपल अवैतनिक रूप में अपना चिरकालिक अनुभव अपनी आने वाली पीढ़ी को दें, इससे जहां शिक्षा सस्ती होगी वहां आने वाली पीढ़ी उनके अनुभवों से वंचित नहीं रहेगी क्योंकि इस अवस्था में मनुष्य का आत्मिक सम्बन्ध सम्पूर्ण देश के साथ हो जाता है। परन्तु अभी भी कुछ न कुछ भौतिकता के साथ अपनत्व का लगाव है। इसीलिए चतुर्थ और अन्तिम आश्रम में वह अपने आपे में

(शेष पृष्ठ ४ पर)

आर्यसमाज के दश नियमों का निर्माता कौन ?

लेखक—प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु

होशियारपुर में विश्वेश्वरानन्द शोध संस्थान में रायबहादुर मूलराज की स्मृति में व्याख्यानमाला का आयोजन किया गया है। इसका निमन्त्रण पत्र हमारे पास भी किसी कृपालु ने भेजा है। इस में श्री प्रो० वेदव्यास जी का नाम व्याख्यान की अध्यक्षता के लिए दिया है। निमन्त्रण पत्र के पीछे राय बहादुर का संक्षिप्त जीवन परिचय भी दिया है।

इस परिचय में बहुत कुछ झूठ है। इतिहास की रक्षा के लिए, आर्य धर्म की रक्षा के लिए हम ने इस पर कुछ लिखना आवश्यक जाना। इस में लिखा है कि राय बहादुर ने आर्यसमाज के दश नियमों के बनाने में ऋषि की सहायता की। यह कतई झूठ है। महात्मा मुंशीराम जी ने लिखा है कि इन में से कुछ एक समझने की राय बहादुर में योग्यता ही न थी। राय बहादुर तो डींग मारता रहा कि मैंने ही आर्यसमाज के दश नियम बनाए परंतु किसी भी पुराने प्रामाणिक ऋषि जीवन में अथवा किसी तत्कालीन आर्य नेता ने यह नहीं माना राय बहादुर जी ने आर्यसमाज के दश नियम बनाये या बनाने में ऋषि की सहायता की। यदि ऋषि ने कभी किसी बात पर परामर्श किया तो इस का यह अर्थ कैसे हो गया कि राय बहादुर ने समाज के दश नियम बनाये।

आश्चर्य यह है कि इस जीवन परिचय में राय बहादुर की उपलब्धियों में यह क्यों नहीं लिखा कि ऋषि ने इसे गोकरुणानिधि का अनुवाद अंग्रेजी में करके देने के लिए कहा। इस भद्र पुरुष ने एक भी पंक्ति का अनुवाद न किया। न तो ऋषि को न की और न ही कार्य किया।

रायबहादुर ने वैदिक स्टडीज(Vedic Studies) को बढ़ाया, इसे योगदान दिया। यह तो कोरी गप्प है। एक बैठक में एक बार राय बहादुर ने श्री ला० साईं दास जी के सामने कहा था कि मैंने तो आर्यसमाज की स्थापना के समय ही ऋषि जी को कह दिया था कि मैं वेद को ईश्वर का ज्ञान नही मानता। लाला साईंदास जी ने तत्काल कहा, "आप झूठ बोल रहे हैं. आप ने तब ऐसा नही कहा था।" इस पर राय बहादुर चुप हो गए। क्या उत्तर देते ? लाला जी भी तो प्रत्यक्षदर्शी थे।

पं० उमरावसिंह जी रुड़की वाले ऋषि के समकालीन थे। वह बडे ऊंचे आर्य विद्वान थे। उन्होंने रायबहादुर के [illegible] पर एक लेखमाला दी थी। इसमें राय बहादुर का नाम तक नहीं। बार-बार यही लिखा है कि ऋषि जी ने आर्यसमाज के नियम बनाये। महात्मा हंसराज जी ने १९३० ई० में दश नियमों पर एक ओजस्वी भाषण दिया। इसमें बार-बार यही कहा ऋषि ने ये नियम बनाये। राय बहादुर पर महात्मा जी ने इसमें व्यंग्य अवश्य कसा है। महात्मा जी के मेरे पास तीन चार ऐसे व्याख्यान हैं जिनमें दश नियमों की महिमा का वर्णन है परन्तु राय साहब का नाम तक नहीं। राय बहादुर व उनके चेलों चपाटों का नाम लिए बिना महात्मा जी ने आर्यों से कई बार कहा कि ऐसे लोगों को आर्यसमाज में सहन न किया जाए। जो वेद को न मानें, ईश्वर को न मानें, पुनर्जन्म को न मानें। जहां ऐसे लोग हों, उस सभा को महात्मा जी ने अनार्य सभा की संज्ञा दी।।

राय बहादुर ने विधवा विवाह का प्रचलन किया। ऐसी बात नहीं। तथ्य इस प्रकार से है—शिवनारायण अग्निहोत्री ने अनमेल विवाह किया (बेसी से) तो राय बहादुर ने सिठ (व्यंग्य काव्य) लिखा। फिर राय बहादुर ने [illegible] में विवाह किया तो शिवनारायण ने उन की सिठ छपवाई। यह सब वृत्तान्त हम ने एक पुरानी पत्रिका में पढ़ा था। क्या इसे झुठलाया जा सकता है ? रही स्त्री शिक्षा के प्रसार की बात सो महात्मा मुंशीराम जी का लेख है कि यही दोनों कन्या महाविद्यालय के विरोध में भी शामिल हो गए। शिवनारायण को राय बहादुर ने आगे कर दिया और पर्दे के पीछे कठपुतलियों का राय बहादुर नाच करवाते थे। यह भी महात्मा मुंशीराम ने लिखा है। लाला लाजपतराय व महात्मा श्री मुंशीराम जी ने लिखा है कि आर्य लोग राय बहादुर को अंग्रेजों का गुप्तचर मानते थे। इसी ने आर्यसमाज को पंजाब में दो फाड़ करवाया। □

करती है आह्वान श्रावणी !

—भैरवदत्त शुक्ल

करती है आह्वान श्रावणी।
बुद्धि-विभव के नव विकास के
गा-गा कर मधु-गान श्रावणी !
जड़िमा के विनाश-हित आर्यो !
करती है आह्वान श्रावणी !

शिक्षा का शिव रूप भ्रष्ट कर
कब व्यवहार पनप पायेगा
'सत्यधर्म्म' को विस्मृत कर,
कब परिवार पनप पायेगा ?
भूखा 'मनुर्भव' मधु-मद्य-सेवी—
कब संसार पनप पायेगा ?
'मा भै.' का उद्घोष छोड़ कर,
कब आधार पनप पायेगा ?

इसीलिए बतला, दिखलाकर,
गुरु-कुल-सौम्य-विधान श्रावणी !
जड़िमा के विनाश-हित आर्यो !
करती है आह्वान श्रावणी !!

विकृति नष्ट कैसे हो सकती ?
यदि न प्रकृति का परिचय पाया,
निष्कृति प्राप्त न होने वाली,
यदि न सुकृत-गुण-सचय पाया,
आत्म-ज्ञान की दिशा अजानी,
यदि न सुमति मय अभिनय पाया,
जगन्नियन्ता रहे अपरिचित,
[illegible]

इसीलिए सच्चिदानन्द की, !
करा रही पहिचान श्रावणी !

जड़िमा के विनाश-हित आर्यो
करती है आह्वान श्रावणी !

कोरी श्रद्धा के आंचल में,
ढोंगों का परिवार किलकता,
जब तीखे तर्कों के घट से,
कलह-कलुष-मदसार छलकता,
दृष्टिकोण सीमित करने से,
पल - पल भ्रष्टाचार पुलकता,
आकाशी आदर्श पाल, मद—
पीने को संसार ललकता,

इसीलिए कर रही समन्वित,
मति-मेधा, तन-प्राण श्रावणी !
जड़िमा के विनाश-हित आर्यो !
करती है आह्वान श्रावणी !!

वेद पढ़ो, समझो, समझा कर
व्यवहारों में पद-पद पालो,
रूढि - ढोंग के घेरे तोड़ो,
कारा से ऋत-सत्य - निकालो,
आस्तिक पर-हित-निरत जनो के,
कोटि-कोटि दृढ़ साचे ढालो,
काट निराशा के सब फन्दे,
आस्था - निष्ठा - श्री प्रतिपालो,

उपाकर्म मिस प्रस्तुत करती,
सम्मुख लक्ष्य महान श्रावणी !
जड़िमा के विनाश-हित आर्यो !
करती है आह्वान श्रावणी !!

श्री शालवाले के संन्यास आश्रम में प्रवेश की प्रशस्ति

नगर आर्यसमाज साहबगंज गोरखपुर द्वारा यज्ञोपरान्त आर्य नेता सार्वदेशिक सभा के प्रधान ला० रामगोपाल शालवाले के संन्यास आश्रम में प्रविष्ट होकर धर्म रक्षा, राष्ट्र रक्षा, हिन्दू रक्षा के पवित्रतम कार्य को प्रगति देने के लिए जीवन समर्पित करने की भावना से संन्यास आश्रम में दीक्षित होने के पुनीत कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की। यदि देश के आर्य नेता इसी प्रकार के आदर्श प्रस्तुत करें तो आर्य समाज का गौरव बढ़ेगा और इन संन्यासी महात्माओं द्वारा आर्य जनता को प्रेरणा मिलेगी।

सभा में पूज्य स्वामी आनन्द बोध सरस्वती महाराज के पूर्वांचल के विशिष्ट स्थानों पर जनसभाओं के आयोजन द्वारा उन के आगमन के लिए पत्राचार की योजना बनाई गई।

सभा की अध्यक्षता प० द्विजराज शर्मा पुरोहित अध्यक्ष जिला आर्योपप्रतिनिधि सभा गोरखपुर ने की तथा सचालन रमेशप्रसाद गुप्त मन्त्री, नगर आर्यसमाज साहबगंज ने की।

अन्त मे देवीलाल आर्य प्रधान, अशोक लोहिया, यशोदानन्द केशरवानी आदि वक्ताओं ने स्वामी जी के दीर्घायु की कामना की।

भवदीय
रमेश [illegible] गुप्त
मन्त्री
नगर आर्यसमाज
साहबगंज, गोरखपुर

पंजाब समस्या में मुस्लिम और पाकिस्तानी योगदान

—विवेकशील

पिछले दिनों के नवभारत टाइम्स में ब्रिटेन के मुस्लिम गुटों से खालिस्तानी नेताओं [illegible] था। डा० जगजीत सिंह चौहान ने प्रेस सम्मेलन मे जिन पचास मुस्लिम सगठनों का उल्लेख किया उनमे भारत और पाकिस्तान दोनों देशो के मुस्लिम सगठनों का योगदान है। इस गठबन्धन का उद्देश्य भारत में सिखों और मुसलमानों का हिंदुओं के विरुद्ध संयुक्त संघर्ष है। यदि उपरोक्त समाचार को अतीत के तीन-चार वर्ष की घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो यह एक बडे षड्यन्त्र को सूचित करता है जिसके अनेक पहलू हैं-(१) पाकिस्तान की भारत के टुकडे करने की चाल, (२) भारतीय मुसलमानो का सिखों के देशद्रोह में सहयोग और (३) सिखों द्वारा मुसलमानों को प्रसन्न करने के प्रयास।

पाकिस्तान द्वारा पञ्जाब समस्या को भडकाने तथा सिख दशद्रोहियों का साथ देन के विषय में बार बार कहा गया है। पाकिस्तान में सिख उग्रवादियों के प्रशिक्षण शिविर बडी मात्रा में चलते रहे और इन शिवरो मे पूर्णत. प्रशिक्षित युवक पंजाब में आकर तोड़-फोड करते रहे। इन युवको मे अनेक मुस्लिम युवक भी केश बढा कर सिख वेश धारण कर भारतीय सीमा मे प्रवेश कर गये। इसके प्रमाण आपरेशन ब्लू स्टार के समय मिले जब स्वर्ण मन्दिर से पकडे गये उग्रवादियों मे से कई मुसलमान और पाकिस्तानी नागरिक निकले। पञ्जाब मे पकडे गये शस्त्रास्त्र भी प्राय पाकिस्तान मे प्राप्त किये गये हैं। इसके अतिरिक्त पंजाब में पकडे गये आतंकवादियो से यह सूचना बार बार मिलती रही है कि पाकिस्तान उन्हें प्रशिक्षण तथा हथियार उपलब्ध करा रहा है। तीर्थाटन के लिये गये सिख जत्थो का पाकिस्तान मे जनरल जिया द्वारा अत्यधिक स्वागत हुआ और उन्हें भारत-विरोधी पत्रक बाटे गये।

[illegible] कार्य भी किये है जिनमे से एक है—सिख उग्रवादियों द्वारा अपहृत विमान के लाहौर उतरने पर अपहर्ताओं की सहायता करना। २४ अगस्त १९८४ को इण्डियन एयरलाइन्स के इस बोइंग ७३७ विमान मे यात्रा कर रहे एक यात्री की सूचना के अनुसार लाहौर तक विमान का अपहरण किसी खिलौने से डराकर किया गया किन्तु लाहौर विमान-स्थल पर अपहरणकर्त्ताओं को पिस्तौल दी गयी [illegible] भारत शासन को नहीं सौपा अपितु पाकिस्तान में मुकद्दमा चलाने के बहाने उन्हें शरण दी है।

पाकिस्तान न केवल अपने देश में अपितु विदेशों में भी सिख उग्रवादियों की सहायता कर रहा है। लन्दन में पकड़े गए उग्रवादियों के मुकद्दमों की व्यवस्था भी पाकिस्तानी दूतावास कर रहा है। पाक समर्थित जम्मू-कश्मीर मुक्ति मोर्चा भी इन इन उग्रवादियों का भारत विरोध में साथ देता रहा है।

युद्धनीति में सेना की पञ्चम श्रेणी (फिफ्थ कालम) का कार्य अत्यधिक महत्वपूर्ण है। शत्रुपक्ष में घुसकर तोड़-फोड़ करना, उसे अन्दर से दुर्बल करना और उचित समय आने पर अचानक आक्रमण कर देना। पाकिस्तान के ऐसे षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ होना अत्यावश्यक है। भारत में मुसलमानों तथा सिखों को भड़का कर भारत-विरोधी बना पाकिस्तान यही [illegible]

लगभग तीन वर्ष पूर्व जब खालिस्तान की मांग बलवती होने लगी तो स्वर्णमंदिर अमृतसर में भिण्डरावाला के समक्ष ५,५०० सिखों के साथ १११ मुसलमानों ने 'अल्ला हो अकबर' के नारों के साथ खालिस्तान की लड़ाई में सहयोग देने की शपथ ली। इन्हीं दिनों कई मुस्लिम नेता भी पंजाब में अत्यधिक सक्रिय रहे जिनमें जामामस्जिद दिल्ली के शाही इमाम अब्दुल्ला बुखारी एक हैं जो बार बार अमृतसर जाकर आतंकवादियों से मिलते रहे। जम्मू-कश्मीर के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री फारूख अब्दुल्ला न केवल अमृतसर में भिण्डरांवाला से मिलते रहे अपितु सिख देशद्रोहियो को शरण भी देते रहे। फारूख भिण्डरावाला से इतने प्रभावित थे कि इन्होंने अपने मुख्यमन्त्री कार्यालय में भिण्डरावाला का चित्र लगा रखा था। अनेक प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि फारूख हर देशद्रोही गतिविधि में सक्रिय रहे हैं। अपने यौवन में यह ब्रिटेन में भारत-विरोधी प्रचार करते रहे और वहीं से इनका सम्पर्क जम्मू-कश्मीर मुक्ति मोर्चा के नेताओं मकबूल भट्ट (जिसे भारत सरकार ने फांसी का दण्ड दिया) और मुहम्मद अशरफ (एक भारतीय विमान के अपहरणकर्ता) से हुआ। पाक अधिकृत कश्मीर में फारूख पर्याप्त समय 'आजाद कश्मीर' के नेताओं के साथ काम करते रहे।

इन्हीं फारूख अब्दुल्ला ने पंजाब के

(शेष पृष्ठ ५ पर)

यज्ञ

(पृष्ठ २ का शेष)

यज्ञरूप को धारण कर लेता है। निरन्तर ७५ वर्ष तक यज्ञाग्नि का सेवन करके यज्ञ के मर्म को हृदयङ्गम कर लेता है। अपने देश की सीमाओं और नागरिकों के प्रति भी इदन्न मम की भावना धारण कर लेने पर ही संन्यास का अधिकारी होता है। क्योंकि वेद मानवमात्र ही नहीं प्रत्युत प्राणीमात्र में आत्मत्व की भावना का संकेत करता है। आज "इदं मम" के झगड़े हैं। यह देश मेरा, यह ग्राम मेरा, यह प्रान्त मेरा, यह जिला मेरा, यह सम्बन्धी मेरा, इसी के कारण मानव झगड़ रहे हैं। वेद कहता है—

माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः॥

—अथर्ववेद

अर्थात् भूमि मेरी माता और मैं इस का पुत्र हूं। आज विवाद का विषय है—मातृभूमि। जो कि काल्पनिक टुकड़ों में बांट करके विवाद का विषय बना दी गई है। हम अपने देश को मातृभूमि कहते हैं, दूसरे देश की भूमि को नहीं। यही स्थिति दूसरे देशवासियों की है। इसीलिए जब हमारे देश पर आक्रमण होना है, तब हमें दुःख होता है क्योंकि हमारी मातृभूमि पर आक्रमण किया गया है। परन्तु दूसरे देशवासियो को नहीं होता क्योंकि वे इसे अपनी मातृभूमि नहीं समझते। दूसरों की मातृभूमि पर आक्रमण होने पर हमारी [illegible] जितनी भूमि है, वह हम सबकी माता है। पुत्र माता का बटवारा नहीं करते। सभी देशभूमि पर रहते हैं, ऐसी स्थिति में कहीं पर भी आक्रमण होगा तो वह हमारी माता पर आक्रमण समझा जाएगा। आक्रान्ता हमारा शत्रु होगा। आक्रमणकारी चाहे माता के किसी भी अङ्ग पर चोट करें, परन्तु वह हमारा शत्रु ही होगा।

इसी प्रकार वेदानुसार सम्पूर्ण भूमि को माता मान लेने पर उसके किसी भी हिस्से पर आक्रमण करने वाला हमारा शत्रु है। वर्तमान झगड़ा काल्पनिक मातृभूमि के विचारों का है। इन सम्पूर्ण झगड़ों को दूर करने के लिए वेद हमें भूमि माता का पाठ पढ़ाता है। ऐसी भावना मनुष्य के मन में आने पर वह संन्यास का अधिकारी हो जाता है। अब उसके लिए सम्पूर्ण विश्व अपना हो जाता है और वह प्राणिमात्र का हो जाता है। क्योंकि उस की दृष्टि 'वसुधैव कुटुम्बकम्" की हो जाती है और वेद के शब्दों में "मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे" की भावना से ओतप्रोत हो जाता है। सारे प्राणियों का दु:ख उसका अपना दुःख हो जाता है। इसीलिए प्राणिमात्र को सुखी करने के लिए ही वह संकल्पाग्नि को धारण करता है। अग्नि का रंग लाल होता है, जिसके प्रतीक गेरुवे कपडे संन्यासी पहनता है। गेरुवे कपडों के बीच में रहना अपने को यज्ञाग्नि में समर्पित कर देना है। इन्हीं तत्त्वों को बोध कराने वाली यज्ञ में तीन मेखलाएं होती हैं परन्तु उसके आगे अग्नि होता है। तीन मेखलाएं प्रारम्भिक तीन आश्रमों का प्रतीक हैं और अग्नि संन्यासी का बोध कराती है। इसी प्रकार यज्ञकुण्ड के आकार को हम ले सकते हैं। वह निम्नतम अवस्था में एक ओर का जितना [illegible] होता है और ऊंचाई पर आकर उसके उस बाजु का आकार भी चौगुना हो जाता है। प्रश्न यह है कि चौगुना ही क्यों हो? इस से कम या अधिक क्यों नहीं? इसका समुचित उत्तर यही है कि मनुष्य व्यक्तिगत, पारिवारिक, राष्ट्रीय एवं सम्पूर्ण विश्व इन चार की उन्नतियों में से गुजरता है। आरम्भ व्यक्तिवाद से होता है और समाप्ति व्यष्टिवाद पर होती है। समष्टि के परिवार, राष्ट्र और विश्व में तीन रूप हैं। इसमें सर्वोत्तम रूप विश्व का है। इस प्रकार उन्नति इन चार भागों में बंट जाती है। पहले की अपेक्षा अन्तिम मानो चौगुना है। इसीलिए यज्ञकुण्ड के परिमाण में चतुर्गुण का महत्त्व है और इसीलिए चतुर्गुण से अधिक या न्यून नहीं हो सकता यही वह अवस्था है जहां जाकर मनुष्य इकाई से असंख्य बन जाता है। बिन्दु से समुद्र हो जाता है। 'स्व' अर्थात् अपने व्यक्तिगत जीवन से उठकर "स्वः" अर्थात् समष्टिरूप हो जाता है। वहां देश, स्थान, परिवार एवं रक्त के सम्बन्ध टूट जाते हैं क्योंकि सभी के साथ आत्मिक सम्बन्ध हो जाता। इसीलिए उर्दू के किसी एक कवि ने कहा है—

"है सन्यास क्या गम मे औरो के गलना,
परायी चिता पर पडे आप जलना।
खञ्जर के धारा पे पग धर के चलना,
न हरगिज हिचकना न हरगिज मचलना।
इधर तोडना बन्ध सब खानुमाके,
उधर आप बन जाना सारे जहां के॥"

इसी स्थिति को प्राप्त करना जीवन का अन्तिम ध्येय है। यज्ञ के माध्यम से उसकी क्रियाओं पर चिन्तन करते हुए मनुष्य इसी पर पहुंचने का प्रयत्न करता है क्योंकि यह श्रेष्ठतम कर्म है। इसीलिए यजुर्वेद के ४०वें अध्याय के द्वितीय मन्त्र में कहा गया है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।

अर्थात् इस जीवन में श्रेष्ठतम यज्ञादि कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करो। यज्ञ उसका साधन है और साध्य है जीवन की वह सर्वोत्कृष्ट स्थिति जहां पहुंचकर मनुष्य अपने आपको प्राणिमात्र के लिए उत्सर्ग कर देता है। यह संन्यास अवस्था यज्ञ के माध्यम से हमें प्राप्त होती है।

पंजाब समस्या

(पृष्ठ ४ से आगे)

देशद्रोहियों को जम्मू कश्मीर में संरक्षण दिया और अनेक सरकारी कार्यालयों में नौकरियाँ तो दीं ही, गुप्त रूप से प्रशिक्षण शिविर भी चलवाते रहे। यहां तक की बिण्डरावाला के एक सम्बन्धी को श्रीनगर के रीजनल इन्जीनियरिंग कालेज मे अवैध प्रवेश दिया गया। पंजाब में पहुँचने वाले शस्त्रास्त्र प्राय: कश्मीर के माध्यम से आए और वह भी उस समय जब वहां फारूख अब्दुल्ला का शासन था। पुंछ के निकट ही एक ऐसा स्थान था जहां से ये आतंकवादी सरलतापूर्वक पाकिस्तान आते जाते रहे और अस्त्र सप्लाई करते रहे। वहां की स्थानीय मुस्लिम जनता का इन्हें पूरा सहयोग रहा।

पिछले वर्ष अक्तूबर मास में जम्मू-कश्मीर पुलिस ने एक सक्रिय आतंकवादी दल 'सैफन टाइगर्ज' के छः सदस्यों को पकड़ा जिनसे पूछताछ में अनेक महत्त्वपूर्ण रहस्य खुले। सैफन टाइगर्ज सिख और मुस्लिम देशद्रोहियों की मिली जुली संस्था जिसने वैष्णव देवी का मन्दिर उड़ाने और वितरित की जाने वाली खाद्य-सामग्री को विषाक्त करने की योजना बनाई थी। इसके जो सदस्य पकड़े गए उनमें जम्मू का एक उर्दू साप्ताहिक का सम्पादक मुहम्मद शरीफ है।

पाकिस्तानी अथवा भारतीय मुसलमानों के सिख समस्या में सम्मिलित होने के पीछे उनकी मानसिकता स्पष्ट परिलक्षित होती है कि किसी प्रकार हिन्दू समाज को दुर्बल कर भारत में इस्लाम की ध्वजा को फहराया जा सके। हरिजनों को सवर्ण हिन्दुओं के विरुद्ध भड़काने के पीछे भी यही मानस है। असम में 'अल्पसंख्यक मोर्चा' के रूप मे भारत के सभी अल्पसंख्यकों को हिन्दूविरोध मे खड़ा करने का बीज बोया जा चुका है।

पंजाब मे अकाली प्रशासन भी मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए अतिरिक्त सुविधाएं देने का प्रयास कर रहा है। मलेरकोटला मे पंजाब जन स्वास्थ्य विभाग द्वारा टी० बी० रोग के निवारण हेतु शिविर लगाया गया जिसमे यह सुविधा मात्र मुसलमानो को थी। सिखों में यह प्रचार भी किया जा रहा है कि वे धार्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों के अधिक निकट हैं।

अमरीका मे उग्रवादी प्रशिक्षण शिविर चलाने वाले फ्रैंक कैम्पर ने कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाएं भारत सरकार को दी जिनकी ओर भारत ने कोई ध्यान नहीं दिया। सिख उग्रवादी कैम्पर के स्कूल में प्रशिक्षण लेते रहे। कैम्पर ने पर्याप्त समय पूर्व यह सूचना दी थी कि ये उग्रवादी भारत में बड़ी मात्रा में तोड़ फोड़ करना चाहते हैं। एक अन्य विशेष बात इन्होंने कही कि इन सिख आतंकवादियों को संसार के कई उग्रवादी संगठन सहायता कर रहे हैं जिनमें से अफगानी और फिलस्तीन मुक्ति मोर्चा भी हैं। क्या विडम्बना है कि एक ओर यासर अराफत के साथी भारत के शत्रुओं का साथ दे रहे हैं और भारत के प्रधानमन्त्री उन्हें गले लगा रहे हैं। भारत को पी०एल०ओ०का समर्थन तत्काल बन्द कर देना चाहिये।

आज चारों ओर से भारत को दुर्बल करने का षड्यन्त्र जोरों पर चल रहा है। हिन्दू धर्म पर सकट गहरा होता जा रहा है। कभी कश्मीर मे हिंदुओ के घरो और मन्दिरो को ध्वस्त कर दिया जाता है तो कहीं पंजाब में चुन चुन कर हिन्दुओं की हत्याए हो रही हैं। एक ओर उत्तर-पूर्व मे तीन राज्य नागालैंड, मिजोरम और मेघालय ईसाई बहुल हो गऐ हैं तो दूसरी ओर दक्षिण मे विदेशी धन के बल पर हिन्दुओं का धर्मपरिवर्तन गति से चल रहा है। ऐसे मे आवश्यकता है कि हिंदू जागरूक हों और आने वाले सकट से निबटने के लिए कटिबद्ध हों।

आरोग्य पथ

उत्तम स्वास्थ्य के लिए शाकाहारी बनें

पौष्टिक तत्त्व तुलनात्मक चार्ट

भारत सरकार द्वारा प्रकाशित हैल्थ बुलेटिन नं० २३

शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के दृष्टिकोण से सिर्फ शाकाहारी भोजन ही उत्तम है। मांसाहार की अपेक्षा शाकाहार जल्दी हजम हो जाता है। स्व० डा० पटवर्धन ने हैदराबाद की राष्ट्रीय पोषण संस्था (National Institute of Nutrition) की प्रयोगशाला में बहुत प्रयोग किए उन सब प्रयोगों में शाकाहार की उत्तमता भलीभांति सिद्ध हुई [illegible] का संतुलन बराबर रहा।

रूस देश के जोर्जिया और अजरबैजन की आबादी में १५० वर्ष तक की लम्बी आयु के व्यक्ति आज भी पाए गए हैं जो शाकाहारी हैं। वे न कभी मांस खाते हैं न शराब पीते हैं और न ही धूम्रपान करते हैं। ये लोग अच्छी तरह जानते हैं कि अप्राकृतिक एवं अमानवीय आहार—अण्डे, मछली, मांस, शराब आदि मानव के स्वास्थ्य को नष्ट करके उसे अल्पायु में ही मौत के मुख में धकेल देते हैं। मुख्यत: ये लोग पनीर, बेर जैसे फल और मटर आदि का सेवन करते हैं। शाकाहारी भोजन— फेफड़ों, दिल, मस्तिष्क, गुरदे, यकृत आदि सभी अवयवों को स्वस्थ बनाए रखता है।

नाम पदार्थ	प्रोटीन	चिकनाई	खनिज लवण	कार्बोहाइड्रेट्स	कैलशियम	फासफोरस	लोहा	कैलोरी
शाकाहारी खाद्य Vegetarian Foods (प्रत्येक 100 Grams में)								
मूंग	२४.०	१.३	३.६	५६.६	०.१४	०.२८	८.४	३३४
उड़द	२४.०	१.४	३.४	६०.३	०.२०	०.३७	९.८	३५०
अरहर (तूअर)	२२.३	१.७	३.६	५७.२	०.१४	० २६	८ ८	३३३
मसूर	२५.१	०.७	२.१	५९.७	०.१३	०.२५	२ ०	३४६
मटर	२२.९	१ ४	२.३	६३.५	०.०३	०.३६	५ ०	३५८
चना	२२.५	५ २	२.२	५८.९	०.०७	०.३१	८ ९	३७२
लोबिया (चौला)	२४.६	०.७	३.२	५५.७	०.०७	०.४९	३ ८	३२७
सोयाबीन	४३.२	१९.५	४.६	२०.९	०.२४	०.६९	११.५	४३२
बादाम	२० ८	५८।९	२ ९	१०.५	०.२३	० ४९	३ ५	६५५
काजू	२१ २	४६,९	२ ४	२२.३	० ०५	० ४५	५ ४	५९६
नारियल	४ ५	४१ ६	१ ०	१३.०	० ०१	०.२४	१ ७	४४४
तिल	१८ ३	४३ ३	५.२	२५.२	१.४४	० ५७	१० ५	५६४
मूंगफली	३१.५	३९.८	२.३	१९ ३	०.०५	०.३९	१.६	५४९
पिस्ता	१९.८	५३ ५	२.८	१६ २	० १४	०.४३	१३.७	६२६
अखरोट	१५.६	६४ ५	१.८	११ ०	०.१०	० ३८	४ ८	६८७
जीरा	१८ ७	१५ ०	५ ८	३६.६	१.०८	० ४९	३१ ०	३५६
पीपल	६.४	२.३	४.८	६५.८	१ २३	०.१९	६२.१	३१०
मेथी	२६ २	५ ८	३ ०	४४.१	०.१६	० ३७	१४ १	३३३
पनीर	२४.१	२५.१	४.२	६ ३	०.७९	० ५२	२ १	३४८
घी	—	९८.०	—	—	—	—	—	९००
सप्रेटा दूध पाउडर	३८.३	०.१	६ ८	५१.०	१ ३७	१.००	१ ०४	३५७
मांसाहारी खाद्य Flesh Foods (प्रत्येक 100 grams में)								
अण्डा	१३.३	१३ ३	१.९	–	०.०६	० २२	२ १	१७३
मछली	२२ ६	०.६	०.८	—	० ०२	० १९	० ९	९१
बकरी का मांस	१८.५	१३ ३	१.३	—	०.१५	० १५	२ ५	१९४
सुअर का मांस	१८ ७	४.४	१.०	—	० ०३	० २	२ ३	११४
गाय का मांस	२२.७	२.६	१.०	—	०.०१	०.१९	० ८	११४

समाचार

निजाम रियासत में ४७ वर्ष बाद प्रचार यात्रा

भूतपूर्व निजाम रियासत में १९३८ में सत्याग्रह करने के लिए साथियों के समेत होली के त्यौहार पर गया था। इस से पूर्व सीमावर्ती भारतीय प्रदेश मे प्रचार में रहा। पूर्व निजाम स्टेट अब आंध्रप्रदेश, कर्नाटक और महाराष्ट्र में विभाजित है। इनमें से प्रथम दो राज्यों मे भूतपूर्व संसद सदस्य श्री नरदेव स्नातक, हाथरस के पं० सुरेशचन्द्र आयुर्वेद शिरोमणि और मथुरा कालेज में शिक्षक श्री राजेन्द्रसिंह वर्मा (सभी पूर्व सत्याग्रही) मेरे साथ रहे।

सर्वप्रथम आर्य प्रतिनिधि सभा, सुल्तान बाजार में प्रधान श्री रामचन्द्रराव कल्याणी और मन्त्री माणिकराव शास्त्री से बातचीत की कि किस प्रकार पूर्व निजाम रियासत में बाहर से सत्याग्रह करने वालों को जेलों के प्रमाणपत्र मिल सकते हैं। समाज में राजस्थान, उत्तर प्रदेश आदि से पिछले दिनों बराबर इस काम के लिए लोग पहुंच रहे थे। सरकारी अधिकारियो का व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण कम था। लेने देने का काम भी चलता था। हम इस विषय मे जेलों के महानिदेशक श्री सैफुल्ला खां से मिले। वे एक सज्जन व्यक्ति हैं परन्तु नीचे के कर्मचारियों का सहयोग बहुत कम है। वहां की प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से भूमिगत कार्यकर्ताओ की दरख्वास्तें धड़ाधड़ गृहमन्त्रालय एवं सार्वदेशिक सभा को भेजी जा रही थी। इस विषय मे गलत प्रामाणिकता पाये जाने पर आर्यसमाज की ख्याति धूमिल हो जाने की बहुत बड़ी आशंका है।

वहा से आंध्रप्रदेश के निजामाबाद में मैं और श्री नरदेव स्नातक पहुचे। आर्य समाज के अधिकारियो ने प्रचार के लिए कई मीटिंग युवको, महिलाओं और पुरुषों की रखी थी। समाज के मन्त्री श्री यादव राव बडे उत्साही उदार युवक, प्रधान श्री पाठक, श्री मशाराम गुप्त एवं श्री निधिनाथ पूर्व एम०एल०ए० ने इस कार्य में बड़ा सहयोग दिया। अपने तीन दिनो के वहां प्रवास मे पहाडी पर स्थित किले में बनी जेल मे (जो पहले शिवाजी महाराज की छावनी और मन्दिर था) हम लोग पहुंचे। वहा भी अन्य भागों से पूर्व सत्याग्रही अपने प्रमाणपत्रो के लिए आते रहे हैं। आश्वकाय को सफलता नहीं मिली, क्योंकि दस्ती तौर पर प्रमाणपत्र नहीं देने को तत्पर नहीं थे। हमारे पूर्व सांसद श्री नरदेव स्नातक को बड़ी कठिनाई से अनेक बार जाने के बाद इस किलेनुमा स्थित जेल से प्रमाणपत्र मिला। हैदराबाद मे उनको अभी तक नहीं मिला।

इसके बाद मैं मेडक, संगारेड्डी गया। यहां पर कोई कार्यकर्ता नहीं मिला और समाज मन्दिर भी एक सनातन मन्दिर के कोने में उपेक्षित दशा में देखने को मिला। एक शिशु पाठशाला वहा चलती है। यहां जिला मुख्यालय म दशा शोचनीय थी. निकट में एक गुरुकुल नया बना है। यहां की छोटी सी जेल में मैं सुपरिन्टेण्डेण्ट से मिला और उन्होंने सदाशयता का परिचय दिया। आश्चर्य है कि सजा पूरी होने से पहले समझौते के अन्तर्गत रिहा होने वाले सत्याग्रहियों का तब का रिकार्ड वहां अनुपलब्ध है।

गुलबर्गा (कर्नाटक) में समाज के प्रधान श्री शिवराज शास्त्री, श्री पवारे तथा अन्य कार्यकर्ताओं से भेंट हुई। पुरानी जेल तोड़कर वहां अब नया कारागार बना है। यहां की राजभाषा कन्नड है फिर भी जेल अधीक्षक ने भली प्रकार हिन्दी में बातचीत और डाक द्वारा शीघ्र ही सबके प्रमाणपत्र क्रमानुसार भेजने का आश्वासन दिया। यहां पर भी पिछले काफी समय से उत्तर भारत से आने वाले सत्याग्रही अपने प्रमाणपत्रों को पाने के लिए पहुंचे हुए थे। समाज में आर्यवीरों व शहीदो के बडे तैल चित्र लगे हुए थे। एक स्कूल भी चलता था।

इस यात्रा में कुछ ऊंचे अधिकारियों को छोड़कर जेल के कर्मचारी काम करने के बदले इनाम या रिश्वत की मांग करते हैं। अनेक व्यक्ति और संस्थाएं गृहमन्त्रालय के स्वतन्त्रता सेनानी प्रभाग और पूर्व निजाम रियासत के कार्यालयों में पूरी तरह सत्याग्रहियों की सहायता व पथ-प्रदर्शन नहीं कर रहे हैं।

ब्रह्मदत्त स्नातक
अवै० प्रेस एव जनसंपर्क सलाहकार
सा० आ० प्र० सभा, दिल्ली

आर्यसमाज हनुमान रोड की ओर से शुद्धि का आह्वान

आर्यसमाज हनुमान रोड की ओर से शुद्धि के लिए प्रचार पर बहुत बल दिया जाता है। कोई दिन ऐसा नही जाता कि जब कोई ईसाई या मुसलमान व्यक्ति इस समाज के पुरोहित द्वारा शुद्ध नही किया जाता। जून मास तक १० के करीब ईसाई/मुसलमान पुरुषों एवं महिलाओं को शुद्धि संस्कार करके उन्हें आर्य धर्म में प्रवेश किया गया और उनको अध्ययन के लिए वैदिक साहित्य दिया गया।

के०एल० भाटिया
मन्त्री

पंजाब के विस्थापितों की सहायता कीजिए

इस समय आर्यसमाज (अनारकली), मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली में पंजाब के काफी हिन्दू परिवार आकर ठहरे हैं तथा प्रतिदिन आ रहे हैं। स्थानाभाव के कारण उन्हें वहां से जनकपुरी, अशोक नगर, उत्तम नगर, लाजपत नगर, अमर कालोनी, राजौरी गार्डन, तिलक नगर, रघुवीर नगर आदि स्थानों पर आर्यसमाज या सनातन धर्म मन्दिरों में भिजवाया जा रहा है। हम से उनकी जो भी सेवा हो सकती है, वह हम कर रहे हैं। अन्य आर्य सदस्य भी काफी सहायता कर रहे है। फिर भी वह इतनी नहीं है जिस से आवश्यकता की पूर्ति हो सके। इसलिए समस्त हिन्दू जनता से मेरी विनम्र प्रार्थना है कि वे अधिक से अधिक आर्थिक सहायता की राशि चैक/ड्राफ्ट एवं मनीआर्डर द्वारा भेजने की कृपा करें। जिस से कि उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। वे हमारे भाई हैं और विपत्ति में उनकी सहायता करना हमारा पवित्र कर्तव्य है।

समस्त आर्य हिन्दू संगठनों से प्रार्थना है कि वे इस सम्बन्ध में हमारी अधिक से अधिक सहायता करें।

रामनाथ सहगल
मंत्री
आर्यसमाज (अनारकली),
मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-१

वेद प्रचार सप्ताह के लिए नम्र निवेदन

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के युवा महामन्त्री डा० धर्मपाल ने दिल्ली की समस्त आर्यसमाजों के अधिकारियों से अपील की है कि वे आगामी तीन मासों अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर में श्रावणी पर्व के उपलक्ष्य में अपनी-अपनी समाज में वेद प्रचार सप्ताह का आयोजन करें। वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना, पढ़ाना और सुनना सुनाना प्रत्येक आर्य का परम धर्म है। वैदिक धर्म का प्रचार प्रसार करना सभा का मुख्य उद्देश्य है।

सभा का यह सौभाग्य है कि सभा के वेद प्रचार विभाग में सुयोग्य उपदेशक तथा भजनोपदेशकों की सेवाएं दिन-रात उपलब्ध हैं। सभा आर्यसमाजों द्वारा आयोजित वार्षिकोत्सवों, वेद प्रचार सप्ताहों, कथाओं, रविवारीय सत्संगों तथा अन्य संस्कारों पर सुयोग्य उपदेशक आदि भेजने की व्यवस्था करती है। इस समय सभा के वेद प्रचार विभाग में निम्न उपदेशक तथा भजनोपदेशक वेद प्रचार का कार्य कर रहे हैं—

१. पूज्य स्वामी स्वरूपानन्द जी सरस्वती
२. पं० रामकिशोर जी वैद्य महोपदेशक
३. पं० हरिदेव जी सिद्धातभूषण महोपदेशक
४. प० ओमवीर जी शास्त्री महोपदेशक
५. प० सत्यदेवजी स्नातक रेडियो कलाकार
६. प० चुन्नीलाल आर्य संगीतज्ञ
७. प० वेदव्यास संगीतज्ञ
८. पं० श्यामवीर राघव संगीतज्ञ
९. पं० ज्योतिप्रसाद आर्य ढोलक कलाकार

इसके अतिरिक्त सभा के वेद प्रचार विभाग को लगभग ८० मानद उपदेशक विद्वान, भजनोपदेशकों की सेवाएं उपलब्ध हैं, जिन्हें समय-समय पर आर्यसमाजो के कार्यक्रम सम्पन्न कराने हेतु भेजा जाता है। सभा के अधिकारी भी आर्यसमाजों द्वारा आयोजित उत्सवों, सम्मेलनों, सार्वजनिक समारोहों में भाग लेकर कार्यकर्ताओं का उत्साह बढाते हैं।

सभा के महामन्त्री जी का आर्यसमाजों के अधिकारियों से अनुरोध है कि वे अपने यहां ७ दिन या कम से कम ४-५ दिन का श्रावणी पर्व के उपलक्ष्य में वेद प्रचार का आयोजन अवश्य करें और सभा के वेद प्रचार विभाग की सेवाएं प्राप्त करें। आर्यसमाजें आयोजन रखने से पूर्व वेद प्रचार विभाग से सम्पर्क कर तिथियां अवश्य संपुष्ट करा लें।

सभा महामन्त्री ने यह भी अनुरोध किया है कि वेद प्रचार सप्ताह पर आर्यसमाजें अधिक से अधिक सहयोग राशि वेद प्रचार निमित्त सभा को भिजवायें ताकि वेद प्रचार सशक्त हो और अधिक से अधिक उपदेशक वर्ग की सेवाएं ली जा सकें।

आप सभी महानुभावों के सहयोग और प्रेरणा से ही हम अधिक से अधिक आप सबकी सेवा कर पायेंगे।

जगदीश लाल
वेद प्रचार विभाग

आर्यसमाज गांधीनगर का वार्षिक चुनाव सम्पन्न

आर्यसमाज मन्दिर, गांधीनगर, दिल्ली-३१ का वार्षिक चुनाव दिनांक १३-७-८६ को सम्पन्न हुआ। जिस में निम्न अधिकारी चुने गए—

प्रधान : श्री यदुनन्दन अवस्थी
उपप्रधान : श्री श्याम सुन्दर विरमानी,
श्री सत्यपाल भाटिया
मन्त्री : श्री शिवशंकर गुप्ता
उपमन्त्री : श्री ओमप्रकाश गुप्त,
श्री सुखदेव गुप्त
प्रचारमन्त्री : श्री रामचन्द्र गुलाटी
कोषाध्यक्ष : श्री रामपाल सिंह
पुस्तकालयाध्यक्ष : श्री शांतिस्वरूप शर्मा
आर्य वीर दल अधिष्ठाता : ओमप्रकाश

निवेदक
शिवशंकर गुप्ता
मन्त्री

पंजाब...

(पृष्ठ १ का शेष)

के हिन्दू कहानियां सुनायें। बाहर के ये हिन्दू कोई पंजाब में आकर तो अपना गुस्सा निकालेंगे नहीं। वे हमला करेंगे सिखों पर और इसमे जो आग लगेगी उस मे से खालिस्तानी रोटी आसानी से सिक जाएगी। अपने ही समुदाय के लोगो की जान से इस तरह खेलना ताकि खालिस्तान बन सके, आतंकवादियों के राक्षसी और विकृत दिमाग से परदा हटाता है। इसलिए पंजाब और पंजाब से बाहर बसे सिख समझ लें कि वे किन लोगो के साथ सहानुभूति रखते हैं या अपने धर्म के होने के कारण उनके द्वारा की जा रही हिंसा को चुपचाप देखते हैं। पुलिस और सुरक्षा सैनिकों की चौकसी के बाद भी मुक्तसर में राक्षसी हत्याकाण्ड हुआ उसका कारण केवल पाकिस्तानी हाथ ही नहीं है बल्कि सबसे बड़े मददगार हाथ स्मगलर और राजनीतिक लोग। जो पंचायत से लेकर बरनाला मन्त्रिमण्डल तक में पाये जाते हैं। यह कहना भी कठिन है कौन स्मगलर राजनीति तक है और कौन राजनीतिक आतंकवादी गतिविधियो से जुड़ा है। परन्तु कुछ पंजाब के राजनेता आतंकवादियो के साथ हाथ मिलाते एक मंच पर बैठे देखे गये। यह परिस्थितियों की ही विडम्बना है हिन्दू समुदाय निशाना बन रहा है लेकिन उग्रवादी बेखौफ हत्याएँ कर रहे हैं और कानून प्रशासन उन्हें दण्डित नहीं कर पा रहा है। बरनाला मन्त्रिमण्डल के ही कुछ मन्त्री घोषित अपराधियो के साथ खुले आम घूमते नजर आते हैं। पिछले दिनो अमृतसर में बाबा खड़कसिंह के भोग समारोह मे एक मञ्च पर हरभजनसिंह मनू और गुरचरनसिंह मनोचाल के साथ बैठे थे जिनके सिर पर ५० हजार रुपये का पुरस्कार घोषित है। मनोचाल पंथक समिति का सदस्य है और यही वह व्यक्ति है जिसने स्वर्ण मन्दिर में खालिस्तान की घोषणा की थी और जिसने अपने को अकाल तख्त का स्वयंभू मुख्य ग्रन्थी घोषित किया था। इसी भोग समारोह में उसने बरनाला के एक अन्य मन्त्री मेजरसिंह उबोके से हाथ मिलाया था। पंजाब पुलिस के एक अधिकारी का कहना है कि उग्रवादियों का पता देने का दोष पंजाब पुलिस के सिर मढ़ दिया जाता है लेकिन इन अकाली मन्त्रियों से कोई कुछ नहीं कहता। मेरा ऐसा कहना नहीं है कि छोटे तबके के कुछ अधिकारियों का उग्रवादियों से संबंध नहीं है लेकिन हम क्या कर सकते हैं जबकि उग्रवादियों की पहुंच सीधी कैबिनेट स्तर के मन्त्रियो तक है।" अब स्थिति यह है कि उग्रवादियों को राजनीतिक संरक्षण प्राप्त है। पंजाब पुलिस के कुछ तत्व भी उग्रवादियों से मिले हुए हैं। यह भी वास्तविकता है कि गांवों की सिख आबादी भी सिख उग्रवादियों को शरण देती है। आतंकवादी गतिविधियाँ निरन्तर तीव्र हैं जिस से हिन्दुओं का पलायन बड़े पैमाने पर हो रहा है। केन्द्र सरकार के दबाव से एक फर्क पड़ा है पंजाब पुलिस पंजाब सीमा मे हिन्दुओं को उग्रवादियों का निशाना बनने के लिए वापिस भेजती है या फिर उनको बेइज्जती पूर्वक तलाशी लेती है। एक पंजाब से आये व्यक्ति का ऐसा कहना है। पंजाब के हिन्दुओं के मन से प्रशासन का विश्वास उठ गया है। हिन्दुओं की मान्यता है यहां उग्रवाद का सिलसिला बन्द होने वाला नहीं है। यह ताडव जारी रहेगा यहां तक कि जो थोड़े बहुत उग्रवादी पकड़े जाते हैं वे भी बिना दण्ड पाए छूट जाते हैं। हिन्दुओं की पुलिस और न्यायालय मे आस्था समाप्त हो चुकी है। उनका कहना है कि न्यायाधीश और वकील दोनों डर के मारे उग्रवादियों को दण्डित नहीं कर पा रहे हैं। उग्रवादियो के खिलाफ कोई भी व्यक्ति गवाही देने के लिए तैयार नहीं होता। हिन्दुओं का दिल दर्द और भय से भरा हुआ है।

आज आवश्यकता है उच्च स्तर पर हिन्दुओं के पलायन की समस्या का मुकाबला करने की, हिन्दुओं के जानमाल की सुरक्षा का दायित्व बरनाला सरकार नहीं निभा पाई। १८० प्रतिशत पुलिस के जवानों मे सिपाही (सिपाही से सुपरिन्टेन्डेण्ट तक) अपनी सुरक्षा के लिए विशिष्ट हैं। वे एक हाथ से अपनी पगड़ी सम्भाल रहे हैं और दूसरे हाथ मे हथियार बड़ा सवाल आज यह है कि पंजाब मे दिल दहला देने वाली हत्याओं का सिलसिला आखिर कब तक चलता रहेगा? कुछ पागल लोगों को खून की होली खेलने की छूट कब तक मिलती रहेगी जो सरकार लोगों की जानमाल की रक्षा नहीं कर सकती उसे शासन में बने रहने का कोई हक नहीं है।

– यशपाल सुधांशु

श्री रघुनन्दनसिंह निर्मल अस्वस्थ

आर्यसमाज के पुरानी पीढ़ी के आर्योपदेशक श्री रघुनन्दनसिंह 'निर्मल' कुछ सप्ताह से अस्वस्थ चल रहे हैं। श्री निर्मल जी ने अनेक प्रसिद्ध पुस्तकें लिखी हैं। उनकी वक्तृत्व शैली एवं लेखन शैली तथा वैदिक मन्तव्यों को प्रस्तुत करने की सूझबूझ श्लाघनीय है। वे इस समय अपने घर ही चिकित्सा करा रहे हैं।

पता श्री वैद्य रघुनन्दनसिंह निर्मल नौघरा, किनारी बाजार, दिल्ली ६

R. N No. 32387/77 Post in N.D.P.S.O. on 31-7, 1-8-86 Licenced to post without prepayment, Licence No. U 139
रजि० नं० डी० (सी०) ७५२ पूर्व भुगतान बिना भेजने का लाइसेंस नं० यू १३९

निर्वाचन

करोलबाग आर्य महिला मण्डल का निर्वाचन श्रीमती तारा वेद जी की अध्यक्षता में निम्न प्रकार सम्पन्न हुआ—

प्रधाना . श्रीमती प्रकाश जी आर्या
मन्त्रिणी . श्रीमती कृष्णा रसवन्त
कोषाध्यक्षा . श्रीमती सावित्री जी कपूर

कृष्णा रसवन्त
मन्त्रिणी

आर्यसमाज नया बांस का निर्वाचन सम्पन्न हुआ जिसमे निम्न पदाधिकारी निर्वाचित हुए—

प्रधान ला० प्रेमचन्द गोयल अनाज वाले
मन्त्री . ओमप्रकाश कपडे वाले
कोषाध्यक्ष . श्री राजेन्द्र जी गोटे वाले
पुस्तकालयाध्यक्ष . श्री नन्दकिशोर आर्य

भवदीय
ओमप्रकाश
मन्त्री, आर्यसमाज नया बांस

दिनांक १३-७-८६, रविवार, प्रातः ११ बजे आर्यसमाज महर्षि दयानन्द (दाल बाजार) बाजार लुधियाना की साधारण सभा सम्पन्न हुई जिसमें १९८६-८७ का निर्वाचन किया गया। जो निम्न प्रकार है—

संरक्षक . सर्वश्री ज्ञानचन्द जी आर्य, राम जी दास अग्रवाल, प्रवीन कुमार गर्ग एडवोकेट।
प्रधान . श्री नवनीतलाल आर्य
मन्त्री . श्री बलदेवराज सेठी
कोषाध्यक्ष श्री श्रवन कुमार आर्य
पुस्तकालयाध्यक्ष श्री मास्टर राम प्रसाद जी सागड
वेदप्रचार अध्यक्ष श्री रोशनलाल आर्य

नवनीतलाल आर्य
प्रधान

हरि तृतीया पर्व

प्रान्तीय आर्य महिला सभा दिल्ली राज्य की ओर से हरि तृतीया पर्व इस वर्ष राष्ट्रीय एकता, अखण्डता के रूप में मनाने का आयोजन ९।८।१९८६ शनिवार अशोक विहार फेज-३ के पिकनिक हट मे प्रातः ११ से ४ बजे तक किया गया है।

आप से प्रार्थना है कि बृहद् यज्ञ में पृथ्वी सूक्त के मन्त्रों द्वारा आहुतियाँ अर्पित करें।

नोट : हिन्दू परिवारों की सहायतार्थ धनादि लाना भी याद रखें।

प्रकाश आर्या

वर्ष १० : ग्रक ३७ | रविवार १० ग्रगस्त, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८८ | श्रावण २०४३ | दयानन्दाब्द—१६१
मूल्य एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | ग्राजीवन २०० रुपये | विदेश मे ५० डालर, ३० पौंड

देशभर की आर्यसमाजों के नाम सार्वदेशिक सभा की अपील

१५ अगस्त, १९८६ को पंजाब बचाओ देश बचाओ दिवस मनायें

सार्वदेशिक ग्रार्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान स्वामी ग्रानन्द बोध ने समस्त ग्रार्यसमाजों एवम् ग्रार्य-सस्थाग्रो से ग्रपील की है। जिसमें उन्होंने कहा है कि हमारे देश का सीमावर्ती प्रान्त पजाब विगत पांच वर्षों से ग्रातकवादियों की हिंसक गतिविधियों का ग्रखाडा बना हुग्रा है। खालिस्तान समर्थक उग्रवादी वहां के बेकसूर ग्रल्पसंख्यक नागरिकों को ग्रपनी गोलियों का निशाना बना रहे हैं ग्रौर हमारी सरकार कोरे ग्राश्वासन देने के ग्रतिरिक्त कुछ भी नहीं कर पा रही है। जितनी बार सरकार अल्पसंख्यकों की सुरक्षा का ग्राश्वासन देती है, उग्रवादी उतनी ही बार उनकी सामूहिक हत्या कर देते हैं। ऐसी भयानक ग्रवस्था में पजाब के हिन्दू ग्रपने घर-बार तथा व्यापार ग्रादि छोड़कर वहां से पलायन करके दिल्ली, हरियाणा ग्रौर उत्तर प्रदेश मे ग्रा रहे हैं। सार्वदेशिक ग्रार्य प्रतिनिधि सभा तथा देश के समस्त राष्ट्रवादी संगठन इस घोर चिन्ताजनक स्थिति में पजाब को बचाने के लिए प्रयत्नशील हैं। ग्रतः ग्राप से निवेदन है कि—

ग्रागामी १५ ग्रगस्त, १९८६ को

ग्रखिल भारतीय स्तर पर 'पंजाब बचाग्रो देश बचाग्रो' दिवस के रूप में मनाकर देश की ग्रखण्डता ग्रौर स्वतन्त्रता की रक्षा करें। उस दिन सायंकाल ४ बजे ग्रपने-ग्रपने नगरों, कस्बों ग्रौर गांवों में पंजाब बचाग्रो जलूस निकालें। जलूस की समाप्ति पर एक सार्वजनिक सभा में निम्न प्रस्ताव पारित करके एक-एक प्रति प्रधानमन्त्री भारत सरकार, राज्य के मुख्यमन्त्री, स्थानीय जिलाधीश तथा समाचार-पत्रों को भेजें। प्रस्ताव की एक प्रति सार्वदेशिक सभा को भी भेज दें।

प्रस्ताव—

१. यह सभा विगत ५ वर्षों से पंजाब में हो रही हिंसक गतिविधियों पर गहरी चिन्ता व्यक्त करती है। हमारी मांग है कि पंजाब के सीमावर्ती तीन जिले सेना के हवाले किये जायें।

२. यह सभा प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी के उस प्रस्ताव का समर्थन करती है जो पाकिस्तान से लगी पट्टी राजस्थान, पंजाब तथा जम्मू-काश्मीर पर सीमा सुरक्षा विधेयक द्वारा सविधान में सशोधन करके आतकवाद तथा पाकिस्तानी घुसपैठ को खत्म करने के लिए कृत-सकल्प है।

३. यह सभा विपक्षी दलों से ग्रपील करती है कि देश-हित के कार्यों मे सरकार का सहयोग दे। □

राष्ट्रहित के लिए सीमा सुरक्षा विधेयक का विरोध करना अनुचित है

दिल्ली, २ अगस्त। सीमा-सुरक्षा सम्बन्धी विधेयक पर विपक्षी दलों की भूमिका के सम्बन्ध में ग्रपने विचार प्रकट करते हुए सार्वदेशिक सभा के प्रधान सुप्रसिद्ध ग्रार्य नेता श्री स्वामी ग्रानन्द बोध सरस्वती ने कहा कि लोकतन्त्र में विपक्षी दलों की सार्थकता इसी बात मे है कि वे सरकार को शासक दल के हितों से ऊपर उठकर सदा राष्ट्र हित के लिए प्रेरित करते रहें। परन्तु जब विपक्षी दल सरकार के किसी राष्ट्र हितकारी कदम का भी विरोध करने लगें तो वह केवल सकीर्ण राजनीति है, जो न लोकतन्त्र के हित में है न राष्ट्र के हित में।

सभी राष्ट्रवादी सस्थाग्रों ने देश की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय सरकार से ग्राग्रह किया था कि वह पजाब, जम्मू-कशमीर, राजस्थान ग्रौर गुजरात की पाकिस्तान से लगने वाली सीमा की रक्षा के लिए स्थायी रूप से सेना की नियुक्ति करे। इस सुझाव के महत्त्व को स्वीकार करके प्रधानमन्त्री ने सविधान मे उचित सशोधन के लिए विपक्षी दलों से बात की। तब विपक्षी दलों ने प्रधानमन्त्री को सुझाव दिया कि सविधान में सशोधन करने के बजाय ग्रौर नया 'सीमा-सुरक्षा बिल' पास करने क बजाय सविधान के २४९वें ग्रनुच्छेद के ग्रन्तर्गत सरकार को पहले से ही यह ग्रधिकार प्राप्त है इसलिए नये विधेयक की ग्रावश्यकता नही। परन्तु विपक्षी दल यह भूल गये कि २४९वा ग्रनुच्छेद केवल एक वर्ष के लिये लागू हो सकता है।

(शेप पृष्ठ ७ पर)

प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल | व्यवस्थापक—डा० गणेशीलाल | सम्पादक—पं० यशपाल सुधांशु एम० ए०

यज्ञ

(२)

लेखक—आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री, दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार

वैदिक यज्ञ कर्मकाण्ड एक प्रतीकात्मक व्यवस्था है। यह जीवन के विभिन्न स्वरूपों की बाधिका है। प्रतीक का वाह्य स्थूल स्वरूप और कुछ होता है। यज्ञ की क्रियाओं के सम्बन्ध में भी यही स्थिति है। इन यज्ञ की क्रियाओं मे एक विशेष भाव है जिसे अपने जीवन के अङ्ग बनाना है। मनुष्य के विषय में कहा जाता है कि मनुष्य अभ्यासों का समुदाय है। अर्थात् जिन क्रियाओं का प्रतिदिन अभ्यास करता है और जिन विचारों का मनन और चिन्तन करता है, वे उसके जीवन के अङ्ग बन जाते हैं। सम्भवतः इसी उद्देश्य से वैदिक मनीषि ऋषियों ने प्रतिदिन प्रातः सायं भौतिक यज्ञ करने का आदेश दिया है। ताकि प्रतिदिन की जाने वाली याज्ञिक क्रियाओं पर होने वाला निरन्तर मनन और चिन्तन यज्ञकर्ता के जीवन में मूर्तरूप धारण कर सके। यज्ञ की उन्हीं क्रियाओं में एक क्रिया है जल प्रोक्षण के पश्चात् दी जाने वाली मन्त्रों से आहुतियां। जिनमें "अग्नये स्वाहा" इससे उत्तर मे आहुति दी जाती है। तत्पश्चात् 'सोमाय स्वाहा" इससे दक्षिण में आहुति दी जाती है। यहा प्रश्न यह होता है कि ऐसा ही क्यो हो? इसके विपरीत क्यों नहीं? अर्थात् उपरोक्त वचनों मे से पहले वचन से दक्षिण में आहुति क्यों नहीं दी जाती और दूसरा वचन बोलकर उत्तर में आहुति क्यों नही दी जाती? इन में प्रथम वचन मे क्या विशेषता है जिस से कि इसका उत्तर के साथ ही सबध है और दूसरे वचन मे ऐसी कौन-सी विशेष बात है, जिसमे उसे दक्षिण के साथ ही जोड़ा जाए? चूंकि यजुर्वेद का मुख्य विषय कर्मकाण्ड है जिसकी व्याख्या उसके शतपथ ब्राह्मण में की गई है। अतः इस गुत्थी को सुलझाने के लिए हमे उस ग्रन्थ की शरण लेनी चाहिए। शतपथ ब्राह्मण में एक वचन आता है—

अग्निषोमीयं इदं जगत।

अथवा

अग्निषोमात्मक इदं जगत्।

अर्थात् यह सम्पूर्ण संसार अग्नि और सोम का समन्वित रूप है। उपनिषदों की भाषा मे इसी को 'रयि' और 'प्राण' कह दिया गया है। वैदिक प्रवचनकर्ता ऋषियों के मन्तव्यानुसार इसी को प्रकृति और पुरुष नाम दे दिया गया है। सो कैसे वह सुनिए।

पुरुष अग्नि है और प्रकृति सोम है। इन दोनों ने मिलकर समष्टि जगत् को उत्पन्न किया। मनुष्य भी अपने आप में सम्पूर्ण बनें, अपूर्ण नहो। इसी भाव को द्योतन करने के लिए ये आहुतियां उक्त क्रम से दी जाती हैं। दिशाओं को देखिए! इन में दो दिशाए अग्नितत्व प्रधान हैं और शेष दो दिशाएं शीततत्व प्रधान हैं। क्योंकि उष्ण को अग्नि और शीत को सोम कहा गया है। जिधर से सूर्य उदय होता है, वह पूर्व है। इसीलिए वेद ने कहा है—

प्राचोदिगग्निरधिपति।

इसीलिए पूर्व दिशा अग्नि तत्व प्रधान है। पश्चिम मे सूर्य अस्त होता है, रात्रि आती है; जो कि सोम कही गई है। इसीलिए पश्चिम दिशा शीततत्व प्रधान है। ठीक इसके विपरीत पूर्व दिशा दिन को जन्म देती है, जो कि उष्णत्व का प्रतीक है। इसीलिए पूर्व दिशा अग्नितत्व प्रधान है। सम्पूर्ण वर्ष मे होने वाली सूर्य की गति को "अयन" कहा जाता है और वर्ष में दो अयन होते हैं। उत्तरायण और दक्षिणायन। छः महीने उत्तरायण और छः महीने दक्षिणायन होता है। जब सूर्य थोड़ा उत्तर की ओर झुककर पूर्व से उदित होता है तब वह उत्तरायण होता है और जब इसके विपरीत दक्षिण की ओर झुका हुआ उदित होता है, तब दक्षिणायन होता है। उत्तरायण में ग्रीष्म ऋतु होती है और इसके विपरीत दक्षिणायन में शीत ऋतु होती है। उत्तर दिशा चूंकि उष्ण प्रधान है इसीलिए उत्तरायण में ग्रीष्म ऋतु होती है और दक्षिण दिशा शीततत्व प्रधान है इसीलिए दक्षिणायन में शीत ऋतु होती है। अर्थात् शरद ऋतु होती है। ऋतुओं तथा वातावरण की पूर्णता दोनों के होने में ही है। जिन स्थानों पर एक ही ऋतु होती है, वे जीवन के पूर्ण आनन्द से वंचित हैं। इस दृष्टि से भारत के निवासी महान सौभाग्यशाली हैं क्योंकि यहां पर लगभग सभी पदार्थ उत्पन्न होते हैं, क्योंकि सभी ऋतुएँ यहां पर आती हैं परन्तु अन्यत्र ऐसा नही देखा जाता। जीवन की पूर्णता दोनों के होने में ही है। सर्दी और गर्मी दोनों का होना जीवन में अत्यावश्यक है। पुष्टि के लिए शरद ऋतु और परिपक्वता के लिए ग्रीष्म ऋतु का होना जरूरी है। भौतिक पदार्थों के लिए इन दोनों का होना अत्यावश्यक है। दोनों के आये बिना यह बात नहीं बनेगी। यदि हम इसके आध्यात्मिक अभिप्राय में जायें तो जीवन की पूर्णता ज्ञान और क्रिया दोनों के होने में है। ये दोनों पृथक्-पृथक् अपने आप में अपूर्ण हैं। दोनों मिलकर सम्पूर्णता के परिचायक हैं।

इसी प्रकार दिन और रात भी पूरक ही हैं। केवल दिन के होने से ही काम नहीं चलेगा व केवल रात के होने से भी जीवन दूभर हो जाएगा क्योंकि जीवन के लिए कार्य और विश्राम दोनों की आवश्यकता है। दिन कार्य का प्रतीक और रात्रि विश्राम की बोधिका है। इसी प्रकार गार्हस्थ जीवन में पति और पत्नी का स्थान है। पति अग्नि है तो पत्नी सोम है। जैसे सूर्य अग्नि है तो चन्द्रमा सोम है। इसीलिए पुरुष और स्त्री दोनों मिलकर ही सृष्टि के सचालक हैं। एक के अभाव में दूसरा निरर्थक हो जाता है। किसी भी कार्य के लिए ज्ञान और कर्म की आवश्यकता है। बिना ज्ञान के कर्म अपूर्ण है। बिना कर्म के ज्ञान भी अपूर्ण है। आज सभी देशों में युवा और वृद्धो में झगड़े हैं। युवाओं का कहना है कि बूढ़े गद्दी नहीं छोड़ते और बूढ़ों का कहना है कि युवा लोग बिना उत्तरदायित्व के कर्म करना चाहते हैं। वास्तविकता यह है कि ये दोनों ही एक-दूसरे के अभाव में निरर्थक हैं। वृद्धों का अनुभव और जवानों की कर्मठता यदि एक-दूसरे के अनुकूल होकर चलें तो बड़े से बड़े कार्य भी सरल हो जाते हैं। जैसे अंधा लंगड़े पुरुष के बिना नहीं चल सकता और लगड़ा पुरुष अंधे व्यक्ति के बिना नहीं चल सकता। जब दोनों मिलते हैं तब लगड़ा व्यक्ति अंधे के कन्धों पर बैठ कर चलता है। अंधे की टांगें लंगड़े की टांगें बन जाती हैं और लंगड़े के नेत्र अंधे के नेत्र हो जाते हैं। एक-दूसरे के सहयोग का परिणाम है कि अंधा देखने लगता है और लगड़ा चलने लगता है।

इसी प्रकार जवानी भी अन्धी होती है। केवल जोश तो होता है परन्तु होश नहीं और इसी प्रकार बुढ़ापे में अनुभव या विवेक तो होता है परन्तु जोश नहीं। जब ये दोनों मिलते हैं तभी कार्य शिरे चढ़ता है। इसको हम यू कह सकते हैं कि जड़ और फूल की भांति। जैसे जड़ जब तक जड़ है उसमें कोई सौन्दर्य नही। उसकी सार्थकता इसमें है कि वह पौधा उत्पन्न कर फूल उगाये। यदि जड़ जड़ ही रहे तो वह महत्वहीन हो जाती है। इसी प्रकार फूल की स्थिति है। फूल को यह ध्यान रखना चाहिए कि जब तक वह जड़ के साथ अपना सम्बन्ध बनाए हुए है तब तक उसका सौन्दर्य है और जिस दिन अपने आप को जड़ से पृथक् कर लेगा धूलिसात हो जाएगा। क्योंकि अपने सौन्दर्य को बनाए रखने के लिए जड़ से उसे रस की प्राप्ति होती है और यदि फूल अपनी अवस्था से आगे न जाये अर्थात् अपने पश्चात् बीज द्वारा जड़ को जन्म न दे तो अपने सुन्दर रूप को कितने दिन बनाए रखेगा? जैसे जड़ की सार्थकता फूल पैदा करने में है, इसी प्रकार फूल का सौन्दर्य सरसता और सार्थकता, आगे जड़ को पैदा करने में है। वृद्ध पुरुष जड़ के समान होते हैं और जवान व्यक्ति फूल के समान होते हैं। यदि ये दोनों एक-दूसरे से सर्वथा पृथक् रहेंगे तो जगत् के लिए लाभकारक नहीं हैं। लाभ इसी में है कि एक-दूसरे के पूरक होकर चलें। वृद्धों का अनुभव और ज्ञान तथा जवानों की कर्तृत्व शक्ति परस्पर मिलकर चलेगी तो समाज

(शेष पृष्ठ ७ पर)

प्रेरक प्रसंग

प्रस्तोता—सत्यानन्द आर्य

: १ :

सन् १९२४ में जन्मे भगतसिंह ने "नौजवान भारत सभा" की नींव रखी। पंजाब के नवयुवकों की टोलिया की टोलियां इस झंडे तले एकत्र होने लगी। इस सभा की पहली बैठक में वीर भगतसिंह ने घोषणा की, "साथियो ! आज वह समय आ गया है कि हम सब एक होकर विदेशी शासन की जड़ों को उखाड़ फेंकें। जिस तरह महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी और हरिसिंह नलवा सरीखे असंख्य वीरों ने अपना रक्त दे-देकर अपनी जन्म भूमि की वाटिका को सींचा था और हरा-भरा रखा था, आज फिर वह दिन आ गया है कि मातृभूमि देश के नवयुवकों का बलिदान चाहती है। "हम तैयार हैं","हम सब मिटेंगे," "मातृभूमि अमर रहे" के गगन भेदी नारों से आकाश गूंज उठा। वीर भगतसिंह का हृदय उछल पड़ा। उसने खड़े होकर कहा, "भाइयो ! बातों से नहीं अपने रक्त से प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करो। "सबसे पहले वीर भगतसिंह ने अपना हाथ चीरकर कलम को रक्त से भिगोकर हस्ताक्षर किए। फिर सुखदेव और भगवतीचरण ने भी वैसा किया। अन्य नवयुवकों ने अपने रक्त से हस्ताक्षर किए।

: २ :

देश भक्त रासबिहारी बोस जापान में निर्वासित जीवन बिता रहे थे। रात्रि में सोते समय वे सदैव दक्षिण-पश्चिम की तरफ मुंह करके सोते थे। जापान में इस दिशा की तरफ सोना बड़ा अशुभ माना जाता है। जब कई मित्रों ने उनसे इस संबंध में शिकायत की, तब रासबिहारी बोस ने उत्तर दिया,"भाई, दक्षिण-पश्चिम की दिशा में मेरी मातृ भूमि भारत है। इस दिशा में मुंह करके सोने के पीछे मेरा उद्देश्य यह है कि मैं रात भर अपनी मातृ भूमि की गोद में सोता हूं। जागते हुए तो मैं उसे पा नहीं सकता, किन्तु सोते हुए मैं तो अपनी मातृभूमि को अवश्य पा लेता हूं।"

: ३ :

नौजवान भारत सभा का डंका पूरे भारतवर्ष में बजने लगा। अंग्रेजी शासन की आंखों में इसकी प्रगति खटकने लगी। सरकार ने अपने गुप्तचरों को इस सभा में भेजना चालू कर दिया ताकि वे इस सभा की गतिविधियों की रिपोर्ट सरकार को देते रहें। भगतसिंह व उसके साथियो को इस बात का आभास मिला। अतः एक बार बहुत कठिन परीक्षा लेने का प्रबन्ध किया गया। छह मोमबत्तियां एक दूसरे के साथ-साथ खड़ी करके जला दी गई। सबसे पहले सरदार भगतसिंह ने अपना हाथ आगे बढ़ाया। बीस मिनट तक अपना हाथ उन जलती हुई मोमबत्तियों पर रखे रहा, जिससे उसका रक्त और मांस जल-जलकर गिरने लगा, फिर भी उसने हाथ नहीं हटाया। यह देख उसके साथियों ने बलपूर्वक उसका हाथ खींच लिया। इस बीच नकली सदस्यों का हृदय कांप गया और वे धीरे-धीरे खिसक गये और पकड़ लिये गये।

: ४ :

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस आई. सी. एस. पास कर जब भारत आये तो उन्हें वहाँ एक लिखित परीक्षा में बैठना पड़ा। परीक्षा के समय उन्होंने जब प्रश्न पत्र देखा तो उनकी भौंहें तन गई। उसमें अनुवाद के लिए एक अंश था—इण्डियन सोल्जर्स आर जनरली डिसआनेस्ट। भारतीय सैनिक सामान्यतः बेईमान होते हैं।

परीक्षार्थियों को इसका अपनी अपनी मातृभाषा में अनुवाद करना था। सुभाष बाबू ने इस प्रश्न का विरोध किया और निरीक्षकों से कहा, "आप इस प्रश्न को काट दीजिए"। यह प्रश्न आवश्यक रूप से रखा गया है, काटा नहीं जा सकता। यदि आप इसे हल नहीं करेंगे तो इतनी बड़ी नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा।

निरीक्षक की यह बात सुनकर सुभाष बाबू तिलमिला उठे और प्रश्न पत्र फाड़ते हुए बोले, "यह रही तुम्हारी नौकरी। अपनी मातृ भूमि के लोगों पर कलंक सहने से भूखे रहना कहीं ज्यादा बेहतर है। मुझे नहीं चाहिए ऐसी नौकरी।" और वह परीक्षा भवन से बाहर आ गये।

: ५ :

बहुत पहले की बात है, बंकिम की नियुक्ति यशोहर नामक स्थान पर हुई थी। एक दिन वह अपनी पालकी में बैठकर कहीं जा रहे थे। रास्ते में पालकी एक पार्क से होकर गुजरी। पार्क में कुछ अंग्रेज अधिकारी क्रिकेट खेल रहे थे।

किसी भारतीय की पालकी पार्क में देखकर अंग्रेज को गुस्सा आ गया। उसने पालकी को पैर से ठोकर मार दी। स्वाभिमानी बंकिम इस घटना से बहुत प्रभावित हुए। वह पालकी से उतरकर ठोकर मारने वाले अंग्रेज अधिकारी की ओर लपके, लेकिन उन्हें अपना क्रोध शान्त कर लेना पड़ा। ठोकर मारने वाला व्यक्ति उनका ही अधिकारी ब्रेनविज था। बंकिम घर चले आए, पर वह अपना अपमान भूल न सके।

अगले ही दिन उन्होंने ब्रेनविज पर मानहानि का मुकद्दमा दायर कर दिया। विभाग के अधिकारियों ने बंकिम से मुकद्दमा वापस लेने को कहा। ऐसा न करने पर नौकरी से निकाल देने की धमकी दी, लेकिन बंकिम नहीं माने।

अन्त में ब्रेनविज को भरी अदालत में बंकिम से क्षमा मांगनी पड़ी। ऐसे थे बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय। वह अपने जीवन काल में किसी के सामने नहीं झुके। किसी का अपमान नहीं सहा।

: ६ :

लाहौर से स्वामी दयानन्द जी महाराज अमृतसर पधारे और सरदार भगवानसिंह के मकान में ठहरे। पण्डितों ने इस बार भी विरोध किया एक दिन सात-आठ पण्डित तिलक लगाये हुए चेलों सहित शास्त्रार्थ करने के लिए आये और अकड़ कर स्वामी जी के सामने बैठ गये। शास्त्रार्थ तो उन्हें क्या करना था, चेलों ने ईंट पत्थर फेंकने प्रारम्भ कर दिये सभा स्थान को धूलि वर्षा से धूलसरित बना दिया। महाराज के इस अपमान को देखकर भक्तजन कुंठित हो उठे। उन्हें शान्त करते हुए स्वामी जी ने कहा—मदिरा से उन्मत्त जनों पर क्रोध नहीं करना चाहिए। हमारा काम वैद्य का है। उन्मत्त मनुष्य को वैद्य औषध देता है। निश्चय जानिये आज जो लोग मुझ पर ईंट, पत्थर और धूल बरसाते हैं, वही लोग कभी पुष्प वर्षा करने लग जायेंगे।

: ७ :

यह उन दिनों की बात है, जब भारत में अंग्रेजों का शासन था। उत्तर प्रदेश के गवर्नर सर माल्कम हेली ने मुंशी प्रेम चन्द को सन्देश भिजवाया कि वह उन्हें "राय साहब का खिताब देना चाहते हैं।

इस समाचार से प्रेमचन्द जी चिन्तामग्न हो गए। जब उनकी पत्नी ने इसका कारण पूछा तो बोले, "गवर्नर साहब मुझे "राय साहब की उपाधि देने के लिए बुला रहे है।"

"तो इसमें चिन्ता की क्या बात है?" पत्नी ने कहा। "यह तो अच्छी बात है, ले लीजिए"। फिर कुछ देर रुककर वह पूछ बैठी, "अरे हां, सिर्फ खिताब ही देना चाहते हैं, या कुछ और भी ?"

"इशारा तो कुछ और भी देने की ओर है, प्रेमचन्द जी ने चिन्तित मुद्रा में ही जवाब दिया।

"तो फिर क्या सोच रहे हैं? जाकर शीघ्र ले आइये।"

यही चिन्ता तो मुझे परेशान कर रही है, "प्रेमचन्द जी ने बात स्पष्ट की, "तब मैं आम जनता का आदमी न रहकर सरकार का पिट्ठू बन जाऊंगा।"

"वह कैसे ?" उनकी पत्नी ने प्रश्न किया।

"अब तक मैंने जो कुछ भी लिखा है जनता के लिए लिखा है, और जो कुछ भी लिख रहा हूँ वह भी जनता के लिए ही है।"

'राय साहब बन जाने के बाद जनता के लिए न लिखकर सरकार के लिए लिखना पड़ेगा"।

"ऐसी बात है ? लेकिन गवर्नर साहब को क्या उत्तर दीजिएगा। कहीं वे नाराज हो गए तो ?" पत्नी ने आशंका प्रकट की।

पत्नी की सहमति मिलते ही प्रेमचन्द जी मुस्कराते हुए बोले, गवर्नर साहब को लिख देता हूँ कि "जनता की राय साहबी" तो कर सकता हूँ, सरकार की नहीं।

"नतीजा बाद में देखा जाएगा।"

एक प्रश्न ?
हिन्दू गौ को माता क्यों कहते हैं ?
भैंस और बकरी को क्यों नहीं कहते ?

लेखक—विश्वम्भर आर्य

★

यह प्रश्न मुझ से कुछ मुसलमान मित्रों ने पूछा था। उन्हे मैंने बताया कि मुसलमानों को तो पहले गौ को माता मानना चाहिए क्योंकि दूध पिलाने से ही अपनी माँ को माता मानते हैं। गौ तो हिन्दू मुसलमान ईसाई सबों की माता है। क्योंकि ईश्वर के विधान के अनुकूल नारी और गौ के आचरण बहुत मिलते हैं।

(१) जितनी मात्रा में माता के दूध में विटामिन मिलते हैं उतनी ही गौ के दूध में मिलते हैं।

(२) नारी बच्चे को अपने गर्भ में नौ से दस महिने तक रखती है। इसी तरह गौ भी बच्चे को रखती है। भैंस साढ़े दस से ग्यारह महीने तक तथा बकरी पाँच से छः महीने गर्भ में रखती है।

(३) यदि कोई नारी बच्चे को जन्म देकर उसी समय मर जाए तो गौ का दूध पिलाकर बच्चे को पाल लेंगे लेकिन भैंस का दूध पिलाने से बच्चा मर जायगा। बकरी का दूध पिलाकर बच्चा पाला जा सकता है लेकिन वह कमजोर और कायर होगा।

(४) किसी जगल में गाय और उसके चरते हो और शेर निकल आये तो गाय बच्चे से पहले अपनी जान दे देगी लेकिन बच्चे पर आँच नहीं आने देगी। इसके विपरीत भैंस और उस का बच्चा चरता हो और कोई शेर निकल आये तो भैंस बच्चे को छोड़कर भाग जायगी अगर किसी नारी के बच्चे की जान को खतरा हो तो वह अपनी जान देकर उसकी रक्षा करेगी।

(५) किसी नदी में गाय की पूंछ आप पकड़ लें वह आपको भवसागर पार कर ही देगी लेकिन भैंस की पूंछ पकड़ कर पार होना चाहेंगे तो वह बीच में जाकर आपको डुबो देगी।

परमात्मा ने नारी और गौ के अंदर करीब समान सृष्टि की है। गर्भ में रखने का समय, दूध के अंदर पूर्ण विटामिन, प्रेम और ममता सभी सभी बातें समान रूप से दी हैं इसलिए गौ सारे विश्व वासियों की माता है। पुत्र को चाहिए जिस देश में गौ माता की हत्या हो वहाँ की सरकार से विरोध करें और गौ माता की रक्षा करें।

महापुरुषों ने गौरक्षा के लिए क्या कहा

१. महर्षि दयानन्द सरस्वती ने कहा कि—गौ आदि पशुओं के नाश होने से राजा और प्रजा सबका नाश होता है। यह सत्य है विश्व में कहीं सुख शान्ति नहीं है। सरकार और जनता दोनों मँहगाई से चिन्तित हैं।

२. श्री गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज ने तो गौ और देश की रक्षा के लिए ही खालसा सजाया था। इसी उद्देश्य के लिए उन्होंने सर्वस्व दान दिया।

'यहि देहु आज्ञा तुर्क को खपाऊँ, गौघात का दुख जग से हटाऊँ।

३. बाईबिल में वृषभ को देवता माना गया है। ओल्ड टेस्टामेन्ट में गौ और गौ के दूध के सम्बन्ध मे कई स्थानो पर वर्णन आया है। ईसा मसीह ने तो यहाँ तक स्पष्ट लिखा है—तु किसी को मत मार, तू मेरे समीप पवित्र होकर रह। जगलों के प्राणियों का वध करके उनका मांस मत खा—क्राइस्ट।

४. स्वय मुहम्मद साहब ने गाय की कुर्बानी ही की और न आज तक मक्के शरीफ में नहीं गाय की कुर्बानी होती है। कुरान शरीफ के सूर-ए-हज में लिखा है—हरगिज नहीं पहुँचेंगे अल्लाह के पास उसके गोस्त और खून हाँ! पहुँचती है उसके पास तुम्हारी परहेजगारी।

५. महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी महाराज ने अपनी वाणी और शस्त्रों से गौ रक्षा की ध्वनि देश में गुँजाई थी।

६. लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, सरदार भगतसिंह, स्वामी श्रद्धानन्द, रामप्रसाद बिस्मिल आदि क्रान्तिकारी शहीद गोहत्या बन्द देखना चाहते थे।

७. पूज्य बापूजी ने कहा था कि 'गौरक्षा' स्वराज से भी महत्वपूर्ण है।

८. महादेव के नन्दा (बैल) गोपाल की गैया कट रही है। कितनी लज्जा और कलंक की बात है कि स्वतंत्र भारत में गोहत्या बन्द नहीं हुई।

"राम कृष्ण के भक्त तब कहलायेंगे जब आप गोहत्या बन्द करायेंगे।।"

९. एक प्रश्न आता है। अगर गोहत्या बन्द कर दी गई तो कसाई क्या करेंगे? पंजाब में सरकार ने हुक्म दिया किया क्रीम खोये बनाना बन्द करो, क्या सरकार ने सोचा इन लाखों क्रीम खोये बेचने वालों का क्या होगा। गोल्ड कन्ट्रोल के समय क्या सरकार ने सोचा इन स्वर्णकारों का क्या होगा।

विनाशकाले विपरीत बुद्धि'। लोग चमड़े के सामान को महत्व दे रहे है जीवन रक्षा करने वाले पूर्ण विटामिन युक्त अमृतमय दूध को भूल रहे हैं। हिन्दू मुस्लिम, ईसाई अपने इष्ट देवों की वाणी के अनुसार कर्त्तव्य करें। एवं सरकार से कानून बनाकर गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगाने की माँग करें। 卐

कवित्त

शर्तें

यदि चाहते हो देश को बनाना महान।
करना होगा तुम्हें बलिदान।
छोड़ना होगा आलस्य मिथ्याभिमान।
अपनाना होगा श्रम ईमान।
चुनना होगा देशभक्ति का मार्ग।
त्यागना होगा विघटन का कुमार्ग।
स्थापित करना होगा वैदिक समाजवाद।
मिटाना होगा विषमता का राज।।

राम की सच्ची पूजा

दिन में कई बार राम राम दोहराते हो!
सोते जागते में राम का नाम लेते हो।
प्रायः अखण्ड रामायण कराते हो।
रामभक्ति का प्रदर्शन कराते हो।
पर उनका आदर्श न जीवन मे अपनाते हो
उनकी तरह न धर्मात्मा बन जाते हो।
न पतितों को गले से लगाते हो।
न अत्याचारियों मे भिड जाते हो।
कैसे मानें तुम राम के भक्त हो।
उनकी तरह दुष्टों के विरुद्ध हो।।

उनका क्यों न दमन कर रहे है

कश्मीर मे देशभक्त मिट रहे हैं।
पंजाब में देश के लाल कट रहे हैं।
लंका में भारतवंशी मर रहे हैं।
देश मे साम्प्रदायिक दंगे हो रहे हैं।
आतकवादी गजब ढा रहे हैं।
राष्ट्र के सम्मान के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं।
पता नहीं आप क्या कर रहे हैं?
उनका क्यों न दमन कर रहे हैं?

सम्पादक के नाम पत्र—

अल्पसंख्यक लोगों का बहुसंख्यक लोगों पर जुल्म

श्रीमान् जी,

निवेदन यह है कि भारतवर्ष में हिन्दू हमेशा से बहुसख्यक रहे हैं। जबकि सिख और मुसलमान हमेशा से अल्पसंख्यक रहे हैं। परन्तु जो तमाशा भारतवर्ष में देखने को मिल रहा है वह अन्य कहीं दुर्लभ है। यह तो सुनने मे आया था कि बहुसख्यक अल्पसंख्यको को तग करते हैं। पर यहाँ पर यह तमाशा देखने को मिलता है कि अल्पसंख्यक बहुसख्यक को तंग करते हैं। अभी काश्मीर मे देखने को मिला कि अल्पसंख्यक मुसलमानो ने बहुसंख्यक हिन्दुओं पर जुल्मो सितम किया उनके घर जला दिए, औरतो का अपहरण कर लिया व उनको देश छोड़ने पर मजबूर किया। इसी प्रकार मुसलमान अल्पसंख्यक होते हुए भी जिस जगह अपना जोर समझते हैं। राम जन्म भूमि के सिलसिले में हिन्दुओं पर आक्रमण कर दिया। तीसरी बात जो देखने को मिल रही है, सिखों द्वारा अत्याचार। यह लोग अल्पसख्यक होते हुए बहुसंख्यक हिन्दुओं पर जुल्मो सितम कर रहे हैं। वे लोग आतकवादी होने का बचन करके हिन्दुओं को चिट्ठियां लिख रहे हैं कि वे लोग पंजाब छोड़ कर कहीं और चले जायें वर्ना वे लोग उनकी जमीन व जायदाद हड़प कर लेंगे और उन की औरतों का अपहरण कर लेंगे। अब आप ही बतलाइए कि जो लोग बहुसंख्यक होते हुए भी अल्पसंख्यक लोगों से पिटते हैं। इसका कारण मेरी समझ में हिन्दुओं में संगठन की कमी ही है जो कि जरूर होना चाहिए।

जयदेव गोयल, पत्रकार कीन्ज

हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने का प्रमुख साधन : भर्ती परीक्षाओं में हिन्दी की सुविधा

लेखक—श्री जगन्नाथ
संयोजक, राजभाषा कार्य, केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद
एक्स. वाई-६८, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली-११००२३

माननीय राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह जी अनेक अवसरों पर हिन्दी को उचित स्थान न दिए जाने के विषय में अपनी वेदना प्रकट कर चुके हैं। ३१ मार्च, १९८५ को पंजाब विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में अपना भाषण देते हुए उन्होंने हिन्दी के अपनाने तथा देशभर में राष्ट्रभाषा हिन्दी को सम्मान दिलाने पर बल दिया। उन्होंने कहा कि सभी कार्यालयों और शिक्षण संस्थाओं में हिन्दी के प्रचलन पर जोर दिया जाए और हिन्दी को उसी प्रकार सम्मान दिया जाए जिस प्रकार जर्मन, चीनी और रूसी अपनी-अपनी भाषाओं को दे रहे हैं। उन्होंने आजादी के इतने वर्ष बाद भी अंग्रेजी का बोलबाला होने पर अपनी अप्रसन्नता व्यक्त की थी। इसी प्रकार की टीस और वेदना अनेक राष्ट्रनेता और राष्ट्रहितैषी अनेक बार प्रकट करते रहे हैं। राष्ट्रपति जी ने अपने उच्च स्तर से हिन्दी के पक्ष में आवाज उठाकर राष्ट्रीय मांग को आवाज दी है। फिर भी हिन्दी को वह स्थान नहीं मिल पा रहा जो उसे मिलना चाहिए। प्रस्तुत लेख में इस विकट स्थिति के होने के प्रमुख कारण केन्द्र सरकार की भर्ती परीक्षाओं में हिन्दी के न होने पर विचार किया जाएगा।

संसदीय संकल्प को कार्यरूप न दिया जाना

२. भारतीय संविधान के अनुसार हिन्दी को २६ जनवरी, १९६५ से केन्द्रीय सरकार की एकमात्र राजभाषा बन जाना चाहिए था। किन्तु भाषा के विषय को लेकर देश के कुछ स्थानों पर हुए झगड़े के कारण भारत सरकार ने भाषा सम्बन्धी १९६३ के अधिनियम में १९६७ में एक संशोधन किया जिसका एकमात्र उद्देश्य यह था कि अंग्रेजी को केन्द्र सरकार के कामकाज में उसी प्रकार प्रयोग में लाया जाता रहे जिस प्रकार कि यह पहले लाई जाती रही है। साथ ही हिन्दी को केन्द्र सरकार की एक प्रमुख राजभाषा के रूप में लाए जाने की छूट रहे। इस प्रकार केन्द्र सरकार में द्विभाषी स्थिति रखने की योजना कार्यान्वित हुई। उसी समय १९६७ में संसद के दोनों सदनों द्वारा एक संकल्प स्वीकार किया गया जिसे १८ जनवरी, १९६८ को गृह मंत्रालय द्वारा राजपत्र में प्रकाशित किया गया। यह संकल्प एक प्रकार से उस समझौते के आधार पर था जिसके अनुसार दोनों भाषाओं को केन्द्र सरकार में चलाने का निश्चय किया गया था। इसके पैरा ४ के अनुसार संघ सेवाओं या पदों के लिए भर्ती करने हेतु आवेदकों के चयन के समय हिन्दी अथवा अंग्रेजी में से किसी एक का ज्ञान अनिवार्य रूप से अपेक्षित था केवल एक ही अपवाद रखा गया था और वह यह कि यदि कुछ विशेष सेवाओं या पदों के लिए दोनों भाषाओं का ज्ञान होना आवश्यक है तो उनके लिए आवेदकों को दोनों भाषाओं का जानना अनिवार्य होगा। (उदाहरण के लिए अनुवादकों के पद) संकल्प के इस पैरे में यह भी निश्चय किया गया था कि केन्द्र सरकार की अखिल भारतीय उच्चतर सेवाओं सम्बन्धी परीक्षाओं के लिए संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित सभी भाषाओं तथा अंग्रेजी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में रखा जाएगा।

३. अब इस देश का दुर्भाग्य ही समझिए कि संसद के इस निश्चय को भी पूरे रूप से कार्यरूप नहीं दिया गया। लिपिक श्रेणी से लेकर उच्चतम श्रेणी के लिए ली जाने वाली परीक्षाओं में, एक दो अपवादों को छोड़कर, अंग्रेजी भाषा अभी भी अनिवार्य है। यही नहीं, अपितु हिन्दी को उसके साथ-साथ भी अनिवार्य नहीं किया गया, उसके विकल्प की बात तो दूर रही। इसका अर्थ यह हुआ कि देश का एक युवक हिन्दी अथवा अपनी मातृभाषा यदि न भी जाने तो भी भारत सरकार की अनेक परीक्षाओं में सफल होकर उच्च पद प्राप्त कर सकता है। किन्तु यदि वह देश की और विदेश की सभी भाषाओं को सीख जाए किन्तु अंग्रेजी न जाने तो भारत सरकार में लिपिक भी नहीं बन सकता। इसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि जब रोटी-रोजी के साथ अंग्रेजी जुड़ गई है तो स्कूलों और विश्वविद्यालयों में पुनः अंग्रेजी माध्यम कराए जाने की मांग उठने लगी है। गली-गली में तथाकथित अंग्रेजी माध्यम के पब्लिक स्कूलों की दुकानें खुलती जा रही हैं।

क्या स्थिति पूरी निराशाजनक है ?

४. कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि स्थिति एकदम निराशाजनक है। देश की अनेक संस्थाओं और राष्ट्र प्रेमियों ने संसद के इस संकल्प को कार्यरूप दिलाए जाने के लिए भगीरथ प्रयत्न किया है। उस का किसी हद तक अच्छा परिणाम भी निकला। संघ लोक सेवा आयोग के कार्यकलापों पर विचारार्थ सरकार ने जो कोठारी आयोग बैठाया था उसे सैकड़ों ज्ञापन इस प्रार्थना के साथ मिले कि संघ लोक सेवा आयोग की भर्ती परीक्षाओं में हिन्दी तथा देश की अन्य भाषाओं को भी समुचित स्थान दिया जाए। इस आयोग के सामने मैं, जो उस समय केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद का महामन्त्री था, परिषद के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित हुआ था। पत्रकारों की ओर से श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी और प्रसिद्ध पत्रकार श्री अक्षय कुमार जैन तथा दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से श्री गोपाल प्रसाद व्यास भी आयोग के सामने उपस्थित हुए। इन चारों की कोठारी आयोग के सदस्यों तथा संघ लोक सेवा आयोग के सभी सदस्यों के साथ लगभग ढाई घण्टे बातचीत हुई और वह इस बात में सहमत हुए कि हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं को भी संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं में उचित स्थान दिया जाए। इसका परिणाम यह हुआ कि अब पिछले कुछ वर्षों से संघ लोक सेवा आयोग द्वारा भारतीय प्रशासनिक सेवा आदि की उच्च स्तर की लगभग ३० सेवाओं में अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाएं भी अनिवार्य कर दी गई हैं। एकमात्र अपवाद नागालैण्ड आदि स्थानों के आवेदकों के लिए रखा गया है जिनके लिए अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ कोई भारतीय भाषा लेना जरूरी नहीं है। परीक्षा के अन्य व्यावसायिक प्रश्नपत्रों के उत्तर किसी भी भारतीय भाषा में दिए जाने का विकल्प भी दे दिया है। फलस्वरूप अब भारतीय भाषाओं के माध्यम से भारतीय प्रशासनिक सेवाओं आदि की प्रतियोगिताओं में बैठने वाले विद्यार्थियों का प्रतिशत लगभग १५ रहता है जिसमें हिन्दी माध्यम से परीक्षा देने वालों का प्रतिशत लगभग १२ रहता है।

५. हाल ही में भारत सरकार के कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा विभाग के अन्तर्गत कृषि वैज्ञानिक नियुक्ति मण्डल द्वारा जो उच्च स्तर की कृषि वैज्ञानिक अनुसंधान सेवा में भर्ती के लिए प्रतियोगिता परीक्षा ली जाती है और जिसमें बैठने की न्यूनतम योग्यता एम० एससी० है, उस में सामान्य ज्ञान और निबन्ध के प्रश्नपत्रों के अतिरिक्त व्यावसायिक प्रश्नपत्रों में भी हिन्दी के प्रयोग की सुविधा दे दी गई है। इसी प्रकार साधारण जीवन बीमा निगम ने भी सहायक प्रशासनिक अधिकारियों के वर्ग में नियुक्ति हेतु ली जाने वाली प्रतियोगिता परीक्षा में हिन्दी के वैकल्पिक प्रयोग की सुविधा दे दी है। केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग द्वारा कनिष्ठ इंजीनियरों की भर्ती परीक्षा के सभी प्रश्नपत्रों में हिन्दी का विकल्प दिया जा चुका है। इसी प्रकार की सुविधा भारतीय मानक संस्थान ने भी अपनी परीक्षाओं में दी हुई है।

६. हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से बैठने वाले अनेक विद्यार्थी पिछली प्रतियोगिताओं में सफल भी हुए हैं और उनकी नियुक्तियां भी हो गई हैं। जैसे जैसे मूल रूप से हिन्दी माध्यम से सफल प्रतियोगी अधिकारियों के रूप में नियुक्त होते जा रहे हैं, वे अपना कामकाज हिन्दी में करने लगे हैं और कार्यालयों में हिन्दी के पक्ष में एक अनुकूल वातावरण बनता जा रहा है। अंग्रेजी भाषा के प्रश्नपत्र को छोड़कर लिपिक, सहायक अनुभाग अधिकारी आदि की अन्य परीक्षाओं के प्रायः सभी प्रश्नपत्रों में हिन्दी के वैकल्पिक प्रयोग की सुविधा दे दी गई है। उनमें भी काफी अधिक संख्या में परीक्षार्थी हिन्दी के वैकल्पिक प्रयोग की सुविधा का लाभ उठा रहे हैं। जैसे-जैसे ऐसे सफल परीक्षार्थी कार्यालयों में कार्य करने लगे हैं हिंदी के प्रयोग की स्थिति अनुकूल होती जा रही है। किन्तु अंग्रेजी भाषा के एक अनिवार्य प्रश्नपत्र के होने के कारण, और उसमें हिन्दी भाषा का विकल्प न होने से, अंग्रेजी माध्यम से परीक्षा देने वालों को विशेष सुविधा हो जाती है। इस प्रकार हिंदी माध्यम से सफल होने वालों का प्रतिशत उतना नहीं हो पाता जितना कि यह अन्यथा होता।

(...क्रमशः)

समाचार

अत्यन्त दुःखद समाचार

महर्षि दयानन्द जी द्वारा संस्थापित उनके उत्तराधिकारी के रूप में न्यास श्रीमती परोपकारिणी सभा अजमेर के मन्त्री श्री श्रीकरणशारदा का स्वर्गवास कलकत्ता मे २० जुलाई को हो गया। यह दुःखद समाचार तार द्वारा अजमेर से श्री सतीशचन्द्र शुक्ला द्वारा प्राप्त हुआ। श्री श्रीकरण जी शारदा अपने सुयोग्य पिता श्री चावकरण शारदा के सुयोग्य पुत्र थे। यह आर्य नेता परोपकारिणी सभा के बहुत वर्षों से निरन्तर मुख्यमन्त्री चले आ रहे थे। इन्होने सभा तथा आर्यसमाज की जीवनभर प्रशसनीय सेवा की। अपने स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए परोपकारिणी सभा को उन्नति के लिए दिन-रात निष्काम भाव से लगे रहते थे। इनके सेवाकाल में महर्षि दयानन्द जी महाराज की निर्वाण शताब्दी सारे आर्यजगत् ने मिलकर बड़ी धूमधाम से अजमेर में मनाई। इन्ही के पुरुषार्थ से ऋषि उद्यान में विशाल यज्ञशाला का निर्माण हुआ और बहुत से ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। लाखो की सख्या मे भारत ही नही देश-देशान्तर, द्वीप-द्वीपान्तरों से लाखों की सख्या मे श्रद्धालु आर्य भाई-बहिन आये। सब के निवास भोजन आदि की व्यवस्था बहुत अच्छी की गई। सबके मुख से यही निकला कि यह शताब्दी महोत्सव "भूतो न भविष्यति" लोकोक्ति के अनुसार इतनी अच्छी प्रकार से सफल हुआ। आर्यजनता ने श्रद्धा से मुक्तहस्त होकर दान दिया जो ३० लाख से अधिक था। न चाहते हुए भी विरोधियों को इस का प्रशसा मुक्त कण्ठ से करनी पड़ी।

भारत की भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी जी ने जब इस महोत्सव का उद्घाटन किया तो वह भी आश्चर्यचकित रह गयी कि आर्यों का कितना विशाल सगठन है। यह तो अवश्यम्भावी है ससार में जो आया है उसे जाना ही है किन्तु जाने वाले अच्छे कार्यकर्ताओं के स्थान की पूर्ति नही होती। उनका अभाव सब को खटकता ही रहता है। जीवनकाल मे हम सहयोग के स्थान पर विरोध ही करते रहते हैं। मृत्यु के पीछे गुणों का गान करते हैं। शारदा जी के देहान्त का सबसे अधिक दुःख मुझे हुआ क्योंकि वे अस्वस्थ होते हुए भी सभा के काम को संभालते रहते थे और मुझे निश्चिन्त रखते थे। अब उनके स्थान पर मन्त्री के उत्तरदायित्व का कार्य कौन संभालेगा? यह एक चिन्ता का विषय है। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को सद्गति एव पारिवारिकजनों को शान्ति प्रदान करे।

—ओमानन्द सरस्वती
प्रधान, परोपकारिणी सभा

आवश्यक सूचना

वैदिक सिद्धान्तो के महान प्रचारक तथा दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के उपदेशक श्री डा० रघुनन्दन सिंह (कविराज रघुनन्दन सिंह 'निर्मल') डेढ मास से अत्यन्त रुग्ण हैं। उन की अवस्था चिन्तनीय है। जो सज्जन मिलना चाहें वे निम्न पते पर जाकर उन से मिल सकते हैं।

डा० रघुनन्दन सिंह
१९८८, नौघरा, किनारी बाजार
दिल्ली-६

स्वर्गीय श्री रलाराम जी तलवार को श्रद्धांजलियां

१७ जुलाई, १९८६ को आर्यसमाज, पंजाबी बाग, नई दिल्ली के खचाखच भरे हाल में पूज्य रलाराम जी तलवार की स्मृति में श्रद्धांजलि यज्ञ सम्पन्न हुआ। उनका देहावसान ५ जुलाई को ९० वर्ष की आयु मे हुआ था। यज्ञ मे उनके छः मे से चार पुत्र तथा अनेक सम्बन्धी उपस्थित थे। सबसे छोटे दो पुत्र विदेशों—लीबिया व लन्दन से अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण न आ सके थे। हवन-यज्ञ में सब पुत्रों ने अलग-अलग आहुति डाली और अन्त मे सिरों पर पगड़ी बाध कर पूज्य पिता जी के उत्तरदायित्वों को संभालने एवं उनके "सच्चे और सुच्चे" जीवन के आदर्शों पर चलकर परिवार तथा धर्म-देश-जाति की सेवा का सकल्प लिया। अपने विदेशी भाइयो से फोन पर हुई बातचीत के आधार पर पुत्रों ने यह घोषणा भी की कि वे पूज्य पिता व २ वर्ष पहले ८२ वर्ष की आयु में दिवगत माता कर्मदेवी की पुण्य स्मृति मे एक ट्रस्ट का निर्माण करेंगे।

सभा में यज्ञ का संचालन श्री पं० रामाश्रय, पुरोहित आर्यसमाज पंजाबी बाग, ने बड़े शांत वातावरण में किया। स्वामी स्वरूपानन्द जी ने गीत द्वारा मृत्यु की अवश्यम्भाविता एव प्रभु के स्मरण की बात कही। दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डा० महेश, सार्वदेशिक आर्य वीर दल के प्रधान सचालक श्री बालदिवाकर हंस एवं दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के महामन्त्री डा० धर्मपाल आर्य ने पिता जी से अपने मेल की चर्चा करते हुए उनके सन्तोषमय जीवन एवं सरल स्वभाव व तप-त्याग का अभिनन्दन किया, कहा कि पुलिस की नौकरी लगभग ३५ वर्ष तक करते हुए भी उन्होंने सिगरेट तक नही छुई। जब उनके दूसरे पुत्र प्रि० ओम्प्रकाश तलवार ने १९६८ मे ३/४५ ए, पजाबी बाग मे अपना मकान बनाया, तो वे गुरुदासपुर से दिल्ली आ गए। ३ वर्ष पहले उन की टाग टूट जाने से पहले वे खूब चलते-फिरते थे और अपने सात्त्विक जीवन की सुगन्धि फैलाते थे।

आर्यसमाज पजाबी बाग के प्रधान, श्री सत्यानन्द जी शास्त्री, जो उनके चचेरे भाई भी हैं, ने भावभीनी श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए कहा कि अन्त वेले तक उनकी आवाज में कड़क थी। वृक्ष अपने फल से पहचाना जाता है। उनकी सन्तान—एक पुत्री व छः पुत्र सभी योग्य हैं और अपने-अपने धन्धे सम्पन्नता से करते हुए दिल्ली व लन्दन में आर्यसमाज की सेवा कर रहे हैं। उनकी सेवा राजाओं की तरह हुई और वे कर्त्तव्यनिष्ठता की ऊची भावना का सन्देश देकर प्रभु की गोद में विलीन हो गए।

श्रद्धांजलि सभा मे उपस्थित होने वालों में सर्वश्री स्वामी सच्चिदानन्द, श्री सोमनाथ मरवाह, प० पृथ्वीराज शास्त्री, राजेन्द्र दुर्गा, प्रि० रामदास खोसला, लाजपतराय, श्री सुरेन्द्रकुमार हिन्दी तथा अनेकों समाजों के प्रधान व मन्त्री तथा अनेक विद्यालयों के प्रिंसिपल एव अध्यापक सम्मिलित थे।

राजेन्द्र दुर्गा
मन्त्री
आर्य केन्द्रीय सभा

निर्वाचन

आर्यसमाज गुरु तेग बहादुर, हडसन लाइन का निर्वाचन निम्न प्रकार सम्पन्न हुआ—

प्रधान : श्रीमती कृष्णा पाहवा
महामन्त्री : श्री ठाकरदास सपड़ा
प्रचारमन्त्री : श्री गोपाल आर्य
कोषाध्यक्ष : श्री देवराज नारंग

भवदीय
ठाकरदास सपड़ा

आर्यसमाज बड़ा बाजार पानीपत का निर्वाचन २०-७-८६ को श्री रामानन्द जी सिंगला की प्रधानता मे निम्न प्रकार सर्वसम्मति से हुआ।

प्रधान : श्री रामानन्द जी सिंगला
मन्त्री : श्री कुलभूषण
प्रचार मन्त्री : श्री ठाकुरदास जी बत्रा
कोषाध्यक्ष : श्री मदन मोहन

कुलभूषण
मन्त्री

आर्यसमाज प्रताप नगर, दिल्ली का वार्षिक निर्वाचन २५-५-८६ को हुआ।

संरक्षक : श्री लाजपत राय
प्रधान : श्री दयाल मल जी
मन्त्री : श्री कृष्णचन्द्र आर्य
प्रचारमन्त्री : श्री रामलाल खुराना
कोषाध्यक्ष : श्री अमरलाल बजाज
व्यवस्थापक : आर्य विद्या मन्दिर

भवदीय
कृष्णचन्द्र आर्य
मन्त्री

दिनांक ६-७-८६ को आर्यसमाज हरीनगर घण्टाघर का वार्षिक निर्वाचन सर्वसम्मति से निम्न प्रकार सम्पन्न हुआ—

संरक्षक : श्री चरणदास शर्मा
प्रधान : श्री ओमप्रकाश खन्ना
मन्त्री : श्री आनन्द प्रकाश वर्मा
कोषाध्यक्ष : श्री हरिश्चन्द्र वर्मा
प्रचारमन्त्री : श्री ताराचन्द पंवार

भवदीय
आनन्द प्रकाश वर्मा
मन्त्री

यज्ञ

(पृष्ठ १ का शेष)

उत्थान के पथ पर अग्रसर होगा। एक और तरह से इसे समझ लीजिए। अग्नि और जल एक-दूसरे के विपरीत हैं। जल अधिक होता है तो अग्नि बुझ जाती है और अग्नि अधिक होती है तो पानी जल जाता है। किसी बुद्धिमान पुरुष ने इन दोनों को विशेष परिमाण में एकत्रित किया; जिसका परिणाम हमारे सामने स्टीम के इंजन के रूप में आया जिस से करोड़ों मन बोझा और लाखों यात्री महीनों की दूरी दिनों में तय कर लेते हैं। यह वस्तुओं को निर्माण की दिशा में लगाने का उदाहरण है। परन्तु इसके विपरीत आग लग जाने से या बाढ़ आ जाने से बहुत हानि होती है। इन दोनों वस्तुओं की शक्ति को उचित दिशा में लगाने का इससे अच्छा और क्या उदाहरण हो सकता है।

इसी प्रकार युवाओं की शक्ति ज्ञान की अग्नि से स्टीम बनकर राष्ट्र को सही दिशा में ले जा सकती है। इन्हीं सब तत्वों के बोध के लिए याज्ञिक पुरुष अग्नि और सोम के नाम से आहुतियां देता है। जिन दोनों का समन्वित स्वरूप यह समष्टि जगत् है। इसी भाव को पारिवारिक जीवन, व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक जीवन के माध्यम से अपने में उद्बुद्ध करने के लिए यह क्रिया की जाती है। जब याज्ञिक इस रहस्य को समझ लेता है, तब वैदिक साहित्य के शब्दों में "इयं ते यज्ञिया तनूः" तथा "पुरुषो वाव यज्ञ" के मर्म का साक्षात् स्वरूप हो जाता है और यही जीवन की वह उच्चतम स्थिति है जो संन्यास के द्वारा उसके जीवन में अभिव्यक्त होकर यज्ञ जीवन का प्रदर्शन करता है। □

निर्वाचन

आर्यसमाज उदयपुर का वर्ष १९८६-८७ का ९९वां वार्षिक चुनाव दिनांक २५-५-८६ को आर्यसमाज मन्दिर में श्री जयसिंह जी मेहता की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इसमें सर्वसम्मति से निम्न पदाधिकारी चुने गये—

प्रधान : श्रीमती मालती अग्रवाल
मन्त्री : फतहलाल शर्मा
प्रचारमन्त्री : पन्नालाल अरोड़ा
कोषाध्यक्ष : कैलाशनाथ
पुस्तकालयाध्यक्ष : नारायणलाल दवे

फतहलाल शर्मा
मन्त्री
आर्यसमाज उदयपुर

सीमा सुरक्षा विधेयक…

(पृष्ठ १ से आगे)

इसके अलावा वह जम्मू-कश्मीर पर लागू नहीं होता। उस अनुच्छेद को जम्मू-कश्मीर पर लागू करने के लिये वहां की विधानसभा से सन् १९५४ के आदेशानुसार अनुमति लेना आवश्यक होगा।

अपनी बात जारी रखते हुए स्वामी जी ने कहा कि विपक्षी दलों का सुझाव मान लेने पर सरकार को उलझन और बढ़ जायेगी। जिस प्रकार पंजाब में वहीं की सरकार ने और अकाली दल ने अपने सीमावर्ती प्रदेश में सेना की तैनाती का विरोध किया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वे पाकिस्तान से आतंकवादियों को मिलने वाली सहायता का रास्ता बन्द नहीं होने देना चाहते और आतंकवाद को भी पूरी तरह समाप्त करने के लिये केन्द्रीय सरकार को सहयोग देने को तैयार नहीं है। इसलिए राष्ट्रहित में उचित यही है कि सब विपक्षी दल भी इस मामले में सरकार को सहयोग देकर राज्यसभा में दो तिहाई बहुमत से सीमा-सुरक्षा विधेयक को पारित करवाने में सहायक हों। जो लोग अब तक पंजाब के सीमावर्ती जिलों में सेना तैनात करने का प्रबल आन्दोलन करते रहे हैं, वे भी सरकार के उक्त कदम का विरोध करें तो यह उनकी अदूरदर्शिता ही है। मेरा कहना तो यही है कि हम को हरेक हालत में राष्ट्र-हित को ही प्रमुखता देनी चाहिए। उक्त विधेयक के पास होने से कम से कम सीमावर्ती इलाकों में विघटनकारी प्रवृत्तियों को और आतंकवाद को समाप्त करने में बहुत सहायता मिल सकती है। □

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
द्वारा प्रकाशित वैदिक साहित्य

कक्षा प्रथम	नैतिक शिक्षा (भाग प्रथम)		१.५०
कक्षा द्वितीय	नैतिक शिक्षा (भाग द्वितीय)		१.५०
कक्षा तृतीय	नैतिक शिक्षा (भाग तृतीय)		२.००
कक्षा चतुर्थ	नैतिक शिक्षा (भाग चतुर्थ)		३.००
कक्षा पंचम	नैतिक शिक्षा (भाग पंचम)		३.००
कक्षा षष्ठ	नैतिक शिक्षा (भाग षष्ठ)		३.००
कक्षा सप्तम	नैतिक शिक्षा (भाग सप्तम)		३.००
कक्षा अष्टम	नैतिक शिक्षा (भाग अष्टम)		३.००
कक्षा नवम	नैतिक शिक्षा (भाग नवम)		३.००
कक्षा दश	नैतिक शिक्षा (भाग दश)		४.००
कक्षा ग्यारह	नैतिक शिक्षा (भाग ग्यारह)		४.००
कक्षा बारह	धर्मवीर हकीकतराय	वैद्य गुरुदत्त	५.००
	फ्लैश आफ ट्रुथ (Flash,of Truth)	डा० सत्यकाम वर्मा	२.००
	सत्यार्थप्रकाश सन्देश	" "	२.००
	एनाटोमी ऑफ वेदान्त	स्वा० विद्यानंद सरस्वती	५.००
	सत्यार्थ सुधा	प० हरिदेव सि०भू०	२.००
	दयानन्द एण्ड दा वेदाज (ट्रैक्ट)		५०/- रु० सैंकड़ा
	पूजा किसकी ? (ट्रैक्ट)		५०/- रु० सैंकड़ा
	मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम (ट्रैक्ट)		५०/- रु० सैंकड़ा
	योगीराज श्रीकृष्ण का सन्देश (ट्रैक्ट)		५०/- रु० सैंकड़ा
	महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी स्मारिका		५.००
	स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान अर्धशताब्दी स्मारिका		५.००

नोट—इन पुस्तकों पर १५% कमीशन दिया जाएगा।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन : ३१०१५० के लिए डा० सच्चिदानन्द शास्त्री द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा [illegible] प्रेस, [illegible] दिल्ली-३१ में मुद्रित। रजि० नं० डी० (सी०) ७५६

वर्ष १० अंक ३८ | रविवार १७ अगस्त, १९८६ | सृष्टि सवत् १९७२९४९०८८ | श्रावण २०४३ | दयानन्दाब्द—१६१
मूल्य एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश मे ५० डालर ३० पौंड

पूर्व सेनाध्यक्ष श्री वैद्य की निर्मम हत्या

अब नरमी ले डूबेगी

भारतवर्ष के इतिहास मे पहली बार एक भूतपूर्व सेनाध्यक्ष की हत्या हुई है। यह हत्याकाण्ड आतकवादियो और उन के आकाओ की भारत के लिए खुली चुनौती है। भूतपूर्व सेनाध्यक्ष जनरल अरुण श्रीधर वैद्य की १० अगस्त को दो मोटर साइकिलो पर सवार चार आतकवादियो ने खुले आम दक्षिण कमान मुख्यालय के निकट गोलिया बरसा कर हत्या की है। खालिस्तान [illegible] ने दो दिन पूर्व ही उन्हे [illegible] पत्र भेजा था। जनरल [illegible] का नाम पजाब के सिरफिरे [illegible] की सूची मे था, [illegible] का कदम [illegible] पूर्ने पुलिस को यह [illegible] दिया गया था, परन्तु पूना पुलिस समय रहते उनकी सुरक्षा का कोई विशेष प्रबन्ध न कर पायी। यह सबसे ज्यादा दुःख की बात है। पजाब से लेकर सारा भारत आतकवादियो की सैरगाह बना हुआ है। उन की हिम्मत और उन के हौसले कितने बुलन्द हैं यह इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है। वे कही भी पहुँच कर किसी भी बड़ से बड़े व्यक्ति की जान ले सकते हैं। हर ओर यह प्रश्न पूछा जा रहा है कि जो सरकार अपने विशिष्ट व्यक्ति सेनाध्यक्ष पद पर रहे व्यक्ति की सुरक्षा नहीं कर सकती है उस से साधारण व्यक्ति की जानमाल की सुरक्षा कैसे सम्भव है? पजाब से भाग कर आते हुए हिन्दुओ का डर झूठा नही है और न ही उनके आसू झूठे हैं। भारत भर का हिन्दू अपने ऊपर होते हुए हमले से धैर्य खो रहा है। आक्रोश से मुट्ठियाँ भिंचने लगी हैं, उनकी भृकुटि तन आयीं सभी है और लबों पर सवाल उभरने लगा है आखिर यह खून कब तक बहेगा? सत्ता के गलियारों में बैठे सत्ताधीशो को उग्रवादी चुनौतियों पर चुनौतिया दिये चले जा रहे हैं और केन्द्र सरकार बरनाला को बचाये रखने के लिए नरमो पर नरमी बरत रही है। पजाब मे पाच सालो से जो खून बह रहा है वह निश्चय ही बीसवी सदी का सबसे क्रूर पागलपन से भरा सिलसिला है। पाच साल के धैर्य के बाद उस के खिलाफ हिन्दू आधी उठना चाहती है। यदि यह आधी सफल हुई तो ईरान का दृश्य न उभर आये और अगर सफल न हुई तो आतकवाद आधी देश भर मे खून की पोखर भरती रहेगी और गोलिया न जाने कितने सीनो से मासूमों के खून के निर्झर बहाती रहेगी। इसका एक मात्र इलाज है केन्द्र सरकार बेदर्दी से उन हाथो को काट दे जिन हाथो मे बारूद है। उन सूत्रो के सूत्रधारो को छठी का दूध याद दिलाये जिन के षड्यन्त्रो का परिणाम जनरल वैद्य जसे शूरवीर को भी अपनी कुर्बानी देकर चुकाना पड़ा। अब वह दिन आ गया है जब सख्ती ही सबसे नरम विकल्प बचा है क्योंकि यह नरमी निश्चय ही हम सभी को ले डूबेगी। पजाब मे अनेक बड़े लोगो के अलावा साधारण व्यक्तित्व रखने वाले लोगो की भी हत्याएँ हो रही हैं। हिन्दू समुदाय को पलायन करने पर मजबूर किया जा रहा है। ऐसे दुःख के काल मे कुछ कहने मात्र से या भाषणबाजी से काम नही चलने वाला। देश विघटन के कगार पर पहुँच गया है। अब तो सैनिक शासन ही हल बचा है। साथ ही हर उग्रवादी को कोर्ट तक ले जाने की आवश्यकता नही उसे गोलियो से छलनी करने की आवश्यकता है। सीखचो के पीछे खड़ा करना अब उचित नही अब उचित है विषैले भुजधरो के मुण्ड मसल दिये जायें और बिलो मे आग और धुआ भर दिया जाये।

—यशपाल सुधांशु

पन्द्रह अगस्त

आ गया वह पवित्र दिन
जिस दिन मिली थी देश को आजादी
इस पवित्र भूमि से अग्रेजो की
किस्मत थी भागी
सर्वत्र हो रहा हर्ष का प्रदर्शन
हो रहा मुक्त वातावरण का दर्शन
बाल वृद्ध युवा सभी आनन्दमग्न हैं
ऐतिहासिक उपलब्धि पर कर रहे गर्व हैं
आओ इस दिवस को हम धूमधाम से मनायें
इस अवसर पर हम अपने शहीदो को न भूल जायें।

रचयिता—डा० शकुनचन्द गुप्त विद्यावाचस्पति
लालगज, जि० रायबरेली (उ० प्र०)

प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल | व्यवस्थापक—डा० [illegible] | सम्पादक—प० यशपाल सुधांशु एम० ए०

मृत्यु

लेखक—आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री, दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार

वैदिक साहित्य मे उपनिषदों का एक अद्वितीय स्थान है। "उपनिषद" शब्द का अर्थ अध्यात्म ज्ञान होता है। वैसे तो सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय आध्यात्मिक भावोन्मुखी है। परन्तु उपनिषदें तो सर्वथा आध्यात्मिक ही हैं। जीवन क्या है मृत्यु क्या है, यह संसार क्या है, जीव क्यों जन्म लेता है ? इत्यादि आध्यात्मिक प्रश्नों का सर्वांशत: विवेचन इनमे किया गया है। उन्ही उपनिषदो मे कठोपनिषद का अपना स्थान है। यह उपनिषद एक कथानक से प्रारम्भ होता है। वाजश्रवा नामक एक गृहस्थ था। एक अवस्था विशेष में आकर जिसके मन में वैराग्य का उदय हुआ। जिस के परिणामस्वरूप उसे भौतिक पदार्थों में अनास्था हो गई और उस ने अपने गृहस्थ काल में संचित किए भौतिक पदार्थों का दान याचकों को करना प्रारम्भ किया। एक-एक पदार्थ याचकों को दे रहा था, उसका नचिकेता नामक एक छोटा बालक था। वह भी पास खड़ा हुआ पिता के इस कार्य को देख रहा था। अपने पिता को अपनी बहुमूल्य वस्तुएं निर्ममता के साथ याचकों को देते हुए देखकर बालक के मन मे शंका उत्पन्न हुई कि क्या कारण है, मेरा पिता इस प्रकार वस्तुएं दे रहा है ? बालक ने पिता को सम्बोधित करते हुए कहा—

तात माम् कस्मै दास्यसि।

हे पिता तुम मुझको किसके लिए दोगे ? पिता चुप था। बालक ने फिर प्रश्न किया। पिता तब भी चुप रहा। बालक ने तीसरी बार फिर अपने प्रश्न को दोहराया। तब वाजश्रवा हाथ रोककर नचिकेता की ओर देखकर बोला—

मृत्यवे त्वा ददामि इति।

अर्थात तुझे मैं मृत्यु को दूंगा। अभिप्राय यह था कि तू अभी बालक है, तेरा शिक्षा ग्रहण काल है। जिस के लिए तुझे मैं मृत्यु अर्थात् आचार्य के पास भेजूंगा। वैदिक भाषा में मृत्यु नाम आचार्य का है। क्योंकि दोनों का काम एक ही है। पुनर्जन्म देना। इसीलिए आचार्य विद्या का जन्म देकर द्विज बनाता है। बालक पिता के आशय को समझकर आचार्य के पास चला गया। संयोगवश उस समय आचार्य वहां पर उपस्थित नहीं थे। तीन रात्रि के पश्चात् आचार्य वापस लौटे जिसके परिणामस्वरूप नचिकेता को आचार्य के आश्रम पर तीन रात तक भूखा-प्यासा रहना पड़ा। आचार्य ने जब बालक को देखा और तीन रात्रि तक भूखे-प्यासे रहने के समाचार को जाना तब नचिकेता को उसके प्रतीकारस्वरूप तीन वर मांगने को कहा। नचिकेता ने पहला वर मांगा कि मेरे जाने के पश्चात् मेरे पिता पूर्ववत् मुझ पर प्रसन्न रहें। आचार्य ने तथास्तु कहा और दूसरा वर मांगने की बात कही। तब नचिकेता ने अग्निहोत्र एवं अग्नि विद्या का रहस्य समझाने का आग्रह किया। आचार्य ने वह रहस्य भी समझाया और कहा—

अथ तृतीयं वरं वृणीष्व।

अर्थात् तीसरा वर मांगो। तब नचिकेता ने उपनिषद की भाषा में कहा—

येयं विचिकित्सा मनुष्ये-
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चान्ये।
एतद् विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहम्
वराणामेष वरस्तृतीय:॥

अर्थात् किसी प्राणी के मर जाने पर शेष बचे लोगों में उसके प्रति दो प्रकार की विचारधारायें होती हैं। एक यह कि मिट्टी थी, मिट्टी में मिल गई। बाकी कुछ नहीं बचा। दूसरा यह कि इसका शरीर तो प्रकृति में लीन हो गया परन्तु शरीर में आत्मा था, वह अजर अमर है। वही आत्मा इस शरीर से पृथक् होकर अन्य शरीर के साथ संयुक्त हो गया। इसी का नाम मृत्यु है। इस सम्बन्ध में क्या सत्य है ? कृपया मुझे समझावें, जिस से कि मैं इस सत्यता को ग्रहण कर सकूं। बालक की छोटी आयु और प्रश्न की गम्भीरता को देखकर आचार्य बोले कि अनादि काल से इस प्रश्न पर चिन्तन होता आया है परंतु किसी ने भी इसको पूर्ण यथार्थता को नहीं जाना। इसीलिए इसके बदले में और कुछ मांग सकते हो परन्तु नचिकेता के बार-बार आग्रह करने पर आचार्य यम को उसकी इच्छा पूरी करनी पड़ी। जिसका विस्तार कठोपनिषद का प्रतिपाद्य विषय है। उसे संक्षेप में यूं कहा जा सकता है (यजुर्वेद के ४०वें अध्याय का एक मन्त्र है—

वायुरनिलममृतमथेदं
भस्मान्तं शरीरम्।
ओ३म् क्रतो स्मर
क्लिबे स्मर कृतं स्मर॥

अर्थात् वायु (आत्मा) अपार्थिव है। अत: एव अजर-अमर है और यह दृश्यमान स्थूल शरीर अन्त में भस्म होने वाला है। इसीलिये हे कर्मशील जीवात्मन् ! तू ओ३म् का स्मरण कर ! अपनी असमर्थता का स्मरण कर और किये गये कार्यों का स्मरण कर ! इस मन्त्र के पहले पाद में जीव का वर्णन किया गया है। जिसमें कहा गया है—यह जीव पंचभूतों से बना हुआ नहीं है। इसीलिये अजर-अमर है। यह ध्रुव सत्य है कि जो वस्तु बनती है, वह बिगड़ती भी है। कार्य रूप वस्तु के बनना और बिगड़ना यह दो किनारे है। बनना ही प्रमाण है कि वह बनने से पहले नहीं थी और बनने के पश्चात् विनष्ट होगी क्योंकि जो वस्तु परमाणुओं के संयोग से बनती है, वह उनके वियोग से नष्ट हो जाती है। संयोग का अन्त वियोग में अवश्य होता है। संयोग ही वियोग होने का प्रमाण है परन्तु आत्मा न संयुक्त होता है, न वियुक्त होता है। अर्थात् परमाणुओं के संयोग से नहीं बनता। तब नष्ट होने का अवसर ही नहीं आता। यह जरूरी नहीं कि जो वस्तु है वह बनी हुई ही हो, जो मध्यम परिमाणी वस्तुयें हैं, वे विनाशी हैं। संसार में दो परिमाण नित्य हैं। महत्तम और अनुत्तम। बड़े से बड़ा जिससे बड़ा न हो सकता हो, वह महत्तम है। भौतिक वस्तुओं में आकाश को ले सकते हैं। चेतन पदार्थों में वह स्थान परमात्मा को प्राप्त है। अन्तर केवल यह है कि आकाश व्यापक है, परमात्मा सर्वव्यापक है।

दूसरे छोटे से छोटा जिससे छोटा कोई न हो सकता हो, वह अनुत्तम है। भौतिक पदार्थों में परमाणु और चेतन में जीवात्मा की यही स्थिति है। चूंकि यह बने हुए नहीं होते। इसीलिये इनमें परिवर्तन भी नहीं होता। अत: एव ये अविकारी हैं। वैदिक मन्तव्यानुसार जीव की भी यही स्थिति है। वह नित्य अविकारी है और भिन्न-भिन्न शरीरों को प्राप्त होता रहता है। शरीरों को प्राप्त होना ही जन्म और उन से वियोग होना ही मृत्यु कहलाता है। जिन शरीरों को यह आत्मा बार-बार प्राप्त करता है, वह शरीर कार्यरूप है। अर्थात् पंचभूतों से मिलकर उसकी उत्पत्ति होती है। जिस की उत्पत्ति होती है उसका विनाश भी होता है। तात्त्विक दृष्टि यह है कि आत्मा की मृत्यु नहीं होती और शरीर का पुनर्जन्म नहीं होता। नित्य आत्मा का गृहीत शरीर छोड देना ही मृत्यु है और आगामी शरीर से संयुक्त होना ही पुनर्जन्म है। जो अनित्य है वह परिवर्तनशील है। इस दृष्टि से शरीर में बाल्य, यौवन और वार्धक्य के रूप में अवस्था परिणाम आता है। अल्पज्ञ जीव इस अनित्य शरीर में आसक्त होकर दु:ख भोगता है जिसका मूल कारण मोह का तन्तु एवं अत्यधिक आसक्ति है। इसी कारण अल्पज्ञानी की दृष्टि में मृत्यु सबसे बड़ा भारी दु:ख है। यदि उस का दृष्टि बिन्दु बदल जाये तो दु:ख सुख के रूप में परिवर्तित हो जायें। हमारे जीवन में आने वाले अधिकांश दु:ख हमारे विपरीत चिन्तन का परिणाम होते हैं। विचारबिन्दु बदलते ही वे सुख का रूप धारण कर लेते हैं। कल्पना कीजिये, गर्मी की ऋतु है, हम प्यास से व्याकुल हैं। ऐसी अवस्था में हम किसी से पानी मांगते हैं। परन्तु संयोगवश उसके पास केवल आधा गिलास पानी है। जब वह हमें देता है तो एक व्यक्ति कहता है—अरे ! यह क्या ! यह तो आधा गिलास ही पानी है ? मुझे बहुत प्यास लगी है। इससे मेरा क्या होगा ? ऐसा सोचता हुआ वह बहुत दु:खी होता है। परन्तु दूसरा व्यक्ति गिलास

मृत्यु

लेकर परमात्मा का बहुत धन्यवाद करता है और कहता है कि परमात्मन्! तू बड़ा दयालु है, कि तूने अपनी प्यास मिटाने के लिये मुझे आधा गिलास पानी दे दिया है। आधा गिलास पानी दोनों के लिये बराबर है। एक शुभ चिन्तन द्वारा सुख प्राप्त कर लेता है और दूसरा कुत्सित चिन्तन द्वारा दुःख प्राप्त करता है। ठीक इसी प्रकार से हमारा शरीर हम से अलग होना है। लाख प्रयत्न करने पर भी साथ नहीं रहना रहना है। इस अवश्यम्भावी घटना को यदि हम सहज रूप में स्वीकार करते हैं तो यह सुखद बन जाती है। इसके विपरीत अनहोनी या अभूतपूर्व घटना मानकर छटपटाते हैं तो यही दुःख का कारण बन जाती है। अब देखिये, वृद्धावस्था में सभी इन्द्रियां निर्बल हो जाती हैं। शरीर अशक्त हो जाता है परन्तु अन्तर आत्मा की वासनाएँ ज्यों की त्यों रहती हैं। ऐसी अवस्था में यदि हमारी इच्छाओं की पूर्ति करने में असमर्थ शरीर छूटकर हमारी सभी कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ, सशक्त, नया शरीर हमें प्राप्त हो तो क्या हर्ष की बात नहीं है? इसी बात को योगेश्वर कृष्ण जी ने गीता में निम्न शब्दों में कहा–

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।

अर्थात् जिस प्रकार हम पुराने वस्त्र को उतारकर उनके स्थान पर नये धारण कर लेते हैं, इसी प्रकार पुराने असमर्थ शरीरों को छोड़कर नये सशक्त शरीरों को जीवात्मा प्राप्त कर लेता है। नवीन वस्त्रों को धारण करने के लिए पुराने वस्त्रों को उतारते हुए अज्ञानी बालक को भी प्रसन्नता होती है। परन्तु शरीरों के सम्बन्ध में इसके विपरीत देखा जाता है। क्या यह अज्ञान नहीं? इसीलिए योगदर्शन में पंचक्लेशों में जिन का मूल कारण अविद्या है, यह भी एक है। इसी अविद्या के प्रभाव से मनुष्य का मृत्यु के प्रति दुःखात्मक दृष्टिकोण होता है। दूसरी बात यह भी कि वर्तमान शरीर में आसक्ति उसको यह विचार अपनाने को प्रेरित करती है। परन्तु सत्यता यह है कि मृत्यु दुःखदायी नहीं अपितु सुखदायी है। कल्पना कीजिये, एक माता अपने बच्चे को दूध पिला रही है। बच्चा बायीं ओर के स्तन को चूस रहा है। माता ने अनुभव किया कि इस स्तन में दूध समाप्त है, परन्तु बच्चा भूखा होने से उसे छोड़ता नहीं है। तब दयालु माता उसे उस खाली स्तन से हटाकर दूध से भरपूर दूसरे स्तन से लगाना चाहती है। परन्तु अज्ञानी बालक उस स्तन को छोड़ता नहीं, रोता है। सम्भवतः मन मे यह समझता है कि मेरी निर्दयी माता मुझे भूखा मारना चाहती है। जब वह खाली स्तन से हटकर दूसरे भरपूर स्तन के साथ सम्बन्धित होता है, दूध पीकर आनन्द प्राप्त करता है, तब माता की दयालुता को अनुभव करता है। ठीक यही स्थिति जीवात्मा की मृत्युकाल मे होती है। वृद्ध शरीर जो जीव की किसी आकांक्षा की तृप्ति नहीं कर सकता, परन्तु जीव की भोगेच्छा विद्यमान रहती है, तब वह दयालु जगन्माता रिक्त स्तन के समान उक्त आसक्त शरीर से जीव को हटाकर नये एवं सशक्त शरीर के साथ सम्बन्धित कर देती है। जिससे वह अपनी भोग इच्छाओं को पूर्ण करने का अवसर प्राप्त कर सके। वर्तमान शरीर में आसक्त होने से उसका छुटना उसके लिये दुःखदायी होता है। महर्षि कपिल ने सांख्यदर्शन में लिखा है–-

त्यागवियोगाभ्यां सुख दुःखी।

अर्थात् मनुष्य त्याग से सुखी होता है और वियोग से दुःखी होता है। जिसे मनुष्य स्वयं छोड़ देता है वह त्याग है और अनिच्छापूर्वक जो छुड़ाया जाता है, वह वियोग है। छूटना दोनों हालतों में होता है परंतु एक अवस्था मे मनुष्य दुःख को सुख बना लेता है और दूसरी अवस्था में सुख को दुःख बना लेता है। यह विचारों का अन्तर है। मान लीजिये एक बच्चा शरारत कर रहा है। माता उसे कमरे में बन्द कर देती है, बाहर से कुण्डा लगा देती है। बच्चा किवाड़ खोलने के लिये माता से कहता है, रोता है, चिल्लाता है और दरवाजे को थपथपाता है क्योंकि वह दुःखी है। परन्तु इसके विपरीत वही बच्चा बड़ा होकर पढ़ाई करने लगता है। परीक्षा की तैयारी के लिये कमरे में बैठ अन्दर से कुण्डा बन्द करके पढ़ने में मग्न हो जाता है। माता कहती है, बेटा कुण्डा खोलो। परन्तु बच्चा अध्ययन की हानि के डर से नहीं खोलता है। अब विचारिए, दोनों अवस्थाओं में किवाड़ बन्द हैं। बच्चा अन्दर बैठा है। परन्तु एक अवस्था में बच्चा दुःखी है और दूसरी अवस्था में सुखी है। जहां उसकी इच्छा के प्रतिकूल उसे बन्द किया, वहां वह दुःखी और जहां उसने स्वयं अपने को बन्द किया वहां वह सुखी है। एक और उदाहरण लीजिए---

एक व्यक्ति जिसने चोरी, डकैती अथवा हत्याकाण्ड किया है, उसको उसकी इच्छा के विपरीत जेल में ले जाकर बन्द कर दिया जाता है। तब वह बड़ा दुःखी होता है। ठीक इसके विपरीत दूसरा व्यक्ति सामाजिक हितों की रक्षा के लिए सत्याग्रह करके जेल में जाता है। जेल के अधिकारी उसे बाहर निकालना चाहते हैं परन्तु वह अन्दर ही रहना चाहता है क्योंकि उसमें सुख को अनुभव करता है। इस से यह निष्कर्ष निकला कि जिस स्थिति को हम स्वेच्छा से वरण करते हैं वह सुख है और जो बलात् हमारे गले मढ़ दी जाती है वही दुःख है। इसके साथ यह भी विचारना चाहिए कि वस्तु के सम्बन्ध में तत्वज्ञान रखना आवश्यक है। यह शरीर अनित्य है। अतः अवश्यमेव छूटेगा। तब दुःख किस बात का? साथ ही शरीर विकारी भी है जिसके लिए प्रयत्न करना निस्सार ही है। देखो संसार में प्रायः यह नियम है कि वृक्ष-वनस्पति के फल जब तक कच्चे रहते हैं तब तक वे बेस्वाद होते हैं और पकने के पश्चात् ही उनमें स्वादिष्टता आती है। परन्तु उस अनुपम कलाकार की सृष्टि में मनुष्य शरीररूपी एक फल ऐसा है, जो जब तक कच्चा है अर्थात् बच्चा या जवान रहता है तब तक बड़ा स्वादिष्ट होता है, परन्तु पक जाने पर अर्थात् वृद्ध अवस्था आ जाने पर सर्वथा स्वादहीन हो जाता है। आचार्य शङ्कर ने उस अवस्था का चित्रण करते हुए लिखा है---

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डम्,
दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डम्,
तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम्॥

अर्थात् वृद्धावस्था में अङ्ग शिथिल हो जाते हैं। बाल श्वेत हो जाते हैं, दांत मुख का साथ छूट जाता है, असमर्थ होकर डण्डे का सहारा लेकर चलना पड़ता है। यह सब कुछ हो जाने पर भी आशा एवं तृष्णायें निरंतर बढ़ती जाती हैं। ऐसी स्थिति में इस विकारी बदलने वाले सारहीन एवं एक अवस्था में जाकर सर्वथा अनुपयोगी हो जाने वाले शरीर के प्रति आसक्ति क्यों? जीव तो शरीर रूपी गाड़ी में बैठकर यात्रा करने वाला एक यात्री है। साध्य की प्राप्ति पर सामान्य यात्री भी साधन को छोड़ देता है क्योंकि वहीं तक उसकी उपयोगिता थी। परन्तु जीवन की सच्ची यात्रा के सम्बन्ध में हमारा दूसरा ही व्यवहार होता है। हमारा यह दो प्रकार का जीवन ही हमारे सम्पूर्ण कष्टों का मूल है। इसके साथ हमारा शाश्वत सम्बन्ध नहीं है। किञ्चित्कालिक सम्बन्ध है। उस काल में हम इस का सदुपयोग कर जायें, इसी में हमारा भला है। महाभारतकार महर्षि वेदव्यास ने लिखा है--

यथा काष्ठं च काष्ठं
च समेयातां महोदधौ।
समेत्य च व्यपेयातां
तद्वद् भूतसमागमः॥

अर्थात् जिस प्रकार दो लकड़ियां नदी में बहती हुई परस्पर मिलकर अलग हो जाती हैं, उसी प्रकार संसार में प्राणियों की आवागमन की स्थिति है। प्राणी आते हैं और चले जाते हैं। ससार का यह शाश्वत नियम है। परन्तु इस शाश्वत नियम को देखने पर भी अन्तिम स्थिति अर्थात् मृत्यु के लिए मनुष्य अपने को सहर्ष तैयार नही कर पाता है। मनुष्य जीने की तो तैयारी करता है परन्तु मरने की नहीं। जब अवश्यम्भावी मृत्यु उसके सामने आ खड़ी होती है तब वह घबरा जाता है, क्योंकि उसे उस के आगमन का विश्वास नहीं था। इसीलिए महर्षि वेदव्यास ने महाभारत के यक्ष युधिष्ठिर संवाद प्रकरण में लिखा है---

अहन्यहनि भूतानि
गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति
किमाश्चर्यमतः परम्॥

अर्थात् इस ससार में प्रतिदिन हजारों मनुष्य मृत्यु का शिकार बनते हैं। बाकी बचे रहने वाले लोग समझते हैं कि हम इसी स्थिति पर रहेंगे। इससे बढ़कर और आश्चर्य की बात क्या है? जाने वाले भी संसार में आये थे, हम भी इस ससार मे आये हैं। जब वे चले गये तो हम क्यों कर नहीं जायेंगे? प्रत्येक का आना जाने के लिए होता है और जाना आने के लिए होना है। इसीलिए लौकिक भाषा में मृत पुरुष के लिए कहा जाता है कि वह चल बसा है। अर्थात् यहां से तो चला गया है और कहीं जाकर बस गया है। यही स्थिति सारे ससार की है। आना-जाना लगा हुआ है। इसीलिए मनु जी महाराज ने लिखा है---

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।

अर्थात् प्राणिमात्र का शरीर

(शेष पृष्ठ ६ पर)

हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने का प्रमुख साधन : भर्ती परीक्षाओं में हिन्दी की सुविधा

लेखक—श्री जगन्नाथ
संयोजक, राजभाषा कार्य, केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद
एक्स. वाई -६८, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली-११००२३

(गताक से आगे)

७. फिर भी हमारा कर्तव्य है कि जिन-जिन परीक्षाओं मे हिन्दी के प्रयोग को सुविधा दे दी है उनकी जानकारी सामाचार-पत्रों आदि के माध्यम से भावी परीक्षार्थियो को दें और उन्हें हिन्दी माध्यम से परीक्षा देने के लिए प्रेरित करें। हिन्दी माध्यम से परीक्षा देने वालों की सुविधा के लिए विशेष कक्षाओं का प्रबन्ध करे, परीक्षा उपयोगी साहित्य के सेट मगा कर पुस्तकालयों में रखें तथा परीक्षा में सहायक पुस्तको को लिख कर उनके प्रकाशन की व्यवस्था करें। विशुद्ध व्यापारिक ढग से काम करने वाले स्कूल इस बारे में पहल नही करेंगे।

कितनी बड़ी विडम्बना

८. ससद के उपरोक्त सकल्प के बावजूद भी अभी तक भारत सरकार की अनेक प्रतियोगिताए ऐसी हैं जिनमें किसी में भी प्रश्न-पत्रों में हिंदी का विकल्प नहीं दिया गया है। भारतीय प्रशासनिक सेवा आदि में हिंदी के विकल्प को सुविधा हो जाने से हिन्दी के पक्ष में जो नई क्रान्ति की शुरूआत हुई थी, वह अब कुछ रुक सो गई है। उदाहरण के लिए भारतीय वन सेवा, भारतीय अर्थसेवा, भारतीय सांख्यिकी सेवा, भारतीय इंजीनियरी सेवा, भारतीय चिकित्सा सेवा, भारतीय भूगर्भ सेवा और तीनों प्रकार की सेनाओं में नियुक्ति हेतु ली जाने वाली अनेक प्रकार की परीक्षाओं के किसी भी प्रश्न-पत्र में हिन्दी के विकल्प की सुविधा नहीं दी गई है। यद्यपि राष्ट्रीयकृत बैंकों की लिपिक श्रेणी परीक्षा में हिंदी का विकल्प हो गया है किंतु उनके अधिकारी वर्ग की परीक्षा में और भारतीय यूनिट ट्रस्ट की परीक्षा में केवल अंग्रेजी माध्यम का प्रयोग ही किया जा सकता है। और तो और राष्ट्रीय मिलिटिरी सेवा, स्पेशल क्लास रेलवे एप्रेंटिस सेवा जैसी परीक्षाओं मे भी, जिनमें बैठने की योग्यता इन्टर स्तर तक की है, हिन्दी के वैकल्पिक प्रयोग की सुविधा नहीं दी गई है।

९ यद्यपि बहुत प्रयत्नो के बाद, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा आगामी पढ़ाई जारी रखने के लिए दी जाने वाली जूनियर फैलोशिप परीक्षा में हिन्दी के वैकल्पिक प्रयोग की सुविधा दी गई है, इसी प्रकार की सुविधा वैज्ञानिक और अनुसंधान परिषद सी. एस. आई. आर. द्वारा नहीं दी गई है।

व्यर्थ के बहाने

१० उक्त प्रकार की तकनीकी परीक्षाओं में हिन्दी का विकल्प न दिए जाने का एक कारण यह भी बताया जाता है कि हिन्दी में इंजीनियरिंग, चिकित्सा आदि विषयों पर पुस्तकें नहीं हैं। लगभग १५ वर्ष पूर्व इस प्रकार की हिन्दी पुस्तकों का कुछ अभाव था भी। किन्तु पिछले कुछ वर्षों से भारत सरकार के प्राय: सभी मन्त्रालयों द्वारा अपने-अपने विषयों से संबंधित पुस्तकें मूल रुप से हिन्दी में लिखे जाने के लिए काफी अधिक नकद पुरस्कार दिए जा रहे हैं। फलस्वरूप अब प्राय: सभी विषयों पर सैकडों पुस्तकें हिन्दी में मूल रूप से लिखी जा चुकी हैं। हिन्दी भाषी राज्यो के विश्वविद्यालयों तथा सरकारी और निजी प्रकाशको द्वारा भी ऐसे विषयों पर हिन्दी में अनेक पुस्तकें प्रकाशित कराई जा चुकी हैं। इन सभी विषयों पर अब हिन्दी में पत्र-पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हो चुकी हैं। फिर भी कुछ उप-विषयों के बारे में केवल अंग्रेजी में पुस्तकें उपलब्ध हों और परीक्षार्थी उक्त प्रकार की परीक्षाओं में हिन्दी का विकल्प लेना चाहें तो उन्हें यह सुविधा दी ही जानी चाहिए। हिन्दी माध्यम का विकल्प हो जाने से अनेक लेखक स्वयं हिन्दी में पुस्तकें लिखने के लिए प्रेरित होंगे और प्रकाशक भी उन्हे सहर्ष प्रकाशित करने के लिए तैयार हो जाएगे। इस अर्थ युग में बिना मांग के कोई भी अपनी पूंजी लगाने के लिए तैयार नहीं होता। एक बार उक्त प्रकार के परीक्षणो में भी विकल्प हो जाने पर इन विषयो के बारे में हिन्दी पुस्तकों की माग बढ़ेगी। परिणामस्वरूप इस समय हिन्दी में पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं का जो थोडा बहुत अभाव भी है वह दूर हो जाएगा।

११. एक बहाना यह भी लगाया जाता है कि जब आई. आई. टी. सरीखे तकनीकी संस्थानों में हिन्दी के माध्यम से पढ़ाई ही नहीं होती, तो संघ लोक सेवा आयोग द्वारा यदि इन प्रतियोगिताओं में हिन्दी का विकल्प दे भी दिया जाए तो परीक्षार्थी कहां से आएंगे। ऊपर से तकनीकी संस्थान यह तर्क देते हैं कि जब हिन्दी माध्यम के पढ़े विद्यार्थी को भारतीय इंजीनीयरिंग सेवा आदि में हिन्दी माध्यम से बैठने ही नहीं दिया जाएगा तो हिन्दी माध्यम से से पढने का क्या लाभ ? इस प्रकार एक दुश्चक्र चलता रहता है जिसे तोडे जाने की आवश्यकता है। यदि अंग्रेजी माध्यम से पढ़े-लिखे विद्यार्थी उक्त प्रकार का परीक्षाएं हिंदी माध्यम से देना चाहे तो संघ लोक सेवा आयोग आदि को उसमें एतराज क्यों हो ? प्रतियोगियों को ऐसी परीक्षाओं में मिली-जुली भाषा का प्रयोग करने और अंग्रेजी शब्दावली का सहारा लेने की छूट दी जा सकती है, जहां चाह वहां राह।

हिन्दी भाषी राज्यों की परीक्षाओं में अंग्रेजी क्यों ?

१२. इस विषय में हम अपनी ओर से कुछ और अधिक न कह कर अखिल भारतीय हिन्दी प्रतिष्ठान मंच, ३४१, बहादुरगज, इलाहाबाद के उस परिपत्र के आवश्यक अंश दे रहे हैं जो उन्होंने हिन्दी भाषी राज्यों के मंत्रियों, सासदों और विधायकों आदि को भेजा है। हम भी उनके विचारों से सर्वथा सहमत हैं। —"हिन्दी भाषी राज्यों में अपेक्षा यह रही है कि उनका सम्पूर्ण कार्य हिन्दी माध्यम से किया जाय। खेद है कि अभी अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें हिन्दी को उसका अधिकृत स्थान नहीं मिल सका है। यहां हम आपका ध्यान उनकी परीक्षाओं की ओर दिलाना चाहते हैं। यद्यपि उनकी परीक्षाओं का माध्यम हिन्दी घोषित किया गया है परन्तु विकल्प रूप मे अंग्रेजी माध्यम भी चलाया जा रहा है। यह व्यवस्था दो कारणों से हानिकारक है है। एक तो अंग्रेजी माध्यम से परीक्षा देने वाले अभ्यर्थियों की सेवा में चुने जाने के बाद अंग्रेजी में कार्य करने की प्रवृत्ति होती है और इससे राजकाज में हिन्दी के व्यवहार मे अवरोध आता है, दूसरे हिन्दी माध्यम से परीक्षा देने वाले अभ्यर्थियों के साथ अन्याय भी होता है जबकि उनकी यह घोषित नीति है कि सम्पूर्ण कार्य हिन्दी में ही होना चाहिए, यहां तक कि अंग्रेजी में कार्य करने वाले के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई की जा सकती है, तब ऐसे अधिकारी और कर्मचारी वास्तव में शासन के कार्य के लिए अनुपयुक्त माने जाने चाहिए।

१३. "इसी सन्दर्भ में परीक्षाओं से संबधित एक और विषय है जो कि हिन्दी भाषी प्रदेशो की राजभाषा-नीति के प्रतिकूल जाता है। उनकी परीक्षाओ का माध्यम यद्यपि हिन्दी है फिर भी सभी परीक्षार्थियों को अंग्रेजी विषय के प्रश्नपत्र में न केवल उत्तीर्ण होना अनिवार्य है अपितु उसके अंकों को चयन श्रेणी के निर्धारण में भी सम्मिलित किया जाता है। इन प्रदेशों के नब्बे प्रतिशत छात्र अंग्रेजी विषय के बगैर हाई स्कूल और इण्टरमीजियेट परीक्षाए उत्तीर्ण करते हैं इन लोगों के साथ अंग्रेजी प्रश्नपत्र की उक्त अनिवार्यता घोर अन्याय है। अत: यह आवश्यक है कि परीक्षाओ में समता के सिद्धान्त के अनुसार अंग्रेजी विषय की अनिवार्यता तत्काल समाप्त कर दी जाय।

१४ 'अंग्रेजी माध्यम से परीक्षा देकर उत्तीर्ण अभ्यर्थी और अंग्रेजी की अनिवार्यता के आधार पर चुने गये अभ्यर्थी प्रशासकीय वातावरण में अंग्रेजी के वर्चस्व को रखने मे सक्रिय भूमिका निभाते हैं। चिन्ता का विषय यह है कि अंग्रेजी के प्रभुत्व के साथ ऐसा प्रशासन वर्ग जनता के विकास की उन योजनाओं को कैसे सफल बना सकता है जिनका सम्बन्ध ९९% जनता के साथ है। अंग्रेजी के प्रभुत्व वाले वातावरण को समाप्त करने की दिशा में उनकी परीक्षाओं से अंग्रेजी माध्यम को हटाना और सामान्य अंग्रेजी प्रश्न-पत्र की अनिवार्यता को समाप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।"

परीक्षार्थियो की कठिनाई और हमारा कर्तव्य

५. देश के अत्यन्त मेधावी छात्र डाक्टरी और इंजीनियरिंग सेवाओं में नियुक्त होते हैं। उनमें अनेक छात्र भारतीय प्रशासनिक सेवा आदि में भी बैठते हैं। इस प्रकार उनमें से अनेक केवल अंग्रेजी माध्यम से इसलिए पढ़ते हैं कि उसके सहारे वे सभी परीक्षाओं में बैठ सकें अतः सभी राष्ट्र प्रेमी व्यक्तियों और संस्थाओं

हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने का प्रमुख साधन

का यह कर्तव्य है कि भाषा की इस गहराई को समझें और संगठित रूप से निरन्तर इसके लिए प्रयास करते रहें कि भारत सरकार की सभी परीक्षाओं में हिन्दी के वैकल्पिक प्रयोग की सुविधा हो जाए जैसा कि संसद के संकल्प के अनुसार अब से कई वर्ष पूर्व ऐसा हो जाना चाहिए था। जब तक पूर्ण रूप से इस विषय में सफलता न मिले, चैन से न बैठें। इस विषय को गोष्ठियों में, सम्मेलनों में वार्षिक सभाओं में, राजभाषा कार्यान्वयन समितियों में समाचारपत्रों आदि में निरन्तर उठाते रहें। संसद के संकल्प का अनुपालन न होना संसद और विधान की अवमानना है। इस कार्य को पूरा करने के लिए विद्यार्थियों उनके प्राध्यापकों, उनके अभिभावकों, पत्रकारों को, जो जिस क्षेत्र मन से निरन्तर प्रयत्न करना होगा। कोई भी काम ऐसा नही है चाहे वह कितना भी कठिन क्यों न हो, जो करने से न हो सके। कोई भी काम इतना सरल नही है जो बिना किए हो सके। आवश्यकता केवल दृढ़ निश्चय की और संगठित रूप से निरन्तर प्रयास करते रहने की है। जब आई. ए. एस. आदि लगभग ३० उच्च स्तर की सेवाओं में हिन्दी भाषा को उचित स्थान मिल सका है तो हमारे प्रयासों से अन्यों में भी अवश्य मिलेगा। निराशा को त्यागकर आशा का सहारा लेकर, बाधाओं की परवाह न करते आगे बढ़ते जाएँ, निश्चित रूप से सफलता हमारे कदम चूमेगी और हम आगामी पीढ़ी के लिए मार्ग साफ कर जाएंगे।

हिन्दी को व्यवहार को भाषा बनाने में जितनी भी देर होगी उतनी ही समस्याएँ, बढ़ेगी, घटेंगी नही। अतः हमें पूरी संगठन शक्ति, सूझ बूझ, धैर्य और प्रेमाग्रह के द्वारा निरतर परिश्रम पूर्वक हिन्दी का प्रचलन बढाने के कार्य में जुट जाना चाहिए।

हिन्दीतर भाषी भी हिन्दी के पक्ष में नहीं

दिल्ली से प्रकाशित अंग्रेजी के दैनिक "दी हिन्दुस्तान टाइम्स" ने अपने पाठकों को राष्ट्रीय एकता विषय पर एक प्रश्नावली परिचालित की थी जिसमें उनके विचार मागे गए थे। सामान्यत. यह समझा जाता है कि अंग्रेजी अखबार के पाठकों का भारतीय भाषाओं के प्रति उतना लगाव नहीं होता जितना कि भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों के पाठकों का होता है। तथापि इस प्रश्न के उत्तर में क्या हमारी राष्ट्र-भाषा होनी चाहिए, ९०.३% ने इसका उत्तर हां में दिया। दूसरे प्रश्न के उत्तर मे कि यदि भाषा एक ही हो तो हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू और सस्कृत मे से कौन सी होनी चाहिए, ७८.२% ने हिन्दी के पक्ष में अपना मत दिया, केवल ७.४% ने अंग्रेजी के पक्ष में और ०.१% ने उर्दू के पक्ष में। इस प्रश्नावली के उत्तरों के आधार पर १०.११.८५ के "दी हिन्दुस्तान टाइम्स" मे ही एक विशेष लेख प्रकाशित हुआ है जिसके अनुसार ६१% बगला भाषियों ने, ६३% तेलुगु भाषियों ने ५०% कन्नड़ और उड़िया भाषियों ने, ४९% तमिल भाषियों ने, ४५% उर्दू भाषियों ने और ३८% मलयालम भाषियों ने हिन्दी के पक्ष में अपना मत प्रकट किया है। इससे यह मिथ्या धारणा दूर हो जाती है कि हिन्दीतर भाषी, विशेष रूप से दक्षिण के लोग, हिन्दी के पक्ष मे नही हैं और वे हिन्दी को नही चाहते। इससे यह मिथ्या धारणा भी दूर हो जाती है कि देश के नागरिक भावात्मक दृष्टि से उत्तर और दक्षिण क्षेत्रों मे बटे हुए हैं तर्कपूर्ण और तथ्यों पर आधारित इस लेख से पता चलता है कि पर्याप्त सख्या में अध्यापक और विद्यार्थी हिन्दी के पक्ष में हैं। अनुमानतः अंग्रेजी के पक्ष में उन्हीं थोड़े से विद्यार्थियों ने मत दिए होंगे जो कान्वेंट स्कूलों मे पढ़ रहे होंगे।

२. पाठको से निवेदन है कि उपर्युक्त तथ्यों की जानकारी अधिक से अधिक व्यक्तियो को दें ताकि राष्ट्रीय एकता मजबूत हो और देश मे स्वदेशीपन की भावना का विकास हो। □

हिन्दुओं और सिखों के खिलाफ पाकिस्तानी षड्यन्त्र

अब पूरी तौर से यह साबित हो चुका है कि पंजाब और जम्मू कश्मीर में आंतकवादी गातिविधियों के पीछे पाकिस्तान का ही पूरा-पूरा हाथ है। पाकिस्तान के नेता दिल से यह कभी नहीं चाहते कि भारत एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभरे। वह भारत की एकता व अखण्डता को हर कीमत पर तोड़ना चाहता है। पाकिस्तानी नेता हमारे ही कुछ सिक्ख भाइयो के कन्धों पर बन्दूक रखकर चला रहे हैं।

मुसलमान न तो सिखों के हमदर्द हैं और न ही हिन्दुओं के। सरकार मुसलमानो के आगे घुटने टेकती चली जा रही है। पुलिस व सेना में मुसलमानो की भर्ती आने वाली हिन्दुओं की पीढ़ी को मंहगी पड़ेगी। साम्प्रदायिक दगों को खत्म करने का एकमात्र तरीका है कि भारत को शीघ्र ही हिन्दू राष्ट्र (सिख, बौद्ध व जैन) घोषित कर दिया जाये। तुष्टीकरण की नीति, पुलिस में भर्ती महगी साबित होगी। आप इस भर्ती को रोकें।

यह तो पाकिस्तानी नेताओं का षड्यन्त्र है कि कही तो वह इन आंतकवादियों तथा अपने एजेन्टों द्वारा निर्दोष हिन्दुओ को गोलियों का शिकार बनवा रहे हैं तो कहीं निर्दोष सिक्खों को जिससे कि हिन्दु और सिक्ख आपस में ही एक दूसरे के जानी दुश्मन हो जायें। वास्तविकता तो यह है कि पाकिस्तान न तो हिन्दुओ का ही हमदर्द है और न ही सिक्खों का। उसके लिए तो दोनों ही काफिर कौम हैं। इस प्रकार पाकिस्तानीनेता एक तीर से दो निशान कर रहे हैं एक ओर तो वह काफिरों (हिन्दु और सिक्खों) को आपस में ही लड़वा रहे हैं तो दूसरी तरफ भारत के टुकड़े कराने का स्वप्न देख रहे हैं। देश के हिन्दुओं को चाहिए वह पाकिस्तान की इस कुटिल चाल को समझें तथा अपने ऊपर संयम रखते हुए देश के अन्य प्रदेशों में रहने वाले अपने सिक्ख भाइयों की सुरक्षा की गारंटी अपने ऊपर लेकर पाकिस्तानी नेताओं के मंसूबों को नाकाम करें। हिन्दुओं सिक्खों को देश के इतिहास से सबक लेकर देश के अन्दर और बाहर के शत्रुओं से सतर्क रहना होगा जो उनके बीच कटुता व फूट का बीज बोने से बाज नहीं आ रहे हैं। स्मरण रहे कि सिक्ख सम्प्रदाय की स्थापना सिक्ख गुरुओं ने मुगलों के अत्याचारों से त्रस्त हिन्दु धर्म की रक्षा करने के उद्देश्य से की थी। सिक्ख गुरु व पंच प्यारे सभी मूलत: हिन्दु ही थे। इतिहास गवाह है कि सिक्ख गुरुओं और सिक्खों को मुस्लिम शासकों के बर्बर अत्याचारों का शिकार होना पड़ा था। सिक्खों के सर धड़ से अलग कर दिये गये, सिक्ख गुरुओं को मुसलमानों ने गर्म सलाखों से बड़ी ही बेरहमी से गोदा उनके बीबी-बच्चों को बेइज्जत कर तलवारों से काट डाला गया तथा इस्लाम कबूल न करने पर दीवार तक में जिन्दा चिनवा दिया। आंतकवादी सिक्खों तथा इन्हें पनाह देने वाले सिक्खों को इतिहास की इन घटनाओ से सबक लेना चाहिए कि इस तरह की मानसिकता वाले लोग सिक्खों के हमदर्द कदापि नहीं हो सकते। जो आंतकवादी सिक्ख इस मुसलिम नेतृत्व के हाथो में खेल रहे हैं वह अन्त में पछतायेंगे कि उन्होने दूसरों के उकसाये में आकर सिक्ख पन्थ का बहुत बड़ा अहित किया है। आज भी पाकिस्तानी जेलों मे सिक्खो के साथ बहुत बुरा सलूक किया जा रहा है।

हिन्दू और सिक्खों के समस्त धार्मिक सगठनों के नेताओं से यह अनुरोध है कि वे गाँव-गाँव मुहल्ले व शहरों में एक साथ मिलकर जायें और लोगों को समझायें कि हिन्दु और सिक्खों के बीच में तो रोटी बेटी का सम्बन्ध है, दोनों के धार्मिक रीति रिवाज एक जैसे हैं यह सब होते हुए हिन्दु और सिक्ख एक दूसरे से अलग हो ही नहीं सकते। हिन्दु और सिक्ख भारत विभाजन (सन् ४७) की उस घटना को कैसे भूल सकते हैं जब पाकिस्तान ने उन्हें भगाया गया था, उनकी जमीन, जायदाद पाकिस्तानियो ने छीन ली थी क्या आंतकवादी सिक्ख और उन्हे पनाह देने वाले सिक्ख पाकिस्तानियों के जुल्मो को भूल गये जो भड़काये मे आकर भारत की एकता व अखण्डता को नुकसान पहुचाने में लगे हैं। □

—राजीव शर्मा
पटपट सराय, मुरादाबाद (यू पी.)

समाचार

पलड़ी (जि० मेरठ) उ०प्र० में १ माह के आर्य वीर दल प्रशिक्षण शिविर का उद्घाटन

२१ जुलाई को सायं ५ बजे श्री बालकृष्ण जी बिन्दकी सचालक पश्चिमी उ० प्र० ने जनता इन्टर कालिज में एक माह के शिविर का ध्वजारोहण करके उद्घाटन किया। इस अवस्था पर श्री जयनारायण जी संचालक अलीगढ मडल तथा श्री फूल सिंह जी आर्य संचालक मेरठ मंडल ने आर्य वीरों को उद्बोधित किया। श्री समर सिंह जो सचालक चौगामा क्षेत्र एव प्रधान आर्य समाज पलड़ी, श्री ऋषिपाल आर्य अधिष्ठाता पलड़ी एव श्री रणसिंह आर्य ने एक बैन्ड आर्यवीर दल पलड़ी को भेंट किया। श्री बालकृष्ण जी ने बैंड तथा श्री जयनारायण जी ने बिगुल बजाकर उसका उद्घाटन किया।

शिविर में स्वंय पूज्य डा० देवव्रत आचार्य प्रधान सहसंचालक सार्वदेशिक आर्य वीर दल प्रशिक्षण देंगे। आचार्य जी पूरे एक माह पलड़ी रहेंगे। प्रातःकाल आसन, प्राणायाम, साधना, दोपहर से सायं तक क्षेत्रीय युवकों तथा सार्व० आर्य वीर दल के १२ शिक्षकों का सघन शारीरिक एवं संरक्षात्मक प्रशिक्षण चलेगा। जड़ी बूटियों पर्यावरण ग्रामीण तकनीकी का भी प्रशिक्षण युवकों को दिया जायगा।

शिविर का समापन–१९ अगस्त १९८६ को जनता इन्टर कालिज में शिविर का समापन होगा।

रणसिंह आर्य
संयोजक उद्घाटन
पलड़ी (मेरठ)
संस्थापयिता
कोर्ट, ई ३५०, निर्माण विहार,
दिल्ली-११००९२

लोकसभाध्यक्ष द्वारा ग्रन्थ विमोचित

सागर (नि प्र)। हाल ही में नई दिल्ली के ससद भवन में लोकसभा के अध्यक्ष डा० बलराम जाखड ने डा० हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के रीडर डा० लक्ष्मी नारायण दुबे की पुस्तक "हिन्दी साहित्य में आर्यसमाज की अभिव्यक्ति" का एक विशेष समारोह में विमोचन किया। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के राष्ट्रीय अध्यक्ष स्वामी आनन्द बोध तथा महामन्त्री श्री सच्चिदानन्द शास्त्री, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के निर्देशक श्री राजमणि तिवारी और सांसदों में श्री केयूर भूषण, श्री अजयनारायण मुशरान, श्री नन्दलाल चौधरी तथा डा० गोविन्ददास रिछारिया की उपस्थिति विशेष उल्लेखनीय रही। डा० जाखड़ ने डा० लक्ष्मीनारायण दुबे को बधाई देते हुए अपने उद्बोधन मे कहा कि उन्होंने इस पुस्तक के माध्यम से देश को एक नई रोशनी दी है।

डा० राजीव दुबे 'राजिम'
अध्यक्ष
रोट्रेक्ट क्लब ब-६, गौरनगर
सागर विश्वविद्यालय, सागर

वेदप्रचार सप्ताह पर प्रवचन

आर्यसमाज अमर कालोनी में ११ अगस्त से १७ अगस्त तक श्री पं० यशपाल सुधांशु एम०ए० विद्यावाचस्पति, सम्पादक आर्यसन्देश के प्रवचन होंगे तथा श्री वेदव्यास भजनोपदेशक के मधुर भजन होंगे। समय रात्रि ८ से १० बजे तक रहेगा।

मन्त्री
आर्यसमाज अमर कालोनी
नई दिल्ली

आवश्यकता है

एक पुरोहित की जो वैदिक संस्कार अच्छी तरह करा सके और आर्य सिद्धांतों पर व्याख्यान दे सके। पारिश्रमिक मिलने पर तय किया जा सकता है। प्रार्थी प्रार्थना-पत्र मन्त्री, आर्यसमाज पंजाबी बाग (वेस्ट), दयानन्द मार्ग, नई दिल्ली-२६ के नाम भेजें।

भवदीय
बी० आर० बेरा
मन्त्री

मृत्यु

(पृष्ठ ३ का शेष)

अनित्य है। संसार का ऐश्वर्य स्थायी नहीं है। इसीलिए जीवन [illegible] लता के लिए धर्म का [illegible] चाहिए। संसार के भौतिक [illegible] हमारे साथ नहीं जायेंगे। [illegible] अच्छे या बुरे कर्म किए [illegible] को लेकर जीव परजन्म को प्राप्त होता है। संस्कृत के एक कवि ने लिखा है—

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे
नारी गृहद्वारे सखा श्मशाने।
देहश्चितायां परलोकमार्गे
धर्मानुगो गच्छति जीव एकः॥

अर्थात् भौतिक धन भूमि में रह जाता है। पशु मकानों में बंधे रह जाते हैं। नारी घर के दरवाजे तक जाती है। मित्र तथा अन्य जन श्मशान तक और यह सुन्दर शरीर चिता पर रख कर राख ढेरी बना दिया जाता है। परलोक में तो केवल मनुष्य के किए गए कर्म ही साथ जाते हैं। इसी बात को हिन्दी के एक कवि ने यूं कहा—

इस धरा का धन धरा पर
हो धरा रह जाएगा।
धन तो सच्चा धर्म है
जो साथ तुम्हारे जाएगा॥

यह बड़े भारी आश्चर्य की बात है कि मनुष्य अस्थायी भौतिक सम्पद के चक्कर मे फंसकर नित्य शाश्वत धर्म एवं शुभकर्मों का परित्याग कर बैठता है, जिससे भावी जीवन सर्वथा विफल हो जाता है। जीवन की सच्ची पूंजी वह है जो शुभ कर्म हम करते हैं और जिनका पवित्र पुरस्कार भावी जन्म के रूप में हमें मिलता है।

मनु जी महाराज ने लिखा है—

एक एव सुहृद् धर्मो
निधनेऽप्यनुयातियः।
शरीरेण समं सर्वं
नाशमन्यत् तु गच्छति॥

अभिप्राय यह है कि पंचभूतों से बनी हुई सभी वस्तुएं जिन्हें हम जीवन भर कमाते हैं, वह यहीं नष्ट हो जाती हैं। जीव के साथ तो उसके कर्म ही जाते हैं। ऐसी अवस्था में हम शाश्वत चेतन आनन्दमय तत्वों को छोडकर उसके सर्वथा विपरीत तत्व के सग्रह में जीवन व्यर्थ क्यों करें? जीवन का सार यही है कि हम सच्ची कमाई करें। जो इस लोक और परलोक में हमारा साथ दे सकें। परमात्मा कृपा करें हमें वह शक्ति, सद्बुद्धि प्राप्त हो जिससे कि इस ओर प्रयत्न करके जीवन को सफल बनाने में समर्थ हो सकें। □

दक्षिण दिल्ली वेद प्रचार मण्डल का वार्षिक निर्वाचन

प्रधान : श्री हरबंस लाल जी कोहली
उपप्रधान : श्री रामशरणदास आर्य,
श्री लखीराम कटारिया,
श्रीमती सरला पाल
महामंत्री : श्री पुरषोत्तमलाल शास्त्री
मंत्री : श्री भूप सिंह गुप्त,
श्री हरीश मित्र अग्रवाल
कोषाध्यक्ष : श्री गंगा शरण जी,
लेखा निरीक्षक : श्री नरेन्द्र लाल असीजा

निवेदक
रामशरणदास आर्य

आर्यसमाज रामपुरा कोटा का वर्ष १९८६-८७ के लिए चुनाव गत दिनों सम्पन्न हुआ जिसमें निम्न पदाधिकारी चुने गये—

प्रधान : श्री सोमेश्वर भूलियान
मन्त्री : वैद्य श्री भगवतीप्रसाद श्याम
कोषाध्यक्ष : श्री कल्याणमल मित्तल

भवदीय
रामदयाल आर्यवीर
उपमन्त्री
आर्यसमाज रामपुरा कोटा

आर्यसमाज बांकनेर का निर्वाचन वर्ष १९८६-८७ के लिए सर्वसम्मति से निम्न प्रकार हुआ—

प्रधान : मांगेराम आर्य
मन्त्री : मेहरलाल पंवार
कोषाध्यक्ष : हुवा सिंह खत्री
पुस्तकालयाध्यक्ष : रामकरण भारद्वाज

मेहरलाल पंवार
मन्त्री
आर्यसमाज बांकनेर

आर्यसमाज साकेत का निर्वाचन १५।६।८६ को हुआ। निम्न व्यक्ति सर्वसम्मति से निर्वाचित हुए—

प्रधान : लखीराम कटारिया
मन्त्री : श्री राजेश्वरचन्द गुणसागर सक्सेना
कोषाध्यक्ष : मेजर ओंकारसिंह वर्मा

भवदीय
लखीराम कटारिया
प्रधान

सत्योपदेश

(एक हो सपू

जनती है शेरनी एक ही सपूत पूत
डरते हैं जीव ।
होता है खरापन वह कहीं रुकने का नहीं,
खोटे दाम चलते नहीं एक भी छदा।

कूकरी और सूकरी को होती है सन्तान बहुत,
तो भी स्वप्न देखे कभी नहीं आराम के।
विश्व गुण पुञ्ज पितृभक्त हो सपूत एक,
सात पांच कपूत बेटे कहो कौन काम के ॥

(इनका विश्वास न करो)

चोर और जुआरी के, शराबी व्यभिचारी के,
चरित्रहीन नारी के, पास नहीं रहिए।
यार दगाबाज के, नारी बे लिहाज के,
साधू नशेबाज से, बात नहीं करिए ॥
गुण्डों की जमात में, झगड़े की बारात में,
ओलों की बरसात में, पैर नहीं धरिए।
कोढ़ी की काया का, बादल की छाया का,
सपने की माया का, विश्वास नहीं करिए ॥

लेखक—स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती
अधिष्ठाता वेद प्रचार

आर्यसमाज नारायण विहार वेद व्याख्यान एवं यजुर्वेदीय यज्ञ

आर्यसमाज नारायण विहार में १६ अगस्त से २७ अगस्त तक वेद व्याख्यान एवं यजुर्वेदीय यज्ञ का आयोजन किया गया है। यज्ञ प्रातः ६.१५ से ७.१५ तक चलेगा। रात्रि ८.३० से ६ बजे तक। श्री बृजपाल शास्त्री के भजन तथा श्री यशपाल सुधांशु एम०ए० द्वारा वेद व्याख्यान होगा।

निर्वाचन

आर्यसमाज नरेला का निर्वाचन निम्न प्रकार से हुआ—
प्रधान : प० मूलचन्द गौतम
मन्त्री : श्री अतर सिंह शास्त्री
कोषाध्यक्ष . श्री जयलाल जी

अतर सिंह शास्त्री
मन्त्री
आर्यसमाज नरेला

पंजाब

देखिये वहां क्या हो रहा है
निर्दोष लोगों का कत्ल हो रहा है
हिन्दुओं का पलायन हो रहा है
अनेकों का दम घुट रहा है
शायद ही कोई ऐसा दिन होता हो
जब पंजाब में न कत्लेआम होता हो
पंजाब धूं धूं जल रहा है
मुख्यमन्त्री बरनाला का वंशीवादन
चल रहा है।

—शकुनचन्द गुप्त विद्यावाचस्पति
लालगंज, जि० रायबरेली (उ.प्र.)

ओ३म्

साप्ताहिक **आर्य सन्देश** कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

वर्ष १० : अंक ३९ | रविवार २४ अगस्त, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ | श्रावण २०४३ | दयानन्दाब्द—१६१

मूल्य : एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश में ५० डालर, ३० पौंड

देशद्रोहियों को गोली से उड़ाने के आदेश जारी करो

बरनाला सरकार को अपदस्थ करना अत्यावश्यक है

अखिल भारतीय पंजाब बचाओ देश बचाओ दिवस पर प्रस्ताव पारित

दिल्ली, १५ अगस्त। आर्यसमाज दीवान हाल में स्वामी आनन्द बोध सरस्वती के सभापतित्व में पंजाब बचाओ देश बचाओ दिवस पर आयोजित यह महती सभा भारत सरकार से अनुरोध करती है—

१. पंजाब की बरनाला सरकार को तुरन्त बर्खास्त करे क्योंकि यह पंथिक सरकार अल्पसंख्यक हिन्दुओं की रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ रही है। यह सरकार कानून और व्यवस्था बनाए रखने में भी असफल रही है।

अतः पंजाब को सेना के हवाले किया जाये।

२. यह सभा भारत सरकार के सीमा सुरक्षा बिल का जोरदार समर्थन करती है। राष्ट्रीय एकता, अखण्डता के लिए गुजरात से पंजाब तथा जम्मू कश्मीर तक की सीमा पट्टी की सुरक्षा के लिए यह विधेयक राष्ट्रीय हितों के लिए आवश्यक है।

इसी सन्दर्भ में इसी सीमा पट्टी के साथ-साथ भूतपूर्व सैनिक परिवारों को बसाने और उन्हें हथियारबन्द करके पूर्ण सुविधा देने की भी सिफारिश करती है।

३. बरनाला सरकार अपरोक्ष रूप में उग्रवादी तत्वों को शह देकर खालिस्तान का मार्ग प्रशस्त कर रही है। इसीलिए अकाली दल एवं बरनाला सरकार ने सीमा सुरक्षा बिल का विरोध किया है।

४. यह सभा भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री मोरार जी देसाई के सुझाव का समर्थन करती है कि उग्रवादी-देशद्रोहियों को गोली से उड़ा देने के आदेश जारी किए जायें और गिरफ्तार किए गए देशद्रोहियों को पंजाब से बाहर की जेलों में भेजकर विशेष अदालतें गठित करके उन्हें सख्त सजाएं दी जायें।

५. पंजाब के विस्थापित हिन्दुओं को भारत सरकार आवास, भोजन और पुनर्वास की वही सुविधाएँ प्रदान करे जो १९८४ के काण्ड में प्रभावित सिखों को दी गई थीं।

६. यह सभा सीमा-सुरक्षा बिल को पारित करने पर प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी को बधाई देती है।

प्रो० बलराज मधोक, प्रो० शेर सिंह तथा श्री मदनमोहन चोपड़ा आदि प्रमुख नेताओं ने उपरोक्त प्रस्ताव का समर्थन किया।

भारत देश महान् है

धरती इसकी सोने की, चांदी का आसमान है।

यहीं है पर्वतराज हिमालय, अमृत-तोया गंगा है,
नृत्य यहीं करता बसन्त का मौसम रंग-बिरंगा है,
मंद-मंद मलयानिल बहता, यहीं कूकती है कोकिल,
यहीं मोर चितचोर, यहीं [illegible] इन्द्रधनुष सतरंगा है।
है कश्मीर यहीं जो जिस पर जन्नत भी कुर्बान है।
भारत देश महान् है।

बुझा शान्ति का दीप, चली जब हिंसा की भीषण आंधी,
इसी देश में प्रकट हुए तब महावीर, गौतम, गांधी,
'अखिल विश्व परिवार एक है' यह उद्घोष इसी का है,
जहां प्रेम की डोरी टूटी वहां इसी ने फिर बांधी।
दिया इसी ने भयभीतों को सदा अभय का दान है.
भारत देश महान् है।

इसी देश में जन्मे अर्जुन, भीष्म, द्रोण-से सेनानी,
चन्द्रगुप्त, चाणक्य, कृष्ण, विक्रम-से चतुर स्वाभिमानी,
यहीं हुए सांगा, प्रताप-से योद्धा, वीर शिवाजी-से,
धर्म हेतु विष पीने वाले दयानन्द-से बलिदानी।
कौन है जिसे नहीं वीर सावरकर पर अभिमान है?
भारत देश महान् है।

ऐसा प्यारा आर्य देश यह, पावन परम मुक्ति का धाम,
सूरज, चांद, सितारों पर भी लिखा हुआ है इसका नाम,
अहोभाग्य, इसकी गोदी में हमें ईश ने जन्म दिया,
आओ मातृभूमि को हम सब मिलकर 'कामिल' करें प्रणाम।
यही हमारा काशी-काबा, यही धर्म-ईमान है।
भारत देश महान् है।

—बल्लभ आर्य 'कामिल'
७२, चाणक्य मार्ग, विदिशा-४६४००१

प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल | व्यवस्थापक—डा० सच्चिदानन्द | सम्पादक—पं० यशपाल सुधांशु एम० ए०

ऋषि, देवता, छन्द और स्वर

लेखक—आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री, दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार

वेद शब्द की सिद्धि चार धातुओं से होती है। विद् ज्ञाने, विद् विचारने, विद्लृलाभे, विद् सत्तायाम्, ज्ञानमय होने से वेद है। उत्तम विचार देने से वेद है। उत्तम ज्ञान लाभ देने के कारण वेद है और हम जीवों की सत्ता बनाए रखने में सहायक होने से वेद है। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से वेद चार हैं। ऋग्वेद ज्ञानकाण्ड प्रधान है। यजुर्वेद कर्मकाण्ड प्रधान है। सामवेद उपासना काण्ड प्रधान है और अथर्ववेद विज्ञान काण्ड प्रधान है। वेद तीन भी हैं। ऋक्, यजु और साम। मन्त्र रचना की दृष्टि से तीन हैं। जो मन्त्र गद्यात्मक है वह ऋक् है। जितने मन्त्र पद्यात्मक हैं वो यजु कहलाते हैं। चाहे वे किसी भी वेद में हों। और गानात्मक मन्त्रों को सामवेद कहा गया है। इसका प्रमाण मीमांसा दर्शन में है—

गीतिषु सामाख्या।

इसलिए प्रायः हमारे जीवन में वेदत्रयी का जिक्र होता है। और ज्ञानात्मक दृष्टि से वेद एक है। चूंकि मूल संहिताओं के रूप में प्रसिद्ध चार ग्रन्थों में ज्ञान का वर्णन है। जैसे कि विद् ज्ञाने धातु से सिद्ध है। हमारी सत्ता बनाए रखने के लिए सद्विचार और उत्तम ज्ञान की आवश्यकता है। ऐसे विचार और ज्ञान जो हमें ज्ञानी बनाकर वास्तव में हमारी सत्ता उत्तम रूप में बनाए रखें। इन सभी वेदों में प्राप्त होते हैं। अतः ज्ञान और विचार का भण्डार होने से सारे ही वेदों को एक कहा गया है। एक पक्ष यह भी है कि—

अनन्ता वै वेदाः।

यह चिन्तन की दृष्टि से है। एक मन्त्र के अर्थ का चिन्तन कई प्रकार से हो सकता है। भौतिक और आध्यात्मिक। भौतिक में भी पृथ्वी लोक, अन्तरिक्ष लोक और द्युलोक। आध्यात्मिक में आत्मा और परमात्मा। जैसे इन्द्र का अर्थ परमात्मा, जीव, राजा, सेनापति, ज्ञान, सूर्य, विद्युत् इत्यादि अनेक हैं। जितना चिन्तन करते चले जायेंगे, उतनी ही अर्थों की विविधता और अर्थ का विस्तार सामने आता जाएगा। इस प्रकार एक मन्त्र ही अनेक तत्वों का अनेक रूप में वर्णन करने वाला होने से "अनन्ता वै वेदाः" इस वाक्य को चरितार्थ करता है। ब्राह्मण ग्रन्थ में अग्नि शब्द के ६५ अर्थ पाये जाते हैं। प्रत्येक मन्त्र के ऊपर चार शीर्षक होते हैं। ऋषि, देवता, मन्त्र और स्वर।

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः।

निरुक्त १।१९

के अनुसार अर्थात् मन्त्र के अर्थ का साक्षात् करने वाला ऋषि कहा जाता है। मन्त्र रचने वाला नहीं। यदि रचयिता को ही ऋषि माना जाए तो सामवेद में "शतं वैखानसा ऋषयः" अर्थात् सौ वानप्रस्थ एक मन्त्र के ऋषि हैं। आपत्ति यह होगी कि सौ ऋषियों ने मिलकर क्या एक ही वेद की रचना की? दूसरा एक मन्त्र के भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न ऋषि मिलते हैं। प्रश्न यह है कि कौन-सा ऋषि मन्त्र का वास्तविक रचयिता है। तीसरा यद्यपि वैदिक साहित्य में ऋषियों के लिए मन्त्रकार तथा मन्त्रकृतः जैसे शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। परन्तु इन शब्दों का अर्थ प्रसिद्ध वेद भाष्यकार सायणाचार्य इत्यादि ने मन्त्र के अर्थ का दर्शन करने वाला ही किया। वे लिखते हैं—

अत्र कृ-धातु दर्शनार्थकः।

अर्थात् कृ धातु का अर्थ यहां बनाने वाला न होकर साक्षात् करने वाला है। इतने पर भी यदि किसी का समाधान न हो तो लोक में स्वर्णकार अर्थात सुनहार, लोहकार (लोहार) जैसे शब्द प्रचलित हैं। परन्तु इन शब्दों का अर्थ कुम्भकार अर्थात् घड़ा बनाने वाला की भांति सोना या लोहा बनाने वाला नहीं है। किन्तु सोने और लोहे से विभिन्न वस्तु बनाने वाला होता है। तो इसी प्रकार मन्त्र के अर्थ का साक्षात् करने के कारण मन्त्रकार कहलाता है। सबसे पहले इस सृष्टि में जिन ऋषियों ने मन्त्रों के अर्थों का साक्षात् किया, उनके उपकार स्मरणार्थ उन का नाम उस-उस मन्त्र के ऋषि के रूप में लिख दिया गया है।

देवता

देवता के विषय में वैदिक साहित्य मे लिखा है—

या मन्त्रेण उच्यते सा देवता।

ऋक् सर्वाणु० ग्रन्थ

अर्थात् मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय को देवता कहा गया है। निरुक्त में लिखा है—

देवो दानाद्वा, द्योतनाद्वा दीपनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा।

अर्थात् भौतिक प्रकाश देने से, पदार्थों के देने से, आध्यात्मिक ज्ञान देने से और द्युलोक में स्थित होने से देव कहा जाता है। इस प्रकार जो शब्द मन्त्र के आशय पर प्रकाश डाल कर हमें उसका बोध कराते हैं, वे शब्द देवता हैं। सामान्य भाषा में कहें तो मन्त्रों के अर्थों का प्रकाश करने वाला देव कहाते हैं। देवता अर्थात् Subject matter।

छन्द

यह मन्त्र की रचना का प्रकार है। वेद में मूल रूप में कुल सात छन्द छन्द हैं। उनके अनेक प्रभेद माने गए हैं। उदाहरणार्थ गायत्री मन्त्र है, जिसे सावित्री मन्त्र भी कहते हैं और गुरु मन्त्र भी उसका नाम है। चूंकि छात्र को प्रवेश काल मे प्रारम्भ में गुरु के द्वारा यह मन्त्र दिया जाता है। इसीलिए गुरु मन्त्र नाम पड़ा और सविता इसका देवता है। अतः सावित्री कहलाता है और गायत्री छन्द होने के कारण गायत्री मन्त्र कहलाता है। गायत्री छन्द में आठ-आठ अक्षर के तीन पाद होते हैं। कुल चौबीस अक्षर का गायत्री छन्द होता है। परन्तु इस मन्त्र में जो कि "तत्सवितुः" से प्रारम्भ होता है, तेईस अक्षर हैं। इसमें निचृद् गायत्री छन्द है। जिसके लिए पिङ्गल छन्दशास्त्र में लिखा है—

त्रयोविंशत्यक्षरा निचृद् गायत्री।

अर्थात् निचृद् गायत्री में तेइस अक्षर होते हैं। परन्तु "विश्वानि देव सवित" इत्यादि मन्त्र मे पूर्ण गायत्री छंद है। त्रिष्टुप ३६, जगती ४०, और गायत्री २४ अक्षर की होती है।

अन्तिम है स्वर। ये दो प्रकार के होते हैं। एक सम्पूर्ण मन्त्र का स्वर और दूसरा प्रतिशब्द का स्वर। इन में पहला सम्पूर्ण मन्त्र का स्वर सात प्रकार का होता है। षड्ज्, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत् और निषाद। संक्षेप मे वाद्य यन्त्रों पर ये ही "स रे ग म प ध नी" आदि अक्षरों से लिया जाता है। ये स्वर सम्पूर्ण मन्त्र में सन्निहित प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से होते हैं। दूसरे शब्द स्वर मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। ये तीन वेदों में समान हैं। ऋक्, यजु और अथर्व में मन्त्रों के अक्षरों पर खड़ी और पड़ी लकीरें होती है। उनमें अक्षरों के ऊपर खड़ी लकीरें स्वरित का परिचायक हैं और अक्षरों के नीचे पडी लकीरें अनुदात्त का चिह्न हैं। उदात्त की किसी प्रकार की लकीर नहीं होती। परन्तु सामवेद में ये एक, दो, तीन संख्या के इन १, २, ३ अङ्कों में बताए जाते हैं। ये दूसरे प्रकार के उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वर अर्थ के निश्चायक होते हैं। जबकि पूर्वोक्त सात स्वर सम्पूर्ण मन्त्र में रस के निश्चायक होते हैं। उदाहरणार्थ यजुर्वेद में एक वाक्य है—

भ्रातृव्यस्य वधाय।

लौकिक संस्कृत में इसका अर्थ भाई के पुत्र को मारने के लिए होता है। क्या वेद ऐसा अनर्थ का प्रतिपादन कर सकता है? स्वर इसका निश्चायक होगा। व्याकरण का सूत्र

"भ्रातुर्व्यच्च" से व्यत् प्रत्यय होता है। त् की हलन्त्यम्, इत् संज्ञा और तस्य लोप से लोप। "तित् स्वरितम्" व्याकरण के इस सूत्र से त् जिसका इत् जाए, उसको स्वरित स्वर होता है। इसके साथ ही व्याकरण के एक और सूत्र—

व्यान्सपत्ने:।

सपत्न अर्थात् शत्रु अर्थ में व्यान् प्रत्यय होता है। इस प्रकार यदि "भ्रातृव्य" शब्द में स्वरित स्वर हो

(शेष पृष्ठ ६ पर)

हमारी ये शस्यश्यामला धरा
विशाल जनशक्ति
कालजयी इतिहास
कल-कल बहती संस्कृति की धारा---
जननी जन्मभूमि का वह गौरव
ब्रिटिश साम्राज्यवाद भी जिससे हारा
और चमका हमारी स्वाधीनता का तारा।
वह ज्योति जली रहे
वही गौरव जिसके बल पर
आज छाया है भारत
औद्योगिक जगत के नभ पर।
और वही गौरव निरंतर
हमें एक सूत्र में जोड़ता रहेगा,
अलगाववादी ताकतों से
भारत की रक्षा करता रहेगा।
स्वाधीनता भावना बनी रहे
डीएवीपी

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन। ३१०१५० के लिए ला० सर्वपाल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथ
वैदिक प्रेस, बस्ती नं० १७; ... दिल्ली-३१ में मुद्रित। पंजि० नं० डी० (डी०) ७५६

ओ३म्

साप्ताहिक

आर्य सन्देश

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

वर्ष १०, अंक ४०	रविवार ३१ अगस्त, १९८६	सृष्टि संवत् १९७२९४९०८८	भाद्रपद २०४	दयानन्दाब्द—१६१
मूल्य : एक प्रति ५० पैसे	वार्षिक २० रुपये	आजीवन २०० रुपये		विदेश मे ५० डालर, ३० पौंड

आप्तपुरुष श्रीकृष्ण

देखो, श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत मे अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमे कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से लेकर मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नही लिखा। "महर्षि दयानन्द"

कहाँ है आज सुदर्शन चक्र

कहां है आज सुदर्शन चक्र काट दें शिशुपालों के शीश।
कहा हल लिये छिपे बलराम खो गए [illegible] शीश।
कहा है परशुराम का परशु काट दे सहस्रबाहु के हाथ।
घूमते क्यों रावण निःशंक अनेको सीता हुई अनाथ।
बीजते भू में विष के बीज जनक क्यो जनक नही हैं आज।
मयूरों को मिलती क्यों मौत भुजगों के सिर पर क्यों ताज।
बादलों से विष की बरसात घुसी हैं झोपड़ियों मे झील।
हवाएँ हुई आज बेशर्म घासवत् रही देह को छील।
कहां है अर्जुन का गाण्डीव बेध दे फिर चिड़िया की आँख।
बढ़ा क्यों हत्याओं का जोर कौन काटे गिद्धों का पाँख।
अंधेरा छाया है हर ओर झूठ का अश्व बड़ा मुहजोर।
लूटते हैं घर को मेहमान शाह को डाट रहा है चोर।
कहां है चणक पुत्र चाणक्य नीति के नयन मुदे क्यो मित्र।
कहां है चन्द्रगुप्त बलधाम हुई है गगा क्यो अपवित्र।
कातिलों के बढ़ते परिवार हो रहे सम्मानित गद्दार।
सत्य को निर्वासित कर दिया झूठ के सजते हैं दरबार।
दुःख के दावानल का जोर उठा है त्राहि त्राहि का शोर।
भर रही है पानी दिन-रात अधरो के घर मे क्यो भोर।
रश्मियों का रथ है अवरुद्ध अहिंसा मरती देखे बुद्ध।
हृदय के भाव नहीं हैं शुद्ध चल रही दुनिया वेद-विरुद्ध।
द्रोपदी लुटती आज असख्य कृष्ण क्यों होता कभी न क्रुद्ध।
हुआ है अर्जुन को फिर मोह लड़ेगा कौन धर्म का युद्ध।
सुयोधन कर में ले पाखण्ड अहम् से है पागल उद्दण्ड।
युधिष्ठिर जुआ खेलने लगे रहेगा कैसे राष्ट्र अखण्ड।
नकुल के डाली हुई नकेल शकुनियों के घातक हैं खेल।
इमलियों के पत्तों पर नित्य भीम अब दण्ड रहे हैं पेल।
हृदय का गोकुल हुआ उजाड़ सिंह पर गीदड़ रहे दहाड़।
वेदना तन पर बनी पहाड़ भावनाओ के बन्द किवाड़।
कुन्तियों ने काटे हैं केश हृदय मे ममता रही न शेष।

(शेष पृष्ठ ७ पर)

प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल व्यवस्थापक—डा० गणेशीलाल सम्पादक—प० यशपाल सुधांशु एम० ए०

प्रेरक प्रसंग

प्रस्तोता—सत्यानन्द आर्य

।१।

घटना उस समय की है जब एक युद्ध में विजय प्राप्त करके सिकन्दर महान और उसके गुरु अरस्तू एक साथ वापस लौट रहे थे।

ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों और घने जंगलों को पार करते समय रास्ते में जब एक काफी गहरा नाला आया तो अरस्तू ने कहा, "पहले नाला मैं पार करता हूँ, बाद में तुम करना।" लेकिन सिकन्दर गुरु की आज्ञा का का पालन किए बिना नाला पार कर गया। सिकन्दर के इस व्यवहार से क्रोधित होकर अरस्तू ने कहा, "आज तक तुमने मेरी आज्ञा नहीं टाली, फिर आज यह नई बात कैसे हो गई"?

सिकन्दर ने बड़ी नम्रता से सिर झुकाकर कहा, "नाला पार करते समय आपके साथ यदि कोई घटना घट जाती तो मुझ में इतनी शक्ति कहाँ कि मैं दूसरा गुरु ला सकता, परन्तु मेरे डूबने पर आप अपने ज्ञान से सैंकड़ों सिकन्दर बना सकते हैं।"

।२।

अमरीका के उपराष्ट्रपति जैफरसन बहुत सादगी से रहते थे। एक बार वह कहीं बाहर गये तो अपना बिस्तर कंधे पर लादे एक होटल में ठहरने पहुँचे। होटल के मालिक ने ऐसे साधारण आदमी को अपने यहाँ ठहराने में अपनी हेठी समझी और स्थान खाली न होने का बहाना कर उन्हें इनकार कर दिया।

जैफरसन बिना कुछ कहे वहाँ से चल दिए और एक अन्य होटल में जा ठहरे। बाद में जब पहले होटल के मालिक को इसके बारे में पता चला तो वह हड़बड़ा गया और गाड़ी लेकर उन्हें लौटा लाने दूसरे होटल जा पहुँचा।

जैफरसन ने उसके आने का कारण जानने पर उससे नम्रता से कहा, "जिस होटल में साधारण व्यक्ति के ठहरने का स्थान नहीं है, उसमें उपराष्ट्रपति को ठहराने जितना स्थान कहाँ खाली होगा?" और वह उनके साथ नहीं गए।

।३।

एक बार जार्ज बर्नार्ड शा को एक महिला ने रात्रि भोज पर निमन्त्रित किया। काफी व्यस्त होने के बावजूद उन्होंने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

जिस दिन का निमन्त्रण था, उस दिन शा बहुत व्यस्त थे। काम खत्मकर वह जल्दी से उस महिला के घर पहुंचे। उन्हें देखते ही उस महिला की आंखें खुशी से चमक उठीं। किन्तु अगले ही क्षण उसके चेहरे पर निराशा के भाव छा गए।

हुआ यह था कि शा अत्यन्त मामूली कपड़े पहने हुए थे। कारण पता चलने पर शा ने कहा कि देर हो जाने के कारण उन्हें कपड़े बदलने का समय नहीं मिल पाया किन्तु वह महिला न मानी। उसने कहा, "आप मोटर गाड़ी में बैठकर जाइये और अच्छे वस्त्र पहनकर आइए।

"ठीक है, मैं अभी आया, "यह कहकर शा घर चले जब लौटकर आए तो उन्होंने बहुत कीमती कपड़े पहने हुए थे।

थोड़ी देर बाद अचानक सब ने देखा कि शा आइसक्रीम तथा अन्य खाने की चीजों को अपने कपड़ों पर पोत रहे हैं। साथ ही बोल रहे हैं, "खाओ, मेरे कपड़ो, खाओ। निमन्त्रण तुम्हीं को मिला है। तुम ही खाओ।"

"यह आप क्या कर रहे हैं?" सब बोल पड़े।

शा ने कहा, "मैं वही कर रहा हूँ मित्रो जो मुझे करना चाहिए। यहाँ निमन्त्रण मुझे नहीं मेरे कपड़ों को मिला है। इसलिए आज का खाना मेरे कपड़े ही खायेंगे। उनके यह कहते ही पार्टी में सन्नाटा छा गया। निमन्त्रण देने वाली महिला की शर्मिन्दगी की सीमा न रही। वह समझ चुकी थी कि व्यक्ति का मूल्यांकन उसकी प्रतिभा से होता है, कपड़ों से नहीं।

दूध गाय का ही क्यों ?

गाय का दूध मनुष्य के लिए शक्ति, सौंदर्य और उसके शरीर को कोमल बनाने में सहायक होता है और सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि यह मनुष्य के दिमाग के तन्तुओं को बनाने में सहायक होता है। इस प्रकार यदि गर्भवती स्त्री को गाय का मलाई युक्त दूध नियमित रूप से मिलता रहे तो वह अपने साथ अपने पेट में पलने वाले बच्चे को भी सम्पूर्ण भोजन और आवश्यक तत्व देती रहेगी।

जन्म के समय बच्चे का जन्म ३-४ किलोग्राम रहता है और उसका जीवित रहना तथा बढ़ना मां के दूध पर निर्भर करता है किन्तु इसके बाद पशु के दूध का स्थान है। उसमें गाय बच्चे के जीवन को बचाने की दृष्टि से सबसे सुरक्षित प्राणी के रूप में हमारे सामने आती है। गाय के दूध में आवश्यक सैकड़ों रासायनिक पदार्थ उपलब्ध होते हैं जो बच्चे की जिन्दगी को बचाने में सक्षम होते हैं। गाय बच्चे को कैल्शियम, मैग्नीशियम, सिलीकान और दांतों तथा हड्डियों के ढांचे के लिए फ्लोरीन देती है। हड्डियों के खोखले भाग को लाल रक्तयुक्त करने तथा अन्य तंतुओं को पोषण के लिए शक्ति प्रदान करती हैं। फिर ये सब मिलकर अंशों तथा जोड़ने वाले तंतुओं का निर्माण करते हैं। तत्पश्चात् चर्बी, मांस, जोड़ रक्त, मज्जा, त्वचा इत्यादि का निर्माण करते हैं जो शरीर में अम्ल को जन्म को जन्म देते हैं। इसके साथ ही सल्फर और फास्फोरस के सूक्ष्म तत्व भी जुड़ जाते हैं। इन सबों का अंतिम परिणाम 'प्रोटीन' उत्पन्न करता है। मां और गाय बच्चे के लिए अपने दूध के माध्यम से सभी आवश्यक अमीनो एसिड यानी सम्पूर्ण आवश्यक किस्मों की प्रोटीन पदार्थ जुटाती है।

मानव मां अपने शरीर में अमीनो एसिड के कई प्रकारों को एक साथ घुला-मिला सकती है किन्तु वे तत्व जो पौधों से मिलते हैं, मां के दूध से प्राप्त नहीं हो सकते। अतः ये तत्व मां को गाय के दूध से ही प्राप्त करने होंगे तथा अपने बच्चे को देने पड़ेंगे। इस प्रकार गाय केवल बच्चों की पोषक और बचाने वाली ही नहीं है वरन् दूसरे शब्दों में, बच्चे की मां है।

मानव की ही भांति अन्य अमानवीय माताएँ जैसे मुर्गी घोड़ी, कुतिया, हिरनी आदि अनेक कभी भी उपरोक्त अमीनो-एसिड में से दसों को एक में मिलाकर निर्माण नहीं कर सकती हैं। विकास के लिए लिए महत्वपूर्ण विटामिन बी-१२ का निर्माण तो कर हो नहीं सकतीं भेड़-बकरियां रोमंथक पशु होने के नाते उपर्युक्त विटामिन तथा प्रोटीन को पचा सकती हैं किन्तु वे उन मिली-जुली वस्तुओं का उत्पादन नहीं कर सकतीं क्योंकि वे डंठल एवं पुआल आदि नहीं खातीं। इसलिए उनकी संतानें गाय-बैलों की भांति आवश्यक शक्ति जुटाने और ऊर्जा उत्पन्न करने में असमर्थ होती हैं।

भारत करोड़ों टन खाद्यान्न उत्पन्न करता है और इसके डंठल-पुआल आदि में से लाखों टन नाइट्रोजन, फास्फोरस के अतिरिक्त लाखों टन रासायनिक पदार्थ भी मिलते हैं। ये उत्पादक तत्व इतनी बड़ी और उच्चकोटि की मात्रा में भूमि की पूंजी बढ़ाते हैं। केवल गायें ही यह शक्ति रखती हैं कि डंठल-पुआल की गाठें चबा कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालती हैं वे उनमें मिलने वाले सारे तत्वों को पचाकर तीन भागों से बाहर निकालती हैं।

बच्चा देने वाले जानवरों में केवल गाय ही एक ऐसा जानवर है जिसकी पोटी (आंत) १८० फीट लम्बी होती है, जो पर्याप्त मात्रा में डंठल-पुआल आदि मोटे पौधों को अपनी आंतों में रख सकती है। वह एसिटिक एसिड को आगे ले जाकर मलाई युक्त दूध में परिवर्तन करने में सहायक होते हैं। गाय का दूध मनुष्य के लिए शक्ति, सौंदर्य और उसके शरीर को कोमल बनाने में सहायक होता है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह मनुष्य के दिमाग के तंतुओं को बनाने में सहायक होता है। इस

(शेष पृष्ठ ५ पर)

सुदर्शन चक्र

(पृष्ठ १ का शेष)

भाड़ में जाए अपना राष्ट्र पड़े चूल्हे में अपना देश।
कह रहे बेटे ऐसी बात डोलियों को लूटे बारात।
डरे यमुना गोवर्धन खूब आ रही प्रालेयी बरसात।
शोक में डूबा आज अशोक वक्ष पर संगीनों की नोक।
अहिंसा को हिंसा ने टोक पाप ने लिया पुण्य-रथ थाक।
हर तरफ है बस हाहाकार रक्त का गरजे पारावार।
दीखती कहीं नहीं पतवार सिरों पर लटकी हैं तलवार।
बना है भस्मासुर विज्ञान ज्ञान पर हावी है अज्ञान।
मशीनों ने मारा इन्सान शाप से डरा-डरा वरदान।
देश के भीतर उठा उफान रुका है सीमा पर तूफान।
राम से लड़ न पड़े दशमेश भारती से भिड़ गई अजान।
कहां है ऋषि-मुनियों का देश शेष हैं थोड़ से अवशेष।
त्याग का होता है अपमान भोग को दर्जा मिला विशेष।
हजारों हाथ हजारों पांव जल रहे धू-धू करके गांव।
कैक्टसों का होता अभिषेक उपेक्षित है पीपल की छांव।
बढ़ा है रोग नहीं उपचार हर तरफ आयातित कुविचार।
सादगी भूल गए हैं लोग चढ़ा है डिस्को नया बुखार।
कहां हो कृष्ण कन्हैया आज ढूंढता फिरता तुम्हें समाज।
भूल क्यों बैठे यदा यदा हि वचन की कौन रखेगा लाज।
यशोदा की आंखों में पीर देवकी के पग में जंजीर।
कंस औ जरासंध का जोर नन्द के नयन लुटी जागीर।
बहुत ही दुःखी दिखे वसुदेव हवाएँ करने लगीं कुटेव।
देव अब नहीं रहे हैं देव निराशाग्रस्त आज सहदेव।
तुम्हें आना ही होगा नाथ नहीं तो छूट जाएगा साथ।
तुम्हारी गउएं कटतीं नित्य नाथ के होते हुए अनाथ।
दिशाएँ देती हैं धिक्कार बधिर को सुनती नहीं पुकार।
जीत भी बनी हुई है हार हमारा कुछ न रहा अधिकार।
प्रतीक्षारत हैं सब नर-नार रात को कर दो पुनः सवेर।
जन्म लो करो न किंचित् देर देर से ही होती अन्धेर।

—प्रो० सारस्वत मोहन 'मनीषी'
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
डी. ए. वी. कालेज, अबोहर (पंजाब)

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

द्वारा प्रकाशित वैदिक साहित्य

कक्षा प्रथम	नैतिक शिक्षा (भाग प्रथम)		१.५०
कक्षा द्वितीय	नैतिक शिक्षा (भाग द्वितीय)		१.५०
कक्षा तृतीय	नैतिक शिक्षा (भाग तृतीय)		२.००
कक्षा चतुर्थ	नैतिक शिक्षा (भाग चतुर्थ)		३.००
कक्षा पंचम	नैतिक शिक्षा (भाग पंचम)		३.००
कक्षा षष्ठ	नैतिक शिक्षा (भाग षष्ठ)		३.००
कक्षा सप्तम	नैतिक शिक्षा (भाग सप्तम)		३.००
कक्षा अष्टम	नैतिक शिक्षा (भाग अष्टम)		३ ००
कक्षा नवम	नैतिक शिक्षा (भाग नवम)		३.००
कक्षा दश	नैतिक शिक्षा (भाग दश)		४.००
कक्षा ग्यारह	नैतिक शिक्षा (भाग ग्यारह)		४.००
कक्षा बारह	धर्मवीर हकीकतराय	वैद्य गुरुदत्त	५.००
	फ्लैश आफ ट्रूथ (Flash of Truth)	डा० सत्यकाम वर्मा	२.००
	सत्यार्थप्रकाश सन्देश	,, ,,	२.००
	एनाटोमी ऑफ वेदान्त	स्वा० विद्यानद सरस्वती	५.००
	सत्यार्थ सुधा	प० हरिदेव सि०भू०	२.००
	दयानन्द एण्ड दा वेदाज (ट्रैक्ट)		५०/- रु० सैकड़ा
	पूजा किसकी ? (ट्रैक्ट)		५०/- रु० सैकड़ा
	मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम (ट्रैक्ट)		५०/- रु० सैकड़ा
	योगीराज श्रीकृष्ण का सन्देश (ट्रैक्ट)		५०/- रु० सैकड़ा
	महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी स्मारिका		५.००
	स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान अर्धशताब्दी स्मारिका		५ ००

नोट—इन पुस्तकों पर १५% कमीशन दिया जाएगा।

निर्वाचन

आर्यसमाज आदर्शनगर (पंजी०) दिल्ली-३३ का सत्र १९८६-८७ हेतु पदाधिकारियों एवं कार्यकारिणी सदस्यों का सर्वसम्मति से निर्वाचन किया गया।

प्रधाना : श्रीमती अर्जुन देवी सोनी
उपप्रधान : श्री शिवदयाल
मन्त्री : धर्मचन्द बत्रा
उपमन्त्री : रतनलाल चुघ
कोषाध्यक्ष : अर्जुन देव ओधर

धर्मचन्द्र बत्रा
मन्त्री
आर्यसमाज आदर्शनगर

आर्यसमाज आर्यपुरा, सब्जी मण्डी, दिल्ली-७ का चुनाव २८ जुलाई १९८६ को श्री प्रेमसागर गुप्त जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

प्रधान : श्री पुरुषोत्तम दास
उपप्रधान : हरिसिंह गुप्त
मन्त्री : पुष्पराज कोहली
उपमन्त्री : गिरीशचन्द्र शास्त्री
कोषाध्यक्ष : सुभाषचन्द्र
लेखा निरीक्षक : डा. गणेशीलाल वर्मा

पुष्पराज कोहली
मन्त्री

साम्प्रदायिकता और कम्युनिज्म रूपी विषधर देश को डस रहे हैं—गुरुदत्त

—: एक भेंट वार्ता :—

भारत के कम्युनिस्ट एक ओर तो भाषण एवं लेखन की स्वतन्त्रता के अधिकार की लड़ाई लड़ने के लिए तत्पर रहते है, वहा दूसरी ओर वे अपने विचारो के विपरीत विचार वाले लेखक तथा वक्ता का गला दबाने के लिए भी उतनी ही तत्परता दिखाते हैं। भारत के जो प्रथितयश लेखक एवं बुद्धिजीवी कम्युनिस्ट विचारधारा के विपरीत विचार वाले हैं, उनमें उपन्यासकार एवं चिन्तक श्री गुरुदत्त प्रमुख हैं।

श्री गुरुदत्त की रचनाओं का मुख्य विषय कम्युनिज्म का प्रत्याख्यान और देशभक्ति का प्रतिपादन होता है। उनकी रचनाओं के संस्करण हजारो की संख्या में छपते हैं और एक-एक रचना के कई-कई संस्करण प्रकाशित होते हैं। यही कम्युनिस्टों की व्यथा कथा है। भले ही गुरुदत्त की रचनाओं का रूसी-चीनी अथवा किसी अन्य भाषा में अनुवाद न हुआ हो, तदपि भारतवर्ष में हिन्दी जगत् में वे सर्वाधिक पढे जाने वाले साहित्यकार हैं। उन पर सूरत, अहमदाबाद तथा चण्डीगढ़ विश्वविद्यालयों के शोध छात्रो द्वारा प्रस्तुत 'थीसिस' पर डाक्टरेट की उपाधि प्रदान की जा चुकी है। यह भी कम्युनिस्टो के लिए सिरदर्द बन गया है। यही कारण है कि वे समय-समय पर गुरुदत्त के विरुद्ध अभियान चलाते रहते हैं।

इस बार कम्युनिस्टों का अभियान पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के एम० ए० हिन्दी के पाठ्यक्रम मे निर्धारित उनके उपन्यास 'महाकाल' को लक्ष्य में रखकर चालू किया गया है। जहां तक उपन्यास की कथा-वस्तु, शिल्प आदि का संबंध है, उस विषय मे कम्युनिस्ट मौन हैं। उनका तो केवल यही कहना है कि क्योंकि गुरुदत्त साम्प्रदायिक विचारधारा के व्यक्ति हैं, अतः उनकी कृति पाठ्यक्रम से निकाल दी जाए। इस अभियान मे कितने हस्ताक्षरकर्ता ऐसे हैं जो हिन्दी पढे है अथवा जिन्होंने 'महाकाल' पढा है, यह भी विचारणीय है। ऐसे लोगों का हस्ताक्षर करना यही सिद्ध करता है कि उनके मन में गुरुदत्त की ख्याति के प्रति दुर्भावना है। किन्तु गुरुदत्त तो ऐसे हैं कि 'चन्दन विष व्यापत नहीं लपटे रहत भुजंग।' उनके मन पर तथा उन की ख्याति पर भी इस दुष्प्रचार से कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता।

हम ने इस विषय में श्री गुरुदत्त से भेंट की और उन से कुछ प्रश्न किए। उनका कहना है—

☐ मुझे विदित है कि कुछ वामपन्थी लेखकों को मेरी एक पुस्तक के पटियाला (पंजाबी) विश्वविद्यालय में लिये जाने से दुःख हो रहा है। वे अत्यधिक विक्षुब्ध हैं। किन्तु दुर्भाग्य यह है कि मेरे पाठकों को इन की बात अयुक्त प्रतीत होती है। उन मे यदि किसी प्रकार के लोक कल्याण की भावना होती तो मैं समझता कि उनका काव-काव करना सार्थक है।

☐ जहां तक सामाजिक मूल्य आदि की बात है, उन सभी दृष्टियों से मैं और मेरा उपन्यास दोनों ही इस कसौटी पर खरे उतरते है और 'महाकाल' तो ऐतिहासिक उपन्यास है। जो लाभ इतिहास के अध्ययन से हो सकता है, वही 'महाकाल' के पठन से भी होगा। आज की स्थिति कुछ विकृत हो गई है। इस विकृत परिस्थिति मे रस लेने वालो को इतिहास तो व्यर्थ ही प्रतीत होगा। परंतु वे यह भूल जाते हैं कि वे स्वयं विकृत परिस्थिति की उपज होने से सत्य को असत्य समझने लगे हैं। इतिहास किसी न किसी रूप मे अपने को दोहराता है।

☐ वामपन्थियों ने साम्प्रदायिकता को गाली बना दिया है। वास्तव में वे साम्प्रदायिकता का अर्थ ही नही जानते। किसी को गाली देने से व्यक्ति स्वयं दोषमुक्त नही हो जाता। मैंने कभी किसी सम्प्रदाय का पृष्ठपोषण नहीं किया। मैं हिन्दू हूं और हिन्दू कोई सम्प्रदाय नही है। यह जीवन की एक व्यापक जीवन-मीमांसा है। जो लोग ऐसा नहीं मानते, मैं समझता हूं कि वे हिन्दू तथा हिन्दुत्व को समझे ही नहीं। वास्तव में वे यह भी नहीं जानते कि सम्प्रदाय क्या होता है और साम्प्रदायिकता क्या होती है। वे तो जिसे वे पसन्द नहीं करते, उसे गाली देना ही जानते हैं। जिन अर्थों में वे मुझ पर सांप्रदायिकता का आरोप लगाते हैं, वास्तव में वे और कम्युनिज्म दोनों ही ऐसे विषधर हैं जो इस देश को डस रहे हैं।

☐ मैं यह तो मानता हूँ कि हिन्दू एक ऐसा समाज है जो इस देश में बहुत बड़ी संख्या में है। मैं स्वय उस समाज का अंग होने के नाते उसके कल्याण के लिए तो लिखता हूँ परन्तु किसी भी अन्य समाज के प्रति मेरी दुर्भावना नहीं है। हां, समय-समय पर सबकी मैं आलोचना-समालोचना करता रहा हूँ।

☐ कुछ लोग यह समझते हैं कि वर्तमान ढंग का प्रजातन्त्र कल्याण का सूचक है। किन्तु मेरी दृष्टि में इस प्रजातन्त्र में बड़े दोष हैं। किसी भी भले व्यक्ति को इस प्रजातन्त्र मे उभरने की सुविधा नहीं है। इसमें तो धन, चाटुकारिता और सत्य को मिथ्या बताने की कुशलता का ही परिचय मिलता है। मैं विद्वानों की सत्ता का पक्षपाती हूँ। विद्वान को विख्यात होने के लिए धन की आवश्यकता नहीं होती। मेरे ये वामपथी आलोचक प्रजातन्त्र के मिथ्या अर्थ लगाकर मुझे गाली दे रहे हैं।

☐ जो कुछ मैं लिखता हूँ उसमें अश्लीलता कहीं दिखाई नहीं देती। मेरे कई पाठक मेरे उपन्यासों को अपने परिवार में बैठकर सबके सामने पढते हैं जिससे कि मेरी रचनाओं में विवेचित विषयों पर परस्पर सभी चर्चा कर सकें। हां, मैं अश्लील लिखने वालों की निंदा अवश्य करता हूं। कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि पीलिया के रोगियों को मैं पीला-पीला दिखाई दे रहा हूं। इस प्रकार वे अपनी दूषित मनोवृत्ति का ही परिचय दे रहे हैं।

☐ मैंने किसी सम्प्रदाय के पीर-पैगम्बर अथवा प्रमुख व्यक्ति की निन्दा नहीं की। यह सच है कि मैं उनको मनुष्य समझकर गुण-दोषों का मिश्रण मानता हूँ। कोई भी मानव परमात्मा नहीं हो सकता। मैं केवल उन के कर्मों का विश्लेषण करता हूं।

☐ मैं मुसलमानों तथा ईसाइयों की भी निन्दा नहीं करता। हां [illegible] मानता हूं कि वे गुमराह किये जा रहे हैं। बाइबल में लिखा है कि ईसा कहता था कि मुझ से पहले आने वाले झूठे और छलिया थे और हजरत मुहम्मद कहते थे कि मुझे खुदा का पैगम्बर मानो और मेरे अलावा दूसरों को पैगम्बर मानने वाले काफिर हैं जो तहेतेग के लायक हैं। मैं बाइबल तथा कुरान को केवल इस कारण सत्य नहीं मान सकता क्योंकि इनके मानने वाले काफी अधिक संख्या में हैं। कुरान में कहा है कि हजरत मुहम्मद ने उंगली से चांद के टुकड़े किये हैं। बाइबल में कहा है कि जमीन स्लेट की भांति चपटी है।

☐ मान्यता में भेद होने से कोई मार डाला जाने योग्य नही हो जाता। मान्यता तो समझने-समझाने की बात है। कर्म अवश्य पाप तथा पुण्यमय होते हैं। पाप कर्मों का विरोध होना ही चाहिए। मान्यताएं प्रेरणा का विषय हैं और उनको प्रेरणा से ही बदला जा सकता है।

☐ मै हिन्दू धर्म का पक्षपाती हूं किन्तु हिन्दू कोई सम्प्रदाय नहीं है और जहां तक इतिहास का सम्बन्ध है, अंग्रेजों की जूठन चाटने वाले जो प्राचीन काल का इतिहास सामने रख रहे हैं, उसे मैं अज्ञानपूर्ण तथा पक्षपातपूर्ण मानता हूं। वह असत्य तथा मिथ्या कथन है। मैं इसे ही प्रमाण सहित सिद्ध करने का यत्न करता रहता हूं।

☐ 'विश्वासघात' तथा 'देश की हत्या' में गांधी तथा कांग्रेस पर आक्रमण एवं आलोचना के सम्बन्ध मे मैं कहूंगा कि आक्रमण की बात तो असत्य है। हां, आलोचना-समालोचना करना लेखक का कर्तव्य है। वही मैंने अपने इन उपन्यासों में किया है। तर्क से सिद्ध बात को आक्रमण कहना उनका बुद्धि विभ्रम है।

गांधी, कांग्रेस तथा नेहरू की प्रशंसा तो उस समय के कांग्रेसी भी नहीं करते थे और आजकल के कांग्रेसी भी नहीं करते। मैंने तथ्यों के आधार पर ही आलोचना की है।

(शेष पृष्ठ [illegible] पर)

यूरोप की धरती से

(द्वितीय भाग)

—डा० रूपकिशोर शास्त्री
एम० ए०, एम० फिल०, पी० एच० डी०

[illegible] के सन्दर्भ में—

यूरोप के अनेक देशों की संस्कृति [illegible] शिक्षा, धर्म, भाषा, रहन-सहन, खान-पान, राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था को बारीकी से समझने, पढ़ने एवं अनुभव करने तथा वहाँ के साथ वैदिक सिद्धान्तों एवं मान्यताओं का प्रचार-प्रसार करने की भावना व उद्देश्य से १८ मई, १९८६ की रात्रि को इन्दिरा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे दिल्ली पर पहुंच गया और १९ मई की प्रातः १ बजे दिल्ली से चलकर सर्वप्रथम नीदरलैण्ड के प्रसिद्ध हवाई अड्डे शीफोल पहुंच गया। उस समय भारत का प्रातः ११-३० बजे का और नीदरलैण्ड का प्रातः ८.३० बजे का समय था। वहां के मेरे परिचित निवासियों ने हार्दिक स्वागत किया।

यूरोप के सभी देश ठण्डे ही हैं। इस दृष्टि से सभी को सामान्यतः वेशभूषा तदनुकूल ही होती है और होनी भी चाहिए। कड़ाके की सर्दियों में तो ऋणात्मक डिग्री से भी नीचे तापमान चला जाता है समस्त सड़कें, खेत तथा मकानों की छतों व आंगनों में बर्फ जम जाती है इससे बचाव के लिए प्रत्येक घरों में तथा प्रत्येक कमरों, स्नानगारों व शौचालयों में काफी लम्बे चौड़े हीटर लगे हुए हैं उनसे घर गर्म रहते हैं और वहाँ गर्मियों के आने पर तापमान अधिकतम २५ या कभी २८ तक भी हो जाता है। आजकल बहुत ही सुहावना मौसम है, चारो ओर हरियाली ही हरियाली है। वहां की गर्मी के दिनों प्रायः स्त्री और पुरुषों की वेशभूषा भिन्न हो जाती है। यह तो मैंने जानकारी के लिए वहाँ के बारे में सामान्य बात का उल्लेख किया है।

यहाँ मैं वेशभूषा से अभिप्राय वहाँ के लोगो के वस्त्रादि के पहनावे का उल्लेख नहीं करना चाहता परन्तु उनके विशेष पर्वो समारोह या विशेष अवसरों पर धारण की गई वेशभूषा की ओर संकेत करना चाहता हूँ। चाहे गोरो, हिन्दू, नीग्रो या मुस्लिम जातियां क्यों न हों। हमारे यहाँ की तरह भी यूरोपियन जनसमुदाय की अपनी तरह की वेशभूषा है। हालेण्ड [illegible] शहर में भारतीयों की विशेष- [illegible] मूल के लोगों की एक [illegible] है [illegible]। यहाँ [illegible] के कारण [illegible] मिल जायेगा [illegible] कि हम [illegible] दिल्ली में कुछ [illegible] तरह के लोग मिलेंगे लेकिन अधिकांश की वेशभूषा वहीं के नर-नारियो की भाँति हो जाना स्वाभा- है। बेलजियम में भारतीय लोग न के बराबर ही मिलेंगे। वहां मुझे अपने प्रवास के दौरान बहुत कम ही लोग मिले।

जैसा कि गत लेख में मैंने उल्लेख किया कि हालैण्ड में सूरीनाम से आये हुए भारतीय मूल के लोग लाखो की संख्या मे बसे हुए हैं यद्यपि वहाँ भारतीय स्त्रियों की यद्यपि आम वेशभूषा गोरी स्त्रियो जैसी ही होती है परन्तु विशेष समारोह, उत्सवों, पर्वों, विशेषतया विवाहादि धार्मिक शुभावसरों पर भारतीय वेशभूषा अर्थात् साड़ी ब्लाउज को धारण करती हैं कुछ सलवार कुर्ती भी पहन लेती हैं। ऐसी ही मुख्य यजमान, यज्ञकर्ता या परिवार के लोगों ने भी धोती कुर्ता पहनकर अपने धार्मिक कृत्य सम्पन्न कर भारतीय परम्परा को जीवित रखा हुआ है। हालेण्ड के पश्चिमी भाग मे बेलजियम देश की सीमा के लगभग निकट एक क्षेत्र है जीलेण्ड वहाँ मेरे एक घनिष्ठ मित्र परिवार रहते हैं उनका नाम है श्री नारायण कन्हाईसिंह, जब उनको मालूम हुआ कि भारत से डा० रूप किशोर शास्त्री आये हुए हैं उन्होने तुरन्त ही मेरी बिना स्वीकृति के ही अपने घर यज्ञ और सत्संग रख दिया। उस समय मैं एम्सटडम में था उनके घर से लगभग २५० किलोमीटर दूर था, फोन किया, कुशल-क्षेम पूछने के पश्चात् उन्होंने कहा कि ३१ मई शनिवार को सत्संग एवं यज्ञ रखा है। मैं उनके आदेश को टाल न सका। उनके घर मुझे उनके बहनोई जिनके घर मैं ठहरा हुआ था श्री हरिदत्त नेशाल एम्सटर्डम अपनी कार से जीलेण्ड ले गये। सर्दी पड़ रही थी उस दृष्टि से मैंने शेरवानी और चूड़ीदार पजामी पहनी हुई थी, उनके घर पहुँचे एवं उन्होंने हार्दिक स्वागत किया उस समय वे पेन्ट और कोट पहने हुए थे यज्ञ का कार्यक्रम प्रारम्भ होने ही वाला था तब यज्ञ में भाग लेने वाले परिवार के सभी सदस्य भारतीय वेशभूषा में बैठे। भाई श्री नारायण को स्वयं धोती कुर्ता में और उनकी धर्मपत्नी को साड़ी ब्लाउज में देखकर मैं जहाँ खुश हो रहा था वहाँ अपनी वेशभूषा अर्थात् शेरवानी, चूड़ीदार पजामी को देख-देखकर अत्यधिक ग्लानि अनुभव कर रहा था उस दिन से यूरोप के सभी देशो में धार्मिक उत्सवों पर धोती कुर्ता और जाकेट या शाल पहनने के अतिरिक्त कभी भी अन्य वेशभूषा नही पहनी हाँ अन्य किसी कार्यक्रमो या कही घूमने जाने के अवसर पर बंद गले का सूट, शेरवानी आदि अवश्य धारण करता रहा लोग मर्दानी धोती, कुर्ता और स्त्रियाँ साड़ी ब्लाउज आदि ऐसे धार्मिक अवसरों पर प्राय. अवश्य पहनते हैं हालैण्ड में कन्यादान भी भारतीय वेशभूषा को ही धारण करके करना उनके धार्मिक कृत्यो का एक अंग है।

यद्यपि भारतीय वेशभूषा (महिलाओं और पुरुषों की) हालैण्ड में आम दिन नही पहनते और न ही सार्वजनिक स्थानों पर। मैं हालैण्ड के लगभग सभी शहरो एव कस्बो मे गया वैसे कभी हम पैदल नही जाते थे और न ऐसा वातावरण ही था कि पैदल जाया जाये एकाध फर्लांग की बात तो भ्रमण करने जैसी बात है आमतौर पर कारों से ही आना जाना था। जब कभी मैं धोती कुर्ता पहन-निकलता तो वहाँ के भारतीय प्रवासी तो समझने में देर नही करते थे कि यह अपने आजाओं (पूर्वजो को आजा कहते हैं) देश के हैं, सम्मान से देखते तथा बहुत से तो नमस्ते कर मिलते भी थे। गोरे एवं नीग्रो भी धोती कुर्ता पहने मुझे देखते तो देखते ही रह जाते। हालांकि वे समझ जाते थे कि यह भारत से आया है फिर भी उन्हे जब कोई बताता कि यह भारतीय फादर है तो बहुत सम्मान करते एव मुझसे भारतीय दर्शन व संस्कृति पर चर्चा भी अनेक लोग करते थे, मैं भी रुचि लेकर उनको यथाशक्ति समझाने का प्रयास करता यह सब वहाँ बहुत अच्छा लगता था वैदिक धर्म के सिद्धान्तों को उन्हे बताता हुआ वैदिक प्रचार प्रसार का एक अंग समझता था इन सबका अध्ययन करने के उपरान्त मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि किसी भी देश की संस्कृति एवं सभ्यता उनकी वेशभूषा से भी स्पष्ट होती है।

हालैण्ड के लोगो जैसी निष्ठा मैंने हालैण्ड के अतिरिक्त इंग्लैण्ड पश्चिमी जर्मनी, फ्रांस या बेल्जियम मे रहने वाले भारतीयों में नही देखी। ऐसा नही है कि इन देशो मे रहने वाले भारतीय ऐसा नही कर सकते बल्कि यही कहा जा सकता है कि इन लोगो में हालैण्ड के लोगो जैसी प्रवृत्ति एव निष्ठा नही है जब कि हालैण्ड मे रहने वाले भारत के प्रवासी लोग एक सौ तेरह वर्ष पूर्व हम से अलग हो चुके हैं।

(क्रमश)

मेरी इच्छा

हम इस देश को इतना महान बनाये
जिससे कोई भी इसे न आंखें दिखा पाये
सभी बनें परिश्रमी स्वावलम्बी
कोई न रहे बेकार चरित्रहीन परावलम्बी
धनधान्य से पूरित हो
अर्थव्यवस्था हो हमारी सुदृढ़ कल्याणकारी
किसी के न कर्जदार रहें
भूमंडल में तूती बोले हमारी
हम हों स्वाभिमानी भारत के अतीत पर हमे गर्व हो
ऊंच नीच की भावना से मुक्त हो सर्वत्र एकता का दृश्य हो

रचयिता—डा० शकुनचन्द गुप्त विद्यावाचस्पति
लालगंज, जि० रायबरेली (उ० प्र०)

तुम्हें याद हो कि न याद हो

एक ऐतिहासिक घटना

पं० मेधातिथि जी से मेरी प्रथम भेंट

लेखक—प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'
वेद सदन, अबोहर

पाठकगण! क्षमा करेंगे। मैं कोई अभिमान की बात नहीं कर रहा। पं० मेधातिथि जी से मेरी प्रथम भेंट निश्चय ही एक ऐतिहासिक घटना है। यह ऐतिहासिक इसलिए नहीं कि मुझ जैसा एक साधारण व्यक्ति उन से मिला। यह घटना राष्ट्रीय दृष्टि से ऐतिहासिक है। यह आर्यसमाज की दृष्टि से ऐतिहासिक है। सत्ताधारियों को इस इतिहास की चिन्ता नहीं। सरदार पटेल ने इस देश को अखण्ड बनाने का चमत्कार कर दिखाया परन्तु सरदार का जन्म-दिवस सरकार क्यों मनावे? इससे नेहरू वंश का गौरव घटता है। जिस दिन इन्दिरा जी का निधन हो गया। अब वही दिन राष्ट्रीय अखण्डता दिवस के रूप में मनाने की सरकार को सूझी है।

मेरे एक लेख में पं० मेधातिथि जी की चर्चा पढ़कर श्री कप्टिन देवरत्न जी आर्य व डा० भवानीलाल जी भारतीय सरीखे प्रमुख आर्यों के मुझे पत्र आये। मेरे मन में आया कि जिस वीर पुत्र को आर्यसमाज ने विस्मृति के अथाह सागर में डुबो दिया है उसकी कुछ और चर्चा की जावे।

१९४८ ई० की बात है। अभी सर्दी आरम्भ नहीं हुई थी। आर्यसमाज लेखराम नगर (कादियां) में सब वालों ने एक बैठक रखी। उसमें बहुत लोग थे। मैं भी वहीं था। समाज के मन्त्री महाशय गुरबख्श राय किसी को साथ लेकर समाज मन्दिर में आए। मन्त्री जी के साथ एक युवा मौलवी को देखकर सबका ध्यान उधर चला गया। मौलवी की आंखों में बड़ी चमक थी। आकृति सुन्दर थी। न जाने उस मौलवी में क्या चुम्बकीय शक्ति थी। उसके चेहरे के तेज ने सबको आकर्षित कर लिया। मेरे पास बैठे युवकों ने पूछा, आपके मन्त्री जी के साथ यह कौन है?

मैं तब दसवीं में पढ़ता था या परीक्षा अभी दी ही थी। एकदम मेरे मुख से निकला कि यह कोई शुद्ध होने वाला व्यक्ति है या फिर हमारा कोई शास्त्रार्थी होगा। मन्त्री जी ने संकेत करके मुझे बुला लिया। मैंने दोनों को नमस्ते की। मन्त्री जी ने कहा, चलो हमारे साथ। हम तीनों आर्यसमाज के प्रधान ला० जगदीश मित्र जी के घर गए।

वहां पता चला कि इन मौलवी जी को भारत के लौह पुरुष सरदार पटेल ने विशेष रूप से कादियां भेजा है। यह अब मुझे स्मरण नहीं कि मौलवी जी ने हमें अपना नाम बताया या नहीं परन्तु यही मौलवी आर्य जाति का वीर पुत्र मेधातिथि था। अब कौन विश्वास करे कि यह सरदार का भेजा व्यक्ति है? उन दिनों पंजाब में मुसलमान यात्रा करने से डरते थे। मौलवी जी ने हमारे प्रधान जी से कहा, आप अमृतसर बाबा गुरमुखसिंह को फोन करके पूछ लें कि मैं कौन हूँ। बाबा जी से फोन पर बातचीत हुई। बाबा जी ने कहा, इन्हें सहयोग दें और सुरक्षित मेरे पास अमृतसर पहुंचा दें।

यह स्मरणीय है कि किसी भी आर्य पुरुष से मौलवी जी ने कोई विशेष बात न की। नपी तुली बात करते थे।

मुझे आज्ञा हुई कि मैं इनके साथ चलूँ। मुझे इसलिए चुना गया कि मैं तो लड़का ही था। मेरे साथ होने से किसी को सन्देह न हो सकता था। मौलवी जी ने मुझे कहा कि कादियां में जहां मिर्जाई रहते हैं, उनके पक्के मुहल्लों के चारों ओर मुझे घुमा दो। कुछ गलियां दिखा दो जहां से मैं लौटकर आऊं। उन का बहिश्त (स्वर्ग) भी दिखा दो परन्तु मेरे साथ नहीं चलना। मेरे आगे-आगे चलो। बीस तीस गज की दूरी पर रहो। मेरी ओर भी कम देखो। कुछ और भी आदेश थे। मुझे मिर्जाइयों के सब गली कूचों का ज्ञान था। इसलिए समाज ने मुझे भेजा।

मैंने अपना कार्य सफलतापूर्वक कर दिखाया। मैं घर लौट आया। मौलवी जी अपने मिशन पर। फिर कई घण्टे के पश्चात् मैं स्वयं गया या मुझे बुलाया गया। प्रधान जी के घर मौलवी जी आ गए। इतना कहा कि मेरा आना लाभप्रद रहा। वह घण्टों मिर्जाइयों के साथ रहे। अधिक देर रहते तो सम्भवतः मिर्जाई उन्हें मार भी देते। क्या कुछ मौलवी जी ने किया, यह हमें नहीं बताया। मौलवी जी की स्मृति मेरे मन पर अमिट रही।

१९५२ ई० में बी. ए. की परीक्षा देकर मैं देहली आया। एक वर्ष से कुछ ऊपर वहां रहा। तब दीवान हाल बहुत आता जाता था। एकदम मैंने मौलवी साहब को पहचान लिया। पता लगा कि इनका नाम पं० मेधातिथि है। उन्होंने भी मुझे पहचान लिया कि यह वही लड़का है। तब मेधातिथि जी ने बताया कि सरदार पटेल के पास मिर्जाइयों की राष्ट्र विरोधी (मिर्जाई प्रखर राष्ट्र विरोधी रहे हैं। इन्हीं को पाकिस्तान का अधिक चाव था) गतिविधियों की सूचनाएँ गईं। उन के कुकृत्यों की जांच के लिए मेधातिथि जी को चुना गया। उन्होंने आकर सरदार को रिपोर्ट दी कि इनके पास बहुत अवैध शस्त्र हैं तथा इनकी गतिविधियां देशघाती हैं।

पं० मेधातिथि अरबी के अद्भुत विद्वान थे। वह मौलाना मौदूदी के दार-उल-इस्लाम सरना (पठानकोट) में पढ़े थे। बहुत अच्छी उर्दू बोलते थे। सरदार ने इन्हें जमाते इस्लामी आदि पाकिस्तान पोषक तत्त्वों की जांच के लिए रामपुर भी भेजा था। सम्भवतः हैदराबाद के पुलिस एक्शन में भी उनकी सेवाएँ ली गयीं। ये बातें स्वयं मेधातिथि जी ने मुझे बताई थीं।

मिर्जाइयों ने ही उन्हें किसी प्रकार विष दे दिया। यह पं० मेधातिथि जी ने मुझे बताया। स्वामी वेदानन्द जी ने कोई औषधि दी और वह बच गए। पं० मेधातिथि बड़े साहसी युवक थे। पाकिस्तान बनने से दो वर्ष पूर्व आर्यसमाज स्यालकोट के उत्सव पर मुसलमानों ने आक्रमण कर दिया। बड़ा दंगा हुआ था। आर्यों ने बड़ी वीरता दिखाई थी। दंगा तब हुआ जब पं० मेधातिथि का ओजस्वी भाषण हो रहा था। मुसलमान सह न सके कि एक सुयोग्य मुसलमान युवक आर्यसमाज के मंच से बोले। लौह पुरुष स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज तब स्यालकोट में थे। इस घटना का वर्णन मैंने 'लौह पुरुष' ग्रन्थ में किया है।

पं० मेधातिथि जी की पत्नी तथा पं० जी के मित्र श्री पं० शिव कुमार जी शास्त्री गुप्तचर के रूप में उन की राष्ट्र सेवा को विस्तार से बता सकें तो बतायें। उन के पं० शान्ति प्रकाश जी से प्रथम शास्त्रार्थ पर कभी फिर लिखा जावेगा। पं० मेधातिथि जी हमारे शिरोमणि तपस्वी विद्वान आचार्य भद्रसेन जी अजमेर के सगे साण्डू थे। यह आचार्य जी के सुपुत्र आर्य नेता कैप्टिन देवरत्न जी ने बताया।

पक्षी के उद्गार

व्यर्थ में न अपना जीवन बिताता
बेकार में न दांत किटकिटाता
झूठी न बातें बनाता
विश्वासघात को निंदनीय ठहराता
यदि मैं मनुज होता
तो कुछ कर दिखाता
परोपकार में जीवन बिताता
यथासंभव सबके काम आता
ईर्ष्या द्वेष निन्दा का न मार्ग अपनाता
प्रेम आनन्द सद्भाव सरिता बहाता
यदि मैं मनुज होता
तो कुछ कर दिखाता

रचयिता—डा० शकुनचन्द्र गुप्त विद्यावाचस्पति

गौरव स्तंभ

कुछ तड़प कुछ झड़प

लेखक—प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'
वेद सदन, अबोहर

आचार्य उदयवीर जी का सम्मान

'आर्य सन्देश के पाठक पढ़ चुके होंगे कि आर्यसमाज सान्ताक्रूज बम्बई ने अपना वेदवेदांग पुरस्कार आर्यसमाज के वयोवृद्ध दार्शनिक आचार्य उदयवीर जी शास्त्री को देकर सारे आर्य जगत् को गौरवान्वित कर दिया है। आचार्य जी अपने जीवन के ९२ वर्ष पूरे कर चुके हैं। इस अवस्था में भी वह अपनी साहित्यिक साधना में लगे हुए हैं। आचार्य जी को हम ज्ञान समुद्र कहें तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है। आचार्य जी ने आर्यसमाज के साहित्य को तो समृद्ध किया ही है आपने अपनी मौलिक कृतियों से भारतीय साहित्य को मालामाल कर दिया है। एक मूर्धन्य हिन्दी लेखक का कथन है कि आचार्य उदयवीर जी ने हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा दी है।

आचार्य जी ने भारतीय दर्शनों पर लिखने वालों पर महर्षि दयानन्द की छाप लगा दी है। आज पौराणिक प्रवृत्ति के प्रकाण्ड विद्वान भी यह स्वीकार करते हैं कि आचार्य उदयवीर जी ने महर्षि कपिल पर थोपा गया नास्तिकता का कलंक मिटा दिया है। यह भी गर्व की बात है कि आचार्य जी अंग्रेजी नहीं जानते अन्यथा पश्चिमी विद्वानों की झूठन पर जीने वाले लेखक आचार्य जी की मौलिकता, सूझ व साधना का अवमूल्यन करने से न चूकते। ऐसे लोग किसी न किसी प्रकार की खींचतान करके आचार्य जी को पश्चिमी लेखकों का चेला सिद्ध कर देते।

आर्यसमाज सान्ताक्रूज ने आर्य समाज का कलंक भी धो दिया है। जिस आर्यसमाज ने श्री पं० आर्य मुनि, पं० गणपति शर्मा व स्वामी दर्शनानन्द जैसे महान् दार्शनिक पैदा किए हैं, जिस आर्यसमाज ने पं० गुरुदत्त विद्यार्थी, पं० चमूपति व पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय सरीखे मनस्वी साहित्यकारों को जन्म दिया, उस आर्यसमाज ने अपने माननीय साहित्यकारों, लेखकों, विचारकों, मनीषियों का यथोचित सम्मान नहीं किया।

आर्यसमाज सान्ताक्रूज ने इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा है। यह समाज अब आर्यसमाज के वयोवृद्ध उपदेशकों तथा भजनोपदेशकों का भी अभिनन्दन करने का व्रत ले चुका है। इसके लिए समाज के उत्साही महारथियों ने धन संग्रह भी कर लिया है। किस किस को हम बधाई दें। समाज के प्रधान श्री देवेन्द्र जी कपूर श्री ओंकार नाथ जी आर्य व श्री कैप्टिन देव रत्न आर्य अपने इस पुण्य प्रयास के कारण इतिहास में सदा स्मरणीय रहेंगे।

खेद की बात है कि आर्यसमाज के प्रेस ने इस ऐतिहासिक घटना को उतना महत्त्व नहीं दिया, जितना देना चाहिए था। लीडर पूजा, सत्ता पूजन व राजनेताओं की कुर्सी परिक्रमा करने वालों को मान देकर तथा अपने पूज्यों का अपूजन करके हम पाप के सागर में डूबने से अपने आपको बचावें।

मुझे अभिमान है कि मैंने आर्य जाति के इस पूजनीय तपस्वी के सम्मान-समारोह में भाग लेकर स्वयं को गौरवान्वित किया।

आर्य जनता को मूर्ख न बनाओ

हम ऋषि मिशन के प्रचार के लिए अपनी पूरी शक्ति लगाएं, यह अच्छी बात है। हम वैदिक धर्म प्रचार के लिए जनजन को प्रेरित करें, यह शुभ कार्य है परन्तु धर्म प्रचार के लिए आर्य जन की शुभ भावनाओं से खिलवाड़ करना यह एक पाप है। हमारे बड़ों ने कितने कष्ट सहकर प्रचार किया यह हमें सदा स्मरण रखना चाहिए परन्तु, अब हम सब थोड़ा सा भी कष्ट सहन करने को तैयार नहीं। एक व्यक्ति जो प्रचार क्षेत्र में अभी पांव ही रखता है वह चार छः मास में आर्य जनता से जीप कार की मांग करता है। एक सज्जन यह कहकर जीप मांग रहे हैं उनके पीछे गुप्तचर पुलिस लगी रहती है। उन पर अभियोग चल रहे हैं। न जाने जीप मिल जाने पर सी० आई० डी० से पिण्ड कैसे छूटेगा और अभियोग समाप्त होने की क्या गारण्टी है? अपनी योग्यता बढ़ाने, नियमित सन्ध्या हवन करने का व्रत लेकर हम आर्य जनता के सामने उदाहरण रखें तो कुछ कार्य भी बढ़े। आध्यात्मिक विकास की स्पर्धा हममें होगी तो समाज का बल बढ़ेगा। जीपें स्कूटर तो वेदों ने भी बहुत बटोरे थे परन्तु वेद प्रचार के लिए वे एक तिनका न तोड़ सके और न ही इन लोगों में से कोई वैदिक सिद्धान्तों के लिए योग्यता बढ़ाकर प्रसिद्धि पा सका। जीपें स्कूटर इनके कहां गये? यह यही जानते हैं।

एक बाबा जी ने एक दो मास पूर्व कपड़े रंगे। वह शुद्धि के नाम पर जीप मांगने चल पड़े हैं। जिस व्यक्ति में इतनी योग्यता नहीं कि वह महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन पर बोल सके, जो गायत्री जैसे प्रसिद्ध मन्त्र पर न बोल सके वह भी जीप पर चढ़कर वेद प्रचार व शुद्धि का डंका बजाने की बातें करके आर्य जनता को मूर्ख बनाता है।

सभा संस्थायें ऐसे साधनों से वेद-प्रचार की धूम मचायें तो यह अच्छी बात है। वृद्ध आर्य विद्वानों की सेवाओं का भी इससे अधिक लाभ उठाया जा सकता है परन्तु जिस ढंग से अपढ़, अयोग्य व्यक्ति, जिन्होंने किसी गुरुकुल से वेद शास्त्र की शिक्षा प्राप्त नहीं की और न ही अपनी साधना से अपनी योग्यता बढ़ा कर दिखाई है—मांगें कर रहे हैं इससे उपदेशक, सन्यासी और विद्वान तिरस्कृत होंगे। समाज को अपयश मिलेगा। इसलिए आर्य जनता सावधान होकर चले। यदि इस प्रवृत्ति को न रोका न रोका गया तो समाज का अपयश होगा।

समाज का सरकारीकरण रोको

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने एक लेख में लिखा था कि शिक्षा संस्थाओं की ग्राण्टों व चन्दों ने समाज को पतित कर दिया है। ऐसा ही भाव महात्मा हंसराज जी के एक लेख में भी व्यक्त किया गया है। अब प्रत्येक समारोह के लिए, प्रत्येक पुस्तक के विमोचन के लिए, प्रत्येक कार्यक्रम के उद्घाटन के लिए, प्रत्येक विशेषाङ्क के लिए मन्त्रियों के सन्देश व आशीर्वाद चाहिए। आर्य समाज सरकार के दबाव में आकर कोई भी निर्णय लेने में असमर्थ हो गया है। देश धर्म जाति का हित कैसे हो? समाज को निस्तेज होने से बचाओ। सरकारीकरण रोको। राजनेताओं से बचो। अपना स्वरूप पहचानो। ❐

जन्माष्टमी के धार्मिक जलूस पर असामाजि तत्वों द्वारा पथराव

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री सूर्यदेव जी ने एक प्रस्ताव द्वारा अहमदाबाद में जन्माष्टमी के धार्मिक जलूस पर असामाजिक तत्त्वों द्वारा किए गए पथराव की भर्त्सना की है तथा एक प्रस्ताव द्वारा गुजरात के मुख्यमन्त्री श्री अमर सिंह चौधरी से मांग की है कि जिन व्यक्तियों ने धार्मिक जलूस पर पथराव करके शान्ति भंग की है, उनके विरुद्ध कड़ी कार्यवाही करें। इसके अतिरिक्त पुलिस द्वारा धार्मिक स्थानों में प्रवेश करके मन्दिरों की पवित्रता को भंग किया, उनके विरुद्ध कार्यवाही की जाए और निर्दोष व्यक्तियों को जो धार्मिक जलूस में भाग ले रहे थे, उनको गिरफ्तार किया गया है, तुरत रिहा किया जाए। सरकार की एकतरफा कार्यवाही से हिन्दू जनता में जो रोष है, उसको दूर किया जाये।

साम्प्रदायिकता

(पृष्ठ ७ का शेष)

वे तथ्य तत्कालीन समाचार पत्रों में छपते थे। उस काल के समाचार पत्र पढ़कर देखें कि मैंने गलत क्या लिखा है। जस्टिस खोसला की पुस्तक 'दि स्टर्न रेकनिंग' में उस समय की घटनाओं का कच्चा चिट्ठा है।

—अशोक कौशिक
७-एफ कमला नगर,
दिल्ली-७

योगी गुणों की खान थे

★

वेद मर्यादा के रक्षक, श्रीकृष्ण भगवान थे।
ज्ञान के भण्डार थे योगी, गुणों की खान थे॥

जेल में जन्मे थे वे, जोवन में झेले कष्ट थे।
गोप थे उनके सखा वे, गोपियों के प्राण थे॥१॥

अत्याचारी कंस के जुल्मों से जनता थी दुःखी।
मार डाला दुष्ट को, सचमुच बड़े बलवान थे॥२॥

छियासी राजाओं को डाला, जरासंध ने जेल में।
भीम से मरवा दिया था, सज्जनों की जान थे॥३॥

गालियां शिशुपाल ने दीं, शान्त हो सुनते रहे।
अन्त में सिर उसका काटा, देख सब हैरान थे॥४॥

किसी तरह न युद्ध हो बन, दूत हस्तिनापुर गए।
दुर्योधन को खूब समझाया दिए व्याख्यान थे॥५॥

समझाने से जब न समझा नीच दुर्योधन सुनो।
युद्ध महाभारत हुआ मारे गए शैतान थे॥६॥

जोवन भर करते रहे थे, पापियों का खात्मा।
त्यागी प्रभु धर्मात्मा थे वे जगत की शान थे॥७॥

कृष्ण की यदि राजनीति, अपना लेते हम सभी।
देश के टुकड़े न होते "निर्भय" पुरुष महान थे॥८॥

—पं० नन्दलाल 'निर्भय'
सिद्धांत शास्त्री भजनोपदेशक
ग्राम बहाने, जिला फरीदाबाद

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
द्वारा प्रकाशित वैदिक साहित्य

कक्षा प्रथम	नैतिक शिक्षा (भाग प्रथम)		[illegible]
कक्षा द्वितीय	नैतिक शिक्षा (भाग द्वितीय)		[illegible]
कक्षा तृतीय	नैतिक शिक्षा (भाग तृतीय)		[illegible]
कक्षा चतुर्थ	नैतिक शिक्षा (भाग चतुर्थ)		[illegible]
कक्षा पंचम	नैतिक शिक्षा (भाग पंचम)		[illegible]
कक्षा षष्ठ	नैतिक शिक्षा (भाग षष्ठ)		३.००
कक्षा सप्तम	नैतिक शिक्षा (भाग सप्तम)		[illegible]
कक्षा अष्टम	नैतिक शिक्षा (भाग अष्टम)		[illegible]
कक्षा नवम	नैतिक शिक्षा (भाग नवम)		[illegible]
कक्षा दश	नैतिक शिक्षा (भाग दश)		४.००
कक्षा ग्यारह	नैतिक शिक्षा (भाग ग्यारह)		४.००
कक्षा बारह	धर्मवीर हकीकतराय	वैद्य गुरुदत्त	५.००
	फ्लैश आफ ट्रुथ (Flash of Truth)	डा० सत्यकाम वर्मा	२.००
	सत्यार्थप्रकाश सन्देश	,, ,,	२.००
	एनाटोमी ऑफ वेदान्त	स्वा० विद्यानंद सरस्वती	५.००
	सत्यार्थ सुधा	पं० हरिदेव सि०भू०	२.००
	दयानन्द एण्ड दा वेदाज (ट्रैक्ट)		५०/- रु० सैकड़ा
	पूजा किसकी ? (ट्रैक्ट)		५०/- रु० सैकड़ा
	मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम (ट्रैक्ट)		५०/- रु० सैकड़ा
	योगीराज श्रीकृष्ण का सन्देश (ट्रैक्ट)		५०/- रु० सैकड़ा
	महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी स्मारिका		५.००
	स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान अर्धशताब्दी स्मारिका		५.००

नोट—इन पुस्तकों पर १५% कमीशन दिया जाएगा।

यह सदा अमर रहे

सतत प्रगति पुण्य पथ
बढ़ें राष्ट्र के चरण।
अनुजता करें सभी
भूमि के मनुज वरण।
नष्ट हो, विनष्ट हो
समस्त बाह्य आवरण।
प्रबुद्ध हो, प्रबुद्ध हो
नवान्त दिव्य आचरण।
सत्य - धर्म की दिशा,
सदा विमल-सुखद रहे।
स्वतंत्रता दिवस स्वराष्ट्र का
सदा अमर रहे॥
वेद ज्ञान का पुनः
धरणि पर प्रकाश हो
मानवी गुणों तथा
सुतत्व का विकास हो।
सदा दनुज कुवृत्तियां
विनाश हों, हताश हों।
भरा अतः हृदय सदा
नवीनतम उजास हो
पुण्य ज्योति पुंज है
आह्वान कर रहे।
स्वतंत्रता दिवस स्वराष्ट्र का
सदा अमर रहे॥
सुख तथा समृद्धि के
...

आर्यसमाज के पुस्तकालयाध्यक्षों एवं प्रेमचन्द के पाठकों से एक निवेदन

मान्यवर,

इस पत्र के द्वारा आप से अपनी एक योजना के लिए आपका सहयोग चाहता हूँ। आप सभी हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार प्रेमचन्द के नाम से परिचित हैं। प्रेमचन्द आर्यसमाज के अनेक वर्षों तक सदस्य रहे और अपने कई उपन्यासों तथा कहानियों में उन्होंने नायकों को आर्यसमाज का सदस्य बनाया। उन्होंने स्वामी दयानन्द की कई लेखों में प्रशंसा की और उनके अनेक सुधार कार्यक्रमों को साहित्य का विषय बनाया। जीवन के अन्तिम दौर में वे ११ अप्रैल, १९३६ को लाहौर पहुंचे और उन्होंने पंजाब की आर्य प्रतिनिधि सभा के अर्द्ध शताब्दी समारोह का उद्घाटन किया। इस प्रकार प्रेमचन्द जीवन पर्यन्त आर्यसमाज से सम्बद्ध रहे।

प्रेमचन्द पर मैं विगत बीस वर्षों से शोध-कार्य कर रहा हूँ। अब तक प्रेमचन्द पर मेरी नौ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अब मैं उन पर जो नया शोध-कार्य कर रहा हूँ, उसके लिए मुझे उनके उपन्यासों, कहानी-संग्रहों, नाटकों, अनुवादों, बाल-पुस्तकों आदि के प्रथम संस्करणों की आवश्यकता है। आर्यसमाज के अनेक शहरों में पुराने पुस्तकालय हैं जहाँ पुरानी पुस्तकें तथा पुरानी पत्रिकाएँ सुरक्षित हैं। इन पुस्तकालयों में प्रेमचन्द की पुस्तकें (प्रथम संस्करण) तथा उनके द्वारा सम्पादित पत्रिकाएँ 'हंस' तथा 'जागरण' के अंक अवश्य ही सुरक्षित होंगे।

मेरा सभी पुस्तकालयाध्यक्षों तथा प्रेमचन्द के प्रेमी पाठकों से प्रार्थना है कि वे इस सम्बन्ध में आवश्यक सूचना देने की कृपा करें। मेरा निवेदन है कि वे पुस्तकालय में उपलब्ध प्रेमचन्द से सम्बद्ध सामग्री की जानकारी प्रदान करें जिससे मुझे अपने शोध-कार्य में सहायता मिल सके।

प्रेमचन्द के पाठकों के पास भी प्रेमचन्द की पुस्तकों के प्रथम संस्करण तथा 'हंस' एवं 'जागरण' के अंक हो सकते हैं। उन से मेरा आग्रह है कि वे उपलब्ध सामग्री की सूचना देने की कृपा करें। सूचना प्राप्त होने पर मैं सम्बन्धित व्यक्ति अथवा पुस्तकालयाध्यक्ष से सम्पर्क करूंगा। सहयोग की आशा में—

भवदीय
डा० कमल किशोर गोयनका
ए/९८, अशोक विहार, फेज प्रथम
दिल्ली-११००५२

ओ३म्

साप्ताहिक

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य सन्देश

वर्ष १० · अंक ४३ | रविवार २१ सितम्बर, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ | आश्विन २०४३ | दयानन्दाब्द—१६१

मूल्य : एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश में ५० डालर, ३० पौंड

कविराज रघुनन्दन सिंह निर्मल का देहावसान

आर्य जगत् की अपूरणीय क्षति

—स्वामी आनन्द बोध

आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् सुविख्यात लेखक, तर्कपूर्ण शैली के उद्भट वक्ता श्री कविराज रघुनन्दन सिंह निर्मल का ५ सितम्बर, १९८६ को आकस्मिक निधन हो गया। वे ७० वर्ष के थे। १४ सितम्बर को आर्यसमाज दीवान हाल, दिल्ली में एक श्रद्धाञ्जलि सभा हुई जिस में स्वामी आनन्द बोध, प० क्षितीश वेदालंकार, श्री वैद्य प्रह्लाद दत्त, श्री पं० महेन्द्र कुमार शास्त्री, श्री मास्टर चरणजीत लूथरा आदि महानुभावों ने दिवंगत विद्वान् के प्रति श्रद्धाञ्जलियां अर्पित कीं।
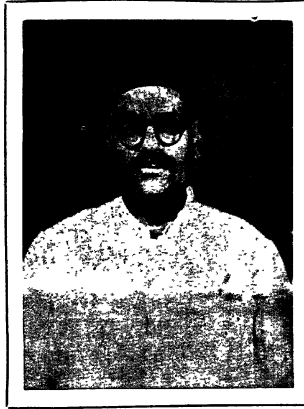
स्वामी आनन्द बोध ने कहा, श्री कविराज निर्मल जी ने बोलने से लेकर लिखने तक आर्यसमाज की बड़ी भारी सेवा की है। उनके प्रवचन बड़े सैद्धान्तिक एवं गरिमामय तथा तर्कपूर्ण हुआ करते थे। उन्होंने ही पण्डित लेखराम द्वारा लिखित ऋषि दयानन्द चरित का हिन्दी अनुवाद सर्वप्रथम किया था जो उनका अनुपम कार्य था। श्री कविराज जी ने अनेक पुस्तकें लिखीं, जो बड़ी ही महत्त्वपूर्ण हैं। यदि उन की कोई पुस्तक अभी तक प्रकाशित न हुई हो तो कृपया हमें दें। सार्वदेशिक सभा उनकी पुस्तकों को प्रकाशित करने के लिए कृतसंकल्प है। उनके निधन से आर्य जगत् को अपूरणीय क्षति हुई है। श्री वैद्य प्रह्लाद दत्त ने कहा कि कविराज जी मुझ से कहा करते थे, मैं आर्यसमाज की सेवा करता हूं किसी पर कोई अहसान नहीं करता। ऋषि दयानन्द और वैदिक धर्म के अनुयायी का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि वह समाज सेवा के लिए अपने को झोंक दे। वैद्य जी ने इसीलिए भी निर्मल जी बड़े कर्मठ, अद्वितीय प्रतिभा एवं शैली के मालिक थे। उन्हें शास्त्र कण्ठस्थ थे। श्री महेन्द्र शास्त्री ने उन्हें पुरानी पीढ़ी का लौह स्तम्भ कहा। श्री क्षितीश जी ने उनके जीवन एवं कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

श्री रघुनन्दन सिंह निर्मल द्वारा लिखित पुस्तकें हैं—ईश्वर का सच्चा स्वरूप, गीता का सच्चा स्वरूप, धर्म का सच्चा स्वरूप, मुक्ति का सच्चा स्वरूप, योग का सच्चा स्वरूप, षोडश कला सम्पूर्ण दयानन्द, सत्यार्थ दिग्दर्शन, वेदान्त दर्शन, मन का वैदिक स्वरूप, दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह तथा पण्डित लेखराम द्वारा लिखित दयानन्द जीवन चरित का हिन्दी में अनुवाद आदि शामिल है। वे संस्कृत भाषा के साथ हिन्दी, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी भाषा के सुविज्ञ लेखक थे। उर्दू में शायरी करने का उनका अपना अन्दाज था। उर्दू में उन्होंने कविता संग्रह "आर्यों की गर्जना" नाम से लिखा। भगवत गीता का भी उन्होंने उर्दू शायरी मे अनुवाद किया जो "ज्ञान गंगा" के नाम से प्रकाशित हुआ। उर्दू शायरी का ही उनका एक संग्रह "भारत मां के लाल" के नाम से प्रकाशित हुआ। उर्दू के पढने वालों के लिए ही उन्होंने "रामायण उर्दू मन्जूम" लिखा था जो वास्तव में सराहनीय प्रयास है। उनकी अप्रकाशित पुस्तकें हैं –

१. सांख्यदर्शन, २. सृष्टि की उत्पत्ति का सच्चा स्वरूप तथा ३. भजनावली।

उनके प्रति श्रद्धाञ्जलियां तथा शोक प्रस्ताव अनेक संस्थाओं ने भेजे जिन में दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली, सार्वदेशिक सभा तथा आर्यसमाज दीवान हाल आदि शामिल हैं। □

प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल | व्यवस्थापक—डा० गणेशीलाल | सम्पादक—पं० यशपाल सुधांशु एम० ए०

वैदिक मूल्यों की सम-सामयिकता

लेखक—डा० प्रतिभा शर्मा

चिरपुरातन वेद आज भी अपने महत्व का कोई सानी नहीं रखते। वेदो के मन्त्रों के रूप में ऐसे अमूल्य सूत्र हम को मिले हैं जिन से हम केवल किसी युग-विशेष में ही अपना कल्याण नही कर सकते अपितु सर्वकालिक, सार्वदेशिक, सार्वभौमिक कल्याण के लिए उन का अनुसरण कर सकते हैं।

यद्यपि विद्वानों की मान्यता है कि वेद में इतिहास हैं और आर्यों और अनार्यों के सघर्ष की ही कथा है परन्तु मेरी स्पष्ट मान्यता है कि युग-द्रष्टा ऋषियों ने केवल आर्यों-अनार्यों के लिए ही नही अपितु सार्वकालिक दुष्टों और सज्जनों के लिए समदृष्टि रखकर ही विचार किया।

उदाहरण के लिए अथर्ववेद (२।१९-२३ के सभी मन्त्रों) में अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र और आप. आदि प्राकृतिक शक्तियों से उस शत्रु को नष्ट करने के लिए कहा गया है जो हम से द्वेष करता है और जिस से हम द्वेष करते हैं तो इसे केवल ऐक-कालिक नहीं कहा जा सकता। शत्रु जब भी होगा, जहां भी होगा, जिस किसी काल में होगा, तभी मनुष्य अपने इष्ट से उसके नाश के लिए प्रार्थना करेगा।

यहां ध्यातव्य यह है कि वेद ने शत्रुता वहां स्वीकार की है, जहां दोनों ओर से द्वेष-भाव है। केवल हम जिस से द्वेष करे, वह नष्ट हो, यह उचित भाव नही है क्योंकि हम योग्य ही हैं और आदर्श विचार ही रखते हैं, ऐसा सोचना अहं को जन्म देना है और इससे अनीति व्याप सकती है। परन्तु जिस से हम द्वेष करें और जो हम से द्वेष करे, वह नष्ट हो ऐसी प्रार्थना उचित है। यहां यह भी समझा जा सकता है कि हम जिस के नाश की प्रार्थना कर रहे हैं, वह भी तो हमें शत्रु समझता है, वह भी तो अपने इष्ट से हमारे नाश की प्रार्थना कर रहा होगा। अतः इष्ट जिस का नाश उचित समझेगा करेगा। यही उचित भी है। यदि सर्वजन-कल्याण-मार्ग पर चलते हुए हम व्यर्थ ही किसी से द्वेष नही कर रहे हैं तो ईश्वर हमारा अकल्याण नहीं कर सकता। अत. उचित प्रार्थना यही है कि जो हम से द्वेष करता है और जिस से हम भी द्वेष करते हैं, वह नष्ट हो।

वेद ने हिंसक होने का उपदेश कभी नहीं दिया। वाजसनेयी सहिता में स्पष्ट उल्लेख है कि 'न सांप बने और न ही व्याघ्रादिवत् हिंसक बन' "मा अहिर् भूर् मा पृदाकुः"।

वा० स० ६।१२, ८।२३

यह तो सत्य ही है कि जैसा मनुष्य का स्वयं का स्वभाव होता है, वैसा ही वह अपने आदर्श में भी खोजता है। वैदिक ऋषि ने अपने देवताओं को अहिंसक, हिंसारहित आदि कहा है। आज भी हम अपने इष्ट को दयालु, दीनबन्धु कहते हैं तो इसका आशय यही है कि दया अथवा दीनों के प्रति बन्धु-भाव हमें इष्ट है।

इसी प्रकार वेद का ऋत आज भी है। आज भी हम सत्य के विपरीत अनृत को त्यागने का सकल्प लेते हैं। वेद में कहा गया है कि दुराचारी व्यक्ति ऋत के पंथ को पार नहीं कर सकते—

ऋतस्य पंथां न तरन्ति दुष्कृतः।

ऋ० ९।७३।६

आज भी मान्यता है सत्य ही विजयी होता है अनृत नहीं।

सत्यमेव जयते नानृतम्।

यजुर्वेद के अनुसार मनुष्य प्रतिज्ञा करता है मैं अनृत से सत्य को प्राप्त करता हूँ-

इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि।

वा० स० १।५

आज हम विश्व के सभी राष्ट्रों से मैत्री के सम्बन्ध कायम करना चाहते हैं। केवल अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं अपितु अपने देश में विभिन्न प्रदेशों में, अपने समाज में प्रत्येक मानव दूसरे मानव से मैत्री सम्बन्ध बनाना चाहता है। केवल इसीलिए कि मित्र मित्र का कल्याण करता है अकल्याण नहीं, हित करता है अहित नहीं, स्नेह करता है द्वेष नहीं। सत्य भी है यदि सभी मनुष्य परस्पर द्वेष-भाव को त्याग कर मित्र-भाव अपना लें तो अराजकता, हिंसा स्वतः ही नष्ट हो जाएगी। यह कहना तो पिष्ट-पेषण ही प्रतीत होता है परन्तु इस सन्दर्भ में यह इसलिए कहना पड़ रहा है कि वैदिक मानव भी इसी मैत्री-भाव की आकांक्षा रखता था, वह भी चाहता था कि सभी दिशाएँ उस की मित्र हों। उस की "सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।" (सभी दिशाएँ मेरी मित्र हों) यह कामना इसीलिए थी कि किसी भी दिशा में उसके अमित्र न हों, शत्रु न हों, और उनसे उसे भय न हो अपितु सभी दिशाओं में उसके मित्र हों जो उसके लिए सहायक, हितैषी बने रहें। वैदिक मानव उस मनुष्य को मित्र नहीं मानता जो समय पर सहायता नहीं करता—

न स सखा यो न ददाति सख्ये।

ऋ० १०।११७।४

वेद का आदेश है कि सब मित्रों से प्रीतिपूर्वक व्यवहार कर।

प्रणीतिर् अभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह।

अथर्व० ७।१०५।१

इससे यह आशय स्पष्ट है कि मित्रों से सद्भावना पूर्वक व्यवहार करना चाहिए न कि विश्वासघात। यह सूत्र आज का मानव भूल गया है और बहुधा जिससे शत्रुता निभानी होती है उसे पहले मित्र बनाकर विश्वास में लिया जाता है तत्पश्चात् उसकी हिंसा कर दी जाती है या अन्य प्रकार से उसे धोखा दिया जाता है।

अतएव यदि आज भी मैत्री के वैदिक सिद्धांतों को आधार मानकर चला जाए तो सुख-शांति आज की बढ़ती हुई भयाक्रान्त अराजकतापूर्ण स्थिति का स्थान ले सकती है।

आज पूंजीवाद उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त हो रहा है। धनी अधिक धनी होते जा रहे हैं और निर्धन और अधिक निर्धन होते जा रहे हैं। इसका भी एकमात्र समाधान यही है कि मानव वेद के सिद्धांतों को अपनाए, उन पर मनन करे, अमल करे।

सभी कालों में निर्धन और धनी रहे हैं। वेद में अनेक स्थलों पर सत्य और अहिंसा मार्ग पर दृढ होकर उचित उपायों द्वारा धनोपार्जन की प्रार्थना है। इसके अतिरिक्त उस काल में दान की महिमा भी लोगों को ज्ञात थी और दान का प्रचार था, दान का उपदेश भी दिया जाता था। दान की महिमा पर ऋग्वेद में पूरा एक 'धनान्नदानसूक्तम्' है जिस में एक मन्त्र में अत्यन्त सुन्दर विचार है कि दान क्यों देना चाहिए? वेद कहता है कि धन रथ के पहिए के समान है। जैसे चलते हुए रथ के पहिए का कोई भाग ऊपर और कोई भाग नीचे होता है और फिर नीचे वाला ऊपर और ऊपर वाला नीचे होता है। उसी प्रकार धन भी आज यदि एक के पास है तो कल दूसरे के पास हो सकता है। अतः यह सोच कर कि आज यदि मेरे पास धन है तो कल ऐसी भी स्थिति आ सकती है कि मुझे स्वयं किसी के सामने हाथ फैलाना पड़े। याचक को धन दे देना चाहिए जिससे आवश्यकता पड़ने पर दूसरे भी सहायता के लिए तत्पर रहें—

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्
द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम्।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा-
ऽन्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः॥

ऋ० १०।११७।५

धन की चंचल गति आज भी स्थिर नहीं हुई है, आज भी लक्ष्मी चंचल है। अतः धनी लोग यह सोच कर दान देने में संकोच न करें तो पूंजीवाद और निर्धनता में पर्याप्त सीमा तक साम्य आ सकता है, ताल-मेल बैठाया जा सकता है, हां कायर और निर्धन में यहां स्पष्ट भेद करना आवश्यक है। वेद का दान सम्बन्धी यह विचार भी केवल काल-विशेष का न होकर सार्वकालिक है।

(शेष पृष्ठ ४ पर)

आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन' : एक प्रेरक व्यक्तित्व

—डा० विजय द्विवेदी

तब मैं सात-आठ साल का बालक था। बगल में बस्ता दबाए देहात की पगडण्डी पर अकेले पाँच-छह किलोमीटर का रास्ता पार कर स्कूल जाता और शाम को वापस आता-थका मांदा, सूखा उदास चेहरा लिए कुछ समय खेल कूद में बीतता। शाम के सात बजते ही मेरे बाबा स्व० श्री कुबेर दत्त शास्त्री जी अपने जनपद के उत्साही आर्य समाज के प्रचारक थे, मुझे पढ़ने के लिए बैठा देते और मेरे पास मेरा ही लालटेन से उस दिन की आयी पत्र पत्रिकाओं को पढ़ने में लीन हो जाते। कभी-कभी जब कोई कविता उन्हें पसन्द आ जाती तो पढ़ाई रोक कर कविता सुनाने लगते। इन कविताओं में अधिकतर कविताएं आचार्य सुमन' की होती थीं। तब मैं कविताओं के मूलभावों को पूरी तरह समझने मे अपने को अक्षम पाता, परन्तु कुछ शब्द तथा भाव स्मृति पट पर अंकित जरूर हो जाते थे। बाद में चलकर साहित्य के प्रति मैं धीरे-धीरे आकृष्ट होता गया। बी० ए० तथा एम० ए० करने के बाद जब मुझे प्रशासनिक प्रशासनिक सेवा में आने के लिए मेरे प्राचार्य प्रोत्साहित करने लगे तब मैं दुविधा में पड़ गया। एक ओर मेरे सामने साहित्य की सेवा की प्रबल इच्छा हिलोरें मार रही थी तो दूसरी ओर थी परिवार की आर्थिक स्थिति जो जमींदारी उन्मूलन के कारण जर्जरित हो चली थी। इन्हीं मानसिक उलझनों के चलते मैं घर से निकल कलकत्ता आ गया। वहाँ प्रथम साक्षात्कार में ही 'सन्मार्ग' दैनिक के व्यवस्थापक श्री रामावतार गुप्त ने मुझे 'सन्मार्ग' मे न केवल रख लिया अपितु मुझे काम करते हुए कलकत्ता वि० वि० में पढ़ने की अनुमति भी प्रदान कर दी। इसी के साथ यह सुविधा भी दे दी कि मैं अपना काम खतम कर जब चाहूँ जा सकता हूँ। आफिस के इने गिने कर्मचारियों ने दबी जबान से मेरे को दी गई सुविधाओं का विरोध भी किया, परन्तु गुप्ता जी पर इनका कोई असर न हुआ। मेरा अध्ययन अबाध गति से चलता रहा। कलकत्ता प्रवास के दौरान ही मेरा सम्पर्क वि० वि० के अनेक यशस्वी विद्वानों से हो गया। उनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन से मेरी साहित्य रुचि पुष्ट होने लगी। कलकत्ता में मेरे परिचित तो अनेक थे, पर उनमे अधिकतर लोगों ने मुझ अपनी व्यावसायिक संस्थाओं मे अच्छे वेतन पर काम करने का प्र.फर भी दिया प्रलोभनो और सांसारिकता से दूर रहने की एकान्तिक प्रवृत्ति ने मुझ वहाँ व्यापक रूप से एकान्तिक बना दिया। इससे मुझे तात्कालिक लाभ यह हुआ कि मैं अपना अधिकतर समय आगे बढ़ने की चेष्टा और पढ़ने-लिखने मे बिताने लगा। वैसे कलकत्ता शहर की जलवायु मेरे अनुकूल साबित नहीं हुई। इसलिए मैं कलकत्ता से उड़ीसा सरकार के शिक्षा विभाग में चला आया।

उड़ीसा सरकार के शिक्षा विभाग मे आते ही मैंने सबसे पहला काम आ० 'सुमन' के साहित्य के अध्ययन मे लगाना आरम्भ किया। भारत-भारती को निष्काम भाव से सेवा करने वाले तथा विगत पचास सालों से साहित्य की अनवरत सेवा करने वाले आचार्य 'सुमन' के साहित्य से ज्यों-ज्यों मेरा परिचय बढ़ता गया, उनकी देशभक्ति और महान मानवतावादी भावनाओं का कायल होता गया। इस बीच बगला के अमर कथाकार श्री विमल मित्र, तारा शकर बन्धोपाध्याय, श्री प्रमथ नाथ बिसी तथा शक्ति चटर्जी आदि साहित्य महारथियो के साहित्य से भी परिचित होने का सुअवसर प्राप्त हो गया। स्वास्थ्य की खराबी तथा कुछ राजनीतिक लेखन के कारण मुझे सन् '६,-६४ मे कलकत्ता को सदा के लिए विदा दे देनी पड़ी थी। अपनी नयी नियुक्ति का कार्य भार सम्हालने के बाद मैंने कई वि० वि० मे श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' पर शोध कार्य करने के लिए दौड़ धूप की, परन्तु कोई भी तत्कालीन प्रोफेसर इस काम के लिए तैयार नहीं हुआ। अन्त मे मुझे भाषाशास्त्र मे शोध काम करना पड़ा। इस काम से मुक्ति पाकर मैं पुन: आ० 'सुमन' जी की ओर आकृष्ट हुआ और उनके सम्बन्ध में सामग्री जुटाने के काम में जुट गया। सामग्री का अध्ययन करने पर पता चला कि आ० 'सुमन'— धुन के धनी, भारत-भारती के उन निष्काम सेवकों में हैं जिन्हे मान-सम्मान की अपेक्षा साहित्य के जरिए मानव मात्र का हित करने की धुन सवार है। वस्तुतः वे एक महान मानवतावादी साहित्यकार हैं। देश-जाति के प्रति प्रेम, स्वदेश की खोयी गरिमा की स्थापना का भाव उनकी रग-रग में रचा बसा है। और इसका कारण भी है।

आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन' की शिक्षा-दीक्षा भागीरथी के पावन तट पर स्थित गुरुकुल ज्वालापुर मे तप: पूत आचार्य शुद्ध बोध तीर्थ एव आचार्य नरदेव शास्त्री जसे विद्वानो के सान्निध्य मे हुई। परम गुरुओं की संगति में 'सुमन' जी ने सांख्य तथा वेदादि ग्रन्थो का अध्ययन किया। गुरुकलीय परिवेश अनुशासन और देश-प्रेम की भावना विकसित की। इसका नतीजा यह हुआ कि 'सुमन' जी महात्मा गांधी के प्रभाव मे आकर छात्र जीवन में ही स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े। सन् '४२ मे जब आजादी की लड़ाई तेज हुई तो ब्रिटिश सरकार ने 'सुमन' जी को उनकी जन्मभूमि बाबूगढ़ (मेरठ) में उन्हे नजर बन्द रखा। इस बात से यह सिद्ध हो जाता है कि उनकी देश की आजादी के लिए की जाने वाली गतिविधियों से ब्रिटिश सरकार कितनी चिन्तित थी। इसी बीच उन्होने 'बंदी के गान' की रचना की। इस कविता ने एक ओर जहाँ 'सुमन' जी की कवित्व शक्ति का परिचय साहित्य प्रेमियों को दिया, वहीं दूसरी ओर यह देशभक्तों के गले का हार भी बन गयी। जब मैं प्राइमरी पाठशाला मे पढता था, तब मेरे एक शिक्षक जो बाद में किसी वि० वि० में चले गए, एक कविता की लाइन सुनाया करते थे—"गीत मत समझो निहित इसमें हृदय की आग मेरे।" बाद में बड़ा होने पर मैंने जाना कि यह कविता-पंक्ति 'सुमन' जी की कृति 'बन्दी के गान' से ली गयी थी।

आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन' भारत-भारती के वरद पुत्र ही नहीं भारत-के उन गिने-चुने सपूतों में से एक और अन्यतम हैं, जिन्होंने देश की आजादी के लिए निष्काम भाव से काम किया, यातनाएँ सहन कीं और जेल गए। देश के आजाद हो जाने पर जिन लोगों ने भूल से भी 'भारत माता की जय' का उच्चारण कर दिया था—अकूत धन मान तथा पद पदवी पर अपना अधिकार ठोंक दिया। परन्तु 'सुमन' जी ने न तो धन के प्रति मोह दिखाया और न ही किसी अन्य प्रलोभन के पीछे पड़े। वे तब भी देश की आजादी, देश के प्रति प्रेम तथा भारतीय संस्कृति की रक्षा की अलख जगाते रहे और बाद में भी भारत की गौरव गरिमा की रक्षा तथा श्री वृद्धि के प्रति निष्काम कर्म-योगी की तरह समर्पित रहे। पराधीन भारत मे उनकी ओजस्वी कविताओ ने अनेक लोगों मे क्रान्ति की चिनगारी पैदा को तथा स्वाधीन भारत में अन्याय-अत्याचार से जूझने का साहस पैदा किया।

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' का जन्म १९१३ मे हुआ था। बीस साल की आयु मे ही उन्होने सहारनपुर से प्रकाशित होने वाले 'आर्य' साप्ताहिक का सम्पादन कार्य सम्हाल लिया था। यहीं से उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र मे पदार्पण किया था। बाद में उन्होने 'आर्य-सन्देश', 'आर्य मित्र,' 'मनस्वी', 'शिक्षा-सुधा' तथा 'दैनिक मिलाप' आदि पत्र-पत्रिकाओं में सम्पादक के रूप मे सहयोग दिया।

'सुमन' जी ने लगभग साठ पुस्तकों की रचना करके हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। वे एक सफल साहित्य सेवी ही नहीं, कुशल प्रशासक कर्मठ कार्यकर्ता और सर्वोपरि देशभक्त महामानव हैं। वे अपने आप में एक व्यक्ति ही नहीं संस्था हैं। १६ सित० सन् ६६ को जब दिल्ली में उनकी पचासवीं 'साल गिरह' मनाई जा रही थी तब तत्कालीन राष्ट्रपति श्री जाकिर हुसैन ने उन्हे 'एक व्यक्ति-एक संस्था' नामक अभिनन्दन ग्रन्थ अर्पित करते हुए उनको एक व्यक्ति अनेक संस्था कह कर सम्मानित किया था। स्वभाव से फक्कड़, दूसरों की सहायता तथा सेवा के लिए सदा तत्पर 'सुमन' जी के व्यक्तित्व में एक ऐसी सहजता है जो बरबस ही दूसरों को उनका आत्मीय बना देती है। अभिमान अहंकार और अभिजात्य पन से वे कोसों दूर हैं। सतत सचेतन साहित्य में नूतनता के पक्षधर, मौलिक ढंग से काम करने के हामी 'सुमन' जी नये साहित्यकारों के लिए सदा-प्रेरणा का स्रोत बने रहते हैं।

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' जी ने साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में

(शेष पृष्ठ ७ पर)

आतंकवादियों को कुचलने का वैदिक सिंहनाद

—: सोमपाल शास्त्री :—
वेद मन्दिर, ज्वालापुर, हरिद्वार

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ॥
अथर्व० काण्ड १, सू० १६, मं० ४॥

(यदि) यदि (नः) हमारी (गाम्) गाय को (हंसि) मारता है (यदि अश्वम्) यदि अश्व को मारता है (यदि पूरुषम्) यदि पुरुष को मारता है (तं त्वा) उस तुझ आततायी को (सीसेन) सीसे की गोली से (विध्यामः) हम बींध देते हैं (यथा) जिस से तू (नः) हमारे (अवीरहा) वीरों का वध न करने वाला (असः) होवे।

आज मेरे राष्ट्र का हर तरह से हनन किया जा रहा है। राष्ट्र पर चारों ओर से असुरों ने आक्रमण कर दिया है। हर तरह से असुर मेरे राष्ट्र को नोच लेना चाह रहे हैं। कोई मेरे राष्ट्र की पृथ्वी को बांट लेने की बात करके इसकी अखंडता का हनन करना चाह रहा है। कोई गाय सदृश उपकारी पशुओं का हनन कर रहा है ताकि मेरा राष्ट्र बलरहित एवं दुग्ध व धन-धान्य से वंचित रहकर पतन के गहन गर्त में गिर जाए। इतना ही नहीं यह असुरों का आक्रमण मेरे राष्ट्र सैनिकों के सुरक्षा साधनों तक भी हुआ है। मेरे राष्ट्र के सैनिकों के हथियारों को ध्वस्त करने का प्रयास किया जा रहा है।

ये असुर शक्तियां मेरे राष्ट्र के अश्वों को समाप्त करने पर भी तुली हैं, ये शक्तियां मेरे राष्ट्र की द्रुत संचार व्यवस्था को भी नष्ट-भ्रष्ट कर देना चाह रही हैं, जिससे सम्पूर्ण राष्ट्र में व्याप्त अश्व की भांति द्रुत-संचार व्यवस्था पंगु हो जाए तथा असुरों को अपने पाप कर्म करने का अवसर मिल जाए। यह घृणित चाल यहीं तक सीमित नहीं है, सर्वाधिक शोचनीय विषय तो यह है कि मेरे राष्ट्र में बसने वाले सभ्य पुरुषों पर भी नित्य प्राणघातक हमला किया जा रहा है। राष्ट्रहित में सर्वस्व न्यौछावर करने को उद्यत वीर, धीर पुरुषों का रक्त बहाया जा रहा है। कितने ही निर्दोष, निष्पाप, राष्ट्र-भक्त, सुशील, सभ्य, सुसंस्कृत भद्र पुरुषों के रक्त से ये असुर अपने आप को नित्य कलंकित कर रहे हैं। चारों ओर त्राहि-त्राहि मची है। अब तो ये घृणित कृत्य असह्य ही हो उठे हैं। राष्ट्रभक्त भद्र जनता अपने प्राणों की सुरक्षा की प्रत्याशा में इतस्ततः पलायन करती फिर रही है। इतना अनर्थ होने पर भी शासकों को कुछ अवगत ही नहीं हो पा रहा है कि राष्ट्र में असुरों का साम्राज्य किस चरम सीमा तक पहुंच गया है।

आज मैं देख रहा हूं कि असुर प्रवृत्तियां मेरे राष्ट्र को पतन की ओर ले जा रही हैं। कहीं राष्ट्रद्रोह है, कहीं मानव रक्त बहाया जा रहा है, कहीं अविश्वास की भावना है। कहीं स्वार्थवृत्ति है, कहीं एक-दूसरे को नीचा दिखाने की बेढंगी चालें हैं। लेकिन मैंने इन्हें समझ लिया है, मैं इन से सख्ती के साथ निपटूंगा। मैं अपने राष्ट्र में किसी भी निर्दोष की हत्या सहन नहीं कर सकता, मैं मानव रक्त को सड़कों, गलियारों, बाजारों में प्रवाहित होता नहीं देख सकता। मैं चाहता हूं कि किसी भी निर्दोष का एक कतरा रक्त भी धरती मां के वक्ष-स्थल पर न पड़े। क्या तुम जानते नहीं हो? मां के वक्ष पर उसी के पुत्र का रक्त गिरने से मां पर क्या बीतेगी? क्या तुम्हें मां के उपकार याद नहीं हैं? जब तुम्हारा एक भी आंसू आंखों से निकलने को होता था, तब तुम्हारी मां क्या कुछ करने को उद्यत नहीं हो जाती थी? उस मां को मत सताओ, उसकी ममता का ध्यान करो।

ऐ राष्ट्रद्रोह से युक्त असुर प्रवृत्ति के हत्यारो, मैं तुम्हें अपने राष्ट्र से खदेड़ कर ही दम लूंगा। मैं तुम्हें अच्छी तरह पहचान गया हूं। अब मैं तुम्हारा सर्वनाश ही करूंगा। मैं तुम्हें तुम्हारे पुत्र-पौत्रों तक से रहित कर दूंगा, मैं तुम पर प्राण-घातक शस्त्रों से वार करूंगा, सीसे की गोली से छलनी कर दूंगा, बन्दी बनाकर कारागार में डालूंगा, तुम्हें ताडित करूंगा। ऐ राष्ट्र द्रोह के पंक में स्वयं को कलंकित करने वाले असुरो, तुम शीघ्र ही मेरे राष्ट्र से पलायन कर जाओ, किन्हीं पर्वत मालाओं में जाओ, वहां जाकर अपने आपको समाप्त कर दो, गहन वनों में जाकर वृक्षों से टकराओ, कुछ भी करो, लेकिन मेरी धरती मां को घृणित कार्यों से कलंकित न करो। मेरे राष्ट्र को अशान्ति, दुःख, दारिद्र्य, कलह, वैमनस्य, विद्रोह का अड्डा मत बनाओ। मेरा मन राष्ट्र भावों से ओतप्रोत है। राष्ट्रवेदी पर मैं तथा मेरे राष्ट्र के निवासी अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को उद्यत है। राष्ट्र को सशक्त एवं उन्नत करने के लिए मैं सर्वस्व बलिदान के पथ पर बढ़ता हूं। मैं चाहता हूं कि मेरे राष्ट्र के सभी निवासी पूर्ण राष्ट्रभक्त हों, परस्पर मित्र-भाव से वर्तते हों, जिस से मेरे राष्ट्र में सुख और शान्ति का साम्राज्य हो। □

राकेश कैला भाषण प्रतियोगिता

आप को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि आर्यसमाज हनुमान रोड के ६४वें वार्षिकोत्सव (२१ सितम्बर से २८ सितम्बर १९८६ तक) के अवसर पर शनिवार २७ सितम्बर १९८६ को कालेज और विश्वविद्यालयों के छात्र/छात्राओं की भाषण प्रतियोगिता आयोजित की जा रही है। यह प्रतियोगिता इस आर्यसमाज के यशस्वी प्रधान श्री राममूर्ति कैला के स्वर्गीय सुपुत्र राकेश कैला की पुण्य स्मृति में प्रतिवर्ष आयोजित की जाती है। इस वर्ष की प्रतियोगिता का विवरण निम्न प्रकार से है—

स्थान	: आर्यसमाज मन्दिर, १५ हनुमान रोड, नई दिल्ली-१
दिवस	: शनिवार, २७ सितम्बर, १९८६
समय	: दो बजे-तीसरे पहर
विषय	: धर्म एवं सम्प्रदाय (मजहब) क्या एक ही हैं?
प्रथम पुरस्कार	: चल विजयोपहार तथा ३०१/- रुपये नकद, वैदिक साहित्य, ग्लूकोज पैकेट
द्वितीय पुरस्कार	: २०१/- रुपये नकद, वैदिक साहित्य, ग्लूकोज पैकेट
तृतीय पुरस्कार	: १५१/- रुपये नकद, वैदिक साहित्य, ग्लूकोज पैकेट

प्रतियोगिता में भाग लेने वाले प्रत्येक छात्र/छात्रा को ११/- रुपये नकद, वैदिक साहित्य और ग्लूकोज पैकेट प्रधान जी की ओर से दिया जाएगा।

नियम—१. प्रत्येक कालेज से केवल एक विद्यार्थी भाग ले सकेगा।
२. भाषण के लिए सात मिनट का समय दिया जाएगा।
३. लिखित भाषण पढ़ने की अनुमति नहीं होगी।

आप से अनुरोध है कि आप अपने महाविद्यालय/विभाग के सुयोग्य छात्र/छात्रा को भाषण प्रतियोगिता के लिए तैयार करें और विद्यार्थी का नाम २५ सितम्बर, १९८६ तक "संयोजक, राकेश कैला भाषण प्रतियोगिता आर्यसमाज, १५ हनुमान रोड, नई दिल्ली-१" के पास भेज दें।

सधन्यवाद।

भवदीय
सुभाष विद्यालंकार
(संयोजक)
दूरभाष : ३११२८०

वैदिक मूल्यों...

(पृष्ठ २ का शेष)

इसी प्रकार वेद में अन्य अनेकानेक सार्वजनीन, सार्वकालिक हितकारी सिद्धान्त भरे पड़े हैं जिन को आदर्श मानकर उन पर अमल करने से मनुष्य स्वयं तो सुखी रह ही सकता है, अन्यों को भी सुख पहुंचाने में सहायक हो सकता है। अतः वेद को प्राचीन इतिहास मानकर छोड़ देने से बात नहीं बनेगी। वेद का अध्ययन जितना अधिक होगा और मानव वेद को गडरियों के गीत बताने वाले पाश्चात्य विद्वानों के कथन को अनदेखा करके उन पर जितना अधिक अमल करने का प्रयास करेगा तो यह डिण्डिमघोषेण कहा जा सकता है कि वेद आज भी मानव-जाति क्या प्राणिमात्र का सर्वाधिक हितैषी ग्रन्थ सिद्ध होगा।

एल. आई. जी. १६
एल. डी. ए. कालोनी,
ऐशबाग, लखनऊ

महामानव योगीराज श्रीकृष्णचन्द्र

लेखक—स्वामी स्वरूपानन्द

★

इस संसार में अनेकों मानव जन्म लेते हैं। समय समय पर ऐसे नर रत्नों का जन्म होता रहता है। ऐसे ही नर रत्नों में महात्मा श्रीकृष्ण चन्द्र अपना शीर्ष स्थान रखते हैं। श्री कृष्ण चन्द्र जी का जन्म भादों बदी अष्टमी रात्री के १२ बजे पर बृज मण्डल मथुरा नगरी में हुआ था। माता देवकी और पिता वसुदेव उस समय कंस राजा राजा ने बन्दी बना रखे थे। कंस के भय से वसुदेव जी ने रातों रात श्री कृष्ण जी को गोकुल नगर नन्द गोप के घर पहुँचा दिया था तभी से इनको नन्द यशोदा का पुत्र कहकर पुकारते हैं।

आज के युग में योगीराज कृष्ण को पुराणों में चोर, जार, कपटी, छलिया, माखनचोर, कुब्जा व राधा से प्रेम गोपियों से रमण करने वाला बताया जा रहा है। इसलिये पुराण कल्पित कृष्ण को या तो ईश्वर परम ब्रह्म माना है या अनेकों आक्षेप लगाकर आदर्शों से गिरा हुआ सामान्य व्यक्ति माना है।

उस महामानव योगी राज का स्वयं प्रमाण है उनकी इच्छा थी कि रुक्मिणी के गर्भ से गुण, कर्म, स्वभाव और तेज में उन्हीं का प्रतिरूप पुत्र उत्पन्न हो। उन्होंने इस कामना की पूर्ति के लिये रुक्मिणी सहित १२ वर्ष तक हिमालय में रहकर कठिन तपस्या कर घोर ब्रह्मचर्य का पालन किया। उसके बाद पति-पत्नी ने हर प्रकार से अपने वीर्य और रज को परिपक्व बनाकर गर्भाधान किया। तब कहीं प्रद्युम्न जैसे शीलवान, गुणवान, सौन्दर्यवान पुत्र को पाया था। ऐसे आत्मरूप पुत्र को पाकर श्रीकृष्ण ने कहा था—

ब्रह्मचर्यं महत् घोरं चीत्वा द्वादश व षिकम्।

अर्थात् मैंने १२ वर्ष तपस्या के बल से जिस पुत्र प्रद्युम्न को पाया है वह घोर ब्रह्मचर्य और तपस्या का फल है।

जिस समय युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर देश देशांतरो के राजा उपस्थित थे, धर्मराज युधिष्ठिर कुरु वंशावतंस भीष्म यादव कृतवर्मा, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, वसुदेव, पांचालाधिपति द्रुपद आदि गण्यमान्य जनों की उपस्थिति थी।

महाराज युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से सम्मति मांगी कि इस सभा में किसको सर्वप्रथम अर्घ्य प्रदान किया जाये। भीष्म पितामह ने अपनी जो सम्मति प्रदान की वह इस प्रकार है—

वेदवेदांगविज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा। नृणांलोके हि को अन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादते।

अर्थात् भगवान कृष्ण वेदवेदांगों के विशिष्ट ज्ञाता, शारीरिक शक्ति से अधिक बलवान, ज्ञानी, कुशल सुनने समझने वाले, हीनकर्म से लज्जा अनुभव करने वाले, यशस्वी प्रखर बुद्धि वाले, विनम्र, कान्तिमान, धैर्यवान हर प्रकार से हृष्ट पुष्ट हैं। उक्त गुणों के कारण मनुष्यों के मध्य संसार में दूसरा कोई भी विशिष्ट पुरुष नहीं है जो कि कृष्ण की समता कर सके। अतः इस राज समाज में सर्वप्रथम कृष्णचन्द्र ही सवथा सम्पूज्य हैं। इससे बड़ा उनकी मानवता का क्या प्रमाण हो सकता है?

इसलिए श्रीकृष्ण का जीवन जितना उज्ज्वल, निष्कलंक और पावन है उतना अन्यत्र मिलना सम्भव नहीं। पर खेद का विषय है पुराणों में उन का जीवन सर्वथा कलंकित बना रखा है। आओ उस योगीराज के जीवन से तथा गीता ज्ञान से शिक्षा लें। अतः इस कृष्ण जयन्ती की पावन तिथि पर हम व्रत लें कि महामानव के पदचिह्नों पर चलकर हम अपने जीवन का नव-निर्माण करें। भगवान हम कृष्णभक्तों को शक्ति प्रदान करे।

समाचार

पंजाब बचाओ देश बचाओ दिवस पर सुरेन्द्र बिल्ला का आह्वान

आर्यसमाज मन्दिर सान्ताक्रुज में "पंजाब बचाओ देश बचाओ" दिवस उत्साहपूर्वक मनाया गया। इस अवसर पर विशेष रूप से उपस्थित हिन्दू राष्ट्रीय संगठन पंजाब के अध्यक्ष तथा दुर्ग्याना टाइम्स के सम्पादक श्री सुरेन्द्र कुमार बिल्ला ने पंजाब में हो रहे हिन्दुओं के हत्याकाण्ड तथा उनके पलायन के सन्दर्भ में विस्तृत जानकारी देते हुए कहा, पंजाब की समस्या आज की नहीं है। इसका जन्म भारत की स्वतन्त्रता के साथ ही हुआ है। पाकिस्तान बन गया तो अंग्रेजों के उकसाने पर मास्टर तारा सिंह ने सिख राज्य की मांग की। भारत के संविधान पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। आगे चलकर शनः शनः अकालियों का आन्दोलन बढ़ता गया।

भिण्डरावाले का इतिहास आप से छिपा नहीं है। ट्रकों में भर भरकर हथियार स्वर्ण मन्दिर में पहुंचाए गए परन्तु किसी ने रोका नहीं। पुलिस और पंजाब के सभी अधिकारी उन के साथ मिले हुए थे। दुकानों में, राह चलते, घरों में, सर्वत्र हिन्दुओं की हत्या का सत्र उस ने चलाया। बसों और कारों से हिन्दू यात्रियों को निकाल निकालकर उन की हत्या होने लगी।

आज पंजाब में अकाली राज्य है और पहले से अधिक हिन्दुओं पर संकट आ गया है। बीस-बीस हिन्दू प्रतिदिन आज मारे जा रहे हैं। बरनाला सरकार हिन्दुओं की रक्षा नहीं करना चाहती। यदि चाहती तो बीस हजार परिवार पंजाब से बाहर क्यों चले जाते? पंजाब में ही उनके रखने की व्यवस्था बरनाला सरकार को करनी चाहिए थी।

पंजाब में कोई सिख जाए तो जाते ही उसे पहले एक हजार रुपया दिया जाता है फिर तत्काल उनके पुनर्वास की व्यवस्था की जाती है। हिन्दू पलायन कर अन्य राज्यों में जाते हैं तो वहां की सरकार रहने नहीं देती। उन की भयंकर दुर्दशा हो रही है।

दिल्ली में उपद्रव हुआ तो सेना पहुंच गई। पंजाब में जहां हिन्दुओं की सामूहिक हत्या हो रही है वहां सेना क्यों नहीं भेजी जाती?

पंजाब में हिन्दुओं का विनाश रोकने के लिए–

१ बरनाला सरकार को तत्काल बरखास्त किया जाए।

२. पंजाब में राष्ट्रपति शासन लागू किया जाए।

३ पंजाब को अविलम्ब सेना के हवाले कर दिया जाए।

इस अवसर पर प्रिंसिपल के एल. लतरेजा, श्री प्रदीप शास्त्री, श्री ओंकारनाथ आर्य, डा० सोमदेव शास्त्री तथा प० दयाशंकर जी ने भी अपने विचार रखे।

अन्त में आर्यसमाज सान्ताक्रूज के महामन्त्री कैप्टिन देवरत्न आर्य ने सभा का समापन करते हुए कहा कि प्रत्येक राष्ट्रवादी नागरिक को प्रधानमन्त्री से प्रार्थना करनी चाहिए कि पंजाब में हिन्दुओं की हत्या रोकने के लिए वहां तत्काल राष्ट्रपति शासन लागू हो। उन्होंने आगे कहा कि जनरल वैद्य की हत्या ने देश को दहला दिया है। जिसने सारा जीवन देश की सेवा में अर्पित किया उस के जीवन की रक्षा हम नहीं कर सके। इसका प्रभाव सेना के अनुशासन पर पड़ सकता है।

—कैप्टिन देवरत्न आर्य

आर्य वीर दल प्रशिक्षण शिविर

आर्य वीर दल हरियाणा के दयानन्द कालेज हिसार में एक शिविर डी० ए० वी शताब्दी वर्ष के उपलक्ष में १४ सितम्बर से १८ सितम्बर तक सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर डी० ए० वी० कालेजों के सैकड़ों युवकों ने भाग लिया। समारोह का उद्घाटन श्री राजेन्द्र जिज्ञासु ने किया तथा अध्यक्षता श्री रामनाथ सहगल ने की। इस अवसर पर श्री चौ० शिव राम वर्मा, चौ० किशनलाल, डा० गणेशदास, प्रो० वेद सुमन, सेठ राम धारी सिंह, आ० सत्यप्रिय शास्त्री, प्रो० रामविचार, श्री कर्मवीर शास्त्री आदि नेताओं एवं विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किए।

स्वतन्त्र युवा संगठनों से सावधान

मुझे कुछ अपुष्ट समाचारों से ज्ञात हुआ है कि अनेक स्वयंभू कार्यकर्ता सार्वदेशिक आर्य वीर दल के बढ़ते प्रभाव और अनुशासन से भयभीत होकर स्वतन्त्र संगठन के नाम से सिद्धान्तप्रियता की दुहाई और शिरोमणि संगठन के प्रति अपनी स्वेच्छाचारी मनोवृत्ति से अनर्गल प्रलाप करते हुए अलग-थलग नया संगठन बनाने की घोषणा कर रहे हैं। मेरा ऐसे बन्धुओं से अनुरोध है कि वह वर्तमान में उभरती समस्याओं से निपटने के लिए सार्वदेशिक सभा द्वारा संस्थापित सार्वदेशिक आर्य वीर दल को ही अपना हार्दिक सहयोग दें और अग्रसर होकर संगठन को मजबूत बनाकर अपने कर्तव्य का पालन करें। आर्यसमाज के समस्त पदाधिकारियों से मेरा अनुरोध है कि आर्यसमाज मन्दिर में सार्वदेशिक आर्य वीर दल के अतिरिक्त अन्य किसी स्वतन्त्र युवा संगठन की शाखा नहीं लगाई जा सकती है क्योंकि सभा मन्त्री श्री सच्चिदानन्द शास्त्री गत सार्वदेशिक साप्ताहिक में इस विषय पर स्पष्ट घोषणा कर चुके हैं कि आर्य वीर दल ही सभा का वैध युवकों का संगठन है।

बालदिवाकर हंस, प्रधान संचालक
सार्वदेशिक आर्य वीर दल

क्षेमचन्द सुमन...

(पृष्ठ २ का शेष)

हीं अपना बहुमूल्य योगदान ही नहीं दिया है, अपितु वे वि० वि० के कुलपति, गुरुकुल ज्वालापुर की प्रबन्धकारिणी के अध्यक्ष तथा अन्तरग सदस्य रह चुके हैं। उन्होंने भारत सरकार की 'साहित्य अकादमी' में भी महत्वपूर्ण पद पर काम किया है। वे जहां भी रहे हैं, जिस पद पर भी काम किया है, सर्वत्र उनकी निष्ठा, लगन तथा अदम्य उत्साह के साथ काम करने की क्षमता की प्रशंसा हुई है। हिन्दी साहित्य को 'सुमन' जी के योगदान का महत्व इसी से समझा जा सकता है कि ३ अक्टूबर, ८१ के दिन भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती गांधी ने अपने निवास स्थान पर 'सुमन' जी के बेजोड़ ग्रन्थ 'दिवंगत हिन्दी सेवी' के प्रथम खण्ड का विमोचन किया। दस खण्डों में प्रकाशित होने वाले इस विश्व कोश में अब तक दो हजार से अधिक दिवंगत हिन्दी सेवियों का परिचय दिया जा चुका है। इस अभूतपर्व सन्दर्भ ग्रन्थ की योजना और परिकल्पना से यह प्रमाणित हो जाता है कि 'सुमन' जी के मन में साहित्य और साहित्यकारों के प्रति कितनी सहानुभूति है।

डा० क्षेमचन्द्र 'सुमन' के बारे में उनके परिचितों और मित्रों का कहना कहना है कि वे अपने आप में एक चलते-फिरते पुस्तकालय हैं। यदि आप किसी पुस्तक, पत्र-पत्रिका अथवा साहित्यकार के बारे में जानकारी चाहते हों आचार्य जी से मिलिए। वे आपको वह सब बता देंगे जिसकी तलाश में आपको कई दिनों तक ग्रन्थागारों की खाक छाननी पड़ती।

डा० 'सुमन' की साहित्य-सेवा, निष्ठा, निष्काम कर्मठता, मानवोचित गुण-गरिमा तथा भारत की प्राचीन सस्कृति की रक्षा के लिए किए गए प्रयत्नों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने उन्हें पिछले साल 'पद्म श्री' की उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया था। एक महान साहित्य सेवी के रूप मे श्री 'सुमन' जी की गिनती वैसे तो उनकी कृतियों के कारण सदा की जाएगी, परन्तु 'दिवंगत हिन्दी सेवी' ग्रन्थ उनकी ख्याति को चिर स्थायी सिद्ध करने वाला प्रमाणित होगा। यह ग्रन्थ अपनी गुणवत्ता और 'सुमन' जी की अकुण्ठ साधना का जीवन्त स्मारक है। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय 'सुमन' जी को सीनियर फैलोशिप प्रदान करके इस ग्रन्थ की उपादेयता को स्वीकार कर लिया है। यह प्रसन्नता की बात है।

श्री सुमन जी १६ सितम्बर को अपने जीवन के इकहत्तरवें साल में प्रवेश कर रहे हैं। मेरी कामना है कि हिन्दी के अन्यतम साहित्य सेवी लगनशील, अदम्य उत्साही, निष्ठावान, नये लोगों के प्रेरणा के स्रोत और पुरानों की ख्याति को विस्मृति के गर्त में विलीन होने से रोकने के लिए सतत साधना रत 'सुमन' जी शतायु होकर इसी तरह हिन्दी भाषा की सेवा करते रहें। उनके इस जन्मदिन पर इस अकिंचन लेखक की शत-शत प्रणाम तथा आन्तरिक शुभ कामनाएँ। □

मुस्लिम युवती हिन्दू बनी

नगर आर्यसमाज साहबगंज गोरखपुर के तत्वावधान में लालडिग्गी उद्यान स्थित पं० रामप्रसाद बिस्मिल स्मारक यज्ञशाला में एक मुस्लिम युवती जिसका नाम श्रीमती आशियां पुत्री श्री अब्बू सलीम ग्राम भरवलिया तौलिहवा जिला तौलिहवा है, का शुद्धि सस्कार (वैदिक धर्म) हिन्दू में दीक्षित कराकर जिस का नाम श्रीमती गीता देवी रखा गया। तत्पश्चात् युवती गीता देवी का विवाह संस्कार श्री भोलाप्रसाद यादव निवासी अमसहा थाना घुघली जिला गोरखपुर के साथ सम्पन्न कराया गया।

शुद्धि एवं विवाह संस्कार श्री पं० द्विजराज शर्मा पुरोहित अध्यक्ष जिला आर्योपप्रतिनिधि सभा गोरखपुर के द्वारा सम्पन्न हुआ।

रमेश प्रसाद गुप्त
मंत्री

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर उद्बोधन

आर्यसमाज पंखा रोड जनकपुरी में वेदप्रचार सप्ताह सम्पन्न हुआ। २७ अगस्त को श्री कृष्ण जन्माष्टमी पर विशेष समारोह हुआ। इसमें स्वामी अग्निवेश जी ने अपने उद्बोधन भाषण में आज की परिस्थितियों में भी श्रीकृष्ण जी की प्रमुख घटनाओं से मार्गदर्शन लेने की ओर संकेत किया और आज समाज की बिगड़ी हुई दशा पर विशेष बल देते हुए उन्होंने देश के क्रांतिकारियों का स्मरण किया जिसमे आर्यसमाज के क्रांतिकारी श्री रामप्रसाद बिस्मिल, सरदार भगतसिह एव असफाकउल्ला आदि क्रांतिकारियों को कुछ घटनाएँ भी उपस्थित की और समाज को सकेत किया कि केवल हवन, संध्या एवं सत्सग करके ही सन्तुष्ट नही रहना चाहिए अपितु समाज के कमजोर वर्गों को भी समाज में लाकर उन्हें सम्मान और सहारा देना आवश्यक है। यदि हम चाहते हैं कि आर्यसमाज जो एक सजीव बुद्धिवादी व्यक्तियों की संस्था है वह न केवल कुछ मध्यम वर्ग के लोगो तक ही सीमित न रहे बल्कि समाज के सभी ऊंच-नीच, वर्ण-व्यवस्था को समाप्त कर महर्षि द्वारा बताए गए सच्चे आदर्शों पर मानव मात्र की सेवा करने का संकल्प लें।

अन्त में, समाज के प्रधान मेजर रामप्रकाश धाम जी ने सभी वक्ताओं और उपस्थित जन-समूह का धन्यवाद किया।

प्रतापसिंह गुप्त
प्रचार मंत्री

शोक सभा

डा० रघुनन्दन सिंह निर्मल को आर्यसमाज शालीमार बाग में १४।९।८६ को आयोजित रविवासरीय बैठक में श्रद्धाञ्जलि अर्पित की गई।

देवराज कालरा
मन्त्री

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के समस्त अधिकारी एवं कर्मचारी आर्य समाज मानसरोवर पार्क के प्रधान श्री भागीरथ लाल आर्य के देहावसान पर गहरा दुःख एवं शोक व्यक्त करते हैं। परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करे तथा उनके वियोग में सतप्त दुःखी परिवार तथा आर्यसमाज मानसरोवर पार्क के सदस्यों को इस महान दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

डा० धर्मपाल, महामंत्री

ओ३म्

वर्ष १० : अंक ४४ रविवार २८ सितम्बर, १९८६ सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ आश्विन २०४३ दयानन्दाब्द—१६१
मूल्य : एक प्रति ५० पैसे वार्षिक २० रुपये आजीवन २०० रुपये विदेश में ५० डालर, ३० पौंड

अलगाववादी आन्दोलनों में झुलसता देश

—यशपाल सुधांशु

भारत के उत्तर और पूर्वी सीमा पर काश्मीर से लेकर नागालैण्ड तक इस समय या तो अलगाववादी आंदोलन चल रहे हैं या अलगाववादी आंदोलनकारियों से समझौता करके अनेक राज्यों को विशेष दर्जा दिया गया है। लालडेंगा से समझौता करने के बाद मिजोरम में बगावत की आग थम गई है मगर लालडेंगा ने ऐसे मुद्दों को एकदम नहीं छोड़ा है जिन से देर सवेर इस क्षेत्र में फिर असन्तोष पैदा हो सकता है। मिसाल के तौर पर विशाल मिजोरम का नारा अब भी बदस्तूर है जिस से मिजोरम के लिए यदि इस समय सवैधानिक रूप से खास दर्जे की माग नहीं करते तो सिर्फ इसलिए कि राजनैतिक रूप से उन्हें पांव जमाने के लिए कुछ समय चाहिए। स्थानीय लोगों को खास सस्कृति और जनसख्या को सुरक्षित रखने का नारा सिर्फ उत्तरी और पूर्वी राज्यों मे नहीं उठाया गया है बरसों पहले तमिलनाडु में भी लगभग इसी प्रकार का आन्दोलन तेजी के साथ चलाया गया था। हाल ही मे आन्ध्र प्रदेश में भी लगभग इसी प्रकार के नारे को लेकर तेलगु देशम की सरकार बनी।

गोरखा लैण्ड के नाम से अलग राज्य की मांग भी इसी प्रकार से भारत की अखण्डता को चुनौती देती उठ खडी हुई है। गोरखा राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा नामक एक सस्था दार्जिलिंग और उसके आसपास के क्षेत्रों में सक्रिय है। उसके सुबास घिसिंग नामक नेता हैं जो गोरखालैण्ड के निर्माण और भारत नेपाल सन्धि के निरस्तीकरण की भड़काने वाली मांग कर रहे हैं उन्होंने गैर गोरखा अफसरों को बलपूर्वक (खुखरी से) भगा देने की धमकी दी है। कई विदेशी सरकारों को गोरखों पर किए जा रहे तथाकथित अत्याचारों के खिलाफ पत्र लिखे हैं और समर्थन चाहा है तथा पिछले एक साल में उनके आह्वान पर आयोजित किये गये हिंसक आन्दोलनों में बीसियों लोग अपनी जान गवा चुके हैं। इसी प्रकार अलग कामतापुर की मांग कई साल पुरानी है मगर गोरखा लैण्ड का आन्दोलन शुरू होने से इस में नई जान आई है। विशेष बात यह है कि इस में कई प्रभावशाली राजनैतिक लोगों का समर्थन है। इनमें असम गण परिषद के कुछ नेता भी हैं। कुछ काल पहले ही इस मांग के समर्थन में मोइनागुड़ी में एक प्रदर्शन हुआ जिसमें असम गण परिषद के दो नेता भी शामिल हुए। असम गण परिषद की गाडियो का प्रदर्शनकारियों ने खुलकर प्रयोग किया। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि जयपुर की महारानी गायत्री देवी का भी समर्थन इसे हासिल है। गायत्री देवी कूच बिहार उत्तर बगाल की रियासत की राजकुमारी हैं हालांकि वे जयपुर में रहती हैं फिर भी उनका यहां की कई धार्मिक संस्थाओं से गहरा सम्बन्ध है।

कामतापुर के आदिवासी गोरखा लैण्ड की तरह अलग देश की मांग नही करते हैं। वे भारत में ही अलग राज्य चाहते हैं। कामतापुर में उत्तर बंगाल के पांच जिले शामिल हैं। दार्जिलिंग को इस योजना से अलग रखा गया है। इसके अलावा असम के भी कुछ इलाके शामिल किए गए हैं जो अब धुबरी, गोयलपाडा और कामरूप जिलों के हिस्से हैं। कामतापुर आन्दोलन भारतीय नागरिकता को छोडकर बहुत कुछ खालिस्तान के आन्दोलन से मिलता जुलता है। मोइनागुडी कस्बे के पास एक पुराना मन्दिर है जिसे जलपेश मन्दिर कहते हैं जहां जलपेश मेला लगता है। तीन सालों से यह अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। आन्दोलनकारियों ने इसे अपना मुख्यालय बना लिया है। आन्दोलन के नेता पचानन मलिक का कहना है कि जिस प्रकार खालिस्तान आंदोलन स्वर्ण मन्दिर से शुरू हुआ उसी प्रकार कामतापुर आन्दोलन जलपेश से शुरू होगा। खालिस्तान आन्दोलन की तरह आन्दोलन के कार्यकर्ताओं को भी मन्दिर में दीक्षा दी जाती है और भगवद्गीता पर हाथ रखकर प्रतिज्ञा करवाई जाती है कि वे अपने उद्देश्य के लिए मर मिटने के लिए तैयार रहेंगे। अतः सरकार को इस नई आग के लिए भी तैयार रहना चाहिए।

चौदह राज्यों से शुरू करके हम तेईस राज्यो का गणतन्त्र बन चुके हैं। जाहिर है सवाल न खर्च का है और न आबादी या क्षेत्रफल का। प्रश्न है इन मांगों के उचित और अनुचित का। यह भी देखना होगा कि आज कहीं से भी कोई भी किसी भी क्षेत्र की स्वायत्तता की माग लेकर खडा हो जाता है और हमारे देश की ऊर्जा देश के विकास से हट कर गृह कलह से निपटने मे लगी है तो सन्देह उठना स्वाभाविक है कही यह आग किन्हीं बडी शक्तियों की सुलगाई हुई तो नही है जबकि कुछ सबूत भी मिलने लगे तो सरकार को अपने गुप्तचर विभाग को और भी अधिक सशक्त बनाना चाहिए।

सुबास घिसिंग गोरखा लैण्ड चाहते हैं। यह तो इतना सुविदित है कि इस पर बहस करना बेकार है। ज्योति बसु के लिए भी प्रधानमन्त्री राजीव गांधी के लिए भी। गोरखा लैण्ड का नक्शा तैयार है और उनके कैलेण्डर भी बटने लगे हैं। यदि गोरखे भारतीय नागरिकता चाहें तो जायज है, यदि वे अपने क्षेत्र की खुशहाली के लिए और विकास के लिए आन्दोलन करें तो जायज है परन्तु यदि वे ५ लाख लोगों के लिए स्वतन्त्र देश चाहें और भारत को सुदृढ़ दीवार को तोडना चाहें तो वह सहन नही करना चाहिए और सरकार को तुरन्त ठोस कदम उठाने चाहिए। □

प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल व्यवस्थापक—डा० गणेशीलाल सम्पादक—पं० यशपाल सुधांशु एम० ए०

प्रेरक प्रसंग

प्रस्तोता—सत्यानन्द आर्य

। १ ।

सर आशुतोष एक बार बहुत ही सीधे वेश में रेल की प्रथम श्रेणी के डिब्बे में सफर कर रहे थे। उसी डिब्बे में एक अंग्रेज भी था और उसे अपने साथ ही एक भारतीय का सफर करना बड़ा बुरा लग रहा था। सर आशुतोष से उसने कई बार डिब्बा बदलने के लिए कहा, पर उन्होंने उसे अनसुना कर दिया, भला व डिब्बा बदलते भी क्यों? अंग्रेज का गुस्सा बढ़ता ही गया और रात्रि में जब सर आशुतोष सो गये, तब उसने उनका जूता उठाकर खिड़की से बाहर फेंक दिया। इधर जब आशुतोष की नींद खुली तब उन्हें अपना जूता कहीं नजर नहीं आया। अंग्रेज यात्री बड़े आराम से खर्राटे भर रहा था, पर आशुतोष को समझते देर न लगी कि यह शरारत किसकी थी, उन्होंने पास ही टंगा उस अंग्रेज का कोट उठाया और खिड़की से बाहर फेंककर आराम से बैठ गये। थोड़ी देर के बाद ही अंग्रेज की नींद खुली। अपना कोट कहीं नहीं देखकर उसने पूछा-' मेरा कोट कहां है?

"आपका कोट?" सर आशुतोष ने मुस्कराते हुए जवाब दिया, "आपका कोट मेरा जूता लाने गया है?"

। २ ।

एक बार जार्ज वाशिंगटन अपने मित्रों तथा अन्य उच्चपदस्थ अधिकारियों के साथ कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक हब्शी मिला, उसने वाशिंगटन को देखते ही अपनी टोपी उतार ली। वाशिंगटन ने भी उसी प्रकार उसके अभिवादन का उत्तर दे दिया।

बाद में, उनके मित्रों ने उनसे कहा-"आप भी अच्छे आदमी हैं, जो एक काले आदमी के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हैं!"

वाशिंगटन ने उत्तर दिया- "मित्रो! आपका क्या विचार है कि जब उस बेचारे अशिक्षित हब्शी ने मेरे प्रति इतनी सभ्यता दिखलाई तो मैं उसके सामने असभ्य का सा बर्ताव करके अपने को ओछा सिद्ध करता?"

। ३ ।

महाराजा रणजीत सिंह एक बार कहीं जा रहे थे। अकस्मात् सामने से एक पत्थर आकर उनके सिर पर लगा। सैनिक तत्काल रुक गये। पत्थर मारने वाले की खोज शुरू की।

सैनिकों को एक बुढ़िया दिखी, जो अपराधिनी की भांति सहमी हुई थी। उन्होंने उसे बन्दी बना लिया और महाराज के समक्ष उपस्थित किया। बोले-"महाराज इसी दुष्टा ने आपको पत्थर मारा है।" भय से कांपती हुई बुढ़िया बोली-"महाराज मैं बेकसूर हूं। मेरा बच्चा दो दिन से भूखा है। घर में एक दाना अनाज नहीं। कहीं कुछ नहीं मिला। मगर बच्चे का पेट भरना था। सामने के पेड़ पर फल दिखे। पत्थर मारकर उन्हें तोड़ने की कोशिश कर रही थी। मेरी बदकिस्मती से एक पत्थर आपको लग गया। माफ कीजिए महाराज!"

रणजीत सिंह सेनापति से बोले- "इसे कुछ अशर्फियां देकर छोड़ दो"

सेनापति ने आश्चर्य से पूछा- "यह कैसा न्याय महाराज! दण्ड के स्थान पर पुरस्कार?" रणजीत सिंह ने हंसकर उत्तर दिया-"पत्थर लगने पर बेजान वृक्ष भी मीठा फल देता है, फिर मैं इसे खाली हाथ कैसे जाने दूं?"

। ४ ।

एक स्थान पर कुछ काम हो रहा था। कई कुली भारी भरकम खंभों को उठाने का प्रयास कर रहे थे और पसीने से तरबतर थे। उस वक्त नेपोलियन रास्ते से गुजरा। काम की देखभाल करते हुए ठेकेदार भी पास ही खड़ा था। नेपोलियन उसके निकट जाकर बोला-"इन बेचारों के काम में आप भी कुछ हाथ क्यों नहीं बंटाते?"

यह सुनकर ठेकेदार को गुस्सा आ गया और दांत पीसता हुआ बोला-"तू जानता है, मैं कौन हूं! मैं हूं इस काम का ठेकेदार हूं!"

नेपोलियन कुछ न बोला, कुलियों के साथ खंभे उठाने के काम में स्वयं भी जुट गया। उसे पागल समझकर ठेकेदार ने पूछा 'तू कौन है?'

नेपोलियन ने उत्तर दिया- 'भाई शायद आप नहीं जानते इस बंदे को नेपोलियन कहते हैं।"

आर्यसमाज हनुमान रोड, नई दिल्ली

के ६४वें वार्षिकोत्सव का संक्षिप्त कार्यक्रम

स्थान : आर्यसमाज मन्दिर, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१

१ यजुर्वेद पारायण महायज्ञ

रविवार २१ से रविवार २८ सितम्बर १९८६ तक प्रातः ७ से ८.३० बजे ब्रह्मा पं० मदनमोहन विद्यासागर हैदराबाद।

२. वेद कथा

सोमवार २२ सितम्बर से शनिवार २७ सितम्बर १९८६ तक, रात्रि ८ से ९॥ बजे।

३. संगीत

सुप्रसिद्ध गायक श्री सोहनलाल पथिक, गुलाबसिंह राघव, पं० सत्यदेव रेडियो कलाकार आदि।

४ महिला सम्मेलन

शुक्रवार २६ सितम्बर दोपहर १२ बजे से सायं ५ बजे तक

५. राकेश कैला भाषण प्रतियोगिता

शनिवार २७ सितम्बर प्रातः १० से १ बजे तक एवं दोपहर २ से ५ बजे तक।

६. यजुर्वेद पारायण महायज्ञ पूर्णाहुति

रविवार २८ सितम्बर १९८६ प्रातः ७ से ९ बजे तक, पं० मदनमोहन विद्यासागर की अध्यक्षता में।

७. राष्ट्रीय एकता सम्मेलन

रविवार प्रातः ११ बजे।

८. आर्य युवक प्रदर्शन

दोपहर १ बजे।

९. ऋषि लंगर

दोपहर २ बजे।

—ःउत्सव में आमन्त्रित महानुभाव :—

पूज्य स्वामी सत्यप्रकाश जी, स्वामी विद्यानन्द जी, स्वामी दीक्षानन्द जी, पं० मदनमोहन जी विद्यासागर, प० शिवकुमार शास्त्री, पं० शिवाकान्त उपाध्याय, श्री वाचस्पति उपाध्याय, वैद्य रामकिशोर जी, श्री बलभद्र कुमार हूजा भूतपूर्व कुलपति, श्री के० नरेन्द्र, गोस्वामी गिरधारी-लाल, सोमनाथ एडवोकेट, आचार्य भगवानदेव आदि।

प्रधान : रामसूर्ति कैला
मन्त्री : खैरातीलाल भाटिया
दूरभाष : ३११२८०

ला० दीवानचन्द जन्मदिवस समारोह

प्रसिद्ध दानवीर स्व० लाला दीवानचन्द जी के १०२वें जन्मदिवस के उपलक्ष्य में २८ सितम्बर को आर्यसमाज दीवान हाल दिल्ली में एक प्रेरक कार्यक्रम आयोजित किया गया है। इसमें स्वामी आनन्द बोध, डा० महेश विद्यालंकार, आचार्य महेन्द्र शास्त्री स्व० दानवीर के प्रेरक आदर्श जीवन पर प्रकाश डालेंगे। ला० दीवानचन्द के पुनीत धन से आर्यसमाज दीवान हाल, आर्यसमाज हनुमान रोड का भवन, डिस्पेन्सरी स्कूल, ट्रस्ट आदि अनेक संस्थाओं का निर्माण हुआ जो समाज में अच्छी ख्याति प्राप्त कर रही हैं।

पंजाब की समस्या में नया सुझाव

सत्यदेव भारद्वाज बेदालंकार (केनिया)

पंजाब का इतिहास विचित्र है। कभी देहली से कराची तक सब कुछ पंजाब में जुड़ा था। सिन्ध कट गया-भिन्न-भिन्न समयों में, भिन्न-भिन्न रूप से और अब पाकिस्तान का है। देहली भी बहुत देर पूर्व पंजाब से अलग किया गया और भारत की राजधानी बनकर स्वतन्त्र रूप से केन्द्र द्वारा शासित स्वतन्त्र प्रदेश हो गया—कुछ विशिष्ट अधिकारों सहित।

इस संक्षिप्त इतिहास के साथ भारत की स्वतन्त्रता के समय पंजाब फिर बंटा और पाकिस्तान में पश्चिमी पंजाब चला गया और इधर पूर्व में पूर्वी पंजाब बना जिसे लाहौर न मिल सका। इसके बाद और कुछ स्थानीय समस्याएँ पैदा हुईं और पजाब को पंजाब, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश में जोड दिया गया। इस सब के होते हुए भी समस्याएँ खड़ी रहीं। चण्डीगढ़, पंजाब और हरियाणा की सांझी राजधानी अनिश्चित समय के लिए स्थिर की गई। यह इस समय स्वयम् एक समस्या बन गई है।

पंजाब में सिखों की उपचेतना (Sub-Conscious self) में दो सौ साल से पनपाई गई मनोवृत्ति "राज करेगा खालसा बाकी रहे न कोय" ने जोर मारा और 'खालिस्तान या सिख राज्य का आन्दोलन उग्र रूप में प्रकट हुआ और दबाये जाने पर भी दबी आवाज में चल रहा है। इसके साथ आतंकवाद भी जुड़ गया दीखता है। आतंकवाद से ही पाकिस्तान की नींव पड़ी थी। उसी की नकल में 'खालिस्तान' की कार्य विधि शुरू हुई। फौजी तथा पुलिस की ताकतों से यह दबाई गई है और दबाई जा रही है।

हमें समस्या का विश्लेषण करना है। चण्डीगढ किस को दिया जाये और जमीन का बंटवारा कैसे हो आदि विषय उपस्थित हैं। कई कमीशन बने, सलाह-मशविरे हुए परन्तु सफलता न मिल सकी। समझा यह गया है कि समस्या पंजाबी अकाली दल (पंजाब) और हरियाणा की है। परन्तु ऐसा नहीं है। वस्तुत: पंजाबी सिख समुदाय, पंजाबी हिन्दू समुदाय तथा हरियाणवी समुदाय या प्रदेशों की है। जब समस्या को निपटाने का विषय किसी भी कमीशन के सामने आता है तो वह पंजाबी हिन्दू को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। 'पंजाबी हिन्दू' तथा 'हरियाणवी' में पर्याप्त विभिन्नतायें हैं। यदि पजाब में हिन्दुओं को 'सिख बहुसंख्या' के अधीन कर दिया गया तो आपसी वैमनस्य बढता जाएगा। वर्तमान पंजाब में शायद ५२ प्रतिशत सिख सम्प्रदाय के लोग समझे जाते हैं और ४८ प्रतिशत हिन्दू सम्प्रदायों के लोग हैं। आतंकवाद के कारण बहुत से पंजाबी हिन्दू पंजाब छोड़ रहे हैं। इस से समस्या और भी गम्भीर हो जाएगी। ७५ हजार एकड़ भूमि हरियाणा को दे दी जाये और चण्डीगढ़ को पंजाब में हकूमत करने वाले अकाली दल को (पंजाब सरकार को) दे दिया जाये, वगैरह-वगैरह। इस से समस्या का हल न निकलेगा। क्योंकि वर्तमान पंजाब की भूमि को ५२ प्रतिशत और ४८ प्रतिशत के अनुपात से सिख प्रधान पंजाब (मध्य पंजाब) तथा हिन्दू प्रधान पंजाब (पूर्वी पंजाब) के रूप में बांट दिया जाये। इससे भाषा समस्या भी दूर तक सुलझ जाएगी। यदि लोग सहमत हो जाये तो 'मध्य पंजाब' की राजधानी पटियाला या जालन्धर या अमृतसर बन जाए और 'पूर्वी पंजाब' को चण्डीगढ दे दिया जाये। वर्तमान समय मे हरियाणा के पास पर्याप्त भूमि है। उस की जलसमस्या को आसानी से भाईचारे से निपटाया जा सकता है। जिस पक्ष को जहां कमी दिखाई देती हो उस की पूर्ति केन्द्रीय भारत सरकार पूरा करने का प्रयत्न करे। सक्षेप में मुझे कहना है कि अपने-अपने क्षेत्र में पर्याप्त स्वतन्त्रता के साथ उन्नति करने का अवसर सब को प्राप्त हो जाएगा। हिन्दू पंजाबी तथा सिख पंजाबी आपस में बहुत पास-पास हैं। दोनों में सांझा भाईचारा था। पारस्परिक विवाह तथा सम्मिलित पूजा स्थान भी थे। इन सब सम्बन्धों में शिथिलता आती जा रही है जो दु:खप्रद है। दो भाई अगर एक ही [illegible] में न रह [illegible] तो साथ साथ [illegible]कान बनाकर रहने लग जाये। समय पाकर आपसी मुहब्बत जाग ही जाएगी। हरियाणा को अपनी राजधानी कुरुक्षेत्र में बनानी चाहिए। इसके साथ महान् इतिहास जुड़ा है।

यदि मुसलमान भूतपूर्व पंजाब से अलग होकर 'पाकिस्तान' के नाम से स्वतन्त्र राष्ट्र बनाकर रह सकते हैं तो भारत राष्ट्र के अन्दर ही दो प्रादेशिक राज्यों के रूप में "सिखप्रधान पंजाब (मध्य पंजाब)" और "हिन्दू-प्रधान पंजाब (पूर्वी पंजाब)" क्योंकर नहीं पनपाये जा सकते।

यदि विशेष अधिकारों को लेकर 'मिजोरम' जैसा छोटी-सी जनसंख्या का प्रदेश भारत का एक स्वतन्त्र राज्य या (State) दूसरे प्रादेशिक राज्यों की तरह विशेष अधिकार लेकर स्वीकृत किया जा सकता है तो उपर्युक्त प्रदेश भी (पंजाब की समस्या निपटाने में) स्वीकृत किए जा सकते हैं। पंजाबी हिन्दू जनता को हरियाणा के अधीन करने से बहुत-सी समस्यायें खड़ी हो जायेंगी। जिस पर जनता का अभी ध्यान नहीं गया है। इस समय इस चर्चा को छेड़ना उचित नहीं है।

भारत में गोआ, पाण्डेचेरी, अरुणाचल, त्रिपुरा, मणिपुर, बम्बई से अलग किया गया गुजरात प्रदेश, ये सब विशेष परिस्थितियों में और अवस्थाओं में स्वीकृत हुए है। क्या इसी तरह से उपर्युक्त सुझाव पर भी भारत के राजनैतिक मनीषी विचार न करेंगे? ध्यान रहे कि 'पंजाबी हिन्दू' को सर्वथा निरपेक्ष नहीं किया जाना चाहिए। यह कहना कि हिन्दू-सिख एक ही हैं, भाई भाई हैं, वगैरह वगैरह। यह भावुकता या भावनात्मक दृष्टि से तो अच्छा लगता है परन्तु इस में क्रियात्मक वास्तविकता पर्याप्त नहीं है। इसी से अलगाव पैदा हो रहा है। कांग्रेस के पिछले ७५ सालों में यह नारा सदा सुनने में आया है, कांग्रेसी मंचों से भी "हिन्दू मुस्लिम सिख ईसाई सभी हैं भाई-भाई"। इस नारे में सिख को सदा ही हिन्दू से अलग रखा गया है—मजहब की दृष्टि से। यद्यपि यह ठीक न था। भावुकता या भावनात्मकता में सभी भाई-भाई कहे गए परन्तु क्रियात्मकता में सभी अलग-अलग रहे।

मुसलमानों ने पाकिस्तान बना लिया। ईसाई वर्ग ने गोआ, पाण्डिचेरी, तथा पूर्वी भारत के मिजोरम आदि प्रदेश बनाये जो अब ईसाइयत के केन्द्र बनाये जा रहे हैं। पंजाब की समस्या को भी इन्हीं परिस्थितियों में रखना उचित है।

भविष्य का ध्यान रखते हुए कहना चाहूंगा कि जब तक सौहार्द तथा शान्तिपूर्ण रूप से पाकिस्तान और भारत पहले की तरह एक नहीं हो जाते, भारत और पाकिस्तान की धरती पर स्थायी शान्ति और समृद्धि पनप न सकेगी। इस बात को अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से समझना आवश्यक है। भारत को अपना रूप "यथा-पूर्वमकल्पयत्" की दृष्टि से देखना चाहिए। यही उचित है। रास्ता बहुत कठिन है परन्तु मर्दानगी से यदि चला जाएगा तो मंजिलें पार होती जायेंगी।

यदि पंजाब, हरियाणा, हिमाचल एक कर दिये जायें जिसे भारत की सैनिक शक्ति को सहायता सदा मिलती रहे तब तो कहना ही क्या। इस से उत्तरी भारत शक्तिशाली बनकर उभर आएगा। ऐसा होना दिखाई नही दे रहा। सामयिक दृष्टि से उपर्युक्त 'पंजाब की समस्या" को सुलझाने का सुझाव अवश्य ही परिस्थितियों को अनुकूलता की तरफ ले जाएगा। □

करो मिल काम पर हित क

करो मिल काम परहित के, स्वर्ग संसार बन जाए।
दीन, दुखिया कोई जग में, नजर नर नारि न आए॥
भलाई करने को हम को, यहां ईश्वर ने भेजा है।
करो पालन प्रभु आज्ञा, न कोई कष्ट फिर पाए ॥१॥
भला कीजे भला होगा, बुरा कीजे बुरा होगा।
देवता तुम उसे जानो, पराया दर्द अपनाए ॥२॥
न्यायकारी है परमेश्वर, जो फल कर्मों का देना है।
करें शुभ कर्म जो मानव, भक्त ईश्वर का कहलाए ॥३॥
स्वाध्याय और सत्सग से, बने दुर्जन बहुत सज्जन।
तजो "निर्भय" कुसंगत को, गीत यश के जगत् गाए ॥४॥

—पं० नन्दलाल 'निर्भय'
सिद्धांतशास्त्री भजनोपदेशक
ग्राम पोस्ट बहीन, जिला फरीदाबाद

तुम्हें याद हो कि न याद हो

गोलियों की दनादन में
आचार्य भगवानदास जी

लेखक : प्राध्यापक राजेन्द्र जिज्ञासु
वेद सदन अबोहर

मेरा भी जी चाहता है कि मैं निरन्तर आर्य सिद्धान्तों पर लिखूं। जब मैंने आर्य पत्रों में लिखना आरम्भ किया तो मैं सिद्धान्तों पर ही अधिक लिखा करता था। अब तो आर्यसमाज के इतिहास के माध्यम से ही आर्य सिद्धान्तों पर लिखने का सन्तोष करना पड़ता है। डी० ए० वी० शताब्दी वर्ष पर कभी कुछ भाई लिखते रहते हैं। मैंने भी ऐसे कई लेख पढ़े हैं परन्तु अब तक एक भी खोज पूर्ण लेख मेरी दृष्टि से नहीं निकला। किसी भाई ने कोई ऐसा लेख लिखा हो तो पाठक मुझे भी सूचित करने की कृपा करें।

आर्यसमाज को अपने इतिहास के सुरक्षित करने की चिन्ता नहीं है। हिन्दू समाज इतिहास से विमुख होने के कारण घाटे में रहा है और रहेगा। संसार में क्रूर हूणों को सर्वप्रथम एक भारतीय वीर स्कन्द गुप्त ने ही धूल चटाई थी। विश्व के इस अद्वितीय वीर का देश में कहीं स्मारक है? औरङ्गजेब अकबर के नाम पर तो सड़कें हैं। इस अतुल्य पराक्रमी के नाम को भी कोई नहीं लेता।

आर्यसमाज अपने सूझ बूझ वाले शूरवीर आचार्य भगवानदास जी को भूल गया है। क्यों? इसलिए कि जीवन के अन्तिम वर्षों में वह कालेज की राजनीति में मात खा गये। उनके चारों ओर ऐसे साम्प्रदायवाद की रट लगाने वाले रंगे स्यार मंडराने लगे, जो उनको डी० ए० वी. कालेज कमेटी के विरुद्ध भड़काते रहते। मेरी आंखों के सामने दो एक बार यह विचित्र नाटक हुआ। हरियाणा के दो भाइयों ने एक बार उन्हें कहा कि प्रादेशिक सभा पर अधिकार करें स्वयं प्रधान बनें और उनमें से छोटे भाई को मन्त्री बनायें।

मैंने प्रथम बार उन्हें तब देखा जब वह देहली में हंसराज कालेज के प्राध्यापक थे। मैं पहाड़गंज से बिरला मन्दिर के पीछे पहाड़ियों पर सैर को जाया करता था। स्वर्गीय श्री प्रेमनाथ जी वत्स मेरे साथ थे। प्रो० भगवानदास जी आर्यवीर दल की शाखा से आ रहे थे। श्री जगदेव जी एम० ए० (तब छात्र) उनके साथ थे। मैंने उनके लेख तो कई बार पढ़े थे दर्शन प्रथम बार ही किए।

फिर हिन्दी सत्याग्रह से पूर्व ही हम निकट आ गये। सत्याग्रह के समय उनका मुझ से विशेष स्नेह हो गया। शोलापुर में उनके साथ कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी अर्थ शुचिता आदि गुणों से मैं विशेष प्रभावित हुआ।

जब भारत छोड़ो आन्दोलन चल चल रहा था तब वह डी० ए० वी० कालेज लाहौर में आर्य युवक समाज के प्रधान थे। उन दिनों आर्य युवक स्वतन्त्रता संग्राम में बहुत सक्रिय थे। सरकार की दमन नीति के कारण कई परिवारों को बड़ा पिसना पड़ा। लाला जगत् नारायण जी का परिवार उनमें से एक था। तब लाला जगत् नारायण का परिवार दृढ़ आर्यसमाजी परिवार माना जाता था। प्रसंगवश यहां लिख दूं कि जब मुझे गुरुद्वारा सिगरेट केस में यातनायें दी जा रही थीं तब लाला जी की माता लाल देवी जी ने अपने बेटे से कहा, मैं तब तक भोजन नहीं करूंगी जब तक जिज्ञासु का कुछ पता न चले। लाला जी ने वृद्धा माता को बताया कि वह जालन्धर पुलिस के पास नहीं अमृतसर में हैं। माता लाल देवी हमारे ही नगर की थीं।

प्रो० भगवान दास जी ने तब ऐसे परिवारों की सहायता के लिए एक गुप्त संस्था बनाई। सेठ राम नारायण जी वर्मानी लायलपुर, बावा गुरुमुख सिंह जी तथा एक और आर्य सेठ (मैं नाम भूल गया) इस संस्था को आर्थिक सहायता देते थे। यह गुप्त संस्था दमन करने वाले अधिकारियों का स्थानान्तरण करवाने के लिए भी अपने ढंग से चक्र चलाती। अंग्रेज सरकार को पता लग गया कि प्रो० भगवानदास डी० ए० वी० कालेज में एक सरकार विरोधी संस्था का संचालन कर रहे हैं।

एक दिन पुलिस कालेज में घुस कर सीधे उस कक्ष में गई जहां भगवान दास जी क्लास लिया करते थे। संयोग ऐसा हुआ कि उस समय एक और प्रोफेसर वहां क्लास ले रहा था। इस से भी बड़ा संयोग यह कि उस प्रोफेसर की आकृति प्रो० भगवान दास से मिलती थी। पुलिस ने आव देखा न ताव उस प्रोफेसर पर लाठियां बरसानी आरम्भ कर दीं। वह समझ गया कि भगवान दास समझकर मुझे मारा जा रहा है। वह जोर-जोर से चिल्लाया कि मैं भगवान दास नहीं हूं। पुलिस ने जो करना था सो कर दिया। भगवान दास लहुलुहान होने से बच गये।

यह घटना मुझे सफीदों (जिला जींद हरियाणा) के एक डाक्टर ने बरनाला में सुनाई थी। प्रिंसिपल भगवान दास जी ने भी इसकी पुष्टि की थी। मैं उस लहुलुहान होने वाले प्राध्यापक का नाम भूल गया। दैनिक प्रताप आदि में मैंने तभी लेखों में यह घटना दी थी। आचार्य सत्यप्रिय जी की पुस्तक में भी यह छपी है।

इस के पश्चात् लाहौर में एक और महत्त्वपूर्ण घटना घटी।

१९४७ ई० में देश विभाजन की घोषणा हो गई। पंजाब भर में बड़े-बड़े नगरों में स्कूलों और कालेजों में जोशीले देशभक्त हिन्दू सिख छात्रों ने इसके विरुद्ध जलूस निकाले। मार्च के प्रथम सप्ताह की बात होगी, हम ने आर्य हाई स्कूल स्यालकोट में सुना कि लाहौर डी० ए० वी० कालेज के वीर छात्रों पर पुलिस ने अंधाधुंध गोलियां चलाई हैं। कालेज के सामने ही तो पुलिस के अधीक्षक का कार्यालय था। पुलिस को सन्देह था कि कालेज के प्रांगण में उपद्रवी युवक इकट्ठे हुए हैं। उधर छात्रों को यह पता लग गया कि पुलिस उन पर गोली वर्षा करने वाली है। डा० गोवर्धन लाल जी दत्त तब कालेज के आचार्य थे। कालेज के वीर छात्र मरने मारने को तैयार हो गए।

जिसके सीने में स्वामी श्रद्धानन्द व लाला लाजपतराय का पवित्र रक्त उबल रहा था, वह भगवान दास सड़क के बीच खड़ा हो गया। लड़कों व पुलिस को समझाने लगा। थानेदारों में कई मित्र थे परन्तु आज कोई भी उनकी न सुन रहा था। दनादन गोलियां चलने लगीं। विद्यार्थियों ने आत्मरक्षा में जबरदस्त पथराव किया। आर्यसमाज का अड़ियल योद्धा प्रो० भगवान दास गोलियों की दनादन में वहीं सड़क के बीच छाती ताने खड़ा था। भगवान दास अपने पिता का इकलौता लाल था परन्तु लेखराम नरनामी के बलिदान से अदम्य उत्साह पाकर आज वह भारत माता के लालों को बचाने के लिए वहीं डटा रहा। पुलिस कालेज में घुसना चाहती थी।

इतने में चौधरी रामभज दत्त और देवता स्वरूप भाई परमानन्द के कुल में जन्म लेने वाला वीरों का वंशज डा० गोवर्धनलाल दत्त प्राचार्य दयानन्द कालेज लाहौर, छात्रों की भीड़ को चीरता हुआ, हुंकारता और ललकारता हुआ प्रो० भगवान दास की ओर बढ़ा। गोलियों की बौछार में आप मत आगे बढ़। भगवान दास की पुकार डा० दत्ता ने अनसुनी कर दी।

डा० दत्त ने पुलिस को चेतावनी दी कि मेरी आज्ञा के बिना मेरे कालेज में कोई नहीं घुस सकता। बहुत से देशभक्त छात्रों की जानें इन दो महान् शिक्षा शास्त्रियों के शौर्य से बच गयीं। वीरों की छातियां तो गोलियों से छलनी हुई ही, डी० ए० वी० कालेज लाहौर की दीवारों में भी गोलियों के निशान ऐसे ही देखे जा सकते थे जैसे जलियांवाला बाग के पास के मकानों पर १९१९ ई० में गड्ढे पड़ गए थे।

अठाईस वर्ष पूर्व देहली के चांदनी चौक में वृद्ध आर्य संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द जी ने निर्दोष भारतीय जनता को गोली वर्षा से बचाने के लिए अपने सीने को ढाल बनाकर एक इतिहास बनाया था। उसी इतिहास की पुनरावृत्ति की भगवान दास व डा० गोवर्धन लाल जी ने लाहौर में करके दिखाई। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने देश व समाज के ऐसे इतिहास का स्मरण करके देश-जाति में नवजीवन का संचार करें। मेरी इच्छा है कि सब आर्य घरों तथा सब आर्यसमाजों में यह लेख पढ़कर सुनाया जावे। ☐

आर्य प्रतिनिधि सभा उ० प्र० का शताब्दी समारोह

१७ अक्टूबर से २० अक्टूबर १९८९ तक

आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश की स्थापना सन् १८८६ में हुई थी। आज इस सभा को स्थापित हुए १०० वर्ष हो गए हैं। उत्तर प्रदेश भारतवर्ष का सब से बड़ा प्रान्त है। यह इतना बड़ा प्रदेश है कि संसार के कई देश इस से छोटे हैं। भारत की राजनीति का संचालन उत्तर प्रदेश के इशारे पर ही होता है। आज संसार में भारतवर्ष का एक महत्वपूर्ण स्थान है। ठीक इसी प्रकार आर्यसमाज के प्रदेशीय संगठन में उत्तर प्रदेश सब से बड़ा प्रान्त है। महर्षि दयानन्द बार-बार उत्तर प्रदेश में वैदिक धर्म प्रचार के लिए आये। मेरठ, फर्रुखाबाद आदि स्थानों पर तो स्वामी जी अपने जीवनकाल में लगभग सात-सात बार आये। महर्षि दयानन्द जी के उपदेशों का सबसे अधिक प्रभाव उत्तरी भारत पर पड़ा। पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान आदि स्थानों पर महर्षि दयानन्द जी द्वारा चलाए गए धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक आन्दोलन का बहुत विस्तार हुआ। दुर्भाग्य से पंजाब के पहले दो भाग हुए। पाकिस्तान बना और आधा पंजाब कट गया। आर्यसमाज की आधी शक्ति नष्ट हो गई। अरबों रुपये की सम्पत्ति, गुरुकुल एवं डी.ए.वी. कालेजों को छोड़ना पड़ा। फिर पंजाब के तीन टुकड़े हो गए और आर्यसमाज भी पुन: ३ भागों में बंट गया तथा अधिक पंजाब, पंजाब न रहकर छोटा-सा पंजाब रह गया। परन्तु हमारा सौभाग्य है कि उत्तर प्रदेश अपने उसी रूप में खड़ा है और इस के साथ २५०० आर्यसमाज सम्बद्ध हैं। १०००" शिक्षण संस्थाएँ आर्यसमाजों के माध्यम से आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा संचालित हो रही हैं। गुरुकुल और माण्टेसरी स्कूल भी पर्याप्त मात्रा में चल रहे हैं। उत्तर प्रदेश इस समय शिक्षा के क्षेत्र में सरकार से दूसरे नम्बर पर है। बहुत बड़ा आर्थिक व्यय हमारा शिक्षा के क्षेत्र में हो रहा है। लाखों बच्चे, बालक, बालिकाएँ और तरुण युवक-युवतियां इन शिक्षण संस्थाओं में विद्या प्राप्त कर रहे हैं। कितना बड़ा भार आर्य प्रतिनिधि सभा लेकर धीरे-धीरे बढ़ती हुई शताब्दी की ओर बढ़ी है।

सन् १९४७ से पूर्व आर्यसमाज का स्वर्ण युग था। आर्य जगत् में हमारी सभा को उपलब्धियां हैं। धर्मनिष्ठ सच्चे आर्यों ने सामाजिक सुधारों में महर्षि दयानन्द जी की प्रेरणा से बहुत बड़ा कार्य किया। महर्षि के जीवनकाल में परतन्त्रता, जातिवाद, मद्यपान, मांसाहार, जुआ, शूद्र और नारी के लिए विद्या एवं वेद का अधिकार बन्द, छुआछूत, ऊँच-नीच, धार्मिक शोषण, मूर्ति-पूजा, विधवाओं और अनाथों की दुर्दशा, अंग्रेजों द्वारा १८५७ की क्रान्ति एवं जलियांवाला बाग में गोली काण्ड जैसी भयंकर दुर्घटनाएँ, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, सती-प्रथा, निरक्षरता, बहु-देवतावाद एवं भाग्यवाद जैसी कुरीतियां भारतवर्ष को निचोड़ रही थी तथा खोखला कर रही थी।

पिछले सौ वर्षों में सभा के माध्यम से हम ने इन सब कुरीतियों के विरुद्ध एक जिहाद बोला है। नारी शिक्षा, गुरुकुल शिक्षा, डी.ए.वी. कालेज के माध्यम से शिक्षा जगत् में अपूर्व परिवर्तन हुआ है। दयानन्द सेवा आश्रम खोले गए हैं। आज इस शताब्दी के अवसर पर पिछले १०० वर्षों के कार्यों का सिंहावलोकन होना बहुत आवश्यक है।

शताब्दी के आकर्षण

१ सभा का सौ वर्ष का इतिहास और भव्य स्मारिका का प्रकाशन।

२ योग साधना शिविर का आयोजन तथा आसन प्राणायाम एवं ध्यान का प्रशिक्षण।

३ शिक्षण संस्थाओं के बच्चों का वैदिक प्रश्नोत्तरी, सामूहिक गान, सांकेतिक गान, शुद्ध मन्त्र पाठ आदि की प्रतियोगिताओं द्वारा बच्चों में वैदिक संस्कारों का भरना।

४ आर्य वीर दलों एवम् आर्य कुमार सभाओं के विविध कार्यक्रमों से सेवा का कार्य करना।

५. विशाल एवं भव्य शोभा यात्रा।

६ महर्षि लंगर (नि:शुल्क भोजन)

७ विशाल यज्ञ का आयोजन।

८. प्रान्त में हाई स्कूल और इण्टर में प्रथम, द्वितीय और तृतीय को पुरस्कृत करना।

९. वृद्ध सम्मान समारोह (संख्या १००)

१० वृद्ध आर्य विद्वानों का अभिनन्दन।

११. गोरक्षा, मद्यनिषेध और राष्ट्र रक्षा सम्मेलन।

१२. आर्य मित्र के विशेषांक का विमोचन एवं इतिहास प्रकाशन।

१३ उच्चकोटि के और सस्ते साहित्य का बिक्री केन्द्र।

१४ एक ऐसी निधि की स्थापना जिसके ब्याज से वेद के प्रचार और प्रसार का कार्य सुचारु रूप से चल सके।

१५. ग्रामीण क्षेत्रों एवं पर्वतीय क्षेत्रों में शिक्षण संस्थाओं एवं चिकित्सालय अर्थात् दयानन्द सेवा आश्रमों की स्थापना।

१६. नव भवन का निर्माण, शिलान्यास आदि।

इन सब आयोजनों के लिए लगभग २० लाख रुपये की आवश्यकता है। आर्यजन धन संग्रह में जुट जायें तो यह धन तुरन्त एकत्रित हो सकता है।

२, ५, १०, २०, ५० और १०० रु० के नोट और विवरण साहित्य प्रकाशित कर दिया गया है। आर्य बन्धु रसीदें लेकर धन और अन्न संग्रह की ओर विशेष रूप से लगें।

हमारा ध्येय पिछले १०० वर्ष का सिंहावलोकन एवं अगले सौ वर्षों का कार्य निर्धारण करना है। ऊपर लिखित ध्येयों की पूर्ति के लिए हम आर्य जनों, आर्य वीरों और आर्य कुमारों का आह्वान करते हैं।

आइए, सब मिलकर वेद का प्रचार और प्रसारण घर-घर और झोंपड़ी-झोंपड़ी तक पहुंचावें ताकि भारत समृद्ध बने, संसार सुखी हो और मानवता की रक्षा की जाये।

—मनमोहन तिवारी
महामन्त्री

चीनी राजवंशों ने वेदों की हिफाजत की

बम्बई २७ जुलाई (प्रे० ट्र०) विश्व के सर्वाधिक आबादी वाले नगर शंघाई में अध्ययन रत प्रो० हुआंग सिन चुवांग का विचार है कि चीनी राजवंशों ने वेदों की रक्षा की।

तैयार की जा रही चाइनीज एनसाईक्लोपीडिया के मुख्य संपादक प्रो० हुआंग ने बम्बई के निकट ठाणे प्राचीन अध्ययन संस्थान के छठे इंटिक्स शोधकर्ताओं को हाल ही में बताया कि वस्तुत: चीनी राजवंशों ने संस्कृत से वेदों का अनुवाद शास्त्रीय (प्राच्य) चीनी भाषा में कराया। प्रो० ने कहा कि पतंजलि के योगसूत्र और सुश्रुत तथा चरक संहिताओं सहित योग व आयुर्वेद पर पाण्डुलिपियां इसी प्रकार अनूदित हुईं। प्रो० हुआंग ने दावा किया कि ऐसी ५ हजार से अधिक पांडुलिपियां चीनी में सुलभ हैं। उन में से अनेक भारत में प्राप्त पांडुलिपियों से पूर्व की हैं।

इसी तरह प्रो० ने कहा कि तन्त्र पर पाण्डुलिपियां तिब्बती में अनूदित की गई और ५ हजार से ज्यादा पाण्डुलिपियां संरक्षित हैं तो भी उनके अध्ययन के लिए कोई सुव्यवस्थित प्रयास नहीं किया गया। उन्होंने जोर देकर कहा कि इन पाण्डुलिपियों पर शोध करने के लिए भारतीयों को प्राचीन चीनी और तिब्बती भाषाएँ

(शेष पृष्ठ ७ पर)

समाचार

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश लखनऊ में शताब्दी समारोह की तैयारियां

सुरक्षा सेवा का समस्त उत्तरदायित्व : आर्य वीर दल, उत्तर प्रदेश ने संभाला

लखनऊ, ७ सितम्बर। आज आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के महामन्त्री श्री मनमोहन तिवारी की अध्यक्षता में आर्य वीर दल उत्तर प्रदेश समिति की बैठक हुई। जिसका संयोजन श्री बेचन सिंह अधिष्ठाता आर्य वीर दल ने किया। बैठक में अवधबिहारी खन्ना संचालक पूर्वी क्षेत्र, श्री बालकृष्ण आर्य संचालक पश्चिमी क्षेत्र, श्री जयनारायण आर्य संचालक आगरा क्षेत्र (अलीगढ़), हरीशचन्द्र जी कानपुर, श्री प्रयाग दान जी सुलतानपुर, श्री बाबासिंह जी आगरा क्षेत्र, हरिओम सन्तोष कण्व बरेली आदि नेत्रि वर्ग साथ-साथ अल्मोड़ा सण्डीला, हरदोई मैनपुरी आदि अनेक जिलों के प्रतिनिधियों ने जिन की संख्या ५० के ऊपर थी, बैठक में भाग लिया। निश्चय हुआ कि १००० आर्य वीर गणवेश में शताब्दी समारोह में सम्मिलित होकर आर्य वीर दल उत्तर प्रदेश का प्रतिनिधित्व करेंगे। तथा सेवा सुरक्षा एवं संगठनात्मक अनुशासन के समस्त उत्तरदायित्व संभालने का आश्वासन अध्यक्ष महोदय ने दिया। यह भी निश्चय हुआ कि १५ अक्तूबर से २० अक्तूबर तक एक शिविर का आयोजन आ० देवव्रत जी उपप्रधान संचालक सार्वदेशिक आर्य वीर दल के संरक्षण में किया जाए। शिविर की व्यवस्था श्री अवध बिहारी खन्ना व जयनारायण आर्य संभालेंगे। आर्य वीरों के आवास व भोजन आदि की समस्त व्यवस्था शताब्दी समारोह की ओर से निःशुल्क होगी। इस अवसर पर उत्तर प्रदेशीय आर्य वीर दल महासम्मेलन सार्वदेशिक आर्य वीर दल के प्रधान संचालक श्री प० बालदिवाकर जी हंस की अध्यक्षता में करने का निर्णय किया गया।

समस्त आर्य वीरों की सूची पश्चिमी व पूर्वी संचालक प्रान्तीय अधिष्ठाता को भेजेंगे। जिस से आवास, भोजन आदि की व्यवस्था भली प्रकार करना सम्भव हो।

ध्यान रहे सभा का शताब्दी समारोह १७ अक्तूबर से २० अक्तूबर तक डी.ए.वी कालेज लखनऊ के प्रांगण में होना है।

वेदप्रकाश गुप्ता
मन्त्री
आर्य वीर दल पश्चिमी उत्तर प्रदेश

वैदिक प्रचार सम्पन्न

२० जुलाई से २० अगस्त तक प्रसिद्ध वैदिक प्रवक्ता ब्र० आर्य नरेश द्वारा आजाद मार्केट, आर्यसमाज आदर्श नगर, रेलवे कालोनी किशनगंज, विकासपुरी, उत्तम नगर तथा माडल बस्ती (दिल्ली), पेहवा, फरीदाबाद, करनाल तथा यमुना नगर (हरयाणा), मोहाली (पंजाब), किरतपुर, वेदमन्दिर सहारनपुर, नकुड तथा झबीरन (उत्तर प्रदेश) में योग, यज्ञ व वेद विज्ञान पर प्रवचन हुए। युवा पीढ़ी को क्रान्तिकारियों का ऋण उतारने की प्रेरणा दी गई। पांच व्यक्तियों ने दैनिक यज्ञ करने का व्रत लिया। अनेक युवकों ने व्यायाम करने व चाय छोड़ने का संकल्प लिया।

आर्यसमाज हौजखास का निर्वाचन सम्पन्न

आर्यसमाज हौज खास का वार्षिक चुनाव १० अगस्त १९८६ को हुआ जिसमें निम्नलिखित पदाधिकारी चुने गए—

प्रधान : श्रीमती सीता देवी
उपप्रधान : श्री नरेन्द्र विद्यावाचस्पति
मन्त्री : श्रीमती शशि गुप्ता
कोषाध्यक्ष : श्री बनवारीलाल गुप्ता

शशि गुप्ता
मंत्री

प्रचार वाहन द्वारा ग्राम प्रचार

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रचार वाहन द्वारा सप्ताह में दो दिवस शुक्रवार व शनिवार को ग्राम प्रचार रखा जाता है। अब की बार १२ व १३ सितम्बर शुक्रवार व शनिवार को मादीपुर में प्रचार रखा गया जिस में आर्यसमाज पंजाबी बाग के आर्य बन्धुओं ने पूर्ण सहयोग दिया और प्रचार व्यवस्था कराने में उत्साह पूर्वक संगठित होकर कार्यक्रम सफल बनाया। शुक्रवार १२ सितम्बर १९८६ को श्री जयनारायण के निवास स्थान पर यज्ञ के बाद संगीत व प्रवचन रखा गया। जिस में पं० वेदव्यास भजनोपदेशक एवं पं० सत्यदेव स्नातक संगीत कलाकारों के मधुर भजनोपदेश रहे साथ ही पं० ओमवीर शास्त्री का प्रभावशाली प्रवचन हुआ। शान्तिपाठ के पश्चात् कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

१३ सितम्बर शनिवार की रात्रि को मादी पुर ग्राम में श्री रामचन्द्र जी के निवास स्थान पर प्रचार रखा गया। वहां सैकड़ों श्रोतागणों ने धर्मलाभ उठाया। यज्ञ के पश्चात् भजनोपदेश रखा गया। पं० ज्योति प्रसाद के भजन, पं० चुन्नीलाल आर्य संगीतज्ञ, पं० वेदव्यास आर्य के भजन और पं० सत्यदेव जी स्नातक रेडियो कलाकार का संगीत द्वारा प्रभावशाली प्रचार रहा जिस में वैदिक धर्म आर्यसमाज के कार्यक्रम पर प्रकाश डाला गया। सभी श्रोतागण ने ताली बजाकर स्वागत किया। स्वामी जी की हास्य कविताओं ने सभी को हंसी से लोटपोट कर दिया। आर्यसमाज पंजाबी बाग द्वारा सभी के लिए भोजन की सुन्दर व्यवस्था की गई तथा सुन्दर स्वागत सत्कार रहा।

भवदीय
स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती
अधिष्ठाता वेद प्रचार विभाग

रक्षा बन्धन श्रावणी पर्व पर वेद प्रचार

१. महात्मा रामकिशोर वैद्य महोपदेशक दिल्ली प्रतिनिधि सभा का आर्यसमाज मोती बाग में ११ अगस्त से १७ अगस्त १९८६ तक रात्रि को ९ बजे से १० बजे तक वेद प्रवचन होता रहा। १९ अगस्त से २७ अगस्त श्रीकृष्ण जन्माष्टमी तक रात्रि को वेद प्रवचन आर्यसमाज सदर बाजार में रहा। साथ ही प्रातः आर्यसमाज नया बास में यज्ञाचार्य रहे। यज्ञ के ब्रह्मा रहे और १९ से २७ अगस्त तक यज्ञ की पूर्णाहुति तक कार्य सम्पन्न कराया।

२. पण्डित सत्यदेव स्नातक रेडियो कलाकार

आर्यसमाज मोती बाग में ११ से १७ अगस्त तक संगीत द्वारा कार्यक्रम प्रस्तुत किया। उनके संगीत के प्रभाव से आर्यजनों पर अच्छा प्रभाव रहा। साथ ही श्री ज्योति प्रसाद ढोलक कलाकार ने श्री स्नातक जी का साथ दिया। आर्यसमाज सदर बाजार में १९ से २७ अगस्त तक संगीत के माध्यम से जनता को वैदिक धर्म का सन्देश सुनाया।

३. पण्डित वेदव्यास आर्य भजनोपदेशक के कार्यक्रम

आर्यसमाज अमर कालोनी में ११ से १७ अगस्त तक मधुर संगीत रहा। साथ ही पं० यशपाल सुधांशु सम्पादक आर्यसन्देश के वेद प्रवचन रहे और १९ से २४ अगस्त तक आर्य समाज शालीमार बाग में भजनोपदेश रहा। बाद में डा० सुधीर मीमांसक का वेद प्रवचन रहा।

स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती
अधिष्ठाता वेद प्रचार विभाग

राष्ट्र कल्याण चतुर्वेद परायण महायज्ञ

वैदिक अनुसन्धान समिति की रजत जयन्ती के उपलक्ष्य में राष्ट्र कल्याण चतुर्वेद पारायण महायज्ञ रविवार ५ अक्तूबर से १२ अक्तूबर १९८६ तक सरोजिनी मार्केट (पार्क पंजाब नेशनल बैंक) के सामने बड़े समारोह पूर्वक सम्पन्न होगा। इस महायज्ञ में पच्चीस बहुत सुन्दर यज्ञशाला बनाई जायेंगी और चारों वेदों के सम्पूर्ण मन्त्रों से पारायण महायज्ञ होगा। इस यज्ञ में उच्चकोटि के आर्य विद्वान पधारेंगे। इस यज्ञ का प्रबन्ध आर्यसमाज सरोजिनी नगर तथा दक्षिण दिल्ली की अन्य समाजों की ओर से किया जाएगा।

रोशनलाल गुप्त
मंत्री
यज्ञ समिति

॥ ओ३म् ॥

चलो चलें वाराणसी, करें ऋषि गुणगान।
देखें काशी के सभी, दर्शनीय स्थान॥

आर्यों का कुम्भ मेला

आर्य बस यात्रा

मातृ मन्दिर आर्य कन्या गुरुकुल

वाराणसी का

रजत जयन्ती समारोह

मेले का आयोजन

आपको जानकर हर्ष होगा कि सभा से सम्बद्ध मातृ मन्दिर कन्या गुरुकुल का रजत जयन्ती समारोह २४, २५, २६ अक्तूबर १९८६ को बड़े धूमधाम के साथ वाराणसी में आयोजित किया गया है। इस अवसर पर भाग लेने के लिए आर्य जनता को सुविधार्थ दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा विशेष बसों की व्यवस्था की गई है। इन बसों में यात्रियों को लखनऊ, नैमीसार, विश्वनाथ मन्दिर, सारनाथ, अयोध्या, बनारस, प्रयाग, कानपुर, एटा के सभी दर्शनीय ऐतिहासिक स्थान देखने का भी अवसर मिलेगा। यह बसें निम्न कार्यक्रमानुसार २१ अक्तूबर को दिल्ली से चलकर २८ अक्तूबर १९८६ को वापस लौटेंगी।

आप निम्न स्थानों पर १८५/- रुपये प्रति यात्री के हिसाब से धन जमा कराकर यथाशीघ्र सीटें आरक्षित करा लें।

१. आर्यसमाज दीवान हाल, दिल्ली ६ दूरभाष : २३७४४०
२. आर्यसमाज चूना मण्डी, पहाड़गंज, नई दिल्ली ,, ७७९६१४
३. श्री नेतराम शर्मा, ए० ७/६, कृष्णनगर, दिल्ली ,, २१३४८३
४. डा० धर्मपाल, ए०/एच० १६, शालीमार बाग, दिल्ली ,, ७१११६७१
५. श्री ओमप्रकाश आर्य, माता चन्ननदेवी आर्य धर्मार्थ नेत्र चिकित्सालय, सी-१, जनकपुरी, नई दिल्ली-५८ ,, ५५३१४३ ५५१३८८
६. श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती, सभा कार्यालय, १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली-१ ,, ३१०१५०

विस्तृत कार्यक्रम

प्रस्थान :	पहुंच :
२१।१०।८६ सायं ५ बजे दिल्ली से (नैमीसार)	२२।१०।८६ प्रातः ५ बजे लखनऊ
२३।१०।८६ प्रातः ५ बजे लखनऊ से (अयोध्या)	सायं ३ बजे बनारस
२४-२५-२६ बनारस	
२७।१०।८६ प्रातः ५ बजे बनारस से	प्रातः ८ बजे प्रयाग
२७।१०।८६ दोपहर १२ बजे प्रयाग से	शाम ५ बजे कानपुर
२८।१०।८६ प्रातः ५ बजे कानपुर से गुरुकुल एटा होते हुए	सायं ७ बजे दिल्ली

नोट—कार्यक्रम में परिवर्तन तथा सीट संख्या देने का अधिकार व्यवस्थापक का होगा। एक बार आरक्षित कराई गई टिकट वापस नहीं होगी। आधी सवारी को सीट नहीं मिलेगी। निवास एवं भोजन का प्रबन्ध आर्यसमाजों की ओर से होगा। जहां आर्यसमाज में प्रबन्ध न होगा, यात्री भोजन अपने व्यय से करेंगे। सीट आरक्षित की राशि केवल मार्गव्यय है।

निवेदक :

सूर्यदेव (प्रधान) डा० धर्मपाल (महामन्त्री)

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा (पंजीकृत)

१५ हनुमान रोड, नई दिल्ली-११०००१
फोन : ३१०१५०

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

द्वारा प्रकाशित वैदिक साहित्य

कक्षा प्रथम	नैतिक शिक्षा (भाग प्रथम)		१.५०
कक्षा द्वितीय	नैतिक शिक्षा (भाग द्वितीय)		१.५०
कक्षा तृतीय	नैतिक शिक्षा (भाग तृतीय)		२.००
कक्षा चतुर्थ	नैतिक शिक्षा (भाग चतुर्थ)		३.००
कक्षा पंचम	नैतिक शिक्षा (भाग पंचम)		३.००
कक्षा षष्ठ	नैतिक शिक्षा (भाग षष्ठ)		३.००
कक्षा सप्तम	नैतिक शिक्षा (भाग सप्तम)		३.००
कक्षा अष्टम	नैतिक शिक्षा (भाग अष्टम)		३ ००
कक्षा नवम	नैतिक शिक्षा (भाग नवम)		३ ००
कक्षा दश	नैतिक शिक्षा (भाग दश)		४.००
कक्षा ग्यारह	नैतिक शिक्षा (भाग ग्यारह)		४.००
कक्षा बारह	धर्मवीर हकीकतराय	वेद्य गुरुदत्त	५.००
	फ्लेश आफ ट्रूथ (Flash of Truth)	डा० सत्यकाम वर्मा	२.००
	सत्यार्थप्रकाश सन्देश	,, ,,	२.००
	एनाटोमी ऑफ वेदान्त	स्वा० विद्यानंद सरस्वती	५.००
	सत्यार्थ सुधा	पं० हरिदेव सि०भू०	२.००
	दयानन्द एण्ड दा वेदाज (ट्रैक्ट)		५०/- रु० सैकड़ा
	पूजा किसकी ? (ट्रैक्ट)		५०/- रु० सैकड़ा
	मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम (ट्रैक्ट)		५०/- रु० सैकड़ा
	योगीराज श्रीकृष्ण का सन्देश (ट्रैक्ट)		५०/- रु० सैकड़ा
	महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी स्मारिका		५.००
	स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान अर्धशताब्दी स्मारिका		५.००
	राघव गीत उद्यान	स्वामी स्वरूपानद सरस्वती	३ ५०
	ठकराधा वीर	,, ,,	२.००
	सरल चिकित्सा भाग-१	,, ,,	३ ५०
	रोगों की सरल चिकित्सा भाग-२	,, ,,	३ ५०
	समय के मोती	,, ,,	१०.००

वैदिक विचारधारानुकूल आधुनिक तर्जों से ओत-प्रोत, धार्मिक, प्रभु-भक्ति प्रेरक गीत, संस्कार पर्वों के नवीन गीत, कविताओं का अपूर्व संग्रह अवश्य पढ़ें।

नोट—उपरोक्त सभी पुस्तकों पर १५% कमीशन दिया जाएगा।

कृपया अपना पूरा पता एवं नजदीक का रेलवे स्टेशन साफ-साफ लिखें। पुस्तकों की अग्रिम राशि भेजने वाले से डाक-व्यय पृथक् नहीं लिया जाएगा।

पुस्तक प्राप्ति स्थान—
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
१५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली-११०००१

(पृष्ठ ५ का शेष)

चीनी राजवंशों ने वेदों···

सीखनी चाहिए। प्रो० का सन्देश था कि "जल्दी ही चीन आओ।" जैसा कि उन्होंने कहा कि प्राचीन चीनी भाषा उतार पर है और उसमें निपुण व्यक्ति कमतर होते जा रहे हैं। उन्होंने यह चेतावनी भी दी। कुछ वर्षों का इन्तजार किया तो बहुत देर होगी। जल्दी करो और अपने खजाने पर दावा करो।

प्रो० हुआंग का मानना है कि रास्ता पाकिस्तान प्रसिद्ध रेशम मार्ग के जरिये भारत चीन सम्बन्धों पर उल्लेखनीय शोध किया गया है। नेपाल तिब्बत क्षेत्र, असम बर्मा और चीन के पड़ोसी यूनान प्रान्त तथा श्रीलंका से समुद्री मार्ग के जरिये प्रति सांस्कृतिक विनिमय के सम्बन्ध में अति अल्प अध्ययन हुआ है।

सर्वप्रथम भारतीय बौद्ध धर्म प्रचारक लिसंग राजवंश के शासन काल के दौरान २१७ ईसा पूर्व चीन पहुंचे और इस तरह भारत से चीन तथा मध्य एशिया को यात्रियों के जाने की शुरुआत हुई।

उत्तम स्वास्थ्य के लिए

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी

हरिद्वार की औषधियां

सेवन करें

शाखा कार्यालय—६३, गली राजा केदारनाथ
चावड़ी बाजार, दिल्ली-६ फोन : २६१८७१

...द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित...

साप्ताहिक ओ३म् कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य सन्देश

वर्ष १० : अंक ४५ | रविवार ५ अक्टूबर, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ | आश्विन २०४३ | दयानन्दाब्द—१६१

मूल्य : एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश में ५० डालर, ३० पौंड

आर्यसमाज सीसामऊ, कानपुर में—

श्री स्वामी आनन्दबोध जी का भव्य स्वागत एवं थैली भेंट

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान माननीय श्री स्वामी आनन्द बोध सरस्वती महाराज जी संन्यास ग्रहण करने के बाद कानपुर प्रथम आगमन पर आर्यसमाजों व संस्थाओं द्वारा भव्य स्वागत किया गया तथा आर्यसमाज सीसामऊ की ओर से आर्य स्त्री समाज, सीसामऊ की प्रधाना श्रीमती शशिकान्ता जी शास्त्री ने पंजाब के विस्थापितों की सहायता के लिए १२,७०२ रुपये की थैली भेंट की जिस मे आर्यसमाज दर्शनपुरवा द्वारा १,१०१ रुपये की राशि भी सम्मिलित है।

श्री स्वामी जी महाराज ने विशाल जन समूह को सम्बोधित करते हुए पंजाब व कश्मीर सहित राष्ट्रीय व सामाजिक समस्याओं पर ओजस्वी वाणी में तथ्यों के साथ विचार व्यक्त किए और बताया कि इन समस्याओं के समाधान में सामान्य आर्यसमाजों से लेकर सार्वदेशिक स्तर पर हम लोग क्या कुछ कर रहे हैं। पंजाब में आतंकवादियों द्वारा सैकडों आर्यसमाजियों को गोलियों का शिकार बनाया गया। सामान्य हिन्दुओं पर अत्याचार किए जा रहे हैं जिस के कारण हजारों हिन्दू परिवार पडोसी राज्यों मे जाने पर विवश हो गए हैं। उनके संरक्षण व सहायता के लिए आर्यसमाजों ने स्थान व सहयोग प्रदान कर रखे हैं।

श्री स्वामी जी ने कहा कि इन समस्याओं के समाधान के लिए अनेक योजनाओ के साथ हमारा शिष्टमण्डल समय-समय पर प्रधानमन्त्री व राष्ट्रपति आदि से मिलता रहा है और उसके कुछ अच्छे परिणाम भी निकले हैं। आतंकवादियों व राष्ट्रविरोधी तत्वों से निपटने और पाकिस्तान व अमरीका सहित कुछ विदेशी राष्ट्रों के षड्यन्त्र को रोकने के लिए गुजरात से कश्मीर तक पाक सीमा पर सुरक्षा पट्टी अविलम्ब बनाई जाए चाहे इस के लिए राष्ट्रपति अध्यादेश भी जारी करना पडे। श्री स्वामी जी ने आर्यों को आह्वान किया कि वर्तमान संकट काल में एकजुट होकर राष्ट्रीय व सामाजिक चुनौतियों का सामना करें।

सभा में श्री प० सच्चिदानन्द जी शास्त्री महामन्त्री, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा; श्री मनमोहन जी तिवारी मन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा (उत्तर प्रदेश); श्री देवीदास जी प्रधान, केन्द्रीय आर्य सभा; श्री प्रो० उत्तमचन्द जी शरर; श्री प० लक्ष्मण कुमार जी शास्त्री प्रधान, आर्यसमाज सीसामऊ (कानपुर); श्री सत्यपाल जी 'पथिक' एवं श्री सन्तराम जी सेंगर एडवोकेट मन्त्री, आर्यसमाज दर्शनपुरवा ने भी अपने विचार प्रकट किए।

सभा की अध्यक्षता नगर महापालिका, कानपुर के मुख्य अभियन्ता श्री ओमप्रकाश जी आर्य ने की। □

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का

विराट् शताब्दी समारोह

१७ अक्टूबर को लखनऊ चलो

भारतवर्ष के सबसे बड़े प्रान्त उत्तर प्रदेश की आर्य प्रतिनिधि सभा की जन्मशती के उपलक्ष्य में प्रकाशवीर शास्त्री नगर (डी० ए० वी० कालेज) लखनऊ में १७ अक्तूबर से २० अक्तूबर, १९८६ तक विराट् समारोह का आयोजन किया गया है। इस अवसर पर अखिल भारतीय स्तर के विख्यात विद्वान्, सन्यासीगण तथा आर्य नेतागण पधार रहे हैं। इस उपलक्ष्य मे योग साधना शिविर, छात्र प्रतियोगिता, आर्य वीरों के रचनात्मक कार्य, विशाल भव्य शोभा यात्रा, आकर्षक वृहद् यज्ञ, वृद्ध सम्मान, वृद्ध विद्वान् को अभिनन्दन, ऋषि लंगर तथा अनेक सम्मेलनों का आयोजन किया गया है।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के महामन्त्री श्री डा० धर्मपाल ने दिल्ली की समस्त आर्यसमाजों एवं आर्यसंस्थाओं से अपील की है कि इस ऐतिहासिक अवसर पर आर्य नर-नारी बढ-चढ़कर भाग लें तथा सहयोग प्रदान करे। □

★ इस अङ्क में ●

प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल | व्यवस्थापक—डा० गणेशीलाल | सम्पादक—पं० यशपाल सुधांशु एम० ए०

पितृयज्ञ और श्राद्ध

लेखक : आचार्य दिनेश चन्द्र पाराशर

वेद और आर्ष ग्रन्थों तथा धर्मशास्त्रों में पितृ यज्ञ और श्राद्ध की क्या विशेषताए हैं ? किन को किस प्रकार का करना चाहिए ? उपदेश किया है। जगद्गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज स्वरचित महान् ग्रन्थो में पितृयज्ञ और श्राद्ध का वर्णन करते हुए सत्यार्थप्रकाश मे लिखते हैं—"पितृयज्ञ अर्थात् जिस म देव जो विद्वान्, ऋषि जो पढ़नेहारे, पितर जो माता-पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परम योगियो की सेवा करना।"

पितृयज्ञ के दो भेद है—एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। श्राद्ध अर्थात् श्रत् सत्य का नाम है।

श्रत्सत्य दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा, श्रद्धया यत् क्रियते तच्छ्राद्धम्।

जिस क्रिया स सत्य को ग्रहण किया जाए उसको 'श्रद्धा' और जो श्रद्धा से कम किया जाए उसका नाम श्राद्ध है। और—

तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितृन् तत्तर्पणम्।

जिस-जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता-पितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किए जायें, उसका नाम 'तर्पण' है। परन्तु यह जावितों के लिए है, मृतको के लिए नहो। यजुर्वेद के १९वे अध्याय मे मन्त्र ६५ का भाष्य करते हुए महर्षि लिखते हैं—

ये ब्रह्मचर्येण पूर्णविद्या भवन्ति ते विद्वत्सु विद्वांसः पितृषु पितरश्च गण्यन्ते।

भावार्थ—जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या वाले होत हैं वे विद्वानों मे विद्वान् और पितरो मे पितर गिने जाते हैं। आगे मन्त्र ६१९ के भाष्य मे कहा है—

ये जनकादयो विद्या प्रापय्याऽविद्या निवतयन्ति तेऽत्र सर्वैस्सत्कर्त्तव्याः सन्तु।

भावार्थ—इस में उपमालकार है। जा पिता आदि विद्या को प्राप्त कराके अविद्या का निवारण करते है वे इस ससार मे सब लागो से सत्कार करने योग्य हों। पञ्चमहायज्ञविधि में महर्षि, पितर किसको कहते हैं ? लिखते हैं—जो विद्वान् लोग मनुष्यों को ज्ञान-चक्षु देकर उनके अविद्या रूपी अन्धकार को नाश करने वाले हैं, उनको पितर कहते हैं।

सन्ध्या के मन्त्रो में मनसा परिक्रमा के दूसरे मन्त्र में—

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। इत्यादि मे पितर शब्द का अर्थ ज्ञानी लोग महर्षि करते हैं। जो प्रायः यह पौराणिक लोग समझते हैं कि जिन पिता आदि का मृत्यु हो गई वे पितर कहलाते है। पितर जोवित होते है। वैसे भो पितरः शब्द 'पितृ' शब्द का बहुवचन है। महाभारत अनुशासन पव अ० ६१९ में भीष्म जी कहत हैं—

यश्चनमुत्पादयते
यश्चन त्रायते भयात्।
यश्चास्य कुरुत वृत्त
सर्वे ते पितरस्त्रयः॥

जो जन्म देता है, जो भय से बचाता है तथा जो जोविका देता है, ये तीनों पितर पिता कहलाते हैं।

कुर्यादिहरहः श्राद्ध-
मन्नाद्येनोदकेन च॥
पयो मूलफलैर्वापि
पितृणां प्रीतिमाहरन्॥
अ० ९७

पितरों (जीवित माता-पितादि) को प्रसन्नता के लिए प्रतिदिन अन्न, जल, दूध अथवा फल-मूल के द्वारा उन को श्रद्धापूर्वक सेवा करनी चाहिए। शतपथ मे 'विद्वासो हि देवाः' ज्ञानी लोगो को और विद्वानो को देव कहा है। पितर कितने है ? चाणक्य नीति मे कहा है—

जनिता चोपनेता च
यस्तु विद्यां प्रयच्छति।
अन्नदाता भयत्राता
पञ्चैते पितरः स्मृताः॥
अ० ५

जन्म देने वाला, यज्ञोपवीत आदि सस्कार कराने वाला, अध्यापन्य, अन्न देने वाला तथा भय से बचाने वाला, ये पाच 'पितर' पिता के समान गिने जाते हैं। जीवित पितरों का ही श्राद्ध होता है मृतको का नहो। उपदेश मञ्जरी मे कहा है—वेद विहित पितरो को सेवा-शुश्रूषा छोड़कर समुद्र, पहाड़, नदी और वृक्षो का तर्पण करना और इसे श्राद्ध मानना भला, यह पाखण्ड नही तो और क्या है ? मरे हुए पितरो का आना और किया हुआ श्राद्ध पितरों को पहुंचना ही असम्भव, वेद और युक्ति विरुद्ध होने से मिथ्या है।

(१२० प-मसमु०)

यजुर्वेद के १९वें अध्याय मन्त्र २० के भाष्य का ऋषिवर का भावार्थ यह है कि कोई भी मनुष्य अच्छी शिक्षा और श्रद्धा के बिना सत्य व्यवहारों को प्राप्त होने और दुष्ट व्यवहारों को छोड़ने को समर्थ नहीं होता। यहां पर श्रद्धा का उपदेश दिया है। सब को श्रद्धा को धारण करना है। वेद ने कहा है—

श्रद्धया आप्नोति दक्षिणाम्।

श्रद्धा के द्वारा उत्तम दक्षिणा, दीक्षा, शिक्षा को प्राप्त करता है। श्रद्धापूत मनुष्य सर्वत्र पवित्र होता है। महाभारत मे भीष्म जी कहते हैं—

जीवित माता-पितादि पालक वृद्ध जनों की प्रसन्नता के लिए प्रतिदिन अन्न, जल, दूध या फलमूल के द्वारा श्राद्ध श्रद्धापूर्वक खिलाना, पिलाना करना उचित है।

अनु० ९७।९

महर्षि सस्कारविधि के अन्त्येष्टि संस्कार में लिखते हैं—

भस्मान्त शरीरम्।

यजुर्वेद के मन्त्र के प्रमाण से स्पष्ट हो चुका है कि दाह कर्म और अस्थि सचयन से पृथक् मृतक के लिए दूसरा कोई भी कर्म कर्त्तव्य नहो है। हा, यदि वह सम्पन्न हो तो अपने जीते जा वा मरे, पोछे उन के सम्बन्धी वेद विद्या वेदोक्त धर्म का प्रचार, अनाथपालन, वेदोक्त धर्मोपदेश की प्रवृत्ति के लिए चाहे जितना धन प्रदान करें, बहुत अच्छो बात है। ध्यान रहे दिवगत आत्मा का सम्बन्ध उस परिवार से कुछ नही रहा तथा परिवार का उस आत्मा से कोई सम्बन्ध नही रहा। हां, जो उन के उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव-विचार जीवन में थे, उनको जरूर धारण करें।

यह शरीर इस जीवन तक ही काम देता है। जब तक यह शरीर है तभी तक सम्बन्धादि हैं, देहान्त के पश्चात् वह सम्बन्ध नहीं रहता। पुनः प्रश्न हुआ। पन्द्रह दिन वर्ष भर में श्राद्ध के निश्चित हैं। कभी किसी पितर का श्राद्ध करते हैं, कभी किसी का करते हैं, पितर लोग सूक्ष्म शरीर को धारण करके श्राद्ध के दिनों में आते हैं और ब्राह्मणों के साथ ही भोजन किया करते हैं। यदि कभी पितृ लोक से पितर न भी आ सकें तो ब्राह्मणों को खिलाया हुआ भोजन उन्हें मिल जाता है।

उत्तर यह है सुनिये-विचारिये ! पितर नाम आत्मा या शरीर का नहीं है। आत्मा और शरीर के विशेष सम्बन्ध का नाम है। फिर यह कहना कि पितर सूक्ष्म शरीर धारण कर भोजन करने आते हैं, सरासर हठ और अविवेक का परिचय देना है।

यह बताओ बिना स्थूल शरीर के वे भोजन कर कैसे लेते हैं ? क्या सूक्ष्म शरीर से भोजन करना सम्भव है ? जब ब्राह्मणों के साथ भोजन करते हैं। पहले पितर खाते हैं या पहले ब्राह्मण खाते हैं ? यदि पहले ब्राह्मण खाते हैं तो पितर जूठन खाते हैं, यदि दोनों मिल कर खाते हैं तो एक दूसरे का जूठन खाते हैं। जूठन खाना स्वास्थ्य और सिद्धान्त दोनों दृष्टियों से निन्दनीय है। अच्छा साल भर में पन्द्रह दिन ही क्यों निश्चित हैं ? क्या साढ़े ग्यारह महोने उन्हें भूख नहीं लगतो ? क्या पन्द्रह दिन के भोजन से ही साल भर तक तृप्त बने रहते हैं, क्या ऐसा हो सकता है ? यदि हो सकता है तो किसी मनुष्य को पन्द्रह दिन भोजन खिलाकर साल भर तक बिना भोजन के जीवित रहता हुआ दिखाओ। और पन्द्रह दिन भी कहां ? श्राद्ध के पन्द्रह दिन निश्चित हैं, इसमें भी एक दिन पितरों के परिवार वाले निकालते हैं। दूसरे यदि ब्राह्मणों को खिलाने से मृतक पितरों को भोजन पहुंच जाता है तो भोजन करने पर ब्राह्मणों का पेट क्या भर जाता है ? ब्राह्मणों को तो भोजन करने पर भी भूखा ही रहना चाहिए। जब उन्होने भोजन पितरों को पहुंचा दिया तो फिर उनका पेट कहा भरा ? श्राद्ध खाने वाले ब्राह्मणो से जरा यह पूछ लिया करो कि जिन पितरों को भोजन पहुंचाना है, वे हैं कहां ? साथ ही वह रोगी हैं या तन्दुरुस्त हैं ? यदि वह रोगी ही हों तो फिर उन को हलुआ, पूडी और खीर से क्या प्रयोजन है ? उन्हें कड़वी दवा और मूग की दाल का पानी चाहिए। भारी भोजन से तो वह और अधिक रोगी हो जायेंगे।

जब यह किसी को पता नहीं है कि मृत्यु के पश्चात् पितर आत्मा किस योनि में गया है और किस अवस्था में है, तो खीर पूरी ब्राह्मणों

(शेष पृष्ठ ४ पर)

देश की एकता को तोड़ते साम्प्रदायिक दंगे और भयंकर विनाशक षड्यन्त्र (१)

राष्ट्रवाद पर सम्प्रदायवाद का प्रभाव आजादी के उनतालीस वर्षों में जिस प्रकार प्रभावी हुआ है उससे देश की अखण्डता, एकता और प्रजातान्त्रिक व्यवस्था पर दिन प्रतिदिन खतरा गहरा होता जा रहा है। वर्ग सम्प्रदाय और मजहब जाति के भेद भुलाकर देश पर प्राण न्यौछावर करने वालों की जगह अब सम्प्रदाय और मजहब के नाम पर देशवासियों के प्राण लेने वाले और खून बहाने वालों ने ले ली है। यह आत्मघाती अमानवीय वातावरण दिनोंदिन विषाक्त होता जा रहा है। भारत विभाजन के बाद से केवलमात्र उत्तर प्रदेश में ही दो हजार दंगे हो चुके हैं जिनमें लगभग एक हजार मरे हैं और घायलों का आप अनुमान लगा सकते हैं कितने घायल हुए होंगे। एक तरफ देश अलगाववादी आन्दोलनों मे झुलस रहा है वहीं दूसरी तरफ साम्प्रदायिक दंगे तथा फैलती विषैली अफवाहों ने राष्ट्र को शान्ति को अस्त व्यस्त किया हुआ है। इन दगों का कारण जहा मतान्धता और कट्टरवाद का जनून है साथ ही हैं अनेक भयकर षड्यन्त्र जो योजनाबद्ध तरीके से तैयार किये जाते हैं। इसके साथ बाहर से आता हुआ विदेशी पैसा और सहायता भी इसके लिए दोषी है। इस सब के साथ निहित स्वार्थ वाले गन्दे राजनीतिज्ञ भी इस घृणित कार्य में संलिप्त हैं। जो अपना राजनीतिक स्वार्थ पूर्ण करने के लिए एक वर्ग को उकसाने और दूसरे वर्ग को भड़काने से बाज नही आते।

रामजन्मभूमि या तथाकथित बाबरी मस्जिद का कोर्ट के आदेश से ताला खुलने के बाद से ही हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक तनाव राष्ट्रीय स्तर पर खड़ा हो गया। शाहबानो के मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से मुस्लिम समाज और भी अधिक उद्विग्न हो गया। मुस्लिम विधेयक ने और भी आग में घी का काम किया। रामजन्मभूमि विवाद ताला खुलने से बहुत पूर्व का है परन्तु यह विवाद साम्प्रदायिक तनाव का और विशेषकर दगे का रूप कभी इतने विशाल स्तर पर धारण नहीं कर पाया था। परन्तु जैसे ही ताला खुला अदालती आदेश को किसी अदालत में चुनौती देने के बजाय या कानून के विवाद को कानून से सुलझाने के बजाय कट्टरपन्थी मुस्लिम समाज उसका विरोध करने के लिए सडको पर उतर आया। हालांकि इसका दुःखद पहलू यह भी है कि विश्व हिन्दू परिषद् तथा राष्ट्रीय स्वय सेवक संघ ने हिन्दू जागरण अभियान के दौरान रथयात्रा निकालकर विजयोत्सव मनाना शुरू कर दिया। अदालत से मिले न्याय पर सामूहिक हर्ष मनाना एक वर्ग के लिए चुनौती बन गया। बाबरी मस्जिद की हिफाजत के लिए बनाई गई अंजुमन महाफिज मकाबीर, जमायते इस्लामी, मुस्लिम मजलिस तथा अन्य मुस्लिम संगठन तो जैसे तैयार ही बैठे थे, उन्होंने चुनौती को स्वीकार कर लिया। दीवारों पर उत्तजक नारों से लेकर भड़काने वाले पोस्टर और पर्चों से तनाव को और अधिक विस्फोटक बनाने का काम शुरू कर दिया गया। इस्लाम खतरे में है मुसलमानो जिहाद के लिए तयार हो जाओ—की अपील की जाने लगी। बहराइच में धर्मान्तरण के मामले ने भी विष का बीज बोने का काम किया। फरवरी १९८६ से उत्तर प्रदेश के विभिन्न तेरह स्थानो पर साम्प्रदायिक वारदाते हुई जिन में लगभग एक सौ आदमी साम्प्रदायिकता की बलि चढ़े जबकि सरकारी आकड़े यह संख्या ४५ ही बताते हैं। देश की आजादी के बाद उत्तर प्रदेश में इतना जबरदस्त साम्प्रदायिक तनाव कभी नही हुआ। फैजाबाद में तो वातावरण गर्म जरूर था परन्तु वह बचा रहा। बहराइच और बाराबकी में गांवों में पत्थरबाजी और मारपीट की घटनाएँ हुई परन्तु यह आग ऐसी फैली कि वाराणसी, लखीमपुर खीरी, लखनऊ, मेरठ, सुलतानपुर, मुरादाबाद, इलाहाबाद, पालीभीत, रायबरेली और बहराइच जिले तो इसकी लपेट में आकर धू-धू कर जलने लगे। १८ फरवरी को सभी जिला अधिकारियों को इस बात के लिए निर्देश दे दिये गये थे कि वे विश्व हिन्दू परिषद की ओर से चलाये जा रहे रथ जलूसों पर तुरन्त रोक लगा दें और यह निर्देश तत्काल लागू होने चाहिएं। रामजन्मभूमि का ताला खुलने की खुशी में या विरोध मे किसी का सभा करने की इजाजत न दी जाये। यह कदम वास्तव में सराहनीय था, नागरिकों से अमन के लिए अपील भी की गई थी। अगर यह आदेश यदि थोड़े समय पहले दिया जाता तो स्थिति इतनी भयावह नहीं हो सकती थी। इधर सत्ता पक्ष के मुस्लिम विधायक मुख्यमन्त्री श्री वीर बहादुर सिंह से मिले और चेतावनी दी कि यदि बाबरी मस्जिद उन्हें वापस नहीं दी गई तो वे पार्टी से बगावत कर देंगे। अपने मुस्लिम विधायकों के सामने सरकार झुक गई। इका मुस्लिम विधायकों की बात छोडिए राज्य विधानसभा के २९ विधायकों के अतिरिक्त विपक्ष के २३ मुस्लिम विधायकों में भी एक भी ऐसा नही जो बाबरी मस्जिद को रामजन्मभूमि मानने को तैयार हो। ७ फरवरी को डेढ दर्जन मुस्लिम विधायकों के साथ प्रमुख मुस्लिम नेताओं की बैठक हुई जिसकी अध्यक्षता मुस्लिम पर्सन ला बोर्ड के अध्यक्ष मौलाना सैयद हसन अली नकवी ने की। इसमें यह तय किया गया कि १४ फरवरी को पूरे देश मे काला दिवस मनाया जाये। इसी का नतीजा था ९ फरवरी को रायबरेली में तनाव फैल गया। १३ फरवरी से १७ फरवरी तक साम्प्रदायिकता का विस्फोट होता रहा।

इस सिलसिलेवार ढंग से चलते दगों के पीछे गहरे षड्यन्त्र का पर्दाफाश हुआ १४ जून को जब इलाहाबाद मे दगा भडका। जबकि इस दगे के मूल में उपेक्षित पडी मस्जिद की गज भर जमीन थी। जबकि वास्तविकता कुछ और ही थी। दगे की तैयारी बहुत पहले से चल रही थी। दगे से पूर्व इलाहाबाद में बाबरी मस्जिद ऐक्शन कमेटी की मजीदिया इस्लामिया इण्टर कालेज तथा दौलत हुसैन इण्टर कालेज के प्रांगण में हुई दो सभाओं में साम्प्रदायिक भावनाओं को हवा देने वाले भाषण तथा पर्चे बाटे गये।

१४ जून को प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी वाराणसी आये। पी० ए० सी० को वाराणसी भेज दिया गया। जिले के कई वरिष्ठ अधिकारी शहर से बाहर छुट्टी पर चले गए थे। जिलाधिकारी श्री अनिल कुमार दो दिन की छुट्टी पर अपने घर बुलन्दशहर चले गए थे। ज्येष्ठ पुलिस अधीक्षक श्री उमा शकर वाजपेयी १३ जून को किसी काम से उन्नाव गए हुए थे। अतिरिक्त जिला अधिकारी (नगर) बी० एल० तिवारी तथा नगर मजिस्ट्रेट भी उस दिन शहर में नहीं थे। ऐसे मौके को दगाई खाली क्यो जाने देते। ८ बजे रात को कोतवाली से २०० गज की दूरी पर स्थित खस्ता हाल मस्जिद की गज भर पडी जमीन को लेकर झगडा खड़ा किया। आधे शहर को तुरन्त इस ने अपनी लपेट में ले लिया। रात को बिजली काट दी गई। अंधेरे का फायदा उठाकर मनमानी लूटपाट की गई। बम और गोलियों से पुलिस तक का मुकाबला किया। इस बीभत्स वारदात में टेलीस्कोप राइफलों तक का दगाइयों ने इस्तेमाल किया। हालांकि यह दगा तो केवल बहुसंख्यक समाज को भयभीत करने के लिए था। दगाइयो ने १४ जून को क्यों चुना? इतनी भारी मात्रा में गोला-बारूद तथा बन्दूक और राइफल क्या एक दिन में आ गयी? इससे साफ जाहिर है कि दगे मे गहरी साजिश थी।

—यशपाल सुधांशु

विश्वभारती अनुसंधान परिषद् मे हिन्दी दिवस

ज्ञानपुर (वाराणसी)। विश्व भारती अनुसन्धान परिषद् में हिन्दी दिवस पर अध्यक्ष पद से बोलते हुए गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) के कुलपति डा० कपिल देव द्विवेदी ने वर्तमान युग में हिन्दी के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि हिन्दी भाषा के द्वारा राष्ट्रीय एकता सम्भव है एवं हिन्दी के द्वारा ही भाषा सम्बन्धी विवाद आसानी से हल किया जा सकता है।

इस अवसर पर डा० भारतेन्दु, डा० विभु मिश्र, श्री ज्ञानेन्दु आदि ने हिन्दी भाषा की उपयोगिता और महत्त्व पर प्रकाश डाला।

आर्येन्दु आर्य
प्रचार मत्री
विश्वभारती अनुसधान परिषद्
ज्ञानपुर (वाराणसी)

तुम्हें याद हो कि न याद हो

श्रद्धा की निर्मल धारा

पं० गुरुदत्त जैसा हृदय लेकर

लेखक : महात्मा हंसराज जी महाराज

अनुवादक : प्राध्यापक राजेन्द्र जिज्ञासु
वेद सदन अबोहर

जोधपुर रियासत से अस्वस्थ होकर स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज अजमेर नगर पधारे। सम्भवत: उनके प्रेमियों का यह आयोजन था कि अजमेर में अच्छे से अच्छे डाक्टर मिल सकेंगे। जब उनकी रुग्णता भयानक रूप धारण कर गई तथा उनके सेवकों के हृदयों में यह विचार उत्पन्न हो गया कि उनकी चिकित्सा मानवीय शक्ति से बाहर है तथा मृत्यु दिन प्रतिदिन निकट आ रही है तो उन्होंने बाहर को समाजों को इस चिन्ताजनक स्थिति के बारे में तार दी। इस प्रकार एक तार पंजाब के आर्य-समाज के पिता लाला साईदास जी के पास आया कि स्वामी जी की अवस्था चिन्ताजनक है। आर्य समाज लाहौर ने प० गुरुदत्त जी विद्यार्थी तथा लाला जीवनदास जी को स्वामी जी महाराज की सेवा-शुश्रूषा के लिए भेजा।

प० गुरुदत्त जी का आरम्भिक जीवन

प० गुरुदत्त जी उस समय आर्य-समाज के प्रतिभाशाली नौनिहाल थे। उनकी संस्कृत अंग्रेजी तथा विज्ञान में अद्भुत (उच्च कोटि) की योग्यता थी। उनकी बौद्धिक तथा धार्मिक विषयों पर वाद विवाद की सुरुचि (शौक था) थी। उनका विश्वविद्यालय का रिकार्ड(Record) भी अच्छा था। यद्यपि वह आर्य-समाज के सदस्य थे, परन्तु कुछ लोग समझते थे कि वास्तव में उनका विश्वास वैदिक धर्म में नहीं था। वह वादविवाद में कभी-कभी विरोधी पक्ष भी ले लिया करते थे।

[दुर्भाग्य से प० गुरुदत्त जी का कोई अच्छा खोजपूर्ण जीवन-चरित्र हिन्दी में नहीं छपा। लाला लाजपत राय द्वारा लिखित पुस्तक की सामग्री ही अदल बदलकर छाप दी जाती है। ला० लाजपतराय जी तथा महात्मा मुंशीराम दोनों ने लिखा है कि प्रसिद्ध सुधारक कन्हैयालाल अलखधारी का साहित्य पढ़कर गुरुदत्त नास्तिक बन गये, फिर आर्य-समाज में प्रविष्ट हुए। वैदिक धर्म पर विश्वास तो था, परन्तु ईश्वर पर श्रद्धा का अंकुर ऋषि के बलिदान के अन्तिम दृश्य को देखकर ही उपजा था। इतिहास-प्रेमियों को यह महत्त्वपूर्ण तथ्य ध्यान में रखना चाहिए।] —अनुवादक

लाहौर में तब एक ऐसी संस्था भी थी जो यह समझती थी कि एक सुयोग्य संस्कृत के विद्वान् तथा विज्ञान के गम्भीर विद्वान् के लिए यह सम्भव ही नहीं कि वह किसी ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तक पर विश्वास कर सके। एक बार मैडिकल कालज (Medical College) के एक विद्यार्थी ने मुझे कहा कि प० गुरुदत्त जी आर्य समाज के सदस्य हैं, परन्तु, वेदों को नहीं मानते। मैंने इस विचार का प्रतिवाद किया तथा उससे पूछा कि इस विश्वास—इस कथन का क्या कारण है?

उसने उत्तर दिया कि यह असम्भव है कि प० गुरुदत्त सरीखा बुद्धिमान् विद्वान् किसी पुस्तक को ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार करले। प० जी ने नीति की दृष्टि (As a matter of Policy) से आर्यसमाज की सदस्यता स्वीकार करली होगी। [महात्मा जी ने इस धारणा को भी प्रबल शब्दों में झुठलाया। ग्रंथावली में प्रकाशित महात्मा जी के एक प्रवचन में भी इस घटना की चर्चा है। महात्मा हंसराज जी की नीति (Policy) वाली बात सुनकर बड़ा मानसिक दुःख हुआ। यह प० गुरुदत्त जैसी विमल आत्मा पर सन्देह करने वाली निन्दनीय बात थी। —अनुवादक]. इस प्रकार के विचित्र विचार पण्डित जी के सम्बन्ध में लोगों में फैले हुए थे। इस मानसिक अवस्था में पण्डित जी अजमेर पहुंचे।

ऋषि का अन्तिम दृश्य

अजमेर पहुंचकर प० गुरुदत्त जी ने एक विचित्र दृश्य देखा। ऋषि का जीवन उनके ग्रन्थों में झलकता है। उन पुस्तकों को पण्डित जी ने पढ़ा हुआ था, परन्तु वे पुस्तकें उनके लिए मात्र दर्शन तथा विज्ञान के ग्रन्थ थे। अजमेर में उन्होंने एक ऋषि की मृत्यु को देखा। ऋषि मृत्यु शय्या पर पड़े हुए थे। उनका शरीर अति दुःख में था परन्तु उनकी जिह्वा से दुःख का कोई शब्द नहीं निकलता था। मुख पर शान्ति तथा प्रेम के भाव प्रकट होते थे। गायत्री मन्त्र का पाठ करते हुए तथा "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो!" ये शब्द उच्चारण करते हुए उन्होंने अपने प्राण परमात्मा के अर्पण किये। ऋषि की मृत्यु के प्रभावशाली दृश्य ने जो प्रभाव पण्डित जी के आत्मा पर उत्पन्न किया, वह मृत्यु पर्यन्त (पं० जी की मृत्यु तक दूर नहीं हुआ। उनके आत्मा ने अपनी काया पलट ली। सन्देह-संशय सब छिन्न-भिन्न हो गए। प० जी के जीवन में एक विचित्र परिवर्तन उत्पन्न हो गया।

सार्वभौमिक चुनौती

लाहौर पहुंचकर पण्डित जी ने अपने परिवर्तन का पूरा-पूरा परिचय दिया। उनके व्याख्यान तो पहले ही ज्ञान से भरपूर होते थे, परन्तु अजमेर से लौटने के पश्चात् उनमें विश्वास का वह रस और रंग उत्पन्न हो गया जो शायद ही कहीं दिखाई दे। उन्होंने अविश्वासी जनों को नोटिस दिया कि श्री स्वामी जी महाराज की पुस्तकों पर जो आक्षेप हों वे उनके पास लिखकर भेज दें। वह उनका उत्तर देंगे। आर्यसमाज के भीतर पण्डित जी के प्रभाव से विश्वास का एक आन्दोलन (लहर) चल पड़ा। सहस्रों व्यक्तियों ने इस धारा में स्नान करके अपने हृदय को शान्त तथा आत्मा को पवित्र किया।

यह विश्वास का सुन्दर साधन था

अजमेर-यात्रा क्या थी? ऋषि के मिशन में विश्वास का एक साधन था। आर्यसमाज के प्रेमी सज्जन इस समय भी उस स्थान पर जा रहे हैं जहां ऋषि ने अपने प्राणों को अर्पण किया।

दुर्गुण तजकर श्रद्धा से तृप्त हो जाएं

आर्य भाइयो! यदि अजमेर जाकर आपने अपने अन्दर अधिक श्रद्धा, प्रेम तथा ऋषि भक्ति उत्पन्न की तो आपकी यात्रा सफल होगी। और यदि आपने राग द्वेष, अश्रद्धा, निन्दा तथा स्वार्थ के बीज बोए तो आप ने न केवल अपने धन का अपव्यय किया अपितु अपने आत्मा का भी पतन किया। मेरा निवेदन तो आपसे यह है कि :—

पं० गुरुदत्त जी का हृदय लेकर आप अजमेर की यात्रा करें।

वियाना VIENNA (Austria आस्ट्रिया की राजधानी) में आंखों का ऑपरेशन करवा के लौटे तो कुछ समय पश्चात् ही महर्षि दयानन्द-बलिदान अर्ध शताब्दी पर आपने यह अद्भुत भावपूर्ण लेख 'प्रकाश' उर्दू साप्ताहिक लाहौर के १५-२२ अक्टूबर १९३३ के अङ्क में दिया। इसका हिन्दी अनुवाद सम्पादक ने महर्षि बलिदान शताब्दी पर 'परोपकारी' मासिक में १९८३ में छपवाया था। —अनुवादक

(पृष्ठ २ का शेष)

पितृयज्ञ और श्राद्ध

द्वारा भेजने का मतलब ही क्या है? यदि श्राद्ध के दिनों में किसी का पितर किसी योनि में स्वयं ही सूक्ष्म शरीर से भोजन करने आए भी तो जिस योनि से आएगा उस की तो मृत्यु हो जानी चाहिए। थोड़ा और विचारो कि एक आत्मा तत्त्वज्ञान प्राप्त करके मुक्त हो गया, उसे संसार के भोजन की क्या चिन्ता? एक आत्मा कर्मवश शेर या भेड़िया बना हुआ है, दूसरा विष्ठा या नाली का कीड़ा बना हुआ है, इन प्राणियों का हलुआ और पूरी से क्या काम चलेगा? प्रत्येक प्राणी का अपना भिन्न-भिन्न प्रकार का स्वादिष्ठ भोजन है। सब का मनुष्य जैसा तो भोजन नहीं होता। देखो! यदि कोई आदमी किसी आदमी के पास पत्र डाल रहा हो, परन्तु उसका पता न जानता हो, सारा मजमून लिखकर बिना पते का पत्र 'लैटरबक्स' में छोड़ दे तो क्या वह उसकी अक्लमन्दी होगी और क्या वह पत्र उस आदमी के पास पहुंच भी जाएगा। वह तो कोरा अन्धविश्वास है। एक व्यक्ति को खिलाने से अगर दूसरे व्यक्ति के पास भोजन पहुंच जाता तो परदेश जाने वाले को भोजन बांध कर ले जाने की आवश्यकता ही क्या थी। घर पर ब्राह्मणों को खिला दिया जाता तो परदेश जाने वाले का

(शेष पृष्ठ ६ पर)

॥ ओ३म् ॥

चलो चलें वाराणसी, करें ऋषि गुणगान।
देखें काशी के सभी, दर्शनीय स्थान॥

आर्यों का कुम्भ मेला

मातृ मन्दिर आर्य कन्या गुरुकुल

वाराणसी का

रजत जयन्ती समारोह

मेले का आयोजन

आपको जानकर हर्ष होगा कि सभा से सम्बद्ध मातृ मन्दिर कन्या गुरुकुल का रजत जयन्ती समारोह २४, २५, २६ अक्तूबर १९८६ को बड़े धूमधाम के साथ वाराणसी में आयोजित किया गया है। इस अवसर पर भाग लेने के लिए आर्य जनता की सुविधार्थ दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा विशेष बसों की व्यवस्था की गई है। इन बसों में यात्रियों को लखनऊ, नेमीसार, विश्वनाथ मन्दिर, सारनाथ, अयोध्या, बनारस, प्रयाग, कानपुर, एटा के सभी दर्शनीय ऐतिहासिक स्थान देखने का भी अवसर मिलेगा। यह बसें निम्न कार्यक्रमानुसार २१ अक्तूबर को दिल्ली से चलकर २८ अक्तूबर १९८६ को वापस लौटेंगी।

आप निम्न स्थानों पर १८५/- रुपये प्रति यात्री के हिसाब से धन जमा कराकर यथाशीघ्र सीटें आरक्षित करा लें।

१. आर्यसमाज दीवान हाल, दिल्ली-६ दूरभाष : २३७४८०
२. आर्यसमाज चूना मण्डी, पहाड़गंज, नई दिल्ली ,, ७७६६१४
३. श्री नेतराम शर्मा, ए० ७/६, कृष्णनगर, दिल्ली ,, २१३४८३
४. डा० धर्मपाल, ए०/एच० १६, शालीमार बाग, दिल्ली ,, ७११११६७१
५. श्री ओमप्रकाश आर्य, माता चन्ननदेवी आर्य धर्मार्थ ,, ५५३१४३
नेत्र चिकित्सालय, सी-१, जनकपुरी, नई दिल्ली-५८ ५५१३८८
६. डा० जगन्नाथ, एफ १/१७, कृष्णनगर दिल्ली-५१ ,, २१३८४०
७. श्री रामशरण दास आर्य, ओ-१७ बी. जगपुरा विस्तार, नई दिल्ली ,, ३०१०२६/३३०
८. श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती, सभा कार्यालय, १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली-१ ,, ३१०१५०

आर्य बस यात्रा का विस्तृत कार्यक्रम

प्रस्थान :	पहुंच :
२१।१०।८६ सायं ५ बजे दिल्ली से (नेमीसार)	२२।१०।८६ प्रातः ५ बजे लखनऊ
२३।१०।८६ प्रातः ५ बजे लखनऊ से (अयोध्या)	सायं ३ बजे बनारस
२४।१०।८६ प्रातः ८ बजे बनारस से विश्वनाथ मंदिर,	सारनाथ, अमेठी सायं बनारस
२५-२६ बनारस	
२७।१०।८६ प्रातः ५ बजे बनारस से	प्रातः ८ बजे प्रयाग
२७।१०।८६ दोपहर १२ बजे प्रयाग से	सायं ५ बजे कानपुर
२८।१०।८६ प्रातः ५ बजे कानपुर से गुरुकुल एटा होते हुए	सायं ७ बजे दिल्ली

नोट—कार्यक्रम में परिवर्तन तथा सीट संख्या देने का अधिकार व्यवस्थापक का होगा। एक बार आरक्षित कराई गई टिकट वापस नहीं होगी। आधी सवारी को सीट नहीं मिलेगी। निवास एवं भोजन का प्रबन्ध आर्यसमाजों की ओर से होगा। जहां आर्यसमाज में प्रबन्ध न होगा, यात्री भोजन अपने व्यय से करेंगे। सीट आरक्षित की राशि केवल मार्गव्यय है।

निवेदक :

सूर्यदेव (प्रधान) डा० धर्मपाल (महामन्त्री)

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा (पंजीकृत)

१५ हनुमान रोड, नई दिल्ली-११०००१ फोन ३१०१५०

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

द्वारा प्रकाशित वैदिक साहित्य

कक्षा प्रथम	नैतिक शिक्षा (भाग प्रथम)		१.५०
कक्षा द्वितीय	नैतिक शिक्षा (भाग द्वितीय)		१.५०
कक्षा तृतीय	नैतिक शिक्षा (भाग तृतीय)		२.००
कक्षा चतुर्थ	नैतिक शिक्षा (भाग चतुर्थ)		३.००
कक्षा पंचम	नैतिक शिक्षा (भाग पंचम)		३.००
कक्षा षष्ठ	नैतिक शिक्षा (भाग षष्ठ)		३.००
कक्षा सप्तम	नैतिक शिक्षा (भाग सप्तम)		३.००
कक्षा अष्टम	नैतिक शिक्षा (भाग अष्टम)		३.००
कक्षा नवम	नैतिक शिक्षा (भाग नवम)		३.००
कक्षा दश	नैतिक शिक्षा (भाग दश)		४.००
कक्षा ग्यारह	नैतिक शिक्षा (भाग ग्यारह)		४.००
कक्षा बारह	धर्मवीर हकीकतराय	वैद्य गुरुदत्त	५.००
	फ्लैश आफ ट्रुथ (Flash of Truth)	डा० सत्यकाम वर्मा	२.००
	सत्यार्थप्रकाश सन्देश	,, ,,	२.००
	एनाटोमी आफ वेदान्त	स्वा० विद्यानद सरस्वती	५.००
	सत्यार्थ सुधा	पं० हरिदेव सि०भू०	२.००
	दयानन्द एण्ड दा वेदाज (ट्रेक्ट)		५०/- रु० सैकड़ा
	पूजा किसकी ? (ट्रेक्ट)		५०/- रु० सैकड़ा
	मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम (ट्रेक्ट)		५०/- रु० सैकड़ा
	योगीराज श्रीकृष्ण का सन्देश (ट्रेक्ट)		५०/- रु० सैकड़ा
	महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी स्मारिका		५.००
	स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान अर्धशताब्दी स्मारिका		५.००
	राघव गीत उद्यान	स्वामी स्वरूपानद सरस्वती	३.५०
	ठकुराया वीर	,, ,,	२.००
	सरल चिकित्सा भाग-१	,, ,,	३.५०
	रोगों की सरल चिकित्सा भाग-२	,, ,,	३.५०
	समय के मोती	,, ,,	१०.००

वैदिक विचारधारानुकूल आधुनिक तर्जों से ओत-प्रोत, धार्मिक, प्रभु-भक्ति प्रेरक गीत, संस्कार पर्वों के नवीन गीत, कविताओं का अपूर्व संग्रह अवश्य पढ़ें।

नोट—उपरोक्त सभी पुस्तकों पर १५% कमीशन दिया जाएगा।

कृपया अपना पूरा पता एवं नजदीक का रेलवे स्टेशन साफ-साफ लिखें। पुस्तकों की अग्रिम राशि भेजने वाले से डाक-व्यय पृथक् नहीं लिया जाएगा।

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

१५, हनुमान् रोड, नई दिल्ली-११०००१

श्री घूड़मल आर्य पुरस्कार सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार को

हिण्डौन सिटी। स्थानीय आर्यसमाज हाल में १९ अगस्त से २७ अगस्त (रक्षाबन्धन से श्रीकृष्ण जन्माष्टमी) तक वेद प्रचार सप्ताह के अन्तर्गत यजुर्वेद पारायण यज्ञ का सफल आयोजन स्वामी जगदीश्वरानन्द जी महाराज के आचार्यत्व में स्वामी ओमानन्द जी के सहयोग से उत्साहपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर श्री आर्यमुनि जी वानप्रस्थ ने सन्यास की दीक्षा ली।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के पावन पर्व पर श्री घूड़मल प्रह्लाद कुमार आर्य ट्रस्ट अपने पूज्य पिता जी की स्मृति में स्थापित 'श्री घूडमल आर्य पुरस्कार" आर्य जगत् के ख्याति प्राप्त चिन्तक, विद्वान् पण्डित सत्यव्रत जी सिद्धान्तालकार को उनकी पुस्तक "वैदिक संस्कृति के मूलतत्व" पर ससम्मान, समारोह पूर्वक विशाल उपस्थिति में दिया गया। सम्मान स्वरूप उन्हें अभिनन्दनपत्र, एक शाल व १५०१/- रुपये की राशि समर्पित की गई। समारोह का सफल सचालन डा० ओमप्रकाश वेदालकार एम. ए., पी एच-डी ने किया।

सचिव
श्री घूड़मल आर्य पुरस्कार सम्मान

समाचार

आर्यसमाज बड़ा बाजार का जन्माष्टमी समारोह सम्पन्न

आर्यसमाज बडा बाजार द्वारा इस वर्ष जन्माष्टमी २७।८।८६ से ४।९।८६ तक श्रीकृष्ण चरित व्याख्यानमाला का नौदिवसीय आयोजन किया गया। जिस मे क्षेत्र के लोगों ने पूरे उत्साह के साथ बडी सख्या में भाग लिया। प्रथम एवं द्वितीय दिवस आचार्य उमाकान्त उपाध्याय व प० रामनरेश शास्त्री ने अपने सारगर्भित उपदेशों से जन्माष्टमी पर्व के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक स्वरूप की रक्षा का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए योगेश्वर भगवान् कृष्ण के पावन जीवन के साथ जोडी गई अनेक विसगतियों को दूर कर जनमानस को श्रीराम एव श्रीकृष्ण के द्वारा प्रतिपादित आचरण सहिता को अपना कर अर्थात् चित्र पूजा के स्थान पर उनकी चरित्र पूजा कर उन युग पुरुषों का सच्चा भक्त होने की प्रेरणा दिलाई। व्याख्यानमाला में विशेष आमन्त्रित विद्वान् पं० यशपाल 'सुधांशु', सम्पादक आर्य सन्देश (नई दिल्ली) ने सप्ताह भर तक योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के जीवनवृत्त के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए उन्हें एक युगद्रष्टा क्रान्तदर्शी, समाज संशोधक, अध्यात्म पथ के अपूर्व साधक के रूप में प्रस्तुत किया। कार्यक्रम में ८ दिनों तक इतिहास मर्मज्ञ, क्रान्तिकारी विचारक श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने अपने उपदेश व भजन से आर्यसमाज एव क्रान्तिकारियों के इतिहास का मन्थन किया। इस आयोजन से रामकृष्ण के बारे मे फैलाई गई भ्रांतियों का निराकरण भी हो सका तथा श्रोतृवृन्द द्वारा आर्यसमाज की तदर्थ सराहना की गई।

खुशहालचन्द्र आर्य
मन्त्री

केन्द्रीय आर्य युवक परिषद् का वार्षिक अधिवेशन सम्पन्न

नई दिल्ली। केन्द्रीय आर्य युवक परिषद् दिल्ली (अन्तरग सभा) का वार्षिक अधिवेशन श्री रामनाथ सहगल (मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा) की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ। जिस मे वर्ष १९८६-८७ के लिए कार्यकारिणी मे अध्यक्ष अनिल आर्य, वरिष्ठ उपाध्यक्ष ब्र० विश्वपाल जयन्त, उपाध्यक्ष श्री अजय सहगल व श्री विश्वनाथ आर्य, महामन्त्री श्री राजपाल आर्य, मन्त्री श्री बृजेश आर्य, उपमन्त्री श्री रणवीर सिंह आर्य, कोषाध्यक्ष श्री यशपाल पाल रेलन, सगठन मन्त्री श्री योगेश आनन्द एडवोकेट, प्रचारमन्त्री श्री राधेश्याम शास्त्री, खेलमन्त्री श्री दुर्गेश आर्य, कार्यालय मन्त्री श्री धर्मपाल आर्य, पुस्तकालयाध्यक्ष श्री वीरेन्द्र आहूजा, प्रधानशिक्षक श्री धर्मवीर आर्य, शिक्षक श्री अमित आर्य, श्री मुन्नालाल आर्य, श्री वेद प्रकाश आर्य, श्री सुशील आर्य, बौद्धिकाध्यक्ष श्री राजेश कुमार (राज), लेखा निरीक्षक श्री प्रवीण कुमार, प्रतिष्ठित सदस्य श्री धर्मपाल आर्य, श्री विश्वमोहन आर्य और सरक्षक मण्डल मे स्वामी सत्यपति जी महाराज, स्वामी जगदीश्वरानन्द जी, ब्र० आर्य नरेश जी, श्री क्षितीश वेदालकार, प० यशपाल सुधांशु, श्री देशराज बहल, श्री रामनाथ सहगल, श्री शान्तिप्रकाश बहल, श्री योगेश आर्य, श्री सत्यपाल भाटिया, श्री हीरालाल चावला सर्वसम्मति से चुने गए।

राधेश्याम शास्त्री
प्रचारमन्त्री

आर्य युवा महा सम्मेलन

केन्द्रीय आर्य युवक परिषद् दिल्ली के तत्वावधान में आर्यसमाज अनारकली मन्दिर, नई दिल्ली-११०००१ में उसके वार्षिकोत्सव पर रविवार १६ नवम्बर ८६ को आर्य युवा महासम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। जिस में देश भर के सैकड़ों प्रतिनिधि पधारेंगे।

सयोजक
अनिल आर्य

(पृष्ठ ४ का शेष)

पेट स्वत. भर जाता। अतएव मृतक पितरों का श्राद्ध करना बिल्कुल व्यर्थ और अपने आप को धोखा देना है। पितर शब्द का अर्थ रक्षा करने वाला भी है, रक्षा वही कर सकता है जो जीवित हो। जीवित ही स्वसन्तानों की सर्वप्रकार से रक्षा कर सकते हैं। मरने पर तो पितर ही नही रहता, क्योंकि पितर न तो आत्मा है और न शरीर है। आत्मा और शरीर के सयोग विशेष का नाम है। श्राद्ध के दिनों को लोग कनागत या कर्णागत भी कहते हैं।

एक पौराणिक गाथा है, सुवर्णदान करने वाले कर्ण को स्वर्ग में स्वर्ण ही मिला। जब उसकी भूख दूर न हुई तो उसने पन्द्रह दिन की छुट्टी ली और मृत्यु लोक में आकर ब्राह्मणों को भोजन कराया तब स्वर्ग मे उस को अन्न खाना सम्भव हुआ। कर्ण को लौट कर आने से ही कनागत कर्णागत नाम पड़ा। यह सृष्टि क्रम के विरुद्ध होने से कथा मिथ्या है। अपने कर्म का फल अपने को ही भोगना पड़ता है। रही दान और पुण्य को जाने की बात, पात्र और कुपात्र को देखकर के जो काम बहाने बनाकर किया जाता है, उसका परिणाम शुभ नहीं निकलता। क्योंकि हृदय में सच्चाई न होने के कारण दान करने वाले की आत्मा पर अच्छा सस्कार नहीं पड़ता। जो मन मे हो, वही वाणी पर हो तथा वैसा ही कर्म किया जाए, तब वह पुण्य का काम कहलाता है। बहाने से किया दान न दान है और न पुण्य पुण्य है। अतः जीवितों की सेवा करो।

सम्पादक के नाम पत्र

मैं आपका नियमित पाठक हूं। गौरव स्तम्भ में प्रेरक प्रसग मुझे तथा मेरे परिवार के सदस्यों को सदा ही अच्छे लगते हैं। कृपया नियमित देते रहें।

—रमेशचन्द्र, गोरखपुर

प्रेरक प्रसंग तथा बिडला परिवार में आर्यसमाज के लेखक श्री सत्यानन्द को बधाई। स्वर्गीय जो. डी. बिरला चाहे आर्यसमाज के नियमित सभासद नही रहे हो उन के कार्यों और विचारों के पीछे आर्यसमाज की ही प्रेरणा थी। यह लेख एक महत्त्वपूर्ण तथ्य को उजागर करता है।

—डा० भवानीलाल भारतीय
चण्डीगढ

महान पुरुषों का चरित्र प्रेरक है जीवन के निराश क्षणों को आशा उत्साह का सम्बल देता है, युवा तथा किशोरों के लिए महान पुरुषों के प्रेरक प्रसग वास्तव में प्रेरक है। स्तम्भ को चलाते रहें।

—सुरेशचन्द्र, झांसी

हम गुरुकुल के छात्रों को प्रेरणा देने के लिए गौरव स्तम्भ बधाई का पात्र है।
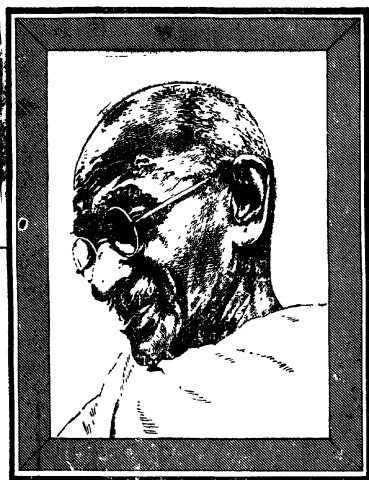
— ऋषिपाल आर्य
द० ब्रा० विद्यालय हिसार

ओ३म्

साप्ताहिक

आर्य सन्देश

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

[illegible]१०: अंक ४९ | रविवार १२ अक्टूबर, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ | आश्विन २०४३ | दयानन्दाब्द—१६१

मूल्य : एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश में ५० डालर, ३० पौंड

प्रधानमन्त्री की हत्या का प्रयास अत्यन्त निन्दनीय

देश की एकता और अखण्डता के लिए सरकार सख्त कदम उठाये

—सूर्यदेव

राजघाट में गांधी जयन्ती के अवसर पर २ अक्तूबर को जो देश के प्रधानमन्त्री को लक्ष्य कर गोलियां दाग कर कायरतापूर्ण हत्या का प्रयास किया गया है उसकी जितनी निन्दा की जाये थोड़ी है। लेकिन साथ ही सुरक्षा बलों की कमजोरी का यह भारी सबूत भी है। प्रधानमन्त्री का सुरक्षा दायित्व जिन पर है उनकी लापरवाही क्षम्य नहीं है। प्रधानमन्त्री के सुरक्षित बचने पर समस्त राष्ट्रवादियों ने संतोष की सांस ली है। दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री सूर्यदेव ने उक्त आशय का बयान एक प्रेस विज्ञप्ति में दिया। उन्होने प्रधानमन्त्री के दीर्घायु की भी कामना की है।

श्री सूर्यदेव ने पंजाब में पूर्ण निष्ठा से आतंकवादियो की धर-पकड़ और चुनौतियों का मुकाबला करने वाले साहस के धनी पंजाब पुलिस के महानिदेशक श्री जे० एफ० रिबेरो के ऊपर किये गये क्रूर हमले को भी घोर निन्दा की है तथा श्री रिबेरो के साहस की प्रशंसा की है। साथ ही उन्होने यह आशका भी व्यक्त की है कि इन घटनाओं से प्रतीत होता है कि विदेशी शक्तिया अपने अलगाववाद के लक्ष्य में कामयाब होने लगी हैं जिस से उग्रवाद को बढ़ावा मिल रहा है। सभा प्रधान ने मांग की कि सरकार को चाहिए देश की एकता और अखण्डता के लिए सख्त कदम उठाये।

बयान को जारी रखते हुए उन्होंने कहा, भारत के भूतपूर्व सेनाध्यक्ष की हत्या तथा पजाब के वर्तमान पुलिस प्रमुख को खत्म करने के प्रयास से पता चलता है कि देश कितने संकट के दौर से गुजर रहा है। ऐसे वातावरण में सरकार को पूर्ण शक्ति से मुकाबला करना आवश्यक है। पाकिस्तान की सीमा से जुड़े भूभाग पर सीमा सुरक्षा पट्टी कानून लागू किया जाना और भी आवश्यक हो गया है। □

आतंकवादियों को पाक शस्त्रों की नई खेप

अमृतसर, ५ अक्तूबर। यह सच है कि पंजाब पुलिस मनबीर सिंह चेहरू, तरसेम सिंह कोहर और अवतार सिंह जैसे आतंकवादियों को पकड़ चुकी है और दलबीर सिंह उर्फ बिल्ला जैसे खूंखार कई आतंकवादियों का सफाया कर चुकी है फिर भी पाकिस्तान प्रशिक्षित आतंकवादी अभी भी तूफान मच ये हुए हैं।

प्रधानमंत्री राजीव गांधी और पंजाब पुलिस महानिदेशक जे० एफ० रिबेरो पर हमला और उस से पूर्व जनरल ए० एस० वैद्य की हत्या आदि की सभी घटनाएँ पाक की योजना का अंग हैं। महत्त्वपूर्ण लोगों पर हमले से आतंकवाद का प्रचार अत्यधिक होता है और उस के बाद लोगों में अनिश्चितता की भावना पैदा होती है। इससे तीव्र प्रतिक्रिया की भी संभावना रहती है और यह पाकिस्तान चाहता भी है।

अगर प्रतिक्रिया होगी तो पंजाब से पलायन और वहां भाग कर पहुंचने की प्रक्रिया जोरशोर से चल पड़ेगी। सरकार इसी को रोकना चाहती है।

पाकिस्तान के अधिकारियों ने जिन्होंने प्रतिक्रिया और लोगों की आवाजाही का ब्लू प्रिंट तैयार किया था, आतंकवादियों को कुछ समय पहले अत्याधुनिक शस्त्र प्रदान किए थे। इन शस्त्रों में सब मशीन गनें और सेल्फ लोडिंग राइफलें थीं। आतंकवादियों ने श्री रिबेरो की हत्या का प्रयास करते समय इन्हीं हथियारों का इस्तेमाल किया था।

खालिस्तान कमांडो बल के स्वयंभू जनरल लाभ सिंह ने जालधर में अपना कार्यकारी हैडक्वार्टर बनाया है। अन्य उप-समूहों को अलग-अलग क्षेत्र सौंपे गये हैं। इन उप-समूहों का नेतृत्व अमृतसर, गुरुदासपुर, फीरोजपुर, जालंधर, कपूरथला, फरीदकोट और होशियारपुर के बड़े आतंकवादी कर रहे हैं। इन उप-समूहों को पाकिस्तान से आये शस्त्रों की नई खेप दी गई है। हरजिंदर सिंह उर्फ जिंदा जिन्होंने जनरल वैद्य की कथित हत्या की और मथुरा सिंह दिल्ली क्षेत्र के इंचार्ज हैं जबकि बहु-प्रचारित बख्शी सिंह जिन के हाल में समाचार पत्रों में चित्र भी छपे हैं, 'आपरेशन ब्लू स्टार' में मर चुका है। यह सूचना खुफिया विभाग के सूत्रों से प्राप्त हुई है।

फिरोजपुर उप-समूह का नेतृत्व गुरनाम सिंह कर रहा है। लुधियाना क्षेत्र जरनैल सिंह हलवारा के हवाले है जिस ने संत हरचंद सिंह लोंगोवाल की हत्या की थी। लुधियाना की कमान में चरनजीत सिंह भी है जो कभी अखिल भारतीय सिख छात्र संघ का सचिव था। अमृतसर में बलदेव सिंह बल और गुरिन्दर सिंह उर्फ भोला, गुरुदास में जगदीश मल्ली और गुरनाम सिंह फौजी, कपूरथला में बलविंदर सिंह और स्वर्ण सिंह कमान संभाले हुए हैं। बलविंदर सिंह हाल ही मे कपूरथला जेल से भाग निकला था। होशियारपुर में गुरजन्द सिंह और सुरजीत सिंह जिसने मुक्तसर हत्याकाण्ड की रूपरेखा बनाई थी। भटिण्डा में संदीप सिंह और माखन सिंह हैं।

(दैनिक हिन्दुस्तान से साभार)

प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी को स्वामी आनन्द बोध का पत्र

मान्यवर श्री राजीव गांधी जी,

सादर नमस्ते।

आप से दिनांक १७ जौलाई, १९८६ को काश्मीर तथा पंजाब की स्थिति पर मेरी बातचीत हुई थी। आप ने सीमावर्ती क्षेत्रों—जैसलमेर, गुजरात, राजस्थान और जम्मू काश्मीर में सुरक्षा पट्टी बनाने तथा वहां भूतपूर्व सैनिकों को बसाने तथा उन्हें मताधिकार देने के प्रस्ताव पर सहमति व्यक्त की थी। इसी के अनुरूप आप ने राज्य सभा में विधेयक भी प्रस्तुत किया तथा राज्य सभा में पूर्ण बहुमत न होने के कारण संविधान के अनुच्छेद २४९ का उपयोग करके विरोधी दलों के सहयोग से सुरक्षा पट्टी बनाने का अधिकार प्राप्त कर लिया।

इस सुरक्षा पट्टी को राजस्थान, गुजरात के मुख्यमन्त्रियों तथा जम्मू काश्मीर के राज्यपाल की सहमति भी प्राप्त हो चुकी है क्योंकि इससे भारत अनेक कठिनाइयों से मुक्ति पा सकता है तथा यह राष्ट्रहित में भी है। परन्तु पंजाब के मुख्यमन्त्री इसका विरोध कर रहे हैं। यह सर्वविदित है कि पंजाब सरकार उग्रवादियों तथा राष्ट्र विरोधी तत्त्वों से सख्ती से निपटने में असमर्थ रही है। श्रीमती इन्दिरा गांधी और जनरल वैद्य की हत्या से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि इन तत्त्वों के विरुद्ध सख्ती होनी चाहिए न कि सहानुभूति। आतंकवाद सख्ती से ही समाप्त किया जा सकेगा। किन्तु यह खेद का विषय है कि आज भी पंजाब सरकार में ऐसे तत्त्व हैं जिन की इन लोगों से सहानुभूति है। बरनाला सरकार अपरोक्ष रूप में आतंकवादियों की मदद ही कर रही है। हजारों अपराधियों को पंथ के नाम पर रिहा करने का परिणाम आज हमारे समक्ष है। अभी भी जोधपुर जेल में बन्द कुख्यात देशद्रोहियों तथा सेना के भगोड़ों को विस्थापित घोषित करने की मांग की जा रही है ताकि रिहा होने पर वे पुनः अपनी कार्यवाही शुरू कर सकें। श्री फारूक अब्दुल्ला आज भी मक्का में पाकिस्तानी अधिकारियों से मिलकर वहां भारत के विरुद्ध गुप्त योजनाएं बनाने में संलग्न हैं।

अतः भावी भारत को संकटों से बचाने के लिए आपको गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिए। सुरक्षा पट्टी का श्री बरनाला, फारूक अब्दुल्ला या कुछ राष्ट्र विरोधी तत्त्वों द्वारा विरोध किसी भी प्रकार राष्ट्र हित में नहीं है। सरकार द्वारा लोक सभा में पूर्ण बहुमत होने पर भी इस विधेयक को प्रस्तुत न करने से लोगों में यह धारणा प्रबल होती जा रही है कि भारत सरकार राष्ट्र विरोधी तत्त्वों के दबाव में आकर इस पर पुनर्विचार कर रही है, इस का लाभ निश्चित रूप से विरोधी दलों को मिलेगा।

आपके चरित्र तथा निरपेक्ष रूप से सोचने के अपूर्व गुण पर देशवासियों को अभिमान है। अतः मेरा निवेदन है कि देश हित में सुरक्षा पट्टी के मूल प्रस्ताव को राष्ट्रपति के अध्यादेश द्वारा तुरंत लागू कर संसद के अगले सत्र में प्रस्तुत करके अपने कर्त्तव्य का पालन करें जिस से इस देश की राष्ट्रव्यापी जनता को सतोष हो।

मुझे आशा है आप उपरोक्त बातों पर अवश्य विचार करेंगे।

भवदीय

(आनन्द बोध सरस्वती)

प्रधान-सभा

सेवा में,

श्री राजीव गांधी जी

प्रधानमन्त्री भारत सरकार

नई दिल्ली

नई दिल्ली

२६ सितम्बर, १९८६

प्रिय श्री आनन्द बोध सरस्वती,

आपका २ सितम्बर, १९८६ का पत्र मिला। सीमावर्ती क्षेत्रों में सुरक्षा पट्टी का विषय विचाराधीन है। इस मामले में सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए अन्तिम निर्णय लिया जाएगा।

आपका,

राजीव गांधी

श्री आनन्द बोध सरस्वती,
प्रधान सभा,
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

सदाचारियों की अवहेलना चिन्तनीय

—डा० सुधांशु मोहन अग्निहोत्री

आज यदि सभी सरकारी सेवाओं के लिए भ्रष्टाचार अनैतिकता और उत्कोच लेने में सिद्धहस्त होना अनिवार्य योग्यता निर्धारित कर दी जाये तो अधिकांश लोग इन गुणों-दुर्गुणों से समन्वित होने में विलम्ब नहीं करेंगे। यों भी प्रायः सभी सेवाओं तथा व्यवसायों में ईमानदार आदर्शवादी व्यक्ति सम्मानित व लाभान्वित होते दृष्टिगोचर नहीं होते। छल-कपट, विश्वासघात करना आदि ऐसे 'सत्कार्य' हैं जो कि सामाजिकता और सांसारिक ज्ञान के पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिये गये हैं। किसी का बेटा यदि समूचे मोहल्ले, गाँव या शहर को पीड़ित करने में कालेज में अध्यापकों से दुर्व्यवहार करने मे और सड़कों पर छात्राओं को छेड़ने में पारंगत होता है तो उसे 'सपूत' की संज्ञा दी जाती है। इसके विपरीत विनम्र, सच्चरित्र व सिद्धांतवादी बालक बुद्धिहीन कहलाता है।

इसी उल्टी और निंदनीय रीति के कारण ही युवा पीढ़ी स्वदेश-भक्ति, सच्चरित्रता और सिद्धांतवादिता सदृश सद्गुणों को तिलांजलि देकर धूर्तता भ्रष्ट और स्वार्थान्धता के चंगुल में फँसी हुई है। भारतवर्ष में आज भी श्री देवीदास आर्य (गोविन्दनगर कानपुर) जैसे आदर्श राजनेता, निःस्वार्थ समाज सेवी सच्चरित्र महिला-उद्धारक कुटिल विरोधों और व्यवधानों के उपरांत भी अनैतिकता की कालिमा छांटने में व्यस्त हैं। यद्यपि पिछले दिनों देश के राष्ट्रपति महोदय ने श्री आर्य को शील्ड प्रदान कर सम्मानित किया था, परन्तु ऐसे महामानव के सद्विचारों व सत्परामर्श का समुचित मूल्यांकन करके शासन वेश्यावृति जैसी निन्दनीय समस्या का समाधान कर सकता है।

यह ध्रुव सत्य है कि कोई भी समाज, धर्म या राष्ट्र, सुरा-सुन्दरी और कागज के टुकड़ों पर बिकने वाले उथले चरित्र-धारक दुराचार के सहारे नहीं टिक सकता। आज भारतवर्ष, उच्चादर्श की स्थापना के लिए कटिबद्ध उन महान सिद्धांतवादियों के बल पर प्रतिष्ठा और अस्तित्व की रक्षा में समर्थ हो रहा है जिन्हें संसार की कोई धनराशि खरीद नहीं सकती।

मैं दृढ़ निश्चय के साथ कहता हूं कि शासन द्वारा सच्चे देशभक्तों तथा सदाचारियों का यदि मूल्यांकन किया जाये तो भ्रष्टाचार, अनैतिकता और आतंकवाद जैसी ज्वलंत समस्याओं का अंत हो जायेगा।

यह भी उल्लेखनीय है कि देश भर में आज सफेदपोश आतंकवादियों का जाल फैला हुआ है। यह मेरा व्यक्तिगत अनुभव है कि राजनीति का आश्रय लिये हुये, विविध व्यवसायों की ओट में छुप अगणित आतंकवादियों ने अपने-अपने गिरोह बनाकर राष्ट्र की शांति, एकता व अखण्डता को नष्ट करने का ठेका ले लिया है जिसके प्रतिकार की त्वरित आवश्यकता है।

कहना अनुचित न होगा कि सकल विश्व को एकता के सूत्र में आबद्ध करने में समर्थ, सत्य-स्नातक वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा, इस युगग्रस्त परिस्थिति में महत्त्वपूर्ण हो गई है। यदि राष्ट्र के उत्तरदायी व्यक्तियों की आँखें अब भी न खुली तो फिर परिणाम क्या होगा, कहा नहीं जा सकता। □

आर्यसमाज : आज के सन्दर्भ में (२)

आयोजक :

डा० धर्मपाल

डा० कमल किशोर गोयनका

प्रश्न

महर्षि दयानन्द सरस्वती का जन्म टंकारा में हुआ, शिक्षा-दीक्षा मथुरा में और निर्वाण अजमेर में। इन तीनों स्थानों पर महर्षि के स्मारकों का निर्माण हुआ है। क्या आप इन स्मारकों की वर्तमान स्थिति से सन्तुष्ट हैं अथवा चाहते हैं कि इन स्थलों पर कुछ ऐसी गतिविधियां भी प्रारम्भ की जायें जिनसे आगामी पीढ़ियां प्रेरणा ले सकें और आर्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में सहायता मिल सके? इस सम्बन्ध में आप के क्या सुझाव हैं?

उत्तर

अक्षय कुमार जैन (नई दिल्ली)

स्वामी जी से सम्बन्धित स्थानों पर इस प्रकार की गतिविधियां प्रारम्भ हों तो अच्छा है, जिन से स्वामी जी के प्रगतिशील विचारों से सर्वसाधारण प्रेरणा ले सकें।

अमरनाथ कांत (दिल्ली)

इन तीनों स्थानों पर विशाल भव्य आदर्श शिक्षा स्थान (गुरुकुल) होने चाहिए तथा उस में प्रत्येक स्थल, स्तूप, पत्थर पर वेद मन्त्र; नीचे ऋषि द्वारा शब्दार्थ, भावार्थ, टीका आदि अंकित होने चाहिए, जिससे दर्शनार्थी का मन लुभावे और अपनी सन्तान को शिक्षार्थ तुरन्त भेज देवें।

प्रो० कैलाशनाथ सिंह (नई दिल्ली)

तीनों स्मारकों का पृथक् अस्तित्व है। वर्तमान स्थिति राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटकों, अनुसन्धानकर्ताओं एवं विचारशील जनों को आकृष्ट करने में अक्षम है। उच्चस्तरीय विद्वानों का आयोग गठित करके इन स्मारकों के विकास-दशा पर सुझाव लिये जायें और इन्हें राष्ट्र के प्रमुख राष्ट्रीय स्मारकों (National Monuments) के स्तर पर लाया जाये। महर्षि दयानन्द की दीक्षा स्थली गुरु विरजानन्द कुटी (गुरुधाम) मथुरा में आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश ने भव्य पंचमंजिला भवन निर्मित कराया है जो दर्शनीय है। यहां वैदिक शोध संस्थान खोलने पर विचार किया जा रहा है।

प्रो० कृष्णलाल (दिल्ली)

मैं इन तीनों ही स्थानों की वर्तमान स्थिति से अनभिज्ञ हूं। परन्तु निश्चित ही इन स्थलों पर वैदिक पुस्तकालय, वैदिक अध्ययन केन्द्र और आयुर्वेदिक तथा होम्योपैथिक चिकित्सा केन्द्र तथा प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किये जाने चाहिए।

जगतराम आर्य

महर्षि के स्मारक के रूप में टंकारा में एक विद्यालय चल रहा है। जिस पर लाखों रुपया खर्च होता है। वहां से शिक्षा-दीक्षा पाकर जो बाहर निकलते हैं वे आर्यसमाजों में पुरोहित बनकर पेट पूजा करते हैं। उनमें योग्यता नहीं होती और न ही वे ऋषि भक्त होते हैं। आर्यसमाज के प्रति भी श्रद्धा, आस्था नहीं रखते यह मेरा निजी अनुभव है।

अजमेर में परोपकारिणी सभा का काम भी सन्तोष जनक नहीं है। चारों वेद तथा ऋषिकृत अन्य ग्रन्थ सुन्दर रूप में प्रकाशित करके सस्ते में देने चाहिए। ऐसा नहीं है। व्यवस्था भी सन्तोष जनक नहीं है। ऋषि के ग्रन्थों का प्रचार और प्रसार नहीं हो रहा है।

मथुरा में गुरुकुल वृन्दावन है। उसने कितने स्नातक दिये हैं? जो वैदिक मिशनरी के रूप में काम कर रहे हों? महात्मा ईश्वरी प्रसाद में जितनी शक्ति है मथुरा में आर्यसमाज का प्रचार कर रहे हैं।

तीनों स्थानों में स्मारक के रूप में आर्यसमाज का रचनात्मक कार्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त ऐसे विद्यालय हों कि वहां से शिक्षा-दीक्षा पाकर आर्यसमाज के शास्त्रार्थ महारथी बनकर निकलें और पं० लेखराम आर्य मुसाफिर के स्वप्नों को साकार करें।

डॉ० बुधनराम (पटना)

टंकारा, मथुरा और अजमेर इन तीनों स्थानों में विशाल एवं भव्य स्मारक होने चाहिए जिस से विदेशियों एवं देशवासियों को पीढ़ी दर पीढ़ी प्रेरणा मिल सके तथा आर्यसमाज के लेखन कार्य पुनः पूर्ववत् बलशाली हो जाएं।

देवेन्द्र आर्य (मुरादाबाद)

महर्षि के जन्म स्थान टंकारा, दीक्षा स्थान मथुरा और निर्वाण स्थान अजमेर में भव्य भवन बनाया जाए। उसमें वैदिक पुस्तकालयों की स्थापना की जाए जिस से सम्पूर्ण वैदिक साहित्य (वेद, उपवेद, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, गृह्य सूत्र स्मृतियां, निरुक्त, निगण्ड, उपांग आदि) व उनके भाष्य जो भी उपलब्ध हों व अन्य मतावलम्बियों की मानवीय पुस्तकें आदि ग्रन्थ हों, रखे जायें। और इन के अनुसन्धानार्थ वैदिक विद्वानों को नियुक्त किया जाए। सन्यासी जो इस कार्य के लिए योग्य हों तो अत्युत्तम है।

धर्मेन्द्र गुप्त (नई दिल्ली)

टंकारा, मथुरा, अजमेर या दूसरी जगह के स्मारकों की वर्तमान स्थिति से मेरा असन्तुष्ट होना स्वाभाविक है क्योंकि स्वामी जी ने जिस विद्रोह और कठिन मार्ग को अपनाया था उस से विपरीत आज आर्यसमाज के कर्णधार सुविधा की स्थिति में अपने को स्थापित किए हुए हैं। इस समय आर्यसमाज प्रतिपक्ष की भूमिका नहीं निभा रहा है, न ही आर्यसमाज से ऐसी कोई प्रेरणा मिल रही है जिस से आज का नवयुवक समाज को बदल देने का साहस करे। आर्यसमाज के आसपास की स्थिति जड़ हो गई है। अतः स्मारक केवल ईंट-गारे के ढांचे मात्र रह गए हैं।

प्रताप सहगल (नई दिल्ली)

मैं महर्षि के स्मारकों से परिचित नहीं हूं, उन्हें मैंने देखा भी नहीं है। तब उनकी स्थिति से सन्तुष्ट या असन्तुष्ट होने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। हां, ऐसी गतिविधियां जरूर प्रारम्भ की जानी चाहिए, जिससे सामाजिक दृष्टि से कोई सार्थक कार्य हो सके। जैसे जातिवाद के खतरों से नवयुवकों को परिचित कराना, उन्हें अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति सचेत करना, बिना दहेज के विवाह के लिए सभी वर्गों को प्रेरित करना या ऐसी ही और कई गतिविधियां, चर्चाएं, सेमिनार या शपथ समारोह आयोजित किए जा सकते हैं। केवल इन्हीं स्थलों पर ही क्यों, यह काम आर्यसमाज चाहे तो कहीं भी कर सकता है।

प्रो० प्रभुशूर आर्य (जम्मू)

महर्षि दयानन्द के जन्म स्थान टंकारा, शिक्षा-दीक्षा स्थली मथुरा तथा निर्वाण स्थली अजमेर में स्मारकों का निर्माण हो चुका है परन्तु धीरे-धीरे यह स्थान ऐतिहासिक महत्त्व के न होकर मात्र श्रद्धा के द्योतक बन गए हैं। ऐसे स्थलों पर टंकारा की भांति उपदेशक विद्यालय आदि कोई ठोस कार्य करने वाला संस्थान खुलना चाहिए जिस से आर्यसमाज की विचारधारा के प्रचार-प्रसार में सहायता मिले। युवा वर्ग ठोस कार्य से ही आकृष्ट हो सकता है और जो समाज युवा शक्ति का सदुपयोग कर सकता है वही जीवित है और प्रगति कर सकता है। आर्यसमाज को आज फिर पं० लेखराम, महात्मा हंसराज, स्वामी श्रद्धानन्द जैसे समर्पित युवकों की आवश्यकता है।

प्रेमनाथ (दिल्ली)

अधिक स्मारक बनाने व्यर्थ हैं जबकि पूर्व से बने हुए बड़े-बड़े स्मारकों (यथा गुरुकुल कांगड़ी, डी० ए० वी० कालेज आदि) की अवस्था बहुत बिगड़ चुकी है। उनको तो हमें पहले सुधारना चाहिए।

डॉ० प्रशान्त कुमार (दिल्ली)

महर्षि दयानन्द का सम्बन्ध क्योंकि टंकारा, मथुरा और अजमेर से रहा है, अतः वहां स्मारक स्थापित किये जायें। यह विचार बेतुका ही महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों के विरुद्ध है। महर्षि दयानन्द समाज, राष्ट्र व विश्व में किसी क्रांति की अपेक्षा करते हैं। भौतिक स्मारकों का उनकी दृष्टि में कुछ भी महत्त्व नहीं।...पर यदि उनके अनुयायियों ने वहां कुछ काम आरम्भ किया है तो उनको सहयोग देकर उन के उद्देश्य को पूरा करने में हमें भी प्रयत्नशील होना चाहिए।

आर्यसमाज : आज के सन्दर्भ में

प्रह्लाददत्त वैद्य (दिल्ली)

कुछ बातें तो उपरोक्त प्रश्न के उत्तर से सम्बन्ध रखती हैं। परन्तु इन स्मारकों पर जितना ध्यान देने की आवश्यकता थी, उतना हम नहीं दे सके। शिक्षा केन्द्र स्थापित हों अर्थात् उन में ऋषि दयानन्द जी द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों पर आचरण हो। कला-कौशल यन्त्र आदि स्थापित हों अथवा छोटे-छोटे घरेलू धंधे जितने भी जहां सम्भव हो उन का निर्माण हो। जैसे गोशाला, जिनमें दुधारू गायों का प्रबन्ध हो, इस से शुद्ध दूध-घी की पैदावार हो सके। तीनों स्थानों पर आर्यसमाज के नियमों का पालन सर्वात्मना हो। इन स्मारकों में उच्चकोटि के शिक्षाविद् सज्जनों द्वारा आयुर्वेदिक औषधियों का अनुसन्धान और निर्माण हो। यह सब महर्षि के स्मारक स्थानों पर हो। इन कामों से जन-सम्पर्क बढ़ेगा, आर्यसमाज का प्रचार होगा, व किसी हद तक बेरोजगारी दूर होना सम्भव है।

पं० बिहारीलाल शास्त्री (बरेली)

महापुरुषों के जन्म स्थानादि का कोई मूल्य नहीं। परशुराम कहां जन्मे, याज्ञवल्क्य का जन्म कहां हुआ? गौतम, कपिल, कणादादि के जन्म स्थानों का पता हो या नहीं, उनके स्मारक तो उनके विचारग्रन्थ हैं। हमारा लक्ष्य ऋषि दयानन्द की विचारधारा है। उनके द्वारा की गई देश और समाज के लिए सेवा है। आगामी पीढ़ियां प्रेरणा लें। इसके लिए उच्चकोटि के विचारपूर्ण ग्रन्थ और आदर्श जन सेवा चाहिए।

भगवान चैतन्य (मण्डी)

टकारा, मथुरा तथा अजमेर तीनों स्थानों पर जो स्मारक बने हैं वे किसी भी रूप में सन्तोषप्रद नहीं हैं। ये तीनों ही स्थान देश-विदेश के लोगों के लिए एक विशेष आकर्षण का केन्द्र एवं महर्षि दयानन्द जी तथा प्रभुवाणी वेद का प्रचार-प्रसार करने वाले होने चाहिए। इसके लिए (१) टकारा में तो आर्ष विद्वानों के संरक्षण में ऐसे उपदेशक एवं प्रचारक तैयार किए जायें जो अपना समूचा जीवन वैदिक विचारधारा को जन-जन तक पहुंचाने के लिए समर्पित करें। आज ऐसे संस्थानों का अति अभाव है। यदि कहीं ऐसे संस्थान कार्यरत हैं भी तो वे केवल पुरोहित ही तैयार कर पा रहे हैं, उच्चकोटि के विद्वान् नहीं। अंग्रेजी तथा हिन्दी एवं संस्कृत वैदिक अन्य भाषाओं में भी ऐसे विद्वान् तैयार किए जाएं जो अपना समूचा जीवन देकर देश-देशान्तर में वैदिक धर्म का शंखनाद कर सकें। त्यागी और तपस्वी एवं ज्ञान गरिमा से मण्डित ऋषि के भिक्षु विधिवत् तैयार किए जायें तथा विधिवत् ही उन्हें उनकी विद्वत्ता आदि के आधार पर देश या विदेश में भेजा जाए।

(२) मथुरा में वेद एवं अन्य आर्ष ग्रन्थों के शोध कार्य के लिए एक विशाल संस्थान खोलने की आवश्यकता है ताकि आज के संदर्भ में भी वेदों की गरिमा को आंका जा सके तथा उन्हें अधिक व्यावहारिक स्तर पर भी प्रस्तुत किया जा सके। इसी स्थान पर (इस के लिए वैसे दिल्ली भी चुनी जा सकती है) आर्यसमाज का एक बहुत बड़ा प्रकाशन संस्थान होना चाहिए, जो एक विशेष समिति के अन्तर्गत कार्य करे तथा वे ही पुस्तक प्रकाशित की जा सकें जिन्हें समिति अपनी स्वीकृति प्रदान करे। अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं में सर्व साहित्य सुलभ हो।

(३) अजमेर में योग संस्थान खोलने की अति आवश्यकता है जहां पर योग-साधना आदि सिखाने की व्यवस्था हो। इस ओर आर्यसमाज ने बहुत कम ध्यान दिया है जबकि आज लोगों को सही योग जीवन पद्धति की आवश्यकता अनुभव हो रही है। वर्तमान वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में अनेक अनुसन्धान आदि किए जा सकते हैं। शारीरिक एवं आत्मिक उन्नति के लिए ऐसे संस्थान की परम आवश्यकता है।

डॉ० भवानीलाल भारतीय (चण्डीगढ़)

स्वामी जी के जीवन से संबन्धित तीनों स्थानों पर जो स्मारक रूप में में कार्य चल रहा है वह असन्तोषजनक है। समन्वित रूप से कोई योजना बना कर टकारा, मथुरा तथा अजमेर में सुनिश्चित कार्यक्रमों को पूरा किया जाना चाहिए।

मदनमोहन खोसला (नई दिल्ली)

स्थिति तीनों जगह निराशाजनक है। इन तीनों स्थानों पर भवनों का निर्माण होना चाहिए। वेदों के विशाल लेख होने चाहिए। स्वामी जी के जीवन पर्यन्त के प्रभावशाली चित्रों का संग्रह होना चाहिए। अजमेर में जो चित्र हैं वे प्रभावशाली नहीं हैं। सुन्दर यज्ञशाला हो जिस से लोग आकर्षित हों। जिस में दोनों समय हवन, सन्ध्या आदि हों। वहां पर विद्वान् पण्डितों की नियुक्ति होनी चाहिए जो लोगों को वेद पढ़ाएं। जो व्यक्ति बाहर के शहरों से भी आकर पढ़ना चाहें उन के ठहरने की व्यवस्था होनी चाहिए। छोटे बच्चों के लिए वैदिक धर्म की शिक्षा के स्कूल होने चाहिए जिस में उनकी संस्कृति का ज्ञान हो और बड़े होने पर वैदिक धर्म का प्रचार कर सकें। यह कार्य भवन निर्माण या उसके साथ ही साथ होने चाहिए।

डॉ० मण्डन मिश्र (नई दिल्ली)

टकारा, मथुरा एवं अजमेर में महर्षि दयानन्द जी की स्मृति में तीन वैदिक विश्वविद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए। जिन में प्राचीन परम्परा से अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था हो और विशेषकर वैदिक वाङ्मय पर शोध का प्रबन्धक हो।

मुलकराज भल्ला (चण्डीगढ़)

टकारा मैं गया नहीं, मथुरा में किसी स्मारक का मुझे पता नहीं, अजमेर में स्मारक नाममात्र को है। मेरे विचार में तीनों स्थानों पर बहुत बड़े स्मारक होने चाहिए। टकारा के विद्यालय का स्तर ऊंचा करना उचित है। उच्चकोटि के पुरोहित तैयार करने चाहिए। वहां पर हर साल उपदेशकों का रिफ्रेशर कोर्स हो तो अच्छे पुरोहित निकलेंगे। अजमेर में शताब्दी के बाद निर्वाण कोठी स्मारक स्थापित किया जाए। ऐसा सुन्दर हो कि हर अजमेर जाने वाला उसे देखे, जैसा कि दिल्ली आया हुआ हर मनुष्य बिरला मंदिर देखता है। मथुरा में हो सके तो अच्छा सा एजूकेशनल इंस्टीट्यूट बनाया जाए।

यशपाल वैद (अम्बाला शहर)

महर्षि दयानन्द सरस्वती के जन्म, शिक्षा दीक्षा और निर्वाण के स्थानों में स्मारकों की दशा से असंतुष्टि ही होती है क्योंकि स्मारक स्थल जहां होने चाहिए (वही स्थान विशेष) वहां न होकर कुछ आस-पास हैं अवश्य ही इन स्थानों के स्मारकों पर ऐसे उद्बुद्ध करने वाले (समय-समय पर) उत्सव मनाए जायें तो जन-मानस में सद्भावना का हो संचार होगा।

डॉ० रघुवीर वेदालंकार (दिल्ली)

टकारा, मथुरा तथा अजमेर इन स्थानों पर महर्षि के स्मारकों का रूप अधिक सुदृढ़ तथा व्यापक होना चाहिए। तीनों स्थानों पर महर्षि की प्रस्तर प्रतिमा (जैसी दिल्ली में स्वामी श्रद्धानन्द जी की है) तथा भव्यतम स्तूपों की स्थापना होनी चाहिए। स्तूपों पर महर्षि के जीवन की मुख्य घटनाएँ एवं शिक्षाएँ अंकित हों। मथुरा को प्रचार एवं प्रचारकों का ऐसा सशक्त गढ़ बनाया जाना चाहिए जैसा कि मुसलमानों का केन्द्र देवबन्द है। इस के लिए मथुरा में किसी उपदेशक विद्यालय की स्थापना भी की जा सकती है किन्तु वह विद्यालय दूसरे उपदेशक विद्यालयों से अलग ढंग का होना चाहिए। वहां नौकरी, उपाधि, गृहस्थ से अलग रहने वाले आर्यसमाज के प्रचारार्थ दीक्षा प्राप्त युवकों को ही प्रवेश दिया जाए जैसा कि रामकृष्ण मिशन में पढ़े लिखे बी० ए०, एम० ए० पास युवकों को दीक्षित कर बेलूरमठ में कई वर्षों तक मिशन के प्रचार की ट्रेनिंग दी जाती है। वहां से निकल कर वे आयुपर्यन्त सन्यासी प्रचारक के रूप में कार्य करते हैं। दूसरे उपदेशक विद्यालय आज उक्त कारणों के अभाव में अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सके। अजमेर में स्वामी जी का समस्त साहित्यिक उत्तराधिकार एवं उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा है। समस्त साहित्य के प्रचार-प्रसार का कार्य परोपकारिणी को करना चाहिए। सार्वदेशिक को तो देश-विदेश में आर्यसमाज के प्रचार प्रसार की विशाल योजना बनानी चाहिए। जबकि महर्षि के साहित्यिक प्रचार में भी इसे शक्ति लगानी पड़ती है। महर्षि के प्रकाशित तथा अप्रकाशित सभी साहित्य पर काम अपेक्षित है। हरिद्वार में एक स्तूप का निर्माण होगा। इसी प्रकार काशी, टकारा, मथुरा तथा अजमेर में भी भव्य स्तूपों का निर्माण हो।

राजकुमार कोहली (जम्मू)

टकारा, मथुरा तथा अजमेर में ऐसे भव्य स्मारक बनने चाहिए जो आर्यसमाज को न मानने वालों को भी आकृष्ट कर सकें। इस से आर्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में अवश्य सहायता मिलेगी।

प्रो० रामगोपाल (चण्डीगढ़)

कुछ वर्ष पूर्व मुझे मथुरा के विरजानन्द आश्रम में भाषण देने के लिए आमन्त्रित किया गया था। वहां की व्यवस्था देखकर मुझे बड़ा खेद हुआ। मथुरा में स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिक्षा स्थान पर एक अच्छे स्मारक के निर्माण की अत्यन्त आवश्यकता है और वहां पर वेदों के अध्ययन अध्यापन की भी सन्तोषजनक व्यवस्था होनी चाहिए जिस से आगामी पीढ़ियों को प्रेरणा मिल सके।

कु० विद्यावती आनन्द (नई दिल्ली)

इन स्मारकों की वर्तमान स्थिति से मैं संतुष्ट नहीं हूं। विदेशियों को तो क्या अधिकतर देशवासियों को भी पता नहीं कि इन स्थानों पर महर्षि के स्मारक हैं। इन स्थलों पर ऐसी गतिविधियां आरम्भ की जानी चाहिए जिन से आज का जनमानस और आगामी पीढ़ियां प्रेरणा ले सकें। इन स्मारकों में जीवन की चहल-पहल होनी चाहिए। विभिन्न भाषाओं में वेदों का सरल अनुवाद मिलना चाहिए। स्वामी दयानन्द द्वारा लिखित पुस्तकें व भाष्य उपलब्ध होने चाहिए। यज्ञ की महिमा का प्रचार होना चाहिए। स्वामी दयानन्द के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर चित्र प्रदर्शनी होनी चाहिए समय-समय पर यज्ञ का प्रबन्ध और आर्य साधु-संन्यासियों के समागम और प्रवचन होने चाहिए। आर्य साधु-संन्यासियों के निवास एव भोजन का प्रबन्ध होना चाहिए। तात्पर्य यह है कि यह स्थल आर्य जनता के लिए तीर्थ स्थल बन जाये। जो भी वहां जाये कुछ पाकर, प्रेरित होकर हृदय में श्रद्धा का सागर लेकर वापस लौटे।

विद्यानन्द सरस्वती

स्मारकों के नाम पर ईंट पत्थरों के भवन मात्र खड़े हुए हैं। वे सब निर्जीव हैं। मथुरा मे स्थित स्मारक को व्याकरण की शिक्षा का ऐसा केन्द्र बनाया जाये कि विश्वभर में ऐसी ख्याति हो जाए कि संस्कृत व्याकरण का सूर्य मथुरा मे निकलता है और उसी से विश्वभर को व्याकरण का प्रकाश मिलता है। टकारा में अन्तर्राष्ट्रीय उपदेशक विद्यालय से देशान्तरों से आने वाले उच्च शिक्षा प्राप्त युवको को शिक्षित किया जाये अथवा अपने देश के विद्वानों को संसार की भिन्न-भिन्न भाषाओं मे पारंगत करके प्रचारार्थ आजीवन भिन्न-भिन्न देशों में भेजा जाए। जब तक ऐसा सभव न हो तब तक उसे बन्द कर दिया जाये अथवा उसे 'ग्रामीण पुरोहित प्रशिक्षण विद्यालय' का नाम देकर चालू रखा जाए। अजमेर में केवल अनुसंधान और उच्चकोटि के साहित्य (संसार की मुख्य भाषाओं में) के प्रकाशन की व्यवस्था हो।

डॉ० वेदप्रताप वैदिक (नई दिल्ली)

मैंने केवल अजमेर का स्मारक लगभग २५ वर्ष पहले देखा था। वहां जाकर श्रद्धा से विभोर हो जाना तो स्वाभाविक ही था लेकिन ऐसा मुझे कुछ याद नहीं पड़ता कि जो उल्लेखनीय रूप से बहुत अच्छा लगा हो। शायद उसे फिर देखूं तो कुछ कह सकूं। फिर भी अगर यह कहूं तो गलत नहीं होगा कि महर्षि के तीनों स्मारक ऐसे होने चाहिएं कि वे देश में वैचारिक क्रांति के स्रोत बन सकें। तीनों स्मारकों में उपदेशक महाविद्यालय चलाए जा सकते हैं, आधुनिक गुरुकुल खोले जा सकते हैं, धर्मशास्त्रों, दर्शनशास्त्रों और समाजशास्त्रों पर शोध और अनुसंधान केन्द्र भी बनाए जा सकते हैं। तीनों स्थानों से अलग-अलग प्रकार के सस्ते साहित्य के प्रकाशन केन्द्र भी प्रारंभ किए जा सकते हैं।

वैद्यनाथ शास्त्री (बड़ौदा)

महर्षि के जितने स्मारक बनाए गए हैं उनका कार्य तनिक भी संतोषजनक नही है। कोई गतिविधि कहीं पर भी अनुरूप व विधिवत् नही है। इन में ऐसी गतिविधियां चालू की जानी चाहिए जिससे देश-देशांतर के लोग प्रेरणा ले सकें और आर्यसमाज के सिद्धांतों का प्रचार और प्रसार हो सके। हमारी आगे आने वाली पीढ़ी हमारी अकर्मण्यता और अव्यवस्था के लिए हमें कोसे नहीं। इन ट्रस्टों को सार्वदेशिक स्तर पर करना चाहिए, स्थानिक स्तर पर नहीं। एक ऐसी कमेटी सार्वदेशिक सभा के अन्तर्गत हो जिस मे देश-देशांतर की प्रतिनिधि सभाओं के प्रधानमन्त्री हों और कुछ विशेष व्यक्ति और विद्वान् सभा से मनोनीत हों। उस समिति के अधीन और निर्देशन एव व्यवस्था द्वारा को स्थानीय समिति कार्य करे। सब का संचालन एक ही जगह से हो। इन में उपदेशक विद्यालय, वेद और संस्कृत विद्यालय वैदिक साहित्य जिनका महर्षि ने वर्णन किया है उस के अध्ययन संस्थान, वैदिक शोध संस्थान सार्वदेशिक स्तर पर, महर्षि के सिद्धांतों का संरक्षण, प्रचारण और प्रसारण की व्यवस्था इन तीनो स्मारकों में की जाए। सब स्मारको की व्यवस्था एक हो जगह नहो बल्कि तीनो स्थानो मे बांट दी जाए।

सत्यदेव विद्यालंकार (नई दिल्ली)

मथुरा के स्मारक के बारे मे मैं चाहता हूं कि वहां अधिक ध्यान दिया जावे और कोई निश्चित गतिविधियां वहां प्रोत्साहित की जायें। टकारा ट्रस्ट जो कुछ टकारा में कर रहा है वह प्रशंसनीय है। इस ट्रस्ट द्वारा जितना भी कार्य हो सके, उसे प्रोत्साहित करना चाहिए। अजमेर में स्वामी जी का प्रेस और परोपकारिणी सभा है। इन्हें अत्यधिक सजीव बनाने से हो कुछ साहित्य सेवा हो सकेगी। शताब्दी समारोह के परिणामस्वरूप इन दोनों संस्थानों में प्रेरणात्मक भावनाएं पैदा करने का यत्न आवश्यक है।

डॉ० सहदेव वर्मा (पानीपत)

सच तो यह है कि केवल स्तम्भ, कमरा या भव्य भवन निर्माण से स्मारक बनने की भावना की पूर्ति नहीं हो सकती। प्रथम दो स्थानों पर तो स्मारकों का होना न होना समान सा ही है। अतः संतुष्ट होने का प्रश्न ही नहीं। अजमेर में कुछ गतिविधि अवश्य दृष्टिगोचर होती है किन्तु स्तरीय कार्य वहां भी नहीं।

होना यह चाहिए कि तीनों ही स्थानों पर उच्चस्तरीय शोध संस्थान स्थापित किये जायें जिनमें प्राचीन वाङ्मय, वैदिक साहित्य, ब्राह्मण ग्रन्थ, वेदाग, उपनिषद् आदि से लेकर रामायण महाभारत तक खोजपूर्ण कार्य करके देश विदेश में प्रामाणिक ढंग से उनका प्रचार-प्रसार किया जाये। मथुरा को इसका केन्द्र बनाया जा सकता है जबकि यह स्थान सर्वथा उपेक्षित है। प्राच्य विद्या का नवीनता से सामजस्य किया जाये।

सुदर्शन देव (शाहपुरा)

स्मारक तो इन तीनों स्थानों पर बनने हो चाहिए जो बन गए हैं वे उपयुक्त रूप में प्राणवान नहीं हैं। जब तक महर्षि दयानन्द के गौरव के अनुरूप नियन्त्रणकारी हलचलों, गतिविधियों का संचालन वहां से नहीं होता तब तक ऋषि सबंध वाले इन तथा जोधपुर एवं अजमेर के स्मृति न्यासों की तरह उनकी हालत भी खस्ता रहेगी। वे स्थान स्मृति पूरक मात्र होंगे। जब आरम्भ में ही कोई संस्थान अडियल बच्चे की तरह रहता है तो आगे उनसे किसी विशिष्ट उपलब्धि की आशा नहीं करनी चाहिए। इन स्थानों का ऋषि से सम्बन्धों के अनुरूप विकास होना चाहिए तभी वे वास्तविक ऋषि स्मारक होंगे। जैसे टकारा में बालकों, युवकों के उत्थान एवं संस्कार सबधी विभिन्न योजनाओं वाला विश्वविद्यालय हो, क्रीडा केन्द्र हो तथा उत्पादन एव शिल्प सम्बन्धी चरित्र आधारित शिक्षण प्रशिक्षण केन्द्र हों। समाज के कृषक व्यापारी एवं श्रमिक वर्ग में व्याप्त अनैतिकता अस्वस्थ्य एवम् आशका पूर्ण भविष्य के विपरीत वह आदर्श प्रवाहक स्रोत सिद्ध हों। मथुरा में साहित्यिक सामाजिक, तथा राजनैतिक क्षत्रो में क्रांतिकारी मानदण्ड स्थापित करने वाले निर्माण एव प्रचार केन्द्र हों। अजमेर मे वानप्रस्थ, सन्यासी, उपदेशक वर्ग का केन्द्रीय संस्थान हो ज आत्मकल्याण, आध्यात्म, धर्म, मोक्ष आदि का मंथन चिन्तन करे, साहित्य निर्माण करे एव धर्मान्तरण आदि रोकने तथा सच्चे वैदिक धर्म के मर्म का प्रसार करे।

डॉ० सुधीरकुमार गुप्त (जयपुर)

अब तक बने स्मारक निर्जीव हैं। उनका मुख्य योग कुछ मेले आदि करने तक सीमित है। वहां विशाल समृद्ध पुस्तकालय, शोध संस्थान उच्चस्तरीय वेदाध्ययनाध्यापन केन्द्र जनाभिरुचि और काल पर विजय पाने वाले साहित्य का निर्माण बालकों और युवकों में ईसाइयों आदि के समान निःशुल्क पाठ वितरण आदि कार्य किए जा सकते हैं। आर्यसमाज को वैदिक साहित्य को अपने विचारों के अनुकूल प्रस्तुत करना है। पर इसके लिए जो उदार दृष्टि और योग्यता आदि अपेक्षित है, उन का अब हम मे अभाव-सा व्याप्त हो गया है।

हरकिशन मलिक (दिल्ली)

मेरी दृष्टि में महर्षि के स्मारकों की स्थिति सन्तोषजनक नही है। इन में पौराणिक श्रद्धा का पुट अधिक है, वैदिक श्रद्धा का कम। मत्था टेकने की भावना अभी अनेक आर्यों के हृदयों से गई नहीं। महर्षि का वास्तविक स्मारक तो वही कहला सकता है जिस में अन्य महर्षियों का निर्माण करने की क्षमता हो और वह कोई आर्य गुरुकुल ही हो सकता है। मथुरा, अजमेर और टकारा के स्मारक केवल इसलिए बनाए गए थे कि उन स्थानो का महर्षि के जीवन से सम्बन्ध है। वहां आर्य जनता इस भावना से जाती है कि किसी प्रकार सम्भव हो तो दयानन्द के दर्शन कर लें, चरम चक्षुओं से न सही मानसिक चक्षुओं से ही सही। इसलिए इन स्मारकों का विकास भी इस ढंग से होना चाहिए कि वहां जाने वाला प्रत्येक व्यक्ति दयानन्द के मानसिक दर्शन की लालसा को पूरा कर सके और दयानन्द की शिक्षा का कुछ लाभ उठाकर घर लौटे। महर्षि के तीन कार्य अत्यन्त प्रिय थे—योग की शिक्षा, संस्कृत की उन्नति और वैदिक धर्म का मौखिक उपदेश। इन तीनों स्मारको में तीन कार्य निरन्तर चलते रहने चाहिए—(१) आर्ष पद्धति से योग की शिक्षा, (२) पण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु की रीति से प्रौढ व्यक्तियों के लिए संस्कृत शिक्षा, और (३) महर्षिकृत ग्रन्थों की व्याख्या रूप उपदेश। इन स्मारको पर वर्ष भर

(शेष पृष्ठ ६ पर)

समाचार

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का आर्यसमाजों को निर्देश

समस्त आर्य समाजों को सूचित किया जाता है कि पंजाब शरणार्थी समस्या के सहायतार्थ जो आर्य जन तथा आर्यसमाजें धन दें, वह सीधे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के नाम पर चैक, बैंक ड्राफ्ट अथवा मनीआर्डर से भेजें।

क्योंकि कई समाजों से कई प्रकार की शिकायतें आ रही हैं कि कुछ व्यक्ति पंजाब समस्या के नाम पर झूठ बोलकर धन मांग कर ले रहे हैं। उनसे सावधान रहकर ऐसे तत्वों को सभा के नाम धन न दें। और सभा को भी सूचित करें।

स्वामी आनन्द बोध सरस्वती
प्रधान
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

आर्य शिक्षक सम्मेलन

नई दिल्ली, २८ सितम्बर रविवार आर्यसमाज अमर कालोनी में दक्षिण दिल्ली वेद प्रचार मण्डल के तत्वावधान में आर्य शिक्षक सम्मेलन का आयोजन किया गया। जिसमें आर्यसमाज के चिन्तन से प्रभावित शिक्षकों-शिक्षिकाओं ने भारी संख्या में भाग लिया। सर्वश्री तिलकराज, एच० बी० डुंगा, सुशील कुमार आर्य, राम सवेरा, राजसिंह वर्मा व शिक्षिकाओं में श्रीमती विमला रानी, सुधा सिंह, सरला पाल आदि ने छात्रों व छात्राओं में वैदिक धर्म के मूल्यों, चरित्र निर्माण व नैतिक शिक्षा देने के सुझाव रखे। श्री नरेन्द्र अवस्थी पत्रकार ने आर्यसमाज की प्रत्येक क्षेत्र में निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिका का उल्लेख करते हुए मण्डल को जोरदार ढंग से नैतिक शिक्षा के प्रचार का अभियान चलाने का आह्वान किया। श्री हृदयबन्धु लाल कोहली ने सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए वर्तमान चुनौतियों में शिक्षकों के दायित्व पर बल दिया। श्री पुरुषोत्तम लाल शास्त्री ने समूचे कार्यक्रम का संचालन किया व भावी कार्यक्रम पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए धर्मशिक्षा की अनिवार्यता के महत्त्व को समझाया।

पुरुषोत्तम लाल शास्त्री,
महामन्त्री
दक्षिण दिल्ली वेद प्रचार मण्डली

स्त्री आर्यसमाज हनुमान रोड, का ६४ वां वर्षिकोत्सव हर्षोल्लास, उत्साहपूर्वक चेतना, प्रेरणा से सम्पन्न

स्त्री आर्यसमाज हनुमान रोड, का ६४ वां वार्षिकोत्सव २६।६।१६८६ को प्रात: १२ से सायं ५ बजे तक सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। जिसमें यज्ञ, कविता, भजन, गीत, बच्चों का शिक्षाप्रद रंगारंग कार्यक्रम वेदोपदेश तथा आधुनिक युग में नारी के कर्तव्यों पर चिन्तनशील उपदेशों द्वारा चिन्तन किया गया।

श्रीमती आशा बहन के संरक्षण में यज्ञ श्रद्धापूर्वक किया गया और ओ३म् की व्याख्या श्रीमती प्रकाशवती बुग्गा ने की। रघुमल आर्य कन्या विद्यालय की छात्राओं ने नैतिक शिक्षा पर अत्यन्त मनमोहक कार्यक्रम प्रस्तुत किया जिससे प्रभावित होकर बहनों ने छोटी छोटी बच्चियों को भरपूर धनराशि भेंट की। डा० चन्द्रप्रभा, सरलापाल, कृष्णा चड्ढा, विद्यावती मरवाह, आशा वर्मा, कृष्ण रसवन्त, भजनमण्डली ने मधुर भजनों द्वारा समां बांध दिया।

महिला सम्मेलन श्रीमती शकुन्तला की अध्यक्षता में बड़े ही रोचक तथा प्रभावोत्पादक शैली से आधुनिक युग में नारी के कर्तव्यों की चर्चा की गई। जिसमें सरला महता, सुशीला आनन्द, डा० शशी प्रभा तथा उषा शास्त्री के विचार हृदयग्राही तथा प्रभावशाली रहे, तथा उनका चिन्तन था कि समय स्थिति के अनुरूप यदि आज नारी अपने दायित्व को नहीं समझेगी तो राष्ट्र की इस समय जो अधोगति हो रही है, उसकी सुरक्षा करना असम्भव हो जाएगा। हमें अपने अतीत के गौरव को समझकर समकालीन परिस्थितियों का सामना नई विधाओं द्वारा करना होगा। तभी वर्तमान से जूझकर भविष्य का का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। नारी निर्मात्री है, उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में निर्माण करना होगा। पुष्पा जी आहूजा ने वैदिक साहित्य द्वारा अतिथियों का सम्मान किया मन्त्रिणी ने दूरदराज से आई बहनों का आभार प्रकट किया।

प्रकाश आर्या (मन्त्रिणी)

आर्यसमाज गाँधीनगर का वार्षिकोत्सव

आर्यसमाज गाँधीनगर दिल्ली का वार्षिकोत्सव १३ से १६ अक्टूबर तक धूमधाम से मनाया जा रहा है। इस अवसर पर १३ अक्टूबर से श्री प० जैमिनी शास्त्री की कथा तथा श्री गुलाबसिंह एवं श्री वेदव्यास के भजन होंगे। उत्सव में पधारने वाले महानुभाव स्वामी आनन्द बोध सरस्वती, श्री क्षितीश वेदालंकार जैमिनी शास्त्री, सरस्वत मोहन मनीषी, स्वामी स्वरूपानन्द, श्री सूर्यदेव, डा० धर्मपाल, श्री जयप्रकाश आर्य होंगे। विशेष कार्यक्रम शनिवार १८ अक्टूबर को रात्रि ८ बजे से सम्मेलन, १६ अक्टूबर को प्रात: यज्ञ की पूर्णाहुति एवं समापन समारोह। वेदकथा रात्री ८ से १० तक होगी।

मन्त्री–
शिवशंकर गुप्ता

अशोक विहार स्त्री समाज का वेद प्रचार समारोह

आर्य स्त्री समाज अशोक विहार फेज-१ का दस दिवसीय वेद प्रचार समारोह भव्यतापूर्वक सम्पन्न हुआ। गत वर्षों की भांति स्त्री आर्यसमाज अशोक विहार के तत्वावधान में इस बार भी ११।६।८६ से २०।६।८६ तक वेदप्रचार समारोह पारिवारिक रूप से मनाया गया। क्षेत्र के विविध ब्लाकों में आदरणीय श्रीमती प्रेम शील जी की अध्यक्षता मे भक्ति रस से सामवेद सरोवर के मन्त्रों द्वारा किए गए यज्ञ में प्रतिदिन भारी संख्या में उपस्थित बहिनों ने आत्मतोष प्राप्त किया। साथ ही भावपूर्ण भक्ति गीतों से भी सभी को आनन्द विभोर किया। इस समारोह में सर्वश्रीमती उषा शास्त्री, शकुन्तला दीक्षित, शान्ति देवी जी आचार्या एवं श्रीमती प्रेमशील जी महेन्द्र व श्री पृथिवीराज शास्त्री जी व सच्चिदानन्द जी शास्त्री ने बारी-बारी से अपने वेद प्रवचनों से अनुगृहीत किया।

आर्य समाज किशनगंज के नव निर्वाचित अधिकारी

आर्यसमाज किशनगंज के नवनिर्वाचित अधिकारी—

प्रधाना : श्रीमती प्रीतम देवी तुली
उपप्रधान : श्री चमनलाल मदान
उपप्रधाना : श्रीमती शांति देवी शर्मा
मंत्री : श्री जे० पी० पाठक
कोषाध्यक्ष : श्री प्रेम कुमार गांधी

भवदीय
जे० पी० पाठक (मंत्री)

सम्पादक के नाम पत्र

मैं आर्यसन्देश का काफी प्रशंसक रहा हूं। यह पत्रिका वास्तव में आर्य सिद्धान्तों के अनुकूल है तथा मार्गदर्शक है परन्तु मैं इसके अनियमित आने से दुःखी हूं। १२ पृष्ठों से ८ पेज करने तथा विशेषांक न छापने ( ) ऐसा लगता है कि आप को आर्य विद्वानों के प्रशंसा-पत्र मिलने से मनमर्जी करने की इच्छा हो गई या फिर कोई और कारण है जो हमारी समझ से बाहर है।

—रघुराज आर्य
पो० गारुलिया, परगना ४ बंगाल

(पृष्ठ ३ का शेष)

में एक दो दिन का मेला रख देने के बदले वर्ष भर देश के कोने-कोने से यथाक्रम आर्य गृहणियों की टोलियां भेजी जायें। प्रत्येक टोली महीना डेढ महीना ठहर कर योग सीखे, संस्कृत पढे और मौखिक उपदेश सुने। इस कार्यक्रम को अपनाने से भारत के घर-घर में वैदिक ज्ञान का प्रकाश हो सकेगा और इस प्रक्रिया से उपदेशक स्वयमेव तैयार होते चलेंगे। मथुरा के स्मारक में पूरा अष्टाध्यायी तथा सम्पूर्ण महाकाव्य पढाने का भी विशेष प्रबन्ध रहना चाहिए जिस से कि प्रौढ़ जिज्ञासु अपनी संस्कृत विद्या को प्राप्त करने की भूख मिटा सकें। इस प्रकार से यह स्मारक केवल दर्शनीय स्थान न रहकर वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार का प्रबल माध्यम बन सकते हैं। अजमेर में परोपकारिणी सभा का कार्यालय है। उस सभा का कार्य अपना अलग है। मेरे उपरोक्त कथन से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। ●

॥ ओ३म् ॥

चलो चलें वाराणसी, करें ऋषि गुणगान।
देखें काशी के सभी, दर्शनीय स्थान॥

आर्यों का कुम्भ मेला

मातृ मन्दिर आर्य कन्या गुरुकुल

वाराणसी का

रजत जयन्ती समारोह

मेले का आयोजन

आपको जानकर हर्ष होगा कि सभा से सम्बद्ध मातृ मन्दिर कन्या गुरुकुल का रजत जयन्ती समारोह २४, २५, २६ अक्तूबर १९८६ को बड़े धूमधाम के साथ वाराणसी में आयोजित किया गया है। इस अवसर पर भाग लेने के लिए आर्य जनता की सुविधार्थ दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा विशेष बसों की व्यवस्था की गई है। इन बसों मे यात्रियों को लखनऊ, नैगीसार, विश्वनाथ मन्दिर, सारनाथ, अयोध्या, बनारस, प्रयाग, कानपुर, एटा के सभी दर्शनीय ऐतिहासिक स्थान देखने का भी अवसर मिलेगा। यह बसें निम्न कार्यक्रमानुसार २१ अक्तूबर को दिल्ली से चलकर २८ अक्तूबर १९८६ को वापस लौटेंगी।

आप निम्न स्थानों पर १८५/- रुपये प्रति यात्री के हिसाब से धन जमा कराकर यथाशीघ्र सीटें आरक्षित करा लें।

१. आर्यसमाज दीवान हाल, दिल्ली ६	दूरभाष :	२३७४४०
२. आर्यसमाज चूना मण्डी, पहाड़गंज, नई दिल्ली	"	७७९६१४
३. श्री नेतराम शर्मा, ए० ७/६, कृष्णनगर, दिल्ली	"	२१३४८३
४. डा० धर्मपाल, ए०/एच० १६, शालीमार बाग, दिल्ली	"	७१११६७१
५. श्री ओमप्रकाश आर्य, माता चन्नमदेवी आर्य धर्मार्थ नेत्र चिकित्सालय, सी-१, जनकपुरी, नई दिल्ली-५८	"	५५३१४३ ५५१३८८
६. डा० जगन्नाथ, एफ १/१७, कृष्णनगर दिल्ली-५१	"	२१३८४०
७. श्री रामशरण दास आर्य, ओ-१७ बी. जंगपुरा विस्तार, नई दिल्ली	"	३०१०२६/३३०
८. श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती, सभा कार्यालय, १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली-१	"	३१०१५०

आर्य बस यात्रा का विस्तृत कार्यक्रम

प्रस्थान :	पहुंच :
२१।१०।८६ सायं ५ बजे दिल्ली से (नैगीसार)	२२।१०।८६ प्रातः ५ बजे लखनऊ
२३।१०।८६ प्रातः ५ बजे लखनऊ से (अयोध्या)	सायं ३ बजे बनारस
२४।१०।८६ प्रातः ८ बजे बनारस से विश्वनाथ मंदिर, सारनाथ, अमेठी	सायं बनारस
२५-२६ बनारस	
२७।१०।८६ प्रातः ५ बजे बनारस से	प्रातः ८ बजे प्रयाग
२७।१०।८६ दोपहर १२ बजे प्रयाग से	सायं ५ बजे कानपुर
२८।१०।८६ प्रातः ५ बजे कानपुर से गुरुकुल एटा होते हुए	सायं ७ बजे दिल्ली

नोट—कार्यक्रम में परिवर्तन तथा सीट संख्या देने का अधिकार व्यवस्थापक का होगा। एक बार आरक्षित कराई गई टिकट वापस नहीं होगी। आधी सवारी को सीट नहीं मिलेगी। निवास एवं भोजन का प्रबन्ध आर्यसमाजों की ओर से होगा। जहां आर्यसमाज मे प्रबन्ध न होगा, यात्री भोजन अपने व्यय से करेंगे। सीट आरक्षित की राशि केवल मार्गव्यय है।

निवेदक :

सूर्यदेव (प्रधान) — डा० धर्मपाल (महामन्त्री)

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा (पंजीकृत)
१५ हनुमान रोड, नई दिल्ली-११०००१
फोन : ३१०१५०

संगम विहार कालौनी (देवली) में नवीन आर्यसमाज की स्थापना

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री श्री रामशरणदास आर्य एक लगनशील कर्मठ कार्यकर्ता हैं। दक्षिण दिल्ली की सभी आर्यसमाजों में वैदिक धर्म प्रचारार्थ जागृति कराते रहते हैं। श्री रामशरण दास आर्य ने संगम विहार के सभी आर्य जनों को संगठित करके आर्यसमाज का नव-निर्माण कराया है, जिसमें श्री राजकुमार जी सिंघल ने चालीस हजार का एक प्लाट आर्यसमाज को दान में दिया। साथ ही ११ बोरा सीमेंट, रेता, बदरपुर, ईंट देने का वचन दिया। श्री लखीराम कटारिया प्रधान आर्यसमाज साकेत वालों ने ११००) सौ रु० आर्यसमाज को दान दिया श्री हरवसलाल कोली, प्रधान दक्षिण दिल्ली वेद प्रचार मण्डल २५१) रु० दान दिये, श्रीमती सरला पाल ने २५१)रु० दान दिये. श्री राम शरण दास आर्य ने १०१) रु० दिये।

साप्ताहिक ओ३म् कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
आर्य सन्देश

वर्ष १० : अंक ४७ | रविवार १९ अक्टूबर, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ | आश्विन २०४३ | दयानन्दाब्द—६१
मूल्य . एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश मे ५० डालर, ३० पौंड

मातृ मन्दिर वाराणसी रजत जयन्ती समारोह

२४ अक्तूबर से २६ अक्तूबर तक अनेक सम्मेलन

मातृ मन्दिर कन्या गुरुकुल वाराणसी का रजत जयन्ती समारोह २४ अक्तूबर से २६ अक्तूबर तक सम्पन्न होने जा रहा है। इस अवसर पर भारतवर्ष के विशिष्ट वैदिक विद्वान्, साधु-सन्यासी, आर्य नेता पधार रहे हैं। जिन में स्वामी आनन्द बोध सरस्वती, स्वामी ओमानन्द, स्वामी सत्यप्रकाश, स्वा० सर्वानन्द जी, स्वामी विवेकानन्द, आचार्य वात्स्येन, डा० भवानीलाल भारतीय, डा० कपिलदेव, प्रो. राजाराम शास्त्री, प्रो० कैलाशनाथ सिंह, श्री सूर्यदेव, श्री डा० धर्मपाल आर्य, के० देवरत्न आर्य, प्रो० वेदव्यास, डा० पुष्पावती, सुपर्णा यति, श्रीमती सरला मेहता आदि अनेक विद्वान् एवं गण्यमान्य जन पधार रहे हैं।

मातृ मन्दिर को सस्थापना के पीछे एक दिव्य स्वप्न था कि वैदिक सस्कृति के आधार पर राष्ट्र का पुर्ननिर्माण किया जाये। इसके लिए [illegible]न आर्ष शिक्षा का माध्यम वरण किया गया। प्राचीन अर्वाचीन शिक्षा के केन्द्र वाराणसी की यह संस्था श्रेष्ठ एवम् उन्नत सस्थाओं में से एक है। अपने रजत जयन्ती काल तक इस सस्था ने राष्ट्र और आर्य जगत् के लिए उल्लेखनीय योगदान दिया है। इस शुभ अवसर पर अनेक योजनाए एवं रचनात्मक कार्य प्रारम्भ किये जा रहे हैं—(१) वैदिक शोध सस्थान को स्थापना, (२) वेद मन्दिर का निर्माण, (३) योगाश्रम का सचालन, (४) आर्य महिला विश्वविद्यालय को दिशा में ठोस कार्यक्रम, (५) ग्रामीण प्रचार को बढ़ावा, (६) सस्कृत प्रचार समिति को अधिक सुदृढ़ करना, (७) वैदिक शोधात्मक गवेषणाओं के लिए २५ हजार तक की पुरस्कार योजना, (८) ग्राम साक्षरता एवं कल्याण योजना का प्रचलन, (९) देश की एकता और अखण्डता व शान्ति के लिये अभियान। इसके साथ अनेक अन्य योजनाएं एवं कार्यक्रम जिससे वैदिक धर्म के लिये प्रभावपूर्ण कार्य किया जा सके।

विविध कार्यक्रम

रजत जयन्ती के विविध कार्यक्रम १ अक्तूबर से ही प्रारम्भ हो गये थे जिनमें चतुर्वेद पारायण यज्ञ तथा अनेक वैदिक विद्वानों द्वारा वेद प्रवचन आदि शामिल हैं। इस अवसर पर ध्यान योग, योग चिकित्सा एवं योगासन का भी शिविर आयोजित किया गया। २२ अक्तूबर को वेद गोष्ठी, २४ अक्तूबर को खुला अधिवेशन प्रारम्भ होगा। उद्‌घाटन समारोह २५ अक्तूबर को महिला सम्मेलन, आर्य सम्मेलन तथा २६ अक्तूबर को राष्ट्र रक्षा सम्मेलन तथा विद्वान् गोष्ठी आदि के कार्यक्रम सम्पन्न होंगे।

गुरुकुल की ओर से बाहर से आने वाले समस्त अतिथिगणों के भोजन एवं निवास की उचित व्यवस्था की गई है।

बस व्यवस्था दिल्ली से

दिल्ली से आर्य प्रतिनिधि सभा १५ हनुमान् रोड से वाराणसी जाने के लिए बसों की व्यवस्था की गई है। सभा कार्यालय में स्वामी स्वरूपानन्द या कार्यालय सचिव से बस सीट बुक करा सकते हैं। सम्पर्क दूरभाष ३१०१५० को भी सहायता के लिए प्रयोग करें।

यात्रा विवरण

बसें दिल्ली से २१ अक्तूबर से चलकर नेगीसार होकर २२ अक्तूबर को ५ बजे लखनऊ पहुंचेंगी, लखनऊ से अयोध्या बनारस। २४ अक्तूबर को बनारस से विश्वनाथ मंदिर, सारनाथ, अमेठी आदि के दर्शनीय स्थल देखकर सायं बनारस आयेंगी। २७ अक्तूबर को बनारस से प्रयाग, कानपुर, गुरुकुल एटा होती हुई २८ अक्तूबर तक दिल्ली पहुंचेंगी।

महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस

१ नवम्बर प्रातः ८ बजे से

रामलीला मैदान, नई दिल्ली

गत वर्षों की भाँति इस बार भी महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस रामलीला मैदान, नई दिल्ली में सम्पन्न होगा। कार्यक्रम प्रातः ८ बजे यज्ञ से प्रारम्भ होगा। ९.३० बजे ध्वजारोहण तथा विराट् सभा का आयोजन किया गया है जिसमें राष्ट्रीय नेता एवं संन्यासी विद्वान् तथा आर्यनेता पधार कर सम्बोधन करेंगे। समस्त आर्यसमाजों एवम् आर्य सस्थाओ से निवेदन है बस आदि के द्वारा भारी सख्या में पहुंचकर कार्यक्रम को सफल बनायें।

—अशोक सहगल

आर्यसमाज का इतिहास

आवश्यक निवेदन

बड़े आकार के सात-सात सौ पृष्ठों के सात भागों में आर्यसमाज का विस्तृत इतिहास सम्पादित व प्रकाशित करने की जो योजना हम ने बनाई थी, उसके पांच भाग अब प्रकाशित हो चुके हैं। छठा भाग लिखा जा रहा है और मई १९८७ तक वह भी प्रकाशित हो जायेगा। सातवें भाग की सामग्री अब एकत्र की जा रही है। इस भाग में अन्य विषयों के अतिरिक्त उन विद्वानों, उपदेशकों, साधु-सन्यासियों, दानियों और कर्मठ कार्यकर्ताओं का परिचय भी दिया जायेगा, जिनके कर्तृत्व व प्रयत्न से आर्यसमाज का इतना अधिक विकास व विस्तार हुआ है। पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी, पण्डित लेखराम, महात्मा हंसराज, महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द), महात्मा नारायण स्वामी, पण्डित आर्यमुनि और श्री क्षेमकरण त्रिवेदी

(शेष पृष्ठ ३ पर)

प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल | व्यवस्थापक—डा० गणेशीलाल | सम्पादक—पं० यशपाल सुधांशु एम० ए०

प्रेरक प्रसंग

प्रस्तोता—सत्यानन्द आर्य

: १ :

काषाय वस्त्र, सिर पर पगडी, हाथों में डडा और और कधो पर चादर डाले, स्वामी विवेकानन्द (शिकागो) अमेरिका की सडको से गुजर रहे थे। उनकी यह वेशभूषा अमेरिका निवासियो के लिए कौतूहल की वस्तु थी। पीछे पीछे चलने वाली एक महिला ने अपने साथ के पुरुष से कहा—"जरा इन महाशय को तो देखो-कैसी अनोखी पोशाक है!"

स्वामी जी को समझते देर न लगी कि ये अमेरिका निवासी उनकी भारतीय वेशभूषा को हेय नज़रों से देख रहे हैं। वे रुके और पीछे पीछे आने वाली उस भद्र महिला को सम्बोधित कर बोले—"बहन! मेरे इन कपडों को देखकर आश्चर्य मत करो। तुम्हारे इस देश में कपडे ही सज्जनता की कसौटी हैं पर जिस देश से मै आया हूँ, वहां सज्जनता की पहचान मनुष्य के कपडो से नही उसके चरित्र से होती है।"

: २ :

कविश्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर साम्प्रदायिक एकता के कट्टर समर्थक थे। परन्तु दुर्भाग्यवश कलकत्ते मे जिन दिनो साम्प्रदायिक तनातनी फैली हुई थी, उन्ही दिनो "रक्षा बन्धन" का पर्व आ गया। वे साथियो के साथ गगा स्नान करने गये। लौटते समय सब को राखी बाधते हुए आने लगे। रास्ते मे कुछ मुसलमान सईसो को देखा। वे उनके निकट गये और राखी बाधी। अपने साथियों को कल्पना के विपरीत सारे सईस बिगडने के बजाय कवि से गले मिले। उसके बाद रवि बाबू ने चितपुर की बडी मस्जिद मे जाकर मौलवियो को राखी बांधने की इच्छा प्रकट की। लोगों को अब दगा होने मे कोई सदेह नही रहा। उनके अनेक साथी इधर उधर खिसक गये। परन्तु कवि ने सभी मौलवियों को राखी बाधी और मौलवियो ने उनके पैर छुए।

: ३ :

प्रेमचन्द जी बडे हंसमुख और जिंदादिल व्यक्ति थे। यही नहीं, उनकी हंसी भी बडी सक्रामक होती थी। उनके सम्पर्क मे रहने वाला कोई भी व्यक्ति स्मानमुख नही रह सकता था। २३-२४ वर्ष पहले की बात है, प्रयाग विश्वविद्यालय की साहित्य-परिषद द्वारा वे अध्यक्ष पद के लिए बुलाये गये। आने के साथ ही उन्होंने सर्वत्र उन्मुक्त हास्य बिखेर दिया—कहकहे बरसने लगे। तभी एक छात्र ने उनसे पूछा—'आपकी सब से बडी अभिलाषा क्या है? हंसी के ठहाकों के बीच ही प्रेमचन्द बोले—'मेरी सब से बडी अभिलाषा यही है कि भगवान मुझे सदैव मनहूसों से बचाए रखें। मनहूसियत से मेरा दम घुटने लगता है।"

: ४ :

"जीवन क्या है?" एक जिज्ञासु के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महात्मा टाल्स्टाय ने एक कहानी सुनाई—

'एक बार एक यात्री जगल पथ से जा रहा था। अचानक एक जगली हाथी उसकी ओर झपटा। बचाव का अन्य कोई उपाय न देख वह रास्ते के एक कुए मे कूद पडा कुए के बीच मे एक बरगद का एक मोटा पेड था। यात्री उसी का तन्तु पकडकर लटक गया।

कुछ देर बाद उस की दृष्टि कुए मे नीचे की ओर गई कदाचित् वहां त्राण की कोई सूरत दीख जाए किन्तु वहा तो साक्षात् मौत ही खडी थी विकराल मगर उसके नीचे टपकने को बाट जोह रहा था। भय कम्पित निरुपाय आंखे ऊपर पेड पर गई देखा शहद के एक छत्ते से बूद बूंद मधु टपक रहा था। स्वाद के सामने वह भय को भूल गया। उसने टपकते हुए मधु की ओर बढकर अपना मुह खोल और तल्लीन होकर बूंद बूद मधु पीने लगे लगा।

"लेकिन यह क्या? उसने साश्चर्य देखा, वट तन्तु के जिस मूल को पकड कर वह लटका हुआ था, उसे एक सफेद और काला चूहा कुतर-कुतरकर काट रहे थे।"

जिज्ञासु की प्रश्नसूचक मुद्रा देख महात्मा टाल्स्टाय ने कहा-"नही तुम? वह हाथी काल था, मगर मृत्यु था मधु जीवन-रस था और काला तथा सफेद चूहा दिन-रात इन सबका सम्मिलित नाम ही जीवन है।"

: ५ :

इस जगत् में अगर मैं किसी से प्यार करता हूँ, तो वह है मेरी मां, जिसने अपनी तमाम सांसारिक यंत्रणाओं के बीच भी मेरे प्रति ममतामयी बनी रहकर मुझे सम्पूर्ण मानव जाति को प्यार करना सिखाया।

उसका सारा जीवन कष्टमय रहा है। मेरा मंझला भाई जब से घर छोडकर निकला है, मां का हृदय विदीर्ण हो गया है। मेरा सबसे छोटा भाई इस योग्य नहीं दिखता कि वह चलाने लायक कुछ सन्तोषजनक उपार्जन कर सके और अपने सब से प्यारे बेटे को, जिसे वह अपना एक-भरोसा समझती, ईश्वर और मानव-जाति की सेवा में अर्पित कर दिया।

मैंने अपनी मां का समुचित ध्यान नही रखा। अब मेरी एक अन्तिम इच्छा है, कि मैं शेष समय मां के साथ उसकी सेवा सुश्रूषा में लगाऊं। इससे निश्चय ही मेरे और माँ के अन्तिम दिन सहजता में बीतेगे।

श्री शकराचार्य को भी ठीक यही करना पडा था। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में वे मां के पास लौट गये थे। मैं भी जीवन के शेष दिन मां के साथ उस की सेवा मे गुजारना चाहता हूँ। (जयपुर के महाराज अजीतसिंह को लिखे स्वामी विवेकानन्द के एक पत्र का अंश)

: ६ :

उस समय नेताजी सुभाष जर्मनी में थे। भारत में अंग्रेज सरकार उनके विषय में तरह तरह की अजीबोगरीब बातें उडा रही थी। अक्सर अंग्रेजों के पत्र यह समाचार उडा देते थे कि सुभाषचन्द्र बोस का तो अमुक दुर्घटना में देहान्त हो गया।

एक बार जब उन्होंने एक भारतीय अखबार में ऐसी खबर पढी, तो वे काफी गम्भीर हो गए और उनके नेत्रों से आंसू बहने लगे। उनके एक साथी ने उत्सुकता से पूछा—"अरे तो इन झूठी खबरों से आप दहल गये। आप तो यहाँ अच्छे भले मौजूद हैं।"

नेता जी ने साथी के कंधों पर हाथ रखते हुए कहा—"हां मैं तो यहां अच्छा खासा हूँ लेकिन मेरी मौत की खबर सुनकर मेरी मां कैसा महसूस करती होगी, यही सोचकर मेरी आखें भर आई।"

: ७ :

एक दिन रवीन्द्रनाथ टैगोर अपने शिष्य अभय के साथ प्रात. टहलने निकल पडे। मार्ग में यत्र तत्र काटे व ककड पडे थे, किन्तु दोनों निश्चिन्त भाव से नगे पाव चले जा रहे थे। अभय ने उनसे पूछा—"आज मुझे नीद नहीं आई। मैं बहुत दुःखी हूँ, कुछ भी तो समझ में नही आता कि क्या करूं।"

गुरुदेव ने प्रश्न किया—'तुम्हारे का क्या कारण है?" शिष्य ने व्याकुल होकर निवेदन किया 'गुरुदेव, जब एक समय ऐसा आयेगा कि सभी आत्माओं को इस जीवन मरण से छुटकारा मिल जायेगा, तब क्या होगा?'

प्रश्न सुनकर गुरुदेव कुछ गम्भीर हो गये, बोले—"वत्स तुम्हारा प्रश्न भविष्य से सम्बन्ध रखता है. और भविष्य अनादि है, अक्षय है। वह रहस्यपूर्ण है। यह संसार बडा विशाल है। इस की गति का कोष अपार है। इसका न आदि है न अन्त। यह पूर्ण है। परिवर्तन ही इसका प्रमुख गुण है। एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा।" इस संभावना में भ्रम है, अज्ञान है जो हमारी इन्द्रियों की पूर्ण रक्षा करता है। हम वर्तमान में सन्तोष प्राप्त करें। बाकी सब कुछ तो रहस्य है।"

: ८ :

एक बार राजेन्द्र बाबू ने देखा कि उनकी पुस्तक के पन्ने फटे हुए हैं। समझ गये, बच्चों का काम है। मगर अपराधी बनाकर उनसे सच्ची बात कहलवाना कठिन था। फिर भी सच्चाई जानकर बच्चो को सबक देना चाहते थे। वही उपाय सोचते रहे। आखिर सूझ गया। हसते हुए बच्चों से बोले—"जिसने इस पुस्तक के जितने पन्ने फाड़े हैं, उसे उतने पैसे दिये जायेंगे।" सब ने खुशी-खुशी बढ़चढ़कर बताया। सच्चाई सामने आ गई। पैसे दे दिये गये, मगर गलती करने वाले बच्चों को सबक भी दे दिया कि यह काम ठीक नहीं।

आंधियों के साथ हे अग्नि, तुम आओ

—डा० रामनाथ वेदालकार

अभी उस दिन नगर में आग लग गई। क्षण भर में सब कुछ स्वाहा हो गया। जिस ने देखा उसके मुख पर यही था कि बहुत बुरा हुआ, करोड़ों की हानि हो गई। पर यह क्या ? मैं तो अग्नि को निमन्त्रण देकर बुला रहा हूं और वह भी अकेले अग्नि को नहीं किन्तु आंधियों के साथ।

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥

ऋग् १।१९।१

"आंधियों के साथ हे अग्ने, तुम आओ, मेरे सुन्दर यज्ञ में। गौओं की रक्षा के लिये मैं तुम्हें पुकार रहा हूं।" हां, मेरे पास गौएं हैं, मैं उनका गोपाल हूं। उन को रक्षा करनी है, उन्हें खाई-खड्ड में गिरने से बचाना है। पर आंधियों के साथ अग्नि आयेगी तो गौओं की रक्षा कैसे होगी। वे जल-झुलस नहीं जायेंगी क्या ? नहीं, यहां तो सभी कुछ विलक्षण है। आंधिया सामान्य आंधियाँ नहीं हैं, अग्नि भी सामान्य अग्नि नहीं है, यज्ञ भी सामान्य यज्ञ नहीं है और गौएं भी सामान्य गौएं नहीं हैं।

यह मेरा जीवन ही यज्ञ है जैसा कि उपनिषत्कार ने कहा है—"पुरुषो वे यज्ञः"। उसे हिंसा रहित होना चाहिए, यही सूचित करने के लिये उसका नाम "अध्वर" है। मेरे इस यज्ञ की गौएँ हैं मेरी इन्द्रियां। वे अच्छे-बुरे सब प्रकार के सांसारिक विषयरूपी चरागाहो की ओर भागती हैं। कुविषयों की ओर जाने से उन्हें रोकना है क्योंकि उस मार्ग में विनाश है, खाई-खड्डे हैं, जिन मे गिरकर वे लूली-लगडी हो जायगी, निस्तेज हो जायेंगी। इसके लिये मैं "अग्नि" को पुकारता हू। अग्नि हैं तेजोमय प्रभु। वे आकर अपने तेज को एक चिंगारी मेरे अन्तः करण मे गिरा दे, उसे ज्वाला का रूप दे लूंगा मैं अपनी प्राणरूप आंधियो से। जब वह अग्नि प्रज्वलित होगी तब उसके आलोक से सब इन्द्रिया आलोकित हो उठेंगी और कुमार्ग में जाने से बच जायेंगी। इसीलिये मैं पुकार रहा हूँ—हे अग्नि, तुम प्राणों की आंधियों के साथ मेरे जीवन यज्ञ मे आओ।

समाज-संगठन भी एक यज्ञ है। उसे भी "अध्वर" अर्थात् हिंसा-रहित होना चाहिए। यदि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की हिंसा में या उसे हानि पहुंचाने में लगा रहेगा तो समाज की उन्नति कैसे हो सकेगी। समाज की बहुत-सी गौएं हैं जिन की रक्षा करनी अभिप्रेत है। "गौ" शब्द सब शुभ, पवित्र, स्पृहणीय वस्तुओं तथा शक्तियों का प्रतीक है। वेदवाणी, शिक्षा, बुद्धि, विवेकशीलता, सच्चाई, ईमानदारी, त्यागमयता, धार्मिकता, प्रेमभावना, सहृदयता, सज्जनता, क्षमाशीलता, वीरता, पवित्रता, समृद्धि आदि की गौएं समाज मे रहती हैं। इन गौओं से समाजरूपी यज्ञ को पोषण तथा बल प्राप्त होता है। इन गौओं का दूध और घृत समाज को प्राप्त न हो तो समाज दुर्बल, अशक्त और निस्सार हो जाये। पर अनेक विरोधी शक्तियां इन गौओं को समाज से छीनना चाहती हैं। वे विरोधी शक्तियां हैं—स्वार्थपरता, चोरी, भ्रष्टाचारिता, द्वेषभावना आदि। इन विरोधी शक्तियों को परास्त करने तथा गौओं की रक्षा करने के लिये आवश्यकता है अग्नि तथा आंधी की। समाज के सदस्यों के अन्दर दृढ संकल्प, उत्साह और प्रबल भावना की अग्नि प्रदीप्त होनी चाहिए। साथ ही आंधी भी आनी चाहिए। आज समाज से चोर-बाजारी, भ्रष्टाचार आदि दूर इस कारण नहीं हो रहे हैं क्योंकि उनके विरोध की आंधी नहीं उठ रही। आंधी उठनी चाहिए इस बात की कि इन दुर्गुणों को हमे समाज से समाप्त करना है और समाज की जो पूर्वोक्त गौएं हैं उन को रक्षा करनी है। जब आंधी उठेगी, वातावरण वैसा बनेगा तब प्रत्येक व्यक्ति के हृदय और वाणी मे इन त्रुटियों को समाप्त करने की ही बात होगी। उस समय इन बुराइयों को करने का किसी का साहस ही नहीं होगा। इसलिये मैं पुकारता हूं—हे अग्नि, समाज यज्ञ का गौओं की रक्षा के लिये तुम आओ, आंधियों के साथ आओ।

तीसरे, राष्ट्र भी एक यज्ञ है। वह भी "अध्वर" है क्योंकि उसका लक्ष्य किसी की हिंसा करना या हानि पहुंचाना नहीं है। उसकी अनेक भूमियां ही गौएँ हैं, जिनकी आक्रामक शत्रु से रक्षा करनी अभीष्ट है। इस के लिये भी "अग्नि" तथा "आंधियों" की आवश्यकता है। आंधी या "मरुत्" वीर सैनिक हैं क्योंकि वे आंधियों के समान शत्रु पर टूटते हैं। "अग्नि" है सेनापति—अग्निर्वै देवानां सेनानी.। अतः हम राष्ट्रभूमि रूपी गौओं की रक्षार्थ सैनिक रूपी झंझावातों के साथ सेनानी रूपी अग्नि को पुकारते हैं—

ये महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥

ऋग् १।१९।३

जो विशाल भूमण्डल के कण-कण की जानकारी रखते हैं, सब के सब साक्षात् देव हैं, राष्ट्र से द्रोह या विश्वासघात न करने वाले हैं, उन वीर सैनिकों के साथ हे सेनानी, तुम आओ।

य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥

ऋग् १।१९।४

जो उग्र हैं, जो "सूर्य" को आदर्श रूप में पूजते हैं, जो ओज के कारण अपराजेय हैं, उन वीर सैनिकों के साथ हे सेनानी, तुम आओ।

ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥

ऋग् १।१९।५

जो शुभ्र-चरित्र हैं, घोर रूप वाले हैं, सच्चे क्षत्रिय हैं, हिंसक शत्रु को खा जाने वाले हैं, उन वीर सैनिकों के साथ हे सेनानी, तुम आओ।

आंधियों के साथ हे अग्नि, तुम आओ। तुम्हे हम अपने जीवन मे, तुम्हें हम अपने समाज मे, तुम्हें हम अपने राष्ट्र मे उत्सुकता के साथ पुकार रहे हैं॥ □

(पृष्ठ ३ का शेष)

आर्यसमाज का इतिहास

सब आर्य नेताओ व विद्वानों का सचित्र परिचय तो इस भाग में दिया ही जायेगा, पर साथ ही उन दानियों तथा कर्मठ कार्यकर्ताओं का परिचय भी हम देना चाहेंगे, जिनके प्रयत्न से हजारों आर्य शिक्षण-संस्थाएँ (गुरुकुल, डी ए वी. स्कूल व कालेज, कन्या विद्यालय आदि) स्थापित हुईं और हजारों की सख्या मे आर्य-समाज मन्दिरों का निर्माण हुआ। हमारा प्रयत्न होगा कि किसी भी आर्य सन्यासी, विद्वान्, साहित्यकार कवि, उपदेशक, पुरोहित और कार्यकर्ता का परिचय इस भाग में प्रकाशित होने से न रह जाये।

पर इस महत्त्वपूर्ण कार्य को हम आर्य बन्धुओं की सहायता व सहयोग से ही सम्पन्न कर सकते है। आप से सानुरोध निवेदन है कि आपके परिचय मे जो भी ऐसे नर-नारी हो, जिनके पुरुषार्थ से आर्यसमाज का उत्कर्ष हुआ, उनकी फोटो (संक्षिप्त परिचय के साथ) हमे शीघ्र भिजवा दें। ये चित्र बढ़िया आर्ट पेपर पर छपेंगे और छपाई के लिये ब्लाक बनवाने, आर्ट पेपर और छपाई पर सौ रुपये व्यय हो जायेंगे। हम अपेक्षा रखते हैं कि आप यह राशि भी हमें भिजवाने की कृपा करें। आर्यसमाज के कर्णधारों, दानियों व कर्मठ कार्यकर्ताओं की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिये यह एक उत्तम साधन है। हमें विश्वास है कि आपका सहयोग हमे अवश्य प्राप्त होगा ताकि सात भागो मे आर्यसमाज के इतिहास को प्रकाशित करने के अपने संकल्प को हम शीघ्र पूरा कर सकें।

भवदीय
सत्यकेतु विद्यालंकार
व्यवस्थापक, आर्य स्वाध्याय केन्द्र
ए-१/३२, सफदरजंग एन्क्लेव
नई दिल्ली-२९

आर्यसमाज अनारकली का वार्षिकोत्सव

१० नवम्बर से १६ नवम्बर तक

डी० ए० वी० की मुख्य आर्य-समाज अनारकली मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली का वार्षिकोत्सव १० नवम्बर से प्रारम्भ होकर १६ नवम्बर तक चलेगा। १० नवम्बर से आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार द्वारा १५ नवम्बर तक रात्रि वेद कथा तथा प्रात यजुर्वेद पारायण यज्ञ होगा। १६ नवम्बर को पूर्णाहुति एव विशेष समारोह होगा। समस्त कार्यक्रमो में आप सादर आमन्त्रित हैं।

निवेदक
रामनाथ सहगल

राष्ट्रीय संगठन की कड़ी—

हिन्दी भाषा

—डा० प्र० विद्यासागर
हिन्दी प्रोफेसर हैदराबाद

भारत एक विशाल देश है। उत्तर मे दक्षिण तक इसकी लम्बाई लगभग दो हजार मील है और पूर्व से पश्चिम तक यह लगभग दो सौ मील का विस्तृत प्रदेश है। इस देश में प्रारम्भ से ही अनेक भाषाए बोली जाती रही है प्राचीन काल में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाए बोली जाती थी। प्राकृत और अपभ्रंश स्थानीय बोलिया थी जिनके अनेक भेद थे, पर इस विभिन्नता में संस्कृत सब को संगठित करने वाले सूत्र का काम करती थी। प्राकृत और अपभ्रंश बोलने वाले संस्कृत समझ लेते थे, चाहे वे संस्कृत बोल न सकते थे। स्थिति ठीक वैसी थी जैसे आजकल बहुत से लोग अंग्रेजी समझ लेते हैं पर बोल नही पाते। इसीलिए संस्कृत नाटकों में जनसाधारण अपनी बोलियों का प्रयोग करते थे और राज पुरुष ब्राह्मण एव विद्वान् लोग संस्कृत का प्रयोग करते थे। महाराजा शिवा जी के काल तक सारे राजकाज का माध्यम संस्कृत थी, यद्यपि मराठी, गुजराती, बगाली, हिन्दी, उर्दू एवं दक्षिण मे तेलुगु, तमिल मलयालम एव कन्नड भाषाए विलोन हो चुकी थी। धार्मिक कार्य-कलाप विवाह-संस्कार आदि संस्कृत के माध्यम से आज भी सम्पन्न होते है। इसी कारण विभिन्न भाषा भाषी रहन सहन, खानपान वेशभूषा की विभिन्नता के होते हुए भी देश में सांस्कृतिक एव भावात्मक एकता विद्यमान थी और उस एकता की वाहक संस्कृत भाषा थी।

भारत में मुसलमानों के आगमन के बाद यह संगठनात्मक सूत्र टूटने लगे और अंग्रेजो ने तो इसे छिन्न भिन्न कर दिया। लार्ड मेकाले की कृपा से नई शिक्षा नीति से अंग्रेजी का वर्चस्व बढ गया। लोग रग से तो नही वेशभूषा एव विचारो से अंग्रेज बन गए। उनका अपनी संस्कृति से भी सम्बन्ध टूटने लगा। फिर भी देश को एकता के सूत्र मे बाधने का कार्य हिन्दी ने सम्पन्न किया। अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतन्त्रता आन्दोलन मे यद्यपि पहले अंग्रेजी चलाई गई पर गाधी जी के आने के बाद मच से हिन्दी का प्रयोग होने लगा। उनके पूर्व भी ऋषि दयानन्द, केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय आदि ने राष्ट्रीय एकता के लिए एव स्वतन्त्रता आन्दोलन को जन आन्दोलन बनाने के लिए हिन्दी को ही स्वीकार किया। इसी के परिणाम स्वरूप स्वतन्त्रता आन्दोलन जन आन्दोलन बन सका, जबकि इसके पूर्व वह केवल कुछ अंग्रेजी पढे लिखों का ही मच था। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, सुभाष चन्द्र बोस, सरदार भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद ने हिन्दी के माध्यम से ही आजादी की भावना जन-जन में फूंकी। फलतः १९४७ में देश आजाद हुआ। यह कहना कि अंग्रेजी से एकता आई यह नितान्त भ्रामक प्रचार है। जिस अंग्रेजी के समझने वाले आज भी ५% से अधिक नहीं वह कैसे एकता की वाहक बन सकती थी। हिन्दी ने ही आंदोलन शक्ति दी। इसीलिए ऋषि दयानन्द महात्मा गांधी ने हिन्दी के प्रचार एव प्रसार को राष्ट्र सेवा समझा। ऋषि दयानन्द से प्रेरणा पाकर गुरुकुलों में १९०१ से ही हिन्दी माध्यम से शिक्षा दी जाने लगी एवं महात्मा गांधी ने सुदूर दक्षिण से मद्रास में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा को स्थापना की एव वर्धा में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को प्रारंभ किया।

भाषा, जाति सम्प्रदाय, धर्म को प्रमुखता न देते हुए राष्ट्र को सर्वोपरि मानकर देशवासियों में प्रेम-सौहार्द एव राष्ट्र प्रेम का विकास करना हमारा कर्तव्य है। स्वहित की अपेक्षा राष्ट्रहित की भावना को उन्नत करने से ही देश को सर्वांगीण उन्नति हो सकती है। जिस राष्ट्र में यह राष्ट्रीय संगठन होता है, वह राष्ट्र सदा विजयी होता है। उस के लोग देश के विकास के लिए एव राष्ट्र की रक्षा के लिए सदा तत्पर रहते हैं। इन भावना के विकास के लिए विभिन्न भाषा भाषी इस भारत देश में परस्पर विचारों का आदान प्रदान होना आवश्यक है, जिसके लिए एक भाषा का माध्यम होना जरूरी है। एकता की इस कड़ी का काम हिन्दी हो कर सकती है क्योंकि इसके समझने वाले देश मे सर्वाधिक हैं। इनकी संख्या ८५% से अधिक है। अंग्रेजी यह कार्य कदापि नही कर सकती क्योंकि शिक्षा के इतने प्रचार के बाद भी अंग्रेजी बोलने वाले ५% से अधिक नही हैं। सरकार का सारा कार्य जब देश की भाषाओं में होगा तभी जनसाधारण का भला हो सकता है। इसीलिए भारतीय भाषाओं का विकास आवश्यक है।

संसार के हर राष्ट्र की अपनी भाषा हैं जो उन उन राष्ट्रों में शिक्षा एवं प्रशासन का माध्यम हैं। इसी कारण वे राष्ट्र सर्वांगीण उन्नति कर रहे हैं। हमारे देश में एक भ्रामक विचार का प्रचार बहुत ज्यादा है कि "अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है।" इसमे बडा झूठ ससार में कहीं नहीं सुना जाता। अपने दस वर्षीय विदेश प्रवास के अनुभवों के आधार पर मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि अंग्रेजी भाषा किसी भी राष्ट्र में न शिक्षा का माध्यम है, न प्रशासन का। इन की बात दूर अंग्रेजी किसी भी देश में आवश्यक भाषा के रूप में भी नहीं पढाई जाती। जिस की इच्छा हो, वह एक वैकल्पिक विषय के रूप में इस भाषा को पढ़ सकता है। बर्लिन के हुम्बोल्ट विश्वविद्यालय में जहां मैं हिन्दी का प्रोफेसर था। वहां के १५०० छात्रों में अंग्रेजी पढ़ने वाले १५० छात्र थे। बाजार में, दफ्तरों में, सर्वत्र जर्मन भाषा में ही काम होता है। जनसाधारण अंग्रेजी न बोलते हैं न समझते हैं। डाक्टरी, इंजीनियरिंग आदि की समस्त शिक्षा का माध्यम जर्मन भाषा ही है। उन के अपने पारिभाषिक शब्द हैं। वहां कोई अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली नही चलती। अंग्रेजी में निकलने वाली हर पुस्तक का तुरन्त १-२ मास में जर्मन अनुवाद हो जाता है। क्या जर्मन राष्ट्र किसी राष्ट्र से पीछे है?

इसी प्रकार रोमानिया में जहां मैं बुखारेस्ट विश्वविद्यालय में ७ वर्ष तक हिन्दी पढाता रहा, वहा भी समस्त शिक्षा-दीक्षा एव सरकारी कामकाज रोमन भाषा में ही होता है अंग्रेजी मे नहीं। रोमानिया में तीन भाषा सूत्र चलता है। इसका कारण वहा तीन भाषाभाषी निवास करते हैं। हंगेरियन, जर्मन एव रोमन। हर प्रदेश का व्यक्ति अपनी भाषा में शिक्षा प्राप्त करता है साथ ही रोमन भाषा अनिवार्य रूप से पढ़ता है। इसके अतिरिक्त किसी तीसरी भाषा का वह ऐच्छिक रूप से अध्ययन करता है। विश्वविद्यालयों में चौथी भाषा का भी पठन-पाठन संभव है जिसमें हिन्दी, संस्कृत, जर्मन चीनी, जापानी, सिंहली, बंगाली, अरबी, फारसी तात्पर्य यह है कि संसार की किसी भी भाषा को छात्र सीख सकता है। पर शिक्षा एवं प्रशासन का कार्य रोमन भाषा मे ही होता है।

इसी प्रकार रूस में २३ भाषाएं बोली जाती हैं। अपनी भाषा के साथ-साथ वह रूसी जरूर सीखता है, जो कि वहां की राष्ट्रभाषा है, तथा अन्य किसी भी संसार की भाषा को अपनी इच्छानुसार चुनकर सीख सकता है। राष्ट्र का सारा कार्य रूसी में ही होता है और अन्तप्रान्तीय व्यवहार के लिए रूसी अनिवार्य है जो कि २३ भाषाभाषी देश को एकता के सूत्र में बाधती है। प्रान्तों का कार्य स्थानीय भाषाओं में होता है।

यूरोप एवम् अरब देशों के कुल २४ देशों के भ्रमण मे मैंने यह देखा कि हर देश का समस्त कार्य, शिक्षा-दीक्षा, हर देश की अपनी भाषा में ही होता है। किसी भी देश में विदेशी भाषा शिक्षा या प्रशासन का माध्यम नहीं है। यह तो दिमागी गुलामी की निशानी है।

किसी राष्ट्र की स्वतन्त्रता के चार चिह्न हैं—१. राष्ट्रीय झण्डा, २ राष्ट्र गीत, ३. राष्ट्र भाषा, तथा ४. राष्ट्रीय संविधान। जिस राष्ट्र में राष्ट्रभाषा शिक्षा एवं प्रशासन का माध्यम नहीं, वह पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं होगा। अंग्रेजी में शिक्षा एवं प्रशासन होने से भारत पूर्णतया स्वतन्त्र राष्ट्र नहीं है और आजादी के बाद अंग्रेजी का प्रयोग घटने के बजाय बढ रहा है। ऐसी भी सम्भावना है कि अंग्रेजी को ही राष्ट्रभाषा का दर्जा दे दिया जाये। जिस के लिए अंग्रेजी के प्रचार-प्रसार के लिए करोड़ों रुपये खर्च हो रहे हैं। इसी कारण हमारी समृद्ध भाषाएँ हिन्दी, तेलुगु, तमिल, मराठी, गुजराती, बंगाली भाषाएं पिछड़ रही हैं।

भाषा प्रयोग से समृद्ध होती है। यह कहना कि हिन्दी या भारतीय भाषाएँ जब समृद्ध हो जायेंगी तब उन्हें सरकारी कामकाज में लाया जायेगा, हास्यास्पद है। यह ऐसे ही है जैसे कोई कहे कि मैं तब नदी या तालाब में कूदूंगा, जब तैरना आ जायेगा। पर जब तक कूदेगा नहीं, तैरना नहीं आता। इसी प्रकार जब तक भारतीय भाषाओं में काम प्रारंभ

राष्ट्रीय संगठन की कड़ी—हिन्दी भाषा

नहीं होगा, ये भाषाएँ समृद्ध नहीं होंगी। प्रयोग में आने पर ही नये-नये शब्द व मुहावरों का निर्माण होने लगता है। एक समय अंग्रेजी भी समृद्ध नहीं थी, पर जब अंग्रेजों ने दृढ़ संकल्प किया कि हम अपने देश से फ्रेंच और जर्मन का वर्चस्व हटा कर अंग्रेजी का प्रयोग करेंगे, तभी वह आज एक समृद्ध भाषा बन गई।

ब्रिटिश द्वीप समूह में भी सर्वत्र अंग्रेजी नहीं बोली जाती। इंग्लैण्ड में अंग्रेजी है पर आयरलैंड में आयरिश, स्काटलैण्ड में स्काटिश एवं वेल्स में वेल्श भाषाएँ बोली जाती हैं।

बीस किलोमीटर दूर इंग्लिश चैनल पार करने पर फ्रांस में फ्रेंच भाषा चलती है कोई अंग्रेजी नहीं बोलता। इसी प्रकार डेनमार्क में डेनिश, स्वीडन में स्वीडिश, चेकोस्लोवाकिया में चेक, पोलैण्ड में पोल भाषाएँ बोली जाती हैं और उसी में कार्य होता है। इटली में इटालियन, स्पेन में स्पेनिश में ही सारा कार्य सम्पन्न होता है। स्विटजरलैंड में तीन भाषाएँ हैं। जर्मनी से लगने वाले प्रदेश में उत्तर में जर्मन भाषी हैं, फ्रांस से लगने वाली सीमा के प्रदेश में फ्रेंच और इटली से लगने वाली सीमा पर इटालियन बोली जाती है। वहां के सारे नागरिक तीन भाषाएं सीखते हैं। उसी में सारा कार्य होता है। इजरायल देश द्वितीय महायुद्ध के बाद अस्तित्व में आया। वहां हिब्रू में ही सारा कार्य होता है। जब कि उसके पहले हिब्रू को मृतभाषा कहा जाता था। प्रयोग में आने से वह एक जीवित भाषा बन गई है।

दो सौ वर्षों के अंग्रेजी राज के बाद भी आज भी भारत में ५ प्रतिशत लोग ही अंग्रेजी जानते हैं। ९५ प्रतिशत लोग उसे समझते नहीं। जनसाधारण तक अपनी बात पहुंचाने के लिए, राष्ट्र में विज्ञान, शिक्षा, व्यापार-व्यवसाय के विकास लिए सारे देश में एक भाषा का ज्ञान अनिवार्य है। इसीलिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाया गया है। पर ३६ वर्ष बाद भी हम विदेशी भाषा को अपनाये हुए हैं यह शर्म की बात है।

मुझे अपने प्रवास में एक प्रश्न का सामना कई बार करना पड़ा। वह प्रश्न है—"क्या भारत की कोई अपनी भाषा नहीं जो वहां शिक्षा एवं सरकारी काम अंग्रेजी में होता है? क्यों भारतीय आपस में अपनी भाषा में बातचीत नहीं करते? वे क्यों अंग्रेजी में बोलते हैं और उसमें गर्व अनुभव करते हैं?" अतः जरूरी है कि हम अपनी भाषाओं का प्रयोग करें। प्रान्तों में सारा काम प्रान्तीय भाषाओं में हो, केन्द्र का सारा काम हिन्दी एवं अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार भी हिन्दी में हो, भाषा संस्कार ने देश में भावात्मक एकता की वृद्धि के लिये त्रिभाषा सूत्र का विकास करने की बात कही है वह सर्वथा उपयुक्त है। मातृभाषा, राष्ट्रभाषा हिन्दी और कोई एक विदेशी भाषा सीखनी चाहिए। जिनकी मातृभाषा हिन्दी हो उन्हें हिन्दी मातृभाषा के साथ ऐक अन्य भारतीय भाषा सीखनी चाहिऐ। अच्छा होगा उत्तर भारतीय लोग दक्षिण की किसी ऐक भाषा को सीखें जिससे देश में ऐकात्मता उत्पन्न होगी। इसी से सरकार के हर कार्य का परिचय जनसाधारण तक पहुंच सकता है। विदेशी भाषा को शिक्षा ऐवं प्रशासन के माध्यम के रूप में प्रयुक्त नहीं करना करना चाहिऐ। हिन्दी से राष्ट्र में आपस में सम्पर्क होगा और ऐकता की भावना बढ़ेगी।

जब हम अपनी भाषाओं का प्रयोग करेंगे, ऐक दूसरे की भाषा सीखेंगे एवं सारा राष्ट्र हिन्दी को सीखेगा तभी किसी भी प्रांत का व्यक्ति अन्य प्रांतों में जाकर अपने विचार उन तक पहुंचा सकेगा। इस से हम विचारों का आदान-प्रदान, तीर्थयात्रा, सांस्कृतिक उन्नति ऐवं राष्ट्रीय उन्नति कर सकते हैं। यह काम अंग्रेजी नहीं कर सकती। हमारे देश के हर प्रांत का आपस में व्यापार-वाणिज्य होता है। अतः हिन्दी ही उन्हें जोड सकती है। वह संगठन की कड़ी बन सकती है। हिंदी को समझना भी सरल है क्योंकि समस्त भारतीय भाषाओं की सामान्य शब्दावली संस्कृत से भरपूर है। पहले संस्कृत भाषा ऐकता की वाहक थी। अब हिन्दी ही वह कार्य कर सकती है। विभिन्नता में ऐकता हिन्दी के द्वारा ही सम्भव है। यदि हम में राष्ट्रीय भावना हो।

शिक्षा में भी प्रथम स्थान मातृभाषा को दिया जाना चाहिऐ फिर हिन्दी को तदनन्तर विदेशी भाषा को। पर भारत में क्रम उल्टा चल रहा है। भारतीय बच्चों को संस्कृत के श्लोक या अच्छी सूक्तियां सिखाने के बजाय अंग्रेजी की कविताएं ही रटायी जाती हैं।

प्रायः कहा जाता है कि तीन भाषाओं का बोझ छात्र के लिये अधिक है। पर यह बात गलत है। शिक्षाशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि बालक ५ से २० वर्ष तक की अवस्था तक कई भाषाएं आसानी से सीख सकता है। मनोविज्ञान भी कहता है कि बच्चा मातृभाषा माता-पिता या पडोस से सीख जाता है फिर उसे हिन्दी का वातावरण मिलना सरल है तो वह उसे भी जल्दी सीख जाता है। पर विदेशी भाषा का ज्ञान कठिन है। जब छात्र मातृभाषा और हिन्दी सीख ले और उस पर अधिकार प्राप्त कर ले तो वह भाषा की बारीकियों से परिचित हो जाता है। परिणामत किसी अन्य भाषा को भी वह आसानी से सीख सकता है।

अपनी सर्वाङ्गीण उन्नति के लिये मातृभाषा का ज्ञान प्रथम, राष्ट्रीय उन्नति ऐवं ऐकता के लिये ऐवं सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक विचारों के आदान-प्रदान के लिये हिन्दी का ज्ञान आवश्यक है। आज कोई राजनेता अखिल भारतीय राजनेता बनना चाहे तो उसे भी हिन्दी आनी चाहिऐ, वरना ९५ प्रतिशत भारतीय उसकी बात समझेंगे ही नहीं।

१९६१ में डा० राधाकृष्णन् ने राष्ट्रीय ऐकता परिषद् के अपने अभिभाषण में कहा था— "राष्ट्रीय ऐकता को ईंट-पत्थर और छैनी-हथौडों से तैयार नहीं किया जा सकता। यह तो दिलों और दिमागों में चुपचाप उत्पन्न होकर विकसित होती है। यह प्रक्रिया केवल शिक्षा की प्रक्रिया है। यह ऐक धीमी प्रक्रिया है पर स्थायी और दृढ प्रक्रिया है।"

अत शिक्षा राष्ट्रीय ऐकता को विकसित करने का महत्त्वपूर्ण साधन है। उसका काम हमारे दृष्टिकोण को व्यापक बनाना और ऐकता, राष्ट्रीयता, बलिदान और सहिष्णुता की भावनाओं को विकसित करना है ताकि संकीर्ण भावनाएं समाप्त होकर देश का हित प्रमुख हो जाये। इस राष्ट्रीय संगठन के लिये हिन्दी का विकास ऐवं प्रयोग आवश्यक है तभी देश के ७० करोड निवासी अपनी समस्याओं से परिचित होकर राष्ट्र को सर्वाङ्गीण उन्नति कर सकते हैं।

ऋषि मेला १९८६

सदा की भांति इस वर्ष भी ऋषि मेला दिनांक ७, ८ व ९ नवम्बर, १९८६ शुक्रवार, शनिवार व रविवार को ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर में सोल्लास मनाया जायेगा।

दिनांक ५ से सामवेद पारायण यज्ञ प्रारम्भ होगा। यज्ञ का समय प्रात ७ बजे से ९ बजे तथा सायं ४ बजे से ६ बजे तक रहेगा। इस अवसर पर आगन्तुक विद्वान् महानुभावों तथा प्रतिष्ठित भजनोपदेशकों के वेदोपदेश, भजन एवं प्रवचन होंगे। यज्ञ की पूर्णाहुति दिनांक ९ को प्रातः १० बजे सम्पन्न होगी।

इस मेले में आर्यजगत् के मूर्धन्य संन्यासी स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती, स्वामी सत्यप्रकाश जी सरस्वती तथा श्री डा० सत्यदेव जी, डा० भवानीलाल जी भारतीय चण्डीगढ आदि विद्वानों के प्रवचन तथा प्रसिद्ध भजनोपदेशकों के भजनोपदेश होंगे सभी धर्मप्रेमी बन्धु सादर सपरिवार आमन्त्रित हैं। निवास व भोजन की निःशुल्क व्यवस्था ऋषि उद्यान में रहेगी।

अपने शुभागमन की सूचना परोपकारिणी सभा कार्यालय में अवश्य देवें।

निवेदक
प्रो० धर्मवीर शास्त्री

वार्षिक चुनाव १९८६

आर्यसमाज पश्चिम पुरी का वार्षिक चुनाव सम्पन्न हुआ जिस में निम्नलिखित पदाधिकारी मुख्य रूप से चुने गये—

प्रधान : श्री राजभरत मिनोचा
उपप्रधान श्री ओमप्रकाश नलवाड
(वरिष्ठ) श्री वेद प्रकाश मल्होत्रा
उपप्रधाना श्रीमती सुशीला देवी
मन्त्री . श्री सतीश आर्य
कोषाध्यक्ष . श्री ज्ञानचन्द जी

सतीश आर्य
मन्त्री

समाचार

संगम विहार कालोनी (देवली) में नवीन आर्यसमाज की स्थापना

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री श्री रामशरणदास आर्य एक लगनशील कर्मठ कार्यकर्ता हैं। दक्षिण दिल्ली की सभी आर्यसमाजों में वैदिक धर्म प्रचारार्थ जागृति कराते रहते हैं। श्री रामशरण दास आर्य ने सगम विहार के सभी आर्य जनों को सगठित करके आर्यसमाज का नव-निर्माण कराया है, जिसमें श्री राजकुमार जी सिंघल ने चालीस हजार का एक प्लाट आर्यसमाज को दान मे दिया। साथ ही ११ बोरा सीमेंट, रेता, बदरपुर, ईंट देने का वचन दिया। श्री लखीराम कटारिया प्रधान आर्यसमाज साकेत वालों ने ११००) सौ रु० आर्यसमाज को दान दिया श्री हरवसलाल कोली, प्रधान दक्षिण दिल्ली वेद प्रचार मण्डल २५१) रु० दान दिये, श्रीमती सरला पाल ने २५१) रु० दान दिये, श्री राम शरण दास आर्य ने १०१) रु० दिये। सभी लोगों ने आर्यसमाज के लिए दान दिया और प्रसन्नता पूर्वक धन्यवाद किया।

प्रचार वाहन द्वारा कार्यक्रम रखा गया

सगम विहार कालोनी सभा के प्रचार वाहन द्वारा ३ व ४ अक्तूबर १९८६ को प्रचार कार्यक्रम रखा गया जिस मे पण्डित सत्यदेव स्नातक रेडियो कलाकार, प० वेदव्यास आर्य आर्य प्रचारक, पं० चुन्नीलाल सगीतज्ञ, प० जोतीप्रसाद ढोलकवादक, प० ओमवीर शास्त्री और स्वामी स्वरूपानन्द वेद प्रचार अधिष्ठाता ने प्रचार कार्य को सफलता पूर्वक सम्पन्न कराया। यहा पर प्रचार की अच्छी व्यवस्था बनाई गई थी। शामियाना लगाया गया, स्टेज को शोभायमान बनाया एव बिजली के न होने पर गैस (हण्डो) का ठीक प्रबन्ध किया गया। श्री राजकुमार सिंघल जी ने सभी उपदेशक महानुभावों के लिए भोजनादि द्वारा सुन्दर स्वागत किया। यहाँ पर पण्डाल खचाखच भरा नजर आता था।

महिलाओं के बैठने के लिए पृथक् स्थान की व्यवस्था थी। सैकडों नर-नारियों ने प्रचार कार्य से लाभ उठाया। यह कार्यक्रम रात्रि को ७॥ बजे से १० बजे तक चलता रहा।

सूचना

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा सप्ताह में शुक्रवार व शनिवार दो दिवस ग्राम प्रचार किया जाता है। जो सज्जन अपने नगर, कालोनी, ग्राम में प्रचार रखना चाहें, वे सभा कार्यालय आकर सम्पर्क करें और हमें पूर्ण सहयोग दें। हमारे प्रचार वाहन मे लाउडस्पीकर, बाजा, ढोलक, चिमटा, कुर्सी, मेज, दरी, टेपरिकार्डर इत्यादि की सुविधा है। संगीत कलाकार, महोपदेशको द्वारा कार्यक्रम को सफल बनाया जाता है।

कृपया अवश्य ही धर्म लाभ उठाइये।

प्रबन्धक
स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती
अधिष्ठाता वेद प्रचार विभाग
(दिल्ली सभा)

आवश्यक सूचना

पश्चिमोत्तर प्रदेश के समस्त अधिकारियों को सूचित किया जाता है कि आचार्य धर्मपाल सिंह गुरुकुल महाविद्यालय, तातारपुर, गाजियाबाद को बरेली, मुरादाबाद, मेरठ व आगरा कमिश्नरी के वरिष्ठ सहायक प्रान्तीय सचालक के पद की नियुक्ति प्रान्तीय सचालक डा० बालकृष्ण आर्य ने मई १९८६ से कर दी है। कृपया उन से सम्पर्क करने की कृपा करें।

भवदीय
वेदप्रकाश गुप्त
प्रान्तीय मंत्री
सार्वदेशिक आर्य वीर दल
उत्तर प्रदेश

गुरुकुल कांगड़ी द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की मूल्य सूची

पुस्तक	लेखक	मूल्य
१. अग्निहोत्र	देवराज विद्यावाचस्पति	५-००
२. ब्राह्मण की गौ	अभय विद्यालंकार	३-००
३. वैदिक वन्दना गीत	सत्यकाम विद्यालंकार	१०-००
४. वैदिक कर्तव्यशास्त्र	धर्मदेव विद्यावाचस्पति	१०-००
५. आत्म मीमांसा	नन्दलाल खन्ना	१०-००
६. ईशोपनिषद् भाष्य	इन्द्र विद्यावाचस्पति	१०-००
७. आध्यात्म रोगों की चिकित्सा	इन्द्र विद्यावाचस्पति	१०-००
८. वक्तृत्वकला की प्रगति	इन्द्र विद्यावाचस्पति	५-००
९. वैदिक स्वप्न विज्ञान	भगवद्दत्त वेदालकार	६-००
१०. विष्णुदेवता	भगवद्दत्त वेदालकार	५ ००
११. ऋषिदेव विवेचन	भगवद्दत्त वेदालंकार	५.००
१२ वेदविमर्श	भगवद्दत्त वेदालकार	५ ००
१३. ऋषिरहस्य	भगवद्दत्त वेदालकार	५ ००
१४. भारतवर्ष का इतिहास ३य भाग	आचार्य रामदेव	१२-००
१५. ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार	स्वामी श्रद्धानन्द	३.००
१६. गुरुकुल की आहुति	क्षितीश विद्यालंकार	१-२५
१७. स्तूप निर्माण कला	नारायण राव	१५ ००
१८. प्रमेह, श्वास, अर्शरोग	रामरक्ष	५-००
१९. आहार	रामरक्ष	८-००
२०. जलचिकित्साविज्ञान	देवराज विद्यावाचस्पति	४-००
२१. पाणिनीयाष्टकम्	गगादत्त शास्त्री	२०-००
२२. आर्य भाषा पाठावली	भवानी प्रसाद	२-५०
२३. सोम	बुद्धदेव विद्यालकार	२ ००
२४. शतपथ में एक पथ	बुद्धदेव विद्यालकार	२-५०
२५. बिखरे हुए फूल	बुद्धदेव विद्यालकार	१-००
२६. प्रार्थनावली		१-१५
२७. इन्द्र विद्यावाचस्पति	सत्यकाम, अवनीन्द्र	१०-००
२८. स्वामी श्रद्धानन्द जी के (१म भाग)	लब्भूराम नैयर	३.००
धर्मोपदेश (२य भाग)	"	५-००
२९. गुरुकुल के स्नातक		३-००
३०. महर्षि दयानन्द की विश्वदर्शन को देन	प्रो. जयदेव वेदालंकार	१५-००
३१. वेदों की वर्णन-शैलियां	डा. रामनाथ वेदालंकार	५०.००

पता: पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी
पि० २४९४०४ (सहारनपुर)

कैप्टन देवराज
स० मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगडी

विदेशी सहायता पर प्रतिबन्ध लगे

यह अत्यन्त दुर्भाग्य का विषय है कि भारत में कार्यरत कुछ संगठन शैक्षिक, सामाजिक, राजनैतिक कार्यकलापों के लिए विदेशों से आर्थिक सहायता प्राप्त करते हैं। इस आर्थिक सहायता पर भारत सरकार का कोई नियन्त्रण नहीं है। एक सर्वेक्षण के अनुसार ऐसे ४८८ संगठन हैं। इन संगठनों में से अधिकांश को अरब देशों से अकूत धन मिलता है और वह धन, यह संगठन अपने घोषित उद्देश्य की पूर्ति में न लगाकर धर्मान्तरण जैसे घोर निन्दनीय व देशद्रोह पूर्ण कार्यों में खुले आम व्यय करते हैं। इस धन से, धन देने वाले देश की संस्कृति, सभ्यता तथा वहां के महापुरुषों का भी प्रचार किया जाता है और भारतीय महापुरुषों के प्रति समाज मे घृणा की भावना भरी जाती है। यह सगठन भारत मे साम्प्रदायिक विद्वेष फैला कर दगे भी कराते हैं जिस से देश में आतरिक अशाति व अस्थिरता बनी रहे। यह सारे सगठन खुले रूप मे सहायता तो लेते ही हैं, कुछ सगठन चोरी छिपे भी सहायता प्राप्त करते हैं। भारत सरकार को चाहिए कि किसी भी संगठन को मिलने वाली विदेशी सहायता पर पूर्णतया कठोर प्रतिबन्ध लगाये, नहीं तो आने वाले दिनों में यह विदेशी सहायता हमारी राष्ट्रीय एकता व अखण्डता पर भयावह संकट उत्पन्न कर देगी।

—राधेश्याम आर्य एडवोकेट
मुफाफिरखाना सुल्तानपुर (उ०प्र०)

अण्डा खाइए, हृदय रोग बुलाइये

डा० योगेश कुमार अरोडा

१९८५ के नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले अमेरिका के हृदय-रोग विशेषज्ञ, डा० माईकल एस० ब्राउन तथा डा० जोसेफ एल० गोल्डस्टीन, जिनको हृदय-रोग को खोज पर विश्व का सर्वोत्तम पुरस्कार मिला, जिसकी राशि, २,२५,००० डालर है। नोबेल पुरस्कार के ८४ वर्षीय इतिहास में यह राशि सबसे अधिक है। आप दोनो हृदय-रोग से बचने के लिए मांसाहार तथा अण्डे का सेवन न करने की सलाह देते हैं।

अमेरिका में पचास प्रतिशत मौतें सिर्फ हृदय-रोग के कारण होती हैं। नोबेल पुरस्कार के सयोजकों ने बताया कि डा० माईकल एस० ब्राउन तथा जोसेफ एल० गोल्टस्टीन दोनों अमेरिकन डाक्टरों की आश्चर्य जनक खोज से अब इस रोग पर काबू पाया जा सकेगा। इनकी खोज के अनुसार हृदय-रोग वशानुगत तथा खान-पान पर निर्भर करता है। इनके अनुसार यह रोग बच्चो को बचपन से शुरू हो जाता है, पर इसका पता काफी देर बाद चलता है। अब तक वर्षों से चली भी रही यह धारणा कि बच्चो को अण्डे खाने से नुकसान नहीं होता, विपरीत निकली। भले ही वे ऊपर से हृष्ट-पुष्ट दिखाई दे परन्तु अन्दर से हृदय-रोग ग्रस्त हो जाते हैं। खोज के अनुसार प्रत्येक मानव के शरीर में कोलस्ट्रोन नामक एक तत्त्व उत्पन्न होता है, यह भोजन द्वारा भी शरीर को प्राप्त होता है। यह तत्त्व वनस्पतियों में नहीं के बराबर होता है। पर मांस, अण्डों तथा जानवरो मे प्राप्त वसा में प्रचुर मात्रा में होता है। इस तत्त्व से शरीर मे सेल मेम्बरोन तथा हारमोन्स बनते हैं। यह तत्त्व शरीर के लिए आवश्यक भी है। लेकिन अगर यह कालस्टेरोल रक्त वाहिनी में जमना शुरू हो जाता है तो रक्त-प्रवाह में बाधा डालता है। यह धीरे-धीरे जमते-जमते इतना अधिक हो जाता है कि रक्त प्रवाह रुक जाता है और हृदय काम करना बन्द कर देता है, इसे 'हार्ट अटैक' कहते हैं। अगर मस्तिष्क में रक्त न जा पाए तो उसे स्टोक कहते हैं। यही पदार्थ मूत्राशय मे पथरी का रूप धारण करता है।

नई खोज के अनुसार रक्त में पाये जाने वाले पदार्थ 'लोडेंसिटि लिपोप्रोटीन' या एल. डी. एल है जो कोलस्ट्रोल को रक्त मे अपने साथ प्रवाहित करता है। शरीर मे जिगर तथा अन्य भागों के सेलो में एक पदार्थ है। जिसको रिस्पटर कहते हैं, वह एल. डी. एल तथा कोलस्टेरोल को रक्त मे से विलीन कर लेता है, जिसके परिणामस्वरूप रक्त में कोई बाधा नहीं आती है। इन वैज्ञानिकों के अनुसार जो व्यक्ति मांसाहार तथा अण्डे खाते हैं उनके शरीर में रिसेप्टरों को संख्या में कमी हो जाती है। इसकी कमी में रक्त के अन्दर कोलस्टेरोल की मात्रा अधिक हो जाती है। अधिक मात्रा होने से यह रक्त वाहिनियों मे जमना शुरू हो जाता जाता है तथा हृदय-रोग शुरू हो जाता है।

कोलस्टेरोल अण्डों में सब से अधिक मात्रा में पाया जाता है जिसके परिणामस्वरूप चर्म रोग भी हो जाते हैं। अण्डे से कुछ लोगो को एलर्जी भी होती है। कुछ दिन पूर्व इण्डियन काउंसिल आफ एग्रीकलचर रिसर्च द्वारा किये गये सर्वेक्षण से पता चला कि फल, सब्जियां अण्डे तथा मांस मे डी डी टी के अश पाये गये। अण्डो मे डी डी टी का अश अधिक मात्रा में होता है, क्योंकि पोल्ट्री फार्म में मुर्गियों को महामारी से बचाने के लिए डी. डी. टी. आदि दवाइयों का खूब धडल्ले से इस्तेमाल होता है। परिणाम-स्वरूप अण्डे खानेवाले लोगों के पेट में इन दवाइयों के अश आ जाते हैं। यहा तक कि स्त्रियो के दुग्ध मे डी. डी. टी. आदि के अश पाये गये। इन दवाइयों के भयंकर परिणाम हो सकते हैं। अमेरिका आदि देशों मे डी. डी टी. पर रोक लगी हुई है पर हमारे देश में इस पर खुली छूट है।

अब तक अण्डों को सुपाच्य समझा जाता था, क्योंकि यह प्रयोग जानवरों पर किये जाते थे। कुछ वैज्ञानिकों ने जब इनका प्रयोग मनुष्यों पर किया तब पाया गया कि सुपाच्य नहीं होते हैं। वैसे भी अण्ड के छिलके पर लगभग १५००२ सूक्ष्म छिद्र होते हैं जो कि सूक्ष्मदर्शी के द्वारा देखे जा सकते हैं। इनके द्वारा कई जीवाणु अण्डे मे प्रवेश कर जाते हैं जो अण्डे को खराब कर देते हैं। आपने अण्डे के समूह से बदबू आती तो महसूस की होगी, वैसे भी अण्डे आठ डिग्री सैल्सियस के तापमान पर खराब होने शुरू हो जाते हैं। इनको रखने के लिए भारत मे इतना तापमान रखना कठिन बात है। आजकल विदेशो मे अण्डे आदि न खाने की राय दी जा रही है।

('नवभारत टाइम्स' से साभार)

वर्ष १० : अंक ४८ | रविवार २६ अक्टूबर, १९८६ | सृष्टि संवत् १९७२९४९०८६ | कार्तिक २०४३ | दयानन्दाब्द—६१
मूल्य : एक प्रति ५० पैसे | वार्षिक २० रुपये | आजीवन २०० रुपये | विदेश मे ५० डालर, ३० पौंड

आर्यसमाज की मांग

गोली का जबाव गोली से दिया जाये

लखनऊ, १८ अक्तूबर। आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश के शताब्दी समारोह में पजाब के संबंध में चार महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए गए और केन्द्र सरकार को चेतावनी दी गयी कि यदि मांगों को पूरा करने में ढिलाई बरती गई तो आवश्यकता पडने पर आर्यसमाज जनांदोलन भी करेगा।

शताब्दी समारोह की शृंखला मे आयोजित पंजाब रक्षा सम्मेलन मे पारित प्रस्तावों की जानकारी सभा के उत्तर प्रदेश के महामत्री श्री मनमोहन तिवारी ने दी। उन्होंने बताया कि पजाब सीमा पर अविलम्ब सुरक्षा पट्टी का निर्माण, बृहत् पंजाब का गठन, बरनाला सरकार की तत्काल बर्खास्तगी कर वहां राष्ट्रपति शासन लागू किया जाना तथा आतकवाद को समाप्त करने के लिए गोली का जवाब गोली से दिये जाने की माग की गयी।

पंजाब रक्षा सम्मेलन की अध्यक्षता सार्वदेशिक सभा के उपाध्यक्ष श्री रामचन्द्र राव ने की। मुख्य अतिथि थे स्वामी आनन्द बोध और विशिष्ट अतिथि थे भूतपूर्व केन्द्रीय रक्षा मंत्री प्रो० शेर सिंह। इस सम्मेलन को आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री वीरेन्द्र, आर्यसमाज पटियाला के प्रधान श्री वेद प्रकाश मेहता, आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य प्रदेश के प्रधान पं० राजकुमार शर्मा, कानपुर के श्री देवीदास आर्य ने भी सबोधित किया।

शताब्दी समारोह स्थल पर कल रात शिक्षा सम्मेलन भी हुआ जिसकी अध्यक्षता स्वामी डा० सत्य प्रकाश जी ने की। उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज के योगदान की व्यापक चर्चा करते हुए कहा कि शिक्षा का उद्देश्य मानवता का निर्माण होना चाहिए और यही देश की आवश्यकता है।

स्वामी सत्यप्रकाश ने आर्यसमाज को नैतिक प्रदूषण से बचाने के लिए सुझाव दिया कि जिन आर्यसमाज मदिरो में शिक्षण संस्थाएं चल रही हों उन्हें तत्काल बंद कर दिया जाय क्योंकि उससे आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्सगों एव वार्षिक सम्मेलनों पर कुप्रभाव पडता है।

इस अवसर पर प्रसिद्ध शिक्षाविद् डा० भवानीलाल, प्रो० महेन्द्र प्रताप शास्त्री एव प्रो० रत्नसिह ने अपने विचार व्यक्त किये। सम्मेलन के संयोजक थे डा० निरूपण विद्यालकार।

युवाशक्ति को आकर्षित करने के लिए विभिन्न प्रकार के वाद-विवाद एव खेलकूद प्रतियोगिताए भी आयोजित की गयी। □

उत्तर प्रदेश शताब्दी समारोह धूमधाम से सम्पन्न

आर्य सम्मेलन में पारित प्रस्ताव

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, के अध्ययन दल का यह निष्कर्ष है कि राष्ट्रीय एकता के समर्थकों द्वारा विघटनकारी शक्तियों को विफल करने के लिए सभी प्रयासों के बावजूद, क्षेत्रीयता, भाषावाद तथा साम्प्रदायिक विद्वेष और कट्टरता भयानक रूप धारण करते आ रहे हैं।

विद्यार्थियों, नवयुवकों, और जनसाधारण में कुपोषण तथा भयंकर रूप से बढते जा रहे शराब आदि व्यसनों के कारण शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है, इसका ज्वलत प्रमाण हम को एशियायी खेलों में देखने को मिला।

इन तथ्यों के प्रकाश में उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के शताब्दी समारोह पर आयोजित यह सम्मेलन पुरजोर मांग करता है कि—

१—भारत सरकार और राज्य सरकारें मिलकर सारे देश में मद्य निषेध तथा नशाबन्दी पूर्णरूप से लागू कर और स्वयसेवी संस्थाओं के सहयोग से जनता को इन व्यसनों से मुक्ति दिलायें।

२—यौगिक क्रियाओं और खेलकूदों तथा व्यायामों के कार्यक्रम को उदारता से आर्थिक सहयोग प्रदान किया जाए तथा विविध प्रकार से प्रोत्साहित किया जाए ताकि राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर देश का मान स्तर ऊंचा किया जा सके।

३—गोवध पर देश में पूर्ण प्रतिबन्ध लगाया जाए और देश के समस्त प्रादेशिक राज्यों को ऐसे आदेश दिए जायें कि वे इस नीति का पूर्णरूपेण पालन करके दूध के उत्पादन को बढाये तथा दुधारु पशुओं की उत्तम नसलो का सवर्धन करें ताकि देश के बच्चों और युवा-वर्ग को दूध के रूप में सशक्त आहार दिया जा सके।

४—देश के गृह मोर्चे को इतना सुदृढ बनाया जाए, ताकि समस्त विघटनकारी तत्त्वों से संघर्ष करके उनका उन्मूलन किया जा सके। इस प्रसग मे राष्ट्रीयता सकल्प तथा राष्ट्रीय एकरूपता की भावना का व्यापक प्रचार किया जाए, ताकि देशवासियों के हृदयों में इन आसुरी और घातक वृत्तियों से संघर्ष की प्रबल कामना और वीरात्मक भावना का उदय हो सके। यह सभा केन्द्रीय सरकार की उस नीति का घोर विरोध करती है, जो भाषा, धर्म और क्षेत्र के आधार पर विभाजन को प्रोत्साहित करती है। यह सभा अल्पसंख्यकों और बहुसख्यको के आधारपर देशवासियों के वर्गीकरण का भी विरोध करती है जो देश के सविधान की धारा २९ तथा ३० में वर्णित है और वर्गवाद को प्रोत्साहन देता है। धारा को निरस्त करना देश के हित में है अतएव उसके निरस्तीकरण की मांग भी यह सभा करती है।

अल्पसंख्यक भावनाए भारतीय परिवेश के सर्वथा विपरीत है तथा धर्म निरपेक्ष विधान के मन्तव्य के सर्वथा प्रतिकूल है। अतएव यह नितान्त आवश्यक है कि अल्पसख्यक आयोग को समाप्त कर दिया जाए और यदि आवश्यक हो तो मानव अधिकार आयोग की स्थापना की जाये।

५—वर्तमान परिस्थितियो मे

(शेष पृष्ठ ६ पर)

प्रधान सम्पादक—डा० धर्मपाल | व्यवस्थापक—डा० महेशीलाल | सम्पादक—पं० यशपाल सुधांशु एम० ए०

नागरिक और वनवासिनी की वार्ता

—डा० रामनाथ वेदालंकार

सघन कानन में विशाल तरु के नीचे कोई वानप्रस्थ रमणी बैठी हुई है – निर्द्वन्द्व, निर्भय, निश्छल, सांसारिक वासनाओं से सर्वथा शून्य, साधना में लीन। वृक्ष पर बैठे पक्षी कलरव कर रहे हैं। पास ही मयूर नृत्य कर रहे हैं। दायें-बायें कुछ मृगशावक विचर रहे हैं, मानो सब उसका परिवार है। निकट ही झरना बह रहा है। कहीं-कहीं सिंह हाथी आदि वन्य पशुओं के पदचिह्नों की पंक्तियां स्थान की भयानकता को सूचित कर रही हैं। इतने में ही कोई राहभूला भयभीत नागरिक उधर आ निकलता है। उस रमणी को अकेली देख उसके आश्चर्य की सीमा नहीं रहती। वह सोचने लगता है, कहां तो यह निविड वन और कहां मन तथा शरीर से कोमल यह मुग्धा नारी। उसके मन में श्रद्धा का उदय होता है। उसे वह माता के रूप में देखता है। समीप पहुंच प्रश्न करता है—

अरण्यानि अरण्यानि
असौ या प्रेव नश्यसि।
कथा ग्राम न पृच्छसि
न त्वा भीरिव विन्दती ॥१॥

हे वनमाता क्यों तुम इस घोर जंगलों के बीच में वास करती हो। क्यों तुम ग्राम और नगर को नहीं पूछती? क्या यहां तुम्हें भय नहीं लगता? आओ, मैं तुम्हें नगर में चलने का निमन्त्रण देता हूं, जहां एक से एक सुन्दर भवन हैं, प्रासाद हैं, राजमार्ग हैं, रथ हैं, विपणियां हैं, नाटक हैं, चलचित्र हैं, गोष्ठी है, कविता है, संगीत है, नृत्य है और ऐसी उन्नत शिल्पकला है, जिसके आगे विधाता भी हार मानता है।

रमणी नागरिक की बात सुनती है और मुस्करा देती है। कहती है, 'हे भद्र, तुम नगर की शोभा पर गर्व करते हो पर मैं तो अपनी प्यारी वन शोभा पर ही मुग्ध हूं। आओ, नगर की राजसी झिलमिलाहट से चकाचौंध हुई तुम्हारी आंखों को मैं वन की सात्त्विक शोभा का दर्शन कराऊं। देखो—

वृषारवाय वदते
यदुपावति चिच्चिकः।
आघाटिभिरिव धावयन्
अरण्यानिर्महीयते ॥२॥

वन में तो बिना तानपूरे के ही संगीत का आनन्द आता है। बरसात की रात्रि में चिक-चिक ध्वनि करने वाला झींगुर जब मोटी आवाज वाले टिड्डे के पास आ बैठता है और दोनों अपना राग अलापने लगते हैं, तब ऐसा लगता है, मानो वीणा से स-र-ग-म-आदि सप्त स्वरों का शोधन हो रहा हो।

उत गाव इवादन्ति
उत वेश्मेव दृश्यते।
उतो अरण्यानि सायं
शकटीरिव सर्जति ॥३॥

यह देखो, सामने गौएं-सी चर रही हैं। ये लताकुञ्ज प्रासाद से दृष्टिगोचर हो रहे हैं। और, सायंकाल होने पर वन तथा नगर की सीमा पर खड़े होकर देखो, अपूर्व दृश्य देखने को मिलता है। फल, काष्ठ आदि से भरी, नगर की ओर जाती हुई गाड़ियों की पंक्ति को देख ऐसा प्रतीत होता है, मानो वनवीथी अपने अन्दर से उन गाड़ियों की सृष्टि कर रही है।

गामङ्गैष आह्वयति
दार्वङ्गैषो अपावधीत्।
वसन्नरण्या सायम्
अक्रुक्षदिति मन्यते ॥४॥

इधर देखो, यह चरवाहा गौएं चरा रहा है। इसने अपनी गौओं के नाम रख लिये हैं। एक का नाम कृष्णा है, दूसरी का नाम गौरी है, तीसरी का नाम इडा है, चौथी का अदिति है। नाम ले-लेकर यह अपनी धेनुओं को पुकार रहा है। जिसका नाम पुकारता है, वही उसकी ओर मुंह उठाती है और दौड़ पड़ती है। मूक पशुओं से चरवाहे की यह बातचीत कैसी कौतूहलवर्धक है। दूसरी ओर यह लकड़हारा वृक्ष पर चढ़ा हुआ लकड़ियां काट रहा है। अन्य भी अनेक नगरवासी वनवीथी की शरण में आते हैं। पर अचानक कभी वन में उन्हें रात्रि हो जाए तो उनकी कल्पना अपने आगे हिंस्र जन्तुओं को साकार खड़ा देखने लगती है और भय के मारे उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगता है कि यह सिंह बोला, यह व्याघ्र बोला। किंतु असली बात तो यह है कि—

न वा अरण्यानिर् हन्ति
अन्यश्चेन्नाभिगच्छति।
स्वादोः फलस्य जग्ध्वाय
यथाकामं नि पद्यते ॥५॥

यह वनवीथी अपनी ओर से किसी का संहार नहीं करती; हिंसा की पहल मनुष्य ही करता है। मनुष्य पूर्ण अहिंसक हो जाए तो अटवी उसकी माता हो जाती है; सिंह-व्याघ्र सब उसकी अहिंसा के आगे झुक जाते हैं। वन तो एक वाटिका है, जहां स्वादिष्ठ फलों को खाकर मनुष्य इच्छानुसार विश्राम करता है।

आञ्जनगन्धिं सुरभिं
बह्वन्नामकृषीवलाम्।
प्राहं मृगाणां मातरम्
अरण्यानिमशंसिषम् ॥६॥

जहां अञ्जन के फूलों की भीनी गन्ध उठती है, जहां अन्य विविध सौरभ महकते हैं, जहां बिना किसान के प्रचुर अन्न उपजता है, जो मृगों की माता है, उस वनवीथी की मैं बारंबार प्रशंसा करती हूं।

यही मेरी मां है, इससे मैंने बहुत कुछ पाया है, अन्त में इसी की रज में मिल जाना चाहती हूं। इसकी एक-एक बत्ती से एक-एक पखुड़ी से, एक-एक रजकण से मुझे प्यार है। इसके झरनों में मुझे ईश्वरीय संगीत सुनायी देता है, इसकी कल-कल-निनादिनी धाराओं में मुझे वेद का गान सुनायी देता है।

राहगीर के मुख से अनायास निकल पड़ता है। 'वनवीथी की जय हो, वनदेवी की जय हो।"

[ऋग्वेद १०,१४६ के आधार पर लिखित।]

□

महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस

१ नवम्बर प्रातः ८ बजे से

रामलीला मैदान, नई दिल्ली

गत वर्षों की भांति इस बार भी महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस रामलीला मैदान, नई दिल्ली में सम्पन्न होगा। कार्यक्रम प्रातः ८ बजे यज्ञ से प्रारम्भ होगा। ९.३० बजे ध्वजारोहण तथा विराट् सभा का आयोजन किया गया है जिसमें इस सभा के अध्यक्ष स्वामी आनन्द बोध होंगे। मुख्य अतिथि श्री के० सी० पन्त होंगे। वक्ता श्री शिवकुमार शास्त्री, डा० वाचस्पति उपाध्याय, श्री सूर्यदेव जी आदि महानुभाव सम्बोधन करेंगे। समस्त आर्यसमाजों एवम् आर्य संस्थाओं से निवेदन है बस आदि के द्वारा भारी संख्या में पहुंचकर कार्यक्रम को सफल बनायें।

महाशय धर्मपाल
प्रधान

उ० प्र० शताब्दी समारोह...

(पृष्ठ १ का शेष)

सम्प्रदायवाद की भावनाएं पुनः उभरी हैं, नव जागृत हुई हैं और इन साम्प्रदायिक संस्थाओं ने अपनी-अपनी सेनाओं को खड़ा करना प्रारम्भ कर दिया है। सम्प्रदायवाद को बढ़ावा देने के दो प्रमुख आधार हैं–

(अ) साम्प्रदायिक शिक्षण संस्थाएँ तथा

(ब) साम्प्रदायिक राजनैतिक संस्थाएँ।

अतएव यह सम्मेलन नितान्त आवश्यक समझता है कि –

(अ) समस्त साम्प्रदायिक संस्थाओं के नाम और उनकी कार्य-शैली को परिवर्तित कर दिया जाए, ताकि उसके आधार पर विघटन के प्रयासों को कोई प्रोत्साहन न मि[illegible] सके।

(ब) समस्त साम्प्रदायिक राजनैतिक संस्थाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाए।

यह सम्मेलन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा से भी यह संस्तुति करती है कि यदि सरकार इस दिशा में उचित कार्यवाही न करे तो तुरन्त ऐसा कार्यक्रम निर्धारित करके क्रियान्वित किया जाए, ताकि इन उद्देश्यों से जन साधारण को अवगत कराया जाए, सचेत किया जाए और उन्हें जागृत करके आन्दोलन प्रारम्भ किया जाए।

२७ अक्टूबर को जिनका जन्म दिवस है

हिन्दू जाति की शान

वीर बन्दा वैरागी

वीर वैरागी एक असाधारण महापुरुष था। वह एक आदर्श सच्चा देशभक्त तथा महान् राजनैतिक हिन्दू था। उसकी आत्मा में हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति के लिए अगाध श्रद्धा थी। हिन्दुओं पर अत्याचार पर अत्याचार होते देख कर उसका खून खौल उठता था। मुसलिम साम्राज्य के अत्याचारों का बदला लेने के लिए उसने उन्हीं साधनों का उपयोग किया जो मुसलिम साम्राज्यवादी हिन्दुओं के विरुद्ध करते थे। वीर वैरागी एक ऐसा सेना नायक था। जिसने मुगल साम्राज्य की जड़ें हिला दीं। वैरागी का जन्म पुंछ रियासत (कश्मीर) के राजौरी नगर में श्री रामदेव जी राजपूत के घर २७ अक्तूबर, सन् १६७० में हुआ। आप का जन्म नाम लक्ष्मण था। राजपूती घराने में जन्म लेने के कारण लक्ष्मण देव को शिकार का बहुत शौक था। एक समय लक्ष्मण देव शिकार खेलने गये सामने हिरणी भागी जा रही थी लक्ष्मण का तीर कमान से निकला, उसका निशाना तो कभी खाली जाता ही न था। लुढ़कती हुई हिरणी पृथ्वी पर गिर पड़ी। लक्ष्मण ने हिरणी का पेट चाक किया। वह गर्भिणी थी पेट से कुछ बच्चे निकले, हिरणी तथा उसके बच्चे तड़पते हुए मर गये। लक्ष्मण पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। उसने तीर कमान को फेंक दिया तथा घर बार त्याग कर एक वैरागी से दीक्षा लेकर माधोदास वैरागी बन गया। साधु वेश धारण कर तपस्या तथा भगवान् की आराधना में मस्त हो वह विचरने लगा। योग-साधन सम्पन्न वह नांदेड नाम के स्थान में डेरा बना रहने लगा। आस पास के लोगों में उसकी महिमा बढ़ी। फिर दूर-दूर तक प्रसिद्धि फैल गई। समय गुजरता गया परन्तु वैरागी के जीवन ने फिर बेड़ा जोरदार पलटा खाया।

हुआ यूं कि पंजाब की गुरु गद्दी जो श्री गुरु नानक देव जी ने कायम की थी, उसके उत्तराधिकारी दशम गुरु महाराज गुरु गोविन्दसिंह जी थे, वे श्री आनन्दपुरसाहिब में निवास करते थे। उन्होंने धर्मप्रचार के साथ साथ खालसा पंथ की रचना की। आप भी शस्त्रधारी बने तथा अपने सिखों को भी सिंह नाम दिया। अपना नाम भी श्री गोविन्द राय से गुरु गोविन्द सिंह धारण किया। आप शिकार खेलते तथा अपने सिखों को भी केशधारी बनाया। दुर्ग (किले) बनाये, सेना रखी। फिर क्या था, पहाड़ी राजा भयभीत हो गये तथा गुरु जी के साथ छेड़छाड़ होने लगी। गुरु जी के साथ छोटी छोटी लड़ाइयाँ होने लगीं। महाराज का पलड़ा भारी हो गया तब पहाड़ी राजाओं ने जो मुगलिया साम्राज्य के अधीन थे। मुगल बादशाह से सहायता मांगी। मुगलों ने पहाड़ी राजाओं के साथ मिलकर आनन्दपुर साहिब पर चढ़ाई कर दी। अन्ततः महाराज को २० दिसम्बर, सन् १७०४ को आनन्दपुरसाहिब छोड़ना पड़ा। इस लड़ाई में गुरु जी के चार साहिबजादे शहीद हो गये तथा आप जी भी कुछ सिंहों के साथ बड़ी वीरता के साथ दमदमे साहिब पहुंच गये, तथा कुछ समय यहीं निवास किया। २० फरवरी सन् १७०७ में औरंगजेब की मृत्यु हो गई और उसके पुत्रों का तख्त की प्राप्ति के लिए आगरे के पास युद्ध हुआ। इस युद्ध में महाराज गुरु गोविन्द सिंह जी ने बहादुरशाह की सहायता की तथा बहादुरशाह की विजय हुई।

तत्पश्चात् गुरु जी दक्षिण की यात्रा पर गये तथा वीर वैरागी के साथ मुलाकात हुई। जिसमें वीर वैरागी ने फिर से शस्त्र पकड़ कर मुगल साम्राज्य को चुनौती दी। वीर वैरागी ने इस कठिन कार्य को बड़ी निष्ठा तथा विश्वास से करके हिन्दू समाज का उद्धार किया। वे युद्ध-स्थली से भाग जाने की बजाय युद्ध में लड़ते रहना ही अच्छा समझते थे। उनके साहस तथा शक्ति ने बड़े-बड़े सेनानायकों को मार भगाया। वीर वैरागी के साथ सिख पूरी तरह से साथी थे, महाराज गुरु नानक देव जी से लेकर महाराज गुरु गोविन्द सिंह तक तथा गुरु गोविन्द सिंह जी से लेकर महाराजा रणजीत सिंह तक हिन्दू सिख का कोई किसी प्रकार का भी भेदभाव नहीं था। हर हिन्दू घराना गुरु गद्दी का श्रद्धालु तथा उपासक था। अतः वैरागी हिन्दू ही था तथा हिन्दू ही रहा। वह गुरुभक्त था अतः उसके साथी कोई अलग न थे, परन्तु फूट इस देश का पुराना रोग है। इसने भारत वर्ष को सदियों से दास बनाये रखा। इस फूट ने इस वीर के कार्य को जो वह बड़ी बहादुरी से कर रहा था आपस की फूट से धरातल पर आन गिराया।

२० फरवरी सन् १७०७ में औरंगजेब की मृत्यु दक्षिण में हुई। उसका एक ही आदर्श था कि भारत वर्ष से हिन्दू धर्म का नाश कर यहां सारा देश मुसलमान कर दिया जाये।

काशी के विश्वनाथ मन्दिर को गिरा दिया गया। भगवान कृष्ण चन्द्र के जन्म स्थान पर मस्जिद खड़ी कर दी गई। देहली के आस पास के सतनामी हिन्दुओं पर इतना जुल्म किया कि जिसकी दुनिया में मिसाल नहीं मिल सकती। यही औरंगजेब था जिसने सन् १६७५ में भाई मतीदास, भाई सतीदास, भाई दयालदास जो ब्राह्मण थे उनको फट्टों में बांधकर आरे से जिन्दा चिरवा दिया। उस समय के गुरु गद्दी पर विराजमान गुरु तेग बहादुर जी का बलिदान करवा दिया। वे दिन भी हिन्दू समाज के लिए अत्यंत भयानक थे। परन्तु इस वीर हिन्दू जाति ने जिस साहस का परिचय दिया वह भी एक लाजवाब मिसाल है। वीर छत्रपति शिवाजी तथा उनके साथी वीर मरहठों ने भी औरंगजेब की कब्र दक्षिण में हो बना दी। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र बहादुरशाह जून १७०७ में हुक्मरान बना। इसी के समय में ही वीर वैरागी ने कार्य आरम्भ कर दिया था। बहादुर शाह सन् १७१२ में पागल होकर मर गया। उसके बाद जहांदारा बादशाह बना जिसने केवल एक वर्ष राज्य किया। उसके पश्चात् फर्रुखसीयर सन् १७१३ में बादशाह बना। वह सन् १७१९ तक रहा। हमारा पूज्य वीर वैरागी जिसको बन्दा बहादुर भी कहा जाता है की शहीदी सन् १७१६ जून ९ को हुई। इस समय मुगल खानदान का उत्तराधिकारी फर्रुखसीयर ही था। वीर वैरागी जो एक राजपूत था वैरागी बना और फिर अपनी मातृभूमि तथा हिन्दू सिख जाति की रक्षार्थ धनुष-बाण एवं तलवार लेकर मुगलों के विरुद्ध लड़ने के लिए प्रकट हो गया। उसने बहादुर शाह की जिंदगी में ही युद्ध आरम्भ कर दिया था। २६ नवम्बर सन् १७०९ में उसने समाना नगर पर अधिकार कर आगे बढ़ना शुरु कर दिया। सरहिन्द के सूबेदार को करारी हार देकर उसका नाश किया। मुरादाबाद, सहारनपुर तथा मुजफ्फर नगर तथा गुरदासपुर तथा पहाड़ी राज्यों को विजय कर लिया। जाबर तथा जालम मुसलिम साम्राज्य को तहस नहस करके फिर से हिन्दू सिख को अभय कर दिया।

हमारी अपनी फूट ने हमें फिर मुगलों का दास बना कर रख दिया। वैरागी के अपने साथी ही धर्म तथा स्वार्थ के कारण उसका साथ छोड़ कर दुश्मन के साथ जा मिले। किस का कितना दोष था, यहां लिखना कुछ अच्छा नहीं लगता, पर इतना तो कहा जाना उचित ही है कि हमारी अपनी फूट ने इस हिन्दू सिख राज को समाप्त करके रख दिया। भाई परमानन्द जी अपनी वीर वैरागी नाम की पुस्तक में इस प्रकार लिखते हैं कि वीर वैरागी पर जो आरोप लगाये गये हैं, वे सर्वथा निराधार तथा अनुचित ही है—

वीर वैरागी एक पक्का हिन्दू था। उसकी आत्मा में हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति के लिए अनन्य भक्ति और अगाध प्रेम था। वैरागी न तो पंथ में सम्मिलित हुआ और न ही उसे किसी प्रान्त विशेष का ध्यान था। वीर वैरागी जो एक राजा भी था और शहीद भी हिन्दू पैदा हुआ हिन्दू ही रह कर मरा। यह वीर एक समय शिकार खेलने वाला राजपूत था। दूसरी अवस्था में तपस्या करने वाला सन्यासी। तीसरी हालत में विजेता सेनापति तथा शासक और चौथी अवस्था में अत्यंत भीषण आपदाओं का सामना करने वाला शहीद था।

वीर वैरागी ही है जिसने पंजाब में एक विदेशी राज्य को मिटाकर अपना राज्य स्थापित किया। वीर वैरागी सच्चे त्यागी थे। भगवान् कृष्ण के उपदेश के अनुसार वे सच्चे वीर थे। मरते समय तक वे सच्चे और निडर शहीद सिद्ध हुए। भाई परमानन्द जी एक स्थान पर लिखते हैं—'मैंने वीर वैरागी को ऐतिहासिक पुस्तक की दृष्टि से नहीं लिखा है किन्तु एक विस्मृत महापुरुष के विषय में अपने विचारों को

(शेष पृष्ठ ७ पर)

वेदों में विज्ञान

विमान विज्ञान

छैलबिहारी लाल गोयल

अंतरिक्ष तथा विमान विज्ञान आज के युग में पश्चिमी सभ्यता की देन समझा जा रहा है, किन्तु महर्षि दयानन्द सरस्वती की विचारशीलता के कारण उनके बनाये आर्यसमाज के नियमों से प्रेरित होकर वेदों का अध्ययन आज साधारण से साधा-साधारण व्यक्ति जो [केवल कुछ हिन्दी का ज्ञान रखता हो वह] भी वेदों का अध्ययन ४-६ बार करने के उपरान्त किसी भी विद्या विशेष के मूल सिद्धान्तों को प्राप्त करके आज के विज्ञान से समन्वय कर सकता है।

महाभारत काल के उपरान्त के वेद विद्वानों की व्याख्याओं से पूर्णतया प्रमाणित हो जाता है कि वह साधनों की कमी के कारण वेदों के सही आशय को नहीं समझ पाये हैं। केवल महर्षि दयानन्द सरस्वती ही निष्पक्षभाव से वेद भाष्य करके वेदों की विद्याओं को समझने के लिए नियम बना कर तैयार कर गये हैं कि मानव इसके आधार पर प्रेरणा प्राप्त करके नये से नये आविष्कार कर सकता है।

आज के विमान तथा अंतरिक्ष-यानों के विषय में वेदों में बहुत कुछ बतलाया गया है, उसमें से कुछ सकलन यहां प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे पूर्णतया प्रमाणित होता है कि चारों वेद केवल पूजने या याचना करने की अथवा मन्त्रोच्चारण तक ही सीमित न होकर अत्यन्त वैज्ञानिकता के पूर्ण सिद्धान्तों का भी दिग्दर्शन कराते हैं।

ऋग्वेद—१।४।६-१० ऋषि मधुछन्दा, देवता इन्द्र, छन्द गायत्री, स्वर: षड्ज: वाले प्रकरण में कृष्टय. विद्युत् द्वारा यानों में सब सुख वा वेगादि गुण प्राप्त किये जा सकते हैं। सन्दर्भित प्रकरण अथर्ववेद २०।६८।६ से १०, इसी तरह से ऋग्वेद १।४।३ मे भी विद्युत् और वायु विमान विज्ञान मे कार्य आने का सिद्धान्त है जो सामवेद २४२, अथर्ववेद २०।६८।१ वाले प्रकरण से जो सन्दर्भित है। ऋग्वेद १।६।२ में भी हरी नाम के विद्युत ज्ञान के द्वारा पृथ्वी, जल और आकाश मे जाने आने के लिए सवारियो मे जोड़ने के सिद्धान्तो का दिग्दर्शन है। इससे सम्बन्धित कुछ प्रकरण अथर्ववेद २०.२६।५, २०।४७।११, २०।६६।१०, सामवेद १४६६, यजुर्वेद २३।६, तै० स० ७।४।२०।१ वाले प्रसङ्गों में भी मिलते हैं।

ऋग्वेद १।१२।१, ऋषि काण्वो मेधातिथि, देवता अग्नि, छन्द गायत्री, स्वर षड्ज: में 'होतारम्' नामक अग्नि विशेष के माध्यम से यानों आदि में वेग देने वाले सिद्धान्त दर्शाये हैं। सन्दर्भित प्रकरण सामवेद पूर्वा० ३, उत्तरार्चिक ७९०; अथर्ववेद २०।१०।११; तै० ब्रा० ३।५।२।३, ऐतरेय ब्राह्मण २०।३।१५२, इसी तरह से १।१३।४ में भी ईडित अग्नि को भी गमन और विहार कराने वाली सवारियों में स्थापित करने के निर्देश हैं। सन्दर्भित प्रकरण सामवेद उत्तरार्चिक १३५०; ऋग्वेद १।१३।१२ में भी 'स्वाहा कृतयश्च' नामक उत्तम क्रिया समूह के विमानों में प्रयुक्त करने के अनेक सिद्धान्त दिये हैं। ऋग्वेद १।१३।६ में भी विमान आदि की रचना शैली में प्रयुक्त होने वाले ईंधन समूह के (घृतपृष्ठा) नाम से सिद्धान्त दर्शाये गये हैं। ऋग्वेद १।१४।१२ में भी विमान आदि रथों को ऊंची नीची जगह उतारने चढाने वाले सिद्धान्तों तथा अग्नियों का वर्णन है। ऋग्वेद १।१६।२ में भी हरि नामक विद्युत् सिद्धान्त द्वारा विमान विद्या का वर्णन है जो सन्दर्भित तै० ब्राह्मण २।४।३।१० के द्वारा भी वर्णित है।

ऋग्वेद १।२२।१ से ५ ऋषि काण्वो मेधातिथि देवता अश्विनौ तथा सविता में भी विमानों के शिल्प विद्या सिद्ध यन्त्र कलाओं में पहले बल देने वाले अग्नि आदि विभिन्न पदार्थों के विभिन्न सिद्धांतों का वर्णन है। जो यजुर्वेद ७।११, तै० स० १।४।६।१ तथा ७।१ तथा तै० ब्राह्मण २।४।३।१३, ऐ० ब्रा० २३।४।१७२ द्वारा भी प्रसंगित है। निरक्त १२।४ में भी इसके लिए कुछ निर्देश हैं। ऋग्वेद १।२२।१४ वाले प्रसग में भी गन्धर्व देव नामक धारण तथा आकर्षण करने वाले अन्तरिक्ष स्थानों में भी विमान आदि यानों को गमनागमन कराने वाले सिद्धान्त दर्शाये हैं। इस प्रकरण का भी वेदों में अनेक स्थलों से सम्बन्ध मिलता है। ऋग्वेद १।२३।१ से ५ वाले प्रसंग में भी तीव्र वायु जल मिलाने सूर्य वायु आदि साधनों के द्वारा प्रकाश युक्त आकाश में विमानों को साधने के सिद्धान्त दर्शाये हैं।

ऋग्वेद १।२५।६ से १० ऋषि अजीगर्त शुन:शेप, देवता वरुण, छन्द गायत्री, स्वर षड्ज, जल और सूर्य शक्ति द्वारा अन्तरिक्ष में जाने-आने वाले विमानों में प्रयुक्त होने वाले ईंधन शक्ति सिद्धान्तों का वर्णन मिलता है। इसके प्रसंग यजुर्वेद १०।२७, २०।२ तै० स० १।८।१६।१, तै० ब्रा० १।७।१०।२६, २।६।५।१ में भी है। इसी सूक्त में १६ से २१ वाले मंत्रों के प्रसगों में भी विमान विद्या में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न पदार्थों का वर्णन है। इनके प्रसंग सामवेद १६८५, यजु० २।११, और तै०ब्रा० २।१।११।६ में भी वर्णन है। ऋग्वेद १।२७।१ से ५ वाले प्रसंग में विमान आदि की रक्षा करने वाले अग्नि सिद्धान्तों का वर्णन है जो सामवेद १६३४ से ३६, १४६७ से ६६. यजु० १७।१८ निरुक्त १।६, तै० आरण्यक ४।११।८ द्वारा प्रशसित है। ऋग्वेद १।३०।१६ से २२ वाले प्रसग में अन्तरिक्ष में जाने-आने वाले यानों में गति प्रदान करने वाले स्वर्ण आदि प्रयुक्त करने वाले सिद्धान्तों के वर्णन हैं।

ऋग्वेद १।३१।१ से ५ ऋषि आंगिरस हिरण्य स्तूप, देवता अग्नि, छन्द जगती, निषाद स्वर वाले प्रसंग में बड़े-बड़े भार युक्त विमानों को अन्तरिक्ष में पहुंचाने वाले विभिन्न अग्नि वायु के सिद्धान्त दर्शाये गये हैं। यह प्रसंग यजु० ३४।१२, ऐ० ब्रा० २१।२।१ में है।

ऋग्वेद १।३७।१ से ५ ऋषि घौर काण्व, देवता मरुत्, छन्द गायत्री और स्वर षड्ज वाले प्रसंग में बिना अश्व (इजन) रहित विमान आदि में प्रयुक्त होने वाले वायु आदि के विभिन्न सिद्धांत दिये हैं। इनके प्रसंग सामवेद १३५, तै० स० ४।३।१३।६ ऐ० ब्रा० २३।४।१७२, निरुक्त ७।२ में भी है। ऋग्वेद के भी १।३६।६ से १० वाले प्रसग में सब जगह जाने आने वाले यानों में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न वायु सिद्धान्तों का वर्णन है जो निरुक्त ६।२३ द्वारा भी निर्देशित है। ऋग्वेद १।४१।१ से ५ वाले प्रसग में भूमि, समुद्र व अन्तरिक्ष में जाने के मार्गों के विभिन्न सिद्धांत दिये हैं। सन्दर्भित सामवेद १८५। ऋग्वेद १।४६।१ से ५ ऋषि प्रस्कण्व, देवता अश्विनौ, छन्द गायत्री और स्वर षड्ज वाले प्रसंग में अन्तरिक्ष में जाने वाली सवारियों में प्रयुक्त होने वाले अश्विनी सिद्धांत दर्शाये गये हैं जो सामवेद १७२८ से १७३० वाले प्रसंग से सन्दर्भित हैं।

ऋग्वेद १।४६।६ से १० वाले प्रसंग में विमान आदि यान समूहों को चलाने वाले अश्विनी शक्ति सिद्धान्त दिये गये हैं। ऋग्वेद १।४६।११ से १५ वाले प्रसंग में समुद्र तथा अन्तरिक्ष के पार जाने वाली सवारियों में प्रयुक्त होने वाले प्रकाशवान और सूर्य व जल सिद्धान्तों का वर्णन है। सन्दर्भित यजुर्वेद ३४।२८ ऋग्वेद १।४७।१ से ५ वाले प्रसग में विमान बनाने में प्रयुक्त होने वाले शिल्प विद्या सिद्धान्तों का वर्णन है।

ऋग्वेद १।४७।६ से १० वाले प्रसंग में सूर्य की किरणों की तरह चलने वाले विमानों के विभिन्न सिद्धान्त दर्शाये गये हैं।

ऋग्वेद १।५२।१ से ५ ऋषि आङ्गिरस सव्य, देवता इन्द्र, छन्द त्रिष्टुप् और जगती, स्वर धैवत, और निषाद, आकाश वाले प्रसंग में आकाश आदि में चलने वाले विमानों में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न विद्युत् सिद्धान्त दर्शाये हैं।

ऋग्वेद १।५५।१ से ५ वाले प्रसंग में भी सागर में यान समूहों को चलाने वाला विद्युत् विज्ञान दर्शाया गया है। यह ऐ० ब्रा० २३।४।१७२ द्वारा सन्दर्भित है।

ऋग्वेद १।६२।१ से ५ ऋषि गोतमो नोधा, देवता इन्द्र, युद्ध में कार्य आने वाले विभिन्न विमानो के शिल्प क्रिया सिद्धान्त दिये हुए हैं। सन्दर्भित प्रकरण अथर्व० २०।३५।१ से ५, निरुक्त ५।११ ऐ० ब्रा० २६।२।१ से ५।

ऋग्वेद १।६६।१ से ५ ऋषि पराशर, देवता अग्नि देवता पति. स्वर पचम, वना नामक किरणों से चलने वाले अन्तरिक्ष विमानों में प्रयुक्त होने वाले स्वर्ण सिद्धान्त दर्शाये गये हैं। इस प्रसंग में किरणों के विभिन्न भेद बतलाये गये हैं। सन्दर्भित प्रकरण निरुक्त १०।२१। ऋग्वेद १।७१।६ से १० वाले प्रसंग में यानों में प्रयुक्त होने वाली विभिन्न अग्नियों के क्रिया सिद्धान्त दर्शाये गये हैं। सन्दर्भित प्रकरण यजु० ३३।११, वै० सं० १।३।२७।१ १।३।१४।१।

ऋग्वेद १।७४।६ से ६ ऋषि

(शेष पृष्ठ ५ पर)

प्रेरक प्रसंग

प्रस्तोता—सत्यानन्द आर्य

: १ :

प्रेमचन्द जी जब चाहते, तब लिख सकते थे। उन्हें किसी बाहरी उपकरण की आवश्यकता नहीं थी। उनसे एक बार बातों ही बातों में किसी ने पूछा—"मुंशी जी आप कैसे कागज पर और कैसे पेन से लिखते हैं ??"

वे बहुत जोर से हंसे और तब बोले—"ऐसे कागज पर जनाब, जिस पर पहले से कुछ न लिखा हो और ऐसे पेन से जिसका निब न टूटा हो!" फिर जरा गम्भीर होकर बोले—"भाई जरा ये सब 'चोंचले' हम जैसे कलम के मजदूरों के लिए नहीं हैं!"

: २ :

काठियावाड में रविशंकर महाराज ने ठाकुरों से दारु-ताडी नहीं पीने की प्रतिज्ञाएं करवाईं, तो एक ठाकुर ने कहा—"महाराज मैंने दारु छोडने की प्रतिज्ञा तो की है, मगर दारु ने मेरी रग-रग पकड रखी है।"

महाराज ने कहा—"मुझे अभी काम है। कल आ जाना बात होगी।"

दूसरे दिन सवेरे ठाकुर ने आवाज लगाई, तो महाराज ने कहा—"मैं कैसे आऊं, खम्भे ने मुझे पकड रखा है।"

ठाकुर अन्दर गये, तो देखा, महाराज के दोनों हाथ खम्भे में सटे हैं। बोले—"हाथ वहां से हटाइये न।"

"वह छोड़े तब तो।" उत्तर मिला।

कुछ देर बाद महाराज ने खम्भे को छोड दिया और पूछा—"ठाकुर, खम्भे ने मुझे पकडा था या मैंने उसे ?"

"आपने खम्भे को पकडा था, खम्भा भला आपको क्या पकडेगा!"

"फिर दारु को तुम नहीं छोडते कि दारु तुम्हें नहीं छोड़ता ?"

ठाकुर ने उसी क्षण दारु छोड़ने का संकल्प लिया।

: ३ :

एक बार पण्डित मोतीलाल जी नेहरू को बडे जोरों का जुकाम हो गया। खद्दर के रूमाल से पोंछते-पोंछते नाक लाल हो गई। एक मित्र तबियत का हाल जानने आये और नाक का यह हाल देखकर पूछा—'क्या जुकाम हो गया है?"

रूमाल से नाक पोंछते हुए पंडित जी ने उत्तर दिया—"हां, अब यह थोडे दिनों का ही मेहमान है।"

मित्र ने प्रश्नसूचक दृष्टि उठाई।

पण्डित जी मन्द-मन्द मुस्कराते हुए बोले—"गांधी जी के राज मे किसी को जुकाम कैसे हो सकता है। खादी के रूमाल से पोंछते-पोंछते जब नाक ही गायब हो जायेगी, तब जुकाम कहां होगा!"

: ४ :

प्रयाग मे कुम्भ मेले पर प्रचार करके महाराज मिर्जापुर मे आ विराजे और मूर्तिपूजा आदि कुरीतियों का प्रचण्ड प्रत्याख्यान करने लगे। स्वामी जी के भीषण सिंहनाद से विरोधी वर्ग उठे और उन्हें समाप्त करने के उपाय सोचने लगे।

उन्हीं दिनों एक तान्त्रिक ओझा भी मिर्जापुर में आकर ठहरा हुआ था। उसने घोषणा कर दी कि मेरे पास ऐसे सिद्ध यन्त्र एव मन्त्र हैं कि यदि कोई उनका पुरश्चरण करावे तो दयानन्द इक्कीसवें दिन मर सकता है। एक सेठ जी ने मन्त्र प्रयोग का सारा व्यय वहन करना स्वीकार किया और ओझा जी ने मन्त्र प्रयोग आरम्भ किया। इस प्रयोग को आरम्भ हुए अभी तीन चार दिन ही हुए थे कि दैवयोग से मन्त्र प्रयोग बैठाने वाले सेठ जी के गले पर एक फोडा निकल आया और प्रतिदिन वह भयकर रूपधारण करता गया। यहां तक कि उन्हें खाने पीने थूकने और बोलने में भी कष्ट होने लगा। एक दिन ओझा जी ने सेठ के पास जाकर कहा—! सेठ जी प्रयोग समाप्ति का दिन निकट आ गया है। आप बलिदान सामग्री प्रस्तुत करा दीजिये। प्रयोग समाप्ति पर इधर बलि दी जायेगी और उधर दयानन्द का सिर धड से कटकर भूमि पर गिर पडेगा। "सेठ जी ने बडी कठिनता से कहा—"ओझा जी! दयानन्द का सिर तो गिरते ही गिरेगा परन्तु मेरा सिर तो गिरा ही जाता है। कृपया आप अपना पुरश्चरण बन्द कर दें।" इस प्रकार वह मन्त्र प्रयोग बीच मे छोड दिया गया।

: ५ :

उन दिनों भारत की राजधानी कलकत्ता थी। लार्ड नार्थब्रुक उस समय वायसराय के पद पर थे। जनवरी सन् १८७३ में इग्लैण्ड के लार्ड बिशप ने वायसराय और स्वामी जी की भेंट का आयोजन किया। दुभाषिया के द्वारा हुई इस भेंट का प्रामाणिक विवरण इस प्रकार है—

साधारण शिष्टाचार के पश्चात् वायसराय ने स्वामी जी से पूछा—पण्डित दयानन्द मुझे सूचना मिली है कि आप द्वारा दूसरे मत मतान्तरों व धर्मों की कडी आलोचना, उनके हृदय में क्षोभ उत्पन्न करती है, विशेषत. मुस्लिम और ईसाई जनता के। क्या आप अपने शत्रुओं से किसी प्रकार का खतरा अनुभव करते हैं? अर्थात् क्या आप सरकार से अपनी सुरक्षा का कोई प्रबन्ध चाहते हैं?

स्वामी दयानन्द—मुझे अपने विचारों के प्रचार करने की अंग्रेजी राज्य मे पूरी स्वतन्त्रता है। मुझे व्यक्तिगत रूप में किसी प्रकार का खतरा नही है।

वायसराय—यदि ऐसा ही है तो क्या आप अपने देश मे अंग्रेजी शासन द्वारा उपलब्ध उपकारो का भी वर्णन किया करेगे? और अपने व्याख्यानों के प्रारम्भ मे जो ईश्वर प्रार्थना आप किया करते हैं, उसमें देश पर अखण्ड अंग्रेजी शासन के लिए भी प्रार्थना किया करगे।

स्वामी दयानन्द—मैं ऐसी बात को मानने मे असमर्थ हूं, क्योंकि यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेरे देशवासियो को अबाध राजनैतिक उन्नति और संसार के राज्यों में समानता का दर्जा पाने के लिए शीघ्र पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। श्रीमान् जी ईश्वर से नित्य साय प्रात उसकी अपार कृपा से इस देश को विदेशियों की दासता से मुक्ति की ही मैं प्रार्थना करता हू।

नार्थब्रुक ने वार्ता यहीं समाप्त कर दी और भारतीय कार्यालय लन्दन को इस वार्तालाप का पूर्ण विवरण देते हुए उसने लिखा—"इस विद्रोही फकीर पर सख्त दृष्टि रखने की आवश्यकता है।" □

वेदों में विज्ञान...

(पृष्ठ ४ का शेष)

राहु गणो गौतम, देवता अग्नि, छन्द गायत्री, स्वर षड्ज यानों आदि में वेग देने वाले अग्नियों के विभिन्न सिद्धान्तों का वर्णन है। सदर्भित प्रकरण यजु० ३।११ ब० स० ११।१।२।१, ३।१।११।१४ सामवेद १३७६ से ८२ ऐ० ब्रा० २०।१।२६ में प्रसग मिलते हैं। ऋग्वेद १।८।१।१ से ५ वाले प्रसग में भी सग्रामों मे प्रयुक्त होने वाली विभिन्न सवारियों में कार्य करने वाले विभिन्न विद्युत् सिद्धान्तों का वर्णन है यह प्रसग सामवेद ४११, ४१४, ४२३, उत्तरार्चिक १००२ से ४, अथर्व० २०।५६।१ से ३, ऐ० ब्रा० २२।३।१६।१ द्वारा प्रसगित है। इस तरह से लगता है कि हमारे वेदों में विमान विज्ञान को कितना अधिक महत्त्व दिया गया है।

अभी तक भारतीय सभ्यता मे वेद केवल मन्त्रोचारण और पूजने की वस्तु माना गया है लेकिन निष्पक्ष दृष्टि से इसका पठन-पाठन करने से प्रतीत होता है कि वेद पूर्णतया वैज्ञानिक ग्रन्थ है तथा इसमे मुख्यत: अग्नि, वायु, जल के द्वारा विज्ञान की विभिन्न प्रतिक्रियाएं दर्शायी गई हैं जो बाद मे विद्युत् तथा किरण समूहों द्वारा आज के आधुनिक विज्ञान के साथ समन्वय की जा सकती है। महाभारत काल के बाद के विद्वान् साधनों के अभाव के कारण इन विद्याओं को समझने में असमर्थ रहे। केवल महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने ही नि स्वार्थ भाव से

(शेष पृष्ठ ७ पर)

अंग्रेजी का मोह ही हिन्दी की उन्नति में बाधक

हिन्दी की उन्नति से देश का बिखराव रुकेगा

—जितेन्द्रनाथ गुप्त
स्वतन्त्रता सेनानी

भारतवर्ष से अंग्रेजों को गये ३९ वर्ष बीत गये मगर अभी तक अंग्रेजी हर क्षेत्र मे अपना प्रभुत्व जमाये हुए है। कारण हम लोगों का मोह अंग्रेजी से अभी तक कम नही हुआ है। इसलिए हम लोग अंग्रेजी मे बोलना अपनी शान समझते है। अपने बच्चो को इंगलिश मीडियम से पढाकर उनसे मम्मी, डैडी, अंकल, सिस्टर इत्यादि बुलवा कर अपने को गौरवशाली समझते हैं। यही नही भोजन की भारतीय पद्धति भी बदल कर अंग्रेजी पद्धति (बुफे सिस्टम) मे बदलती जा रही है।

जहां तक हिन्दी बोलने और समझने का सवाल है अगर भारतवर्ष मे भाषा के सम्बन्ध मे सर्वेक्षण किया जाय तो पता चलेगा कि हिंदी ही ऐसी भाषा है जिसे भारत की अधिकाश जनता सब से अधिक बोलती और समझती है। इसीलिये भारत की आजादी की लडाई में हिन्दी भाषा को ही प्रचार का माध्यम बनाया गया था और हमारे पूर्वज नेताओ ने हिन्दी को ही चुनकर राष्ट्रभाषा घोषित किया था, जिसे संविधान द्वारा राष्ट्रभाषा रक्खा गया।

राष्ट्रभाषा होते हुए भी सरकार की तरफ से इसका उपेक्षा ही की जाती है। उदाहरणार्थ मैं यहां कुछ ही बाते लिख रहा हूं।

(१) सरकारी नौकरियों के लिए जितनी भी प्रतियोगिताएँ (कम्पटीशन्स) होती हैं चाहे यह केन्द्र सरकार की हो, चाहे वह प्रान्तीय सरकार की हो, सभी में अंग्रेजी पद्धति (इंग्लिश मीडियम) वाले क्षेत्र को ही विशेष मान्यता दी जाती है।

(२) विद्यालयों एव विश्वविद्यालयो में प्रवेश के समय इंग्लिश मीडियम वाले छात्र को ही प्राथमिकता दी जाती है।

(३) सरकारी कार्यालयों में काम काज क्षेत्रीय भाषा एवं हिंदी में करने के आदेश होते हुए भी सरकारी कर्मचारी इस की खुलेआम अवहेलना करते हैं।

(४) आकाशवाणी एवं दूरदर्शन में राष्ट्रभाषा हिन्दी होने के नाते जितना समय दिया जाना चाहिए उतना समय नहीं दिया जाता। दूरदर्शन के जनवाणी कार्यक्रम में माननीय मन्त्री महोदय जो प्रश्नों का उत्तर देते हैं वे हिन्दी के बजाय वह अंग्रेजी मे ही उत्तर देना ज्यादा अच्छा समझते हैं। यहां तक तो न्यायसगत है कि प्रश्नकर्ता जिस भाषा में प्रश्न करे वे उसी भाषा में उत्तर दें परन्तु वे उस भाषा में उत्तर न देकर अंग्रेजी मे ही उत्तर देते हैं। यही नही हिन्दी मे किये गये प्रश्नो का उत्तर भी वे अंग्रेजी में देते हैं।

(५) कुछ क्षेत्रीय नेताओं ने संविधान मे राष्ट्रभाषा हिन्दी होने हुए भी इसे चुनाव लडने का मुद्दा तक बना लिया है जब कि उन्होंने आजादी की लडाई मे इसी हिन्दी भाषा द्वारा भारत की जनता को लडाई में शामिल होने के लिए प्रचार किया था।

उपरोक्त कुछ ही बातों से पता चलता है कि अभी तक लोगों का मोह अंग्रेजी के प्रति कितना है। इन्ही मोहों ने हिन्दी की उन्नति में काफी बाधा डाल रक्खी है।

इस समय भारत में त्रिभाषाई फार्मूले की ही आवश्यकता है। (१) राष्ट्रीय भाषा, (२) प्रान्तीय भाषा (३) विदेशों से सम्पर्क हेतु अन्तर्राष्ट्रीय भाषा। हमें सभी भाषाओं का सम्मान करते हुए हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा होने के नाते प्रत्येक क्षेत्र में इसे विशेष मान्यता देनी चाहिये।

अत. अगर सरकार और जनता वास्तविक रूप से हृदय से चाहती है कि हिन्दी की उन्नति हो तो सरकार को सब से पहिले इंग्लिश मीडियम की पढ़ाई पर प्रतिबन्ध लगाकर विदेशों से सम्पर्क हेतु अंग्रेजी को ऐच्छिक विषय रख कर हिन्दी (मीडियम) पद्धति से पढ़ाई को अनिवार्य करना होगा तथा सरकारी (कम्पटीशनों) प्रतियोगिताओं में हिन्दी को प्राथमिकता देकर उसे मान्यता देनी होगी। ऐसा करने से अभिभावकों और छात्रों का अंग्रेजी से मोह कम होकर हिन्दी के प्रति आकर्षण हो जायेगा तथा वे हिन्दी (मीडियम) पद्धति से पढ़ाई के लिए बाध्य हो जायगे। तथा सरकार को सरकारी कामकाज में प्रयोग करने के लिए कठिन हिन्दी शब्दों के बजाय आम बोलचाल के सरल शब्दों का प्रयोग करना होगा जिससे अहिन्दी भाषी भी उसे सरलता से समझ कर प्रयोग कर सकें। साथ में नेताओं को अपना भाषण क्षेत्रीय भाषा में देना चाहिये। अगर क्षेत्रीय भाषा बोलने में कठिनाइयां हों तो फिर राष्ट्रभाषा हिन्दी में ही अपना भाषण देना चाहिए जिससे ज्यादा से ज्यादा लोग उनका भाषण सुनकर लाभ उठा सकें। ऐसा करने से हिन्दी की उन्नति में बहुत बड़ा सहयोग मिलेगा। इसलिए जनता और नेताओं को अंग्रेजी का मोह छोड़कर सभी को अपना नैतिक उत्तरदायित्व समझकर भारत की एकता हेतु हिन्दी की उन्नति के लिए पूर्णरूपेण प्रयत्न करना चाहिए। इसकी उन्नति से ही देश का बिखराव रुकेगा क्योंकि हिन्दी ही देश की एकता की कड़ी है।

प्रस्तोता—
जितेन्द्रनाथ गुप्त (स्वतन्त्रता सेनानी)
१५५ बी, रवीन्द्र सारणी
कलकत्ता (प० बं०) ७००००७

हे मातृशक्ति !

धन्य धन्य हे मातृशक्ति ! है तुझको बारम्बार प्रणाम।
दया दिव्य वात्सल्य मूर्ति हे सृष्टि सृजन की सुन्दर धाम ॥१॥

तेरी उच्चमहत्ता-सम्मुख हिमगिरि भी शरमाता है,
गुण गौरव गाम्भीर्य सलिल को सागर थाह न पाता है।
तेरी मान-महत्ता समता से आकाश लजाता है,
तू प्रकाश की पावनता की स्वर्णिम ऊषा सी अभिराम ॥२॥

तू गृह-लक्ष्मी धनैश्वर्य की धारा धैर्य जुटाती है,
तू सरस्वती पर विवेक के अतुलित कोष लुटाती है।
तू दुर्गा असिधार व्रतों के उज्ज्वल केतु उठाती है,
त्रिपथगामिनी,भुवन भामिनी गङ्गा सी बहती अविराम ॥३॥

परमपुरुष की प्रकृति प्रयसी सी जननी अभिरूपा तू,
पालन पोषण प्रथा पालिका कुछ की सुधा स्वरूपा तू।
रस, शृङ्गार, हास्य, करुणान्वित कविता कला अनूपा तू,
तू ही क्रान्ति शान्ति धन धारिणी, तेरा यजन निरा निष्काम ॥४॥

तू ऋषि, मुनि, योगीन्द्रजनों की परम्परा उपजाती है,
वाल्मीकि कवि, वेदव्यास, गुरु गौतम कपिल बनाती है।
राम और घनश्याम, पवनसुत, दयानन्द प्रकटाती है,
तू वैज्ञानिक वरदविद्या की अद्भुत लीला ललित ललाम ॥५॥

इडा, भारती, मही रूप में तू प्रयाग सी प्रकटी है,
तू ब्राह्मी लिपि धार धरा में शब्द ब्रह्म से लिपटी है।
तू निर्माण-दिशा में सचमुच वासन्ती सी छिटकी है,
तेरे आंगन गाती रहतीं सतत ऋचाएं श्यामा साम ॥६॥

तेरे ऋण से उऋण हुआ हो है माई का लाल नहीं,
तेरे बिन संसार-सार की गल सकती है, दाल नहीं।
तेरे ऊपर कर सकता है, शासन भी यह काल नहीं,
"प्रणव" काव्य की कड़ियां भजती रहें निरन्तर तेरा नाम ॥७॥

—कविवर "प्रणव" शास्त्री, एम०ए० महोपदेशक
शास्त्री सदन, रामनगर (कटरा) आगरा (उ. प्र)

बन्दा वैरागी...

(पृष्ठ ३ का शेष)

प्रकट करके उसके प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति को व्यक्त किया है। इसके साथ ही अन्य भाइयों से प्रार्थना की है कि वे भी उसके जीवन का अध्ययन करें।"

भाई परमानन्द जी के इन विचारों में कितनी सदाशयता है। जब इस पर विचार किया जाता है तो हम देखते हैं कि इस वीर ने हिंदू सिख धर्म की रक्षार्थ क्या कुछ नहीं किया। उसने फिर एक बार सारे पंजाब तथा कुछ भाग यू० पी० तथा पहाड़ी प्रदेश को जीत कर अपने साथियों के सुपुर्द कर दिया। उसके कुछ साथियों ने उसका साथ छोड कर मुगल राज्य में नौकरी कर ली तथा वैरागी का साथ छोड मुसलमानी हकूमत का साथ देकर फिर देश को दासता को बेडियां अपने हाथ से अपने हाथों में पहना दीं। वीर वैरागी की शहीदी इतनी शानदार है कि भाई जी के शब्दों में इसका दर्जा यसूह से भी ऊचा है। जिस दिलेरी तथा शान से उसने अपने आप का बलिदान दिया, यह भी संसार के अन्दर एक लाजवाब बलिदान है। जल्लाद गरम-गरम चिमटों से शरीर को नोच रहा है, चुपचाप सहन कर रहा है। न मुह से हाय न आंख में पानी। उसके नन्हे पुत्र को कत्ल कर उसका कलेजा निकाल कर वैरागी के मुंह में ठूंसा गया। देखने वाले रो रहे हैं परन्तु वह कुछ नहीं कहता। मरते दम तक उसको अभिमान था कि मैंने दुराचारियों के विरुद्ध एक सच्चे राजपूत क्षत्रिय के धर्म को पूरा किया है। एक मुस्लिम राज अधिकारी के यह पूछने पर कि इतने भयानक कष्टों को तुम कैसे सहन कर रहे हो? तो वैरागी ने उत्तर दिया–जिसे आत्मज्ञान है वह जानता है कि आत्मा दुःख से परे है। मैं आत्मा हूं न कि शरीर।

भाई जी बडे दुःख के साथ लिखते हैं। "इस देश के अन्दर एक वीर उत्पन्न हुआ, जिसके जीवन के कारनामे अनुपम हैं। जिसकी शहादत अद्वितीय है, परन्तु आश्चर्य है तो केवल इस बात का कि इस जाति ने ऐसे वीर शिरोमणि को भुला दिया। यदि इसके बलिदान पर कोई समाधि न हो तो कोई हर्ज नहीं, यदि इसके नाम पर कोई मन्दिर या गुरुद्वारा न हो तो भी कोई हर्ज नहीं, यदि इसका और किसी प्रकार का कोई स्मारक न हो तो कोई परवाह नहीं परन्तु यदि हिन्दू बच्चों के हृदय मन्दिरों में राम और कृष्ण की तरह वैरागी का नाम नहीं बसता तो जाति के लिए इस से बढ कर और कोई अक्षम्य पाप न होगा।" (पृष्ठ ६३)।

भाई जी लिखते हैं–'जो पद राजपूताना के इतिहास में महाराणा प्रताप को और महाराष्ट्र के इतिहास में महाराज शिवा जी को प्राप्त है वही पद पंजाब के हिंदू वीर वैरागी को देंगे। "वीर वैरागी ही हैं जिन्होंने पंजाब में एक विदेशी राज्य को मिटा कर अपना राज्य स्थापित किया। वीर वैरागी सच्चे त्यागी थे।" भाई जी को इस का बडा दुःख है कि हिंदू जाति न वीर वैरागी को उपेक्षित करके महा पाप किया है। भाई जी बड़े गौरव से लिखते हैं–"वैरागी की आत्मा में हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति के लिए अनन्य भक्ति और अगाध प्रेम था।"

वैरागी न तो पंथ में सम्मिलित हुआ–इस बात की पुष्टि मे भाई करतारसिंह जी ज्ञानी इस प्रकार लिखते हैं–

जब माता सुन्दरी जी गुरु पत्नी जी ने वीर वैरागी को पत्र लिखने का इरादा किया तब उनके साथ रहने वाले भाई मती सिंह जी माता जी को पत्र लिखने से रोकते हैं। वे शब्द इस प्रकार ज्ञानी जी लिखते हैं–

माता लिखन दी लोड की है,
नैनूं बन्दा समझ तू पूत पराया–
न ओह साध नहीं सिघा दे पथ विच्चो
किते भेजया गुरा दा आया–न वोह
पहिल दा सिख न सहिजधारी नहीं,
खाल से नाल रलाया। जे तां सिह
होवे लख जोर तेरा माता समझ लै
सच सुनाया।

माता सुन्दरी कुछ विचारया न
कहया शाह सो सब लिखाया।

वीर वैरागी के बारे में एक और स्थान पर ज्ञानी करतार सिंह लिखते हैं–

वीर वैरागी ने गुरु जी को कहा कि आप मुझे अपनी तरफ से कोई शस्त्र देवें तब गुरु जी ने उसको खडा दिया। वह ज्ञानी जी के शब्दों में–

"जहड़ा गुरु जी दे खंडा गात्रेसी
जहिनू रख दे गलदा हार करके–
ओह बन्दे दे गातरे पा दित्ता
खुशी नाल महाराज उत्तार करके"

इस पर गुरु जी के साथी सिखों ने बडा रोष कर के ज्ञानी जी के शब्दानुसार इस प्रकार लिखा है–

"गुस्सा चडह आ सिहा सारयां
नूं सबो बोल उठे भनकार करके–
गुस्सा थमया रहा न किसे पासों
अखां लाल चहरे अगेयार करके–
डास खडे दा नहीं अधिकार उहनू
सानू दहयो साढा अधिकार क-के।"

इससे पता लग सकता हे कि वैरागी हिन्दू वीर था।

इतनी बडी सफलता के होते हुए भी अन्त मे वैरागी हार गया तथा पकड कर देहली ७८० साथियो समेत लाया गया। महान् असह्य पीडा को दे देकर उसके साथी शहीद कर दिये गये। वैरागी माधोदास को जिस प्रकार शहीद किया गया वह भी बेमिसाल तथा निराला ही था, परन्तु यह जिस कारण से हुई उसका बयान करने से भी शर्म आती है। वैरागी से अलग होने वाला धडा अपने आप को तत्त खालसा कहने लगा। उसके नेता गणों में विनोद सिंह तथा काहन सिंह थे। वे वैरागी के इतने विरोधी हुए कि मुगल बादशाह की सेना के साथ मिलकर वैरागी के सामने लडने लग गये जिससे वैरागी का दिल टूट गया तथा उस युद्ध मे जो उस का साथ छोडने वाले दुश्मन के साथ मिलकर लडने आये तो वैरागी पीछे छूट गया।

●

वेदों में विज्ञान...

(पृष्ठ ४ का शेष)

पठन-पाठन किया। जिसके कारण उनको कुछ आभास हो पाया। अन्तिम काल में महर्षि दयानन्द सरस्वती इस बात से बडे निराश थे कि वे उनके वेद भाष्य के अर्थों को समझने वाला या ज्ञान देने वाला कोई भी व्यक्ति नहीं मिल सका। किन्तु बाद मे उन्हें इस चीज से कुछ सन्तोष प्राप्त हुआ था कि उन्होने जो कुछ भी लिखा था उसके आधार पर ही वेद विद्या के विज्ञान को बाद के व्यक्ति समझ सकते या आगे बढा सकते हैं। उनकी दूरदर्शिता का पता तो केवल इसी बात से चल जाता है कि उन्होने आर्यसमाज के नियमों का निर्माण ही वेदों को पढने के लिए किया। (क्रमश)

उत्तम स्वास्थ्य के लिए

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी

हरिद्वार की औषधियां

सेवन करें

शाखा कार्यालय—६३, गली राजा केदारनाथ,
चावड़ी बाजार, दिल्ली-६ फोन। २६१८७१

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ फोन : ३१०१५० के लिए डा० धर्मपाल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा
वैदिक प्रेस, गली नं० १७; कैलाशनगर दिल्ली-३१ में मुद्रित। रजि० नं० डी० (सी०) ७५६

The house is naturally utterly desolate and forlorn since the death of the dear child who was its living soul It is impossible to describe how we miss him at every turn. I have suffered every kind of misfortune, but I have only just learned what real unhappiness is In the midst of all the suffering which I have gone through in these days, the thought of you and your friendship, and the hope that we may still have something reasonable to do in this world together, has kept me upright

At the end of July Marx answered a letter of condolence as follows 'Bacon says that really important people have so many contacts with nature and the world, have so much to interest them, that they easily get over any loss I am not one of those important people My child's death has affected me so greatly that I feel the loss as keenly as on the first day My wife is also completely broken.'[39] The wound never completely healed Even after ten years and more Jenny Marx had not overcome her grief. 'The longer I live without the child, the more I think of him and with the greater grief', she wrote to a friend

In the summer of 1856 Frau Marx went to Trier with her daughter to visit her mother She found her dying An uncle of hers had died not long before, but he was an old man of eighty-seven whom she barely knew, and his death, as Marx put it, 'was a very happy event' The bequest from the two relatives made it possible for them to pay their old debts. In the autumn of 1856 they were at last able to change their two-room dwelling in Soho for a comfortable little house on the outskirts of the city at 9 Grafton Terrace, Maitland Park, Haverstock Hill But the improvement did not last for long The *New York Tribune* accepted fewer and fewer of Marx's articles They needed practically all their space for American politics and articles on the presidential elections, which had to be given preference to events in Europe, and then the approaching crisis began to cast its shadows before

Marx and Engels had expected the crisis even sooner As early as January 1855, England, in Marx's opinion, was in the midst of a great trade crisis. Yet the *dies irae*, which, Engels

hoped, would 'ruin the whole of European industry, glut all the markets, involve all the possessing classes, and cause the complete bankruptcy of the bourgeoisie',[40] did not arrive until the autumn of 1857, and then not nearly so dramatically as Engels expected, though assuredly it was terrible enough

The first great crisis of the capitalist world started in America and embraced the leading countries of Europe; England as well as Germany and France Marx and Engels thought their time had come Marx wrote to his friend that, in spite of his own 'financial distress', since 1849 he had never felt so 'cosy' as after this outbreak,[41] and Engels himself felt 'enormously cheered'.[42] The time had come to finish his economic work On 8 December 1857 he wrote to Engels that he was working 'like mad' right through the night summing up his economic studies, in order to have at least the outlines in his head before the deluge [43]

In the winter of 1850–51 Marx had resumed work on the economic study he had started in Brussels and had had neither the time nor the inclination to complete during the years of revolution.[44] In his thorough way he collected all the available material, made his way once more through the works of the great economists, and in April 1851 believed that after the five more weeks he intended to devote to 'tout ce fatras économique (ça commence à m'ennuyer)', [45] he would be able to sit down and start to write his book Two months later he set himself a new date. The material, he remarked to Weydemeyer, had so many damned ramifications that in spite of all his exertions he would not be ready for another six or eight weeks All the same, in spite of all outward disturbances, the thing was hurrying to a conclusion 'The democrat simpletons, to whom enlightenment comes from above, naturally do not need to make such exertions Why should they, born as they are under a lucky star, trouble themselves with economic and historical material? The whole thing is so simple, as the valiant Willich used to tell me'[46] But even this respite expired First more political work intervened, and from 1853 to 1856 his theoretical economic labours lanquished altogether. Though

Marx gave a great deal of attention to economic events, his own economic work had to give way to the task of trying to earn a living Occasionally Marx looked through his old notebooks and read fragments here and there, but it was the crisis that first compelled him to take up the work at the point at which he had broken off more than six years before.[47]

The crisis affected Marx personally very severely In October the *New York Tribune* informed him that it had dismissed all its European correspondents except B. Taylor and himself, and that in future he was only to send one article a week Distress once more entered the household from which it had only just been banished Marx's wife was ill and the first signs of the serious liver trouble which was to attack Marx repeatedly in years to come made their appearance in the summer Marx's financial distress increased rapidly during the winter, and at the beginning of 1858 he had reached a pitch when he wished himself a hundred fathoms deep under the earth rather than go on living in the same way He wrote to Engels that he himself was able to escape from the wretchedness by concentrating hard on all sorts of general questions, but his wife did not have this resource.[48] A few weeks later he wrote that it was fortunate so many cheering things were happening in the outside world, because personally he was leading 'the most troubled life that can be imagined'[49] There could be nothing more stupid for people of universal aspirations than to marry and give themselves up to the 'petites misères de la vie domestique et privée', he said. But even if the house tumbled about his head he was determined to finish his book Marx worked so hard that in April 1858 he collapsed. He complained to Engels that if he so much as sat down and wrote for a few hours it meant that he had to lie down and do nothing for a few days[50] In the summer the situation had become 'absolutely intolerable'[51] On 15 July 1858 he wrote to Engels that as a direct result of the position he was in he was completely incapable of work, partly because he lost the best part of his time vainly running about trying to raise money, partly because his powers of concentration could no longer hold out

against his domestic troubles, 'perhaps in consequence of physical deterioration . . . The inevitable final catastrophe cannot be averted much longer.'[52] A loan of £40 which Freiligrath arranged for him and on which Marx had to pay 20 per cent interest, helped him over the worst for a few weeks.

Marx's manuscript was finished at the end of January 1859. It was not *Das Kapital*, the great work that Marx had planned. The first volume, an edition of 1,000 copies of which now appeared in Berlin – it had been very difficult to find a publisher – was called *Critique of Political Economy* and consisted of only two chapters, on goods and money.[53] It had appeared, as Marx hoped it would, 'before the deluge', but that was because the deluge did not occur. In 1859 the crisis had passed, the old world had not collapsed, the revolution had not come. The effects of the crisis continued.

New political life awoke in Germany, though very faintheartedly. In Italy the movement for national liberation flared up anew. France's industry had been hard hit by the crisis, the state finances were disorganized, the price of corn fell, the peasants, who constituted Bonaparte's strongest support, were grumbling, opposition reared its head among the petty bourgeoisie, the workers were gradually shaking off the paralysis which had held them in its grip since June 1848. In this threatening situation the Emperor took the way out that lay nearest to his hand and went to war – not a general European war, the consequences of which could not be foreseen, but a localized war in which he had the maximum chances of victory. A victory over Austria and the expulsion of the Austrians from Italy was bound to strengthen his position, bind the army to him once more and confirm the false Napoleon as the legitimate successor of the true.[54]

Marx's attitude to the Franco-Austrian War of 1859 was determined, like his attitude to the Crimean War, by the interests of the revolution only. The revolutionary party, weak as it might be, must do everything in its power to prevent Bonaparte's victory. The Austrian hangman's yoke in Italy must certainly be broken, but he who assumed the task of delivering

the people of Italy was the enslaver of the people of France, and victory would only confirm his power. The defeat of Austria, which since the middle of the eighteenth century had opposed the advance of Russia in Eastern Europe, though its opposition was 'helpless, inconsequent, cowardly but stubborn', could only be advantageous to Russian Tsarism The enemy was Napoleon III and Russia Even if victory should liberate the Italians – as in fact it did not – the interests of the European revolution came before those of Italian national liberation

In their attitude on this occasion Marx and Engels were practically alone in the revolutionary camp To the German radicals the Russian danger seemed remote, but reactionary Austria was close at hand It was difficult to be anti-Austrian without being Bonapartist Lassalle achieved this *tour de force*[55] Some of the German democratic *émigrés* were noticeably edging towards Badinguet (which was what Marx called Napoleon He either called him Badinguet or Boustrapa or Barnum, or at most Louis Bonaparte, but Napoleon never) The German *émigrés* had political reasons for their attitude But there were also those who proclaimed the Emperor's European and more specifically German mission in a torrent of tyrannicidal words because they were paid to do so Among them was Karl Vogt, a former left-wing leader in the Frankfurt Parliament, and now a professor in Switzerland and the ideal of the 'enlightened' philistines.

A small German newspaper in London which was more or less on good terms with Marx accused Vogt of being a bought agent of Napoleon The accusations were reproduced in a leading reactionary paper in Germany Vogt well knew that his patron would not betray him and brought an action against the newspaper When it came into court the people in London who had hitherto acted as if they had the clearest proofs of Vogt's venality suddenly assumed the attitude of knowing nothing whatever about it, and Vogt, though his case was dismissed on technical grounds, left the court in the triumphant role of injured innocent. He published the report of the

trial, at the same time attacking Marx as the ringleader of those who had slandered him, in spite of the fact that Marx had nothing whatever to do with the whole affair Vogt alleged that Marx was the leader of a gang of *émigrés* who made a good living by blackmailing revolutionaries, threatening to denounce them to the police, and by forging banknotes

Vogt's allegations were woven into such a highly ingenious web of lies, with truth and known fact so skilfully blended with half-truths and impudent fabrications, that some of the insinuations were bound to stick in the minds of those not fully acquainted with the facts of 'emigrant' history Marx tried in vain to bring an action against Vogt and his friends It was impossible to allow the slander to go unchallenged Distasteful though it was for him to reply, and hating as he did the necessity of replying to personal accusations and thus of talking about himself, which, as he said with truth, he generally scrupulously avoided, he decided that the measure of success likely to be obtained by Vogt's tissue of lies compelled him to speak His polemical *Herr Vogt*, a book of 190 pages, appeared at the end of November[56] Marx transferred the accusation of lying to its author, and his analysis of Vogt's writings made practically a certainty of the suspicion that he was in the pay of Napoleon. Papers published by the Republican Government in 1871 supplied the documentary proof. In August 1859 40,000 francs had been paid Vogt out of the Emperor's private fund

Marx's fight against the attempt to secure his political annihilation by means of these denunciations occupied more than a year of his life. He was not able to resume his economic work until the middle of 1861. The years 1860 to 1863 were among the gloomiest of Marx's life. At the end of November 1861 his wife went down with smallpox. She had barely recovered when Marx was taken ill himself. For years he suffered from carbuncles and boils, which were apt to break out again as soon as they had healed, and often made him unable to work for weeks He was 'plagued like Job, though not so godfearing', as he wrote to Engels The doctors gave him excellent advice. 'Everything the gentlemen say boil down to the fact

that one ought to be a prosperous *rentier* and not a poor devil like me, as poor as a church mouse.'[57] When Marx said that in 1868 he was much better off than he was at the beginning of the 1860s. In January 1860 the *New York Tribune* asked him to send nothing for six weeks After this interval his work was only accepted intermittently. A connection with the Vienna *Presse* seemed to offer a substitute, but after three months' hard work Marx only received £6 in all His connection with the *New York Tribune* finally ended in April 1862. He was told that all its space was needed for American affairs, and therefore his correspondence must cease This dried up Marx's only source of income Engels, whose position in the firm of Ermen and Engels had gone on improving, sent Marx what he could and preserved the numerous family from the worst

Once more everything that could be spared, and many things that could not be spared, including the children's shoes and clothes, resumed the trail to the pawnshop In the spring of 1861 Marx went to Holland to see his uncle, Lion Philips, who gave him an advance of £160 on his mother's estate.[58] Most of this sum went to repay old debts, and in November Marx was once more forced to write to Engels, telling him that his wife was suffering from such a serious nervous breakdown that he was afraid that if the struggle went on much longer, there would be a disaster 'Take all in all', he wrote in February 1862, 'a lousy life like this is not worth living '[59] In the summer of 1862 Marx tried once more to persuade his mother to help him, but she would not give him a penny. 'My wife says she wishes she were with her children in her grave', he wrote to Engels at the time, 'and I really cannot blame her, for the humiliations, sufferings and horrors which we have had to go through are really indescribable '[60]

Marx was determined to pursue his aim through thick and thin In 1859 he wrote to a friend that he would not allow bourgeois society to turn him into a 'money-making machine' But he had now reached such a pitch of distress that he wanted to become a money-making machine. In 1862 he

applied for a job in a railway office, but his application was rejected on account of his bad handwriting. Jenny, the eldest daughter, unknown to her parents, wanted to go on the stage, not because she had any special inclination towards it, but for the sake of earning some money. Marx considered whether he should not break up his home, find posts as governesses for his two elder daughters and move with his wife and youngest child into a lodging house in the poorest district in London Engels sent a five-pound note, and then another and another, and nearly lost his temper when Marx apologized for 'pressing' him

In January 1863 their friendship survived the first and only strain to which it was submitted. Engels lost his wife 'I simply cannot tell you how I feel', he wrote to Marx in a short note telling him the news 'The poor girl loved me with all her heart.'[61] Marx wrote back· 'The news of Mary's death has both astonished and dismayed me She was extremely good-natured, witty and very attached to you' He then went straight on to describe his own desperate attempts to raise money His letter ended with.

> It is revoltingly egoistical of me to retail all these horrors to you at such a moment But the thing is homeopathic One evil cancels out another At the end of my tether as I am, what am I to do? There is not a single human being in all London to whom I can speak freely, and at home I play the silent stoic, to counterpoise the outbreaks from the other side Work under such circumstances is absolutely impossible Instead of Mary should it not have been my mother, who is full of bodily infirmities and has lived her life? You see what strange notions we 'civilized' people get under the stress of certain circumstances [62]

Engels was deeply hurt He wrote to Marx that all his friends had shown him more sympathy and friendship than he could have expected on this occasion, which affected him deeply, and 'to you it seemed a suitable moment for the display of the superiority of your frigid way of thinking So be it!'[63]

Marx allowed some time to elapse before replying 'It was

very wrong of me to write that letter, and I regretted it as soon as it was sent', he wrote.

> It was not prompted by heartlessness. My wife and children will confirm me when I say that your letter, which arrived early in the morning, affected me as much as the death of one of my own nearest and dearest. When I wrote to you the same evening it was under the stress of very desperate circumstances. The brokers had been put in by the landlord, I had a summons from the butcher, there was neither coal nor food in the house and little Jenny was ill in bed. The only way out of such circumstances that I know is, generally speaking, cynicism.[64]

Engels thanked his friend for his frankness. 'You will understand the impression your first letter made on me. I could not get it out of my head for a whole week. I could not forget it. Never mind, your last letter has made up for it, and I am glad that in losing Mary I have not at the same time lost my oldest and best friend.'[65]

During the course of the year Engels gave Marx £350, which was a great deal considering how bad his business was as a consequence of the cotton crisis. Marx's mother died at the end of November, and the legacy was not a large one. It mitigated at least the worst of Marx's distress. In May 1864 the faithful Wilhelm Wolff died in Manchester and left Marx £800. From September Engels, who had become a partner in his firm, was able to give him greater financial aid. From 1864 onwards Marx's financial position was tolerable and his freedom from petty cares enabled him to devote himself to his work. But his anxieties only really ended in 1869, when Engels sold his share in the cotton mill and was able to make Marx a definite, if moderate, yearly allowance.[66]

Das Kapital was born in the years of illness and poverty, when Marx was sometimes reduced to the point of starvation. He wrote it while harassed with cares, agonized by his children's distress, tormented by thoughts of the next day. But nothing could completely overwhelm him. From time to time Engels urged him to finish the work at last. He knew Marx's over-conscientiousness. But Marx went on pruning and filing,

and keeping up to date with the latest literature on the subject. 'I cannot bring myself to send anything off until I have the whole before me', he wrote to Engels. 'My writings, whatever shortcomings they may have, have one characteristic: they form an artistic whole. In my opinion that is only obtainable by never letting anything be printed before I see the whole before my eyes.'[67]

The fair copy of the first volume was completed in March 1867. Marx, as he wrote to Becker, 'could throw it at the head of the bourgeoisie' at last.[68] Marx read the final proofs on 16 August. At two o'clock in the morning he wrote to Engels as follows. 'So this volume is finished. Thanks are due to no one but you for making it possible. Without your sacrifice for me it would be impossible to carry out the three volumes of this tremendous work. I embrace you, full of thanks. I greet you, my dear and faithful friend!'[69]

An edition of 1,000 copies of *Das Kapital* appeared in Hamburg at the beginning of September.[70]

In 1867 Marx wrote to Siegfried Meyer:

> You must think very badly of me, the more so when I tell you that your letters not only gave me great pleasure but were also a real comfort to me during the painful period during which they came. Why did I not answer you? Because I was perpetually hovering at the brink of the grave. I therefore had to use every available moment to work, in order to finish my book, to which I sacrificed health, happiness and family. I hope this explanation will be sufficient. I laugh at the so-called 'practical' men and their wisdom. If one wants to be an ox, one can easily turn one's back on human suffering and look after one's own skin. But I should have regarded myself as really impractical had I died without finishing my book, at least in manuscript.[71]

Paul Lafargue says that Marx's favourite motto was 'travailler pour l'humanité', to work for humanity.

The twelve years from 1852 to 1864, from the dissolution of the Communist League to the foundation of the International, were filled with journalistic hack-work performed to keep body

and soul together, and with poverty endured for the sake of his life-work

Apart from his contacts with Chartists and Urquhartites, which were so slight that they hardly counted, Marx, who had been at the very centre of the furious political *mêlée* of the year of revolution, kept entirely aloof from political activity. His interests were devoted to foreign politics, the war, the Indian Mutiny, the Anglo-French campaign in China, the trade crisis, the internal state of France, the anti-slavery movement in America – events which he could only observe[72] In the articles Marx wrote and the correspondence he conducted with Engels there is little reference to Germany, the land to which the communists had paid chief attention in 1847 and in which the Communist League had worked under Marx's leadership Marx certainly did not ignore developments in Germany, but he followed them only incidentally. The revival of the German workers' movement was not his work. It happened without him. It happened against him, through Ferdinand Lassalle

Lassalle was born in Breslau in 1825 He was the son of a Jewish businessman He studied Hegelian philosophy in Berlin and adhered to it in its orthodox, idealistic form throughout his life. His political position after the middle of the 1840s was at the extreme left wing of democratic radicalism He made friends with Marx and became a communist during his few weeks of freedom in 1848 – he was in prison until the middle of August and was re-arrested at the end of October for inciting to arms against the Crown. When he came out of prison the *Neue Rheinische Zeitung* was on its last legs Marx and Lassalle did not meet again until the spring of 1861.[73]

They wrote to each other in the meantime. Lassalle was the more industrious correspondent of the two He kept Marx informed of his literary labours – he wrote a portly philosophical tome as well as a play – consulted him on political questions, offered and gladly gave Marx financial help. It was thanks to his mediation that the *Critique* was able to appear. He was the only man in Germany who was loyal to Marx

Marx had a high opinion of the younger man's energy and talents, though from the first he was repelled by his consuming ambition and his unbounded vanity. If no line remained of all Lassalle's writings except a letter of his dating from September 1845, it would suffice to explain the human gulf that parted him from Marx. At the age of twenty Lassalle wrote

> So far as I have power over human nature, I will use it unsparingly . . . I am the servant and master of ideas, priest of the god who is myself. I would be a player, a plastic artist, my whole being is the presence of my will, the expression of the meaning I put into it. The vibrant tone of my voice and the flashing light of my eye, every line of my face must reflect the imprint which I put upon it.[74]

Lassalle loved theatrical attitudinizing, which Marx detested from the bottom of his heart. He naively placed personalities as far before causes as Marx did the reverse, and was utterly careless about what means he chose to achieve his ends. He was a man who was ready to sacrifice everything for immediate success. From the first Marx did not completely trust him. The Cologne communists refused to admit Lassalle to the League. But Marx regarded Lassalle as a front-rank politician and agitator even after personal contact with him in 1861 and 1862 had enabled him to form a better opinion of the negative sides of his character than was possible from letters.

Marx visited Lassalle in Berlin in the spring of 1861. The Prince Regent of Prussia, the subsequent Emperor Wilhelm I, issued an amnesty which made it possible for exiles to return on certain conditions. Marx, who did not believe he would be able to hold out much longer in London, was thinking of returning to Germany. Lassalle proposed that Marx should collaborate with him in publishing a paper. Marx said to Engels that Lassalle might be very useful under strict supervision as a member of an editorial staff, otherwise he could only be harmful.[75] The plan, however, came to nothing. Marx's

attempt to re-acquire Prussian nationality, an essential preliminary to assure his being able to remain in Prussia, came to nothing too The police suspected him of republican or at any rate of non-royalist views

After the passing of the economic crisis in Germany a period of prosperity set in. The consequence in the political field was a revival of liberalism The Progressive Party in the Chamber opposed the Government more or less violently, and outside it tried to win over the 'fourth estate' (the tactical resources of the bourgeois revolution are very limited and always repeat themselves) Workers' educational associations, founded by democratic intellectuals, sprang up on every side Life revived in the workers' movement Lassalle went to London in the summer of 1862 and proposed to Marx that the two of them together place themselves at the head of the new movement

Marx refused, both on personal and political grounds He could not interrupt his work on economics. His personal distaste for Lassalle had developed into a violent aversion. 'Lassalle is now set up not only as the greatest scholar, the most profound thinker, the most brilliant of investigators, etc., but also as a Don Juan and a revolutionary Cardinal Richelieu, with his everlasting chatter, unnatural falsetto voice, his unbeautiful demonstrative gestures and his didactic tone on top of it all '[76] That was how Marx wrote to Engels while Lassalle was in London, and it was one of the mildest of his utterances The political and economic theoretical foundations that Lassalle proposed for the new workers' party were completely unacceptable to Marx. Lassalle's party was to start by demanding that the state should put capital at the disposal of the workers to found cooperative societies [77] Lassalle knew very well that even if these cooperative societies materialized, which was more than doubtful, they would at best create a few enclaves within capitalist economy. Concentrating on the cooperative movement meant weakening at the outset the proletarian struggle which had only just begun Marx foresaw that Lassalle, 'like every man who believes he has a panacea for the sufferings of the masses in his pocket, will give his

agitation the character of a religious sect'.[78] Lassalle put the Chartist demand for universal suffrage on his programme side by side with the demand for state aid. 'He overlooked the fact that conditions in Germany and England were entirely different', Marx later wrote. 'He overlooked the lessons of the *bas empire* concerning universal suffrage.'[79] In London Lassalle did not mention the over-cunning tactics he had prepared for leading the workers' movement and started to apply as soon as he returned to Germany.

Lassalle conducted his propaganda in speech and writing from 1862 until his early death in the late summer of 1864. His speeches were brilliant, his pamphlets magnificently written. He did in fact create a German workers' party. The General Union of German Workers was founded in May 1863. But before it started its existence Lassalle had started to negotiate with Bismarck.

The conflict between the Prime Minister of Prussia and the Progressive majority in the Chamber was becoming more and more acute. Anything or anybody likely to damage them was welcome to Bismark, even a socialist and Jewish agitator like Lassalle, for whom the Prussian *Junker* would otherwise not have had much use. Most of the workers who were at all politically awake adhered to the Progressives. Lassalle's first task was necessarily to part them from the bourgeoisie. That the liberal opposition would be temporarily weakened as a result was not of great importance. For once the workers' party was formed it would have to fight not only the liberal bourgeoisie but the incomparably more resolute militaristic monarchists. Bismark was aware of this. In making a compact with Lassalle he acted like a power coming to terms with a party which might be a power in the future, but for the time being was only a pawn on the chessboard next to other and more powerful pieces. Bismarck did not betray his class, but Lassalle nearly betrayed the workers' movement to Bismarck. How far Lassalle went with Bismarck Marx never knew as long as Lassalle lived, and even after his death he never learned the whole truth. It did not come to light until an old cup-

board in the room of the Prime Minister of Prussia was opened in 1927 It contained the letters exchanged between Bismarck and Lassalle.[80] The Workers' Union was so organized that its president, who of course was Lassalle himself, ruled over it like a dictator. Lassalle was justified in calling it his 'kingdom' He was able to show Bismarck how gladly the workers subjected themselves to a dictatorship when they saw that it was working in their interests, and even how readily they would be to honour the King as the socialist dictator Lassalle believed in *Realpolitik*, which meant, in Marx's words, that he only admitted as real what was immediately in front of his nose In this case what was in front of his nose was the goodwill of the Government in its fight with the Progressives about the independent workers' party. The workers were to start establishing their independence by renouncing it to the party of reaction Lassalle was on the point of turning the General Union of German Workers into a small auxiliary corps of feudal reaction against the bourgeoisie. Even his state aid slogan prompted him to seek Bismarck's friendship Lassalle told the workers that if only the state helped, the cooperative societies could be formed at once. That state was the existing state, the Prussian monarchy. Lassalle, by limiting the proletarian struggle to one small aim, was bound to compromise with the rulers of Prussia, for it was they and not some power in the dim and distant future who were to help

It was impossible for Marx in London to know how deeply Lassalle was involved with Bismarck. Lassalle believed he could outmanoeuvre Bismarck, but was in fact outmanoeuvred by him Lassalle sought Bismarck's help – only temporarily, of course, for as long as he should need it against the Progressives, after which, when it was no more needed, he would free himself from this powerful patron But in fact this strange alliance only resulted in his increasingly becoming Bismarck's tool Marx could not possibly know the full extent of Lassalle's deviation Nevertheless he followed Lassalle's agitation with the most extreme suspicion It became clear that he would have to oppose the fatal tendencies of the new

movement. Marx broke off personal relations with Lassalle in 1862 Lassalle still sent Marx his pamphlets, but without a line of greeting Marx found nothing in them but unskilful plagiarism of the Communist Manifesto and his later works, which Lassalle knew very well.[81] Marx never replied

In spite of all his deficiencies and mistakes, his compromises and his manoeuvres, in spite of his dictatorial attitude, which was fundamentally inimical to the workers' movement, in spite of the limitations of his economic insight, Lassalle has the immortal merit of having revived the workers' movement in Germany[82] The creed of Lassalle remained that of a sect. After some vacillations and hesitations the German proletariat followed another route than that which Lassalle showed them

On 30 August 1864 Lassalle was killed in a non-political duel. Four weeks later the International Working Men's Association was founded in London

[17]

The International Working Men's Association[1]

In the long years of exile Marx had so consistently declined to associate himself with any sort of political organization that he felt that the change of attitude indicated by the appearance of his name on the list of founders of a new international workers' organization in the autumn of 1864 required an explanation to his friends and sympathizers. On 29 November 1864 he wrote to his old friend Weydemeyer that he had consented 'because it is an affair in which it is possible to do important work'[2] The initiative for the formation of the new organization had come from men who were leaders of really active mass organizations That was the factor that distinguished it from its predecessors, and it was the decisive factor in causing Marx to abandon his customary aloofness He saw its negative sides plainly enough He was only too well aware of its heterogeneous nature and the wavering and unclear political views of many of those who were at the back of it. Nevertheless he joined it 'I knew that this time real "forces" were at work both on the London and the Paris sides', he explained to Engels on 4 November, 'and that was the reason why I decided to depart from my otherwise inflexible rule to decline any such invitations '[3] Engels approved of both Marx's decision and Marx's reasons It was necessary, he said, to be guided by the 'real circumstances'. To accept contact with the active leaders of a real movement was their duty 'It is good that we should once more be coming into contact with people who at least represent their class. After all, that is the main thing in the end', he wrote[4]

It was indeed the main thing. The immediate future demonstrated what a huge sphere of activity the new organization

opened up for Marx. The new organization was the 'International Working Men's Association', which was so soon destined to become famous and is known today as the First International. A new epoch in the history of the workers' movement and in Marx's life began with its foundation The 'sleepless night of exile' was over, and with it the loneliness and isolation from active, practical life Marx became once more, for the second time in his life, the organizer of the political struggle of the working class

At the beginning of the 1860s there was an upsurge of the workers' movement not only in Germany, as has already been mentioned, but also in England and in France, the two countries which took the chief part in the formation of the International Working Men's Association After a decade of apathy and paralysis, in which the active struggle of the proletariat was practically at a standstill, the workers once more took up the weapon of the strike and showed a new tendency to organize The workers in France had different traditions and fought under different conditions from those of the workers in England, and their principles and practice necessarily differed, but on both sides of the Channel they sooner or later realized that without independent organizations of their own they must necessarily remain impotent. Even if theoretical clarity were sometimes wanting, experience in the end compelled it.

French and English very soon saw that it would be necessary to get together There were two outstanding reasons for this The strike movement, which assumed particularly large dimensions in England, demanded a close *entente cordiale* with the workers of the other country, from which the employers attempted to import strike breakers In addition there arose at this time a whole series of international questions in which French and English workers must make common cause.

The first contacts between English and French workers were made in 1862 The great World Exhibition took place in London in that year It was visited by a delegation of French workers The idea of this visit arose in Bonapartist circles which nourished a 'Caesarian socialism' of their own and

aimed at propitiating the workers with the Empire They had the support of the Emperor's cousin, Prince Napoleon, the so-called 'Plon-Plon', who saw to it that the workers were allowed to form their own organizations in the factories to elect their delegates and raise funds to finance the journey. Such a 'legal opportunity' had of course to be exploited. Among those who took part in the electoral campaign and were elected to the delegation were men who had inaugurated an independent workers' movement in France Many other delegates were inevitably Bonapartists to a greater or less degree, but the representatives of the most active English workers' associations were not represented on the London committee formed to welcome the French delegation The London committee owed its formation to moderate Liberal Members of Parliament and equally moderate men of the cooperative movement – people who represented the extreme right wing of the workers' movement and took their stand on the principle of class peace, with which the speeches made at the meeting of welcome on 5 August 1862 were in entire conformity The English speakers declared that 'good understanding between our employers and ourselves is the only way to smooth out the difficulties by which we are at present surrounded' [5]

The meeting was really tame, with unctuous speeches and love, friendship and fraternal kisses Festival of harmony though it was, with it the history of the 'Red International' begins Apart from the beautiful ceremonies, the independent French delegates met the young English trade union leaders, entirely unfêted, and sowed the first seeds of the Anglo-French workers' alliance, the fruits of which manifested themselves in the following year

The old sympathy for Poland and the old hatred of Russian absolutism were still alive in England and France Both drew fresh strength from the Polish rising of 1863 The workers in both countries demanded intervention on Poland's behalf Petitions to Napoleon bore hundreds of signatures, and a huge workers' meeting in England sent a deputation to the Prime Mnister. The French Emperor

declined to receive the workers, but Prince Napoleon gave them to understand that France would like to intervene, in fact it would prefer to do so today rather than tomorrow, but unfortunately action was hampered by English sabotage On the English side Palmerston deplored the impossibility of stepping in on Poland's behalf, however much he would have liked to have done so, because France, unfortunately, insisted on standing aside Then there arose a plan for a joint Anglo-French pro-Polish demonstration. It took place in London on 22 July 1863. A special delegation came from Paris, and this time it consisted exclusively of adherents of the independent workers' movement. The demonstration failed in its purpose, if for no other reason than that by this time the Polish rising was on the verge of collapse But before the French delegates left England a decision had been made which was destined to be of great historical importance. They and the representatives of the English workers agreed in principle to the foundation of an international association of workers and elected a committee to do the work preparatory to an inaugural meeting The preliminaries dragged on for more than a year, 'addresses' were exchanged about the duties of the future association, manifestoes were drafted, and finally the inaugural meeting took place in St Martin's Hall, Long Acre, on 28 September 1864

Marx took no part in the preliminary work He read about the meeting of 22 July 1863 in the newspapers, followed the course of the Polish rising with passionate interest, became indignant at the attitude of British diplomacy, and was considering writing a pamphlet on the Polish question.[6] The Anglo-French workers' demonstration could not possibly have escaped his notice. But he had no direct contact with the organizers of the meeting and knew nothing of the preparatory work that was quietly going on He only heard of the organizers' plans a week before the inaugural meeting A young French exile, Le Lubez, a republican, was the contact man between the French workers and the English trade unionists, and he told Marx who were at the back of the movement and what their intentions were and invited him to take part

in the meeting as the representative of the German workers Marx recognized that this was a serious undertaking and accepted the invitation. Marx suggested his friend Eccarius, an old member of the Communist League, as spokesman for the Germans and he himself 'assisted as a silent figure on the platform'

The meeting was a complete success. The big hall was filled to the point of suffocation Speeches were made by Frenchmen, Englishmen, Italians and Irish. A unanimous resolution was passed to found an International Working Men's Association, with headquarters in London, and a committee was elected to draft the programme and statutes Marx was elected a member of this committee

The committee was far too big It had fifty-five members, of whom twenty-seven were English These were mainly trade union leaders Of the rest the French and Germans had nine representatives each, and the Italians, the Swiss and the Poles two each The majority of the non-English members were *émigrés* Politically the committee was heterogeneous, including old Chartists and Owenites, Blanquists and followers of Proudhon, Polish democrats and adherents of Mazzini Its social composition, however, was far more uniform Workers formed the preponderating majority

In these circumstances it was not very easy to agree on the fundamental aims of the association, its programme and its statutes.[7] Marx was unable to take part in the committee meetings during the first few weeks, partly because he was ill, partly for the simple reason that the invitations never reached him In the meantime the committee asked Weston, an old Owenite, to draw up a draft programme, a task to which he devoted himself with the most righteous zeal, pondering over each sentence for weeks at a time The task of translating the statutes of the Italian workers' association, which it was intended to make the basis of the associations' own statutes, devolved upon Major Wolff, Mazzini's secretary. When the two finally laid the fruit of their labours before the committee, its inadequacy was patent even to the least exacting Weston's

exposition, in Marx's opinion and everybody else's too, was 'full of the most extreme confusion and unspeakably verbose'. His suggested statutes were more impossible still Mazzini repudiated the class struggle and believed in solving the problems of modern industrial society with sentimental phrases of the kind that had been the fashion in the 1830s. The old carbonaro, who had been the leader of the movement for national liberation in Italy for generations, placed the national question above all else and could conceive of no method of organization other than that of the carbonari. The Italian workers' organizations which adhered to him were nothing but benefit societies founded to help in the national struggle Apart from its other shortcomings, the Italian draft was rendered impossible by the fact that, in Marx's words, 'it aimed at something quite impossible, a kind of central government of the European working class (of course with Mazzini in the background)'. The committee gave both drafts to Le Lubez to revise The result was, if possible, worse than ever. Le Lubez presented his text at a committee meeting on 18 October, the first that Marx attended Marx, as he wrote to Engels, 'was really shocked as he listened to good Le Lubez's frightfully phrased, badly written and entirely ill-considered preamble, pretending to be a declaration of principles, with Mazzini peeping out through every word, and encrusted as it was with vague scraps of French socialism' Marx made 'gentle' opposition and succeeded in having Le Lubez's draft passed to a sub-committee to be revised again.

Marx now got to work himself He summed up the sub-committee's duties in his own characteristic way. It was decided 'if possible not to leave a single line of the thing standing'. The sub-committee left him a free hand In place of the declaration of principles Marx wrote an 'Address to the Working Classes'.[8] The only thing it had in common with the draft was the title of 'statutes'. 'It is very difficult', he wrote to Engels, 'to manage the thing in such a way as to make our views appear in a form which make them acceptable to the workers' movement at its present standpoint Time is required to give the

re-awakened movement its old boldness of speech *Fortiter in re, suaviter in modo* is what is required '

The sub-committee accepted Marx's proposals, and only added a few moralizing phrases These were so placed 'that they could not do any harm' The 'inaugural address' was unanimously and enthusiastically accepted at a meeting of the general committee The 'International' had its constitution, and now it started its work.

The fundamental idea of the inaugural address and of the statutes was expressed in the phrase 'The emancipation of the working class must be the work of the working class itself ' The International served this aim by founding proletarian mass organizations and uniting them in joint activity Point 1 of the statutes said 'This association was founded in order to create a central means of unity and cooperation between the associations of workers which already exist in the various countries and aim at the same goal, namely, the protection, the rise and the complete emancipation of the working class ' The International left complete freedom to its various national sections as to the form their organization might take, and refrained from prescribing any definite methods of conducting the struggle Only one thing did it rigorously insist on That was the absolute independence of the member organizations The inaugural address also demonstrated from the experience of the English workers that the 'capture of political power has become the great duty of the working class'

The inaugural address and the statutes are typical of the work Marx did for the International in the five following years Marx saw it to be his duty to educate the masses, and gradually and carefully, but firmly and surely lead them towards a definite goal The groundwork of all his labour was a profound belief in the sound instinct of the proletarian mass movement Bitter experience in the years of revolution and still more in the years of exile had convinced him that it was necessary to keep aloof from all intermediary groups, especially organizations of exiles He had also become convinced that great workers' organizations, able to develop freely within their own

country, associated with the class movement as a whole, would find the right way in the end, however much they might vacillate and go astray. The inaugural address and the statutes and Marx's work in the International were founded on the sound instinct of the proletarian movement. The task that Marx set before his eyes was to help it, bring it to awareness and theoretical comprehension of that which it must do and of the experiences through which it must pass.

As Marx said, his old ultra-left-wing opponents in the 1840s had made the same error as Proudhon, the error into which Lassalle also fell. They did not seek, in Marx's words, 'the right basis for agitation in real conditions, but wanted to prescribe the course of the letter by certain doctrinal recipes'.[9] Marx sought its basis in the forms of the movement which life itself created. He avoided giving prescriptions. That does not of course mean that he let things take their own course. What he did rather was to help every movement to get clear about itself, to come to an understanding of the connections between its particular interests and the whole, of how its special aims could only be realized by the realization of the demands of the whole class, by the complete emancipation of the proletariat. An excellent example of Marx's tactics in the International was the way the inaugural address dealt with the cooperative societies. The cooperative movement was important at the time, and its influence was not always to the advantage of the workers' movement as a whole. The idea of independent cooperation was not seldom substituted for the idea of the class struggle. Protection of the workers, the trade-union struggle, and even the downfall of capitalist society seemed superfluous, if not actually noxious to many, who believed the cooperative movement capable of emancipating the working class. Marx did not attack the cooperative societies outright. By so doing he would have alienated from the International the groups of workers who adhered to the cooperative ideal. He said that the value of the great social experiment represented by the cooperative movement could not be overestimated. The cooperatives, particularly the cooperative factories,

had demonstrated that large-scale production, production in harmony with modern scientific developments, was possible without the existence of a class of entrepreneurs employing a class of 'hands' The cooperative societies represented a victory of the political economy of the working class over the political economy of ownership But experience had also demonstrated that, in spite of the excellence of their principles and their usefulness in practice, the cooperative societies were confronted with limits which they could not overstep The cooperative movement, to save the working masses, must be developed on a national scale and consequently be promoted by national measures. Thus the adherent of the cooperative ideal was forced to the conclusion that he who wanted cooperative enterprise must necessarily desire the capture of political power by the working class.

The fundamental idea of the inaugural address and of the whole of Marx's activity in the International was that the workers, acting on the basis of 'real conditions', which of course differed in every single country, must create independent parties, take part in the political and social life of their country and so make the proletariat ripe for the capture of political power

In the General Council, as the committee elected at the inaugural meeting soon came to be called, Marx was the acknowledged leader The work to be done was more than ample The magnitude of the need that the International fulfilled and the timeliness of its foundation were proved by its extraordinarily rapid growth. On 23 February 1865 Marx wrote to Kugelmann that the success of the International in London, Paris, Belgium, Switzerland and Italy had exceeded all expectations [10] On 4 March he wrote to Engels[11] that the organization was in touch with twenty-five towns in France, and on 15 April – six months after the meeting in St Martin's Hall – he wrote to one of the leaders of the Belgian section that there were more than 12,000 members in England.[12] Inquiries, suggestions, requests showered in upon the General Council from all sides News of new sections being formed poured in All

sorts of questions concerning matters of organization, inevitable in the case of any big new body, continually cropped up 'The French, particularly the Paris workers, regard the London Council as a regular workers' government for foreign affairs', Marx wrote to Engels at the beginning of March 1865.[13] The General Council, and in most cases that meant Marx, had to give instructions and advice and answer inquiries and incessantly take up positions towards political and economic events Marx complained to Engels in the middle of March 1865 that the International took up an enormous amount of his time, because he was in effect the head of the whole affair[14] He gave an example of how he had recently been occupied On 28 February he had had a meeting with the Frenchmen, Tolain and Fribourg, who had come from Paris. The meeting, which lasted till twelve o'clock at night, was in conjunction with an evening meeting, at which he had to sign 200 membership cards On 1 March there was a Polish meeting On 4 March a meeting of the sub-committee dealing with the French question lasted till one o'clock in the morning, on 6 March another meeting also lasted till one o'clock in the morning; on 7 March a meeting of the General Council lasted till midnight 'Well, *mon cher, que faire?*' Marx wrote 'If you have said "A" it follows that you go on and say "B" '[15] Marx often grumbled, but never missed a meeting of the General Council If at first it had seemed that the pressure of work was only going to be so great at the beginning, the belief soon turned out to be illusory It very soon became clear that the demands the International made on Marx were going to increase with every month. One question gave rise to two others It was inevitable and right that it should be so The International developed, not according to a system, but according to the inner logic of the movement, according to the 'real conditions'

In the case of internal questions within the organization Marx declined to exercise pressure, and he insisted that the General Council adopt a strictly above-party attitude in all disputes between the various groups 'Whom they have for a

leader is their business and not mine,' he said on the occasion of an internal German dispute in 1868.[16] At the beginning of 1865, when violent disputes arose between a group of workers led by Tolain and Fribourg, who took their stand by Proudhon, and another led by Lefort and Le Lubez, who were republicans and socialists, Marx made every effort to compose the dispute and keep both parties in the International[17]

The International had no programme if by 'programme' is meant a single, concrete, detailed system. Marx had intentionally made the statutes so wide as to make it possible for all socialist groups to join An announcement in the spring of 1870 declared that it was not the duty of the General Council to express a theoretical opinion on the programme of individual sections Its only duty was to see that they contained nothing inconsistent with the letter and the spirit of the statutes[18] Marx, in his pamphlet on the apparent rifts in the International written in 1872, again emphasized that the International admitted to its organs and its congresses all of socialist views without any exceptions whatever[19]

It must not be concluded that Marx's toleration of all the political lines of thought represented in the International meant that he abandoned his own critical attitude. His letters, especially those to Engels, contain the severest judgements on the confused mentalities with whom he had to deal The illness from which he suffered during the first few years that followed the foundation of the International did nothing to make his mood milder, and in fact a good many of the things the sections did were more than a little trying What is remarkable is not that Marx grumbled to his friends about the Proudhonists and the rest but the consistency and pertinacity with which he maintained his attitude and the restraint with which he tolerated all the conflicts that were bound to arise in the young movement It was not infrequent for him actually to defend a group on some internal matter whose programme, if what they stood for can be dignified with such an expression, he contemptuously dismissed in private letters

Tolerant as Marx was towards the various undercurrents

within the workers' movement, he resolutely fought all attempts to anchor the International to the programme of any single group or take away its character as a class movement. It was on the latter question that the first conflict arose. Mazzini's followers demanded the deletion from the inaugural address and the statutes of certain passages which emphasized the class character of the International. The General Council emphatically refused. The Italian Workers' Union in London, which had been founded and set going by followers of Mazzini, broke with its 'fathers'. This was the first victory of the 'Internationalists' in their long struggle with Mazzini. An echo of it is the judgement of Marx made by Mazzini years later. 'Marx', he said, 'a German, a man of penetrating but corrupting intelligence, imperious, jealous of the influence of others, lacking strong philosophic or religious convictions, has, I fear, more hatred, if righteous hatred, in his heart than love.'[20]

The struggle with the followers of Mazzini was but a small prelude to the far more important struggle between Proudhonists and collectivists which filled the whole first period of the International up to 1869.

During the first years of the International its main support came from English and French workers' organizations. There was a fundamental difference in the nature and political outlook of the two.

England was economically the most advanced country in the world. Big industry had developed more rapidly in England than anywhere else, and for this reason class contradictions were pronounced and the workers' movement on a relatively high level. The workers were able users of the weapon of the strike. Just at the time when the International arose one wave of strikes after another swept across the country. At the beginning of the 1860s flourishing trade unions developed from the benefit societies they had hitherto mainly been into fighting organizations raising their own strike funds. They constituted the most important group within the International. The number of organizations formally associated with the International was not large. Even the London Trades Council,

one of the most resolute bodies in the trade union movement, did not accept the International's invitation to join. But some trade unions did join the International and were on its membership list. From the beginning British trade union leaders had an important voice on the General Council Interested in immediate, practical results, they were utterly indifferent to theoretical questions and the ultimate aims of the International as Marx conceived them They understood very well the importance of working-class legislation, upon which, under Marx's influence, the International laid great stress But they preferred conducting the struggle for it, like the struggle for electoral reform, through the channel of Liberal and Radical Members of Parliament rather than as an independent party Among them there were always a few who insisted that the movement must not assume an explicit class character But so far as the day-to-day struggle of the proletariat was concerned the young English trade union leaders had incomparably more experience than all the workers' leaders of the Continent combined. The main thing that interested them in the International was the possibility of using it for gaining victories in strikes They were attracted by the possibility of making the International use its connections with countries abroad to prevent the introduction of foreign strike breakers, which was a favourite expedient of the employers at the time Fribourg, one of the founders of the International, said that the English regarded the International purely as an organization from which the strike movement could receive great assistance [21]

France was far behind England in the industrial respect In France the handicraftsman was still supreme, particularly in Paris, with its art and luxury trades It was natural enough that many of the leaders of the movement in France should be followers of Proudhon, whose teaching expressed the interests of the small independent artisan or trader, the small businessman and the peasant. The 'mutualists', as the followers of Proudhon described themselves at the time, demanded cheap credit, assured markets, cooperative societies,

and the same measures that hard-pressed master-craftsmen have always demanded everywhere. To most of them the slogan of the collectivization of the means of production sounded absurd, unjust and evil. Hence also they were in favour of peaceful, gradual development, and they flatly repudiated revolutionary methods. From his point of view Fribourg regarded the International as an instrument 'for aiding the proletariat in legally, pacifically and morally gaining the place in the sun of civilization to which it is entitled'.[22] They had very little trust in legislation or state measures for the working classes, and they regarded strikes as extremely dangerous, though sometimes inevitable, in any case as always undesirable. Varlin, one of the leaders of the International in Paris who fell in the bloody week of May 1871, declared as late as 1868 that the International repudiated strikes as an anti-economic weapon.[23] The mutualists wanted an International which should occupy itself with investigating the position of the workers, cause alterations in the labour market and thrash out these problems theoretically.

Marx saw the weaknesses of the mutualists and of the English trade unions alike.[24] He did not have a particularly high opinion of the trade union leaders. He said later that he regarded some of them with suspicion from the first, as careerists in whose devotion to the working-class cause he found it difficult to believe. But in relation to the immediate tasks of the International, the tactics of the day-to-day struggle, he stood far nearer the Englishmen than the Proudhonists. 'The gentlemen in Paris', he wrote to Kugelmann in 1866, 'had their heads full of Proudhon's emptiest phrases. They chatter of science, knowing nothing of it. They scorn all revolutionary action, i.e. which springs from the class struggle itself, all concentrated social movement, that is to say movement realizable by political means (for example, the legal shortening of the working day).'[25]

In spite of all his dislike of Proudhonist phraseology, Marx stuck to his tactics. In drafting the agenda for the first congress of the International in 1866[26] he took pains to avoid anything

that might have given rise to general theoretical discussions, and he confined the programme 'to points which permitted of immediate accord and immediate concerted action of the workers, corresponded directly to the needs of the class struggle and the class organization of the workers, and at the same time spurred the workers on.'[27] The strike question was certainly a question of the moment, but Marx did not put it upon the agenda as such but in the form of 'international assistance for the struggle of Labour with Capital'[28] He wished to avoid alienating the Proudhonists He instructed the London delegates not to discuss the usefulness or the reverse of strikes but to put in the foreground the struggle with the strike breakers, which the Proudhonists could not repudiate.

It was not Marx and his followers but the Proudhonists who opened the fray. The Proudhonists wanted to anchor the International to their own system. The most important thing to them was not those things on which all were agreed but their own particular hobby-horse, their 'mutualism' The first congresses took place in Latin Switzerland, for which reason the majority of the delegates came from western Switzerland and adjacent France, i e from the areas where the Proudhonists predominated At the Lausanne congress of 1867 they were fairly successful[29] The representatives of the General Council were not sufficiently prepared – Marx was busy at the time with the publication of *Das Kapital* and was not present But their success was their own downfall At a time when the strike movement was constantly extending and affecting even France and western Switzerland, the rejection of the strike weapon was going too far even for many of the Proudhonists. There was a rift, which soon spread to other questions too

The Proudhonists were the first to bring up for discussion the fundamental question of the socialization of the means of production. At the congress of 1867 they raised the question of the socialization of the means of transport At the time the railways were using their monopoly to favour big industry at the expense of the small producer So the principal opponents of collectivization decided that an exception must be made in the

case of the railways, which must be collectivized Very well, their opponents replied, why stop at collectivization of the means of transport? To their horror and alarm the Proudhonists saw opponents rising within their own ranks. Young heretics, led by César de Paepe, a Belgian, arose among the orthodox and tried hard to reconcile their mutualist doctrines with the ideal of collectivization. This breakdown on the part of the Proudhonists assured the success of the collectivist idea in the International The young Proudhonists became more enthusiastic about collectivization than anyone, and it was thanks to them that the International came out for collectivism in its official resolutions. In 1868 Marx was still opposed to declarations of principle on such critical questions 'It is better not to make any general resolutions', he wrote to his closest colleagues, Eccarius and Lessner, who represented the General Council at the congress of 1868 [30] It was only in the last stages of the debates on collectivization that Marx intervened He drafted the resolutions on the nationalization of the soil which were accepted by the Basle congress of 1869 [31]

Marx, who in other respects demonstrated the most extreme tolerance, only abandoned his restraint when the problem of political struggle arose acutely within the International and he began to feel that, unknown to it, something had formed behind the scenes, something that aimed quite systematically at forcing the International in a direction which was completely unacceptable to him and, after the experiences he had had, he was convinced would be injurious to the workers' movement

Everybody in the International had been agreed from the start that the workers must take an active part in the political struggle The English trade unionists naturally supported the movement for the extension of the franchise in every way they could Those Proudhonists who had cooperated in the foundation of the International were all in favour of taking part in the political struggle, and would have regarded any discussion of the advisability of doing so as a sheer waste of time Their leading Paris group had originated out of an attempt to set up

an independent workers' candidate in 1864, and Proudhon himself had given his enthusiastic consent to this step in his work, written shortly before his death, *De la capacité politique des classes ouvrières*.[32] The German workers' movement – though it had played no great role in the inner life of the International it had a notable influence upon the development of its ideas – fought, as Lassalle had taught it, for universal suffrage. Even the Swiss 'Internationalists' took part in the elections as a matter of course The Lausanne congress of 1867 passed a resolution – the minority was only two – to the effect that the conquest of political power was an absolute necessity for the working class This was the congress at which the Proudhonists were in a majority, and among those who voted for the resolution were many who were later among the most resolute opponents of any political activity whatever

The situation altered pretty quickly In 1867 and 1868 the International made extraordinary progress The economic crisis which was setting in intensified social antagonisms, and one strike after another broke out in the countries of Western Europe. The International very soon proved a useful instrument in the direct economic struggle of the proletariat It succeeded in many cases in preventing the introduction of strike breakers from abroad, and, in cases where foreign workers did strike-breaking work without knowing it, succeeded in causing them to practise solidarity In other cases it organized the raising of funds for the relief of strikers This not only gave the latter moral support but caused real panic among the employers, who no longer had to deal with 'their own' workers alone but with a new and sinister power, an international organization which apparently had resources at its disposal with which the individual employer could not compete Often the mere rumour that the International was going to intervene in a strike was sufficient to cause the employers to grant all the workers' demands In its panic the reactionary Press exaggerated the power of the International beyond all bounds, but this only resulted in enhancing the respect in which it was held by the working class Every strike, whether it succeeded or not,

resulted in all the strikers joining the International, the Conservative, E Villetard, wrote in 1872 in his *History of the International* In those years it often happened that the whole of the workers at a factory would join the International together No government repressive measures, arrests or trials succeeded in stemming the movement's advance; they merely served to drive the workers into the revolutionary camp and strengthen the International thereby. Its sections seemed to spring up like mushrooms At the 1866 congress only four countries were represented – England, France, Germany and Switzerland – but at the congress of 1869 there were nine, America, Austria, Belgium, Spain and Italy being the newcomers. Individual sections had arisen in Hungary, Holland, Algiers, South America and elsewhere. Because of big fluctuations and the weak development on the organizational side it is difficult to establish how many members the International really had 800,000 workers were formally associated with the International in any case. At the International trial in Paris the public prosecutor, who had access to the papers of the French section, stated that there were 443,000 members in France alone At the Basle congress of 1869 the English claimed 230 sections with 95,000 members In Belgium in the summer of that year there were more than 200 sections with 64,000 members [33] The membership of the workers' organizations which declared their solidarity with the International was greater by far The International was recognized in 1869 by the English Trades Union Congress, in 1869 by the Nuremberg congress of German Workers' Educational Unions, in 1868 by the Association of German Workers' Unions in Austria, in the same year by the Neuchâtel congress of German Workers' Educational Unions in Switzerland, in 1869 by the American Labour Union, etc [34] Testut, who wrote his history of the International on the basis of police reports, estimated its number of members as five million, and the newspapers of the International actually put the figure as high as seven million. These figures are, of course, utterly fantastic. But the élite of the European proletariat adhered to the International

In the last third of the 1860s it had become a power to be reckoned with.

At the same time political questions developed from theoretical propositions to be discussed at congresses into practical questions requiring a practical answer. The two groups within the German workers' movement, the followers of Lassalle and the 'Eisenacher', were the first to take part, in 1867, in the North German parliamentary elections. In 1867 and 1868, after the extension of the suffrage to workers having a house of their own, the English labour movement prepared to enter the electoral fray. In 1869 the French workers set up their own candidates in many places. The International now had to decide what attitude to take up to other parties, and to elections. The weak organization of the sections and the political inexperience of their leaders made mistakes and differences of opinion inevitable as soon as the question of voting became an actual one, and this lead to a reaction. A section arose who opposed participating in elections and 'politics' as a whole.

In Latin Switzerland the Internationalists made particularly grave mistakes. The pioneer of the International there was Dr P. Coullery, an old democrat who had long been interested in social problems. He was an official of the Radical Party, had a high reputation, and represented it as deputy to the cantonal legislative council. Dr Coullery founded the first section of the International in Latin Switzerland in 1865, and worked for the extension of the International in the western cantons, and in 1867 his paper, *La Voix de l'Avenir*, became the chief organ of the section of that area. His activity on behalf of the International led to a rupture with the radicals. When he became a candidate for the office of *juge de paix* in La Chaux des Fonds the radicals opposed him. That induced the conservatives to vote for Coullery, and it was due to their aid that he was elected. By the election of 1868 Coullery's *rapprochement* to the conservatives had proceeded so far that he actually made a regular pact with them. The local Press called it 'la coalition aristo-socialiste'. The list of candidates went under the name of the International, but on it the names of

members of the International were next to those of extreme conservatives Other sections of the International in western Switzerland protested violently against this policy, particularly the section at Locle Its founder and leader was a young schoolmaster, James Guillaume, who was later a very prominent member of the anti-Marxist group in the International[35] He was a former member of the Radical Party, and he and his group, which had started as the 'Jeunesse radicale', continued to support the radicals in local questions The slogan in the fight against Coullery was 'The International keeps out of political strife', which in this case was equivalent to support of the radicals Gradually the Locle group generalized their views and ended by absolutely repudiating the policy of participating in elections. Coullery, it maintained, was bound to err, to compromise the International, as was anybody who participated in elections Coullery's tactics had, of course, nothing whatever in common with the tactical line of Marx Marx always vigorously opposed any coalition of the revolutionary proletariat with the reactionaries against the bourgeois democrats When Lassalle's followers started openly practising this policy, which Lassalle himself initiated, Marx publicly and ruthlessly broke with them What Marx demanded of the workers' parties was that they should criticize the Government and the reactionaries no less severely than they did the bourgeois democrats

The Locle group of 'Internationalists' formed the kernel of the later anti-authoritative faction, whose struggle against the General Council led to the split and the downfall of the International Its leader was Michael Alexandrovich Bakunin

[18]

Michael Bakunin[1]

BAKUNIN was born in 1814 in the Government of Tver. He was the son of a prosperous and noble landed proprietor He became an officer but soon left the Army and in 1840, being an enthusiastic Hegelian, went to Germany to study philosophy at Berlin University His teachers were partly the same as Marx's Bakunin entered the left-wing Hegelian group and it was not long before he was in the thick of the revolutionary movement His bold and open opposition to Russian absolutism attracted universal attention, and Europe heard the voice of a Russian revolutionary for the first time In 1848 Bakunin was a close associate of Herwegh's and he shared the poet's visionary dream of a European revolutionary army which should set forth against the realm of the Tsars During the years of revolution he went from place to place in Germany, always on the look-out for an opportunity of carrying the agitation into Russia and the other Slavonic countries He was in contact with the leaders of the German democratic movement, founded a Russian-Polish revolutionary committee, and prepared a rising in Bohemia But not one of his numerous plans bore fruit He participated in the rising in Dresden in May 1849 more in a mood of desperation than of faith in victory He was arrested and sentenced to death by a Saxon court The Austrians, to whom he was handed over, sentenced him to death a second time, and he spent months in chains in the condemned cell Then the Austrian hangmen handed him over to the gaolers of Russia, who kept him for five years in solitary confinement, first in the fortress of Petropavlovsk, then in the Schlusselburg. His treatment was unspeakably dreadful He contracted scurvy, lost all his teeth, and was only amnestied and banished to Siberia after writing a humiliating petition to the Tsar At last, after five years, there came an

opportunity to escape, and he returned to Western Europe by way of Japan and America.

His first meeting with Marx was at an international democratic banquet in Paris in March 1844, but the two had heard of each other before.[2] They had a good deal in common Both had become revolutionaries by way of Hegelian philosophy and both had trodden the path from theory to revolutionary practice But they differed entirely in their idea of revolutionary practice; in fact in their whole conception of the revolution they were poles asunder In Marx's eyes the revolution was the midwife of the new society which had formed in the womb of the old. The new society would be the outcome of the old, and a new and higher culture would be the heir of the old culture, preserving and developing all the past attainments of humanity. For Bakunin the revolution meant a radical annihilation of existing society What were all its so-called attainments but a chain by which free humanity was held in bondage? For him the revolution, if it did not mean making a clean sweep of the whole of this accursed civilization, meant nothing at all Not one stone of it should remain upon another Bakunin dreamed of a 'gigantic bonfire of London, Paris and Berlin' His was the same hatred as that which drove insurrectionary peasants to burn down castles and cities – not just the hated prison and tax office but everything without exception, including schools and libraries and museums Mankind must return, not just to the Middle Ages, but to the very beginning, and from there the history of man must start again Weitling and Willich, with whom Bakunin was acquainted, had similar ideas, but compared to the master of complete and absolute negation they were but pitiful and harmless pupils

It was evident that in these circumstances it was impossible for Marx and Bakunin to come very close to one another Bakunin appreciated Marx's clear and penetrating intellect, but flatly repudiated his political activity At the beginning of 1848, when he met Marx in Brussels, he said to a friend that Marx was spoiling the workers by turning them into *raisonneurs* Marx was giving his lectures on wage-labour and capital

at the time, summarizing the results of his investigations into the structure of capitalist society. Bakunin was convinced that this could have but one consequence, theorizing was bound to paralyse the workers' revolutionary will, their 'spirit of destruction', which for him was the only 'creative spirit'[3] Marx never had the slightest sympathy for such incendiary fantasies He had a fundamental mistrust of preaching such as his, and he could not help mistrusting Bakunin personally. Marx printed a letter in the *Neue Rheinische Zeitung* which accused Bakunin of being in the pay of the Russian Government The letter had been sent him by Polish democrats, and when the groundlessness of the accusation was demonstrated Marx apologized and explained that he had necessarily believed that the Poles must be well-informed about Russian affairs At that time the whole of revolutionary Europe looked at Russia through Polish spectacles, and in this Marx differed in no way from everybody else. He admitted having been hasty and did what he could to make good the wrong to Bakunin Marx publicly defended Bakunin when a similar rumour was spread about him during his imprisonment in Russia But Bakunin could not forgive Marx the mistake of 1848, which went on rankling for a long time.[4] To make matters worse Bakunin was persuaded by evil-tongued go-betweens, who did not mention Marx's defence of him during his compulsory silence, that Marx actually repeated the old slander

Bakunin visited Marx in London at the end of October 1864, when he was writing the inaugural address for the International. The meeting passed off in an entirely amicable manner. Marx wrote to Engels that Bakunin was one of the very few people who after sixteen years had not receded but had gone on developing What Bakunin said to cause Marx to pass this favourable judgement on him is not known.[5] In his long years of imprisonment Bakunin had suffered greatly and thought much. He had altered, and no longer wanted to make giant bonfires of capital cities In Siberia he had almost got to the point of repudiating his revolutionary way of thinking

altogether,[6] and when he was free once more he spent a considerable time hesitating whether to adhere to the bourgeois radicals or to the socialists. He then started returning step by step to his original negative anarchism In his conversation with Marx he asserted that henceforward he would devote himself to the socialist movement alone, and said that in Italy, where he was just going, he proposed working for the International

Marx did not know Bakunin well enough to realize how little these words were to be credited There was a streak of naive slyness in Bakunin's character, and he was skilful at adapting his speech to his company Bakunin would by no means say all he thought, indeed, he would quite often say the reverse. A story of how he tried to make a revolutionary of the Bishop Polykarp, an adherent of the old faith, provides a pretty instance of Bakunin's way of tackling people he wanted to win over. According to the story Bakunin entered the Bishop's room singing a sacred song and requested an explanation of the difference between the persecuted old faith and the prevalent orthodoxy. He said he was willing to become an old believer himself if the Bishop could convince him After listening humbly to the Bishop he drew a magnificent picture of the revolution, by which the true old faith would be allowed to triumph over the orthodox Church and cause the Tsar himself to be converted, and much more of the same kind. This story need not be credited entirely, but it illustrates in all essentials how far Bakunin could occasionally go.[7]

Bakunin had no intention of keeping his promise to work for the International in Italy. Even before starting on his journey he set about the formation of his own secret society, which had nothing whatever to do with the International, either in programme or organization In respect of organization Bakunin was a revolutionary of the old school. He belonged entirely to the epoch of the illuminati and the carbonari. In his opinion the one thing necessary to prepare the way for the revolution and consolidate it after victory was a highly conspiratorial band of determined men, a band of

professional revolutionaries and plotters, who lived for nothing but the revolution. 'In the midst of the popular anarchy that will create the very life and energy of the revolution, the unity of revolutionary thought and revolutionary action must find an organ. That organ must be a secret and universal association of revolutionary brothers.'[8] That is Bakunin's own summary of his revolutionary creed. Bakunin was continually engaged in founding organizations of one kind or another, and sometimes he was engaged on several at the same time. They all had secret statutes and programmes that varied with the degree of initiation of the members, and ceremonial oaths, if possible sworn on a dagger or some similar theatrical requisite, were usual. Bakunin formed a secret society of this kind in 1865 – the Fraternité Internationale. It never entered his head for a moment to do anything for the International, and he barely answered the letters that Marx wrote him.

In the autumn of 1867 Bakunin travelled from Italy to take part in the first congress of the League of Peace and Freedom. This organization represented the last attempt of the democratic celebrities of 1848 and 1849, who for two decades had been the 'great men of the emigration', to venture once more into the realm of high politics. The reawakening of political life throughout Europe seemed to proffer this organization some prospect of success, and there were some famous names upon its list of founders: Victor Hugo, Louis Blanc, John Stuart Mill, Giuseppe Garibaldi. The League's programme was a nebulous mixture of democracy, anti-clericalism and pacifism, intended to mean as much to as many people as possible. In practice it did nothing for anybody.

The League, having practically no solid popular backing of its own, was very anxious to be on good terms with the International. An attempt was made to have it incorporated as a kind of subsidiary organization within the International, to enable it to propagate its own special aims among the proletariat. Marx was necessarily opposed to any such plan. The development of the young workers' movement could only be

hampered by connection with these generals without an army, for the important men had only lent their names to the League at its inception and in reality the movement was in the hands of democratic leaders of the second and third rank. To involve the International with the League would mean burdening it with a swarm of ambitious, wrangling and clique-forming political intriguers

Marx was not able to convince the International of all this until 1868. The Brussels congress of that year unanimously carried a resolution embodying Marx's attitude to the League[9] A year before not a few members of the International had sympathized with the idea of the League and had been only too pleased to take part in its congress The League had counted on this and held its inaugural congress at the same time and place as the second congress of the International, and a number of delegates remained and took part in the League congress after the International had concluded its deliberations. At the League congress they made the acquaintance of Bakunin

His appearance was an event of first-rate importance for the League. Many of the older generation knew him from earlier years, from his life of wandering before the revolution or from the exciting days of Paris, Berlin, Dresden or Prague Everyone had heard of the man who had been dragged through the prisons of Europe and had been twice sentenced to death, and his escape from the grim horror of Siberia had already become legendary. 'I well remember his impressive bearing at the first session of the congress', a Russian journalist wrote in his memoirs,

> As he walked up the steps that led to the platform, with his heavy, peasant gait – he was, as usual, negligently dressed in his grey blouse, out of which there peeped not a shirt but a flannel vest – a great cry of 'Bakunin!' arose Garibaldi, who was in the chair, rose and went forward to embrace him Many of Bakunin's opponents were present, but the whole hall rose to its feet and the applause was interminable Bakunin was no speaker if by that word is meant a man who can satisfy a literary or educated public,

who is a master of language and whose speeches have a beginning, a middle and an end, as Aristotle teaches But he was a superb popular orator, and he knew how to talk to the masses, and the most remarkable feature of his oratory was that it was multilingual His huge form, the power of his gesticulations, the sincerity and conviction in his voice, his short, hatchet-like phrases all contributed to making a profound impression [10]

To quote another Russian writer who heard Bakunin at another meeting

I no longer remember what Bakunin said, and in any case it would scarcely be possible to reproduce it His speech had neither logical sequence nor richness in ideas, but consisted of thrilling phrases and rousing appeals His speech was something elemental and incandescent – a raging storm with lightning flashes and thunderclaps, and a roaring as of lions The man was a born speaker, made for the revolution The revolution was his natural being His speech made a tremendous impression If he had asked his hearers to cut each other's throats, they would have cheerfully obeyed

That was how Bakunin's speech echoed sixty years later in the ears of a man who was no revolutionary at the time and was certainly no revolutionary when he wrote his memoirs His name was Baron Wrangel, and he was the father of the well-known General Wrangel, who fought against the Bolsheviks in South Russia in 1919 and 1920 [11]

Bakunin's forceful personality gained him devoted followers in the League and among the members of the International. As was his invariable habit he hastened to confirm his first success by enrolling new initiates into one of his secret societies The Fraternité Internationale appears to have been somewhat reorganized on this occasion, and it may well have received a new name (The history of Bakunin's secret societies is still in many respects uncertain. They were so often reorganized that even Bakunin himself could not remember all their ramifications and vicissitudes) At any rate the Fraternité was transplanted from Italy to Central Europe.

At the same time Bakunin became a member of the League central committee. He did all he could to make the League accept a revolutionary programme and bring it into line with the International His undoubted aim was to bring the two organizations together and, by means of his secret organization, become the unseen leader of both. In this he failed. The majority of the League's members were by no means revolutionary-minded, and all Bakunin's proposals were voted down He became increasingly convinced of the possibility of converting the League into a suitable instrument for his revolutionary work, and he awoke to the fact that there was far greater scope for his activity in the International He met many of its members and became acquainted with the development of its ideas He had hitherto refrained from joining it himself, but in July 1868 he joined the Geneva branch In the autumn, after the International had definitely broken with the League, he broke with it himself At the second League congress, held at the end of September 1868, he proposed that it make a public avowal of socialism. His resolution was obviously unacceptable, and when the League turned it down he and his followers left the congress and resigned from membership.

He promptly summoned his followers, most of whom were adherents of the Fraternité Internationale, and proposed that they join the International in a body This was intended to keep his followers together Joining the International in this way would intensify rather than weaken their corporate sense. His followers approved his plan, with a few unimportant alterations An open association, L'Alliance internationale de la Démocratie sociale, was founded to exist side by side with the secret society[12] The Alliance was intended to include members outside the secret society, and thus act as a screen for the secret society. It was to have its own programme and statutes, its own leaders, its own sections in various countries, its own international congresses to be held at the same time and place as those of the International The plan was to form

a state within a state within the International. Officially the object of the Alliance was the unpretentious one of 'investigating social and philosophical questions'. Its real purpose was to gain control of the International and lead it whither Bakunin wanted, for behind it there would be his secret organization. There was to be a three-storey pyramid, with the International as the base, the Alliance on top of it and on top of the Alliance the secret society, with Bakunin the 'invisible dictator' at the pinnacle.

The plan was too clever and consequently too clumsy to succeed It failed to get farther than the initial stages The Alliance was successfully founded and quite a number of respectable and deserving members of the Swiss sections of the International joined it The statutes were duly drawn up and signed and dispatched for confirmation by the General Council Bakunin's name was among the signatures, tucked in inconspicuously among the rest.

Marx had no means of divining the details of Bakunin's plan, but promptly discerned Bakunin's object This was no new turn of the working-class movement, no new organization of workers demanding admission to the ranks of the united international proletariat This was an organization created by a plotter of the old school who aimed at gaining control of the great new movement represented by the International, which under Marx's leadership was striving to guide the struggle of the proletariat in the only way it ought to be guided, in all openness, as a mass organization Marx had not spent twenty years fighting the methods of the carbonari, and all the poison-and-dagger nonsense, to let it creep into the International by the back door now

When the statutes of the Alliance came up for consideration by the General Council, its members, of course with Marx's concurrence, expressed a wish that the International should publicly repudiate it. Marx wrote to Engels late that night after the meeting. The thing of which he had heard previously and had regarded as still-born, he said, and had wanted

to let quietly die had turned out to be more serious than he had expected. 'Herr Bakunin – who is at the back of this affair – is kind enough to want to take the workers' movement under *Russian* control.'[13] Marx was particularly incensed at such a thing having been perpetrated by a Russian, citizen of a country that had no workers' movement of its own and was therefore less fit than anybody to grapple with the difficulties confronting the European movement Engels pacified Marx a little He said it was as clear as daylight that the International would not allow itself to be taken in by a swindle such as this state within a state, this organization which had nothing whatever behind it 'I, like you, consider it to be a still-born, purely local, Geneva affair. Its only chance of survival would be for you to attack it violently and give it importance thereby In my opinion it would be best firmly but quietly to dismiss these people with their pretensions to insinuate themselves into the International.'[14] Marx agreed with Engels, and the General Council declined to confirm the statutes of the Alliance as an organization within the International[15] After protracted negotiations the Alliance as such was eventually dissolved Individual groups of its members were permitted to enter the International under the usual conditions and to form local sections No mention of the secret society was made throughout, and the General Council did not know of its existence The secret society disintegrated once more and was once more reconstructed Bakunin quarrelled with the majority of the *directoire centrale* of the Fraternité Internationale, resigned from the Fraternité and dissolved it, only to found it anew promptly afterwards with his most devoted followers. His first *rapprochement* with Nechaiev, of whom more will be said later, occurred during these months

Bakunin had not answered Marx from Italy, and he gave no sign of life from Switzerland Marx sent him a copy of *Das Kapital*, but Bakunin remained silent and did not even write a line of thanks But a few days after the Alliance had submitted its statutes to the General Council, Bakunin wrote It was a long letter, overflowing with friendliness 'Ma patrie

maintenant, c'est l'Internationale, dont tu es l'un des principaux fondateurs Tu vois donc, cher ami, que je suis ton disciple, et je suis fier de l' être.' * [16]

This sounded genuine, upright and sincere, but it was anything but what it seemed The letter was a calculated part of the web of intrigue that Bakunin was spinning round Marx. Bakunin certainly had a high opinion of Marx and considered *Das Kapital* to be a scientific achievement of supreme importance. He even wanted to translate it into Russian. But that did not affect Bakunin's conviction that Marx was his arch-enemy, whose main purpose was to lay snares and traps for him, and he believed himself to be thoroughly justified in fighting Marx Some three months after this declaration of love Bakunin wrote to his old friend, Gustav Vogt, one of the founders of the League, of the 'distrust or even ill-will of a certain coterie the centre of which you no doubt have guessed as well as I' [17] That coterie was the General Council of the International which had been against amalgamation with the League of Peace and Freedom, and its centre was Marx, Bakunin's *cher ami*

In a letter he wrote Alexander Herzen on 28 October 1869, Bakunin explained in all clarity the methods he proposed to use in his campaign against Marx. Herzen had remonstrated with Bakunin for daring to attack some of Marx's followers in the Press without daring to attack Marx himself Bakunin replied that he had two reasons for refraining from attacking Marx The first was the real service that Marx had done by laying the foundations of scientific socialism.

The second reason is policy and tactics . I praised and honoured Marx for tactical reasons and on grounds of personal policy Don't you see what all these gentlemen are? Our enemies form a phalanx, and to be able to defeat it the more easily it is necessary to divide it and break it up. You are more learned than I, and therefore know better than I who first said · *Divide et impera* If I

* 'My country is now the International, of which you are one of the principal founders You see, therefore, my dear friend, that I am your disciple, and I am proud of it '

started an open war against Marx now, three quarters of the International would turn against me, and I should find myself slipping down an inclined plane, and I should lose the only ground on which I wish to stand [18]

To weaken the Marxian phalanx Bakunin chose to attack Marx's little-known followers, and in the meantime he stressed his friendship for Marx.

Marx was not for a moment deceived as to what his expression of friendship was really worth He did not answer Bakunin's love letter Marx had not a few defects He was not always easy and pleasant to get on with, but he was incapable of simulating friendship for a person while he was busy laying a trap for him

Bakunin worked very hard to build up and extend his secret society, and it was important to be on good terms with the group of young 'Internationalists' at Locle, who have already been mentioned Bakunin made the acquaintance of Guillaume, their leader, in January 1869 Guillaume invited him to Locle He accepted the invitation and was received like a hero Guillaume's account of the events of that day [19] deserve to be repeated, for he paints such a characteristic picture of Bakunin, illustrating not only Bakunin as seen through his followers' eyes, but how Bakunin presented himself to them.

> La nouvelle de la venue du célèbre révolutionnaire russe avait mis le Locle en émoi; et dans les ateliers, dans les cercles, dans les salons, on ne parlait que de lui . On se disait que la présence, dans les rangs de l'Internationale, d'un homme aussi énergique, ne pouvait manquer de lui apporter une grande force *

Locle was an obscure provincial township and for a celebrity to visit it was an epoch-making event, and now a rare and

* 'The news of the arrival of the celebrated Russian revolutionary had put Locle into a state of high excitement He was the sole subject of conversation in workshops, clubs and drawing-rooms Everyone said that the presence in the ranks of the International of a man as energetic as he could not fail to be a source of great strength '

exotic celebrity was actually on the spot. The big watch-making village could scarcely contain itself with excitement. 'J'étais allé l'attendre à la gare avec le père Meuron, et nous le conduisîmes au Cercle International, où nous passâmes le reste de l'après-midi à causer avec quelques amis qui s'y étaient réunis'* The local branch, the *Cercle International,* was just celebrating the sixty-fifth birthday of 'Father' Meuron, a French *émigré,* who had been a carbonaro in the days of the July Monarchy and perhaps in the days of the Restoration too The 'Internationalists' of Locle, all hungry for experience, surrounded Bakunin 'Si l'imposante stature de Bakounine frappait les imaginations, la familiarité de son accueil lui gagnait les cœurs, il fit immèdiatement la conquête de tout le monde'† Bakunin showed himself a blithe and sociable human being, a good raconteur, homely and simple 'Dans les conversations, Bakounine racontait volontiers des historiettes, des souvenirs de sa jeunesse, des choses qu'il avait dit ou entendu dire. Il avait tout un répertoire d'anecdotes, de proverbes, des mots favorits qu'il aimait à répéter'‡ Guillaume particularly remembered one story which Bakunin told. 'Une fois, à la fin d'un dîner, en Allemagne, il avait, nous dit-il en riant, porté ce toast, accueilli par un tonnerre d'applaudissements· "Je bois à la destruction de l'ordre public et au déchaînement des mauvaises passions"' § Bakunin described the seven stages of happiness as follows 'En premier lieu, comme

* 'I went to meet him at the station with Father Meuron, and we took him to the International Club, where we spent the rest of the afternoon talking with some friends who had gathered there'

† 'If Bakunin's imposing stature struck the imagination, the familiarity of his greeting gained men's hearts He promptly made a conquest of everybody'

‡ 'In conversation Bakunin willingly related anecdotes, gave reminiscences of his youth, told us things he had said or heard He had a whole repertoire of anecdotes, proverbs and favourite sayings that he liked to repeat'

§ 'Once, at the end of a dinner in Germany, he had proposed a toast, he told us laughing, saying "I drink to the destruction of public order and the unleashing of evil passions"'

bonheur suprême mourir en combattant pour la liberté, en second lieu, l'amour et l'amitié; en troisième lieu, la science et l'art; quatrièmement, fumer, cinquièmement, boire, sixièmement, manger, septièmement, dormir.' *

Twenty years before, Bakunin had defined the seven stages of happiness in the same way, and he had spoken of the unleashing of the passions then too Only in the meantime the sentiments had grown somewhat faded Richard Wagner had heard Bakunin say all these things in 1849, only in Wagner's memoirs they sound like extracts from some dim northern saga But retailed by Guillaume they remind one of a provincial schoolmaster describing the bounty of some brilliant talker to an admiring audience

Bakunin accepted Guillaume into his secret society. Bakunin no longer attached importance to swearing oaths upon a dagger. He explained the object of the society as 'Le libre rapprochement d'hommes qui s'unissaient pour l'action collective, sans formalité, sans solennité, sans rites mystérieux, simplement parce qu'ils avaient confiance les uns dans les autres et que l'entente leur paraissait préférable à l'action isolée' Guillaume is no objective witness, but he must have been pretty faithful to the facts in this However much Bakunin wanted to assimiliate his organization to the International, it remained a secret society within the International, keeping its existence secret from it and aiming at gaining control of it. Guillaume bears witness to this, for he describes how Meuron, the old carbonaro, who joined the secret society at the same time, rejoiced. 'Il réjouissait à la pensée que l'Internationale serait doublée d'une organisation secrète qui la préserverait du

* 'In the first place, the supreme happiness was to die fighting for liberty, in the second place, love and friendship, in the third place, science and art; in the fourth place, smoking, in the fifth place, drinking, in the sixth place, eating, and in the seventh place, sleeping'

† 'A free association of men who united for collective action, without formality, without solemnity, without mysterious rites, simply because they felt confidence in one another and deemed unity preferable to isolated action'

danger que pouvaient lui faire courir les intrigants et les ambitieux'*

The contrast between the ideas of the old illuminati, carbonari and the rest and those whose aim was to use the International to lead the workers into forming great mass organizations could not have been better expressed than it was by *père* Meuron He had spent his whole life as a member of one or other small band of conspirators, and he could not conceive that a mass organization in which there was such a thing as an open struggle of ideas could be anything but a cockpit for the intriguing and ambitious. It seemed obvious to him that the unrestricted life of a large, public organization, open to all the world, must be supervised by groups of the type familiar to him. These groups, set up behind the back of the mass organization, must obviously refrain from openly proclaiming their programmes, and even their existence must not be known of It was these groups that must be the real controllers of the movement Meuron and those who thought like him regarded all this as entirely open and above board So far from regarding it as partaking of the nature of intrigue, they actually regarded it as a sure defence and shield against the ambitious and intriguing

Bakunin managed to extend his secret society pretty quickly, in spite of obstacles He and his friends had great hopes of the next International congress, to be held at Basle in September 1869 They made every effort to be as well represented at it as possible. The secret Alliance sent instructions to its adherents in every corner of Europe, directing them whom to choose as delegates and to whom to give a mandate if they could not send one of their own men In many areas members were very surprsed indeed to find that for the first time in the history of the International the selection of delegates was not being carried out in a straightforward, open, matter-of-fact

* 'He rejoiced at the thought that the International would be doubled by a secret organization which should preserve it from the dangers to which the intriguing and ambitious might subject it.'

way, and letters reached the General Council asking what was in the wind.

Bakunin and his followers had not worked badly, and they were represented at the congress in pretty respectable numbers.[20] Nevertheless their expectations were not entirely fulfilled, though they had one or two successes. The most important was in the debate on the inheritance question. The congress rejected the resolution of the General Council, which was drafted by Marx, and accepted Bakunin's resolution instead But they did not succeed in their principal aim, which was to have the headquarters of the General Council transferred from London to Geneva, where Bakunin would have been its lord and master [21]

The Basle congress marks an important stage in the struggle between Marxists and Bakuninists The fundamental differences were not mentioned, the root problem was not debated, and the real dispute was only hinted at. But anyone who followed the progress of the congress attentively and had a certain experience of the history of the movement could plainly detect the call to battle. Moses Hess, the 'communist rabbi',[22] had a practised ear. He had been present at Marx's struggle with Weitling and had known the cause of dissension between Marx and Gottschalk and had followed Marx's struggle with Willich and his followers in the Communist League. He attended the congress and heard the unspoken words 'The collectivists of the International believe that the political revolution must precede the social and democratic revolution' Bakunin and his followers made the political revolution coincide with the social revolution They made no concealment of their opinion. The organ of Bakunin's followers in Switzerland wrote as answer to Hess's utterance, 'We shall persist in refusing to associate ourselves with any political movement *the immediate and direct aim of which is not the immediate and direct emancipation of the workers.*'[23] The qualifying relative clause is emphasized in the original The Bakuninists did not reject political struggle of any kind, as was later supposed. If its object was the direct realization of their ultimate

aim, 'the revolution and social democracy', they were ready to participate. They were even capable of making quite big concessions and deviating widely from their usual tactics. But they insisted that any political movement in which they took part must lead directly to the social revolution That was the condition from which they would not depart. The emphasis was on the definition of *direct and immediate*

About this time, at the end of 1869, the Bakuninists started proclaiming the principle of not taking part in elections for any kind of parliament, and with this their struggle with the Marxists in Switzerland began Taking part in the Swiss elections, i e. in the political movement, meant embarking on a long period of patient work of enlightenment among the workers, and only those who believed that the political and social revolution could not be one, could undertake it. On the other hand, in lands where the revolution was ripening quickly, the Bakuninists by no means declined to participate in elections, granted that the elections were the first step to the social revolution But the elections had to be the first step The second step must be the social revolution itself Those were the tactics of Bakunin's followers in Paris, the leader of whom was Varlin, the best-known representative of the Paris section of the International at the time. He proclaimed himself, in the Press and in court, an adherent of 'anti-authoritarian communism', which was the name by which the Bakuninists started calling themselves

Varlin had joined Bakunin's secret society at the Basle congress, and was Bakunin's closest confidant in Paris Nevertheless at the end of 1869 he joined the staff of *La Marseillaise,* which was edited by Rochefort and was the most influential radical paper in Paris. It was actually the organ of the General Council of the International and of Marx personally and it stood for participation in the elections Its policy was that the electoral movement and parliament must be used for the revolution Varlin explained his motives in a letter to his Swiss associates He said that the existing situation in France did not permit the socialist party to remain aloof from politics.

At the moment the question of the imminent fall of the Empire took precedence of everything else, and it was necessary for the socialists to be at the head of the movement, under pain of abdication. If they held aloof from politics, they would be nothing in France today, while as it was they were on the eve of being everything[24] Neither the Swiss nor Bakunin himself had any objection to this policy, which in their eyes was justified if it led to the revolution and was the most direct way to the social revolution

Whatever criticism may be made of Bakunin, he was not a man to be satisfied with empty formulas. He acted in accordance with the demands of his ideas, and he acted very energetically. Immediately after the conclusion of the Basle congress, at which he strengthened and extended his secret society, he set about preparing for a revolutionary rising. What his plans were, the exact details of what he was preparing for, are not known, but it is known that in December 1869 and January 1870 he was conducting a lively correspondence with members of his organization in various French towns, for the revolution was to break out first in France. His people worked devotedly and successfully

A large number of the most active members of the International, revolutionary-minded young men like Varlin and Pindy in Paris, Richard in Lyon, Bastelica in Marseilles, entered Bakunin's organization and prepared for an insurrection. The situation seemed more favourable than ever The prestige of the Empire was severely shaken and everyone felt that its days were numbered. The revolution, the downfall of Louis Bonaparte, might perhaps be delayed a little longer, but it was inevitable nevertheless The policy of the General Council, led by Marx, was based on the imminence of a revolution in France But it differed fundamentally, in general and in particular, down to even the most insignificant details, from that of Bakunin Bakunin's societies, unknown to the working masses, with a programme that they carefully concealed, worked outside society, worked deliberately outside society, planning and plotting violence.

The General Council strove to lead the workers as a whole, as a mass movement, towards a political and economic struggle with the Empire that should be above board and patent to everybody, and they strove to teach the workers the incompatibility in practice of their interests and those of their rulers. In May 1870 the French Imperial Government started a hue and cry after the International, dissolving its sections and arresting a number of its leaders To Marx this declaration of war was welcome 'The French Government', he wrote to Engels on 18 May, 'has at last done what we have so long wanted – turned the political question of empire or republic into a question of life and death for the working class '[25] The International, suppressed by Napoleon, must promptly re-arise and openly defy the ban, exploiting in every one of its utterances every opportunity, however meagre, of proclaiming to rulers and workers alike its determination not to allow itself to be suppressed and its resolution to continue with its mass propaganda 'Our French members are demonstrating beneath the eyes of the French Government the difference between a secret political society and a real workers' movement', Marx wrote in the same letter 'Scarcely had the committee members in Paris, Lyon, Rouen, Marseilles, etc , been locked up (some of them succeeded in escaping to Switzerland) when twice the number of new committees immediately proclaimed themselves their successors with the most impudent and defiant announcements in the newspapers, even giving their private addresses.'

The Bakuninists went on plotting in the dark Marx heard of their existence for the first time in the spring of 1871, and for some time all he knew about them was the fact of their existence. When material dealing with the Bakuninist organizations fell into the hands of the Paris police as a result of the arrests in May 1871, and the public prosecutor announced in the Press that a secret society of conspirators existed besides the official International, Marx believed it to be one of the usual police discoveries 'It's the old tomfoolery,' he wrote to

Engels 'In the end the police won't even believe each other any more This is too good'

Marx did not yet know how wide the ramifications of Bakunin's organization were The abyss that separated his conception of programme, tactics and method from that of Bakunin at the beginning of 1870 had become so wide that it was unbridgeable. Marx had to engage once more in the struggle in which he had been engaged for the greater part of his life in constantly changing forms. Meanwhile war had become inevitable European events postponed it, complicated it, blurred the issues That it was bound to break out was clear to everyone in the winter of 1869.

[19]

The Franco-Prussian War[1]

In the year of the foundation of the International Prussia and Austria were at war with Denmark. Two years later there was war in Lombardy for the unification of Italy and in Bohemia for the hegemony of Germany. After 1866 war – *revanche pour Sadowa* – had become inevitable between the France of Louis Napoleon and Bismarck's Prussia The International, from the first day of its existence, had had to take a stand towards war and foreign politics The inaugural address had proclaimed the necessity of the proletariat's having its own foreign policy, based on the solidarity of the workers of all countries The workers' International must answer ruling-class policy with its own This principle was accepted as a matter of course by all groups within the International, even those of the most divergent views. But as soon as it came to putting principle into practice acute differences arose

The Polish question was the first. Sympathy for the fate of the unfortunate people of Poland was universal among revolutionaries and mere radicals too, and this widespread feeling had contributed substantially to the foundation of the International. The International had helped to organize the meeting of 22 July 1863, summoned to consider ways and means of assisting the Polish rising Poland enjoyed the sympathy of all. But there were not a few who shrank from the inevitable political implications of a more or less sentimental mood. Marx's phrases about Russia in the inaugural address had roused a good deal of opposition, for he maintained, just as in 1848, that Russia was still the mainstay of European reaction and that Russia must therefore be vanquished first. Marx was pro-Polish because he was anti-Russian. Poland's resuscitation would involve the break-up of the Holy Alliance, which was always re-arising from its ashes in spite of the celebrations over

its decease, and the end of the Russian nightmare which lay oppressively over Europe, stifling every revolutionary movement.

There were many in Germany and still more in England who thought as Marx did In the Latin countries it was otherwise. The Proudhonists were the chief of those who repudiated Marx's 'Russophobia'. They did not deny that it had been justified in the 1840s, but they claimed that it was superfluous, actually harmful now They held that however obnoxious Russian despotism might be in principle, from the working-class point of view it differed not at all from the governments of Napoleon III or Bismarck or even of Queen Victoria's cabinet All were bourgeois governments alike. The Proudhonists declined to recognize the alleged excessive influence of Russia on the destiny of Europe. They rejected the notion of directing the whole weight of International policy primarily against Russia, and at the Geneva congress of 1866 declined to vote for a foreign policy resolution demanding the 'annihilation of Russia's despotic influence on Europe' on the ground that the resolution should have been worded 'the annihilation of all despotism'.[2]

In the dispute between Marx and the Proudhonists concerning the attitude to be adopted towards Russia and Poland, the differences in their estimates of the historical period through which Europe was passing and the tasks that confronted the International in it emerged for the first time. They were soon to assume a more manifest form.

During the revolutionary period of 1848 and 1849 in Central Europe the demand for national unity had been intimately associated with the demand for political freedom It was an axiom at that time that the way to national unity lay only through the overthrow of the princes. Only freedom created unity and only in unity was there freedom This article of faith was adhered to even by the German bourgeois democrats, though their consciences were mightily plagued by their inherited petty-bourgeois respect for every crowned head; and it remained part of the creed of the Italian democrats. But the

wars of the 1860s seemed to confute it utterly For Italy was not united by Mazzini but by Cavour, a royal minister of state, and the German people were not united by themselves, but by Bismarck, with blood and iron, under the spiked Prussian helmet

To the Proudhonists national movements were simply incomprehensible, and nations themselves were 'obsolete prejudices'[3] They could not understand how 'the social question' could be mixed up with antiquated 'superstitious ideas' about national unity and independence at a time when 'the social question' overshadowed everything else, and was indeed the only question that mattered at all. In their eyes anyone who connected 'the national question' with 'the social question' was a reactionary That a man like Bismarck was able to assume the leadership of a national movement only confirmed them in their entirely negative judgement of what they regarded as belonging to long-obsolete historical phases In their eyes every single state, without any exception whatever, was founded on 'centralism and despotism', the contradictions of which, as long as the world had not found its 'economic equilibrium', would continue to be fought out in wars. In these ever-recurring conflicts they did not regard it as the business of the proletariat to try and find out which side was objectively serving the cause of human progress, and then to support that side No, the proletariat had only one duty This, as de Paepe stated at the International congress of 1868, consisted in the fundamental reconstruction of social and political institutions; because that was the only way a permanent end could be made of ever-recurring international disputes. The Proudhonists stood for energetic anti-military propaganda, demanded the abolition of standing armies, and were the first to raise the question of the general strike as the weapon of the proletariat against war

For these radical-sounding phrases Marx had little use. Ever since 1848 he had been preaching war with Russia, for he believed such a war would be a most powerful engine of the revolution. As in the past, he regarded war as a factor in historical

growth and in some circumstances a factor of historical advance. Whether a particular war were really the latter or not and what attitude the proletariat should adopt towards it were questions to be decided on the merits of the particular case In foreign just as in domestic politics Marx rejected the idea of anything being in itself 'reactionary' (J B. von Schweitzer's expression) Which of two warring nations gained the victory could not possibly be a matter of complete indifference to the proletarian movement, the attitude of which should not be one of rigid adherence to a comfortable position of apparent extreme radicalism, but should be supple and pliant, ready to change in accordance with the changing situation [4]

In spite of Proudhonist criticism Marx remained convinced, as he had been in 1848, that national movements had a progressive function, at any rate among great peoples such as the Germans, the Italians, the Poles, and the Hungarians In a letter to Karl Kutsky written many years later Engels neatly summarized the reasons for Marx's belief 'It is historically impossible for a great people to be in a position even to discuss any internal question seriously as long as national independence is lacking', he wrote 'An international movement of the proletariat is only possible among independent nations, between equals.'[5] In this national nihilism of the Proudhonists Marx discerned not only a remarkable form of French nationalism but the lurking assumption that the French were the chosen nation.

After a meeting of the General Council in June 1866, at which there was a lengthy discussion of national questions, Marx described their attitude in a letter to Engels as 'Proudhonized Stirnerianism'

They want to reduce everything to small 'groups' or 'communes', and then build up a 'union' but no state And this 'individualizing' of humanity with its accompanying 'mutualism' is to be brought about while history in other countries stands still and the whole world waits until the French are ripe for the social revolution They will then demonstrate the experiment before our eyes and the rest of the world, overcome by their example, will

follow it . . . It is exactly what Fourier expected from his *phalanstères*.[6]

At the meeting in question Marx remarked that the French 'while denying all nationality appeared quite unconsciously to reconcile it with their own absorption into the model nation which was France'. True, Napoleon's hypocritical concern for the destinies of nations that had not yet achieved unity drove his opponents to the opposite extreme, and the petty-bourgeois socialists' dislike of national concentration, i.e. economic concentration, came out in their dislike of the economic developments that led to it.

Just because he regarded the movement towards national unity as a historical advance over the period of national subdivision into minor and petty states, Marx regarded Bismarck's policy with the greatest suspicion. For a long time he had mistrusted Bismarck's policy as an exclusively Prussian one, and held Bismarck to be the tool now of Napoleon, now of Russia. To Marx the idea that Germany could be united by being Prussianized seemed absurd. He and Engels were certainly not pro-Austrian during the Prusso-Austrian war, but still less were they pro-Prussian. Engels hoped the Prussians would 'get a good hiding' and Marx was convinced that they would 'pay for their boasting'. Marx expected that the defeat of Prussia would lead to a revolution in Berlin. 'Unless there is a revolution', he wrote to Engels on 6 April 1866, 'the Hohenzollern and Habsburg dogs will throw our country fifty or a hundred years back by civil (dynastic) wars.'[7] Unless there were a revolution, he repeated in a letter he wrote on the same day to his friend Kugelmann in Hanover, Germany would be on the threshold of another Thirty Years' War, and that would mean a divided Germany once more.[8]

To Marx, Prussia's rapid and brilliant victory was entirely unexpected. Prussian hegemony in Germany became a fact. The unpleasant prospect of Germany being merged into Prussia became a possibility to be reckoned with. That Bismarck's ambitions were not German ambitions but 'dynastic Hohenzollern' ambitions was plain enough. But his blunt refusal to

entertain the French demand for 'compensation' for having remained neutral in the Austrian war and the harshness with which he asserted Prussian demands in the dispute about Luxembourg immediately afterwards finally destroyed the suspicion that he was only a tool of Napoleon.[9] The reactionary *Junker* Bismarck introduced universal suffrage into the North German Reichstag, though for reasons that differed profoundly from those for which Lassalle had agitated for it only a few years previously. The irresistible progress of the Prussianization of Germany became clearer every day, and those in the workers' movement could afford to ignore it less than anybody. It had to adapt itself to the new situation, be as pliable and resilient as its opponent, Bismarck. Universal suffrage created a vast new field of action for it The two socialist parties were represented in the North German Reichstag, the followers of Lassalle and the 'Eisenacher', the latter led by Liebknecht and young August Bebel

In the Paris Chamber the opposition parties, consisting of more or less determined republicans and Orleanists, were represented plentifully enough. But there was not a single socialist. Germany's greater social maturity was demonstrated by that alone German industry had already surpassed the French. New, scientifically equipped factories were rising in the Rhineland, in Saxony, in Silesia, every year, and genuine proletarian centres were forming round them, and class differences were making their appearance more rapidly and more acutely than in any other country, including France.

The traditional idea of the leading role played by France in social development grew less and less justified as the years went by In the 1840s Marx had held up France as a model to the Germans and measured Germany's level by that of its neighbour. From the beginning of the sixties Marx gradually began to doubt the old, familiar idea Engels had started doubting it even earlier, and as German economic developments became more and more impressive and as the process of the unification of the state, albeit in crooked, incomplete and half-feudal forms, became more manifest, Marx gradually

became convinced that it was to the German workers' movement that the future belonged. In 1870, before the outbreak of the Franco-Prussian war, he wrote to Engels

> It is my firm conviction that, though the first impulse will come from France, Germany is far riper for a social movement and will outdistance France by far. The French are guilty of great error and self-deception if they still believe themselves to be the 'chosen people' [10]

In the middle of February 1870 he wrote to Kugelmann that he expected more for the social movement from Germany than from France.[11] The unification of Germany had become the preliminary to and the guarantee of a proletarian movement in the heart of Europe.

In the summer of 1870, when the Franco-Prussian war broke out, Marx did not hesitate for a moment For the patriotic excesses of the German upper class and petty bourgeoisie he had nothing but contempt, reserving particular scorn for the dithyrambic outbursts of those who had recently been his comrades and even friends After reading Freiligrath's war poems he wrote to Engels that he would rather be a miaowing cat than a ballad-monger of that kind He was indignant at the leaders of the Lassalle faction, who gave unconditional support to the Prussian Government in making war on France, but approved of Bebel and Liebknecht, who voted against war credits, though he did not agree with their reasons It seemed obvious to Marx that in the struggle with Bismarck there could be no truce, even in war [12]

Germany's cause was not the Hohenzollerns' cause Germany was attacked and not Prussia, and Germany must defend herself But a German victory was essential above all in the interests of the workers' movement Marx held that there were two reasons why it would be fatal for Louis Napoleon to win In France the Bonapartist régime would be consolidated for many years and Central Europe would be thrown back whole decades, and the process of the unification of Germany would be interrupted And then, as he wrote to Engels on 15 August

1870, there could be no more talk of an independent German workers' movement and everything would be absorbed in the struggle for the re-establishment of the national existence. On the other hand a German victory would mean the end of Bonapartism, and whatever government followed the French would have a freer field.[13] 'If the Prussians win', Marx wrote to Engels immediately after the outbreak of war,

> the centralization of the state power will be useful for the centralization of the German working class. Moreover, German preponderance will cause the centre of gravity of the workers' movement in Western Europe to be still more definitely shifted from France to Germany, and it is only necessary to compare the movement in the two countries from 1866 till now to see that the German working class is superior both theoretically and in organization to the French [14]

On 23 July 1870 the General Council issued a manifesto on the war. It was written by Marx. Addressed as it was to the workers of the whole world, it was obviously impossible for it to contain all the arguments that determined Marx's position It stated that 'on the German side the war was a war of defence', which immediately raised the question of who had placed Germany in the position of having to defend herself In Bismarck Marx no longer saw a servant but rather a pupil and imitator of Napoleon The manifesto, which was issued when the war had only just begun, stressed the fact that the defence of Germany might degenerate into a war upon the French people But if the German working class permitted that, victory or defeat would be equally evil. 'All the evils that Germany had to suffer after the so-called wars of liberation would be revived and redoubled', the manifesto concluded. 'The alliance of the workers of all countries will finally exterminate war.'[15]

In a letter to Wilhelm Liebknecht Marx gave his German comrades still more specific advice. This letter has not survived, but Engels's letter to Marx, dated 15 August 1870, in which he laid down the tactical line to be adopted in a manner

with which Marx entirely agreed, has been preserved He wrote·

In my view, what our people can do is (1) associate themselves with the national movement as long as it is confined to the defence of Germany (in some circumstances an offensive persisting right up to conclusion of peace might not be inconsistent with this), (2) at the same time emphasize the distinction between the national interests of Germany and the dynastic interests of Prussia, (3) oppose the annexation of Alsace-Lorraine – Bismarck's intention of annexing Alsace-Lorraine to Bavaria and Baden has already transpired, (4) as soon as a republican, non-chauvinist government is at the helm in Paris, work for an honourable peace with it, (5) continually stress the unity of interests of the workers of France and Germany, who did not want the war and are not at war with each other; (6) Russia, as in the International manifesto [16]

There had been only one sentence in the manifesto about Russia, pointing out that its 'sinister form' was 'lurking in the background of this suicidal struggle'

The manifesto commended the French workers for declaring themselves against the war and against Napoleon. But that was all. Neither in the manifesto nor in the correspondence between Marx and Engels is there a word about the duties of the French proletariat during those pregnant weeks. Marx, in all the years during which a stupefied world hailed Napoleon III as a genuine heir of the Corsican, clung to his opinion that he was but 'commonplace *canaille*',[17] and long before the rottenness of the Bonaparte régime had become manifest to all beholders Marx held that its fate was already sealed 'Whatever the result of Louis Napoleon's war with Prussia may be', the manifesto stated, 'the death knell of the Second Empire has already sounded in Paris' From the first day of hostilities Engels, as a student of war, was convinced that Germany would win His articles on the campaign in the *Pall Mall Gazette*[18] attracted a great deal of attention, and the accuracy with which he predicted the catastrophe of Sedan, even to the very date, confirmed his reputation as the 'General', which was the nickname by which his friends henceforward invariably

called him. Napoleon's defeat was certain, and Napoleon's defeat would mean a revolution in France But in what a situation! 'If a revolution breaks out in Paris', Marx wrote to Engels on 8 August, 'the question arises · have they the resources and the leaders to put up serious opposition to the Prussians? It is impossible to deny that the twenty-year-long Bonapartist farce has caused enormous demoralization. One is scarcely justified in counting on revolutionary heroism.'[19] In the middle of August Engels still believed that the position of a revolutionary government, if it came soon, need not be desperate, but it would have to abandon Paris to its fate and continue the war from the south It might still be possible to hold out until fresh munitions had been procured and new armies organized with which the enemy might gradually be forced back towards the frontier. But five days later Engels believed that even that possibility had vanished 'If a revolutionary government had been formed in Paris as late as last week,' he wrote to Marx, 'something might still have been done Now it is too late, and a revolutionary government can only make itself ridiculous, as a miserable parody of the Convention.'[20]

The revolution was bound to come That was certain But Marx was just as certain that its victory in Paris could only follow defeat at the front His certainty on this point explains the silence of the manifesto

The French sections of the International did not allow themselves to be carried away by the wave of patriotic enthusiasm that swept the country upon the outbreak of war. Their hatred of Napoleon alone was sufficient to preserve them from that. For them to have wanted the Emperor to win the war and thus consolidate Bonapartism would have been inconceivable, and they did not believe he would win, for the weaknesses of his system were too familiar to them The police, as usual unremitting in the invention of falsehood, alleged that cheers for Prussia had been called for at peace meetings just before the outbreak of war Such meetings were held in places, and it became necessary to forbid patriotic demonstrations in the suburbs of Paris, because they occasionally developed into

demonstrations the very reverse of patriotic. It is quite possible that some crank, conceiving himself to be a revolutionary, may actually have called for a cheer for the Prussians, but it is certain that the workers who adhered to the International had no love for Bismarck, however much they despised Napoleon. Disunited as the French socialists were – the Internationaux de la dernière heure', as the 'old' Internationalists remarked, only served to bring more differences into the ranks – they certainly did not want a Prussian victory at the expense of France. Enslaved, humiliated and oppressed as their country might be at the hands of an iniquitous government, it nevertheless remained the country of the revolution, the heart of Europe, now and for the future. They did not believe in Napoleon, but they believed in France and France's mission.

Bakunin, who at this time was held in high regard by the members of the International in France, thought as they did. Nay more, he was an almost ideal embodiment of French revolutionary patriotism. Like Marx, he considered that indifference in international conflicts was pseudo-radical and could only be harmful to the revolution. Like Marx, he demanded the intervention of the proletariat to the full limit of its strength. But, unlike Marx, he regarded Germany and not Russia as the enemy and the chief bulwark of reaction, and Bakunin did not just mean contemporary Germany; in his eyes Germany had been the hub and pattern of despotism for centuries, ever since the Reformation and the suppression of the peasant risings in the first third of the sixteenth century. Though there were other despotic governments even more brutal than the German, that fundamental truth was not affected in his eyes, because 'Germany had made a system, a religious cult, of what in other countries was only a fact.'[21] It was a feature of the German national character. Bakunin liked quoting the saying of Ludwig Borne that 'other people are often slaves, but we Germans always lackeys'.[22] He called the servility of the Germans a natural characteristic which they had elevated into a system, thus making of it an incurable disease. If the Germans, condemned to slavery themselves and

spreading the plague of depotism wherever they went, were to conquer France, the cause of socialism would be lost and all hope of a revolution in Germany – a hope that in any case could only be justified by a spirit of optimism that ran counter to all experience – would have to be buried for at least half a century, and France would be threatened with the fate of Poland.

Even before the war had properly begun he believed, as Marx did, that Napoleon's defeat was inevitable, but he did not regard the defeat of France as inevitable, that is, assuming she bethought herself and a revolution broke out in time A revolution and a revolution alone could save France, Europe, and socialism The French, above all the workers, must rise, trample Bonapartism in the dust and hurl themselves at the enemy of France and of civilization with the all-compelling enthusiasm of a revolutionary nation In converting the imperialist war into a revolutionary one lay their only hope.

Bakunin became intensely active as soon as war broke out His new activity was essentially a continuation of the old; it consisted in organizing militant groups and preparing armed risings. The war had put immediate insurrection upon the order of the day During the last days of July and the first week of August Bakunin overwhelmed his friends in France with letters, counselling them, encouraging them, urging them to immediate action. On 11 August he mentions that he had written twenty-three detailed letters to France that day 'I have my plan ready', he said [23] The details of his plan are unknown, but what they were it is not difficult to guess. On 8 August revolutionaries led by Bakuninists seized the town hall of Marseilles, and a rising in Paris was planned for 9 August. The 'committee of action' there consisted chiefly of Bakuninists, and its leader, Pindy, was a prominent member of Bakunin's secret organization But the result was a fiasco, for on the morning of the ninth Pindy and his fellow conspirators were arrested.

Bakunin was not discouraged by these abortive attempts. What did not succeed in one place must succeed in another –

must succeed. For time was racing by and the German army was relentlessly advancing into France. 'If there is no popular rising in France within ten days, France is lost,' he wrote to his friends, almost in desperation. 'Oh, if I were young, I should not be writing letters but should be among you.'[24] Danton's words were constantly upon his lips. 'Avant de marcher contre l'ennemi, il faut le détruire, le paralyser derrière soi.'*

On 14 August Blanqui and some of his followers carried out an attack on the police barracks in the Grande Rue de La Villette. Their cry 'Vive la République! Mort aux Prussiens! Aux armes!' was greeted with silence by a gaping throng. The rising collapsed pitifully.

News of the disaster of Sedan reached Paris on 4 September; 125,000 men had been taken prisoner, 600 guns had been captured and the Emperor had surrendered to the Prussians. The Empire collapsed without raising a finger in its own defence. A republic was proclaimed in Paris, and the provinces, insofar as they had not anticipated Paris, followed suit.

Napoleon left the republic a fearful heritage. The enemy was in the land, the armies were in disorder, the exchequer was bare. Marx's anxious query about the future was destined soon to have an answer.

On the night of 5 September Marx received a telegram from Longuet: 'Republic proclaimed.' The names of the members of the Provisional Government followed, with the words: 'Influence your friends in Germany immediately.'[25] He need not have added this injunction. The manifesto of the Paris sections of the International, which Marx received next day, was not calculated to make him hurry. On the contrary, it merely repelled him as being 'ridiculously chauvinistic',[26] with its demand that the Germans promptly withdraw across the Rhine – as if the Rhine could possibly be the frontier. But it was not a question of criticizing inept phraseology or the style of a well- or ill-written manifesto now. This was no time for

* 'Before marching against the enemy, it is necessary to destroy, to paralyse the enemy behind one.'

historical analyses. On 6 September Marx addressed the General Council on the fundamental alteration in the European situation brought about by the downfall of Napoleon in France. Thanks to the tremendous authority he exercised on the General Council, he succeeded in persuading it to acknowledge the young French republic, in spite of the hesitation and vacillation of some of its English members. It was decided that the new situation merited the issue of a second manifesto. This was also written by Marx, with the assistance of Engels in those passages which dealt with military matters It was published on 9 September.[27]

The main theme of the manifesto, on which all the rest depended, was this· after Sedan, Germany was no longer waging a war of defence 'The war of defence ended with the surrender of Louis Napoleon, the capitulation of Sedan and the proclamation of the republic in Paris But long before these events occurred, at the very moment when the whole rottenness of the Bonapartist armies was revealed, the Prussian military camarilla set its heart on conquest.' To refute the alleged necessity of the annexation of Alsace-Lorraine for the defence of Germany Marx used arguments with which Engels supplied him These were convincing, but they were only calculated to make an impression on military experts. The chief emphasis lay in the political argument, which made the General Council's manifesto the most significant document of the time

With the victory and the consequences that threatened to follow in its wake Russia, from being a shadowy figure lurking in the background, came to the fore in a fashion that grew ever plainer and ever more menacing. Marx saw it, and did all that was in his power to make it visible to the world But in Germany he was talking to men who were dazzled and blinded Russia was far away, but Strasbourg was near, near enough to seize, and they seized it.

Did the Teuton patriots really believe [the manifesto said] that Germany's independence, freedom and peace would be assured if they forced France into the arms of Russia? If the success of

German arms, the arrogance of victory and dynastic intrigues drive Germany to rob France of French soil, only two ways remain open to Germany She must either become a conscious vassal of Russia's plans for self-aggrandizement, with all the risks that that involves – a policy that corresponds to Hohenzollern traditions – or, after a short rest, aim for a new 'defensive' war, not one of these new-fashioned 'localized' wars, but a war against the allied Slav and Latin races

A week after Sedan, Marx clearly delineated the main lines that German foreign policy was to follow up to the outbreak of the First World War; first the 'friendship' with Russia that Bismarck fostered, followed by preparations for war against the Franco-Russian *entente* that began as soon as that friendship was dissolved A few sentences Marx wrote to his friend Sorge on 1 September 1870 bear brilliant witness to his foresight

What the Prussian donkeys don't see [he wrote] is that the present war leads just as necessarily to war between Germany and Russia as the war of 1866 led to war between Prussia and France That is the *best* result that I expect of it for Germany 'Prussianism' as such has never existed and cannot exist other than in alliance and in subservience to Russia And this War No. 2 will act as the midwife of the inevitable revolution in Russia [28]

Forty-four years later Germany went to war with Russia and France, in 1917 revolution, unleashed by the war, broke out in Russia, and in 1918 the semi-feudal military might of Prussia collapsed

Marx was not deceived as to the weakness of the German workers' movement and its inability to prevent the approaching catastrophe 'If the French workers were unable to check the aggressors in the midst of peace, have the German workers a better prospect of checking the victor in the midst of the clash of arms?' he wrote. Nevertheless, however difficult the position of the German proletariat might be, he believed 'it would do its duty'

The fall of Louis Bonaparte opened up new and tremendous prospects to the French working classes The General Council sent its greetings to the young republic – to the republic and

not to the Provisional Government of National Defence. The mistrust felt for the latter in revolutionary circles was not misplaced It consisted partly of avowed Orleanists, partly of 'middle-class republicans, on some of whom the insurrection of June 1848 had left an indelible mark' Suspicion of the Orleanists, who occupied all the most important positions and regarded the republic as but a bridge to the Restoration, was well-founded Nevertheless, or rather for that very reason, Marx decided that the most pressing duty of the French workers was to support and defend the young republic in spite of all its defects The situation was full of dangers and full of temptation, requiring the most extreme caution and the most courageous initiative, iron self-control and all-daring heroism.

The struggle was no longer between Louis Napoleon, that 'commonplace *canaille*', and a Germany which was on the defensive; republican France was now defending herself against rapacious German militarism. The manifesto called on the workers of France to do their duty as citizens Their duty was to defend the French republic against the invading Germans 'Any attempt to overthrow the new Government with the enemy at the gates of Paris would be a desperate act of folly' But at the same time it was obvious that the French working class must not forget its own class duties, and the General Council bade it exploit the favourable opportunity of forwarding its own interest to the extreme Eugène Dupont, the representative of the French sections on the General Council, wrote to the Internationalists at Lyons.

> The bourgeoisie still have the power In these circumstances the role of the workers, or rather their duty, is to let the bourgeois vermin make peace with the Prussians (for the shame of doing so will adhere to them always), not to indulge in outbreaks which would only consolidate their power, but to take advantage of the liberty which circumstances will provide to organize all the forces of the working class The duty of our association is to activate and spread our organization everywhere.[29]

Six weeks later he wrote once more to Chavret at Lyons · 'The

role [of the International] is to take advantage of every opportunity and every occasion to spread the organization of the working class.'

'Restraint on the part of the International in France until after the conclusion of peace', as Engels put it, was far from meaning that the French workers were to go on quietly and calmly organizing as if they were living, say, in Belgium or in England or as if the date were still 1869. Their role was a wider one than mere active participation in the struggle against the invaders and continuing to build up their organization. Marx praised highly what the members of the International did at Lyons before Bakunin ruined everything there. On 19 October 1870 he wrote to Beesly, saying that under pressure of the local section of the International a republic had been set up before Paris took that step, and a revolutionary government immediately established, a commune, consisting partly of workers belonging to the International, partly of middle-class radical republicans. The *octroi* had been immediately abolished, and rightly so. The Bonapartist and clerical intriguers had been intimidated and energetic steps taken to arm the whole population.[30] Activity of this kind was far more than mere work of organization, it meant that working-class organizations were actively cooperating in introducing and consolidating the republican régime, and this was the only way the working-class movement could grow, by cooperating in shaping the country's destiny. Independent action of the working class must be postponed till later, until after the war was over and the necessary work of preparatory organization had been done. Engels went so far as to stress the fact that the working class 'would need time to organize'[31] even after the conclusion of peace. Hence it was impossible to decide in advance what form its future action might take. 'After the conclusion of peace', Engels wrote in a letter to Marx on 12 September, 'the workers' prospects in every direction will be brighter than ever before.' A remark in the same letter that 'not much fear need be entertained of the army returning from internment from the point of view of internal conflicts' indicates that he reckoned

on the possibility – not the probability and definitely not the inevitability – of an armed struggle. In the same letter he warned the workers against any action during the war. 'If one could do anything in Paris', Engels wrote,

the thing to do would be to prevent the workers from striking until after the peace. Should they succeed in establishing themselves under the banner of national defence, they would take over the inheritance of Bonaparte and the present wretched republic, and would be vainly defeated by the German armies and thrown back again for twenty years . But if they do not let themselves be carried away under the pressure of foreign attacks but proclaim the social republic on the eve of the storming of Paris? It would be dreadful if the German army's last act of war were a battle with the workers at the Paris barricades It would throw us back fifty years, put everyone and everything into a false position, and the national hatred and the demagogy that would take hold of the French workers! In this war France's active power of resistance is broken and with it goes the prospect of expelling the invaders by a revolution [32]

For France the war was lost. He who continued it would be beaten and must humble himself before the victor All other considerations must recede before that one decisive fact. The military situation alone forced the workers to hold back at least until the conclusion of peace The manifesto warned them 'not to let themselves be swayed by national memories of 1792 as the French peasants had let themselves be deceived by national memories of the First Empire. Theirs was not to repeat the past but to build the future ' The argument sounded well, but if it had any validity it was but a secondary one. In the middle of August Engels had said that any government that tried to repeat the Convention would be but a sorry parody of it [33] After the Battle of Sedan a revolutionary war in the manner of 1792 seemed completely impossible A letter of Marx's to Kugelmann, written on 14 February 1871, makes it clear that his attitude was determined by this estimate of the war situation. 'If France holds out, uses the armistice to reorganize her army and gives the war a real revolutionary

character – and the crafty Bismarck is doing his utmost to this end – the great new German Borussian Empire may still receive the baptism of a wholly unexpected thrashing.'[34] To give the war a revolutionary character would be to repeat the Convention. In September 1870 it would only have been a miserable parody of the Convention. 'To sacrifice the workers now', Engels wrote to Marx on 7 September, 'would be strategy *à la* Bonaparte and MacMahon.'[35]

While Marx did all he could to prevent the workers from attempting to overthrow the Provisional Government while the war lasted, Bakunin and the 'Jacobins' held the overthrow of the Provisional Government to be their most pressing task. The 'Jacobins', students, intellectuals, and *déclassés* of all sorts, seized on the traditions of the French Revolution – not so much those of the Jacobin clubs, for many of them considered Robespierre to be an irresolute weakling, as to those of the Hébertists. Many of them had vague socialist ideas, and all of them every day went politically a step farther left than the day before. They were conspirators by tradition and inclination, completely unorganized as a group or even as a party, but they were united by that mental kink exhibited in its purest form by the Bohemians of the Left Bank, who were in revolt against absolutely everything.

In the history of London's political exiles in the 1860s the 'Jacobins' did not play a very honourable role. Such of them as had formed a special 'French branch' of the International soon came into violent conflict with the General Council. Anyone who worked for the International in France was immediately suspect in their eyes. Such a person was bound to have inclinations towards Bonapartism, if he were not actually an agent of Napoleon. Félix Pyat, Vésinier, and others of their leaders outdid each other in radicalism. Tyrannicide was their ideal. Pyat constantly drank toasts to 'the bullet that will slay a tyrant', and he opened a subscription to buy a 'revolver of honour' for Beresovsky, the Pole who made an attempt on the life of Alexander II in Paris in 1867, and indulged in many similar pranks. Though not himself a member of the 'French

branch', he used it as his platform and behaved as though he were the living embodiment of the International itself The behaviour of this irresponsible would-be politician, which in other circumstances would have been nothing but a bad joke, became a matter of occasionally serious embarrassment for the International The General Council had repeatedly to announce that Pyat and his friends had nothing to do with them. It could not allow legal organizations on the Continent to be jeopardized by Pyat's ranting Marx had bitter contempt for 'these heroes of the revolutionary phrase, who, from a safe distance of course, kill kings and emperors and Louis Napoleon in particular', and for Pyat, 'the pre-1845 mountebank' [36]

The news of the fall of the Empire turned these people's heads completely 'The whole French branch has set off for Paris today', Marx wrote to Engels on 6 September 1870, 'to commit imbecilities in the name of the International They wish to overthrow the Provisional Government, proclaim the Paris Commune, appoint Pyat French ambassador in London, etc' [37] As Marx considered this an extremely dangerous enterprise he sent Serraillier to Paris after the Jacobins to warn people of the danger of insurrectionary action.

Bakunin did not lag behind them in zeal The seed he had sown so carefully seemed to have ripened now The moment had come to strike. All the old powers had collapsed; and there was only one way to save France now, Bakunin's way, anarchism. An uprising of popular passion would achieve both victory over the external enemy and the complete reorganization of society The two were inseparably united in his eyes Bakunin left Switzerland on 14 September The difficulty he had in raising money for the fare cost him several valuable days, or so he feared With a Pole and a former Russian officer as his travelling companions he went to Lyons, where his most devoted followers lived At first there were only a very few who were willing to follow him, but he succeeded in winning over the hesitators and the doubters Two days after his arrival he wrote to Ogarev: 'The real revolution has not yet broken out

here, but that will come. Everything is being done to prepare it. I am playing for high stakes. I hope to see the triumph soon.'[38] A week later he was as good as certain of the victory of his cause. 'Tonight we shall arrest our principal enemies, tomorrow there will be the last battle and, we hope, victory.'[38] On 28 September Bakunin and his followers seized the town hall of Lyons and proclaimed a revolutionary commune. Paragraph 1 of the first decree stated: 'The administrative and governmental machinery of the state, having become powerless, has been abolished.' But with this the revolutionary energy of the Lyons Bakuninists was exhausted. The venture collapsed pitifully after a few hours, and Bakunin only just managed to escape. In other towns, as in Marseilles, where Bakunin tried again, and in Brest, where his followers went to work, things did not even get as far as that.

When Marx learnt of Bakunin's adventures in Lyons he was indignant. 'Those asses have ruined everything', he wrote to Beesly. Since they belonged to the International, the Bakuninists, Marx stated, unfortunately had sufficient influence to cause his followers to deviate. Beesly would understand, Marx added, that the very fact that a Russian – represented as an agent of Bismarck by the middle-class newspapers – had the presumption to impose himself as the leader of a French committee of public safety was quite sufficient to sway the balance of public opinion.[39] It would have been difficult indeed to have saved France by decreeing the abolition of the state at a moment when she was engaged in a life-and-death struggle with a terrible enemy whose demands were increasing from day to day.

The fair words spoken by the King of Prussia at the beginning of the war – as usual, he had invoked God as his witness and declared that he was fighting Napoleon but not the people of France – were now completely forgotten. Anyone who dared remember them was denounced as a traitor. When the 'Eisenacher' party committee issued a proclamation to the workers protesting against the Prussian plans of conquest and demanding an honourable peace with the French republic, a general

had them arrested and led away in chains. The Government Press described the demand that a King of Prussia should keep his promises as 'ingenuous'.

France defended herself desperately All revolutionary elements everywhere were on her side. Old Garibaldi hurried to the assistance of the French republic with a legion of volunteers. It was necessary to help her from with out.

Immediately after the proclamation of the republic in Paris the General Council set itself at the head of the movement that demanded that Great Britain should recognize it. On 10 September a great workers' meeting in St James's Hall demanded recognition of the French republic and the conclusion of an honourable peace The latter demand was closely associated with and indeed followed from it. Demonstrations increased during the winter months and at the turn of the year a large number of bourgeois politicians joined the pro-French front. Not satisfied with diplomatic intervention, they actually claimed that the time had come for British military intervention as well. Marx, as a foreigner, could not come forward publicly himself, so the campaign of meetings was led by Odger, an English member of the General Council. But Marx seized every opportunity of action that came his way. In January 1871 he learned of the difficulties of the German army in France from an informed source, namely Johannes Miquel, a high Prussian official who had been a member of the Communist League Marx saw to it that the news was transmitted to the Government of National Defence through Lafargue For, as Marx once more stated in an open letter to Bismarck in the *Daily News* of 19 January 1871, 'France was now fighting not only for her own independence but for the liberty of Germany and of Europe'[40] The General Council of the International was behind a mass demonstration in Trafalgar Square on 23 January, to which the workers marched carrying the tricolour.

Engels energetically pleaded France's cause in articles in the *Pall Mall Gazette* He denounced the brutal retaliatory

measures the Prussians took against the *francs-tireurs* There was an answer to these methods, he said

> Wherever a people allowed itself to be subdued merely because its armies had become incapable of resistance it has been held up to universal contempt as a nation of cowards [he wrote], and where-ever a people did energetically carry out this irregular resistance, the invaders very soon found it impossible to carry out the old-fashioned code of blood and fire The English in America, the French under Napoleon in Spain, the Austrians in 1848 in Italy and Hungary, were very soon compelled to treat popular resistance as perfectly legitimate, from fear of reprisals on their own prisoners

Engels tried to convince the British that military intervention need only be on a very small scale to succeed 'If thirty thousand British soldiers landed at Cherbourg or Brest and were attached to the army of the Loire, they would give it a resolution unknown before '[41] He followed the heroic resistance of the raw French armies with great sympathy, and with more than sympathy

Engels sent to Gambetta's secretary, through Lafargue, a memorandum containing a carefully thought-out plan for raising the siege to Paris. The original document has never been discovered and may have perished in those agitated times But Engels's executors, Bebel and Bernstein, found the preliminary draft after his death and destroyed it, fearing the possibility of its being used as evidence of 'treason' against the German social democrats Bernstein refused to discuss the matter during the whole of his lifetime, and that was the reason why that very remarkable document has practically never been mentioned in print before However, hints in memoirs, taken in conjunction with Engels's own statements in the articles he wrote on the war, enable one to form a pretty accurate idea of what he proposed His underlying idea must have corresponded exactly with the plan that Bourbaki's army tried to carry out in December 1870. The coincidence may have been more than accidental. Engels became so enthusiastic about his plans that he actually wanted to go to France to offer his

services to Gambetta. Marx, however, was sceptical. 'Do not trust these bourgeois republicans,' he said to him, according to Charles Longuet, 'whether you are responsible or not, at the first hitch you will be shot as a spy.'

The General Council discussed the prospects of British intervention. Short reports of meetings that appeared in a local London paper, the *Eastern Post*, only give the barest outline of Marx's views. At the end of September he seems to have regarded the prospects of British intervention as very slight. Privateering, England's most powerful weapon against the Prussians, had been forbidden by the Declaration of Paris in 1856. But the situation changed on 20 October, when Russia denounced the Treaty of Paris as far as the Black Sea was concerned. The transactions of the General Council on 1 January 1871 show how Marx regarded the distribution of forces then. Engels said that if England had declared war on Russia after 20 October, Russia would have joined forces with Prussia. Austria, Italy and Turkey would have adhered to the side of England and France. Turkey would have been strong enough to defend herself against Russia, and Europe would have expelled Prussia from France. Such a European war would have meant the saving of France and Europe and the downfall of absolutism. At a meeting on 14 March Marx was still in favour of British intervention and a ruthless privateering war. But by the middle of March the war was over. Four days later the Commune was proclaimed in Paris.

On 28 January the Provisional Government had signed an armistice with Prussia, in spite of Bismarck's monstrous demands. The population of besieged Paris was on the point of starvation, all the French armies had been defeated, and all prospect of the fortune of war changing seemed to have vanished. Was there really no way of saving France from dishonour? Had every possible thing been done? The Provisional Government had been accused of indecision, cowardice and even treachery before – treachery was the favourite accusation the Bakuninists and Jacobins directed at 'cette vermine bourgeoise' – and hundreds of thousands of Paris workers and

members of the petty bourgeoisie now started wondering whether these accusations, which they had scarcely listened to before, were not, perhaps, justified after all. They started listening to them with an attentive ear Once more they turned over in their minds all their dreadful experiences in those four and a half months of siege, and found much that was strange and difficult to understand, and much that had never seemed very plausible to them, though they had accepted it at the time as military necessity, not intelligible to them with their limited view over but a sector of the front. But now they suddenly looked at everything with different eyes It is known today that after the Battle of Sedan it was absolutely impossible for the French to have won the war without external aid The question whether a revolutionary war might or might not have forced the Prussians to reduce their demands – Marx still believed this possible as late as February – is scarcely one that can be settled now. But one thing is known now The Parisians were justified in their suspicions Paris was not defended as it might have been The military command was crippled not only by disbelief in the possibility of success There were large sections among the officers who were bitterly opposed to putting arms into the hands of the 'rabble', particularly the workers, for fear that though they might fight against the external enemy today, tomorrow they might turn their arms against the enemy within. And the more violently the extremists agitated – the possessing classes regarded as an extremist anyone who did not devotedly accept everything that came from above – the more acute their fear of the future became The Prussians were their enemies today, but they might be friends and allies in the revolution tomorrow Towards the end of the siege the most shameless of these people made no more secret of the fact that they would prefer the Germans to march in to having a revolution in Paris Fear of the imminence of insurrection was not the least of the factors that led the Provisional Government to conclude an armistice. The Germans were perfectly well aware of this Side by side with the peace negotiations there took place

negotiations concerning the assistance that Bismarck might provide. He was prepared to release immediately as many French prisoners as might be needed to refill the ranks of the 'army of order', and the Provisional Government pledged itself to disarm the workers of Paris as soon as possible. Rumours of this spread quickly and intensified suspicion. From this to conviction of the Provisional Government's treachery to France was but a step. The Bakuninists and their allies, the Jacobins, saw to it that the step was taken.

This is not the place to write the history of the Paris Commune. Spontaneous mass movements and the deliberate actions of organized groups were so inextricably intermingled that in spite of all that has been written about it and all the research that has been done, the tangle has never been completely unravelled.[42] But one thing is sure. The theory that the March revolution in Paris was an entirely spontaneous rising, entirely unorganized and unprepared, does not correspond to the facts.

True, Bakunin, the arch-conspirator, took no part in it. His strength was broken by the reverse he suffered at Lyons. While still there he wrote to a friend in deep despair. 'Farewell liberty, farewell socialism, farewell justice for the people, and farewell the triumph of humanity!'[43] All his hopes of France had been in vain 'I have no more faith in the revolution in France', he wrote at the end of October 1870. 'The country is no longer revolutionary at all. The people has become as doctrinaire and as bourgeois as the bourgeois. The social revolution might have saved it, and the social revolution alone was capable of saving it' The people had shown itself incapable of embracing its own salvation. 'Farewell all our dreams of imminent emancipation. There will be a crushing and overwhelming reaction'[44]

Great as Bakunin's influence on his friends was, on this occasion they did not follow him – his friends in Paris in particular What bound them to him was not a thought-out programme – to say nothing of a comprehensive interpretation of society – but a will to action that flinched at no obstacles,

recognized no obstacles; they were united less by community of conviction than by community of mood, and moods in besieged Paris were necessarily different from what they were at Lyons. Certainly Lyons had been a fiasco, and hard as it might be, they must be better prepared next time That was what they thought in Paris They did not rise but made their preparations first They regarded the incident at Lyons, which had been a terrible blow to Bakunin, as but a preliminary skirmish Their battle was still to come. They drew up their ranks Their leader was Varlin

He was not a particularly gifted speaker, but he set no great store by oratory An able organizer, energetic and clear-sighted, he took up the cause of his class with complete devotion and utterly without personal ambition General Cluseret called him 'the Christ of the working class', a phrase that sounded false only to those who did not know the details of his life The workers loved him as their best friend His work on the *Marseillaise* had brought him into contact with the revolutionary intelligentsia, particularly with the leading men among the Jacobins With some of them he was on terms of personal friendship and he was exceptionally fitted to re-establish political liaison between them and the Bakuninists, to whose ranks he himself belonged

On 4 September 1870 Varlin was still in Brussels, to which he had been compelled to flee to escape the attentions of the Bonapartist police On 5 September he made a speech to the workers of Paris He very soon resumed the prominent position he had previously occupied in the regional council of the International, and there was more than enough for him to do The minutes of the regional council's meetings in January 1871, i.e after a period of three months' intensive work, show that a delegate complained that the sections had been broken up and their members scattered – which gives an indication of the state the Paris sections must have been in during the first few weeks of the republic Another delegate was of the opinion that the International had been wrecked by the events that followed the proclamation of the republic In spite of

exaggerations, due to reaction after perhaps excessive hopes, in the main these statements were correct. The International in Paris did not develop along the lines that Marx had indicated for it. Difficult the task that confronted the leaders of the Paris sections was – it was no light task, in the midst of the feverish excitement of a besieged city, to attempt to persuade members of the profoundly agitated and half-starving working-class masses to join an organization which was not concerned with their immediate and most pressing interests. But exceptional as the obstacles were, some if not all of them might have been overcome if Varlin and his comrades had not set themselves aims which, though important, were less important than the resuscitation of the sections He who aimed at overthrowing the Government of National Defence in the midst of war had no time to lose with secondary things but had necessarily to go straight forward towards his goal, and conferring with the Jacobins on preparations for an insurrection was obviously more important than the troublesome effort of trying to build up the still weak sections of the International

The most important revolutionary organization in Paris was the central committee of the twenty *arrondissements,* which was intended from the first not merely to be a popular check on the Government but to be a definite substitute for it when the proper moment came The committee was in the hands of the Bakuninists and their allies, the Jacobins, and its paper was *Le Combat,* which was edited by Félix Pyat There were plenty of differences between the Bakuninists and the Jacobins, but they faded into the background behind their common goal, the overthrow of the Government and the setting up of the revolutionary Commune. Bakunin at Lyons had associated himself with General Cluseret, though he had very soon regretted the decision. But the Bakuninists in Paris remained faithful to their alliance with the Jacobins almost to the last day of the Commune. Little detailed information is extant concerning the activities of the central committee It had contacts with Lyons, and General Cluseret went there

on its behalf, though it did not identify itself with Bakunin's attempted rising But it did learn from it that the time to strike had not yet come A circular signed by Varlin and Benoît Malon stated:

By every possible means we are cooperating in national defence, the supreme task of the moment .. The public meetings that we are organizing in every quarter, the organization of republican committees that we are hastening, the active part we are taking in the work of republican municipalities .. have no other aim than that

Nevertheless we are not neglecting necessary precautions against the scattered and threatening reaction We are therefore organizing our vigilance committees in every quarter, and we are pressing forward to the foundation of the districts that were so useful in 1793

Believe us, you must act as follows (1) stimulate by every possible means the patriotism that must save revolutionary France, (2) take energetic measures against the bourgeois and Bonapartist reaction, press for the acceptance of great defensive measures by the organization of the republican committees, the first elements of the future revolutionary communes [45]

The armistice got rid of the Prussian millstone for them, or so, at least, they thought, and now the time for action had come The first task was to win over the National Guard, whose numbers had grown enormously and whose composition had fundamentally altered during the siege. Whereas previously it had been an instrument of the possessing classes, scarcely yielding in loyalty to the Imperial Guard itself, its ranks were now filled with workers and members of the petty bourgeoisie After the armistice Paris had a garrison of 12,000 regular troops, but there were 256 battalions of the National Guard If they came over to the side of the revolution, victory, at any rate in Paris, was assured

The National Guard had formed its own central committee Within a short time Varlin and his friends had succeeded in gaining influence upon the battalions and the central committee. A meeting of the delegates of the National Guard was

held on 10 March 1871 and presided over by Pindy, the Bakuninist who had attempted a rising on 9 August in the previous year One battalion after another declared itself for the revolution Varlin was full of confidence P L Lavrov, the Russian philosopher and revolutionary, who was living in Paris and knew Varlin, describes in a letter a conversation he had with him a few days before 18 March. 'Another week,' Varlin said, 'and seventeen of the twenty *arrondissements* will be ours; the other three will not be for us, but they will not do anything against us. Then we shall turn the prefecture of police out of Paris, overthrow the Government and Frances will follow us.'[46]

Varlin had foreseen well A Government attempt to take away the rifles of the National Guard precipitated the outbreak of the revolution by a few days. Nevertheless Varlin's calculation was correct On 18 March fifteen of the twenty *arrondissements* acknowledged the authority of the central committee of the National Guard, 215 of the 256 battalions adhered to it. The Commune was proclaimed in Paris.

'The International did not raise a finger to make the Commune', Engels later wrote to Sorge.[47] Varlin was one of the two secretaries of the Paris regional council; but his work for the Commune was not done as secretary of the International The minutes of the meetings of the regional council during this period have been preserved, and the meagreness of references to the movement that led to the Commune is astonishing To Lavrov, who was a comparatively slight acquaintance, Varlin made no secret of what was going forward, while at the same time those delegates of the regional council who were not his associates had no idea of what the morrow might bring forth. On 17 March, the day before the rising, a delegate wrote in answer to Gambon, who wanted to know what the attitude of the regional council was to the assembly at Versailles: 'In view of the obscurity of the political situation, the regional council, like you, is in perplexity. What is to be done? What do the people really feel at heart'?[48] All the same, the organizers of the Commune were leading Paris members of the International, though the General Council in London

did not 'raise a finger'. There is no reference in any documents or in any letter of Marx or Engels, even in those of the most confidential nature, that gives the slightest indication that the rising in Paris was demanded, much less organized by London

But nevertheless, as Engels wrote in the same letter to Sorge, the Commune was 'unquestionably the spiritual child of the International',[49] not because Marx and Engels declared complete solidarity with Varlin and his Bakuninist comrades or with the Blanquists or with Pyat and his Jacobins – they knew practically nothing whatever about the activities of these groups in February and the first half of March, not because the Commune was 'staged' by the International, which it was not, but because the Commune, with all the limitations of its time and place, with all its illusions and all its mistakes, was the European proletariat's first great battle against the bourgeoisie Whether it was a mistake at that juncture to resort to arms, whether the time was misjudged, the leaders deluded, the means unsuitable, all such questions receded before the fact that the proletariat in Paris was fighting for its emancipation and the emancipation of the working class The latter was the battle-cry of the International Marx's attitude to the Commune was determined by that fact

Unfortunately only a few of Marx's utterances during those months have survived, but all the indications available go to show that from the first he regarded the Commune's prospects of success as very slight Oberwinder, an Austrian socialist, who later became a police agent, says in his memoirs that 'a few days after the outbreak of the March rising in Paris Marx wrote to Vienna that the course it had taken precluded all prospects of success ' The utmost that Marx hoped for was a compromise, an honourable peace between Paris and Versailles

Such an agreement, however, was only attainable if the Commune forced it upon its enemy But this it failed to do 'If they succumb', Marx wrote to Kugelmann, 'only their kind-heartedness is to blame '[50] On 6 April he wrote to Liebknecht

'If the Parisians are beaten it looks as if it will be by their own fault, but a fault really deriving from their excessive decency' The central committee and later the Commune, he said, gave the mischievous wretch, Thiers, time to centralize the hostile forces (1) by foolishly not wishing to start civil war, as though Thiers himself had not started it by his attempted forcible disarming of Paris, and (2) by wishing to avoid the appearance of usurping power, wasting valuable time electing the Commune – its organization, etc., wasted still more time – instead of marching on Versailles immediately after the forces of reaction had been suppressed in Paris.[51] Marx believed the Government would only consent to a compromise if the struggle against Versailles – military, economic and moral – was conducted with extreme vigour Marx regarded as one of the Commune's greatest mistakes the fact that it treated the Bank of France as a holy of holies off which it must piously keep its hands Had it taken possession of the Bank of France it would have been able in case of need to threaten the country's whole economic life in such a fashion as to force the Versailles Government very quickly to give in Once civil war had broken out it must be continued according to the rules of war. But during the first few weeks the Commune conducted it sluggishly, and worse, in the face of an imminent attack it failed to consolidate the position of its weak but important outposts outside Paris. Even the steps taken in the rest of the country to weaken the enemy at the gates of Paris were only half-heartedly carried out, if not altogether neglected. 'Alas! in the provinces the action taken is only local and pacific', Marx wrote on 13 May to Frankel in Paris [52] The action in the provinces which Marx considered so necessary had, of course, nothing in common with some adventurous plans which were being hatched in Switzerland There the old insurrectionary leaders, J P. Becker and Rustow, were planning an invasion of the South of France by Swiss members of the International. They believed they would carry the people with them and rescue Paris In other words they planned a repetition of Herwegh's expedition of 1848. The 'Legion of Internationalists'

would have benefited no one but the Commune's enemies. Becker complained later that 'London' would have nothing to do with the enterprise, and 'London' meant Marx When the Commune was on the point of collapse Marx advised the leaders with whom he was in contact to transfer 'papers that would be compromising to the *canaille* at Versailles' to a safe place He believed that the threat of publishing them might force them to moderation All that Marx did, all the advice that he gave, was directed to one end 'With a small amount of common sense', he wrote ten years later to the Dutchman, Domela Nieuwenhuis, 'the Commune could have attained all that was attainable at that time, namely a compromise that would have been useful to the whole mass of the people '[53]

Bakunin, however, hoped not for a compromise but for a heroic defeat. He had as little faith as Marx in victory for the people of Paris 'But their deaths will not be in vain if they do their duty', he wrote to his friend Ozerov at the beginning of April. 'In perishing let them burn down at least the half of Paris.'[54] He could not contain himself with joy at the thought of the day 'ou le diable s'éveillera' and a bonfire would be made of at least a part of the old world At Locle, where he was living at the time, he waited impatiently for 'heroic' deeds One of his followers describes how

> he foresaw the Commune's downfall, but what he wanted above all else was that it should have a worthy end He talked about it in advance and said· 'My friends, is it not necessary that the Tuileries be burned down?' And when the Tuileries were burned down, he entered the group room with rapid strides – though he generally walked very slowly – struck the table with his stick and cried 'Well, my friends, the Tuileries are in flames I'll stand a punch all round!'[55]

Bakunin had no contacts with Paris What happened there happened without him, without his advice or help.

Marx's opportunities of influencing the course of events in Paris were not much better The Paris regional council's messages to the General Council were more than meagre Towards

the end of April, Marx complained that the General Council had not received a single letter from the Paris section. True, he had had a special emissary, the shoemaker Auguste Serraillier, in Paris since the end of March, but Serraillier could do nothing in the face of the ranting of the Jacobins. Pyat and Vésinier were particularly prominent in this direction, and the help which Serraillier besought of the General Council did not avail him very much The otherwise excellent and enthusiastic Serraillier was not even adequate as a reporter, and Marx learned practically nothing from him. The difficulties of keeping up a regular correspondence between London and blockaded Paris were, of course, very great. Marx managed occasionally to smuggle information through to Paris by making use of a German businessman, and two or three letters even reached Varlin and Fränkel, the leading Communards. But these only serve to demonstrate what is also demonstrated by all the rest of the evidence, namely the smallness of the extent to which Marx was able to influence the Commune. But he could at least work for it [56]

From the very first day, to quote his words in a letter to Kugelmann, 'the wolves and curs of the old society' [57] descended in a pack upon the Paris workers; they lied, cheated, slandered, no means were too filthy, no sadistic fantasy too absurd to be employed. The liberal Press yielded in nothing to the openly reactionary Press, and Bismarck's newspapers used the same phrases as did Thiers's papers and the great English Press. And they were believed Even those who otherwise looked with favour upon the International wavered and wished to repudiate the Paris 'monsters'. Even some of the English members of the General Council objected to the General Council's defence of the Commune, in spite of the fact that in England there was still some possibility of distinguishing the true from the false. Other countries were entirely without information. The General Council was overwhelmed with inquiries from everywhere Marx informed Fränkel that he wrote several hundred letters 'to all the corners of the earth where we have contacts',[58] and from time to time he managed

to get an article into the Press. But that was not sufficient by far. The General Council had to proclaim the International's attitude to the Commune to the whole world.

Ten days after the rising Marx was instructed by the General Council to write an address 'to the people of Paris'. But at a meeting on 4 April it was decided temporarily to postpone it, as on account of the blockade it would not have reached those to whom it was addressed.[59] It was also intended to issue a manifesto to the workers of other countries, but this too was postponed, and for two reasons. On 25 April Marx wrote to Frankel that the General Council was still waiting for news from day to day, but the Paris sections remained silent;[60] and the General Council could wait no longer, for the English workers were waiting impatiently for enlightenment. Marx was forced to toil through the English newspapers – French newspapers only reached England very irregularly – to find what he wanted. His notebooks during this period are full of newspaper cuttings.[61] Even the apparently least important details were valuable to him, he kept them all and tried patiently to form a picture of the great event that was happening from the chaotic jumble of truth and half-truth and fiction that confronted him. On top of these difficulties another one came to hamper him. At a time when every ounce of his energy was demanded he became ill. During the first half of May he was unable to attend the meetings of the General Council, he could only report, through Engels, that he was working on the manifesto. On 30 May, when at last he was able to read his address, 'The Civil War in France',[62] to the members of the General Council, the Commune had already been honourably defeated.

In that bloody week of May 20,000 Communards had been killed on the barricades, cut down in the streets by the bloodthirsty Versailles troops, or massacred in the prison yards. Tens of thousands of prisoners awaited death or banishment. This was not the moment for writing an historical treatise, a cool and dispassionate analysis and critique of the Commune. The manifesto was no lament for the dead, no funeral elegy,

but a rapturous hymn to the martyrs of the war of proletarian emancipation, an aggressive defence of those who were slandered even in death. Never had Marx, the passionate fighter, fought so passionately. One recalls his scepticism at the beginning of the war. He had written that after twenty years of the Bonapartist farce one was scarcely justified in counting on revolutionary heroism. The Commune had taught him he was wrong. He looked on, astonished and overwhelmed at 'the elasticity, the historical initiative, the self-sacrificing spirit of these Parisians'. In a letter to Kugelmann he wrote

> After six months of starvation and destruction, at the hands of internal treachery even more than through the foreign enemy, they rose under the Prussian bayonets as though the war between France and Germany had never existed and the enemy were not outside the gates of Paris. History has no comparable example of such greatness.[63]

The address hailed Paris, 'working, thinking, fighting, bleeding Paris, almost forgetful, in its incubation of a new society, of the cannibals at its gates – radiant in the enthusiasm of its historic initiative'

What had the Commune been accused of? Of acts of terrorism? The shooting of General Thomas and Lecomte? The execution of the hostages? The death of the two officers

> was a summary act of lynch justice performed despite the instance of some delegate of the central committee . The inveterate habits acquired by the soldiery under the training of the enemies of the working class are, of course, not likely to change the very moment these soldiers change sides

But the hostages were shot Yes, that was true

> When Thiers, as we have seen, from the very beginning of the conflict, enforced the humane practice of shooting down the Communal prisoners, the Commune, to protect their lives, was obliged to resort to the Prussian practice of securing hostages The lives of the hostages had been forfeited over and over again by the continued shooting of prisoners on the part of the Versaillais . The real murderer of Archbishop Darboy is Thiers

A week after the massacre of thousands of Communards criticism of a terror which had provoked another terror was impossible. The observations in Marx's notebooks show what he thought of the senseless actions of the Jacobins. The address, without naming them, talked of people who hampered the real action of the working classes, 'exactly as men of that sort have hampered the full development of every previous revolution They are an unavoidable evil, with time they are shaken off, but time was not allowed to the Commune'

But although the Commune had no time to develop, although it only remained 'a rough sketch of national organization', to those who refused to allow their view to be obscured by secondary things, it revealed its 'true secret'. And that was that

> it was essentially a working-class government, the produce of the struggle of the producing against the appropriating class, the political form at last discovered under which to work out the economical emancipation of Labour The Commune was the reabsorption of the state power by society as its own living forces instead of as forces controlling and subduing it, by the popular masses themselves, forming their own force instead of the organized force of their suppression, the political form of their social emancipation instead of the artificial force (appropriated by their oppressors) of society wielded for their oppression by their enemies The form was simple like all great things

The workers had no ideals to realize, no ready-made utopias to introduce by decree of the people, but they had to set free the elements of a new society with which the old collapsing bourgeois society was pregnant 'They know that in order to work out their own emancipation and along with it that higher form to which present society is irresistibly tending by its own economical agencies, they will have to pass through long struggles, through a series of historic processes, transforming circumstances and men.' These sentences recall, even at times in their very phrasing, those that Marx addressed to Willich and his followers – the Jacobins of their time – after the final collapse of the revolution of 1848 and 1849 He warned his

followers against illusions, but his warnings were not shackles put upon them, hampering them, but gave power and strength and the unshakable conviction of final victory. The address ended with these stirring words

> Working men's Paris, with its Commune, will be for ever celebrated at the glorious harbinger of a new society Its martyrs are enshrined in the great heart of the working class. Its exterminators history has already nailed to that external pillory from which all the prayers of their priests will not avail to redeem them.

The final words were like the sounding of the Last Trump. The Commune was defeated, a battle was lost, but the working-class struggle continued.[64]

[20]

The Decline of the International[1]

SOCIALISTS in France in the 1860s were either Proudhonists or Blanquists, with here and there an isolated Saint-Simonist. But there were no French Marxists Not one in a hundred members of the International in France knew that the leader of the General Council in London was a German named Karl Marx In the other Latin countries the situation was the same. The name of Lassalle meant a great deal to the German workers, even to those who were not his followers. They sang songs about him and his picture hung upon the walls of their rooms. The older generation in the Rhineland remembered Marx from 1848, but that was nearly a quarter of a century ago, and in the meantime most people had forgotten him. To only a minute proportion of the younger generation did his name mean anything at all Not till the middle of the 1860s did this situation slowly and gradually begin to alter, but even in 1870 his name was entirely unknown to the general public. In England Marx was less known than anywhere else. Perhaps here and there some Urquhartite or former Chartist could recollect his name, but that was all Marx, who had no wish for popularity, set no store on his name being associated with the International, and his signature, when it appeared under any of the pronouncements of the General Council, was always tucked in among those of many others He spoke at practically no public meetings, he wrote no signed articles, and sufficed himself with the immediate task before him, that of 'influencing the workers' movement behind the scenes', as he occasionally wrote to a friend[2]

The Commune made him 'the best calumniated and the most menaced man of London', as he described himself (the English phrase is his own) in a letter he wrote Kugelmann in

the middle of June 1871.[3] 'It really does one good after being stuck in the mud for twenty years', he added. He was constantly pestered by 'newspaper fellows and others' who wanted to see the 'monster' with their own eyes For the man behind the International, that gigantic conspiracy against the whole world, who publicly declared his solidarity with its atrocious misdeeds in Paris, must necessarily be a monster.[4] The French Government was very well informed about the International, and had had more to do with it than any other government in Europe It had staged great trials of its members, set an army of spies after it and knew something of Marx's overwhelming influence on the General Council. On the day after the proclamation of the Commune it had an alleged letter of Marx's to the French sections of the International printed in *Le Journal,* containing the most violent criticism of their political acts The letter reproved them for intervening in politics instead of confining themselves to the social tasks which should have been their only concern. This attempt to represent Marx as the good spirit of the 'good' Internatonal while the Communards were base renegades sadly missed its mark, for no one in Paris took it seriously. So the Versailles Government tried something else On 2 April *Le Soir* announced that it had been authoritatively ascertained that Karl Marx, one of the most influential leaders of the International, had been private secretary to Count Bismarck in 1857 and had never severed his connection with his former patron. The Bonapartist papers spread this revelation throughout France So Marx was a hireling of Prussia, and the real leader of the International was Bismarck, at whose instigation the Commune had been set up This story hardly tallied with another, according to which the International was waging a war on the whole of civilized humanity, which was the reason why the Versailles Government requested and received Bismarck's help against the Commune. As Marx wrote to P Coenen at the end of March, word was spread to the whole well-disposed Press of Europe 'to use falsehood as its greatest weapon against the International In the eyes of these honourable champions of religion,

order, the family and property there is nothing in the least wrong in the sin of lying.'[5]

It was necessary for the Versailles Government to disguise the warfare it was waging upon the people of Paris. The International was represented as the enemy of France and of the French. Its chief, Karl Marx, was the enemy of the human race. A flick of the hand, and hey presto! Bismarck's agent was converted into a kind of anti-Christ. But this elevation of their political opponent, who after all really did exist in human form, into the demoniacal sphere did not suit the German philistines, who reduced him to more manageable proportions. Thus the Berlin papers invented a fairy-tale of how Karl Marx, leader of the International, enriched himself at the expense of the workers he misled. This story was subsequently often repeated. Soon afterwards the announcement of Marx's death in the Bonapartist *L'Avenir libéral* served for a few days to relieve the terrified population of their nightmare. But their relief lasted a few days only. The hated chief of the hated International lived on. His name re-echoed across Europe, through which the spectre of communism once more stalked abroad.[6]

The Commune made a myth of the International. Aims were imputed to it that it never pursued, resources were ascribed to it that it never possessed, power was attributed to it of which it had never dared to dream. In 1869 the report of the General Council to the Basle congress had poured ridicule upon the alleged wealth with which the busy tongues of the police and the wild imaginations of the possessing classes had endowed it. 'Although these people are good Christians,' it stated, 'if they had lived at the time of the origins of Christianity they would have hurried to a Roman bank to forge an account for St Paul.' The panic of Europe's rulers elevated the International to the status of a world power. 'The whole of Europe is encompassed by the widespread freemasonry of this organization', said Jules Favre in a memorandum he sent on 6 June 1871 to the representatives of France abroad, directing them to urge the governments to which they were accredited

to common action against the common foe England declined the invitation, but Lord Bloomfield, the British Ambassador at Vienna, illustrating British concern, made diplomatic inquiries with regard to the extent of the activities of the International in the Austrian Empire. In the course of Bismarck's conversations at Gastein with Count Beust, the Austrian Chancellor, the subject of the struggle against the International was discussed at length Beust mentioned with satisfaction in his memorandum that both governments had spontaneously expressed a desire for defensive measures and common action against it, after the

> sensational events that characterized the fall of the Paris Commune, in view of its expansion and the dangerous influence it is beginning to exert on the working class and against the present foundations of the state and society The thought inevitably arises whether it might not be well to counter this universal association of workers with a universal association of employers, oppose the solidarity of possession to the solidarity of non-possession, and set up a counter-International against the International The power of capital is still an assured and well-buttressed factor in public life

The situation, however, was not nearly so threatening as some feared and others hoped If Bismarck behaved to some extent as though he were preparing to bow before the storm of a Commune in Berlin, he was actuated less by fear of an immediate outbreak than by his wish to frighten the liberal bourgeoisie from forming even the loosest of alliances with the socialist workers against the ruling *Junkers.* But in spite of all exaggerations and overestimates, whether entirely fabricated or genuinely believed, one fact remained. Revolutionary workers had remained in power in Paris for more than two months Whether the Commune had in every respect acted rightly might justifiably be doubted, but the time for criticism was not yet. One fact dominated everything else, and, in Marx's words, made the Commune 'a new point of departure of world-historical significance'.[7] Workers had seized the power for the first time

Hitherto the International had concerned itself primarily, though not of course exclusively, with economic matters such as the shortening of the working day, the securing of higher wages, supporting strikes, defence against strike-breaking, etc , and to the overwhelming majority of its members it had appeared as an organization aiming primarily at the improvement of the economic position of the worker. But the situation had undergone a fundamental alteration now. History itself had placed the proletariat's struggle for the seizure of power upon the order of the day. After the Commune it was impossible for the International to continue to restrict itself to activities which were political only by implication. It was necessary to convert its sections from propagandist organizations and trade-union-like groups into political parties After the Communards had fought on the field of battle it was impossible for the workers of the International to revert to the narrow struggle for their immediate economic interests in the factories and merely draw public attention to themselves from time to time by issuing a political proclamation from the sidelines, which might be read or not They must enter the political field themselves, welded into a firm organization, with a party that openly proclaimed its programme – the seizure of the state power by the working class as the preliminary to its economic liberation The conclusion the governments of Europe drew from the Commune was that the International was a political world power, menacing to them all. The conclusion the International drew from it was that it was the latter that they must become

With the 'politicalizing' of the International the function of the General Council necessarily altered In the past the General Council had practically not interfered at all in the life of individual sections, but now a thorough-going coordination of their activities, though within definite limits, had become imperative. That did not involve the assumption by the General Council of a kind of supreme command over the various sections, dictating to them from London the exact details of what they were to do It did, however, involve a multiplication

of the tasks devolving upon it, and the adoption by it of an entirely different position from that which it had adopted, and been compelled to adopt, in the past. And therewith internal questions arose of which not even the preliminaries had existed before.

Marx and Engels devoted the months that followed the collapse of the Commune to the task of energetically reconstructing the International. 'The long-prepared blow', to use Marx's phrase, was struck at a conference held in London in the second half of September 1874. In a number of countries the sections of the International had not recovered from the blows that had descended upon them as a result of the war and its aftermath, and these countries were not represented at the conference. That was the reason for the summoning of a conference instead of a congress. On this occasion Marx presided over the discussions of the International for the first time since 1865. He drafted a resolution concerning the question of the political struggle, which had become the central issue. The resolution observed that a faulty translation of the statutes into French had resulted in a mistaken conception of the International's position. (The statutes provisionally set up by the General Council in 1864 stated: 'The economic emancipation of the workers is the great aim to which all political action must be subordinated as a means.' The statutes were confirmed by the first congress, held in 1866. In the French version of the congress report issued by the Geneva section the words 'as a means' are missing. All the other versions have them. Neither in the surviving minutes of the congress nor in the contemporary Press is there any mention of any alteration of the statutes. The fact that the last two words are missing from the French version is undoubtedly an accident and possibly merely a printer's error.) The conference reminded the members of the International 'that in the militant state of the working class its economic progress and political action are indissolubly united'.

Previous congresses had only dealt incidentally with internal International affairs. At this conference, indicating the altered

situation, they played the leading role. The conference adopted resolutions concerning the organization of sections in those countries in which the International had been banned, as well as resolutions concerning the split in Switzerland, the Bakuninist Alliance, and other matters. The policy of the International Press was directed to be conducted along certain definite lines – a thing quite unprecedented in the past. All the conference's transactions were aimed at strengthening the structure of the International for the approaching political fray.

Marx, and Engels like him, believed that as soon as the period of reaction, which could not but be brief, was over the International was destined for a rapid and immense advance. For this the London conference was intended to prepare the way. But a year later the International was dead.

Of the two countries which had been its main support, France's withdrawal from the movement lasted not just for a few months or for a year but for a full decade. The advance guard of the French proletariat had fallen at the Paris barricades or was languishing in prison or perishing in banishment in New Caledonia. The small groups that survived were insignificant. Those that were not broken up by the police dissolved gradually of their own accord.

In the other of the two countries which had been the International's main support developments were unfavourable too.[8] In England the workers' movement had no need to be urged to take the political road. Even before the reorganization of the International it had taken that road itself, and was now pursuing definite if narrowly-circumscribed political aims; but at the very moment when it should have been marshalling its ranks for a general attack on the power of the possessing classes, it withdrew from the struggle. So many of its demands had been granted that it started feeling satisfied. Stormy meetings and uproarious demonstrations had demanded universal suffrage, and universal suffrage had been attained. England's economic strides relieved the situation to such an extent that the Government no longer had cause to fear the consequences of reform. It was able to repeal a whole series of legal enact-

ments that imposed oppressive restrictions on the trade unions, and this deprived the trade union leaders of yet another impulse towards political action. After the collapse of the Chartist movement only relatively small groups had worked to revive an independent political movement among the workers, and such a thing looked entirely superfluous now. Many prominent trade unionists once more drew nearer to the liberals, who took advantage of the opportunity to make the trade union cause their own, or at least acted as if they did, though a debt of gratitude was certainly due to the energy of the radical liberals, men like Professor Beesly and Frederic Harrison. In many constituencies liberals supported the candidature of trade union leaders. In these profoundly altered circumstances not much attention was paid to the General Council's admonition to create an independent political movement. Opposition to the General Council, weak at first but definite nevertheless, reared its head among the trade union leaders. Several other factors contributed to this. Objection was taken to Marx's definitely pro-Irish attitude, and the General Council's uncompromising partisanship of the Commune was felt as inopportune and disturbing by labour leaders who had started associating themselves with the ruling system and, though the influence of this may at first only have been slight, in some cases had become members of royal commissions.

Opposition to the General Council first expressed itself in a demand for the formation of a special regional council for England. This demand was thoroughly justified according to the statutes. All the other countries had their own councils, but up to 1871 the General Council served also as regional council for England. This had come about quite spontaneously. London was the headquarters of the International and no one – least of all Marx – felt there was any necessity for a special council for England apart from the General Council. He formulated his reasons in a 'confidential communication' at the beginning of 1870. Although the revolutionary initiative was probably destined to start from France, he stated, England

alone could provide the level for a serious economic revolution. He added that the General Council being placed in the happy position of having its hand on that great lever of the proletarian revolution, what madness, they might almost say what a crime it would be to let it fall into purely English hands! The English had all the material necessary for the social revolution What they lacked was generalizing spirit and revolutionary passion The General Council alone could supply the want and accelerate the genuine revolutionary movement in that country and consequently everywhere ... If one made the General Council and the English regional council distinct, what would be the immediate effects? Placed between the General Council of the International and the General Council of the Trades Unions, the regional council would have no authority and the General Council would lose the handling of the great lever [9]

This argument was as valid in the autumn of 1871 as it had been in the spring of 1870, but in the meantime the centrifugal forces in England had grown so strong that it was necessary to make concessions if the International as a whole were not to be jeopardized The London conference decided that a British regional council should be formed The immediate consequences appeared entirely favourable The number of British sections increased rapidly, and relations between the regional council and the trades unions became closer and better On the other hand the General Council lost its influence in England, and within a short time it became evident that there was a danger of the General Council severing its connection with the International altogether

Though there were some countries in which the strength of the International had increased in 1870 and 1871, the result of the withdrawal of France and the altered situation in England was that it was extraordinarly weakened as a whole. For the advance of the German workers' movement and the shifting of the centre of gravity across the Rhine was an inadequate compensation

These years saw the emergence in Germany of a workers'

party which was the archetype and pattern of continental workers' parties up to the First World War. It approximated closely to what Marx insisted should be the form of the political movement of the proletariat, though it failed to fulfil his demands in every way. Sharp, sometimes over-sharp criticism appeared in the letters Marx addressed to the leaders of the German party. Nevertheless, Marx on the whole approved of the path that the German socialists had struck out upon. He approved of their work of organization and propaganda, and of their attitude in Parliament and to the other parties. The party visibly grew from year to year and it was to be expected that within a short time it would play a leading role in the International. It never did so, for two reasons The first was the severity of German legal restrictions on the right to form associations, the Government were constantly on the watch for an opportunity of suppressing the German workers' party, and its leaders therefore assiduously avoided doing anything that might have given them the opportunity of doing so under cover of legal forms In the second place the German party was completely absorbed with its work in Germany. The German socialists proclaimed their complete solidarity with the International, but that was practically all The German party remained practically without significance as far as the inner life of the International was concerned.

Marx blamed Wilhelm Liebknecht for the 'lukewarmness' with which he conducted the 'business of the International' in Germany But it is doubtful whether anyone could have done better than Liebknecht, who was absolutely tireless and was completely devoted to Marx. After the London conference Marx informed Liebknecht that the General Council wished him to establish direct contact with the principal places in Germany [10] This task Liebknecht had already begun. He actually succeeded in forming sections in Berlin and other towns These, however, led a very precarious existence and were not of much use to the General Council. In spite of all the sympathy with which the German socialists regarded the International, they were prevented from helping the General Coun-

cil by the fact that they embodied in a pronounced fashion the very thing which, in the eyes of its opponents, made the General Council unworthy of continuing to lead the International – namely 'authoritarian socialism'. For such acts of 'subservience to the state' as participating in elections not only failed to impress but actually went far to repel many members of the International in those countries in which Bakunin's 'anti-authoritarian socialism' was now triumphant.

The Commune had by no means corresponded to Bakunin's ideals. He had had no great hopes of it himself, and his friends in Paris had had to acquiesce in actions that conflicted sharply with what Bakunin demanded of a revolution. This, however, did not prevent Bakunin from annexing the Commune for his own 'anti-authoritarian communism' and declaring that Marx's ideas had been thoroughly confuted by it. The pitiful end of the rising at Lyons had made him despair of the workers' capacity for revolt, but the glow of the burning Tuileries once more illumined the future in his eyes. So all strength and passion had not yet departed from the world. The revolution was not postponed into the indefinite future but was as imminent as it had been before Sedan. It was bound to come soon, quite soon, perhaps tomorrow. To confine oneself to petty, philistine 'politicalizing' as the German social democrats did was equivalent in Bakunin's eyes to a renunciation of the revolution. He resumed the work that he had interrupted for some months, and started spinning his web of secret societies anew. The Commune had made good the wrong done the world by the triumph of Prussia, and the workers' hatred of the butchers of Versailles was a guarantee of ultimate victory. That hatred must not be allowed to cool. Bakunin flung himself zealously into his task.

The Latin countries, especially Spain and Italy, seemed to him to hold out the most favourable prospects for the social revolution. Spain had been the scene of a lively struggle between republicans and constitutionalists since the expulsion of the Bourbons in 1868. The constitutionalists intended the vacant throne for some foreign prince. The struggle broke out

sporadically into civil war, and war to the death was declared on the Catholic Church as the mainstay of reaction, and everywhere the workers were stirring. Their new-won national unity brought the people of Italy no peace The struggle with the dispossessed Pope kept the whole country on tenterhooks Workers and peasants were as near as ever to starvation in the new kingdom that had been united after such suffering and sacrifice, and the intellectuals were deeply disappointed by what they had so ardently longed for. Bakunin rested his brightest hopes upon Italy and Spain Sparks from the burning South would leap across into France, Belgium and Latin Switzerland.

Of Germany Bakunin had no hopes whatever His hopes of that country had been weak before Now, after the German victory, he felt compelled to abandon them altogether. For were the German socialists not manifestly paying the state the same idolatry as the German bourgeoisie? Where were they when they should have been attacking the brutal victor, Bismarck? What had they done to save the Commune? That Bebel and Liebknecht had voted against war credits, that their protest against the mad orgies of unleashed militarism[11] had caused them to be put on trial for high treason was forgotten or did not count. In his struggle for domination of the International Bakunin exploited with great skill the chauvinistic anti-German undercurrents that had been stimulated by, and had survived, the war. Germany meant Bismarck, but it meant Liebknecht and Bebel too. A German, citizen of a country inclined to despotism by its very nature, was leader of the General Council, and he was the inventor and advocate of 'state socialism', a conception that corresponded exactly with the German temperament The International was in the hands of a pan-German, and the 'League of Latin and Slavonic Races' must rescue it In his private letters Bakunin placed no bridle upon his hatred of the Germans, and fanned chauvinistic inclinations to the utmost of his power, though in his public utterances he was noticeably more cautious

The situation in Europe was as favourable for Bakunin's

renewed struggle for the control of the International as it was unfavourable for his conception of the social revolution. Everything conspired to help him; the abstention of the Germans, the chauvinism of the Latin countries, the backwardness of Italy and Spain, where revolutionary romanticism flourished exuberantly because of the weakness of the young proletariat and the strength of the old carbonari traditions.

Bakunin quickly realized the most effective way of conducting his attack on the General Council The most heterogeneous elements could be united in an attack on Marx if they could be given a single aim, namely the revocation of the decisions of the London conference The watchword of Bakunin's campaign was: 'Down with the General Council, who aim at forcing the sections of the International into the political struggle and usurping power over them Down with the "dictatorship" of the General Council!'

The attack opened in Latin Switzerland, Bakunin's surest stronghold now as in the past In 1870 there had been a split between the 'anti-authoritarians' and the groups that adhered to the General Council The 'anti-authoritarians' had created their own regional council and become a kind of international centre of the Bakunist movement As soon as the decisions of the London conference were known this regional council summoned a regional congress to protest against them, and more particularly against 'the General Council's dictatorial attitude towards the sections' The congress met at Sonvilliers on 12 November 1871 and openly declared war on the General Council It addressed a circular to all the sections of the International, skated cleverly over the fact that the Geneva Council had assigned the working class the duty of the conquest of political power and expanded itself at length on the latter's alleged attempt to dominate the sections The circular stated that it was a fact, proved by experience a thousand times, that authority invariably corrupted those who exercised it 'The General Council could not escape from that inevitable law' The General Council wanted the principle of authority introduced into the International The resolutions carried by the

London conference, which had been irregularly and unconstitutionally summoned,

> are a grave infringement of the general statutes and tend to make of the International, a free federation of autonomous sections, a hierarchical and authoritarian organization of disciplined sections, placed entirely under the control of a General Council which may at its pleasure refuse them membership or even suspend their activities

Finally the circular demanded the immediate summoning of a general congress.[12]

Bakunin's posing as the advocate of complete sectional autonomy was a clever move. The difficulties and inevitable friction involved in the reorganization of the International and the transfer of the chief emphasis to the political struggle created sympathy for Bakunin's demands among groups that otherwise had not the least use for his social-revolutionary programme. Bakunin's calculations now and subsequently proved themselves to be entirely correct

A private circumstance compelled Bakunin to open his attack on the General Council soon after the London conference, when his preparations were not so advanced as they ought to have been. He knew that the Nechaiev affair had been raised at the conference. The conference had authorized the General Council to 'publish immediately a formal declaration indicating that the International Working Men's Association had nothing whatever to do with the so-called conspiracy of Nechaiev, who had treacherously usurped and exploited its name.'[13] In addition, Utin, a Russian *émigré* living in Switzerland, was authorized to prepare a summarized report of the Nechaiev trial from the Russian Press and publish it in the Geneva paper *L'Égalité*.

The Nechaiev affair plays such an important role in the history of the International, or rather in the history of its decline, that it deserves to be recounted at some length [14]

Nechaiev was the son of a servant in a small Russian provincial town He put to such good use the few free hours that

his work as a messenger in the office of a factory left him that he succeeded in passing his examinations as an elementary school teacher. He starved and scraped until he had saved enough money to go to St Petersburg, where he had himself entered as an external student at the university. In his first winter term, in 1868, he entered the student movement, in which his energy and the radical nature of his views soon earned him prominence. But that was not enough for him. He wanted to be foremost, and in order to enhance his reputation as a revolutionary he started inventing stories of his adventurous past. First he said he had been a prisoner in the fortress of Petropavlovsk. Then he added an account of his daring escape. The majority of his listeners accepted all this unquestioningly, they were filled with indignation at the stories he told of his treatment by the prison warders, and a students' meeting was actually called and a delegation actually approached the university authorities. Nevertheless there were some who doubted. Some of the details of Nechaiev's prison experiences sounded improbable to the more experienced among his colleagues, and the officials declared that Nechaiev had never been under arrest.

Before this fact had been established, however, Nechaiev illegally went abroad to make contact with the Russian *émigré* leaders. He reached Geneva in March 1869 and made the acquaintance of Herzen and Ogarev, the patriarchs of the 'emigration', as well as of the representatives of the younger generation of refugees. He made an extraordinary impression upon them all. Herzen, who had grown old, tired and sceptical, said that Nechaiev went to one's head like absinthe. But the young student was not satisfied with praise and honour. He added details of his own. He said that Russia was on the eve of a tremendous revolutionary outbreak, which was being prepared by a widespread secret society. Of this society he was a delegate. And he repeated the story of his imprisonment and flight. In Geneva also there were a few people who refused to be taken in so easily. A number of *émigrés* had been prisoners in the fortress of Petropavlovsk themselves and knew how

impossible it was to escape, and letters came from St Petersburg from people who ought to have known, saying that the secret society did not exist, or at any rate gave not the slightest sign of its existence But those who regarded Nechaiev with suspicion belonged to groups who were hostile to Bakunin. It was these who not long afterwards formed a 'Russian section' of the International and made Marx their representative on the General Council This, however, cannot have been the deciding factor in causing Bakunin to ignore their warnings. He knew the fortress of Petropavlovsk himself and knew – could not possibly have helped knowing – that Nechaiev was a liar. But what did it matter? Lies could be useful in revolutionizing the slothful, and after all this Nechaiev was a marvellous fellow. Bakunin wrote a regular panegyric about him in a letter to Guillaume, describing him as

one of those young fanatics who hesitate at nothing and fear nothing and recognize as a principle that many are bound to perish at the hands of the Government but that one must not rest an instant until the people has risen. They are admirable, these young fanatics – believers without God and heroes without phrases!

Bakunin and Nechaiev became fast friends.

Bakunin did not apparently formally admit Nechaiev to his secret society. The idea of his association with Nechaiev being surveyed by its otherwise fully initiated members was an uncomfortable one to him The Bukanin-Nechaiev society was a quite intimate super-secret society, such as the old conspirator loved Its object was the revolutionizing of Russia.

In the spring and summer of 1869 Bakunin wrote as many as ten pamphlets and proclamations, and Nechaiev had them printed Among them was the subsequently famous *Revolutionary Catechism*,[15] which was intended to be a reply to the question of what were the best ways and menas of hastening the outbreak of the revolution in Russia. The answer was to be found by the consistent application of two principles. The first was 'the end justifies the means' and the second was 'the worse, the better' Everything – and by that Bakunin meant every-

thing without any exception whatever – that promoted the revolution was permissible and everything that hindered it was a crime. The revolutionary must concentrate on one aim, i.e. destruction. 'There is only one science for the revolutionary, the science of destruction. Day and night he must have but one thing before his eyes – destruction.' That was Bakunin's own summary of the duties of a revolutionary. Within the revolutionary organization the strictest centralization and the most rigorous discipline must prevail, and the members must be completely subordinate to their leaders. The object of this organization was 'to use all the means in its power to intensify and spread suffering and evil, which must end by driving the people to revolt'. The *Catechism* even defended terrorism, which, however, it did not recommend against the worst tyrants, because the longer such tyrants were allowed to rage the better it would be for the revolutionizing of the people.

Towards the end of the summer of 1869 Nechaiev travelled illegally to Russia, taking with him a mandate from the 'central committee of the European Revolutionary Alliance', written and signed by Bakunin, recommending him as a reliable delegate of that organization. Bakunin had actually had a special stamp prepared, with the words 'Office of the foreign agents of the Russian revolutionary society Narodnaia Rasprava.'

Nechaiev remained in Russia for more than three months. He succeeded in forming an organization based on, or alleged to be based on, the *Revolutionary Catechism*. Revolutionary-minded young men were not so very difficult to find, and his letter of recommendation, signed by Bakunin, whose name was universally honoured, earned him the greatest respect. He chose Moscow as his centre and it was not long before he had gathered a group about him. Had he assigned it practical aims and objects, its fate would have been the usual fate of such organizations in Russia. It would eventually have been discovered and dissolved by the police, but two or three new groups would have arisen to take its place. To Nechaiev, however, that would have appeared an idle pastime. He wished his

followers to believe that there was a secret revolutionary committee which they must unconditionally obey, and, true to the injunctions of the *Catechism*, he used every means that tended to serve his aim. Once, for instance, he persuaded an officer he knew to pose as a supervisory party official sent from the secret headquarters on special duty. That ruse might pass at a pinch. But Nechaiev did not shrink from even cruder mystifications, so crude that he ended by perplexing some of his own followers Finally a student named Ivanov announced to other members of the group that he no longer believed in the existence of any committee, that Nechaiev was lying to them and that he wished to have nothing more to do with him Nechaiev decided that the 'criminal' must die He succeeded in persuading the rest of his followers that Ivanov was a traitor and that only his death could save them On 29 November 1869 they lured Ivanov to a dark corner of a park and murdered him Ivanov defended himself desperately and bit Nechaiev's hand to the bone as he was strangling him with a shawl Nechaiev bore the scar for the rest of his life. The murderers were soon discovered and arrested, and only Nechaiev succeeded in escaping abroad [16]

Detailed reports of Ivanov's murder appeared in the papers, and the crime was remembered for many years It armed the Russian revolutionaries against Nechaiev-like methods.

Bakunin knew the whole story in detail, but it only enhanced Nechaiev's reputation in his eyes. On learning that Nechaiev had arrived in Geneva – he was living at Locarno at the time – he leapt so high with joy that he nearly broke his old skull against the ceiling, as he wrote to Ogarev. He invited Nechaiev to Locarno, looked after him and was his friend as before 'This is the kind of organization of which I have dreamed and of which I go on dreaming', he wrote to his friend Richard.[17] 'It is the kind of organization I wanted to see among you' At this time Bakunin had already started his struggle against the General Council of the International on the ground of its 'dictatorial arrogance'

To the same period there belongs the incident which, apart

from the other reasons, led directly to Bakunin's expulsion from the International. His financial position had always been precarious, but in the autumn of 1869 he was in particularly desperate straits. Through some Russian students who were followers of his he was put into touch with a publisher who offered him 1,200 roubles – far more than the author himself ever got for it – for translating Marx's *Das Kapital*. Bakunin accepted the offer gladly and received an advance of 300 roubles. He did not show himself to be in any hurry to complete the task, however, and three months later he had only done sufficient to fill thirty-two printed pages. He readily let himself be convinced by Nechaiev that he had more important matters to fill his time and that he belonged to the revolution and must live for the revolution only. So he laid the work aside and gave Nechaiev full authority to come to an arrangement with the publisher. Nechaiev set about this task in an inimitable manner. It was impossible for Bakunin to communicate directly with the publisher himself on account of the police, and a student named Liubavin had undertaken to do so on his behalf. The contract had been formally made out in Liubavin's name and in the publisher's books Liubavin was nominally liable for the 300 roubles' advance. One day Liubavin received a letter bearing the stamp of Nechaiev's organization. Its most remarkable passages are quoted below:

DEAR SIR, On behalf of the bureau I have the honour to write to you as follows. We have received from the committee in Russia a letter which refers among other things to you. It states: 'It has come to the knowledge of the committee that a few young gentlemen, dilettanti liberals, living abroad, are beginning to exploit the knowledge and energy of certain people known to us, taking advantage of their hard-pressed financial straits. Valuable personalities, forced by these dilettanti exploiters to work for a day labourer's hire, are thereby deprived of the possibility of working for the liberation of mankind. Thus a certain Liubavin has given the celebrated Bakunin the task of translating a book by Marx, and, exploiting his financial distress just like a real exploiting bourgeois, has given him an advance and now insists on the work

being completed Bakunin, delivered in this manner to the mercy of young Liubavin, who is so concerned about the enlightenment of Russia, but only by the work of others, is prevented from being able to work for the supremely important cause of the Russian people, for which he is indispensable How the behaviour of Liubavin and others like him conflicts with the cause of the freedom of the people and how contemptible, bourgeois and immoral their behaviour is compared with that of those they employ and how little it differs from the practices of the police must be clear to every decent person

The committee entrusts the foreign bureau to inform Liubavin

'(1) That if he and parasites like him are of the opinion that the translation of *Das Kapital* is so important to the Russian people at the present time they should pay for it out of their own pocket instead of studying chemistry and preparing themselves for fat professorships in the pay of the state . .

'(2) It must immediately inform Bakunin that in accordance with the decision of the Russian revolutionary committee he is exempt from any moral duty to continue with the work of translation '

Convinced that you understand, we request you, dear sir, not to place us in the unpleasant position of being compelled to resort to less civilized measures . .

AMSKIY,
Secretary to the Bureau

Bakunin subsequently stoutly denied that he knew anything of the contents of this letter, and there is every reason to believe him. But when Liubavin sent him a letter indignantly protesting against these threats, Bakunin, instead of talking to Nechaiev about it, for he must have guessed who was behind it all, took occasion to be offended at Liubavin's intelligibly not very courteous tone He wrote to Liubavin that he proposed to sever relations with him, that he would not continue the translation and would repay the advance. He never did repay the advance and must have known that he would never be able to do so.

In Nechaiev's opinion this species of blackmail was not only permissible to a revolutionary but was actually demanded of

him. At every opportunity he threatened denunciation or the use of force, and stole his opponents' letters in order to be able to compromise them with the police. He shrank at nothing. He caused revolutionary appeals to be sent to one of his greatest enemies, a student named Negrescul, who was being kept under police observation, and, as Nechaiev expected, the material fell into police hands and Negrescul was arrested. He succumbed to tuberculosis in prison and died a few months after his release.

Bakunin knew what Nechaiev was capable of, as many others did by this time, but he remained loyal to him as before. Not till Nechaiev actually started threatening people whom Bakunin held dear – Herzen's daughter for instance – did Bakunin raise his voice against him. The final impulse that caused Bakunin to break with him seems to have been provided by Nechaiev's plan to form a gang for the specific purpose of robbing wealthy tourists in Switzerland. He even tried to force Ogarev's stepson to join him, whereupon Bakunin protested. At that Nechaiev appropriated a strongbox of Bakunin's containing correspondence, secret papers, and the statutes of his revolutionary organizations – including the original manuscript of the *Catechism* – and threatened Bakunin with publication should he take any steps against him.

That was the end of Bakunin's friendship with Nechaiev. Bakunin was horrified at the practical conclusions that Nechaiev drew from principles that he himself had helped him to formulate. The story that Nechaiev told some of his acquaintances, namely, that when he first came abroad he was an 'unspoiled, good and honourable youth' and that it was Bakunin who corrupted him, was, of course, not true. Nechaiev had started his mystifications in Russia before his first journey abroad. But Bakunin not only made no attempt to counteract Nechaiev's inclinations, he actually encouraged them by giving them a kind of theoretical foundation. Their quarrel is not sufficient to obliterate the fact that Nechaiev was very strongly influenced by Bakunin and that it was Bakunin himself who evolved the theory by which all things were permitted.

Not much more needs be said about Nechaiev's further career. He lived two more years abroad, first in London, then in Paris and finally in Switzerland He published more revolutionary literature and threatened and blackmailed as before. Bakunin refused to have anything more to do with him and was so embittered against him that he would have liked to denounce him as a 'homicidal maniac, a dangerous and criminal lunatic, whom it was necessary to avoid' Nechaiev was finally betrayed by a Polish *émigré* in the service of the police He was arrested in Zurich in the middle of August 1872 and repatriated to Russia as a common criminal. On 8 January 1873 he was condemned to twenty years' hard labour in the mines of Siberia He was not sent to Siberia, however, but confined in the fortress of Petropavlovsk. Such was his power over people that he actually succeeded in winning over the soldiers who kept guard over him, and they helped to put him in touch with revolutionaries outside He devised a plan for seizing the fortress during a visit of the Tsar's, but he was betrayed by one of his fellow prisoners and transferred to severe solitary confinement He died of scurvy on 21 November 1882.

Marx had been a close student of Russian affairs since the 1850s At first he paid attention chiefly to Russian foreign policy, but later he devoted himself with ever-increasing interest to the social movement in Russia itself [18] At the end of the 1860s he learned Russian in order to be able to study the sources in the original The activities of Bakunin and Nechaiev attracted his attention early. More detailed information was first supplied him by Hermann Lopatin, a respected Russian revolutionary, who settled in London in the summer of 1870 and established close terms of friendship with Marx Lopatin had previously lived in St Petersburg, where he had had the opportunity of observing Nechaiev's first steps at close quarters. After his first conversations with Lopatin Marx wrote to Engels 'He told me that the whole Nechaiev yarn is a mass of lies. Nechaiev has never been in a Russian prison and the Russian Government has never tried to have him murdered, and so on and so forth.'[19] Lopatin was the first to tell Marx of the

murder of Ivanov From the autumn of 1871 onwards another Russian *émigré*, Utin, kept him informed of everything, as we know today in all essentials correctly.[20]

If the International were to survive it was necessary to purge it of Bakunin and Bakuninism. It was no longer an abstract question of 'anarchy or authority' The International must not be a screen for activities *à la* Nechaiev Even if Bakunin himself were incapable of drawing the practical consequences of his own teaching, as Nechaiev had done, the Nechaiev affair had demonstrated that people might always be found who would take his theories seriously One crime like Nechaiev's carried out in Europe in the name of the International would suffice to deal the workers' cause a reeling blow. The struggle against Bakunin had become a matter of life and death for the International

The struggle had to be fought under very unfavourable circumstances The French sections had been swept away by the white terror after the Commune Those who had been able to flee were refugees in Switzerland, England or France An immense amount of work devolved on the refugee committee of the General Council, and Marx, on whom the main burden fell, was occupied for months raising money for them, securing them work, giving them advice He made the personal acquaintance of practically every refugee, and a number of them became his friends The most important of the refugee Communards were admitted to the General Council, including Vaillant, Ranvier and other Blanquists. These were socialists who, in whatever else they differed from Marx, agreed with him on the most important point of all, i e the necessity of the International taking its place in the political struggle Among the multitude of refugees there were, as Engels wrote to Liebknecht, 'of course the usual proportion of scum, with Vermersch, editor of *Père Duchêne* [a paper published during the Commune], as the worst of the lot' [21] The Jacobins formed a 'section française de 1871' and relapsed into their favourite role of theatrical and bloodthirsty revolutionism. The General Council were far too spineless for them, and they soon

started attacking it vigorously in *Qui vive?*, a paper edited by Vermersch.

In their eyes the General Council was Marx. Marx, they maintained, was living in luxury at the expense of the workers. He embezzled the workers' money, and had made the International a 'German aristocratic' domain He was a pan-German and a crafty servant of his master, Bismarck All this had been said before, but by the reactionary Press. But now it was repeated and decked out with fondly invented details by the ultra-revolutionaries, the enemies of 'authority' Their particular complaint was that the International was in German control and they played as usual on all the chauvinistic instincts, old and new There was not a semblance of justification for their complaint There were three times as many English as Germans on the General Council, and the Germans were outnumbered even by the French. The number of members represented by the French was certainly not very large, and the Blanquists could certainly not be reproached with harbouring affection for the new German Empire.

The French *exaltés* cost the General Council a great deal of time and a great deal of trouble, and at the same time it was compelled to occupy itself with a number of disagreeable internal disputes Marx had secured the election of his old friend Eccarius as general secretary The International was poor, and all it could pay its general secretary was fifteen shillings a week, and even this he did not receive regularly So he added to his income by journalistic work, reporting International affairs for *The Times* and other newspapers Occasionally he mentioned things that were not intended for publication, and this repeatedly led to heated arguments at General Council meetings, and sometimes Marx had difficulty in protecting Eccarius from the general indignation Then came the London conference. It was decided that its sessions should be private and that no communications should be made to the Press, including the party Press, and everyone but Eccarius abided by this decision. A storm of indignation arose, and Eccarius was violently attacked. This time even Marx could not help him, and ever afterwards Eccarius felt that Marx had let him down.

He had long been closely associated with the English trade union leaders, and as soon as they started opposing Marx he sided with them and did a great deal to intensify personal animosities on the General Council. Occasionally its meetings were very lively indeed.

> The meetings in High Holborn, where the General Council met at that time [Lessner writes in his memoirs],[22] were the most tempestuous and exhausting that can be imagined. It was no light task to stand up to the babel of tongues and the profound differences of temperament and of ideas. Those who criticized Marx for his intolerance ought to have seen the skill with which he got to the heart of people's ideas and demonstrated the fallacies of their deductions and conclusions.

The refugee Communards brought more than enough temperament with them. Of the English members of the General Council, Odger and Lucraft had resigned, having taken advantage of the International's pro-Communard manifesto to dissociate themselves from an organization in which they, as cautious and far-sighted individuals and members of royal commissions and friends of some of the very best people, had long since begun to experience a sensation of discomfort. (Odger had a magnificent career, and ended by being knighted and awarded the Nobel Peace Prize.) Those Englishmen who remained on the General Council coquetted with the liberals, split on purely personal grounds into two and sometimes into three factions and did nothing to lessen the general friction. Engels definitely settled in London in the middle of September and Marx proposed his election to the General Council, but even his admission to that body, valuable as it was, only had negative consequences. To the Londoners Marx was an old friend. They knew him, his wife and his children, and they knew how unspeakably hard his life had been during all these years, and even those who did not like him respected him for his selfless work for the common cause. But Engels was a rich manufacturer from Manchester, a distinguished-looking gentleman, with excellent manners, and somewhat cool and distant. Certainly he was very clever and educated and a good socialist, and many years ago he had written a book, that they either

knew or heard for the first time now, but in their eyes he was first of all a stranger. And he was not always a very nice stranger either In later years Engels himself told Bernstein that Marx generally played the role of peace-maker and conciliator, but when he, Engels, was in the chair the General Council meetings generally ended with a colossal row. In the editorial chair of the *Neue Rheinische Zeitung* it had been the same The downfall of the International is not attributable to the friction on the General Council, but efficiency was certainly not promoted by it.

Just at this moment of internal tension it was called upon to withstand a serious test. The vigorous attack on the General Council contained in the circular issued by the Bakuninist congress at Sonvilliers attracted a great deal of attention It was printed and reprinted and long extracts appeared in the bourgeois Press. ('The International monster is devouring itself ') In France, where everything in any way connected with the International was wildly persecuted, it was posted up on the houses. The General Council replied with another circular, 'The Alleged Split in the International', revealing the secret history of the Bakunin Alliance for the first time [23] This made the Bakuninists very angry indeed They said a general congress must be summoned at once Certainly, the General Council replied, things could not continue like this. Invitations were sent out on 10 July 1872 for a congress to take place on 2 September at the Hague Marx wrote to Sorge that the life or death of the International was at stake [24]

The Bakuninist sections in the Latin countries promptly protested at the choice of the Hague The Fédération jurassienne wrote that the congress ought not to meet in a 'milieu germanique' and suggested Switzerland instead From their own point of view they were quite right The sections' limited funds meant that to a certain extent the composition of the congress depended on where it took place, for the cost of travelling necessarily limited the number of delegates who could travel from a great distance It was therefore intelligible that the Swiss were in favour of Switzerland. They expected

their argument that Bakunin would not be able to travel to Holland either through France or through Germany, because in both countries he would be liable to arrest, to carry particular weight. But Marx was in a similar position The same reasons would make it impossible for him, as well as other members of the General Council, to travel to Switzerland. But antagonism had by this time become far too profound for material considerations to carry any weight. The Bakuninists considered the advisability of being represented at the congress at all On 4 August the Italians at Rimini decided not to be represented at the Hague, and proposed the summoning of an opposition congress at Neuchâtel, also on 2 September[25] The Swiss Bakuninists did not go so far as that They decided, with Bakunin's consent, to be represented at the Hague Even the moderate spirits among them could no longer conceal from themselves the fact that a split was inevitable In the last resort the differences between Marx and Bakunin boiled down to the differences between the historical tasks necessarily confronting the proletariat in countries in which capitalism was fully developed and the illusions to which the semi- and demi-semi-proletarians living in countries in which capitalist development was only just beginning were equally necessarily subject Even the most intelligent of the Bakuninists formed a most distorted picture of the situation. Malon, for instance, had for a long time resisted the tendencies making for a split. Now he reconciled himself to it 'Now that I am calm and alone, I see that the split was inevitable', he wrote to a friend at the end of August[26] In his opinion it was inevitable because of the temperamental differences between the Latin and the German races One day this, like everything else that divided the nations, would disappear 'into the infinite of the human race' But now these differences still existed, and the recent war had only intensified them It would be in vain to go on trying to unite the incompatible Everyone who attended it knew that the Hague congress would be the last of the united International

When it met at the Hague on 2 September, the town was

swarming with journalists and secret agents No assembly of the International had roused the world's attention like this one It was the first after the Commune – a 'declaration of war of chaos on order'. An attempt had been made to persuade the Dutch Government to forbid the congress Jules Simon had travelled from Paris to the Hague to present his Government's request to this effect, but he had as little success as others who wanted the same Next it had been announced that the congress would resolve on acts of terrorism, and that it was a rendezvous of regicides But the Dutch Government refused to be intimidated. Next an attempt had been made to incite the population against the congress. The *Haager Dagblaad*, for instance warned the citizens of the Hague not to allow their wives and daughters to go out alone during the sessions of the congress, and called on all the jewellers to draw their shutters. The police, however, took no action and seemed actually to regard the congress with benevolence. A Berlin secret police agent reluctantly reported that up to 5 September all the meetings were strictly private, and

> not only does the Dutch police keep no watch whatever on them but protects the meeting-place in the Lombardstrasse so scrupulously that the public is not even allowed a look into the ground floor where the meetings are held, or even so much as make an attempt to overhear through the open window a single word of what is taking place within.

As long as the sessions remained secret there was nothing for the journalists to do but wander round the meeting-hall and describe their 'impressions' A few of them faked interviews with Marx. Others described the delegates, and Marx in particular. The correspondent of the *Indépendence belge* wrote that the impression that Marx made on him was that of a 'gentleman farmer', which was friendly at any rate.

The congress was not very numerously attended. No more than sixty-five delegates were present Congresses of the International had been better attended in the past, and among the

delegates were many who were not known from before. But it was the first International congress attended by Marx and Engels. The first and private sessions were devoted to examination of the delegates' mandates, and there was bitter strife about each one, for each one was important. At previous congresses this part of the proceedings had been regarded as but a superfluous formality. It soon became clear that there was a majority for Marx, with forty votes to twenty-five. There were two opposing factions, each united as far as internal questions affecting the International were concerned, but far from united politically. The opposition was held together by antagonism to Marx. It consisted of all the Belgian, all the Dutch, all the Jurassian and nearly all the English and Spanish delegates. The majority was more united, consisting of the Germans, the German-Swiss, the Hungarians, the Bohemians, the German *émigrés* from America, but it included many French *émigrés* and delegates of illegal sections in France too. The Blanquists were particularly well represented among the French *émigrés*.[27]

This grouping by no means bore out the theory of the contrast between the state-worshipping Germanic races who were loyal to Marx and the freedom-loving, anti-authoritarian Latins. Guillaume, leader of the Jurassian section, was extremely astonished when Eccarius told him 'que le torchon brûlait au Conseil général'. He had believed that the English delegates, who were trade unionists, were devoted followers of Marx. He now found out that they were 'en guerre ouverte avec ceux qui formaient la majorité'.[28] He was just as surprised when he found there was Dutch opposition to the General Council. Attempts to unite the opposition were made before the opening of the congress, but it was only towards its close that the fundamental political differences between the various groups made it possible to come to a common understanding.

Violent disputes took place during the examination of the mandates. The English delegates were unwilling to admit their fellow countryman, Maltman Barry, who was provided with a mandate from an American section, on the ground

that he was not a known trade union leader At that Marx sprang indignantly to his feet. It was an honour to Citizen Barry that that was so, he exclaimed, because almost all the English trade union leaders were sold to Gladstone or some other bourgeois politician. That remark was held against Marx for a long time. The mandates of the delegates of the German sections were also disputed During their trial for high treason at Leipzig in 1872 Bebel and Liebknecht had declared the solidarity of their party with the International, though the party did not belong to the International and its local groups were not sections of the International [29] This was formally correct. To prevent their party from being banned Bebel and Liebknecht could not have done otherwise. The Bakuninists, relying on this statement, demanded that the German delegates' mandate should not be recognized. Now the sections the German delegates represented were not very big and had only been formed specially for the congress, but behind many a Bakuninist mandate there was not exactly a mass organization either The German mandate was accepted.

Fully three days were occupied with these and similar matters The real congress did not begin until 5 September. It met in a working-class quarter of the town. A French newspaper remarked sarcastically that next to the congress hall was a prison, 'then laundries, small workshops, many pothouses, tap-rooms, here called *tapenj*, and clandestine establishments such as are used, as one would say in congress style, by the Dutch proletariat' The sessions took place in the evening, in order to enable workers to attend 'The workers certainly did not fail to put in an appearance. Never have I seen a crowd so packed, so serious, so anxious to see and hear.' The events of the evening of 5 September were described by *Le Français* as follows

At last we have had a real session of the International congress, with a crowd ten times greater than the hall could accommodate, with applause and interruptions and pushing and jostling and tumultuous cries, and personal attacks and extremely radical but nevertheless extremely conflicting declarations of opinion, with

recriminations, denunciations, protests, calls to order, and finally a closure of the session, if not of the discussion, which at past ten o'clock, in a tropical heat and amid inexpressible confusion, imposed itself by the force of things.

The first question discussed was that of the extension of the General Council's powers in accordance with the resolution passed at the London conference The opposition not only wanted no extension of the General Council's powers, but objected to the powers the General Council already possessed. They wanted to reduce it to a statistical office, or even better, to a mere letterbox, a correspondence office. These advocates of autonomy were opposed by Sorge, who had come from New York He said that the International not only needed a head, but one with plenty of brains Guillaume, who describes the scene, says that at this people looked at Marx and laughed The congress gave the General Council its extended powers The resolution stated that it was the duty of the General Council to carry out the decisions of the International congress and to see that the principles and general intentions of the statutes were observed in every country, and that it had the power to suspend branches, sections, committees and federations until the next congress Thirty-six delegates voted for this resolution, with fifteen against and six abstentions

When the ballot was over Engels rose and proposed in his own and Marx's name that the headquarters of the General Council be transferred from London to New York This caused an indescribable sensation A few weeks previously, when somebody had suggested removing the headquarters of the International from London, Marx had opposed it strenuously, and now here he was proposing it himself Vaillant, speaking for the Blanquists, made a passionate protest So far as he was concerned, transferring the General Council to New York was equivalent to transferring it to the moon The Blanquists could not possibly have any influence on the General Council unless it remained where it was, i e in his place of exile, London But Marx had calculated rightly If the Blanquists, who otherwise supported him, opposed him in this, there were plenty of

opposition delegates to support him A General Council in America would obviously mean a General Council without Marx. And so they voted for the resolution. It was carried by twenty-six votes to twenty-three.

Then the political debate began. The General Council proposed that the following resolution of the London conference be incorporated in the statutes

> In its struggle against the collective power of the possessing classes, the proletariat can only act as a class if it constitutes its own distinct political party, opposed to all the old parties formed by the possessing classes The forming of a political party by the proletariat is indispensable in order to assure the triumph of the social revolution and its ultimate object, the abolition of all classes The coalition of working-class forces, already obtained in economic struggles, must also serve as a lever in the hands of that class in its struggle against the political power of its exploiters The lords of the earth and the lords of capital always use their political privileges to defend and perpetuate their economic monopolies and to enslave Labour, and therefore the conquest of political power is the great duty of the proletariat [30]

Every point of view was represented in the discussion, from that of the extremists opposed to political intervention of any kind on the one hand to that of the Blanquists, who had no patience with the economic struggle, on the other. The Blanquists accepted the principle of the strike as a means of political action, but their real interest remained the barricade. They wanted to put 'the militant organization of the revolutionary forces of the proletariat and the proletarian struggle' on the programme of the next congress Guillaume, as spokesman of the 'anti-authoritarians', stated that the majority wanted the seizure of political power and the minority wanted its annihilation The General Council resolution was carried by twenty-nine votes to five, with eight abstentions. By this time many delegates had left, being unable to remain at the Hague any longer, and others no longer took part in the voting, having lost interest The Blanquists attacked the General Council for having caused the revolution to take flight across the ocean

and left the congress. The Bakuninists, however, decided after reflection that the situation was far better than it had seemed at first 'The authority of the General Council, voted for in principle by the majority, is in fact abolished by the choice of New York', Guillaume wrote in triumph

On the last day the congress discussed the desirability of expelling members of the Bakuninist Alliance from the International A special committee was appointed to examine the evidence submitted to it by the General Council Guillaume was invited to appear before it but refused, giving the same explanation as he had given at the congress in Latin Switzerland in April 1870. 'Every member of the International has the full and complete right to join any secret society, even the Freemasons Any inquiry into a secret society would simply be equivalent to a denunciation to the police,' he maintained. The utmost to which he would consent was to a 'private conversation' with members of the committee Clever as he was, he could not answer the weighty evidence against him Nechaiev's letter to Liubavin made a great impression. Bakunin and Guillaume were expelled from the International

The congress ended on 7 September On 8 September a meeting, organized by the local section, took place at Amsterdam. Among the speakers were Marx, Engels, Lafargue, Sorge, Becker and others. Marx's speech was reported in *La Liberté*, the Brussels organ of the International, and in the *Allgemeen Handelsblad* of Amsterdam, and was by far the most important made by him at the time of the congress. In it he summed up its results.

> He proclaimed the necessity of the working classes fighting the old, decaying society in the political field and in the social field alike The worker must one day seize political supremacy in order to establish the new organization of labour He must overthrow the old politics sustaining the old institutions

The International had proclaimed the necessity of the political struggle and repudiated pseudo-revolutionary abstention from politics But he indicated the future path in general

outline only. No prescription for the seizure of political power was valid for all countries and all times, as the Blanquists, and others too, pretended.

> But we have never said that the means to arrive at these ends were identical. We know the allowance that must be made for the institutions, manners and traditions of different countries. We do not deny that there exist countries like America, England, and, if I knew your institutions better, I would add Holland, where the workers may be able to attain their ends by peaceful means. If that is true we must also recognize that in most of the countries of the Continent force must be the lever to which it will be necessary to resort for a time in order to attain the dominion of labour[31]

Marx ended his speech with a defence of the decision to transfer the General Council to America. America was the land of the workers, to which hundreds of thousands emigrated every year, whether banished or driven by want, and in America a new and fruitful field was opening for the International. As far as he himself was concerned, he was retiring from the General Council, but he denied the rumours that he was retiring from the International On the contrary, freed from the burden of administrative work, he would devote himself with redoubled energy to the task to which he had devoted twenty-five years of his life and would continue with until his last breath, namely his work for the liberation of the proletariat.

Marx's motives for transferring the General Council to New York have been much discussed. At the congress he had done all in his power to gain the victory, and he had gained it, though in some things his victory was more apparent than real He had conducted a ruthless struggle against the Bakuninists and seemed determined to conduct it to the very end, i.e the complete extermination of anarchism And then all of a sudden he caused the General Council to be banished from Europe He must obviously have realized that his influence on the life of the International would be very seriously impaired. It has been suggested that Marx had grown weary of the strain and the petty cares that his work on the General

Council involved, of the ever-increasing burden of correspondence that he had to conduct, the exhausting and fruitless debates with the English members, the meetings and conferences and visits, and the whole troublesome, time-robbing labour that devolved mainly upon his shoulders. It has been suggested that he wished to be free of all this and to return to his most important task, the completion of *Das Kapital* Certainly Marx often complained of how little time his work on the General Council left him for his scientific work. But he always laid everything else aside when the International demanded it. 'He was above all a revolutionary.' One recalls those words of Engels[32] Besides, after the Hague congress, Marx could have done much more scientific work without sacrificing any of his political work whatever, for Engels now lived in London and could have represented him on the General Council and carried out his wishes But in spite of this he insisted on the General Council moving away from London

Marx had other reasons For the General Council to have remained in London would have spelled the ruin of the International Bakunin had been expelled, but the spirit of Bakunin lived on Nearly all the sections in Southern Europe, in Italy and Spain, were 'anti-authoritarian'. The Commune inspired and inflamed them, and their watchword was action, action all the time They wanted all or nothing, and their only battle-cry was the social revolution Marx and Engels saw the danger. 'Spain is so backward industrially that there can be no talk of an immediate, complete emancipation of the working class. Spain must pass through various stages of development before it comes to that, and a whole series of obstacles must be cleared out of the way ' The Bakuninists violently attacked the young Spanish republic, which was threatened on all sides as it was Marx and Engels regarded the blind, impetuous radicalism of the Bakuninists as fatal 'The republic offered the opportunity of compressing those preliminary stages into the shortest possible time, and of rapidly removing those obstacles '[33] But the Bakuninists did not listen and did not look Anything but attack and again attack and barricades was 'politics', 'idol-

izing the state', cowardly and counter-revolutionary. It was necessary for the International to part from them 'If we had been conciliatory at the Hague', Engels wrote to Bebel at the end of June 1873, 'if we had hushed up the split, what would the consequences have been? The sectarians, namely the Bakuninists, would have had a whole year's time to commit far greater stupidities and infamies in the International's name'[34]

The Hague congress had also shown that all the Proudhonist groups, the Dutch, the Belgians and others as well, would have been ready to follow the Bakuninists as soon as they left or were expelled from the International, and all that would have remained would have been the group that supported Marx during the congress It would very soon have melted away. The German party was bound to avoid anything that might imperil its legal status, particularly after the outcome of the Leipzig high treason trial. Marx approved of their policy in this It would be impossible for them to share in the life of the International, at least for a long time to come Of Marx's majority at the congress that only left the Blanquists

Marx esteemed Blanqui very highly and had a high opinion of the Blanquists' courage, and he had not a few personal friends among them. But a whole world divided him from them politically. He had had several serious disputes with them even before the congress. At the congress they had followed him as long as it was a question of fighting against the 'anti-politicians', the 'destroyers of the state'. The Blanquists stoutly asserted the omnipotence of the state. It must not be destroyed but seized, but there was only one way of seizing it, and that was the barricade – whether in Spain or France, England or Germany made no difference In their eyes the single duty of the International was to organize armed risings

We shall return to Marx's Amsterdam speech in another connection. It alone gives the explanation of the decision to transfer the General Council to New York. Had it remained

in London, Marx would only have been able to maintain his ground with the aid of the Blanquists. The International would have become Blanquist, and its programme would have shrunk to the single word barricade

The congress had decided to transfer the General Council to New York for the year 1872-3. Marx was convinced that developments in Europe would be so rapid and so favourable that after a year the General Council would be able to return from exile This was a mistake Marx correctly estimated the direction the workers' movement was taking; as happened more than once, he was mistaken about its tempo He soon recognized his error. A year after the Hague congress he gave up the International for lost Its history in America is that of its gradual death Its slow decline was occasionally interrupted by petty crises, by splits and splits again, and it is impossible to establish for certain even the date when it finally expired. When Engels rose at the Hague congress and proposed that the General Council be transferred to America, the International ceased to exist.

[21]

The Last Ten Years

MARX was so identified with the International in the public eye that people refused to believe that the chief of the general staff would remain in London after the general staff had been transferred to New York. English newspapers announced that Marx was preparing to emigrate to America. In 1876 Professor Funck-Brentano actually told the Le Play Society in Paris that Marx had been living in the United States ever since the Hague congress.

Marx, however, remained in London, still occupied with work for the International, though to a smaller extent than before. His first task was to supervise the publication of the decisions of the Hague congress. His friend Sorge kept plying him from New York with requests for instructions. The furious attacks of the Bakuninists, who now shrank at nothing, had at least occasionally to be answered with a few sharp blows. A split occurred in the British regional council and Marx had passages of arms with Hales, Mottershead, Jung and Eccarius.

From the spring of 1873 onwards it became clearer every month that what had at first appeared to be only the liquidation of a phase in the life of the International culminating in the Hague congress was in fact the liquidation of the International itself. In September Marx advised Sorge to 'let the formal organization of the International recede into the background for the time being, but not to let the headquarters at New York out of his hands, in order to prevent idiots or adventurers from gaining control and compromising the cause.'[1] Events and the inevitable evolution of things would lead to the resurrection of the International in an improved form; for the time being it was sufficient not to let the connections with the best men in the various countries lapse. Marx

summed up the situation in a letter to Sorge in April 1874.[2] He said there could be no question at the moment of the working classes playing a decisive role in Europe. In England the International was for the time being (once more 'for the time being') as good as dead, the new French trade unions were but points of departure from which development would take place when freer movement became possible again, and in Spain, Italy and Belgium the proletariat was to all intents and purposes impotent. Germany, practically the only country in which the workers' movement was in the ascendant, did not count in the International. Contrary to his hopes, for practically a year after the Hague congress Marx had no time to resume his theoretical work but had to devote himself almost entirely to International affairs, and what time was left to him he had to devote to the settling of matters he believed to have been settled already.

Das Kapital was to have been translated into French at the end of 1867. Élie Reclus, brother of Élisée Reclus, an anarchist who subsequently became a well-known geographer, undertook the task, but soon abandoned it. Two years later another Frenchman undertook it but did not get very far. Not till the winter of 1871 was a French publisher found who was willing to take the risk (for a risk it was at that time). There were difficulties of all kinds from the first. The publisher, a bookseller named Lachâtre, lived abroad, having been condemned to twenty years' imprisonment for his part in the Commune, and his business was managed by a legal administrator. Next there was a shortage of funds. Marx invited his cousin, August Philips, who lived in Amsterdam, to share in the cost of publication, but Philips said he would not think of furthering Marx's revolutionary aims. In the end *Das Kapital* was published in French, though it only came out in instalments published at intervals. Marx wrote to Lachâtre that this method of publication gave him particular satisfaction. 'Sous cette forme l'ouvrage sera plus accessible à la classe ouvrière et pour moi cette considération l'emporte sur toute autre.'*[3]

* 'The work will be more accessible to the working classes in that form, and for me that consideration takes precedence over all others.'

Roy, the translator, did his work well, but Marx had 'the deuce of an amount' to do all the same, not only had he to revise the translation, which was no light task in view of the condensed style of the original and the play made with Hegelian phraseology in the chapter on the theory of value, but he simplified passages here and expanded passages there, amplifying the statistical data and indulging in controversies with French economists The final instalment did not appear till May 1875, for there were periods when he had to stop work on it altogether and others when he could only continue by exerting himself to the utmost, for he was a sick man

In autumn 1873 he broke down altogether He had been suffering from headaches and insomnia during the summer and was ordered by his doctor not to work more than four hours a day Then his health improved somewhat, but in November it grew worse again The 'chronic mental depression' grew worse and worse The doctor ordered complete cessation of work, and his friends feared the worst Once more he recovered, but in the summer of 1874 he again had to take a 'complete rest' After years of superhuman toil on *Das Kapital*, carried out under the most adverse circumstances in the hunger and poverty of exile, harassed by cares about tomorrow's bread to feed his wife and children, followed by the work of building up the International and the exhausting struggle to hold it together into which he cast the last ounce of his resources, his old liver trouble broke out again He never again shook it off completely, though three visits to Carlsbad and a cure at the German resort of Neuenahr caused such an improvement that it never became threatening again. His first visit to Carlsbad in the summer of 1874 was somewhat risky, as it was by no means certain that the German and Austrian police would allow the 'chief of the Red International' to go unmolested In August 1874 Marx applied to the Home Office for British citizenship, but the application for naturalization was refused on the grounds (which of course Marx never knew) that 'this man was not loyal to his king'. In Carlsbad, as the police boasted, he was 'continually and uninterruptedly

watched', but gave 'cause for no suspicion', so they did not trouble him any more. After the enactment of the Socialist Law of 1878 the route through Germany was closed to him, but he no longer needed the German and Bohemian watering places. The headaches and insomnia, the 'nervous exhaustion' as Engels called it, remained.

After 1873 Marx never regained his old capacity for work. He remained the insatiable reader that he had always been; he continued indefatigably making extracts from what he read, he went on collecting material, but he no longer had the capacity to organize it. Again and again he sat down and started and in the autumn of 1878 believed that the second volume of *Das Kapital* would be finished within a year, but he never completed more than a few pages of the fair copy. Marx had learned Russian. England had served as the main illustration of theoretical development in the first volume of *Das Kapital*, and he intended to use Russia as the basis of his treatment of ground rent in the second volume. Marx could not get enough Russian literature. After his death Engels found two whole cubic metres of Russian statistical material. It was not conscientiousness alone that drove Marx on in his everlasting search for new material. He used it also to hide from himself the crippling of his creative powers. Engels hated those piles of Russian books and once said to Lafargue that he would have liked to burn them. For he suspected Marx of sheltering behind them in order to find peace from the pricks of his own conscience and the urging of his friends. But Engels did not discover how little had been completed of what he had believed to have been completed, in spite of all his suspicions, until after Marx's death, when he examined his manuscripts. 'If I had known,' he wrote to Bebel in the late summer of 1883,

> I would have given him no peace by day or night until the whole thing had been finished and printed. Marx himself knew this better than anyone, and he also knew that if it came to the worst, as it has, the manuscript could be edited by me in his spirit. He actually said so to Tussy.[4]

The second volume of *Das Kapital* was completed by Engels and published in 1885. The third volume appeared in 1894. After 1877, when he wrote a contribution to Engels's attack on Eugen Dühring, as well as a few articles opposing Gladstone's Russian policy, Marx published practically nothing.

The latter appeared in conservative newspapers. There was no socialist Press in England, but when it came to attacking Russia, Marx was willing to enter into alliance with the devil himself. The Franco-Prussian War had enormously strengthened Russia's position in Europe, and Russia remained the 'so far unassailed bulwark and reserve army of the counter-revolution'.[5] Russia was still an oppressive nightmare over Europe. Anyone who fought Russia was objectively fighting in the service of the revolution.

The International was broken. In the middle of the 1870s there was no proletarian army anywhere but in Germany. Under Marx's leadership it did all in its power to denounce Bismarck's servility towards the Tsar, in the Reichstag, in its newspapers, in pamphlets like Liebknecht's 'The Oriental Question, or shall Europe become Cossack?'[6] which Marx approved of, although he usually did not see eye to eye with Liebknecht. But the German party was far too weak to affect German foreign policy in the slightest degree The European proletariat, split, scattered or not organized at all, was powerless Marx was convinced that the future belonged to it, and whatever happened in Europe nothing could shake his conviction of its ultimate victory. 'So far I have always found', he once wrote to Johann Philipp Becker, 'that all really sound men who have once taken the revolutionary road invariably draw new strength from defeat and become ever more resolute the longer they swim in the stream of events ' The bourgeois world was destined to destruction, though how and when was uncertain, for it depended on factors over which the proletariat so far had no control 'General conditions in Europe are of such a kind that they are heading more and more towards a European war We must go through it before there can be any thought of the European working classes having decisive

influence'[7] That was what Marx thought in the spring of 1874 War might advance the rise of the proletariat to power or might impede it Marx closely followed the foreign politics of the great European countries. In February 1878, when his wife was ill and he was suffering from headaches by day, insomnia by night, and bad fits of coughing, he wrote two long letters to Liebknecht which show how carefully he followed political and military events during the Russo-Turkish war, which ended with the preliminary peace of Adrianople at the end of January[8]

In 1874 Marx still expected a resurrection of the European workers' movement as a result of a general European war For as long as the stronghold of the counter-revolution had not fallen, as long as its shadow still lay over Europe, all hope of a victory for the revolution was in vain The movement might gain success in one or other or all the countries of Central and Western Europe, but the last word would still be spoken by the Tsar And the Tsar could only be overthrown in a war with another great power The foundations on which Russian absolutism rested were still too strong to be shaken by anything less than a European war Up to the middle of the 1870s Marx was extremely sceptical of all news of revolutionary movements in Russia, and the Nechaiev affair was not calculated to make him change his mind

But the more thoroughly he studied Russia, the more Russian literature he read, the more Russian statistics he examined, the more probable it began to appear to him that this colossus with feet of clay only needed a slight blow from without to cause it to collapse When Russia declared war on Turkey in 1877 he felt practically certain of a Turkish victory, which would be followed by a Russian revolution And when the Turks really did gain a victory he believed revolution in St Petersburg to be at hand 'All classes of Russian society are economically, morally, intellectually in complete decay', he wrote to Sorge at the end of September 1877 'This time the revolution will begin in the East'[9] On 4 February 1878 he explained to Liebknecht that

> we are definitely on the side of the Turks for two reasons. (1) because we have studied the Turkish peasant, i.e. the Turkish masses, and we have learnt that the Turkish peasant is without doubt one of the most capable and moral representatives of European peasantry [this argument could of course also have been used of Serbian and Bulgarian peasants whom the Turks oppressed]; (2) because the defeat of the Russians will considerably hasten the social revolutions in Russia, the elements of which already to a great extent exist, and thereby also hasten the revolution in all Europe.[10]

When Marx wrote this Turkey had already been defeated. But Marx did not abandon his idea of the necessity of a European war.

There was now a revolutionary movement in Russia that was incomparably stronger than could have been hoped for two years previously. The Narodnaya Volya (People's Will) party attacked absolutism with the only weapon the revolutionaries had. That weapon was terrorism. In 1879 and 1880 members of this party made several abortive attempts on the life of the Tsar. Many paid for them with their lives. Those who managed to escape abroad (Leo Hartman, N. Morosov, and others) were received by Marx as friends. Alexander II was assassinated by a member of the Narodnaya Volya party in March 1881. On 11 April Marx wrote to his daughter Jenny that the terror was 'a historically inevitable means of action, the morality or immorality of which it was as useless to discuss as that of the earthquake at Chios'.[11] The Russian terrorists were 'excellent people through and through, *sans phrase mélodramatique*, simple, straightforward, heroic.' It was no longer necessary for the fortress to be stormed from without, for it was crumbling by itself. War had become superfluous. Nay more, it would actually be harmful now.

Engels wrote to Bebel in the middle of December 1879:

> In a few months things in Russia are bound to come to a head. Either absolutism will be overthrown, after which, the stronghold of reaction having collapsed, a wind of a different kind will blow through Europe, or there will be a European war which will bury the present German party in the struggle which every country will have to fight for its national existence.[12]

On 12 September 1880 Marx wrote to Danielson that he hoped that there would be no general European war. 'Although in the long run it could not hold up social development, and in that I include economic development, but would rather intensify it, it would undoubtedly involve a futile exhaustion of forces for a longer or shorter period.'[13] Three months before Marx's death Engels wrote to Bebel, repeating Marx's views as follows:

I would consider a European war a misfortune, this time a terrible misfortune. It would inflame chauvinism everywhere for years, as every country would have to fight for its existence. The whole work of the revolutionaries in Russia, who stand on the eve of victory, would be annihilated and made in vain, our party in Germany would be temporarily swamped and broken up in the chauvinist flood, and the same thing would happen in France.

Russia was 'sinking into a morass'. Tsarism was succumbing in peaceful putrefaction and its last supports were being smashed by the revolutionaries' bombs. Marx overestimated the disintegration of Russian society and the strength of the revolutionary movement. The power of absolutism, though weakened, was not shaken nearly to the extent that Marx believed. It had become improbable that Russia would actively intervene as in 1849 and give military aid in suppressing a Central European revolution. The weight with which Russia had overlain Europe for decades had become lighter. Europe could go its own way without the fear of finding it barred at all decisive points by Russian troops – but only if peace were kept, and a struggle of warring peoples did not come to bar the way and hold up the struggle of the rising proletarian class, throwing it back for ten, twenty years or even more.

In the 1870s and at the beginning of the eighties the European workers' movement took great steps forward and advanced faster than Marx expected after the death of the International, and it did so without passing through a general European war. True, it did not always take the path that Marx considered the right one. He found much to criticize in the German party, and later in the French. But in spite of its

faltering and its uncertainties and all its temporary deviations it was on the right track.

The 1874 elections showed that the 'Eisenacher', the followers of Liebknecht and Bebel, and the followers of Lassalle were practically equal in strength. During the decade that followed Lassalle's death the movement he had founded lost a great deal of its sectarian character. The specific Lassallean demands still remained on its programme, but they were not believed in with much conviction and in the end survived practically only out of sheer tradition. The two German workers' parties grew nearer and nearer to each other. They both fought the same enemy, they were both persecuted alike, and gradually the wish to surmount the breach and unite became so strong that towards the end of 1874 amalgamation into one great German workers' party was decided on. Marx and Engels were indignant at the news. When Marx was sent a draft of the programme of the new party, he wrote his observations on it and sent them to the 'Eisenacher'. He took the programme point by point, subjecting each to devastating criticism, proving the whole to be a hash of ill-understood scientific socialism, vulgar democratic phraseology and long-obsolete Lassallean demands, and he ended by threatening to attack it publicly if it were adopted. It was adopted, and became the programme of the German Social Democratic Workers' party, founded at Gotha at the end of May 1875. Marx, in spite of his threat, made no public attack on it, because the programme was regarded as communist by workers and bourgeoisie alike.[14] Nor did the split, which Marx regarded as inevitable, occur. The party remained united, and in 1891, at Erfurt, adopted a pure Marxist programme.

Marx had made a mistake and recognized it. He never regarded himself as infallible. Engels, in a letter to Bebel of 4 November 1875, described the place that Marx and he assigned themselves in the international workers' movement. Their task, he said, was 'uninfluenced by details and distracting local conditions of the struggle, from time to time to measure what had been said and done by the theoretical prin-

ciples that are valid for all modern proletarian movements.' They demanded one thing only from the party, that it remain true to itself.[15] Bakuninists and bourgeois politicians accused Marx of enthroning himself as red Tsar in London, sending out ukases for which implicit obedience was required, and they said that these often led to prison, death and destruction. Nothing could have been farther from the truth. 'It is easy for us to criticize', Engels acknowledged in a letter to Frau Liebknecht, when Wilhelm Liebknecht was once again in prison, 'while in Germany every imprudent or thoughtless word may lead to imprisonment and a temporary interruption of family life.'[16] Another time he wrote to Bebel: 'We are not unaware of the fact that it is all very well for us to talk, but that your position is much more difficult.'[17]

After the enactment of Bismarck's Socialist Law in 1878, when the party spent some time in doubt and uncertainty and many thought that the right policy was to be absolutely loyal and not provoke the enemy, in the hope of causing him to moderate his severity, Marx attacked them furiously. Though once more he threatened to attack them publicly, he did not do so.[18] On 5 November 1881 he wrote to Sorge that the 'wretched' attitude of the *Sozialdemokrat*, the paper the party published at Zurich and smuggled into Germany, led to constant disputes with Liebknecht and Bebel in Leipzig, and that these disputes often became very violent indeed. 'But we have avoided intervening publicly in any way', the letter continued. 'It would not be decent for people living abroad in comparative peace to provide an edifying spectacle for the bourgeoisie and the Government by aggravating the position of men working in the most difficult conditions and at great personal sacrifice.'[19] The same trust in the logic of development that had guided Marx as leader of the General Council of the International determined his attitude to the growing German party now.[20]

In France the socialist ranks that had been scattered by the Commune gradually re-formed towards the end of the 1870s. A fair number of them were former Bakuninists who drew

nearer and nearer to Marxism Prominent among them were Jules Guesde and Benoît Malon. In November 1877 Guesde founded *L'Égalité*, a weekly to which Bebel and Liebknecht contributed from Germany. Although not at all clear in its views, the circle grouped round *L'Égalité* nevertheless contributed substantially towards the propagation of the basic ideas of modern socialism. So rapidly did the movement grow that in October 1879 the Fédération du Parti des Travailleurs Socialistes was founded at a congress at Marseilles. Its programme, adopted at a congress at Le Havre in November 1880, was fundamentally based on Marx Guesde visited London and the new party's minimum programme was the joint labour of Marx, Engels, Guesde and Lafargue. It did not correspond with the wishes of Marx and Engels in every way. Among other things Guesde insisted on inserting a demand for a minimum legal wage Marx opposed this, saying that if the French proletariat were still childish enough to need such a bait it was not worthwhile drawing up a programme for them at all But Guesde insisted and the demand remained in the programme. But this did not cause Marx to withdraw his advice and help from the new party, any more than he had done in the case of the German party when it drew up its Gotha programme. He knew that it would overcome these infantile ailments He did not believe the young party to be united enough to survive for long This time he was right. No sooner had it been founded when it split into two. Marx's connection with the Parti ouvrier, led by Guesde, was a very slender one. Engels wrote to Bernstein in October 1881 that Marx had given Guesde advice from time to time through Lafargue, but it was scarcely ever followed [21] In the violent dispute that broke out between the two groups after the split at the congress at Saint-Étienne in September 1882, Guesde and his friends were continually attacked for 'submitting to the will of a man who lived in London outside any party control'.[22] They did not submit to his control and had no justification whatever for their claim that theirs was the scientific socialism that Marx had founded. A remark that Marx once made to

Lafargue has often been quoted: 'Ce qu'il y a de certain, c'est que moi, je ne suis pas marxiste.'[23]

Nevertheless the movement in France made progress while the working classes in England, the most industrialized country in the world and the country in which Marx lived, remained silent and inactive. Occasionally the British working classes seemed to stir, but no attempt to form a proletarian party ever got beyond the preliminary stages. In the spring of 1881 Marx tried to bring the trade union leaders into contact with the radical politicians. Engels, optimistic as ever, already visualized a 'proletarian-radical party' led by Joseph Cowen, M.P. for Newcastle, 'an old Chartist, half, if not a whole communist and a very fine fellow'. A year later he wrote to Kautsky: 'There is no workers' party here, there are only conservatives and liberal-radicals.'[24] Yet Marx's ideas gradually penetrated even in England. The first and by far the most important English Marxist was H. M. Hyndman. He had read *Das Kapital* in French and was converted at once. He attached himself to Marx, they frequently exchanged visits, and at Marx's quiet retreat in Maitland Park Road, they would often talk till late into the night. But in the summer of 1881 the friendship abruptly terminated. Hyndman wrote a book, *England for All*, in which he popularized *Das Kapital* and did so very well. But he did not mention Marx's name, though he incidentally remarked that he owed a great deal to an important thinker. Marx took this seriously amiss and refused to accept the excuse that Englishmen did not like being taught by foreigners. Hyndman was a vain man, with a strong inclination to political adventurism, and his silence about Marx was not due to objective reasons alone. Hyndman's alleged sole motive for silence about Marx was paralleled by Guesde, who gave the same reason for asking Malon to give out his programme, which Marx had cooperated in drafting, as his own. Hyndman said that Engels's jealousy was to blame for the breach. Objective and personal reasons may have been combined. To the end of his life Marx remained practically unknown in England.

The old International was incapable of resurrection. In February 1881 Marx wrote to Domela Nieuwenhuis, the Dutch socialist, that the right moment for the formation of a new workers' association had not yet come.[25] But the right moment was drawing nearer every year. The old General Council was dead, and the new was only in the making. There were no congresses, no resolutions to which the movements in the various countries could adhere. But Marx was alive. His significance for the proletarian movement after the dissolution of the International cannot be better illustrated than by a few sentences from a letter Engels wrote to Bernstein in October 1881.

By his theoretical and practical work Marx has acquired such a position that the best people in the workers' movements in the various countries have full confidence in him. They turn to him for advice at decisive moments, and generally find that his advice is the best. He holds that position in Germany, France and Russia, not to mention the smaller countries. Marx, and in the second place myself, stand in the same relation to the other national movements as we do to the French. We are in constant touch with them, insofar as it is worthwhile and opportunity is provided, but any attempt to influence people against their will would only do harm and destroy the old trust that survives from the time of the International. In any case, we have too much experience in revolutionary matters to attempt anything of the sort. It is not Marx who imposes his opinions, much less his will, upon the people, but it is they who come to him. That is what Marx's real influence, which is of such extreme importance for the movement, depends on.[26]

Marx issued no orders and set no patterns which the class war should follow. Just as he believed the idea of commanding the European workers' movement from London to be absurd, so did he obstain from devising a plan of action that should be valid for all countries and all times. The speech he made at Amsterdam after the Hague congress has already been mentioned. It had an unusual fate. When it appeared in the *Volksstaat* in October 1872, those passages in which Marx spoke of

force as the lever of the revolution in most continental countries were missing. It had been necessary to omit them for fear of police persecution. In recent years it has again been quoted, but once more in abbreviated form, though needlessly now, and this time the omitted passage is that in which Marx spoke of the possibility of a peaceful seizure of the state power by the proletariat in England and America. Only the whole speech is the whole Marx. In 1881, the year in which Marx welcomed the Russian terrorists' attempted assassination of the Tsar, he said to Hyndman:

If you say that you do not share the views of my party for England I can only reply that that party considers an English revolution not necessary but – according to historic precedence – possible. If the unavoidable evolution turns into a revolution, it would not only be the fault of the ruling classes, but also of the working class. Every pacific concession of the former has been wrung from them by 'pressure from without'. Their action kept pace with that pressure and if the latter has more and more weakened, it is only because the English working class know not how to wield their power and use their liberties, both of which they possess legally. In Germany the working class were fully aware from the beginning of their movement that you cannot get rid of a military despotism but by a revolution. England is the one country in which a peaceful revolution is possible, but [he added after a pause] history does not tell us so.

Hyndman quoted this conversation correctly.[27] Three years after Marx's death Engels wrote in the foreword to the English translation of *Das Kapital*:

Surely, at such a moment the voice ought to be heard of a man whose theory is the result of a life-long study of the economic conditions of England, and whom that study led to the conclusion that at least in Europe, England is the only country where the inevitable social revolution might be effected entirely by peaceful and legal means. He certainly never forgot to add that he hardly expected the English ruling classes to submit without a 'pro-slavery rebellion' to this peaceful and legal revolution.

The proletariat would win, peacefully perhaps in the

countries where there was an old and deeply-rooted democracy, but by force in those countries that were in the hands of despotism. When his daughter Jenny gave birth to a son in April 1881, Marx wrote to her:

My 'women folk'[28] hope that the 'newcomer' will increase the 'better half' of humanity, so far as I am concerned at this turning point in history, I favour children of the masculine sex. They have before them the most revolutionary period mankind has ever known. It is bad to be an old man at this time, for an old man can only foresee instead of seeing.

With this unflinching confidence Karl Marx died.

His was a painful dying but an easy death. Both his elder daughters lived in France. Jenny was married to Charles Longuet, Laura to Paul Lafargue. Eleanor, known to everyone as Tussy, looked after her parents. Marx was ill and his wife was wasting away with an incurable cancer. In summer 1881 they visited Jenny Longuet at Argenteuil. Frau Marx came back to London in a state of collapse, was confined to bed and died on 2 December 1881. For a long time Marx had known she was incurable, but her death was a heavy blow. 'The Moor has died too,' Engels said when he received the news of Frau Marx's death.

Marx was forbidden to attend the funeral, being bedridden after an attack of pleurisy. As soon as he was well enough to travel the doctors sent him to the south. At the end of February 1882 he went to Algiers but succumbed to pleurisy again. An exceptionally cold winter and a wet spring aggravated his condition. He went to Monte Carlo in the hope of an improvement, but succumbed to pleurisy for the third time. Not until he reached Argenteuil and later Lake Geneva did he recover sufficiently to be able to return to England. London fog drove him to the Isle of Wight. He caught cold again, had to keep to his room for a long time, tortured by a cough and barely sleeping four hours a night.

Jenny Longuet died unexpectedly in Paris on 11 January 1883. Marx hurried back to London. He scarcely spoke for

days He put up no more resistance to the advance of illness Laryngitis made it almost impossilbe for him to swallow. He died on 14 March 1883 of a pulmonary abscess Engels wrote to the faithful Sorge:

For the past six weeks I was in mortal terror as I turned the corner each morning lest I should find the blinds pulled down Yesterday afternoon at half past two, the best time of day for visiting him, I went there The whole house was in tears, it seemed to be the end I made inquiries, tried to find out what was happening, to console There had been a slight haemorrhage, but then there had been a sudden collapse Our excellent old Lenchen, who had nursed him better than a mother, came down He was half asleep, and she said I could go up with her When we entered the room he lay there asleep, never to reawaken His pulse and breathing had stopped In those two minutes he had peacefully and painlessly passed away [29]

He was buried in the cemetery at Highgate on 17 March Liebknecht spoke for the German workers, Lafargue for the French workers, Engels for the workers of the world.[30]

His name and his work will re-echo down the centuries

Appendix I

MARX'S ANTECEDENTS AND HIS ATTITUDE TO JUDAISM

VARIOUS authors have taken an interest in Marx's antecedents.[1] The question arises whether Marx suffered from anti-Semitism, and in particular whether he experienced any hostility from the Westphalen family in this respect. Whatever the reality may have been, the appearances are that he did not. The reader will have noted on p. 70 that he denied his son-in-law Charles Longuet's allegation of 'race prejudice'. Let us quote the letter he wrote to his daughter Jenny Longuet on 7 December 1881 after Jenny Marx's death:

> Je reçois à l'instant *La Justice* du 7 décembre, où je trouve, dans la rubrique 'Gazette du jour', une notice nécrologique disant entre autres: 'On devine que son (*il s'agit de votre mère*) *mariage* avec Karl Marx, fils d'un avocat de Trèves, *ne se fit pas sans peine*. Il y avait à vaincre *bien des préjugés, le plus fort de tous étant le préjugé de race*. On sait que l'illustre socialiste est d'origine israélite.' Toute cette histoire is a *simple invention*, there was *no préjugés à vaincre*. I suppose I am not mistaken in crediting Mr Ch. Longuet's inventive genius with literary 'enjolivement'.[2]

Let us recall that some of his opponents, such as Ruge, Proudhon, Bakunin, and Dühring, attacked him as a Jew.

In May–June 1843, finding the view of Bruno Bauer 'too

1. Notably B. Wachstein, 'Die Abstammung von Karl Marx', *Festskrift i anledning af Professor David Simonsen 70-aarige fodselsdag*, Copenhagen, 1923, p. 277 ff.; E. Lewin-Dorsch, 'Familie und Stammbaum von Karl Marx', *Die Glocke*, Berlin, 1923, ninth year, I, p. 309 ff., 340 ff.; H. Horowitz, 'Die Familie Lwow', *Monatschrift für Geschichte und Wissenchaft des Judentums*, Frankfurt, 1928, p. 487 ff.; A. Cornu, 1955, vol. I, p. 54; W. Blumenberg, 1962, ch. I.
2. MEW, XXXV, p. 241 f.

abstract' and notwithstanding his aversion to the 'Jewish faith', he supported a petition to the Rhenish Diet for equality of civil and political rights for the Jews [3]

Marx has been held to have been anti-Semitic, not only because of certain passages in *The Jewish Question* (1844), but also because of personal antipathies to which his correspondence testifies Calling Lassalle a 'Jewish Negro'[4] did not show any great delicacy in this respect Such intemperate language was not unusual in the working-class movement, in which Jews often identified themselves with capitalists In this matter progressives tended to be at one with the chauvinist bourgeoisie

On the core of the problem, let us quote Engels's view of the matter, which we can assume to have been also that of Marx

> Anti-Semitism is nothing but a reaction of medieval and declining social strata against modern society, which essentially consists of capitalists and wage-earners; it merely serves reactionary aims under a socialist cloak, it is merely a debased form of feudal socialism with which we must have nothing whatever to do If its existence is possible in a country, it shows it does not have enough capital [It] falsifies all the realities of the problem It does not even know the Jews it bawls at There are thousands and thousands of Jewish proletarians Besides, we owe only too much to the Jews As for myself, whom the *Gartenlaube* [a weekly] has turned into a Jew, I should, if I had to choose, rather be a Jew than a 'Herr von' [5]

Nevertheless Marx's phraseology has been the cause of concern to some readers, such as S Bloom,[6] an Israeli author, E Silberner, claims there is an 'anti-Semitic tradition in modern socialism, in which Marx occupies a central position' [7]

3 cf Helmut Hirsch, *Archiv fur Sozialgeschichte*, vol VIII, 1968

4 Letter to Engels, 30 July 1862, MEW, XXX, p 257

5 Letter dated 19 April 1890, published by the Vienna *Arbeiter Zeitung*, 9 May 1890 MEW XXII, p 45

6 Solomon F Bloom, 'Karl Marx and the Jews', *Jewish Social Studies*, IV, January 1942

7 Edmund Silberner, 'Was Marx an Anti-Semite?', *Judaica*, XI, April 1949.

W. Blumenberg replies to these suspicions by denying that Marx was an anti-Semite, but claims, as certain psychologists have done, that he was characterized by a typical 'self-hatred'.[8] M. Rubel was not far from believing this.[9] Arnold Kunzli devotes a whole chapter to this alleged *Selbsthass*, this 'Jewish self-hatred' which we mention here merely for the sake of completeness.[10]

Since we here enter the field of psychological inference, we must mention the position adopted many years ago by Gustav Mayer in 'The Jew in Karl Marx'. Though Marx, who was baptized at the age of six, knew nothing of the 'psychical and spiritual treasures of Judaism' and hid his personal problems behind a screen of discretion (what does an individual amount to, after all, to a believer in historical materialism?), the question nevertheless arises – though we must not exaggerate its implications – of what was the motivation of 'his interpretation of his own origins'. In *The Jewish Question* he denounces 'Jewish trafficking'. Why confuse this with Jewish religiosity? Why this caricature, this bias, this lack of historical and psychological understanding? To G. Mayer, Marx, without being conscious of it, embodies the 'primal force' (*Urkraft*) that 'assures Judaism its high rank in the history of humanity', his models, though he was unaware of it, were the prophets of Israel; like them, he had faith in the ascent of humanity, and accordingly he must not be treated as a destroyer and denier of values, a *Wertnihilist*, for his thought was merely clothed in scientific form, and the emancipation of the proletariat was a genuine prophetical idea. To Franz Mehring, however, *The Jewish Question* reveals a man 'liberated from all bias (*Gefangenheit*), from all Jewish preoccupation'. Thus G. Mayer differs from Marx's biographer.[11]

8 Blumenberg, *Marx*, 1962, pp. 86–7.

9. *Biographie intellectuelle*, 1957, p. 88.

10. A. Kunzli, *Karl Marx, eine Psychographie*, Europa Verlag, 1966, p. 195 ff.

11. G. Mayer, 'Der Jude in Karl Marx', *Neue jüdische Monatshefte*, vol. II, Berlin, 1917–18. The article is reprinted by Albert Massiczek as an appendix to his *Der menschliche Mensch. Karl Marx' jüdischer*

The most recent commentators consider that Marx was aiming through the Jewish religion at a certain way of living. The bourgeoisie, whether Christian or Jewish, made money a universal power, and their God was 'practical need, egoism'. The 'Jews' of *The Jewish Question*[12] are, for instance, the Christians of America who prostrate themselves in the face of money, as Marx read about them in Hamilton, Beaumont and Tocqueville; in fact they were the bourgeoisie in general, in relation to whom Heine said: 'Money is the god of our time and Rothschild is his prophet.' Thus the appropriate term here is anti-Judaism – and anti-Christianism.[13]

Humanismus, Europa Verlag, Vienna, 1968 This author sets out to establish a 'basic Jewish personality' (using the methods of the Linton and Kardiner school of anthropology) and goes on to present us with a 'radically different' Marx, who 'can be understood only as a Jew' The view that Marx was a prophet and not a scientist has of course been maintained by many authors, e g, Albert Camus

12 Zur Judenfrage 1 Bruno Bauer, *Die Judenfrage* 2 Bruno Bauer, 'Die Fahigkeit der heutigen Juden und Christen, frei zu werden', *Deutsch-Franzosische Jahrbucher*, I-II, Paris, February 1844 MEW, I, p 372

13 Helmut Hirsch, 'Marxiana judaica I, Les sources américaines de *La Question juive* II, Les sources judaiques III, L'antijudaisme comme source de *La question juive*', *Études de Marxologie*, Économies et Sociétés, August 1963 cf. ibid, Roman Rosdolsky's 'La *Neue Rheinische Zeitung* et les Juifs' cf also D McLellan, 1969 (see Appendix II)

Appendix II

'TRUE SOCIALISM'

A number of references to 'true' socialism are made in the course of this work (pp. 20, 110, 218, etc). What is meant by this is the speculative socialism 'translated' from the French, which was concerned to put an end to the 'alienation' of man, tended to rise above the level of concrete situations, and spread among the German petty bourgeoisie. After the attacks made on it in *The German Ideology*, the description of it in the Communist Manifesto, III, c will have been recognized.

Engels and Marx attacked this chimera from the beginning of 1847, at the end of which the Manifesto was composed. Engels wrote an MS. called *The True Socialists*.[1] In September Marx commented sharply on a book by Karl Grün in an article called 'The Historiography of True Socialism'.[2] Then Engels attacked Karl Beck and Karl Grün in a series of articles called 'German Socialism in Verse and Prose'.[3]

On the struggle against 'true socialism', cf. Herwig Forder, *Marx und Engels am Vorabend der Revolution*, Akademia Verlag, Berlin, 1960.

This school of thought has been studied by a number of modern authors:

D. Koigen, *Zur Vorgeschichte des modernen philosophischen Sozialismus in Deutschland*, Berne, 1901.

1 *Die wahren Sozialisten*, unpublished until 1932. MEW, IV, pp. 248–90.

2 'Karl Grün, *Die soziale Bewegung in Frankreich und Belgien* (Darmstadt, 1845), oder Die Geschichtsschreibung des wahren Sozialismus', *Westfalisches Dampfboot*, August–September 1847. Marx thought of using this article as a supplement to *The German Ideology*. MEW, III, pp. 473–520.

3 'Deutscher Sozialismus in Versen und Prosa', *Deutsche Brusseler Zeitung*, 12 September 1847 and 9 December 1847. MEW, IV, pp. 207–47.

A. Cornu, 'German Utopianism: "True" Socialism', *Science and Society*, 12, 1948; *K. Marx et F. Engels*, 1958, vol. II
John Weiss, *Moses Hess, Utopian Socialism*, Detroit, Wayne State University Press, 1960
Lloyd D. Easton, 'Alienation and History in the early Marx', *Philosophy and Phenomenological Research*, 22, 1961.
Émile Bottigelli, *Genèse du socialisme scientifique*, Éditions Sociales, Paris, 1967
David McLellan, *The Young Hegelians and Karl Marx*, Macmillan, 1969

Appendix III

COULD MARX DISSOLVE THE COMMUNIST LEAGUE?

THE authors state on p. 174 that Marx 'made use of his discretionary powers and dissolved the League' in May–June 1848. This statement relies on a document not produced in the English first edition, the deposition made by Peter Gerhardt Roser, president of the Cologne Association of Workers, who was convicted at the trial of Cologne communists in 1852–3. Roser agreed to making some disclosures, no doubt having been cornered into seeking an agreement with the police. (Incidentally, it is worth noting that the case was followed very carefully by the Prussian Minister of the Interior, who was no other than Ferdinand von Westphalen, Jenny Marx's brother.) Röser declared, and Nicolaievsky fully accepted his statement, that Marx did not want the adventure in which men like Willich and Schapper were involving themselves.[1] This refusal was associated with a general appreciation of the period and the chances of the revolutionary movement. According to Nicolaievsky, another document tends 'fully to confirm Roser's story'. This is a statement by Marx himself: 'We devote ourselves to a party which – so much the better for it – cannot yet take power. If it did so, it would take measures which would be not directly proletarian, but petty bourgeois. Our party will be able to attain power only when conditions enable it to carry out *its* ideas.'[2]

1 cf. above, pp. 229–30. B. Nicolaievsky used the document as an annex to the German (abbreviated) edition of the present work, *Karl und Jenny Marx*, Berlin, 1933, pp. 149–62.

2 Report of the last meeting of the central committee (*Central-Behorde*) of the League, London, 15 September 1850. Marx was referring to the changing of the rules of the League in 1848. (Document preserved at the International Institute of Social History, Amsterdam.)

These facts and statements carried weight in Nicolaievsky's mind, and later he did not hesitate to write. 'For the history of the League and the years 1848–9 in Marx's life is the first question to be studied'; he said that the present biography had 'far from exhausted the question' (article of 1961 cited below), and he criticized various Soviet historians for failing to draw attention to it 'because of party-political considerations'[3]

One of these historians, E P Kandel, whose works on Marx's early years and the League are authoritative in Russia,[4] declared that the deposition by the traitor Roser was valueless; that Roser, in betraying his friends, tried to minimize the role played by some of them, and that accepting the view that the League was dissolved meant accepting 'the Menshevik interpretation of Marx's and Engels's policy in 1848–9'. Kandel claims that if the League disintegrated in 1848, this was only temporary, and 'it continued to exist in the form of ideological and political leadership' in the *Neue Rheinische Zeitung*, the editors of which were Marx and Engels, and it then 'continued to live in the party cadres, the members of the League, who locally organized and directed the associations of workers'[5]

Nicolaievsky regarded this as laying down the official Soviet position Marx, as the predecessor of Lenin, having in mind a 'new kind of party' based on 'professional revolutionaries', would never have dreamt of dissolving his organization. On the other hand, the historian could not ignore this document 'Without Roser, the history of the League in the years of the

3. B Nicolaievsky, 'Toward a History of the Communist League, 1847–1852', *International Review of Social History* (published by the International Institute of Social History, Amsterdam), Part II, 1956, pp 234–52 The discussion of this point is on p 237

4 E P Kandel, *Marx and Engels The Organizers of the Communist League*, Moscow, 1953 B Nicolaievsky (1961) also attributed to him the article on the 'Communist League' in the *Great Soviet Encyclopaedia*, 2nd ed, 1958

5 E P Kandel, 'The distortion of the history of Marx's and Engels's struggle for the proletarian party in the works of certain right-wing socialists', *Voprosy Istorii*, 5, 1958.

revolution would remain a series of incomprehensible movements, tossed by every wind.' Now, all that the Soviet historians seem to know of the document is that part of it which was published by Nicolaievsky in the 1933 German edition of his work; in it he printed an unpublished passage where Roser repeated the contents of a letter from Marx The passage is as follows

In conclusion, I should like to add this It is alleged that both Marx and Schapper want communism This does not alter the fact that they are opponents or even enemies as soon as it comes to the methods by which communism is to be attained The supporters of Schapper and Willich want communism introduced at the present stage of development, if necessary by force of arms, in the course of the imminent revolution To Marx, communism is possible only as a result of an advance in education and general development, in one of the letters he addressed to us he distinguished the four phases through which it will be necessary to pass before it is achieved He says that from now to the next revolution the petty bourgeoisie and the proletariat march together against the monarchy They will not carry out that revolution themselves, but it will result from class relations and will arise from poverty The periodical commercial crises will make it inevitable After the next revolution, the petty bourgeoisie having acceded to power, the communists will begin their own action and will go over to the opposition Then the social republic will come, followed by the socialist–communist republic, and finally the ground will be cleared for a purely communist republic [Deposition of 3 January 1854]

However that may be, so far as Nicolaievsky was concerned, the central committee disintegrated in May–June 1848 because of the dissension between two main groups, the 'communist democrats' who followed Marx, and the leaders of the former League of the Just Thus the Communist League had reached an *impasse*, and Marx merely 'cut the Gordian knot' No contradiction with the activity in London should be seen in this; it was the result of the activity of the former leaders of the League of the Just, who did not give up hope of reaching

agreement again with Marx's group, as was to be seen in 1850[6]

Claiming that the organization was formally dissolved, or stating more simply that the proposal to dissolve it was followed by its dissolution *de facto*, presents us with one concept of the organization and its tasks, claiming that its existence was continuous presents us with another. That seems to be the essence of this controversy, into which we shall not enter further here

All that needs be added is that E. P. Kandel replied, maintaining his previous stand,[7] that W Blumenberg published the complete text of Roser's deposition, inclining, in spite of some reservations about the insufficiency of the documents, to grant him 'credibility',[8] and finally that other evidence is quoted in an article by S Na'aman which temporarily closes the discussion[9]

In conclusion, it may be hoped that the following lines written by Marx himself in 1860 will not be overlooked 'When the February revolution broke out, the central committee in London entrusted me with control (*Oberleitung*) of the League During the period of the revolution in Germany, its activity died of itself, since more effective ways of attaining its ends presented themselves'. Later Marx speaks of the 're-constitution' of the League in London[10]

6 B. Nicolaievsky, 'Who is distorting history? *Voprosy Istorii* and K Marx in 1848–1849', *Proceedings of the American Philosophical Society*, vol 105, no 2, Philadelphia, April 1961

7 E P Kandel, 'Eine schlechte Verteidigung einer schlechten Sache', *Beitrage zur Geschichte der Arbeiterbewegung*, V/2, Berlin, 1963

8 Werner Blumenberg, 'Zur Geschichte des Bundes der Kommunisten, die Aussagen des Peter Gerhardt Roser', *International Review of Social History*, vol IX, 1964, p 81 ff

9 Shlomo Na'aman, 'Zur Geschichte des Bundes der Kommunisten in der zweiten Phase seines Bestehens', *Archiv fur Sozialgeschichte*, V, Hanover, 1965

10 *Herr Vogt*, MEW, XIV, p 439 f

Appendix IV

WORKS OF BAKUNIN AND SELECTED BIBLIOGRAPHY OF WORKS ABOUT HIM

Marx's and Engels's writings about Bakunin can be consulted in part in *Contre l'anarchie*, Paris, 1935, in particular Marx's notes, 'Statism and Anarchy', on Bakunin's ideas about the state, the dictatorship of the proletariat and the agrarian question. See below, 1959

Bakounine, *Œuvres*, Stock, Paris, 1895-1913, 6 vols

Albert Richard, 'Bakounine et l'Internationale', *Revue de Paris*, September 1896

Pisma M. A Bakunina, Geneva, 1896 (Correspondence)

Correspondance, ed Michel Dragomonov, translation (not very reliable) by Marie Stromberg, Perrin, Paris, 1896

Max Nettlau, *The Life of Michel Bakounine* (German, *Michael Bakunin. Eine Biographie*). Privately printed by the author, London, 1896–1900, 3 vols

J Guillaume, *L'Internationale*, 1905–10, quoted *passim*

Eduard Bernstein, *Karl Marx und Michael Bakunin*, Tubingen, 1910.

Fritz Brupbacher, *Marx und Bakunin*, 1913.

N. Riazanov, 'Sozialdemokratische Flagge und anarchistische Ware. Ein Beitrag zur Parteigeschichte', *Die Neue Zeit*, XXXII, vol I, no 9, 28 November 1913, p 332 ff, no 10, 5 December 1913, p. 360 ff

G M Steklov, *M A Bakunin, his life and work* (in Russian), 1926–7, 4 vols

Arthur Lehning, 'Marxismus and Anarchismus in der Russichen Revolution', *Die Internationale*, Berlin, 1929

M Bakounine, *Confession (1857)* Traduite du russe par Paulette Brupbacher, avec une Introduction de Fritz

Brupbacher et des annotations de Max Nettlau Rider, Paris, 1932.

Benoît-P Hepner, *Bakounine et le panslavisme révolutionnaire Cinq essais sur l'histoire des idées en Russie et en Europe*, Rivière, Paris, 1937

E. H Carr, *Michael Bakunin*, London, 1937.

H E Kaminski, *Bakounine, la vie d'un révolutionnaire*, Aubier, Paris, 1938

Fritz Brupbacher, 'Marx et Bakounine' (translation of the 1913 version), *Socialisme et Liberté*, Éditions de la Baconnière, Neuchâtel, 1955

Eugène Pyziur, *The Doctrine of Anarchism of Michael Bakunin*, Marquette University Press, 1955

Henry Mayer, 'Marx on Bakunin', *Études de marxologie*, no 2, 1959 English version of the notes on 'Statism and Anarchy'.

Michele Bakunin, *Scritti napoletani* (1864–7), ed P C. Masini, Bergamo, 1963

Archives Bakounine, édition établie pour l'Institut international d'Histoire sociale d'Amsterdam par Arthur Lehning In course of publication, E J. Brill, Leyden, since 1961. Four vols. published.

La Liberté, selected writings, 1965

Daniel Guérin, *L'Anarchisme*, Gallimard, Paris, 1965

Various items on and by Bakunin in D Guérin, *Ni Dieu ni maître, anthologie historique du mouvement anarchiste*, Éditions de Delphes, Paris, 1966; republished, La Cité, Lausanne, 1969 (pp 164–275).

A Lehning, 'La lutte des tendances au sein de la Première Internationale Marx et Bakounine', *La Première Internationale. l'institution, l'implantation, le rayonnement* Colloques internationaux du C.N R S , Paris, 1964, published in 1968

Pierre Ansart, *Marx et l'anarchisme*, Presses Universitaires de France, 1969

Daniel Guérin, *Pour un marxisme libertaire*, Laffont, Paris, 1969.

Appendix V

MARX AND RUSSIA

We have seen that Marx always took a lively interest in Russian politics – his anti-Tsarism made it a largely hostile interest, mounting, in the eyes of Bakunin, for instance, to 'explicit Russophobia and implicit Slavophobia'.[1]

Such a picture would be misleading unless supplemented by a brief reminder of Marx's influence in Russia. The reader will recall his relations with Annenkov, for instance, and Bakunin himself, it is generally agreed, was the first Russian translator of the Communist Manifesto (1859); Bakunin also tried to translate *Das Kapital*. Marx was not lacking in Russian readers, both of *The Poverty of Philosophy* and *The Critique of Political Economy*.[2] By an 'irony of fate', as he wrote to Engels, the first proposal to publish a translation of *Das Kapital* came from Russia, through a 'populist' socialist, the

1 In connection with the last paragraph of the *Inaugural Address* of 1864, speeches made in 1871 and quoted by A. Lehning in his article of 1968 (cf. Appendix IV). To the titles already cited there may be added Paul W. Blackstock and Bert F. Hoselitz, *The Russian Menace to Europe. A Collection of Articles, Speeches, Letters and News Dispatches*, Free Press, Illinois, 1952, covering the whole period 1848–90. The articles of 1835–50 have been studied by M. Rubel, *Marx et Engels devant la révolution russe*, Payot, Paris, not yet published; cf. also L. Netter, introduction to the *Nouvelle Gazette Rhénane* [*Neue Rheinische Zeitung*], Éditions Sociales, 1963, pp. 22–3. Note also the articles published in 1865 in the *Free Press*, 'Revelations on the History of Diplomacy in the Eighteenth Century', cf. the Bibliography, 'Hepner' and 'Hutchinson', and pp. 246–7 above. Complete bibliography of these writings in H. Krause, *Marx und Engels und das zeitgenössische Russland*, Giessen, 1958.

2 Let us mention the artisan-philosopher Joseph Dietzgen, who made a close study of *The Critique* and of *Das Kapital*, as he wrote to Marx from St Petersburg on 5 November 1867.

economist Danielson, who, after H Lopatin gave up the task, translated and published it in 1882[3] Though he disliked Herzen as a follower of Proudhon (who also exercised great influence in Russia), he was not drawn towards the Russian socialists who called themselves 'Marxists' He admired Chernichevsky, who was arrested and exiled in 1862, and in 1869 he began learning Russian in order to be able to read his writings, as well as those of Flerovsky[4] Most of his correspondents were *narodniki,* or populists, but they also included Lavrov, who was a Proudhonian,[5] as well as Tkatchev and Mikhailovsky[6]

Marx criticized the attitude of the Russian liberals from as early as 1858 'To declare themselves opposed to serfdom, but to accept emancipation only on conditions that make it an imposture ' (*New York Tribune,* 19 October 1858, 29 December 1858, 17 January 1859)

In 1874 Tkatchev wrote to Engels that he seemed to make little of the revolutionary merits of the *obshchtina,* the Russian peasants' commune The Russian people, he said, was 'communist by instinct, by tradition', Russia had no bourgeoisie, and the state was powerless 'An easier and more agreeable revolution could not be imagined', Engels replied[7]

Here we recognize the great subject of debate among the populists Could Russia build a communal society on the ancient foundations of collective land ownership (the *mir*)? Or was capitalism a stage that was universally necessary?

3 Marx conducted a protracted correspondence with his translator cf *Die Briefe von K Marx und F Engels an Danielson (Nicolai-on),* letters published by G Mayer and Kurt Mandelbaum, Leipzig, 1929 cf M Rubel, 'La Russie dans l'œuvre de Marx et d'Engels Leur correspondance avec Danielson', op cit

4 N Flerovsky, *The Situation of the Working Class in Russia,* 1869

5 About twenty letters, from 1871 to 1882, MEW, XXX

6 On Russian populism cf Venturi's basic work, *Il populismo russo,* 1952 See also *Populism,* ed G Ionescu and E Gellner The Nature of Human Society, Weidenfeld & Nicolson, 1969

7 Engels replied for Marx and for himself 'Soziales aus Russland', *Der Volksstaat,* 1875 French translation by M Rubel in *Économies et Sociétés,* op cit

Mikhailovsky submitted the problem to Marx, who replied in French.[8]

The problem of primitive institutions had been long familiar to Marx and he did a great deal of reading on the subject, including M Kovalevsky's book on *Communal Property* in Russia, which was sent him by the author in 1879.

Among the Russian populists a number of theorists were beginning to stand out, including Axelrod, Deutsch and the Plekhanov of *Socialism and the Political Struggle*[9] The militant revolutionary Vera Zassoulitch, who had taken refuge in Geneva after making an assassination attempt and was an associate of these men, wrote to Marx in their name on this 'question of life or death' Was the *mir*, the rural commune, viable or not? Should the revolutionaries struggle for its liberation or disinterest themselves in it to devote themselves to the town workers? Her letter provided the occasion for this most remarkable reply by Marx · 'To save the Russian commune a Russian revolution will be necessary '[10] The Russian commune did not of course survive 1917.

8. 'L'avenir social de la Russie', posthumously published by V Zassoulitch in 1884. La Pléiade, II, pp 1552-5 cf M Rubel, op. cit

9 cf Dietrich Geyer, *Lenin in der russischen Sozialdemokratie*, Cologne, 1962, pp. 16–35; *Revolutionary Russia*, ed R Pipes, Harvard, 1968

10. Letter of Vera Zassoulitch to Marx of 16 February 1881, reply and rough notes for it, 8 March 1881 La Pléiade, II, pp. 1556–73. Engels later sent to Zassoulitch the reply to Mikhailovsky quoted above M Rubel, op cit. On this point, cf Part VIII of *Das Kapital* on 'primitive accumulation', end of ch. XVI; and Marx's and Engels's foreword to the new Russian edition of the Communist Manifesto, 1882, La Pléiade, I, p 1483 Other documents in *Économies et Sociétés*, July 1969 cf also K Papaioannou, 'La Russie et l'Occident', *Le Contrat social*, XII, nos 1 and 2–3, 1968.

Bibliography

I BIOGRAPHICAL

(a) *Chronology*

Karl Marx Chronik seines Lebens in Einzeldaten, Marx-Engels-Lenin Institute, Moscow, 1934 (based on documents previously assembled by D Riazanov)

'Chronologie' established by M Rubel, in K Marx, *Œuvres*, La Pléiade, vol 1, 1963.

B Andreas and W Monke, 'Neue Daten', *Archiv fur Sozialgeschichte*, VIII, 1968

Marx-Chronik Daten zu Leben und Werk. Assembled by M Rubel, Carl Hanser Verlag, Munich, 1968

(b) *Some Lives of Marx and Engels*

SPARGO, J

Karl Marx, his Life and Works, New York, 1912

MEHRING, FRANZ

Karl Marx. Geschichte seines Lebens, Dietz, Stuttgart, 1918, 5th ed , Leipzig, 1933, re-editions Zurich, 1946, F Mehring, *Gesammelte Schriften*, vol III, Dietz, Berlin, 1960. French version in preparation, Maspéro, Paris

RIAZANOV, DAVID

Karl Marx, homme, penseur et révolutionnaire, Éditions Sociales Internationales, Paris, 1927 Photographic reimpression, Anthropos, Paris, 1968

RUHLE, OTTO

Karl Marx, Leben und Werk, Avalun Verlag, Dresden, 1928

VORLANDER, KARL

Karl Marx, sein Leben und sein Werk, Leipzig, 1929

NICOLAIEVSKY, BORIS, and MAENCHEN-HELFEN, OTTO

Karl und Jenny Marx Ein Lebensweg, Berlin, 1933

Karl Marx, Man and Fighter, English translation by G. David and E Mosbacher, Methuen, 1936, Lippincott, Philadelphia, 1937 (This volume is a republication of this edition)

Karl Marx, Gallimard, Paris, 1937

Karl Marx, L'homme et le lutteur, revised ed , Gallimard, Paris, 1970

Karl Marx, Eine Biographie, Dietz, Hanover, 1963. Italian, Dutch, Swedish and Czech editions.

MAYER, GUSTAV

Friedrich Engels, eine Biographie, 2 vols, M. Nijhoff, The Hague, 1934.

CARR, E H.

Karl Marx. A study in fanaticism, Dent, 1934

CORNU, AUGUSTE

Karl Marx, l'homme et l'œuvre De l'hégélianisme au matérialisme historique (1818–1845), Alcan, Paris, 1934, *La Jeunesse de Karl Marx*, Presses Universitaires de France, Paris, 1934 Revised version in *Karl Marx et Friedrich Engels, leur vie et leur œuvre*, Presses Universitaires de France, Paris, Vol. I. *Les Années d'enfance et de jeunesse La Gauche hégélienne (1818/1820–1844)*, 1955, Vol. II *Du libéralisme démocratique au communisme. La 'Gazette rhénane'. Les 'Annales franco-allemandes' (1842–1844)*, 1958

RUBEL, MAXIMILIEN

K. Marx, Essai de biographie intellectuelle, Paris, 1957

BERLIN, ISAIAH

Karl Marx His Life and Environment, Oxford University Press, 1939. French version, *Karl Marx*, translated by Anne Guérin and P. Tilche, Gallimard, Paris, 1962

BLUMENBERG, WERNER

K. Marx in Selbstzeugnissen und Bilddokumenten, Rowohlt Monographien, Reinbek bei Hamburg, 1962 French version, *Marx*, translated by R. Laureillard, Le Mercure de France, Paris, 1967

LEFEBVRE, HENRI

Karl Marx, sa vie, son œuvre, avec un exposé de sa philosophie, Presses Universitaires de France, Paris, 1964

II THE WORKS OF MARX AND ENGELS

BIBLIOGRAPHY

In general, reference has been made to two works by

RUBEL, MAXIMILIEN

Bibliographie des œuvres de Karl Marx, avec en appendice un Répertoire des œuvres de Frédéric Engels, Marcel Rivière, Paris, 1956

Supplément à la *Bibliographie des œuvres de K Marx*, Marcel Rivière, Paris, 1956.
References to other works in the footnotes *passim*

WORKS QUOTED

(a) *Original text Complete editions*
The two major sources are

MEGA (Marx–Engels Gesammtausgabe) Published under the editorship of D Riazanov from 1927 onwards Interrupted in 1932 Thirteen volumes published (Marx–Engels Institute, Moscow)

MEW (Marx–Engels, *Werke*) Publication begun in 1957, forty-three volumes have appeared Institute for Marxism-Leninism, Dietz, Berlin It is to this edition that the reader is generally referred in the footnotes

(b) *Original version Partial editions*
A number of works consisting largely of collections of letters and articles are listed below Reference has been made in principle to the most recent publications, and most of them are classified under the name of the editor

(c) *French version Complete editions*

OE C *Œuvres complètes de Karl Marx*, translated by Jules Molitor, A Costes, Paris This series, published from 1923 onwards, includes a number of philosophical works and letters, as well as the *Œuvres complètes de Frédéric Engels*, translated by Bracke (Desrousseaux) and J Molitor

E S I Les Éditions Sociales Internationales, founded in 1931 and interrupted in 1940, published a series of works by Marx and Engels The editors, etc, are generally anonymous

E S Les Éditions Sociales resumed publication of the above from 1945 onwards

La Pléiade Karl Marx, *Œuvres*, edited by Maximilien Rubel, Bibliothèque de la Pléiade, Gallimard, Paris Two volumes have been published 'Économie', I (1963) and II (1968)

(d) *French versions Partial editions*
See under (b)

III HISTORICAL WORKS AND OTHER SOURCES

The following is of course not a complete bibliography, but is intended solely to aid the reader in referring to works quoted in the notes.

(a) *Selected works and periodicals*

Die Neue Zeit, weekly founded by Karl Kautsky in 1883, publication continued until 1923.

Aus dem Literarischen Nachlass von Karl Marx und Friedrich Engels, 1841 bis 1850, ed Franz Mehring, Dietz, Stuttgart, 1902, 4th ed , 1923, 3 vols

Grunberg-Archiv. Abbreviation for *Archiv fur die Geschichte des Sozialismus und der Arbeiterbewegung*, ed Carl Grunberg, Leipzig, 1910–30 cf. in particular 'Neue Beiträge zur Biographie von Marx', X, 1922

Archiv für Sozialwissenschaft und Sozialpolitik, ed , Werner Sombart, Max Weber and Edgar Jaffe, Mohr, Tubingen and Leipzig

Marx–Engels Archiv, Journal of the Institute of Marxism–Leninism, Moscow, ed , D Riazanov, Frankfurt, vol. I, undated, and vol. II, 1927.

IRSH *International Review for Social History*, published by the Institute of Social History, Amsterdam, 1936–9 and 1956 onwards.

Beiträge zur Geschichte der Arbeiterbewegung, Institute of Marxism–Leninism, Berlin, 1958 onwards

Annali dell'Istituto Giangiacomo Feltrinelli, Milan, 1958 onwards

Études de marxologie Published by the Institut de Science économique appliquée, edited by M. Rubel, from January 1959 onwards, this publication is now known as *Économies et Sociétés* (ISEA)

Archiv fur Sozialgeschichte, published since 1960 by the Friedrich-Ebert Institute, Hanover, Verlag fur Literatur und Zeitgeschichte

Karl Marx, 1918–1968 Neue Studien zu Person und Lehre, published by the Institut fur staatsburgerliche Bildung im Rheinland, Mainz, 1968.

(b) *Works quoted.*

ABRAMSKY, C
See COLLINS, H

ADORATSKI, V.
Karl Marx, Eine Sammlung von Erinnerungen und Aufsätzen, Marx-Engels Institute, Moscow, Ring Verlag, 1934

ALTHUSSER, LOUIS
See FEUERBACH

ANDLER, CHARLES
Le Manifeste communiste de K. Marx et F Engels, Introduction historique et commentaire, Rieder, Paris, 1901

ANDREAS, BERT
Responsible for republication of *Kommunistische Zeitschrift, London, 1847* B S D. Limmat Verlag, Zurich, undated.

'Briefe und Dokumente der Familie Marx aus den Jahren 1862–1873', *Archiv fur Sozialgeschichte,* vol II, Hanover, 1962

Le Manifeste communiste de Marx et Engels Histoire et bibliographie, 1848–1918, Giangiacomo Feltrinelli Institute, Milan, 1963

'Zur Agitation und Propaganda des Allgemeinen Deutschen Arbeitervereins 1863–1864', *Archiv fur Sozialgeschichte,* III, 1963 (with a bibliography of Lassalle).

'Marx et Engels et la gauche hégélienne', *Annali dell'Istituto Giangiacomo Feltrinelli,* VII, 1964–5, pp 353–526
See above, section Ia

ANNENKOV, PAUL
See ch 9, note 11

ANSART, PIERRE
See Appendix IV, BAKUNIN

ARTICLES BY MARX AND ENGELS, selections and republications
See AVELING, AVINERI, BOTTIGELLI, CHALONER, CHRISTMAN, DRAPER, DUTT, HEPNER, HUTCHINSON, NETTER, RIAZANOV, RUBEL, TORR See *Œuvres complètes, Œuvres politiques,* see Éditions Sociales, section II(c), above, see also Appendices IV, Bakunin, and V, Russia

AVELING, EDUARD and ELEANOR (E MARX)
ed *The Eastern Question* A reprint of letters written in 1853–6 dealing with the events of the Crimean War, by K Marx, S. Sonnenschein, London, 1897

AVELING, ELEANOR
'A Few Stray Notes', reminiscences written in English and published in German in the *Oesterreichischer Arbeiterkalender fur das Jahr 1895,* Brunn. See ADORATSKI English version in *Reminiscences of Marx and Engels,* Moscow, undated.

K Marx, *Secret Diplomatic History of the Eighteenth Century*, ed. Eleanor Aveling, London, 1899 (see HILPNER, HUTCHINSON)
K. Marx, *The Story of the Life of Lord Palmerston*, ed. Eleanor Marx, London, 1899 (see HUTCHINSON)

AVINERI, SHLOMO
Karl Marx on Colonialism and Modernization. His dispatches and other writings on China, India, Mexico, the Middle East and North Africa Edited with an introduction by S. Avineri, Doubleday, New York, 1968.

BADIA, G , and FRÉDÉRIC, J
See ch. 8, note 12.

BAKUNIN, MICHAEL
See Appendix IV

BEBEL, AUGUST
Aus meinem Leben, 3 vols , Dietz, Stuttgart, 1910-14 See W. BLUMENBERG, 1965.

BERNSTEIN, SAMUEL
'Marx in Paris, 1848 · A neglected chapter', *Science and Society*, New York, III, 3, 1939; IV, 2, 1940.
The First International in America, Kelley, New York, 1962

BESTOR, A E
'Albert Brisbane, propagandist for Socialism in the 1840s', *New York History*, XVIII, April 1947, pp 128–58

BIGLER, ROLF R
Der libertäre Sozialismus in der Westschweiz Ein Beitrag zur Entwicklungsgeschichte und Deutung des Anarchismus, Kiepenheuer und Witsch, Cologne, 1963

BLACKSTOCK, PAUL W., and HOSELITZ, BERT F
See Appendix V, Russia

BLITZER, C.
See CHRISTMAN.

BLOOM, SOLOMON F
See Appendix I, Judaism.

BLUMENBERG, WERNER
'Ein unbekanntes Kapitel aus Marx' Leben Brief an die holländischen Verwandten', *International Review of Social History*, vol. I, 1956, part 1, pp 54–111.
August Bebel, *Briefwechsel mit Friedrich Engels*, ed. Werner Blumenberg, Mouton & Co., The Hague, Paris, 1965
See above, section Ib

See Appendix III, The League

BLUNTSCHLI, J C VON

Die Kommunisten in der Schweiz, 1843

BOBINSKA, CELINA

Marx und Engels uber polnische Probleme, Dietz, Berlin, 1958 (translated from the Polish)

BORNE, LUDWIG

Gesammelte Schriften, Tendlei, Vienna, 1868

BORNSTEIN, HENRI

Funfundsiebzig Jahre in der alten und neuen Welt Memoiren eines Unbedeutenden, 2 vols , Leipzig, 1881

BORN, STEFAN

Erinnerungen eines Achtundvierziger, Leipzig, 1898

BOTTIGELLI, ÉMILE

Published in French, with Laure Lentin F Engels, *La Révolution démocratique bourgeoise en Allemagne*, Éditions Sociales, Paris, 1951

Lettres et documents de Karl Marx, 1856–1883 *Annali dell'Istituto Giangiacomo Feltrinelli*, Milan, 1958, pp 149–219

See also *La Pensée*, 1957, nos 74 and 75

BRACHT, W.

Trier und K Marx, Trevirensa Verlag, 1947

BRACKE, WILHELM

K Marx, F Engels, *Briefwechsel mit Wilhelm Bracke* (1869–1880), Dietz Berlin, 1963

BRUEGEL, L

Geschichte der osterreichischen Sozialdemokratie, Vienna, 1922–5, 5 vols

BRUGEL, FRITZ, and KAUTSKY, BENEDICT

Der deutsche Sozialismus von L Gall bis K Marx Ein Lesebuch, Hess & Co , Vienna and Leipzig, 1931

BRUPBACHER, FRITZ

See Appendix IV, Bakunin.

BURGERS, HEINRICH

'Erinnerungen an F Freiligrath', *Vossische Zeitung*, Berlin, 10 and 17 September 1876, 26 November 1876 and 3 December 1876

CAILLÉ, F

Wilhelm Weitling, théoricien du communisme (1808–1870), Paris, 1905

CANNAC, RENÉ

Aux sources de la révolution russe Netchaiev, du nihilisme au terrorisme, Payot, Paris, 1961

CARR, E. H.

See above, section Ib.

See Appendix IV, Bakunin.

CARRIÈRE, MORITZ

'Lebenserinnerungen', *Archiv fur Hessische Geschichte*, 1914.

CHALONER and HENDERSON

Engels as a Military Critic, Manchester, 1959

CHRISTMAN, HENRY M., and BLITZER, CHARLES

The American Journalism of Marx and Engels. A Selection from the New York Daily Tribune, ed Henry M. Christman Introduction by Charles Blitzer The New American Library, New York, 1966.

COGNIOT, ERNA

Translator of K. Marx, *La Sainte Famille*, Éditions Sociales, Paris, 1969

COLLINS, HENRY, and ABRAMSKY, CHIMEN

Karl Marx and the British Labour Movement Years of the First International, Macmillan, 1965

CORNU, AUGUSTE

See above, section Ib

On 'True socialism', see Appendix II.

Moses Hess et la gauche hégélienne, Presses Universitaires de France, Paris, 1934

Editor of Moses Hess, *Philosophische und sozialistische Schriften, 1837–1850. Eine Auswahl*, Akademia-Verlag, Berlin, 1961 (in collaboration with W. Monke)

CONZE, WERNER

Karl Marx, Manuskripte uber die polnische Frage (1863–1864) Edited with an introduction by Werner Conze and D. Hertz-Eichenrode, Mouton & Co, The Hague, 1961

CUNOW, H

'Zum Streit zwischen K. Marx und K Vogt', *Die Neue Zeit*, vol 37, no 1, 1918, p. 620 ff

CZOBEL, E.

'Zur Geschichte des Kommunistenbunds', *Grunberg-Archiv*, 11 (1925)

See KUGELMANN

DESROCHE, HENRI

Ed Marx et Engels, 'Circulaire contre Kriege', ***Études de marxologie,*** Institut de Science économique appliquée, January 1962, pp 35–60

Socialismes et Sociologie religieuse, Cujas, Paris, 1965 Extracts from the works of Friedrich Engels, translated and presented with the aid of G Dunstheimer and M-L Letendre (Part is devoted to Engels's religious correspondence, 1838–41, another to atheism in the works of Marx and Engels, the book also contains the circular against *Kriege* of May 1846)

DOCUMENTS OF THE FIRST INTERNATIONAL, 1870–71, 4 vols, Lawrence & Wishart (Institute of Marxism–Leninism of the Central Committee, Communist Party of the Soviet Union)

DOLLÉANS, ÉDOUARD

Le Chartisme, 1830–1848, 2 vols, Fleury, Paris, 1912–13

Le Chartisme, 1831–1848, new and revised edition, Bibliothèque d'Histoire économique et sociale, Marcel Rivière, Paris, 1949

DOMMANGET, MAURICE

Les Idées politiques et sociales d'Auguste Blanqui, Rivière, Paris, 1938

L'Introduction du marxisme en France, Rencontre, Lausanne, 1969

DORNEMANN, LUISE

Jenny Marx, Der Lebensweg einer Sozialistin, Dietz, Berlin, 1968

DRAPER, HAL

'Marx and the Dictatorship of the Proletariat', ***Études de marxologie,*** September 1962

'Marx, Engels and the *New American Cyclopaedia*', *Cahiers de marxologie,* Économies et Sociétés, December 1968

DUTT, R P

Ed K Marx, *Articles on India,* People's Publishing House, Bombay, 1943

EASTON, LLOYD D

'August Willich, Marx and Left-Hegelian socialism', *Études de marxologie,* August 1965

On 'True Socialism', see Appendix II

ECKERT, GEORG

Ed. Wilhelm Liebknecht, *Briefwechsel mit Karl Marx und Friedrich Engels,* Mouton & Co, The Hague, 1963.

100 Jahre Braunschweiger Sozialdemokratie. I *Von den Anfangen bis zum Jahre 1890*, Dietz, Hanover, 1965.

FEUERBACH, LUDWIG

Manifestes philosophiques. Textes choisis; translated by Althusser, Paris, 1960.

FLEURY, V

Le Poète Georges Herwegh, Paris, 1911

FORDLR, HERWIG

Marx und Engels am Vorabend der Revolution, Akademia-Verlag, Berlin, 1960.

FREILIGRATH, FERDINAND

See MEHRING, HAECKEL, BÜRGERS

FREYMOND, JACQUES

La Première Internationale, recueil de documents publiés sous la direction de J Freymond, 2 vols, Droz, Geneva, 1962

Études et Documents sur la Première Internationale en Suisse, publiés sous la direction de J. Freymond, Droz, Geneva, 1964.

FRIBOURG, E E

L'Association Internationale des Travailleurs Origines Paris, Londres, Genève, Lausanne, Bruxelles, Berne, Bâle Notes et pièces à l'appui, Le Chevalier, Paris, 1871

FROBEL, JULIUS

Ein Lebenslauf, 2 vols, Stuttgart, 1890

GALL, LUDWIG

See BRUEGEL and KAUTSKY

GERTH, HANS

The First International. Minutes of the Hague Congress of 1872, with related documents Edited and translated by Hans Gerth, University of Wisconsin Press, Madison, 1958.

GRÜNBERG, CARL

See *Grunberg-Archiv*, section IIIa above

Reprint of the London communist journal *Die Londoner Kommunistische Zeitschrift und andere Urkunden aus den Jahren 1847–1848* Eingeleitet und mit Anmerkungen versehen von Carl Grunberg, *Grunberg-Archiv*, Leipzig, 1921.

'Bruno Hildebrand uber den Kommunistichen Arbeiterbildungsverein in London Zugleich ein Beitrag zu Hildebrands Biographie', *Grünberg-Archiv*, X, 1925

GUÉRIN, DANIEL

See Appendix IV, Bakunin, and ch 18, note 8

GUILLAUME, JAMES
L'Internationale, documents et souvenirs, 1870–1871, 2 vols, Société nouvelle de Librairie et d'Édition, Paris, 1905–10
HAECKEL, MANFRED
Ed *Freiligraths Briefwechsel mit Marx und Engels,* 2 vols, Akademia-Verlag, Berlin, 1968
HANSEN, J
Rheinische Briefe und Akten, an der Geschichte der politischen Bewegung, 1800–1850 Publikation der Gesellschaft fur rheinische Geschichtskunde, 2 vols, Essen and Bonn, 1919
HAUPT, G
See ROUGERIE, J
See ch 17, note 1
HEINE, HEINRICH
See ch 10, note 5
HEIGEL, K T
'Das Hambacher Fest', *Historische Zeitschrift,* 1913
HENDERSON
See CHALONER
HEPNER, BENOÎT-P
Ed Karl Marx, *La Russie et l'Europe,* première édition intégrale présentée avec une introduction, 'Marx et la puissance russe', par B -P Hepner, Gallimard, Paris, 1954 (see L HUTCHINSON)
HERTZ-EICHENRODE, D
See CONZE
HESS, MOSES
See SILBERNER, CORNU
See Appendix II, 'True Socialism'
HIRSCH, HELMUT
'Marxiana judaica', see Appendix I, Judaism
'Marx in den Augen der Pariser Polizei', *Denker und Kampfer,* Europaische Verlagsanstalt, 1955
'Marxens Milieu Zu dem Werk von Heinz Monz *Karl Marx und Trier', Études de marxologie,* August 1965
See Appendix I, Judaism.
HÖLSCHER, H
Andenken an Dr Andreas Gottschalk, Cologne, 1849
HOROWITZ, H
'Die Familie Lwow', see Appendix I, Judaism

HOSELITZ
See BLACKSTOCK.
HUTCHINSON, LESTER
Ed Karl Marx, *Secret Diplomatic History of the Eighteenth Century* and *The Story of the Life of Lord Palmerston*, Lawrence and Wishart, 1967 (see HEPNER)
HYNDMAN, H M.
The Record of an Adventurous Life, London, 1911
JAECKH, G
Die Internationale, 1904
JONES, ERNEST
See SAVILLE
KAHN, S B
'On the Causes of the Ban on the *Rheinische Zeitung*', *Contributions to the History of the Working Class and the Revolutionary Movement*, publications of the Academy of Sciences of the U S S.R., Moscow, 1958, pp 648-62 (in Russian)
KAISER, BRUNO
Ed. *Ex libris, Karl Marx und Friedrich Engels, Schicksal und Verzeichnis*, Dietz, Berlin, 1967.
KAMINSKI, H E.
See Appendix IV, Bakunin
KANDEL, E P
See Appendix III, The League.
KAUTSKY, BENEDICT
See BRUEGEL, L.
KAUTSKY, K
See section IIIa, above
See KUGELMANN
KLUTENTRETER, W
'*Die Rheinische Zeitung* von 1842/1843', *Dortmunder Beiträge zur Zeitungsforschung*, 10/1 and 10/2
KOIGEN, D
On 'True socialism', see Appendix II.
KÖNIG, HERMANN
'Die Rheinische Zeitung von 1842–1843 in ihrer Einstellung zur Kulturpolitik des Preussischen Staates', *Munstersche Beiträge zur Geschichtsforschung*, Neue Folge, 39, 1927.
KRAUSE, H
See Appendix V, Russia

KUGELMANN, LUDWIG

K Marx, *Lettres à Kugelmann* (1862–74) First published incomplete by K Kautsky, *Die Neue Zeit*, 1902. Russian translation, with a preface by Lenin, 1907 Complete French version based on documents of the Marx-Engels Institute, Moscow *Lettres à Kugelmann*, preface by Lenin, introduction by E Czobel, translated by Rose Michel, Éditions Sociales Internationales, 1930 Photographic reimpression, Anthropos, Paris, 1968

KUNZLI, ARNOLD

See Appendix I, Judaism

KUYPERS, JULIEN

'Wilhelm Wolff und der deutsche Arbeiterverein (1847–1848) in Brussel. Ein Fund aus dem belgischen Landesarchiv', *Archiv fur Sozialgeschichte*, III, 1963.

LAFARGUE, PAUL and LAURA

P Lafargue, 'Personliche Erinnerungen', *Die Neue Zeit*, IX, vol I, nos. 1-2, 1890–91 French version, *Souvenirs sur Marx et Engels*, see below.

F Engels, P et L Lafargue, *Correspondance, 1868–1895* Éditions Sociales, 3 vols , 1956 and 1959

LASSALLE, FERDINAND

See G MAYER

LEDIGKEIT, KARL-HEINZ

Wilhelm Liebknecht und August Bebel in der deutschen Arbeiterbewegung, 1862–9, 2nd ed , Rutten & Loening, Berlin, 1958 (Schriftenreihe des Instituts fur deutsche Geschichte an der Karl Marx Universitat, Leipzig, vol III) Ed. *Der Leipziger Hochverratsprozess vom Jahre 1872*, Neu herausgegeben von K -H Ledigkeit, Rutten & Loening, Berlin, 1960

LEFEBVRE, HENRI

See section Ib above

LEHNING, ARTHUR

See Publisher's Note and Appendices IV, Bakunin, and V, Russia

LENIN

See Kugelmann, L.

LEWALD, FANNY

Meine Lebensgeschichte, in her *Œuvres complètes*, O Janke, Berlin, 1871

LEWIN-DORSCH, E

'Familie und Stammbaum von K Marx', see Appendix I, Judaism

LIEBKNECHT, WILHELM
Karl Marx zum Gedächtnis, Nuremberg, 1896 French version, *Souvenirs*, translated by G.-G Prodhomme and C-A Bertrand, Paris, 1901. In the same volume, *Souvenirs de jeunesse*
See ECKERT
LONGUET, JEAN
La Politique internationale du marxisme, Alcan, Paris, 1918
LUCAS, ALPHONSE
Les Clubs et les clubistes, Dentu, Paris, 1851.
MANDEL, ERNEST
'La formation de la pensée économique de Karl Marx, de 1843 jusqu'à la rédaction du *Capital*' Étude génétique, Maspéro, Paris, 1967
MANDELBAUM, KURT
See Appendix V, Russia
MARX, ELEANOR
See AVELING
MARX, JENNY
'Brève esquisse d'une vie mouvementée', *Souvenirs sur Marx et Engels*. Moscow, undated
MARX, LAURA
See LAFARGUE
MASSICZEK, ALBERT
See Appendix I, Judaism
MAYER, GUSTAV
'Der Untergang der *Deutsch-Französischen Jahrbücher* und des Pariser *Vorwärts*', *Grünberg-Archiv*, vol III, 1913, p 415 f
Ed The Marx-Lassalle correspondence, 'Der Briefwechsel zwischen Lassalle und Marx', in F Lassalle, *Nachgelassene Briefe und Schriften*, vol III, Deutsche Verlagsanstalt, Stuttgart and Berlin, 1922
Bismarck und Lassalle, *Ihr Briefwechsel und ihre Gespräche*, Dietz, Berlin, 1928
See section Ib above, Life of Engels
See Appendix I, Judaism, and Appendix V, Russia
MAYER, PAUL
'Die Geschichte des Sozialdemokratischen Parteiarchivs und das Schicksal des Marx-Engels Nachlasses', *Archiv für Sozialgeschichte*, Hanover, vols. VI-VII, 1966–7

MCLELLAN, DAVID
See Appendices I, Judaism, and II, 'True Socialism'.

MEHRING, FRANZ
See sections Ib and IIIa above
Ed Marx's letters to Freiligrath, 'Freiligrath und Marx in ihrem Briefwechsel', Erganzungshefte zur *Neuen Zeit*, no 12, 12 April 1912.
Republished and introduced the two addresses of the central committee to the League of March and June 1850, *Sozialistiche Neudrucke*, no 6, Berlin, 1914
'Georg Herwegh', *Grunberg-Archiv*, IV, 1914
Geschichte der deutschen Sozialdemokratie, 6th ed, 1919

MEYER, H
'Karl Marx und die deutsche Revolution von 1848', *Historische Zeitschrift*, Munich, no 3, December 1951

MONKE, WOLFGANG
Neue Quellen zur Hess-Forschung, Akademia-Verlag, Berlin, 1964
Das Literarische Echo in Deutschland auf F Engels' Werk 'Die Lage der arbeitenden Klasse in England,' Akademia-Verlag, Berlin, 1965
See above, section Ia, B ANDREAS
See CORNU

MOLNAR, MIKLOS
Le Déclin de la Première Internationale La Conférence de Londres de 1871, Publications de l'Institut des Hautes Études internationales, no 42, Droz, Geneva, 1963

MONZ, HEINZ
Karl Marx und Trier, Verhaltnisse-Beziehungen-Einflusse, Trier, 1964
Das Karl-Marx-Geburtshaus in Trier Published by the Karl Marx Haus Verwaltung, Trier, 1967
'Unbekannte Kapitel aus dem Leben der Familie Johann Ludwig von Westphalen', *Archiv fur Sozialgeschichte*, vol VIII, 1968, pp 247-60
'Die rechtsethischen und rechtspolitischen Anschauungen des Heinrich Marx', *Archiv fur Sozialgeschichte*, vol VIII, 1968, pp 261-83.

NA'AMAN, SHLOMO
See Appendix III, The League

'Lassalle et la Révolution française Analyse de son œuvre posthume, Histoire du développement social', *Études de marxologie*, no 4, 1961.
'Lassalles Beziehungen zu Bismarck – ihr Sinn und Zweck. zur Beleuchtung von Gustav Mayer, Bismarck und Lassalle', *Archiv fur Sozialgeschichte*, vol. II, 1962
'Zur Geschichte des Bundes der Kommunisten in der zweiten Phase seines Bestehens', *Archiv für Sozialgeschichte*, vol. V, 1965.
Ferdinand Lassalle, Deutscher und Jude, Hanover, 1968
NERRLICH
See RUGE
NETTER, LUCIENNE
K Marx, F Engels, *La Nouvelle Gazette rhénane* (articles). Translation, introduction and notes by Lucienne Netter, Editions Sociales, Paris, 1963, vol I, 1 June–5 September 1848.
NETTLAU, MAX
See Appendix IV, Bakunin
Speech of Weitling, 1845, in 'Londoner deutsche kommunistiche Diskussionen, 1845 Nach dem Protokollbuch des C A B V', *Grunberg-Archiv*, X, pp. 362–91
NICOLAIEVSKY, BORIS
See section Ib above.
See Appendix III, The League.
'August Willich, ein Soldat der Revolution van 1848', *Der Abend*, Berlin, 4 May 1931
OLLIVIER, MARCEL
'Karl Marx poète', *Le Mercure de France*, 15 April 1933.
PAPAIOANNOU, KOSTA
See Appendix V, Russia.
PROUDHON, PIERRE-JOSEPH
Le Système des contradictions économiques ou Philosophie de la misère, introduction and notes by Roger Picard, 2 vols, *Œuvres complètes*, published under the direction of C. Bouglé and H Moysset, Éditions Marcel Rivière, Paris, 1923
PYZIUR, EUGÈNE
See Appendix IV, Bakunin.
RAMM, THILO
Ferdinand Lassalle als Rechts- und Sozialphilosoph, Westkultur Verlag Anton Hain, Meisenheim, Vienna, 1953
Reminiscences of K Marx and F. Engels, Moscow, undated

RIAZNOV, DAVID

See above, sections Ib and IIa, see also Appendix IV, Bakunin

'Marx als Verleumder', *Die Neue Zeit*, 2 December 1910

'Marx und seine russischen Bekannten in den vierziger Jahren', *Die Neue Zeit*, XXXI, vol I, 1913

Published the articles from the *New York Tribune*, translated from English into German by Louise Kautsky, in 2 vols of the *Gesammelte Schriften von Karl Marx und Friedrich Engels* 1917–18 (chiefly the articles of 1852–5).

Published a description of the manuscript of *Die deutsche Ideologie*, in *Marx-Engels Archiv*, I, pp 205–11 (undated)

'Zur Geschichte der Ersten Internationale', MEGA, vol I, 1927, p 119 ff (an unfinished paper)

'Novy dannie o rousskikh priateliakh Marksa i Engelsa', *Letopisi marksizma*, VI, 1928

Introduction to the Communist Manifesto in *Œuvres complètes*, translated by Molitor, Costes, Paris, 1934, 2nd ed, 1953

'Zur Frage des Verhaltnisses von Marx zu Blanqui', *Unter dem Banner des Marxismus*, 1938

RICHARD, ALBERT

See Appendix IV, Bakunin

RING, MAX

Erinnerungen, Berlin, 1898, vol I.

ROSDOLSKY, ROMAN

'Karl Marx und der Polizeispitzel Bangya', *International Review for Social History*, vol II, pp. 229-44, Leyden, 1937

See Appendix I, Judaism

ROUGERIE, JACQUES

See Publisher's Note

'La Première Internationale à Lyon, 1865–1870 problèmes d'histoire du mouvement ouvrier français', *Annali dell' Istituto Giangiacomo Feltrinelli*, IV, 1961, pp. 123–93.

'Quelques documents nouveaux sur le Comité central des vingt arrondissements de Paris', *Le Mouvement social*, no 37 (on the Commune), October-December 1961

'Sur l'histoire de la Première Internationale Bilan d'un colloque et de quelques récents travaux', *Le Mouvement social*, no 51, April-June 1965, pp 23-46

ROUGERIE, JACQUES, and HAUPT, GEORGES

'Bibliographie de la Commune de Paris', *Le Mouvement social*, no 38, January-March 1962

RUBEL, MAXIMILIEN

See Publisher's Note.

See section Ia above

'La pensée maitresse du *Manifeste communiste*', *La Revue socialiste*, February 1948.

Translator of K. Marx's 'Die Bourgeoisie und die Kontrerevolution' (December 1848), under the title 'Bilan de la révolution prussienne', *La Revue socialiste*, May and June 1948, nos. 21 and 22.

Translated K Marx, 'Méditation d'un adolescent sur le choix d'une profession', *La Nef*, Paris, June 1948, pp 52–6

Translated K Marx, 'Socrate et le Christ', ibid, pp 57–64.

Translated F. Engels, 'Von Paris nach Bern', *La Revue socialiste*, April 1949

Published K. Marx, 'La Spree et le Mincio (25 juin 1859)', *Études de marxologie*, June 1960.

Karl Marx devant le bonapartisme, Mouton & Co, Paris and The Hague, 1960 (École pratique des Hautes Études, Sorbonne)

'K Marx, un discours sur la Pologne', *Etudes de marxologie*, January 1961.

Published F. Engels, 'La Savoie, Nice et le Rhin (1860)', *Études de marxologie*, January 1961

Published 'Deux interviews de Karl Marx sur la Commune', *Le Mouvement social*, no 38, January–March 1962

'Aux origines de l'Internationale', *Le Mouvement social*, no 51, April–June 1965.

See ch 17, note 1

'La Charte de l'Internationale Essai sur le "marxisme" dans l'A I T.', *Le Mouvement social*, no 51, April–June 1965

See Appendix V, Russia

RUGE, ARNOLD

Zwei Jahre in Paris, Leipzig, 1846

Arnold Ruges Briefwechsel und Tagebuchblatter aus den Jahren 1825–1880, P Nerrlich, Berlin, 1886.

SAVILLE, JOHN

Ernest Jones, Chartist Selection from his Writings and Speeches, ed John Saville, Lawrence and Wishart, 1952.

SCHAFFENHAUR, WERNER

Feuerbach und der junge Marx. Entstehungsgeschichte der marxistischen Weltanschauung, Deutscher Verlag der

Wissenschaft, Berlin, 1965 (correspondence between K. Marx and L Feuerbach 1843–4 is published as an appendix).

SCHIEDER, WOLFGANG

Anfange der deutschen Arbeiterbewegung Die Auslandsvereine im Jahrzehnt nach der Julirevolution von 1830, Klett Verlag, Stuttgart, 1863

SCHIEL, HUBERT

Die Umwelt des jungen Marx Die Trierer Wohnungen der Familie Marx Ein unbekanntes Auswanderungsgesuch von Karl Marx, Trier, 1954

SCHMIDT, WALTER

Wilhelm Wolff, sein Weg zum Kommunismus, 1809–1846, Dietz, Berlin, 1963

SCHRAEPLER, ERNEST

'Der Bund der Gerechten Seine Tatigkeit in London 1840–1847', *Archiv fur Sozialgeschichte*, II, 1962

SCHURZ, KARL.

'Erinnerungen an Karl Marx', *Russkaya Bogatstwo*, 1906, no. 12.

SEIDL-HOPPNER, WALTRAUT

Wilhelm Weitling, der erste deutsche Theoretiker und Agitator des Kommunismus, Dietz, Berlin, 1961

SEILER, SEBASTIAN

Das Komplott vom 13 Juni 1849, Hamburg, 1850

SILBERNER, EDMUND

See Appendix I, Judaism

Published Moses Hess, *Briefwechsel*, Mouton & Co , The Hague, 1959 (Nicolaievsky's attention was drawn to these letters by his correspondent D. Riazanov)

'Moses Hess als Begründer und Redakteur der *Rheinischen Zeitung*', *Archiv fur Sozialgeschichte*, IV, 1964

'Moses Hess und die Internationale Arbeiter Assoziation', ibid , V, 1965

Moses Hess, Geschichte seines Lebens, Brill, Leyden, 1966

SLONIM, MARC

De Pierre le Grand à Lénine, Gallimard, Paris, 1933

SOMERHAUSEN, LUC

L'Humanisme agissant de Karl Marx, Paris, 1946.

Souvenirs sur K Marx et F Engels, Moscow, undated.

STEIN, H

Der Kolner Arbeiterverein, Cologne, 1921

STEKLOV, G M.
See Appendix IV, Bakunin
STIEBER and WERMUTH.
Die Communisten-Verschwörungen des 19 Jahrhunderts. Im amtlichen Auftrag zur Benutzung der Polizeibehörden der samtlichen deutschen Bundesstaaten auf Grund der betreffenden gerichtlichen und polizeilichen Akten dargestellt, Berlin, 1853–4, 2 vols
TESTUT, OSCAR
L'Internationale et le jacobinisme au ban de l'Europe, Paris, 1872, 2 vols
TORR, DONA
Published *Marx on China*, 1853–60 Articles from the *New York Daily Tribune*. With an introduction and notes Lawrence and Wishart, 1951
TYRAIEV, C B.
Georg Weerth (et 1848), Moscow, 1963 (in Russian).
VENTURI
See Appendix V, Russia.
VERDÈS, J
See ch 17, note 1.
'BA 1175. Marx vu par la police française', *Études de marxologie*, Institut de Science économique appliquée, S 10, April 1966
VICKERS, T.
August von Willich, Cincinnati, 1878
VILLETARD, EDMOND
Histoire de l'Internationale, Garnier, Paris, 1872
VUILLEUMIER, MARC
See ch 17, note 1
'Frankreich und die Tätigkeit Weitlings und seiner Schuler in der Schweiz', *Archiv für Sozialgeschichte*, V, 1965
WACHSTEIN, B
See Appendix I, Judaism
WEERTH, GEORG
See TYRAIEV.
WEISS, JOHN
See Appendix II, 'True Socialism'
WEITLING, WILHELM
See CAILLÉ, CORNU, SEIDL-HOPPNER, VUILLEUMIER, WITTKE

WERMUTH
See STIEBER
WILLICH, AUGUST VON
See EASTON, NICOLAIEVSKY, VICKERS
WITTKE, C
The Utopian Communist A Biography of W Weitling, Nineteenth Century Reformer, Louisiana State University Press, 1950
WOLFF, WILHELM
See KUYPERS, SCHMIDT

Notes

Foreword

1 'Das Begräbnis von Karl Marx', *Der Sozialdemokrat*, 22 March 1883 MEW, XIX, p. 335 ff

2 On the history of the archives of the German Social Democratic Party, cf Paul Mayer, 1966–7. They are now in the Marx-Engels Collection, International Institute of Social History, Amsterdam.

Chapter 1 Origins and Childhood

1. On Marx's early life, works by A Cornu, 1934 and 1955, are now available
2 On this annexation of Trier and the Lower Rhineland, cf. A Cornu, 1955, vol 1, ch. 1
3. On Trier and Marx, cf. W. Bracht, 1947, H Monz, 1964, H Hirsch, 1965.
4. On the Marx family environment and homes, cf H Schiel, 1954.
5 On Marx's antecedents, cf Appendix I
6 Letter to Ruge, 13 March 1843, MEW, XXVII, p 418. cf Appendix I
7 *The Jewish Question*, February 1844 cf Appendix I
8 Marx to Engels, 30 April 1858, MEW, XXXII, p 75
9 cf. H. Monz, 1967. The house is now a museum and meeting place
10 Letter of 2 March 1837, MEGA, I, 2, pp. 204–5, MEW, supplementary vol. I, 1968, pp. 626–9
11 On Ludwig Gall, cf F Brugel and B Kautsky, 1931, A Cornu, vol I, pp 52–3
12. The *Gesellschaft für nützliche Forschung*, which took an interest in the past history of Trier
13. cf. H Monz, 1964, and his 'Die rechtsethischen Anschauungen', 1968
14 cf. H Monz, 1968, p 89
15. Eleanor Marx-Aveling, 1895
16. The Hambacher Fest, as mentioned above, took place on 27 May 1832 near Neustadt (Rhineland-Palatinate). Twenty-five thousand people responded to the appeal of some 'radicals' to celebrate the anniversary of the Bavarian constitution. The day ended with

arrests, followed by convictions. One of those persecuted was Wyttenbach, who was among the speakers. cf. A Cornu, vol. I, 1955, pp. 16, 61–2, K. T Heigel, 1913

17. MEGA, I, 1/2, p. 164 f
18 P. Lafargue, *Personliche Erinnerungen*, 1890–91
19 18–29 November 1835, MEGA, I, 1/2, p. 186

Chapter 2 A Happy Year at Bonn

1 18–29 November 1835 MEGA, I, 1/2, p 185
2 M Carrière, *Lebenserinnerungen*, 1914.
3 At the beginning of 1836 MEGA, I, 1/2, p 189
4 Marx to Lassalle, 10 June 1858 MEW, XXIX, pp. 562–3 The 'unpleasant fellow' was the *Intendanturrat* Herr Fabrice
5 MEGA, I, 1/2, p 192

Chapter 3. Jenny von Westphalen

1 For a better knowledge of Jenny von Westphalen's personality the letters and documents on the Marx family (1862–73), published by E Bottigelli, 1958, and B Andreas, 1962, may be consulted cf also Luise Dornemann, 1968
2 MEGA, I, 1/1, pp 3–144.
3 On L von Westphalen, cf H Monz, 'Unbekannte Kapitel', 1968.
4 cf Appendix III
5 F Engels, foreword to first German edition of *Utopian Socialism and Scientific Socialism*, 1882 MEW, XIX, p 188
6 28 December 1836 MEGA, I, 1/2, p 198
7 Marx wrote to Jenny on 15 December 1863 from Trier, where he went after his mother's death 'Every day I keep being asked about the *quondam* prettiest girl in Trier and the belle of the ball. It is a damnably agreeable thing for a man when his wife goes on living as a fairy princess in the imagination of a whole town.' MEW, XXX, p 643
8 2 March 1837 MEGA, I, 1/2, p 205
9 16 September 1837 MEGA, I, 1/2, p 212 MEW, supplementary vol I, 1968, pp 630–34
10. MEGA, I, 1/2, pp. 3–57 (poems), pp 59–75 (*Oulanem*); pp 76–92 (*Scorpion and Felix*). cf A Cornu, vol. I, pp 74–8, 93–9, M Ollivier, 1933, H Lefebvre, 1964
11 Marx to his father, 10 November 1837 MEGA, I, 1/2, p 215

Chapter 4 Student Years in Berlin

1. On the subjects studied by Marx, and his teachers, cf A. Cornu, vol. I, 1955, p. 73 ff
2. Marx to his father, 10 November 1837. MEGA, I, 1/2, p. 212, MEW, supplementary vol I, 1968, pp. 3–12 (the text in full) This letter made Heinrich Marx fear that his son was engaging in useless studies and compromising his future, and made him angry. He expressed these anxieties and rebuked young Karl for reckless expenditure in his reply (9 December 1837)
3. Max Ring, 1898
4. Betty Lucas, a childhood friend of Jenny's, tells what she knew about Marx's relations with Bettina in her *Memoirs* (1862) cf. L. Dornemann, 1968, p 39 f
5. These notebooks have been preserved in the Marx-Engels collection at the International Institute of Social History, Amsterdam Description in MEGA, I, 1/2, pp 107–13.
6. cf. A. Cornu, vol. I, 1955, p 137 f
7. On Koppen, cf. Helmut Hirsch, 1955, pp. 19–82
8. The German version here quotes the following description of Bauer from Varnhagen von Ense's *Diary* 'A profoundly resolute man, who beneath a cold exterior burns inside He refuses to recognize obstacles and is more likely to be a martyr to his convictions'
9. 'Introduction to the Critique of Hegel's Philosophy of Law', 1844. See ch. 6, note 15.
10. 28 December 1836 MEGA, I, 1/2, p 199.
11. K. Marx to his father, 10 November 1837 MEW, supplementary vol. II, 1967, pp 283–316.
12. *Friedrich der Grosse und seine Widersacher*, Leipzig, 1840
13. Anon. (E. Bauer and F. Engels), *Die frech bedraute, jedoch wunderbar befreite Bibel, oder Der Triumph des Glaubens . Christliches Heldengedicht in vier Gesangen*, Zurich, 1842, MEW, supplementary vol II, 1967, pp 283–316
14. W Liebknecht, 1896
15. See ch. 3, note 2.
16. Let us add a detail that is not without interest In 1838 the Trier recruiting commission decided that Marx was 'accepted for voluntary service' in Berlin, but the departmental medical committee declared him to be unfit for service because of pulmonary weakness and blood-spitting, this was repeated in 1839 cf H Schiel, 1954, p. 23.

Chapter 5 Philosophy under Censorship

1 This passage, quoted without reference in the first edition, is from Koppen's book on Frederick the Great referred to in ch. 4, note 12
2 'Bemerkungen uber die neueste preussische Zensurinstruction Von einem Rheinlander', *Anekdota zur neuesten deutschen Philosophie und Publizistik*, Zurich, 13 February 1843 MEW, I, pp 5–25 Arnold Ruge first published his *Jahrbucher* ('Year Books') at Halle, and then, as a result of calling on the King of Prussia (through the pen of Johann Jakoby) to give his consent to political representation of the people, at Dresden, they then became the *Deutsche Jahrbucher* Finally, to escape the censorship, he published the *Anekdota* at Zurich, with the collaboration of Bruno Bauer, Koppen, Feuerbach, etc
3 'Die Verhandlungen des 6 rheinischen Landtags', *Rheinische Zeitung*, Cologne, 5–9 May 1842. MEW, I, p 28 ff Marx wrote another, on the Church conflict at Cologne, but this was banned and has subsequently been lost
4 Georg Jung to Arnold Ruge, 18 October 1841 MEGA, I, 1/2, p 261 f.
5 Moses Hess to Berthold Auerbach, 2 September 1841 MEGA, ibid, p 260
6 On this role as founder and editor of the *Rheinische Zeitung*, cf the articles by E Silberner, 1964, and W Klutentreter
7 On Moses Hess, cf A. Cornu, 1934, W Monke, 1964, E Silberner, 1966 A selection of his philosophical and socialist writings was published by A Cornu and W. Monke, 1961
8 Article on freedom of the Press in *Rheinische Zeitung*, 12 May 1842 cf note 3
9 cf article by H Konig, 1927
10 9 July 1842 MEW, XXVII, p 406
11 F Engels to Richard Fischer, 15 April 1895 MEW, XXXIX, p 466.
12 cf letters of Marx, Ruge and Bruno Bauer, MEGA, I, 1/2, p 285 ff On Herwegh, cf V Fleury, 1911, F Mehring, 1917
13 Marx to Engels, 25 July 1877 MEW
14 Hansen, vol I, pp 472–3
15 From the Preussisches Staatsarchiv, D. 1, No 153. cf article by S B Kahn, 1958 The Ambassador's reports are dated 10 January 1843 (Kahn, p 656 f) and 7 February 1843 (Kahn, p 661) The censor Saint-Paul's reports are quoted by J. Hansen, 1919 B Nicolaievsky returned to this point in his article 'Who is distorting history?' (1961, cf Appendix III) As he says at the beginning of the next chapter, Berlin wanted this ban just as much as St Petersburg, cf H Konig, 1927.

Chapter 6. The Germans Learn French

1. Leipzig, 1844 cf. below, p 110.
2. *Introduction to the Critique of Hegel's Philosophy of Law*, 1844. cf. note 15
3. When he left Cologne Marx left his papers and books with his friend Dr Roland Daniels. The inventory of his library has been preserved. cf. Bruno Kaiser, 1967.
4. 25 January 1843. MEW, XXVII, p. 415.
5. 13 March 1843 MEW, XXVII, p 417
6. Marx to Feuerbach, 3 October 1843 MEW, XXVII, p 419.
7. 13 March 1843 MEW, XXVII, p. 417.
8. Henriette Marx to her son, 29 May 1840 MEGA, I, 1/2, pp 242–3.
9. cf. Appendix I
10. cf Appendix III.
11. On Marx's application for restoration of Prussian nationality, cf below, p. 176.
12. A. Ruge, 1846.
13. These are the words with which Marx concludes his 'Introduction to the Critique of Hegel's Philosophy of Law', Paris, 1844
14. cf. Appendix I
15. 'Introduction to the Critique of Hegel's Philosophy of Law', *Deutsch-Französische Jahrbucher*, I-II, February 1844 MEW, I, pp. 378–91.
16. *The Critique of Political Economy*, MEW, XIII.
17. 'Rechtfertigung des -- Korrespondent von der Mosel', *Rheinische Zeitung*, 15–20 January 1843. MEW, I, p 177
18. *The Critique of Political Economy*, op. cit, p 272
19. 'Introduction to the Critique of Hegel's Philosophy of Law'
20. ibid.
21. cf A. Ruge, 1886
22. cf. the letters quoted by H. Hirsch, 'Marxiana judaica' (in French, cf Appendix I)
23. On this project and its failure, cf. Ruge's letter to Marx of 22 September 1843; Jenny Marx, 'Brève esquisse d'une vie mouvementée' (1865), p 230, A Cornu, vol II, 1955, chapter on the *Deutsch-Französische Jahrbucher*
24. cf A. Ruge, 1886 (letter from Ruge to Feuerbach of 15 May 1844).
25. cf. A Ruge, 1886
26. E. Marx-Aveling, 1883; J Spargo, 1912, see section 1b of Bibliography
27. ibid.
28. 'Critical Notes on the article "The King of Prussia and Social Reform, by a Prussian"', *Vorwärts*, 7 and 10 August 1844 MEW, I,

pp 392–409 The army had just put down the weavers' rising Ruge had announced that both rich and poor in Germany lacked a 'political soul' and that a social revolution was impossible Marx replied by comparing the Silesians rising to risings by workers in England He said that the weavers had risen, not against the King, but against the bourgeoisie Note the appearance here of the theme of the class struggle and criticism of the bourgeois state On the weavers' rising, cf Georg Eckert, 1965

29 On Marx's first economic reading, cf *Œuvres*, La Pléiade, vol II, p LIV ff

30 On the fate of the *Deutsch-Französische Jahrbücher and Vorwärts*, cf G Mayer, 1913, A Cornu, vol. II, 1955

Chapter 7. The Communist Artisans of Paris

1 Ewerbeck was one of the founders of the League of the Just and translated Cabet's *Voyage en Icarie* into German

2 On the antecedents of the Communist League, cf Charles Andler's historical introduction to the *Communist Manifesto,* 1901.

3 On Weitling, cf the Bibliography

4 *Die Menschheit wie sie ist und wie sie sein sollte,* Paris, 1838–9 Republished in Munich, 1895

5 cf M Vuilleumier, 1965

6 *Garantien der Harmonie und Freiheit,* 1842 (December), republished by Franz Mehring, Berlin, 1908 The article by Karl Marx is that of 10 August 1844, 'Critical Notes ' cf. ch 6, note 28

7 On Georg Weerth, cf. Tyraiev, 1963

8 cf 'Economics and Philosophy', MEGA, I, 3, p. 112

9 ibid, p 135.

10 *Die Heilige Familie,* 1845, MEW, II, p 88 ff

11 A Ruge, 1886, p 65

12 Letter from Marx to J B von Schweitzer, February 1865

13 Marx to Hermann Becker, 8 February 1851 MEW, XXVII, p 544

14 On the *Deutch-Französische Jahrbücher* and *Vorwärts,* cf G Mayer, 1913

15 Bornstein, 1881

16 H Burgers, 1876

Chapter 8 The Lifelong Friend

1 On Engels, cf Gustav Mayer's biography, 1934, also H Hirsch's little book, 1968, which contains a number of corrections On Engels's early life which forms the subject of this chapter, cf A Cornu, vol I, 1955, pp 112-31, H Desroche, *Socialisme et Sociologie religieuse,* 1965

2 For the youthful writings, cf MEGA, I, 2, A Cornu, 1955

3. To F. Gräber, 12–27 July 1839 MEW, supplementary vol II, 1967, p. 403 f On this question cf H Desroche, 1965, which contains Engels's religious correspondence, 1838–41.
4. cf. above, p 59.
5. cf G. Mayer, 1934, p 112.
6. 'Introduction to the Critique of Hegel's Philosophy of Law', op cit., ch. 6, note 2.
7. 'Umrisse zu einer Kritik der Nationalökonomie', *Deutsch-Französische Jahrbücher*, instalments I and II, Paris, 1844. MEW, I, pp. 499–524
8. In 1859, in the foreword to the *Critique of Political Economy*.
9. 'Progress of Social Reform on the Continent', The *New Moral World*, no. 19, 4 November 1843 MEW I, pp 480–96 (in German translation) Quotation from p 495
10. At the time when this book was written, Édouard Dolléans's *Le Chartisme*, 1912–13, was, among other works on the subject, already known Dolléans notes that Engels became acquainted with the 'pre-Marxist formulations of Bronterre O'Brien' and that 'some Chartists expressed very precisely the theory of the industrial reserve army', etc. (p 325 of 1949 edition).
11. 'Progress of Social Reform on the Continent', The *New Moral World*, no. 19, 4 November 1843 MEW, I, pp. 480–96 (in German translation). Quotation from p 495.
12. F. Engels, *Die Lage der arbeitenden Klasse in England*, Leipzig, 1845 MEW, I, p. 464 ff. English translation *The Condition of the Working Class in England*, Stanford University Press, 1968; French translation and notes *La Situation de la classe laborieuse en Angleterre*, G. Badia and J Frédéric, Éditions Sociales, Paris, 1960 This work made a certain impact in Germany, as is shown by Monke, 1965
13. F. Engels, relating the history of the Communist League in his introduction to the 1885 edition of Marx's *Revelations about the Trial of the Cologne Communists*. The introduction is entitled *Zur Geschichte des 'Bundes der Kommunisten'* MEW, XXI, p 212 ff
14. ibid.
15. 'The beginning of their cooperation' is a reference to their work on the *German Ideology* cf ch 9, note 8
16. *Die Heilige Familie, oder Kritik der kritischen Kritik*, 1845 MEW, II, pp 3–224
17. *Dies Buch gehört dem König*, 1842
18. Engels to Marx, 26 February 1845 to 7 March 1845 MEW, XXVII, p. 20.
19. Engels to Marx, 17 March 1845 ibid, p 28

Chapter 9 Clarification

1 H Burgers, 1876

2 Marx to Ruge, 30 November 1842 MEW, XXVII

3 When this book was written few letters from Marx to Freiligrath were known (some nine letters or fragments were published by F Mehring in 1912) There is now available the correspondence published by M Haeckel, 1968 cf letter from Marx to Freiligrath of 23 February 1860, MEW, XXX, p 461

4 It is now known, thanks to H Schiel, 1954, that in October 1845 Marx applied to the burgomaster of Trier for permission to emigrate to the United States

5 cf M Rubel, introduction to K Marx, *Œuvres*, La Pléiade, vol II, p LIV ff, on this project in particular, cf pp LXIII–LXVII

6 cf note 8

7 *Zur Geschichte des 'Bundes der Kommunisten'* cf ch 8, note 13 There are a number of references by Engels to the paternity of the materialist theory of history Apart from this reference, we may mention his foreword to the new edition of the *Peasant War* (1870), and that to the second edition of the *Communist Manifesto* (1883)

8 *Die deutsche Ideologie*, 1845–6, published posthumously Fragments were published in 1902–3 by E Bernstein, in 1921 by G Mayer, and in 1927 by D. Riazanov First published in full in MEGA, I, 5, 1932 cf text in MEW, III, pp 9–350 Suggestions have been made that other authors (Moses Hess, Weydemeyer) were also involved in the work, but B Andreas and W Monke showed in a 1968 article that the sole authors were Marx and Engels

9 On the nature of this 'egoism' and its affinities with existentialism, cf H Arvon, 1954

10. On 'true socialism', cf Appendix II

11 Letter to Paul Annenkov, 28 December 1846 Annenkov was a member of a group of Russian intellectuals with whom Marx was on friendly terms in Paris in 1843–4, their relations are described in articles by D Riazanov, 1913 and 1928

12 'Theses on Feuerbach', two sheets written in a notebook by Marx in 1845 and published after his death by Engels as an appendix to his *L Feuerbach and the End of Classical German Philosophy* MEW, III, pp 533–5

13 Introduction to the *Critique of Political Economy*, MEW, XIII

Chapter 10 Face to Face with Primitive Communism

1 In his *Zur Geschichte* . . cf ch 8, note 13
2. On Weitling, cf Wittke, 1950, W. Schieder, 1963, F Caillé, 1905; A. Cornu, 1955
3. J C. von Bluntschli, *Die Kommunisten in der Schweiz*, 1843.
4. *Kerkerpoesien*, Hamburg, 1844.
5. H Heine, *Geständnisse* ('Confessions'), 1853
6. cf ch 7, notes 4 and 6
7. London, 15 April 1846 Letter published in article by C Grunberg, 1925, pp 455–9, who provides information on H. Hildebrand
8 F. Engels, *Zur Geschichte* . . ., op cit, cf ch 8, note 13
9 23 June. cf. M. Nettlau, *Grünberg-Archiv*, X
10 cf H. Forder, 1960.
11 Marx to Proudhon, 5 May 1846 Proudhon's reply was dated 17 May He said that he did not believe revolutionary action to be a means of bringing about social reform and mistrusted economic dogmatism and the 'religion of reason' He informed Marx of the forthcoming publication of his 'Philosophie de la misère' MEW, XXVII, pp 442–4
12 On R Daniels, cf ch 6, note 3.
13 On this meeting, cf H Forder, 1960 On Annenkov, cf ch 9, note 11 His story, 'Ten Memorable Years', was published in Russian in *Vestnyk Europy*, St Petersburg, 1880, and in German in the *Neue Zeit*, 1883.
14 Weitling to Moses Hess, 31 March 1846, in the latter's correspondence published by E. Silberner, 1959, p 151
15 MEW, IV, pp 3–17 cf. also H Forder, 1960

Chapter 11 The Communist League

1. Apart from Engels's *History of the Communist League*, op. cit., ch 8, note 13, there is a document by two police officials, Wermuth and Stieber, 'The Communist Conspiracies of the Nineteenth Century', 1853–4 Many facts about this period are still obscure For a general view, cf H Forder, 1960
2 *Herr Vogt*, 1860. MEW, XIV, p 439
3. cf. E Schraepler, 1962, on the activities in London of the League of the Just
4 MEW, IV, p 596
5 Letter from Marx to Blos, 10 November 1877 MEW, XXXIV, p. 308
6. Republished by C Grünberg, 1921.
7. In fact it was not Marx who wrote about 'communist colonies' in

this journal, as the anonymity might lead one to suppose, but Engels, who also contributed an article on Fourier in 1846

8. Marx to Herwegh, 8 August 1847 MEW, XXVII, p 467
9 Paris, 1846 Republished 1923
10 *Misère de la philosophie Réponse à la 'Philosophie de la misère' de M. Proudhon*, Paris and Brussels, 1847.
11 cf Appendix II.
12 'Lohnarbeit und Kapital', *Neue Rheinische Zeitung*, 5–11 April 1849, republished by Engels in 1891 with modifications MEW, VI, 1959, pp. 397–423 A notebook on 'wage labour' exists, containing Marx's rough lecture notes It consists of about sixteen pages and is dated 'Brussels, December 1847', it was published by D Riazanov in 1924–5 Text in MEGA, I, 6, pp 451–72
13 On W Wolff and this cultural association, cf H Forder, 1960 and article by J Kuypers, 1963
14 F Engels, 'Wilhelm Wolff', *Die Neue Welt*, 1 August 1876 and 25 November 1876 MEW, XIX, p 59
15 'Address of the German Democratic Communists of Brussels to Mr Feargus O'Connor', the *Northern Star*, no 454, London, 25 July 1846 MEGA, I, 6, pp 25–6
16 On J Lelewel, cf C Bobinska, 1958, esp p 39 f, p 68 f.
17 *Discours sur la question du libre-échange. Prononcé à l'Association démocratique de Bruxelles dans la séance publique du 9 janvier 1848 par Charles Marx*, La Pléiade, I, pp 137–56 This follows the lost draft of a contribution that Marx proposed to make to a conference of economists he attended in 1847 but was prevented from making.
18 Unpublished, date uncertain Amsterdam collection, F21
19 Letter of 2 February 1846, published in the *Munchner Post*, 30 April 1926
20 Heinzen advocated a kind of government or 'royal' socialism S Born's publication was anonymous, *Der Heinzen'sche Staat, eine Kritik von Stephan*, Berne, end of September 1847 Marx and Engels praised it in their attacks on Heinzen 'Die moralisierende Kritik und die kritisierende Moral Beitrag zur deutschen Kulturgeschichte, gegen Carl Heinzen', *Deutsche Brüsseler Zeitung*, five articles from 28 October to 25 November 1847
21 S Born, *Erinnerungen eines Achtundvierziger*, Leipzig, 1898
22 *Grundsatze des Kommunismus* These 'Principles of Communism', written in October 1847, were published by E Bernstein in 1914 MEW, IV, p 363–80
23 Engels to Marx, 24 November 1847 MEW, XXVII, p 107 On the origins of the *Communist Manifesto*, cf H Forder, 1960
24 Speech published in the *Deutsche Brusseler Zeitung*, 9 December

1847. MEW, IV, p. 416. On this meeting, cf. É. Dolléans, 1949, p. 296 f.

25 *Manifest der kommunistischen Partei*, 1848, the title became *Das Kommunistische Manifest* in 1872 MEGA, I, 6, 1832, pp. 527–7 For the circumstances of its publication, cf the most recent version, La Pléiade, I, 157–95. For a bibliography of the various editions and translations, cf. Bert Andreas, 1963

26. Engels had sent Marx the *Grundsatze des Kommunismus* from Paris; the idea of the 'transitional programme' (of nationalization) no doubt comes from that document. Engels said later 'Marx's basic and leading ideas belong solely and exclusively to Marx' (foreword to German republication of 1883)

Chapter 12. The Revolutionary Tempest

1 F Freiligrath, 1848

2. F Engels, 'Die Bewegung von 1847', *Deutsche Brusseler Zeitung*, no 7, 23 January 1848 MEW, IV, pp 494–503

3 *Célébration, à Bruxelles, du deuxieme anniversaire de la Révolution polonaise du 22 février 1846. Discours prononces par MM A-J. Senault, Karl Marx, Lelewel, F Engels et Louis Lublinger, avocat*, Brussels, 1848 (15 March). Marx's and Engels's speeches, I, 6, 1932, pp. 409–11.

4. J. Kuypers, pp. 103–7 On the action taken against foreigners in Brussels, cf K. Marx, correspondence in *La Réforme*, 12 March 1848.

5 Stephan Born, *Erinnerungen*, op. cit, ch 11, note 21

6 Manuscript in French (Archives nationales, documents du gouvernement provisoire, BB30/319) Facsimile in L Somerhausen, 1946, p 173 MEW, IV, pp 605–6

7 MEW, XIV, p 676

8 Letter to *La Réforme*, Paris, 8 March 1848 MEW, IV, pp 536–8 (translated from the French)

9 cf on this period S Bernstein's articles, 1939–40.

10 In her autobiography, 1871

11 Engels, 'Von Paris nach Bern', unfinished MS of October–November 1848, published in *Neue Zeit*, 1898 MEW, V, pp 463–80.

12 cf. S Seiler, *Das Komplott vom 13. Juni 1849*, 1850, p 21

13. *Les Clubs et les clubistes*, 1851

14. There seems to be a mistake here. Alphonse Lucas, op cit., pp. 113–114, mentions a 'Citizen Marx' who, however, was someone other than the subject of this book

15. 'Flocon offered Engels and me money to found the *Neue Rheinische Zeitung* We refused, because as Germans we were unwilling to accept subsidies even from a friendly French government.'

(Marx to his lawyer Weber, 3 March 1860.) MEW, XXX, p 510

16 8 March 1848 MEW, XXVII, p 116.

17. 'Statement by the central committee of the Alliance of German Workers', sent to Cadet at the end of March 1848 to be published by *Le Populaire*, which did not print it. MEW, V, p 6 On this opposition to Herwegh's and Bornstedt's 'adventurism', cf S Bernstein, 1939–40. In his *History of the Communist League*, 1885, Engels wrote 'We opposed this game . Importing an invasion, which would be importing revolution from outside by force, would be tripping up the revolution in Germany' MEW, XXI, p 218

Chapter 13. The 'Mad Year' in Cologne

1 H Holscher, *Andenken an Dr Andreas Gottschalk*, Cologne, 1849 After Gottschalk's death Herwegh mourned him as 'one of the most noble and energetic characters he had ever met' (in a letter to his wife, 15 September 1849) In later years, however, Engels, while admitting memory gaps, was less respectful towards him. In a letter to Liebknecht of 29 October 1889 he referred to him as a 'complete demagogue', as the 'prophet Gottschalk', and as a 'curious creature' introduced into the Communist League by Hess MEW, XXXVII, p 298 Some letters from Gottschalk to Hess have been published in M Hess, *Briefwechsel*, 1959 cf also E Silberner, *Moses Hess*, 1966, p 285 ff

2 *Im preussischen Heere! Ein Disciplinverfahren gegen Premier Lieutenant von Willich* Mannheim, 1848

3 Willich, whom Marx and Engels referred to at the time as the 'Hohenzollern knight', was said to be the son of Prince August, brother of Friedrich Wilhelm III – a detail that is of course unverifiable He subsequently emigrated to the United States cf T Vickers, 1878, article by L D Easton, 1965 On the influence of Hegelian ideas on oppositional officers, cf E Czobel, 1925. On Willich's role in 1848, cf B Nicolaievsky, 1931 On his dissension and rupture with Marx, cf below, p 227 f

4 5 September 1847 Moses Hess *Briefwechsel*, p 174.

5 ibid , p 176

6 Unpublished letter, Marx-Engels collection, International Institute of Social History, Amsterdam.

7 *Sitzungsprotokoll der Kolner Gemeinde des Bundes der Kommunisten vom 11 Mai 1848*, signed H Bürgers and J. Moll MEW, V, p 484

8 Leaflet entitled *Forderungen der Kommunistischen Partei in Deutschland*, printed in Paris 1 April 1848 and reproduced in various newspapers during the following days, signed K Marx, K

Schapper, H. Bauer, F. Engels, J Moll, W Wolff. MEGA, VII, pp. 3-4 The signatories proposed nationalization of the means of production, banks, transport and education, and the setting up of a workers' army. The object was a transitional system, to establish the confidence of the petty bourgeoisie, this confidence did not last for long.

9 F. Engels, 'Marx und die *Neue Rheinische Zeitung* 1848–1849', *Der Sozialdemokrat*, 13 March 1884. MEW, XXI, p. 18.

10. Peter Gerhardt Roser, one of the principal accused in the Cologne trial. He was arrested in 1851 and interrogated in 1853 (cf below, p. 229 f, cf also the reference to his deposition in Appendix III)

11. cf. Appendix III.

12. cf. the monograph by H. Stein, 1921, who cites the small journals (not extant) published by this little group

13. Article by F Engels, op. cit (1884). MEW, XXI, p 19

14. ibid

15. Engels to Marx, 25 April 1848 MEW, XXVII, p 125

16 Article by Engels, op. cit. (1884)

17 There was an exception to this, *Wage-Labour and Capital*, the lectures given in December 1847, to which Marx wrote an introduction at the beginning of 1849 (cf ch. 11, note 12).

18. Except for the articles on the events of June 1848 cf note 22

19. Engels to Marx, 25 April 1848 MEW, XXVII, p. 126

20. Stefan Born, 1898

21. Communist Manifesto, Part IV These lines are echoed, for instance, in the article in the *Deutsche Brusseler Zeitung* of 14 November 1847 in which Engels says that 'the democratic movement ... assumes the existence of a proletariat, a dominant bourgeoisie, an industry that produces the proletariat and has brought the bourgeoisie into power' MEW, IV, pp 391–8 Later Marx was to insist that 'members of the proletarian party' must leave the preparation of a revolution against the *status quo* to the 'classes directly interested ... under penalty of renouncing their own party position and the tasks that arise spontaneously from the general conditions of existence of the proletariat' *Revelations on the Trial of the Cologne Communists*, written in 1852, MEW, VIII, p 458. cf below, p. 239 ff

22. In 'Nachrichten aus Paris' ('News from Paris'), 27 June 1848, and 'Die Junirevolution', 29 June 1848, *Neue Rheinische Zeitung*, Marx described the rising as the 'revolution of the proletariat against the bourgeoisie'. Engels wrote five articles on this subject in June and July 1848 MEW, V, p. 116 and p 133 ff.

23 Article of 1848, op cit On these articles from the *Neue Rheinische Zeitung*, cf Franz Mehring's introduction to his selection from

them in his *Aus dem literarischen Nachlass*, vol. III, 1902, pp 3–86 MEW, VI, cf also M. Rubel, article of July 1961, and Appendix V

24 Letter to K. F Koppen, 1 September 1848, to escape from the farce, Marx wanted to return to the 'sleepless night of exile' MEW, XVII, p 484

25 F Engels, 'Marx und die *Neue Rheinische Zeitung* 1848–1849', *Der Sozialdemokrat*, 13 March 1884 MEW, XXI, p 22

26 'The dictatorship of the intelligence'

27 Report in *Der Wachter am Rhein*, the journal of the Gottschalk club, Cologne, 23 August 1848 Not reproduced in MEGA, I, 7 cf H Meyer, article of December 1951, p 524, which quotes passages from it

28 K Schurz, article of 1906

29 Albert Brisbane, an apostle of Fourierism in the United States, had studied philosophy in Berlin and become acquainted with the Young Hegelians According to Riazanov (introduction to the *Gesammelte Schriften*, 1917, I, p XVIII ff), he met Marx in Cologne in November 1848 See Bestor, 1947

30 *Neue Rheinische Zeitung*, 8 September 1848 On Marx's journey, cf J Frobel, 1890, I, p 193

31 *Neue Rheinische Zeitung*, 15 September 1848

32 ibid, 19 September 1848

33 H Burgers, 1876

34 Marx had renounced his Prussian nationality on 1 December 1845 In 1848 he applied to have it restored, but this was refused (3 August) He appealed against the decision (22 August), the text of the application appeared in the *Neue Rheinische Zeitung* of 5 September (MEW, V, pp 382–5) On 11 August he spoke on the matter at a meeting of the Association démocratique (report in *Der Wachter am Rhein*, 28 August), he said the Prussian Government still resented his refusal to work for it in 1843 (cf above, p 71) cf Grunberg-Archiv, X, p 64

35 Published in the *Zeitung des Arbeitervereins*, Cologne, 22 October 1848 Grunberg-Archiv, XII, p 178.

Chapter 14 Defeat with Honour.

1 'Die Kontrerevolution in Berlin', *Neue Rheinische Zeitung*, 11 and 14 November 1848. F Mehring, *Aus dem literarischen Nachlass*, op cit, III, pp 200–205 (article of 11 November) MEW, VI, p 12 f

2 K Marx, 'Keine Steuer Mehr!' ('No More Taxes!'), *Neue Rheinische Zeitung*, 17 November 1848, the Prussian National Assembly forbade the Brandenburg Ministry to raise taxes, the appeals for

active resistance by Marx, Schapper and Schneider were published on 19 November MEW, VI, p 30 ff

3. *Neue Rheinische Zeitung*, 25 February 1849. MEW, VI, p 252.
4. ibid.
5. 'Die Bourgeoisie und die Kontrerevolution', *Neue Rheinische Zeitung*, 10, 15, 16 and 31 December 1848. F Mehring, op cit., III, pp. 206–29. MEW, VI, p. 124.
6. 'Die revolutionare Bewegung', *Neue Rheinische Zeitung*, 1 January 1849. F. Mehring, op. cit., III, pp 230–32.
7. 'Komiteesitzung des Arbeitervereines vom 15 Januar 1849', *Freiheit, Arbeit*, Cologne, 21 January 1849 MEW, VI, p. 579. cf H Meyer, 1951.
8. *Freiheit, Bruderlichkeit, Arbeit* ('Liberty, Fraternity, Work')
9. 'Montesquieu, LVI', *Neue Rheinische Zeitung*, 21–22 January 1849 MEW, VI, pp 182–96
10. ibid.
11. Gottschalk attacked Marx in his own journal, *Freiheit* , on 25 February 1849. cf also his letter of 22 March 1849 to M Hess in the latter's *Briefwechsel*, p 216
12. Röser's deposition, p 153 (see below, pp 229–30)
13. 'Der erste Pressprozess der *Neue Rheinische Zeitung*', *Neue Rheinische Zeitung*, 14 February 1849; 'Der Prozess gegen den Rheinischen Kreisausschuss der Demokraten', *Neue Rheinische Zeitung*, 25 and 27 February 1849 MEW VI, pp 223–39 and 240–57.
14. cf note 16
15. Rough drafts of two letters from Marx 'to Colonel Engels, town commandant of Cologne', March 1849 MEW, XXVII, pp. 496 and 498 Engels's account in a letter to Kautsky, 2 December 1885 MEW, XXXVI, p 399, and note 523, p. 808
16. In October 1848 the *Neue Rheinische Zeitung* published an appeal, signed 'Hecker' (the name of a well-known republican) Another Hecker, a public prosecutor, accused Marx of high treason; the latter, needless to say, poured ridicule on this situation, with the result that he was charged with insulting the public prosecutor. When Marx appeared before the examining magistrate a demonstration of popular sympathy took place Engels, Marx and Korff appeared before the Cologne court in February Marx told the jury that the revolution had in no way changed the political system and denounced the counter-revolution in no uncertain terms 'The first duty of the Press', he concluded, 'is to undermine all the foundations of the existing political state ' Next day he appeared before the same court on a charge arising out of the appeal to refuse payment of taxes The National Assembly had voted to ban the raising of taxes, and the Brandenburg Ministry had used threats; hence

the appeal to resistance (*Neue Rheinische Zeitung*, 19 November 1848) Those charged were Marx, Schapper and Schneider, the signatories Marx said that society should not be based on the law, but that the law should be based on society cf 'Assisenverhandlungen gegen den Rheinischen Kreisausschuss der Demokraten', *Neue Rheinische Zeitung*, 19, 25, 27 and 28 February 1849 All these articles are reprinted in MEW, VI. F Engels republished them with a preface in 1885, *Karl Marx vor den Kolner Geschworenen*

17. Reports of their statements in the *Neue Rheinische Zeitung*, 15 April 1849 (2nd ed) and in *Freiheit, Bruderlichkeit, Arbeit*, 22 and 29 April 1849 MEW, VI, p 426
18 Richard Wagner, *Mein Leben* English translation *My Life*, Dodd, Mead & Co , 2 vols , 1911
19 The order stated that he had 'disgracefully abused the law of hos pitality'
20 Republished by F Mehring, Aus dem literarischen Nachlass, op cit , vol III, and in K Marx and F Engels, *Die Revolution von 1848*, Dietz, Berlin, 1953 MEW, VI
21 cf , note 20 MEW, VI, p 519
22. cf F. Mehring, *K Marx*, 1933 ed , p 218
23 The authors here quote in the third person a statement made by Engels himself in the first person, in 'Die deutsche Reichsverfassungskampagne', *Neue Rheinische Zeitung-Revue*, March–April 1850 The passage quoted is on p 21 See also G Mayer, *F Engels*, I, p 345 ff

Chapter 15. The End of the Communist League

1 Marx to Eduard Muller-Tellering, 15 January 1849 MEW, VI, p 492
2 Marx to Engels, Paris, 7 June 1849 MEW, VI, p 137
3 K Marx, *Die Klassenkampfe in Frankreich*, consisting of articles published in the *Neue Rheinische Zeitung* in March and April 1850 Engels procured its republication in 1895 The passage quoted is from the third of these articles, 'Consequences of 13 June 1849' MEW, VII, p 69
4 Vevey, 25 July 1849 MEW, XXVII, p 501
5 cf F Engels, 'Die Reichsverfassungkampagne', op cit
6. Letter of 1 August 1849. MEW, XXVII
7 Marx wrote to Weydemeyer on 19 December 1849 that after the crisis Britain would necessarily be 'the ally of the revolutionary Continent' MEW, XXVII, p 517. The crisis is predicted in 'Revue Januar–Februar 1850', *Neue Rheinische Zeitung-Revue*, no 11, February 1850 MEW, VII, p 220.

8. J. Marx, 'Brève esquisse d'une vie mouvementée', 1865
9. 23 August 1849. MEW, XXVII In an open letter to *La Presse* on 30 July Marx stated that his stay in Paris was for scientific purposes only MEW, VI, p. 529
10 cf É. Dolléans, *Le Chartisme*, pp 309–16.
11 The reference is to the pamphlet that Marx and Engels were to write in 1852 but which was never published This was *Die grossen Manner des Exils*, the targets of which were Kinkel, Ruge, Heinzen, Meyer, R Schramm, etc cf below, note 34
12 Document concerning the various committees of aid for the German *émigrés* in MEW, VII, p 545 ff.
13 Engels to Jenny Marx, 25 July 1949 MEW, XXVII, p 502. On 'true socialism', cf Appendix II
14 K. Marx and F. Engels, *Ansprache der Zentralbehorde an den Bund*. Copies of this circular, as well as that of June 1850, were found in possession of members of the League arrested in May 1851. The text of the two documents was then published by newspapers in Cologne and Dresden on 24 and 28 June, and is reproduced in the report of the police officials Wermuth and Stieber, 1853–4, p. 251 ff Engels reprinted them in 1885 in the new edition of *Revelations about the Trial of the Cologne Communists* cf also F. Mehring, 1914 MEW, VII, pp 244 54
15 ibid, MEW VII, p. 244
16. They were written in French cf facsimile in the *Cahiers du bolchevisme*, 14 March 1933 MEW, VII, p. 553 ff It has been suggested that they were written by Willich (MEW), but it is no less probable that Marx had a hand in them, note the phrase 'permanent revolution', which appears in a different context in the *Jewish Question*.
17 Same title as the first (cf note 14)
18 On the relations between Marx and Blanqui, cf D Riazanov, *Unter dem Banner* (1938), M Dommanget, 1938
19 K. Schurz, article of 1906
20. *Neue Rheinische Zeitung, Politisch-Ökonomische Revue, redigiert von Karl Marx*, London and Hamburg, 1850
21. 'Die deutsche Reichsverfassungskampagne', cf ch 14, note 23
22 *Die Klassenkämpfe in Frankreich*, cf. note 3
23. ibid, p. 179
24 A Willich, 'Dr K Marx und seine Enthullungen', *Belletristisches Journal*, October 1953 cf article by L. D. Easton, August 1865, p 118 ff.
25 K Marx, *Herr Vogt*, 1860 MEW, XIV, p 416 Marx attacked Willich in *Der Ritter vom edelmütigen Bewusstsein*, pamphlet, New

York, 1854 MEW, V, pp. 489–518 cf. G. Mayer, *F. Engels*, I, pp 343 and 393

26 The books reviewed were · A. Chenu, former captain of Citizen Caussidière's guards, *Les Conspirateurs*, Paris, 1850 (on the secret societies, the prefecture of police under Caussidière, and the volunteer corps), Lucien de La Hodde, *La Naissance de la République*, Paris, 1850 (on the events of February 1848) Republished by F Mehring, op cit., pp 426–34 MEW, VII, p 266 ff

27 W Liebknecht, *K. Marx zum Gedachtnis*, Nuremberg, 1896, p. 37 From February or March 1850 onwards Marx used to invite working-class friends such as Pfander, Eccarius, etc, to his home for talks about economics Between June and August 1850 he did the same at the German Workers' Club In September 1850, however, after the split in the Communist League, Marx, Engels and their friends left the club, must of the members of which were supporters of Willich and Schapper Thus the 1851 'talks' cannot have taken place at the club, though they may have taken place at Marx's home

28 On Roser's deposition, cf ch 13, note 10, and see Appendix III

29 This document is reproduced and its history traced in B Nicolaievsky's article 'Towards a History of the Communist League', 1956 cf also MEW, VIII, 1960, p 597 f Marx refers to the circumstances of the split in *Herr Vogt*

30. Letter to Adam, Barthélemy and Vidil 'Sirs, we have the honour to inform you that for a long time we have regarded the association of which you speak as *de facto* dissolved All that remains to be done is to destroy the articles of association Will MM Adam and Vidil be kind enough to appear next Sunday, 13 October, at midday at the residence of M Engels, 6 Macclesfield Street, Soho, to be present at the burning of the articles of association? We have the honour, etc [Signed] Engels, Marx, Harney London, 9 October 1850' MEW, VII, p 415

31 11 February 1851 MEW, XXVII, p 184 f.

32 This expression was used by the police to designate Marx and his friends, who also used it among themselves.

33. Marx-Engels collection at Amsterdam, 'E' contains a series of documents relating to the facts alleged

34 It was to Bangya that Marx gave the MS of *Die grossen Manner des exils* (cf note 11) Engels and he wrote this pamphlet in May–June 1852. Bangya undertook to get it published but never delivered the MS Marx related this in an open letter to the *Belletristisches Journal und New-Yorker Criminal-Zeitung*, New York, 5 May, 1853, about another Prussian police spy named Hirsch A fragment has survived, *die grossen Manner des Exils*, MEW, VIII, p 23 ff. On this affair, cf. article by R Rosdolsky, 1937

35. Jenny Marx to Adolf Cluss, 28 October 1852. MEW, XXVIII, p 640 f.
36. K. Marx to F. Freiligrath, 29 February 1860 MEW, XXX, p 489.
37 Marx to Frau Daniels, 6 September 1855 MEW, XXVII, p. 618 We met R. Daniels above, ch 6, note 3
38. K. Marx, *Enthullungen über den Kommunistenprozess zu Koln*, Basle, January 1853. Serialized in the *Neue-England Zeitung*, a German newspaper published at Boston, Mass, in March–April 1853, and republished in 1875 with a postscript by Marx. Another edition appeared in 1885 after his death, with a preface by Engels to which we have already referred, tracing the history of the Communist League. MEW, VIII, pp 405–70 A memorandum by the minister Manteuffel concerning copies of the book, dated 20 February 1853, is preserved at Amsterdam (cf. note 33)
39. 'Der Achtzehnte Brumaire des Louis-Bonaparte', *Die Revolution*, New York, 1 May 1852 Republished with an introduction by Marx, Hamburg, 1869, and with a preface by Engels in 1885 MEW, VIII, pp 111–94.
40 These words occur in a letter from Marx to Friedrich Koppen, 1 September 1848. MEW, XVII, p 484. See above, ch 13, note 24

Chapter 16. The Sleepless Night of Exile

1 F Engels, 'Die auswartige Politik des Zarentums', *Die Neue Zeit*, May 1890. MEW, XXII, p. 13.
2. The authors are here repeating views expressed by Marx in his articles for the *New York Tribune*, 1852 61
3. This was the *Neue Oder-Zeitung*, about 100 articles are concerned; they are enumerated in M Rubel, *Bibliographie* Some had been translated in the French edition of Marx's complete works, vol VI. The articles deal with political and economic life in England, the corruption of its officials and political figures (Disraeli, Palmerston), the Crimean War and pan-Slavism, the collusion between the Church and the decadent aristocracy, etc
4. cf É Dolléans, 1949, p 309 ff.
5 Engels to Marx, 17 March 1851. MEW, XXVII, p. 217. The correspondence of 1851–2 contains a number of derogatory opinions cf for instance Marx's letter to Engels of 23 February 1851, which paints a ferocious picture of 'dear' Harney, also the letter of 4 February 1852, etc.
6. cf John Saville, 1952. Extracts from Jones's correspondence with Marx and Engels are quoted in it, p. 231 ff
7 Letter to the Chartist Parliament *People's Paper*, London,

18 March 1854. MEW, X, p 126 cf also Marx's article 'The Parliament of Labour', *New York Tribune*, 29 March 1854.

8 'Kirchliche Agitation', *Neue Oder-Zeitung*, June–July 1855 MEW, XI, p 323

9 W. Liebknecht, 1896 Marx described the demonstration in a message to the *Neue Oder-Zeitung* dated 25 June 1855 and published 28 June 1855 MEW, XI, p 322 f cf also his letter to Engels of 26 June 1855

10 cf John Saville, 1952

11 His articles on the Near Eastern crisis, edited with comments by D. Riazanov, are available in *Gesammelte Schriften*, 1917

12 Marx to Engels, 9 March 1853 MEW, XXVIII, p 218

13 He did the same in 1860 in *Herr Vogt*, op cit. cf also Marx to Engels, 22 April 1854, and to Lassalle, 2 June 1860, on his 'collusion' with Urquhart 'since 1853'

14 Marx to Engels, 2 November 1853 MEW, XXVIII, p 306

15 Eight articles were published in part in the *New York Tribune* (October 1853–January 1854) and in full in the *People's Paper* (October–December 1853) There were several editions of Tucker's pamphlet None of these pamphlets earned anything for their author As Tucker mentioned Marx's name in the preface, Marx feared that Palmerston might prosecute him The articles were republished by Eleanor Marx, London, 1899, and by L Hutchinson in 1967 Other articles by Marx on Palmerston appeared in the *Neue Oder-Zeitung* in 1855 On the 'Revelations about the History of Diplomatic Secrecy in the Eighteenth Century', cf L. Hutchinson, 1969

16 These were the same articles on Palmerston (Tucker pamphlet) The *Free Press*, London and Sheffield, November 1855–February 1856

17 A selection of Marx's articles was published by H Christman and C Blitzer, 1966

18 cf above, p 184

19 *Germany Revolution and Counter-Revolution*, by Frederick Engels, New York, Marxist Library, vol XIII, International Publishers, 1933

20 'The British Rule in India', *New York Tribune*, 25 June 1853 K Marx and F Engels, *On Colonialism*, Foreign Languages Publishing House, Moscow, undated cf S Avineri, 1968

21 Articles written between July and December 1854 These, as well as others that appeared in *Putnam's Magazine* and the *New American Cyclopaedia*, were republished in *Revolution in Spain*, by K Marx and F Engels, International Publishers, New York, 1939

22 Three articles, June 1853, January and March 1854

23 Marx to Engels, 5 January 1854 MEW, XXVIII, p. 317 Dana was

also chief editor of the *New American Cyclopaedia*, to which he invited Marx and Engels to contribute, which they did from 1857 to 1860. Strict 'objectivity' was required, and controversial subjects were not entrusted to them. Engels dealt chiefly with military matters His military writings were collected by Chaloner and Henderson, 1959 For the 'bread and butter' articles written by Marx and Engels for the *New American Cyclopaedia*, see MEW, XIV. cf Hal Draper, 1968

24. 23 January 1857 MEW, XXIX, p 102
25 20 March 1850 MEW, XXVII, pp 608 9
26. D Riazanov calculated Marx's income during this period cf W. Blumenberg, 1967, ch VII, also note 66 below
27 23 November 1850 MEW, XXVII, p. 144
28 *Gesammelte Aufsatze von Karl Marx*, Cologne, 1851 This contained the article published in *Anekdota* (cf above, p 50) and some of the articles on the debates in the Rhenish Diet (cf. pp. 47–53).
29. Marx to Weydemeyer, 2 August 1851 MEW, XXVII, p. 565
30. 8 September 1852. MEW, XXVIII, p 128
31 Jenny Marx to Engels, 27 April 1853 MEW, XXVIII, p 645 It was little Edgar Marx, known as 'Musch', who got rid of the baker by this phrase He was aged six, and died in 1855
32 21 June 1854. MEW, XXVIII, p 370.
33 Informer's report published by G Meyer, *Neue Beitrage*, 1922, pp. 56 63. On the police spies who trailed Marx and invented the phrase 'the Marx party', cf. the 'Revelations on the Trial of the Cologne Communists', op. cit
34. W Liebknecht, *Souvenirs sur Marx et Engels*, 1896, pp 120–24.
35. 'A Few Stray Notes', *Reminiscences of Marx and Engels*, p 240–54; Adoratski, 1934, p. 120.
36. ibid
37 MEW, XXVIII, p. 442.
38 ibid , p. 443.
39. To F. Lassalle, 28 July 1855. ibid., p 617
40 Letter to Marx, 27 September 1856 MEW, XXIX, p 78
41. To Engels, 13 November 1857 MEW, XXIX, p 207
42. To Marx, 15 November 1857 ibid , p. 211.
43 ibid , p 225
44. cf. E. Mandel, 1967, and La Pléiade, II, p LXXIV f
45. To Engels, 2 April 1851 MEW, XXVII, p. 228
46. 27 June 1851. MEW, XXVII, p. 559.
47 cf. La Pléiade, II, LXXXIX. He was then writing *Grundrisse der Kritik der politischen Ökonomie*, an important rough draft for *Das Kapital* which was discovered in 1923 and published in 1939–41.

48 28 January 1858 MEW, XXIX, p 267
49 22 February 1858 ibid, p 285
50 2 April, 1858 ibid, p 312
51 15 July 1858 ibid, p. 340
52 The same letter
53. *Zur Kritik der politischen Ökonomie, von Karl Marx, Erstes Heft*, Berlin, 1859. MEW, XIII. On this publication, cf La Pléiade, I, 1963, pp 269–70, II, 1968 p CIII f
54 cf M Rubel, *Karl Marx devant le bonapartisme*, 1960, p 68 ff
55 At the end of March 1859 he described to Marx the state of mind prevailing in Austria the bourgeoisie's hatred of the dynasty, the bellicose intentions of the Austrian army, etc In June he published a pamphlet, *The Italian War and the Task of Prussia*, which to Marx and Engels seemed Bonapartist and pro-Russian cf the letters of Lassalle published by G Meyer, 1922, F Mehring, *K Marx*, 1933, p 307 ff, and various articles in the *New York Tribune*. Marx's and Engels's views on the Italian war are expressed in writings such as Marx's article 'The Spree and the Mincio', *Das Volk*, London, 25 June 1859, and Engels's pamphlets *Po und Rhein*, 1859, and *Savoyen, Nizza und der Rhein*, 1860, cf M Rubel, June 1960 and January 1961
56 *Herr Vogt*, London, 1860 cf the studies of Cunow, 1918, and F Mehring, *Aus dem Literarischen Nachlass*, 1902
57 Let us not forget Marx's striking prediction while he was writing *Das Kapital* 'Whatever happens, the bourgeoisie will remember my boils as long as it exists' (Letter to Engels of 22 June 1867)
58 Marx to Engels, 7 May 1861 MEW, XXX, p 161 Marx's letters to his uncle have been published with comments by W Blumenberg, 1956
59. To Engels, 25 February 1862 MEW, XXX, p 214
60. To Engels, 18 June 1862. MEW, XXX, p 248
61. 7 January 1863 ibid, p 309
62 8 January 1863 ibid, p 310
63 13 January 1863 ibid, p 312
64 24 January 1863. ibid, p 314
65 26 January 1863 ibid, p 317
66 On Marx's financial and marital troubles (the birth of his natural son Frederick Demuth [1851–1929]), cf W Blumenberg, 1967, and La Pléiade, I, 3rd ed, p LXXIX ff
67 31 July 1865 MEW, XXI, p 132
68 17 April 1867. MEW, XXXI, p 541
69 16 August 1867 ibid, p 323
70 *Das Kapital – Kritik der Politischen Ökonomie – Erster Band – Buch I: Der Produktionsprozess des Kapitals*, Hamburg, 1867 cf

German edition produced by the Marx-Engels-Lenin Institute, Moscow, Verlag für Literatur und Politik, Vienna and Berlin, 1932 Bibliographical details in French edition, La Pléiade, I, p 539 41 On the writing of the book, cf. La Pléiade, II, Introduction.

71 30 April 1867. MEW, XXXI, p. 542.

72. Other subjects were the Russo-Turkish war (1854), the Crimean War (1854–5), the Spanish revolution (1854–60), the conflict between Prussia and Switzerland (1856), the abolition of serfdom in Russia (1858), the anti-slavery movement and the American Civil War (1858, 1862), and the wars of Napoleon III. Among the collections of Marx's (and Engels's) articles, etc. are *Revolution in Spain*, 1939; *Articles on India*, 1943, *Marx on China*, 1951, *The Civil War in the United States*, 1937; *The Russian Menace to Europe*, 1952, *The Eastern Question*, 1897

73 cf the selected works of Lassalle published by H. Hirsch, 1963 On his ideas, cf the various works of S. Na'aman, especially his article of 1961, and T. Ramm, 1953. His correspondence with Marx has been published by G Mayer, *Nachgelassene Briefe*, vol III, 1922.

74 ibid, vol. I, pp 227 and 230

75 7 May 1861. MEW, XXX, p. 163

76. 30 July 1862. MEW, XXX, p. 258.

77 cf the *Critique of the Programme of the German Workers' Party*, (known as the Gotha programme), in which he criticized this 'miraculous cure' in 1875.

78. To J. B. von Schweitzer, 13 October 1868, MEW, XXXII, p 569

79. ibid.

80 Published by G Mayer, 1928 cf on this point the article by S. Na'aman, 1962.

81 In particular, plagiarism of *Wage-Labour and Capital* (cf ch 11, pp. 136–7 and note 12) in the last of Lassalle's writing, *Kapital und Arbeit*, 1864 cf on this subject Marx's letters to Engels, 6 June 1864, and to Kugelmann, 13 October 1866

82 On Lassalle's party, cf the article by B. Andreas, 1963 Details about his work and that of his disciple Wilhelm Bracke will be found in G. Eckert's study of 'Social Democracy in Brunswick', 1965

Chapter 17. The International Working Men's Association.

1 It is neither possible nor would it be useful to enumerate here all the publications on this subject Those readers who are interested will find particulars in two biographical articles, 'Études de marxologie', I.S E A., August 1964 and August 1965 cf also M Rubel,

'Marx et la Première Internationale Une chronologie', and an assessment by J Rougerie, M Rubel, M Vuilleumier, G. Haupt and J Verdès in *le Mouvement social,* no 51, April-June 1965 See also *La Première Internationale l'institution, l'implantation, le rayonnement,* C N R S , 1968
2 MEW, XXXI, p 428
3 ibid , p 13
4 ibid , p 17.
5 cf D Riazanov, who quotes extracts from the speeches in his article on the history of the International, 1927, and M Rubel's article of April-June 1965, 'Aux origines de l'Internationale'
6 cf. the MS on the Polish question published by W Conze and D Hertz-Eichenrode, 1961, in October 1863 Marx and his friends published a leaflet on the subject, to which Marx returned in 1867 cf the correspondence between Marx and Engels at the end of 1863, M Rubel's article of January 1961, and Appendix V, note 1
7 cf M Rubel's article of April-June 1965, 'La Charte de l'Internationale'
8 *Address and Provisional Rules of the International Working Men's Association* Pamphlet reproducing the text published in the London weekly The *Bee-Hive,* 5 November 1864
9 Source untraced cf the *Communist Manifesto,* III, 3, and *Herr Vogt*
10 23 February 1865 MEW, XXXI, p 454
11 4 March 1865 ibid , p 90
12 Letter to Léon Fontaine in Brussels, 15 April 1865 ibid , p 473
13 4 March 1865 ibid , p 90
14 13 March 1865 ibid , p 100–101
15 Same letter
16 To Engels, 29 July 1868
17 cf M Rubel, 'La Charte de l'Internationale', April-June 1965
18 'Communication confidentielle', letter written by Marx in French, addressed to the Brunswick committee of the German Social Democratic Party, 28 March 1870, and sent *via* Kugelmann It consisted of a warning against Bakunin MEW, XVI, p 411
19 K Marx (and F Engels), *Les Prétendues scissions dans l'Internationale Circulaire privée du Conseil général del A I T ,* London (printed at Geneva), June 1872 Published in *Le Mouvement socialiste,* July-August 1913 MEW, XVIII, the passage quoted is on p 34
20 'Agli operai italiani', *La Roma del Popolo,* no 20 13 July 1871 Mazzini published a series of articles entitled 'Documenti sull' Internazionale' in the same journal at the end of 1871
21 E E Fribourg, *L'Association Internationale des Travailleurs,* 1871,

p. 87. The reference is to the position adopted by the British delegates to the Geneva conference, who sought to make their support for the International conditional on the latter's support in this matter They wanted the congress to make a declaration on the limitation of working hours, but this proposal was defeated as a result of opposition by the French delegates.

22 ibid, preface, p. 4.

23 This was the defence put forward by E. Varlin in the course of a Paris trial on 22 May 1868 cf. *Procès de l'A.I.T. Première et deuxième Commission du bureau de Paris Paris, dans les locaux de l'Association et chez les principaux libraires*, 2nd ed, July 1870, pp. 144–65. 'The International Association on principle does not admit strikes, it believes them to be anti-economic, it announced that at Geneva, it has announced it everywhere' (pp 151–2) But Varlin announced this principle only after long insistence on the aid given to strikers in France, England and Germany.

24 Marx to Liebknecht, 11 February 1878 MEW, XXXIV, p. 320 In this letter he delivers a harsh judgement on the British proletariat which, he says, 'has been increasingly demoralized since 1848' and has ended by being no more than the 'tail of the great Liberal Party, that is, of its oppressors the capitalists', under 'venal' trade union leadership. Also Marx could not forgive the trade union leaders their support of Gladstone's 'Russophile' policy.

25 2 October 1866 MEW, XXXI, p 525

26 *Rapport du Conseil général sur les différentes questions mises à l'étude par la conférence de septembre 1865* Report for the Geneva conference of the International (3 8 September 1866) drafted by Marx in English and read in French by the delegate Eugène Dupont Published by two London weeklies in 1867

27 Marx to Kugelmann, 9 October 1866 MEW, XXXI, p 525

28 'Resolutions of the Congress of Geneva', 1866, and 'Resolutions of the Congress of Brussels', 1868, London French official text in the *Courrier International*, Freymond, I, pp 29-36.

29 Freymond, I, p. 109 ff.

30 10 September 1868 MEW, XXXII, p 558.

31. cf *The Nationalization of the Land* (1872), in which Marx restated his 1869 position French version, La Pléide, I, pp 1473–9.

32 Paris, 1865 cf. edition supervised by M Leroy, 1924

33 The exact numbers were estimated by J Rougerie in his article of April–June 1965

34. cf S. Bernstein, 1962.

35 Guillaume was the author of *L'Internationale*, four vols, 1905–10 He gives a detailed account of the Coullery affair in vol I. cf also Rolf R Bigler, 1963, and Freymond, 1964

Chapter 18. Michael Bakunin

1 cf Appendix IV, a selected bibliography of works on Bakunin
2 Bakunin had written to Ruge in 1843 An exchange of letters between them was published in the *Deutsch-Franzosische Jahrbucher*, the first and only issue, February 1844 Bakunin joined the Association démocratique in December 1847 He stayed in Brussels from the end of December 1847 to the end of February 1848
3 Or more precisely 'The pleasure (*Lust*) of destruction is at the same time that of creation' These words occur in 'The Reaction in Germany, a fragment, by a Frenchman' (signed Jules Élysard), in the *Deutsche Jahrbucher fur Wissenschaft und Kunst*, 17–21 October 1842 cf B-P Hepner, 1954, p 185 f
4 The attack on Bakunin was published in the *Neue Rheinische Zeitung*, 5 July 1848 Some years later Marx confirmed in a letter to Lassalle (3 March 1860, MEW, XXX, p. 498) that he had published in the *Neue Rheinische Zeitung* a slanderous communication, signed Koscielski, about Bakunin He had subsequently inserted an *amende honorable* and buried the hatchet with Bakunin, whom he met soon afterwards in Berlin (25–26 August) during the propaganda journey mentioned on p 184 above While Bakunin was exiled in Siberia (1849–64) the *Morning Advertiser* (29 August) published another article accusing him of collusion with the Tsar's Government Marx was not responsible, but Herzen and Golovin suspected him of having instigated the slander Marx replied by 'breaking a lance' in favour of 'Michael Bakunin' on 2 September 1853 (MEW, IX, pp 294–6) cf his letter to Engels, 3 September 1853 (MEW, XXVIII, pp 280-85). The 1860 letter to Lassalle quoted above also related these facts, but with errors of detail cf D Riazanov, 'Marx als Verleumder', 1910 cf Bakunin, *Confession*, French version 1932, p 201 f, p 209 f cf also Appendix IV
5 It is known, from the letter of 4 November 1864 (MEW, XXXI, p 16) Bakunin said, among other things, that a peasant revolution would lead to socialism in Poland, and that he proposed to devote himself solely to socialism in future
6 See the *Confession* of 1857, and Appendix IV
7 Source unknown
8 'Programme et objet de l'Organisation révolutionnaire des Frères Internationaux', *L'Alliance de la Démocratie socialiste et l'Association Internationale des Travailleurs* Report and documents published by order of the International congress at The Hague, London, 1873, pp 131–2; reprinted in D Guérin, *Ni Dieu ni maitre*, 1966, 2nd ed, 1969, pp 197-215
9 cf Freymond, vol I, p 239 f

10. This was the first congress of the League of Peace and Freedom, Geneva, 1867. The quotation is from Wyrobov's *Mémoires* (1913).
11. The speech referred to was made by Bakunin on 10 September 1869. There is a passage on Bakunin in *Souvenirs du baron N. Wrangel. Du servage au bolchévisme*, Plon, Paris, 1926
12. cf. the documents produced by Marx, Engels and Lafargue in *L'Alliance de la Démocratie socialiste et L'Association Internationale des Travailleurs*, July 1873 cf. above, note 8
13. 15 December 1868 MEW, XXXII, p 234.
14. 18 December 1868. ibid., p. 236.
15. *Le Conseil général au Conseil fédéral de la Suisse romande à Genève*, January 1870. *Communication confidentielle contre Bakounine*, March 1870 cf notes 8 and 12, and *Les Prétendues scissions de l'Internationale*, March 1872
16. 22 December 1868. Marx enclosed this letter with his own letter to Engels of 13 January 1869. MEW, XXXII, p. 757.
17. Undated letter published by M Nettlau, *The Life . . .* (1895), p 253; reproduced in J Guillaume, I, p 73
18. Letter published in *Pisma M. A. Bakunina*, Geneva, 1896, pp. 233–8. The quotation seems to be directly from the original and not from the French version, *Correspondance*, pp 288–95. The résumé preceding it mentions 'scientific socialism', but the phrase does not occur in the letter; Bakunin mentions only the 'great services that he [Marx] has rendered the socialist cause during the past twenty-five years'.
19. These details and those that follow are given by J. Guillaume, vol. I
20. The report for the Basle congress (6–11 September 1869) was drafted by Marx (in English, it was read in German and French). Subjects proposed by London were, landed property (cf La Pléiade, I, p. 1473 f.), the law of inheritance, mutual credit, education, the activity of organizations opposed to the emancipation of the workers, etc. Marx's report drew attention to the 'guerilla warfare between labour and capital, i.e., the strikes which have troubled Europe during the past year', and on 11 September 'resistance funds' were discussed Another subject proposed for discussion was 'direct legislation exercised by the people' Report and minutes in *Documents of the First International*, III, pp 326–42, MEW, XVI, pp 370–82, Freymond, II, pp. 5–131. cf. J Guillaume, I, 190.
21. Freymond, vol. II, p 5 ff.
22. The phrase is A. Ruge's, 1846 cf E Silberner, 1965 and 1966
23. Moses Hess, *Le Réveil*, 2 October 1869, the anonymous reply (it was by J Guillaume) appeared in *Le Progrès*, Le Locle, 16 October 1869 J. Guillaume, I, p 222 ff.
24. Varlin to J Guillaume, 25 December 1869 *Le Progrès*, 1 January

1870 Reprinted, with an account of the circumstances of the foundation of *La Marseillaise*, by J Guillaume, I, pp 257–8. MEW, 25 MEW, XXXII, p 516

Chapter 19 The Franco-Prussian War

1 On the antecedents of the Franco-Prussian War, cf M Rubel, *Karl Marx devant le bonapartisme*, 1960.
2. Freymond, vol I, p 78.
3. M Rubel, op. cit, pp 122–3
4 cf D Riazanov, article of 2 July 1915
5 7 February 1882 MEW XXXV, pp 269–70
6 20 June 1866 MEW, XXXI, p 229
7 ibid, p 204
8. ibid, p 514
9 Luxembourg was to have been the price of French neutrality Napoleon III is said to have hoped for more See the letters of Marx and Engels of 27 March and 4 April 1867
10 12 February 1870 MEW, XXXII, p 443
11 17 February 1870 ibid, p 651
12 22 August 1870 MEW, XXXIII, p 47 On Bebel's and Liebknecht's activity in Germany, cf K-H Ledigkeit, 1958
13 MEW, XXXIII, p 38
14 20 July 1870 ibid, p 5
15 *The General Council of the I W A on the War To the Members of the I W A in Europe and the United States*, London, 23 July 1870
16 MEW, XXXIII, pp 40–41
17. Letter to Kugelmann, 4 February 1871 ibid, p 182
18 F Engels, *Notes on the War*, sixty articles on the war of 1870–71 in the *Pall Mall Gazette*, from 27 July to 18 February 1871
19 MEW, XXXIII, p 32
20 20 August 1870. ibid, p 45
21 Bakunin, *Œuvres*, IV, p 499
22 'XXIXth Letter' from Paris, 25 January 1831. 1868 ed, VIII, p 121
23 To Ogarev, *Pisma*, p. 300, French version, Correspondance, p 336
24 To Albert Richard, 23 August 1870 J Guillaume, II, p 81
25 Marx to Engels, 6 September 1870 MEW, XXXIII, pp 54–5
26 Marx to Engels, 10 September 1870 ibid, p 59.
27 *Secret Address of the I W A on the Franco-Prussian War*, London, 9 September 1870
28. MEW, XXXIII, p 140
29 To Albert Richard, from London, 6 September 1870 cf Oscar Testut, 1872, J Guillaume, II, p 100

30 MEW, XXXIII, p. 158 On the role of the International at Lyons, cf. J. Rougerie, 1961.
31 Letter to Marx, 7 September 1870 MEW, XXXIII, p 58
32 ibid, pp. 61–2.
33 20 August 1870, ibid, p 45
34 4 February 1871 ibid, p 183
35. ibid., p 58.
36 To Engels, 7 July 1868. MEW, XXXII, p 115
37. MEW, XXXIII, p. 54. He goes on to call him 'this 1848 toast-master, who now plays the Brutus'
38 19 and 25 September 1870, *Pisma*, pp 304–6, *Correspondance*, pp 338–9, J. Guillaume, II, p. 92
39 19 October 1870, MEW, XXXIII, p. 158
40 'The Freedom of the Press and of Debate in Germany'
41. cf note 18
42. cf. 'Bibliographie de la Commune de Paris', article by J Rougerie and G Haupt, January–March 1962
43 Letter to Louis Palix, 29 September 1870 *Œuvres*, IV, p. 78.
44. To Gaspard Sentiñon, 23 October 1870, quoted by J. Guillaume, Bakounine, *Œuvres*, II, p 275.
45 The original text is quoted here, the first edition of the present work contained a somewhat different one, ending with the statement: 'Our revolution has not yet come, but we shall make it, and, when we are rid of the Prussians, we shall lay the foundations in a revolutionary fashion of the egalitarian society of which we dream.' This is a circular of the Paris federal council. It is addressed to provincial members of the International, informing them of the activities and participation in national defence of their Parisian colleagues, and can be dated from mid-September 1870
46. On Lavrov in Paris, cf *Parizhkaya Kommuna*, Petrograd, 1919, this letter is quoted on p. 80 See also Venturi, ch XVIII
47 12 September 1874 MEW, XXXIII, p 642
48. Gambon had recently taken his seat in the National Assembly in Bordeaux. This radical with vaguely socialist leanings had figured on the list supported by the Paris members of the International. Like Pyat, another radical elected with the aid of the votes of members of the International, he consulted it on 'the course of action to be taken in the light of the attitude of the National Assembly'. cf. *Les Séances officielles de l'Internationale à Paris pendant le Siège et pendant la Commune*, Paris, E Lachaud, 1872, p 98. The reply quoted here is signed by 'one of the secretaries for France' (Henri Goullé) and was calmly accompanied by a summons to attend the session of 22 March

49 17 September 1874 MEW, XXXIII, p 642.
50 12 April 1871 ibid., p 205.
51 ibid, p 200
52 To Leo Frankel and Louis-Eugène Varlin, 13 May 1871, ibid., p 226.
53 22 February 1881 MEW, XXXV, p 160
54 5 April 1871 J Guillaume, II, p 140
55 ibid, p 140 and p 154
56. Through an intermediary Marx sent the Communards details about the secret agreement between Bismarck and Jules Favre for joint action with a view to the 're-establishment of order in Paris', as well as 'advice' on how to thwart these plans cf the letter to Frankel and Varlin of 13 May 1871 quoted above In a letter to Beesly of 12 May 1871 Marx said he had this information from Bismarck's 'right hand' (according to MEW, Johannes Miquel, an ex-member of the Communist League) Through the agency of Engels, he sent them to Lafargue at Bordeaux cf MEW, XXXIII, pp 226–8, *Chronik*, 1934, p 300
57 12 April 1871 MEW, XXXI, p 206
58 Marx to Frankel and Varlin, 13 May 1871 MEW, XXXIII, p 226
59 Minutes of the General Council *Documents of the First International*, vol IV, Moscow, undated, pp 166 and 169
60 26 April 1871 MEW, XXXIII, p 216
61 All this material is available in French cf next note
62 *Address of the General Council of the I W A on the Civil War in France, 1871 To all the Members of the Association in Europe and the United States* cf also *La Guerre civile en France,* new ed, accompanied by Marx's preparatory work and press cuttings (18 March–1 May), Paris 1953.
63 12 April 1871 MEW, XXXIII, p 205.
64 In 1877 Marx took an interest in W Bracke's translation into German of Lissagaray's *History of the Commune,* the MS of which he revised See the correspondence with Bracke, MEW, XXXIV.

Chapter 20 The Decline of the International

1 On this period, cf M Molnar, 1963
2 To Kugelmann, 17 March 1868 MEW, XXXII, p 540
3 18 June 1871 MEW, XXXIII, p 238.
4 cf, for instance, the two interviews given by Marx after the Commune, published by M Rubel, 1962
5 Letter written in French but published in Flemish by *De Werker,* (8 April 1871), of which P Coenen was the editor
6 On how Marx was visualized by the French police, cf H Hirsch, 1955; and the evidence produced by J. Verdès in his article of April 1966.

7. Letter to Kugelmann, 17 April 1871. MEW, XXXIII, p. 209
8. cf. Collins and Abramsky, 1965.
9. 'Konfidenzielle Mitteilung' (MEW, XVI, pp. 409–20). Published in part in French, *Les Prétendues scissions . . .*, 1872 (cf note 12) Enclosed with this letter of Marx's to the Brunswick committee of the German Social Democratic Party, dated 28 March 1870 and sent through Kugelmann, was a circular written by him in French, dated 1 January 1870, replying to Bakunin's attacks in *L'Égalité* (published by J Guillaume, I, pp. 263 8). The 'Communication confidentielle contre Bakounine' and the circular are reprinted in *Lettres à Kugelmann*, Anthropos, Paris, 1968
10 cf Marx's and Engels's correspondence with W Liebknecht, ed. G. Eckert, 1963 N. Riazanov, 1913 (Appendix IV).
11. cf. Bebel's memoirs, *Aus meinem Leben*, vol II, p 167 ff
12. cf the *Archives Bakounine*, II, *Michel Bakounine et les conflits dans l'Internationale, 1872* J Guillaume, vol. II, K. Marx and F. Engels, '*Les Prétendues scissions dans l'Internationale*, circulaire privée du Conseil général de l'A I T.', Geneva, 1872, republished in *Le Mouvement socialiste*, July August 1913, Archives Bakounine, II, 1965, pp. 269–96.
13. *Documents of the First International, 1870–1871*, vol IV, p 446
14. cf *L'Alliance de la Démocratie socialiste et l'A I.T*, op. cit (ch 18, note 12), also R Cannac, 1961.
15 Published in Russian by A. N Silov, *Borba Klassov*, Leningrad, 1924, nos 1 and 2, reprinted in French in *Briefwechsel* (German translation of *Pis'ma*), 1895, pp. 374–80, recently reprinted in *Le Contrat social*, I, 1957, no 2, pp. 122–6.
16. cf R. Cannac, 1961.
17. Letter of 7 February 1870, published in *La Revue de Paris*, 1 September 1896.
18 cf Appendix V
19. 5 July 1870. MEW, XXXII, p. 520
20 A Russian branch of the International was founded by Utin and Trussov (editor of the *Narodnoye Dielo*) in March 1870 A conference of the International in London in September 1871 authorized 'Citizen Utin' to publish an account of the Nechaiev trial in *L'Égalité*. See Marx's article, 'The International and Nechaiev', the *World*, 15 October 1871. cf also J. Guillaume, vol II, p. 201 ff
21 4 November 1871 MEW, XXXIII, p. 306
22. Published in the *Neue Zeit* in 1893. cf Adoratski, *Sammlung von Erinnerungen*, 1934, p. 186.
23 In a document referred to in note 12
24 On the congress at The Hague, cf Freymond, vol II, ch. VII
25 Documents published in the *Archives Bakounine* by A Lehning

(vol II), résumé ın the Introductıon, pp XXXV–XXXVIII, pp 108 and 112, and Appendıx IX, 2

26 Letter from Malon to Mathılde Roederer from Chıasso (Tıcıno), 19 August 1872 J Guillaume, II, p 314

27 For what follows the mınutes of the congress publıshed ın English by H Gerth, 1958, may be consulted

28 J Guıllaume, II, p 321

29 Documents of the Leipzıg trıal ın K -H Ledıgkeıt, 1960

30 Thıs became artıcle 7a of the statutes of the Internatıonal, whıch had been drafted ın 1864 (cf above, pp 282–3) La Pléıade, I, p 471.

31 Report publıshed ın a Dutch newspaper, 10 October 1872, and ın French ın *La Lıberté,* 15 Septembeı 1872 MEW, XVIII, p 159–61 (translated from the French)

32 cf. Foreword, p x

33 F Engels, 'Dıe Bakunısten an der Arbeıt', *Der Volksstaat,* 31 October 1873 MEW, XVIII, p. 476 f

34 20 June 1873 MEW, XXXIII, p 591 W Blumenberg, 1965, reproduces Bebel's letters together wıth those of Engels, and provıdes valuable explanatoıy matter

Chapter 21 The Last Ten Yeaıs

1 27 September 1873 MEW, XXXIII, p 606

2 4 Aprıl 1874 ıbıd., p 635

3 Letter of 18 March 1872, La Pléıade, I, p 543 It also contaıns ınformation about this translatıon on pp 537–41.

4 30 August 1883 cf La Pléıade, II, p CXXI f

5 Thıs ıdea was frequently expressed by Engels It occurs almost word for word ın 'Dıe auswartıge Polıtık des Zarentums', *Dıe Neue Zeıt,* VIII, May 1890, nos 4 and 5. MEW XXII, pp 13–41

6 W Lıebknecht, *Zur orıentalıschen Frage, oder soll Europa kosakisch werden?* 2nd ed , Leıpzıg, 1878

7 Marx to Sorge, 4 Aprıl 1874 MEW, XXXIII, p 635

8 Letters of 4 February 1874 and 11 February 1878 MEW, XXXIV, pp 317–19, pp 320–24 Lıebknecht used these letters ın the 2nd ed of his pamphlet, op cıt, without mentıonıng the wrıter's name

9 27 September 1877 MEW, XXXIV, p 296 See Appendıx V

10 ıbıd., p. 317

11 MEW, XXXV, p 179 On terrorism ın Russıa, cf M Slonim, 1933 Marx expressed himself as follows on the ınevıtable vıolence of revolutıons in whıch reactıon ıs domınant (statement to the *Chıcago Trıbune,* 5 Januaıy 1879) · 'One does not have to be a socıalıst to foresee that Russıa, Germany and probably Italy – ıf the Italıans persist on theıı present path – wıll be the scenes of bloody revolutıon

The events of the French Revolution could be repeated in those countries, which is obvious to anyone who understands politics. The revolutions will not be the work of a party, but of the whole nation.'

12. 16 December 1879 MEW, XXXIV, p 341
13. ibid, p. 464. N. F. Danielson, known as Nicolai-on cf. Appendix V.
14. It is well known that Engels sharply criticized this programme in a letter to Bebel (28 March 1875) and that on 5 May 1875 Marx sent to W. Bracke his 'marginal comments', *Randglossen zum Programm der deutschen Arbeiterpartei* This document was printed in 1891 and reprinted from the original MS by B Nicolaievsky in 1921. MEW, XIX, pp 15–32.
15. 14 November 1879. MEW, XXXIV, p 421.
16. 31 July 1877 ibid, p. 284.
17. 24 November 1879 ibid, XXXIV, p 425
18. cf. a 'Circular to the leaders of Social Democracy', 17 September 1879, sent by Marx and Engels to Bebel and the social democrats in the Reichstag, denouncing opportunism and stressing the class struggle, the workers, they said, could not be 'liberated from above' MEW, XXXIV, pp 394 408 Two days later in a letter to Sorge Marx used the famous phrase 'They are afflicted with parliamentary cretinism'
19. 5 November 1881 MEW, XXXIV, p 474.
20. cf. G Eckert, 1965
21. 25 October 1881. MEW, XXXV, p 232 The Engels-Bernstein correspondence has recently been republished by H Hirsch, 1967. The Engels-Lafargue correspondence is available in French cf. Bibliography, 'Lafargue'.
22. cf Marx's letter to Engels of 30 September 1882 drawing attention to 'tacit innuendoes . . Marx is a German, indeed a Prussian'.
23. 'The self-styled "Marxism" in France is certainly a quite special product, to such an extent that Marx said to Lafargue Ce qu'il y a de certain, c'est que moi, je ne suis pas marxiste' ('What is quite certain is that I am not a Marxist') (Engels to Bernstein, 3 November 1882 MEW, XXXV, p. 388. cf M Dommanget, 1969
24. 12 September 1882 MEW, XXXV, pp 356-8
25. 22 February 1881 cf ch 19, note 53
26. Engels to Bernstein, 25 October 1881 MEW, XXXV, pp 232–3
27. H M Hyndman, 1911
28. No doubt a reference to his daughter Eleanor and to Helene Demuth. Letter of 29 April 1881 MEW, XXXV, p 186
29. 15 March 1883. MEW, XXXV
30. cf Foreword, p x

Index